(सनातनधर्मग्रन्थः)

लोकशासकमहाकालचित्रगुप्तः

तथा च

ब्रह्मकायस्थगौडब्राह्मणाः

(भाषा–टीका सहितम्)

सनातन धर्म ट्रस्ट, गोरखपुर

[सनातनधर्मग्रन्थः]

लोकशासकमहाकालचित्रगुप्तः

तथा च

ब्रह्मकायस्थगौडब्राह्मणाः

[भाषा-टीका सहितम्]

[लोकशासकमहाकालचित्रगुप्त एवं ब्रह्मकायस्थगौडब्राह्मण]

प्रकाशक—

सनातनधर्म ट्रस्ट, गोरखपुर।

ए-३६, आवास विकास कालोनी, शाहपुर, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश।

पिन : 273006, **फोन :** 0551-2282000, **मोबाईल नं० :** 08004332000

सहयोग—

चित्रगुप्त मंदिर सभा

बक्शीपुर, गोरखपुर,
उत्तर प्रदेश।

कायस्थ विकास परिषद

नियामत चक, होटल बाबीना के सामने,
गोरखपुर, उत्तर प्रदेश।

प्रकाशन वर्ष : संवत् २०७३, शक १९३८, सन् २०१६

संस्करण : प्रथम

सहयोग राशि : ₹ १०००/- (रु० एक हजार मात्र)

मुद्रक : अरुण ऑफसेट प्रिन्टर्स, दुर्गाबाड़ी, गोरखपुर, उत्तर प्रदेश।
पिन : २७३००१

[सनातनधर्मग्रन्थः]

लोकशासकमहाकालचित्रगुप्तः

तथा च

ब्रह्मकायस्थगौडब्राह्मणाः

[भाषा-टीका सहितम्]

लेखक, संकलक एवं सम्पादक

मनोज कुमार श्रीवास्तव

'संस्थापक एवं अध्यक्ष'

सनातनधर्म ट्रस्ट, [रजि०] गोरखपुर, उत्तर प्रदेश।

'सदस्य' फिल्म राईटर एसोसिएशन मुम्बई।

धार्मिक सहयोगी एवं हिन्दी अनुवादक

डॉ० इन्द्रजीत शुक्ल

'अवकाश प्राप्त प्रधानाचार्य'

श्री गोरखनाथ संस्कृत उ० मा० विद्यालय,

गोरखपुर, उत्तर प्रदेश।

एवं

डॉ० श्रीमती रीता दूबे

'असिस्टेन्ट प्रोफेसर संस्कृत विभाग'

ए० पी० एन० पी० जी० कालेज

बस्ती, उत्तर प्रदेश।

विशेष सहयोगी

शैलेश कुमार श्रीवास्तव

'संयुक्त सचिव, शोध'

सनातनधर्म ट्रस्ट, [रजि०]

गोरखपुर, उत्तर प्रदेश।

अरुण कुमार श्रीवास्तव

'संयुक्त सचिव, टंकण प्रबन्ध'

सनातनधर्म ट्रस्ट, [रजि०]

गोरखपुर, उत्तर प्रदेश।

सनातनधर्म ट्रस्ट, गोरखपुर।

यह धर्म-ग्रन्थ चित्रगुप्तवंशीय तथा चन्द्रसेनीय कायस्थों सहित सभी सनातनियों के लिये समर्पित है। इस ग्रन्थ को लिखने का उद्देश्य लोकशासक एवं महाकाल चित्रगुप्त के वैदिक तथा पौराणिक स्वरूप से सनातनियों को अवगत कराना है। जिससे कि वह चित्रगुप्तजी के शक्ति एवं स्वरूप को जानकर, नियमित उपासना करते हुये, चित्रगुप्तजी की परमकृपा से उनके द्वारा प्रदत्त ज्ञान, यश एवं धन को प्राप्तकर, सम्पूर्ण विश्व में उत्कृष्ट बनें और चित्रगुप्तजी की प्रसन्नता से पूर्णायु को प्राप्त करते हुये मोक्ष प्राप्त करें।

जो सनातनी बन्धु धर्म में आस्था एवं विश्वास रखते हैं, वह भगवान् चित्रगुप्त की उपासना करके अपने जीवन को उत्कृष्ट बना सकते हैं।

यदि सभी सनातनी बन्धु इस ग्रन्थ को पढ़कर अपना जीवन उत्कृष्ट बना सकें तो इस ग्रन्थ को प्रकाशित करना सार्थक होगा।

शुभकामनाओं सहित—

मनोज कुमार श्रीवास्तव

प्राक्कथन

भारतीय समाज में 'कायस्थ' को विलक्षण प्रतिभा का जनक माना जाता है। सम्पूर्ण विश्व इस जाति के बुद्धिमता का सम्मान करता है। इस जाति के लोग अपनी बुद्धिमता से भारत ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व के मुख्यत: सभी उच्च पदों पर विद्यमान हैं। अध्यापक, इंजीनियर, डॉक्टर, वैज्ञानिक, न्यायाधीश, प्रशासकीय सेवा एवं राजनीति में इनकी उपस्थिति सहज ही देखी जा सकती है। इसने समाज में हजारों महापुरुषों को दिया है।

संतों में—श्रीमन्त शंकरदेव, स्वामी विवेकानन्द, श्रीअरबिन्दो घोष, तथा महर्षि महेश योगी आदि, **स्वतंत्रता सेनानियों में**—सुभाष चन्द्र बोस, खुदीराम बोस आदि, **विद्वानों में**—डॉ० सत्येन्द्र नाथ बोस, जगदीश चन्द्र बोस, डॉ० शान्ति स्वरूप भटनागर, डॉ० सम्पूर्णानन्द, रघुपति सहाय 'फिराक', मुंशी प्रेमचन्द्र तथा महादेवी वर्मा आदि, इनके अतिरिक्त डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, लाल बहादुर शास्त्री तथा जयप्रकाश नारायण जैसे **महाविभूतियों** का नाम गर्व से लिया जाता है, ये कायस्थकुल से ही हैं।

कायस्थों का उद्भव क्या है? ये कौन हैं? ये किसके वंशज हैं? वर्ण व्यवस्था में इनका स्थान कहाँ है? यह एक रहस्य बना हुआ था। इनके उद्भव के नाम पर सिर्फ यही ज्ञात था कि ये चित्रगुप्त नामक देवता, जो यमराज का लेखा-जोखा रखते हैं, के वंशज हैं। ये बात मुझे सदैव असहज लगती थी।

इस विषय को अत्यन्त गम्भीरता से लेते हुए हमने १९९६ से इनके रहस्यों को सुलझाने का कार्य प्रारम्भ किया। इस कार्य के लिये हमने कायस्थों के पूर्वज भगवान् चित्रगुप्त को वेदों तथा विभिन्न पुराणों में ढूंढने का प्रयास किया।

इस क्रम में विष्णु, ब्रह्मा, ऋषि, सनकादि, रुद्र (शिव) तथा चित्रगुप्त के उत्पत्ति को ढूंढा तो ज्ञात हुआ कि निराकार रूप में विद्यमान **सदाशिव** साकार ब्रह्म रूप में **विष्णु** हुये, **विष्णु** के कमलनाभि से **ब्रह्मा** उत्पन्न हुये, ब्रह्मा ने सर्वप्रथम १० ऋषियों, को अपने अलग-अलग अंगों से उत्पन्न किया। इनमें ब्रह्मा की गोद से **नारद,** अंगूठे से **दक्ष,** प्राण से **वसिष्ठ,** त्वचा से **भृगु,** हाथ से **क्रतु,** नाभि से **पुलह,** कानों से **पुलस्त्य,** मुख से **अंगिरा,** नेत्रों से **अत्रि** तथा मन से **मरीचि** उत्पन्न हुये।

इसी क्रम में ब्रह्मा ने अपने शरीर के दो टुकड़े करके **मनु** तथा **शतरूपा** को उत्पन्न किया।

तत्पश्चात् ब्रह्मा ने **सनकादि** को उत्पन्न करके वंश वृद्धि का आदेश दिया, सनकादि ने ब्रह्मचर्य रहने की इच्छा व्यक्त की, इससे ब्रह्मा अत्यन्त क्रोधित हुये, तब इनके क्रोध से **रुद्र** उत्पन्न हुये। **रुद्र को ही शिव, शंकर, महादेव, उमापति इत्यादि कहते हैं।**

तत्पश्चात् ब्रह्मा ने यमलोक का निर्माण करके मरीचि ऋषि के वंशज सूर्यपुत्र—यम को यमलोक का राजा बनाकर कर्मानुसार मृत्यु देकर सृष्टि का संचालन करने का आदेश दिया। यमराज ने इस कार्य को न कर पाने की असर्थता जताई क्योंकि कश्यप, विश्रवा इत्यादि **ऋषि,** सूर्य, चन्द्र, बृहस्पति इत्यादि **देव** तथा हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, रावण, अहिरावण जैसे **दानव** ऋषियों से उत्पन्न तथा यमराज के समान शक्ति के थे।

तत्पश्चात् भगवान् ब्रह्मा ने यमराज की असमर्थता को देख कर तपस्या किया, तपस्या के फलस्वरूप ब्रह्मा की काया [सर्वाङ्ग शरीर] से एक देव उत्पन्न हुये। ब्रह्मा ने उस देव का नामकरण करते हुये कहा

कि हे पुत्र! तुम्हारा चित्र मेरे मनः पटल में गुप्त था इसलिये तुम चित्रगुप्त के नाम से जाने जाओगे, तुम मेरी काया में स्थित थे, मेरी काया से उत्पन्न होने के कारण तुम संसार में कायस्थ नाम से विख्यात होगे। तुम यमलोक में मेरी जगह स्थित होकर सत्-असत् रूप में विद्यमान [किटाणु से इन्द्रादि देवों तक] सभी प्राणियों के भाग्य का निर्धारण करके सृष्टि का संचालन करो, ये मेरी आज्ञा है। तत्पश्चात् सृष्टि का संचालन सम्भव हो सका। यमलोक में चित्रगुप्त-धर्माधिकारी नामक यम हैं जबकि यमराज-धर्मराज नामक यम हैं।

विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र [शंकर] तथा चित्रगुप्त समान शक्ति के देव हैं। विष्णु-विष्णुलोक के, ब्रह्मा-ब्रह्मलोक के, शिव-शिवलोक के तथा चित्रगुप्त-यमलोक के स्वामी हैं।

भगवान् चित्रगुप्त लोकशासक हैं, इनका शासन देवलोक, मृत्युलोक तथा पाताललोक सभी पर चलता है। यही लोकशासक हैं, यही यमलोक के धर्माधिकारी, न्यायाधीश तथा दण्डाधिकारी हैं। यमराज [धर्मराज] इनके द्वारा दिये गये न्यायिक आदेशों का पालन कराते हैं। भगवान् चित्रगुप्त ही प्रत्येक जीवों की आयु का निर्धारण करते हैं। उन्हीं की कृपा से मनुष्य रंक से राजा बनता है। प्रत्येक जीव उन्हीं के कारण प्रतिक्षण सुख अथवा दुःख को भोगता है। भगवान् चित्रगुप्त ही तीनों लोक के नियंता हैं, चाहे ऋषि-महर्षि हों, पुरूषोत्तम हों अथवा साधारण मनुष्य हों, सभी भगवान् चित्रगुप्त के निर्णयों से ही नियन्त्रित हैं। जिन्होंने मृत्युलोक में जन्म लिया है, वे सभी भगवान् चित्रगुप्त के ही निर्णयों से अपनी-अपनी जीवन लीला को दिखाकर मृत्युलोक से मुक्त होते हैं। इसीलिये सभी सनातनी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इत्यादि अपने पितृ के श्राद्ध में भगवान् चित्रगुप्त का पूजन करके उनसे याचना करता है कि हे चित्रगुप्त! मेरे पितृ को उत्तम योनि अथवा मोक्ष प्रदान करें। श्राद्ध के दिनों में जिस गरुडपुराण के पाठ से प्रेत को सद्गति होती है वह भगवान् चित्रगुप्त, यमराज तथा यमलोक के भोगों का वर्णन है।

यदि ये कहा जाय कि भगवान् चित्रगुप्त नियति हैं, तो यही सच्ची व्याख्या होगी। इस सत्यता को जान कर मुझे घोर आश्चर्य हुआ। साथ ही यह भी स्पष्ट हुआ कि जिस चित्रगुप्त के बड़े भाई रुद्र (शिव) हों, पिता स्वयं सृष्टि कर्ता ब्रह्मा हों, तथा पितामह परब्रह्म के प्रथम स्वरूप विष्णु हों, ऐसे महान देवता की त्रुटिपूर्ण विवेचना, उपहास एवं निन्दा, मनुष्यों के लिये महापाप तथा घोर नरकगामी है।

एक मात्र भगवान् चित्रगुप्त की निन्दा विष्णु, ब्रह्मा, शिव सहित सभी देवों की पूजा को निष्फल करता है क्योंकि भगवान् चित्रगुप्त-विष्णु, ब्रह्मा, शिव के ही कुल के और उनके समान शक्ति के हैं, शेष सभी देव भगवान् चित्रगुप्त के आदेश का पालन करने वाले हैं।

जबकि समाज में भगवान् चित्रगुप्त को यमराज का मुंशी कहकर उपहास किया जाता है। पुस्तकों, चलचित्रों तथा धारावाहिक में भी इनका उपहास किया जाता है। सनातन धर्म के निरन्तर क्षय का प्रमुख कारण यही है।

भगवान् चित्रगुप्त का वर्णन ऋग्वेद एवं पुराणों के आधार पर निम्नवत् है—

ऋग्वेद में चित्र नाम के देव का वर्णन है, यही देव पुराणों में चित्रगुप्त नाम से विख्यात हैं। चित्र नाम के देवता ऋग्वेद में धन के देवता के रूप में विद्यमान हैं। ऋग्वेद में चित्र देव का वर्णन होने से यह स्पष्ट होता है कि यह देवता सनातनी हैं। साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि कायस्थों का उद्भव सृष्टि के प्रारम्भ

से ही है, क्योंकि सत्युग में वेदों का प्रादुर्भाव हो चुका था।

आदिशंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र, अध्याय-३, पाद-१ के १३ से १६ में बताया है कि प्राणी अपने पाप के कर्मों का फल भोगने यमलोक को जाता है, वहाँ चित्रगुप्तादि देव रौरव आदि नरकों के अधिष्ठाता हैं। प्राणी यमलोक में शुद्ध होकर पुनः जन्म लेता है, इस प्रकार प्राणी लोक-परलोक का भ्रमण निरन्तर करता रहता है।

पुराणों का अध्ययन करने पर कायस्थों के पूर्वज भगवान् चित्रगुप्त की तस्वीर और भी स्पष्ट होती है।

वाराहपुराण में नचिकेताप्रयाणवर्णनम् दिया गया है। नचिकेता नामक ऋषि ने यमलोक जाकर प्रत्यक्ष प्राणियों के भोग को देखा, इसको अध्ययन करने पर घोर आश्चर्य हुआ, जो इस प्रकार है—यमराज की पुरी में मनु, पुलह, पुलस्त्य, अंगिरा आदि ऋषि, देवाचार्य बृहस्पति, दनुजाचार्य शुक्र आदि रह कर, धर्माऽधर्म का कार्य करके यमराज की आज्ञा का पालन करते हैं और स्वयं यमराज—भगवान् चित्रगुप्त की आज्ञा का पालन करते हैं।

इस प्रकार सृष्टि का संचालन सक्षम परब्रह्म, ऋषि एवं देवताओं द्वारा आदिकाल से अनन्तकाल की ओर अग्रसर है। **भगवान् चित्रगुप्त—परब्रह्मस्वरूप विष्णु, ब्रह्मा तथा शिव के समान शक्ति के, तथा ऋषि, देव तथा दानवों के स्वामी हैं।**

नचिकेता ने देखा कि, कुछ यमदूत प्राणियों को दण्ड देते हुये मोह में पड़कर बहाना बनाते हुए भगवान् चित्रगुप्त से बोले कि, हे स्वामी हम थक गये हैं, हमें किसी और कार्य पर लगा दें, हम कोई दूसरा दुष्कर कार्य कर लेंगे। यह सुनते ही भगवान् चित्रगुप्त क्रोधित हो गये, तत्क्षण इनके क्रोध से मन्देह नामक राक्षस उत्पन्न हो गये। भगवान् चित्रगुप्त ने मन्देहों को आदेश दिया कि इन यमदूतों का वध कर दो, भगवान् चित्रगुप्त की आज्ञा पाकर लाखों यमदूतों को मन्देह राक्षसों ने मार डाला।

इस प्रकरण ने मुझे झकझोर दिया, मैं सोचने पर विवश हो गया कि, जो यमदूत साक्षात् काल हैं, और आदिकाल से लेकर अबतक ऋषि-महर्षि, मानवरूपी देवों और महाबली दानवों को मार कर ले गये, उन महाशक्तिशाली यमदूतों का वध कराने वाले भगवान् चित्रगुप्त साक्षात् महाकाल हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। वाराहपुराण के अध्याय-२०४ को पढ़ने पर यह स्वतः स्पष्ट हो गया—

अभयं चात्र यच्छामि ब्राह्मणेभ्यो न संशयः॥ २३॥
तस्माद्यात ऋषिभ्यश्च स्त्रीभ्यश्चैव महाबलाः। यातनाया न भेदव्यमहमाज्ञापयामि वः॥ २४॥

भगवान् चित्रगुप्त यमदूतों से बोले—मैं शुद्ध ब्राह्मणों को अभय दिया हूँ, इसमें संशय नहीं है। चाहे ऋषि हों, चाहे स्त्री हों या महाबली हों, यातना देने में भेद मत करो, ये मेरा आदेश है।

भगवान् चित्रगुप्त—ऋषियों के नियन्ता हैं, ये नचिकेता ने स्वयं देखकर बताया। **ऋषियों के नियन्ता होने से ये स्वतः स्पष्ट हो गया कि भगवान् चित्रगुप्त—ऋषि, देवता तथा दानवों के नियन्ता हैं, क्योंकि ऋषियों से ही—ऋषि, देवता तथा दानवों की सृष्टि है।**

त्रिलोक में हानि-लाभ, जीवन-मरण तथा यश-अपयश सबकुछ भगवान् चित्रगुप्त द्वारा ही प्रदत्त है। ऐसा वाराहपुराण में नचिकेता द्वारा देखे गये प्रकरण से स्पष्ट होता है। अन्य पुराणों के साक्ष्यों से ये स्वतः बलवती है।

स्कन्दपुराण, माहेश्वर खण्ड में महादानी राजा बलि की कथा दी गई है। शिव के निमित्त सत्कर्म करने के

कारण भगवान् चित्रगुप्त ने एक जुआरी को ३ घटी के लिये इन्द्र बनाने का आदेश दिया, देवगुरू बृहस्पति ने भगवान् चित्रगुप्त के आदेश का पालन करते हुये, इन्द्र को ३ घटी के लिये अन्यत्र जाने का आदेश दिया और वह जुआरी इन्द्र बन गया। इन्द्र बनते ही उस जुआरी ने इन्द्रलोक में विद्यमान वस्तुओं का दान ऋषियों को कर दिया। इस सुकृत के कारण वह जुआरी कश्यप ऋषि के कुल में उत्पन्न होकर महादानी राजा बलि हुआ।

पद्मपुराण के यमाराधना नामक अध्याय में भगवान् चित्रगुप्त यमलोक में 'धर्माधिकारी' के रूप में स्थापित किये गये हैं। इस पुराण में महर्षि मुद्गल की कथा दी गयी है। यह महर्षि यमदूतों की त्रुटि से मृत्यु को प्राप्त हो गये। यमलोक पहुँचकर यमराज तथा धर्माधिकारी चित्रगुप्त का साक्षात् दर्शन किया। यमराज ने महर्षि को देखकर दूतों से कहा मैने मुद्गल नाम के क्षत्रिय को लाने के लिए कहा था महर्षि को नहीं! इन्हें छोड़कर उसे ले आओ। इसके पश्चात् मुद्गल ऋषि पुनः जीवित हो गये। इस प्रकरण से स्पष्ट होता है कि यमलोक की सत्ता अत्यन्त सशक्त है। ऋषि-महर्षि भी धर्माधिकारी भगवान् चित्रगुप्त तथा यमराज के द्वारा ही नियन्त्रित हैं तथा वे ही ऋषि-महर्षियों के स्वामी हैं। इसी अध्याय के श्लोक संख्या ५३ एवं ५४ में महर्षि मुद्गल ने धर्मराज तथा भगवान् चित्रगुप्त का मन्त्र दिया है। इनमें धर्मराज के मन्त्र में धर्मराज को नमन किया गया है, जब कि चित्रगुप्त के मन्त्र में मनोकामना पूर्ण करते हुए नरक के दुःखों को नष्ट करने की प्रार्थना की गयी है—

धर्मराज नमस्तेऽस्तु धर्मराज नमोऽस्तु ते। दक्षिणाशापते तुभ्यं नमो महिषवाहनः ॥ ५३ ॥

हे धर्मराज आपको प्रणाम है दक्षिण दिशा के स्वामी महिष वाहन वाले धर्मराज आपको प्रणाम है।

चित्रगुप्त नमस्तुभ्यं विचित्राय नमोनमः। नरकार्ति प्रशांत्यर्थं कामान्यच्छ ममेप्सितान् ॥ ५४ ॥

हे चित्रगुप्त आपको प्रणाम है, हे विचित्र आपको प्रणाम है। मेरी मनोकामना पूर्ण करते हुए मुझे नरक के दुःख से मुक्त करें।

[इस मंत्र के अनुसार भगवान् चित्रगुप्त की उपासना करके प्रत्येक मनुष्य अपनी मनोकामना को प्राप्त कर नारकीय जीवन से मुक्ति पा सकता है।]

इस पुराण में कार्तिक माहात्म्य के अध्याय १०६ में एक कलहा नामक पापी ब्राह्मणी की कथा दी गई है। इसमें भगवान् चित्रगुप्त ने कलहा नामक ब्राह्मणी को पाप कर्म करने के कारण दण्ड देते हुये क्रमशः बगुला, सूअर, बिल्ला तथा दीर्घकाल तक अतिनिन्दित प्रेतयोनि में रहने का आदेश दिया है। इस प्रकरण ने स्पष्ट कर दिया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सहित सभी प्राणियों के दण्डों का निर्धारण भगवान् चित्रगुप्त ही करते हैं।

इसी पुराण में सेतुबंध नामक अध्याय में एक चोर की कथा दी गयी है। एक चोर चोरी सहित अन्य दुष्कर्मो में लिप्त था। चोर के मृत्योपरान्त यमलोक पहुँचने पर यमराज ने उसे पापी समझकर कभी नष्ट न होने वाले दुर्गति (नरक) प्राप्त कराने का आदेश दे दिया जिसे भगवान् चित्रगुप्त ने रोक कर चोर के मात्र एक पुण्य कार्य करने के कारण १२ वर्ष तक राज्य भोगने के लिए राजा बना दिया। उस चोर ने १२ वर्षों तक राजा बनकर निष्कण्टक राज्य प्राप्त किया तथा अनेक सत्कर्मो को किया। पुनः मृत्योपरान्त भगवान् चित्रगुप्त ने उसके सत्कर्मों को देखते हुये उसे विष्णुलोक भेज कर 'मोक्ष' प्रदान किया। इस प्रकरण से स्पष्ट

हो जाता है कि मनुष्यों के आयु सहित सभी प्रकार के शुभ और अशुभ कर्मों का निर्धारण भगवान् चित्रगुप्त के द्वारा ही किया जाता है।

इसी पुराण में शिव-राघव संवाद नामक अध्याय दिया गया है। इसमें राम ने कष्टों से मुक्त होने के लिये शम्भू से पूछा कि भगवान् चित्रगुप्त ने मस्तक पर जो दुर्भाग्य लिख दिया है, उसको किस तरह मिटाया जा सकता है, तब शम्भू ने बताया कि शिव की भक्ति करके इसे परिवर्तित किया जा सकता है। इस प्रकरण से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् चित्रगुप्त के लिखे को परिवर्तित करने की शक्ति महादेव सहित, विष्णु तथा ब्रह्मा को ही है।

शिवपुराण में स्वर्ग का स्वरूप दिया गया है, जहाँ भगवान् चित्रगुप्त स्वर्ग के दक्षिण भाग में स्थित यमलोक में यमराज के साथ दृष्टिगत हुए हैं। यहीं से मृत्युलोक का संचालन भगवान् चित्रगुप्त के द्वारा किया जाता है।

इसी पुराण में नरक लोक का वर्णन भी दिया गया है, जहाँ भगवान् चित्रगुप्त ने न्याय करते हुए पापी राजाओं को दण्डित किया है। इनके द्वारा किये गये न्यायिक आदेशों का पालन यमराज द्वारा कराया गया है। यहाँ भगवान् चित्रगुप्त यमलोक के न्यायाधीश एवं दण्डाधिकारी के रूप में विद्यमान हैं।

[यह प्रकरण अत्यन्त महत्वपूर्ण होने के कारण ब्रह्मपुराण तथा भविष्यपुराण में भी दिया गया है।]

नारदीयपुराण में धर्मकीर्ति नामक क्षत्रिय राजा ने भगवान् चित्रगुप्त की कृपा से विष्णुलोक को प्राप्त किया, वही राजा भगवान् चित्रगुप्त की कृपा से गालव ऋषि का पुत्र भद्रशील हुआ।

मत्स्यपुराण में भगवान् चित्रगुप्त केतु ग्रह के अधिदेवता के रूप में दृष्टिगत हुए हैं।

गरुडपुराण में दर्शाया गया है कि प्रत्येक मनुष्य भगवान् चित्रगुप्त के वचनों (आदेशों) से नरक को भोगता है। भगवान् चित्रगुप्त द्वारा मनुष्यों को उसके पाप कर्म के अनुसार दण्ड स्वरूप पशु तथा पक्षियों की योनि निर्धारित करके मृत्युलोक में भेज दिया जाता है।

इस पुराण में यह भी बताया गया है कि भगवान् चित्रगुप्त का स्थायी निवास यमलोक में है। यमलोक में स्थित उनके महल का वर्णन दिया गया है। यहीं से प्रत्येक प्राणियों के आयु, पाप तथा पुण्यों की गणना भगवान् चित्रगुप्त निरन्तर किया करते रहते हैं।

विष्णुधर्मोत्तरपुराण में यमराज तथा चित्रगुप्त के मूर्ति के निर्माण का वर्णन दिया गया है। इसमें बताया गया है कि भगवान् चित्रगुप्त की मूर्ति यमराज के दायें भाग में बनायी जाय। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि राजा के दायें भाग में बैठने का अधिकार सिर्फ राजा से उच्चस्थ लोगों का होता है जैसे—माता-पिता, धर्मगुरू/राजगुरू इत्यादि। यहाँ भी भगवान् चित्रगुप्त के धर्माधिकारी होने की पुष्टि होती है।

पद्मपुराण के उत्तर खण्ड के 'कायस्थानांसमुत्पत्ति' नामक अध्याय में भगवान् चित्रगुप्त की उत्पत्ति, विवाह, एवं उनके १२ पुत्रों की उत्पत्ति तथा पुत्रों के संस्कार का वर्णन दिया गया है। यह ६३ श्लोकों में संकलित है।

इस अध्याय के वर्णनानुसार चित्रगुप्त की उत्पत्ति सृष्टि के जन्मदाता ब्रह्मा की काया से हुई थी, इसी कारण भगवान् चित्रगुप्त को 'कायस्थ' कहा जाता है। इनका विवाह इस मन्वन्तर में वर्ण व्यवस्था के जन्मदाता ब्रह्मर्षि वैवस्वत मनु की ४ कन्याओं तथा नागों (नागर ब्राह्मणों) की ८ कन्याओं से हुआ, तत्पश्चात् इन १२

पत्नियों से १२ देवपुत्र उत्पन्न हुए। ब्रह्मा एवं सावित्री (सरस्वती) ने स्वयं जाकर अपने १२ पौत्रों को संस्कार हेतु १२ ऋषियों को सौंपा तथा आदेश दिया कि चित्रगुप्त के पुत्रों को अपने पुत्रों के समान शिक्षा देना। १२ ऋषियों ने चित्रगुप्त के पुत्रों को अपने पुत्रों के समान ब्राह्मण वर्ण की शिक्षा दी थी। इन १२ ऋषियों से शिक्षित होकर चित्रगुप्त के पुत्र 'द्वादशगौडब्राह्मण' कहे गये। इस अध्याय के ६२-६३ वें श्लोक में कायस्थों के कर्म का वर्णन दिया गया है। यथा—

द्विजातीनां यथादानं यजनाध्ययने तथा। कर्तव्यानीति कायस्थैः सदा तु निगमान् लिखेत्। पुराणपाठकाः सर्वे सर्वे तत्स्मृतिशंसकाः। आतिथ्यं श्राद्धकर्तृत्वं सर्वेषां धर्मसाधनम्।

द्विजों के समान **कायस्थ गौडों के लिये पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञकरना-यज्ञकराना, दानदेना-दानलेना तथा वेद-पुराणों को लिखना,** पुराणों का पाठ, स्मृतियों का पालन करना, आतिथ्य सेवा, श्राद्ध, तथा सभी प्रकार के धार्मिक कर्म को करना निश्चित किया गया है।

जन मानस में भगवान् चित्रगुप्त एवं उनके वंशज द्वादश कायस्थों के विषय में अत्यन्त ही भ्रामक स्थिति व्याप्त है। समाज भगवान् चित्रगुप्त को यमराज का लेखा-जोखा रखने वाला मुंशी समझता है, जबकि पुराणों में भगवान् चित्रगुप्त 'धर्माधिकारी' 'लोकशासक' 'विप्रेन्द्र' तथा 'ऋषियों के नियन्ता' के रूप में स्थापित हैं। ज्ञात हो कि धर्माधिकारी धर्म-अधर्म को जानने वाले 'न्यायाधीश' को कहते हैं। पुराणों के अनुसार प्रत्येक प्राणी भगवान् चित्रगुप्त के द्वारा ही नियन्त्रित है। यही प्रत्येक मनुष्यों के आयु को निर्धारित करने वाले देवता हैं साथ ही मनुष्यों को सुख एवं दुःख देने वाले देवता भी हैं। भगवान् चित्रगुप्त के न्यायिक आदेशों का पालन यमराज कराते हैं जिसका वर्णन अनेक पुराणों में विद्यमान है।

इसी प्रकार भगवान् चित्रगुप्त के वंशज कायस्थ 'पंचगौड ब्राह्मण' में 'गौडब्राह्मण' हैं। यह भारत के १० उच्च ब्राह्मणों में से एक हैं। इन कायस्थों के विषय में भी समाज में बहुत सी भ्रान्तियाँ विद्यमान है। बिना 'द्वादश गौडब्राह्मणों' के उत्पत्ति को पढ़े ही लोग चित्रगुप्त वंशीय कायस्थों पर अनर्गल टीका-टिप्पणी करने लगते हैं। अज्ञानियों ने इन देवपुत्र कायस्थों को शूद्र तक कह डाला है।

भगवान् चित्रगुप्त ९ ग्रहों में से एक केतु ग्रह के अधिदेवता हैं। प्रत्येक पूजन में ९ ग्रहों की स्थापना की जाती है। सनातन धर्मावलम्बियों के अन्त्येष्टि कार्यक्रम में भगवान् चित्रगुप्त तथा यमराज का पूजन अनिवार्य होता है। इस पूजन में इनसे यह प्रार्थना की जाती है कि हे! भगवान् चित्रगुप्त आप मेरे पितृ को मुक्त करें तथा नरक भोगने से बचायें।

अत्यन्त दुःख की बात ये है कि जिस भगवान् चित्रगुप्त की कृपा से हम सभी ब्राह्मण प्रतिक्षण उत्तम जीवन जी रहे हैं, उस महान देव के विषय में हमें ज्ञान ही नहीं है, फलस्वरूप हम अज्ञानता में इन्हें यमराज का लेखा-जोखा रखने वाला कर्मचारी समझते हैं।

वेद तथा पुराणों में भगवान् चित्रगुप्त को आयुदाता, धनदाता तथा ज्ञानदाता कहा गया है। इनकी नियमित आराधना करके प्रत्येक सनातनी मनुष्य इस संसार में विद्यमान सभी भोगों को भोग कर मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

नेत्र बन्द कर लेने से सत्यता विलुप्त नहीं होती है, सत्यता सदैव विद्यमान रहती है। इसी अज्ञानता रूपी

अन्धकार को नष्ट करके सत्यता से अवगत हो कर ज्ञान रूपी प्रकाश की तरफ अग्रसर करने के लिए इस पवित्र ग्रन्थ **'लोकशासकमहाकालचित्रगुप्तः तथा च ब्रह्मकायस्थगौड़ब्राह्मणाः'** का प्रकाशन किया जा रहा है, जिससे कि प्रत्येक सनातनी मनुष्य भगवान् चित्रगुप्त के वैदिक तथा पौराणिक स्वरूप के सत्यता एवं शक्तियों से अवगत होकर सद्मार्ग पर चलकर अपने जीवन को सुखमय बना सकें।

इस ग्रन्थ में भगवान् चित्रगुप्त का मंत्र भी प्रकाशित किया जा रहा है, जिससे कि सभी सनातनी मनुष्य भगवान् चित्रगुप्त की नियमित उपासना करके यश, धन, ज्ञान तथा पूर्णायु को प्राप्त करते हुये एहिलौकिक में सुख तथा पारलौकिक में सद्गति प्राप्त करें।

आप यह जान लें कि भगवान् चित्रगुप्त का आराधक कभी भी नरक नहीं भोगता है। अनजाने में किये गये उसके सभी पाप भगवान् चित्रगुप्त की नियमित उपासना से नष्ट हो जाते हैं।

भगवान् चित्रगुप्त की उपासना का वर्णन मन्त्र महार्णव एवं मन्त्र महोदधि में दिया गया है। इसमें बताया गया है कि भगवान् चित्रगुप्त अपने उपासक के पापों को नहीं देखते हैं। यह दोनों ग्रन्थ मन्त्र संग्रह में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। इसके अतिरिक्त पुराणों में दिये गये मन्त्रों को भी लोकहित में प्रकाशित किया जा रहा है।

यदि आप भगवान चित्रगुप्त की नियमित उपासना करके स्वयं को उत्कृष्ट बना सकें तो हमारा उद्देश्य पूर्णतया सफल हो जायेगा।

सनातनधर्म ट्रस्ट सनातन सत्य को आपके समक्ष प्रस्तुत करने का निरन्तर प्रयास कर रहा है तथा आगे भी करता रहेगा।

डॉ० इन्द्रजीत शुक्ल
अवकाश प्राप्त 'प्रधानाचार्य'
गोरखनाथ संस्कृत
उच्चतर माध्यमिक विद्यालय,
गोरखपुर, [उ० प्र०]

दो शब्द लेखक की ओर से

मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्। यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्॥

अर्थात् परमानन्द को देने वाले भगवान् विष्णु की हम वन्दना करते हैं। जिनके कृपा से गूँगा बोलने लगता है तथा पंगु गिरि (पर्वत) को पार कर जाता है।

गणाध्यक्ष गणेश, विष्णु-लक्ष्मी, ब्रह्मा-सरस्वती, शिव-शक्ति, कार्तिकेय तथा चित्रगुप्त सनातन धर्म के सर्वोच्च देव हैं। इनके विषय में लिख पाना शीर्षस्थ विद्वानों के भी वश में नहीं है, फिर मैं न तो संस्कृत भाषा का विद्वान हूँ और न तो हिन्दी भाषा का ही। परन्तु यदि परमपिता परमेश्वर की कृपा हो तो प्राणी कुछ भी कर सकता है। सम्भवतः इसी कारण परमपिता परमेश्वर की कृपा से मैं इस पवित्र ग्रन्थ को लिखने में सक्षम हो सका हूँ।

यमलोक में १४ काल (यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर, दध्न, नील, परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र तथा 'चित्रगुप्त') यमों के रूप विद्यमान् हैं। इनमें महाकालचित्रगुप्त ''धर्माधिकारी'' नामक यम हैं तथा यही अन्य यमों के स्वामी हैं। शेष सभी यम इनके आज्ञा पालक हैं। महाकालचित्रगुप्त लोकशासक हैं, ''देवलोक, भूलोक तथा पाताललोक'' पर इन्हीं का शासन चलता है। विष्णु, ब्रह्मा तथा शिव परिवार के अतिरिक्त-देवगुरू बृहस्पति, इन्द्र, यमराज सहित सभी देव भगवान् चित्रगुप्त की आज्ञा का पालन करते हैं। लोक (देवलोक, भूलोक तथा पाताललोक) का विधान ''धर्माधिकारी'' लोकशासक महाकालचित्रगुप्त का ही बनाया हुआ है।

[सनातन धर्म के लोग पूर्णतया भटक चुके हैं, वर्तमान समय में देखा जा रहा है कि सनातनी समाज द्वारा भगवान् चित्रगुप्त एवं यमराज पर चुटकुले बनाकर उपहास करते हुए अपना जीवन नरकगामी बना रहे हैं। लोकशासक महाकालचित्रगुप्त एवं यमराज पर फूहड़ चलचित्र (फिल्म) और धारावाहिक (सीरियल) बनाकर भी उपहास किया जा रहा है और सनातनी समाज को घोर नरक की ओर ढकेला जा रहा है। ये अत्यन्त चिन्ताजनक विषय है। वहीं दूसरी ओर मनगढन्त विचार से चित्रगुप्त एवं यमराज द्वारा मारे गये सन्तों, महापुरुषों एवं पुरूषोत्तमों को जो कि यमलोक जाकर ''धर्माधिकारी'' एवं लोकशासक महाकाल चित्रगुप्त की कृपा से मुक्त हुये हैं, उन्हें ही अपना कल्याणकर्ता देव मान कर पूजन किया जा रहा है।]

कुछ अज्ञानी लोगों ने बिना पुराणों को पढ़े ही लोकशासक महाकालचित्रगुप्त को यमराज का लेखा-जोखा रखने वाला मुंशी प्रचारित करके समाज को भ्रमित किया। इस दुष्प्रचार के कारण वेद तथा पुराणों का अनुवाद भी प्रभावित हुआ है। वेदों में चित्र तथा यम देव का वर्णन है, जो पुराण में चित्रगुप्त तथा यमराज कहे गये है।

पूर्व दुष्प्रचार एवं महाकाल चित्रगुप्त की शक्तियों से अवगत न होने के कारण वेदों के अनुवादकों ने चित्रदेव के अनुवाद की जगह चित्र (तस्वीर) समझ कर अनुवाद कर दिया है। वहीं पुराणों के अनुवादकों ने भी लोकशासक महाकालचित्रगुप्त के लिये अपमानित करने वाले शब्दों का प्रयोग किया है।

जैसा ज्ञान होगा भावार्थ भी वैसा ही होगा, लोकशासक महाकालचित्रगुप्त के शक्ति एवं स्वरूप को ठीक से समझकर वेद तथा पुराणों को पुनः अनुवाद करने की आवश्यकता है, जिससे कि सनातन धर्मी यमलोक

की अनिवार्य भूमिका को जान सकें। इससे धर्म का उत्थान होगा एवं सबका दैविक कृपा से कल्याण होगा।

लोकशासक महाकालचित्रगुप्त का वर्णन वेद एवं पुराणों में वृहद् होने के कारण कुछ अंश ही मूल एवं हिन्दी अनुवाद के साथ इस परमपूज्य ग्रन्थ में दिया गया है।

[इस ग्रन्थ को लिखने का उद्देश्य यमलोक की सशक्त एवं अनिवार्य भूमिका से सनातनी समाज को अवगत कराना है। मरना सबको है, मरकर कोई विष्णुलोक, ब्रह्मलोक तथा शिवलोक जाये या न जाये, मृत्योपरान्त अगले जन्म के निर्माण हेतु यमलोक में सभी को वहाँ के "धर्माधिकारी" एवं लोकशासक महाकालचित्रगुप्त द्वारा अपने कर्मों का फल भोगने जाना ही है।]

ये कदापि न सोचें कि मृत्योपरान्त ही यमलोक की भूमिका है। इस लोक में माता-पिता, पुत्र-पुत्री, बन्धु-बान्धवों की अकाल मृत्यु, पत्नी वियोग, अङ्गहीन होना, कैंसररोग, वातरोग, प्रमेहरोग, हृदयरोग, मस्तिष्करोग, जलोदररोग, यौनरोग जैसे साध्य-असाध्य रोग कुकर्मों का भोग है, जो भगवान् चित्रगुप्त के आदेश से यमदूत ही अकाल मृत्यु तथा रोगव्याधि बनकर हमें दण्ड देते हैं। भगवान् चित्रगुप्त द्वारा प्रदत्त यह दण्ड मनुष्य मृत्युलोक में ही भोगता है।

इसी प्रकार सन्यास, ज्ञानपूरक धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक श्रेष्ठ कार्य भी लोकशासक महाकालचित्रगुप्त की आज्ञा से यमदूत ही देते हैं। इस पवित्रग्रन्थ में ये सभी पौराणिक प्रमाण विद्यमान् हैं, जिसे नचिकेता ऋषि, मुद्गल ऋषि तथा गालव ऋषि के पुत्र भद्रशील ने प्रत्यक्ष देखा था।

परब्रह्मस्वरूप लोकशासक महाकालचित्रगुप्त जैसे महान देवता के विषय में लिख पाना बिना उनकी कृपा के सम्भव ही नहीं है। लोकशासक महाकालचित्रगुप्त के आदेश से मैंने इस ग्रन्थ को पूर्ण करने का प्रयास किया है। यदि यह ग्रन्थ सनातनी समाज को सद्मार्ग की ओर प्रेरित करने में सफल रहा तो हमारा प्रयास सार्थक होगा।

मनोज कुमार श्रीवास्तव
'अध्यक्ष'
सनातनधर्म ट्रस्ट, गोरखपुर [उ० प्र०]

पाठक बन्धुओं से निवेदन!

पाठक बन्धु! यह ग्रन्थ अत्यन्त ही कठिन परिस्थितियों में संकलित किया गया है। लोक कल्याणार्थ गृहस्थ जीवन की व्यस्तता में रहते हुए भी हम सबने बहुमूल्य समय को निकाल कर इस कार्य को सम्पादित किया है। अल्प सुविधा के कारण इस ग्रन्थ के टाईपिंग, प्रूफरीडिंग आदि में अत्यन्त कठिनाईयों का सामना करना पड़ा है। बहुत सावधानी से कार्य किये जाने के बाद भी इसमें प्रूफरीडिंग, टाईपिंग और व्याकरण आदि की त्रुटियाँ रह गयी होंगी। पाठक बन्धु, इसके लिये हम क्षमा प्रार्थी हैं। यदि आपको कोई त्रुटि दृष्टिगत हो तो सनातनधर्म ट्रस्ट गोरखपुर को अवश्य सूचित करें, जिससे कि हम अगले संस्करण में सुधार करके प्रकाशित कर सकें।

प्रकाशक

संदर्भित ग्रन्थों की सूची

ऋग्वेद [F. MAX MULLER] LONDON, HENRY FROWDE, OXFORD UNIVERSITY PRESS WAREHOUSE, AMEN CORNER. 1892.

यजुर्वेद,

ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यम्, सन् १९३८.

विष्णुपुराण,

ब्रह्मपुराण,

शिवपुराण,

पद्मपुराण,

वाराहपुराण,

स्कन्दपुराण,

लिंगपुराण,

बृहन्नारदीयपुराण,

मत्स्यपुराण,

गरुडपुराण,

मार्कण्डेयपुराण,

विष्णुधर्मोत्तरपुराण,

कल्किपुराण,

पुराणपरिशीलन,

मनुस्मृति,

मन्त्रमहार्णव,

मन्त्रमहोदधि,

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण

ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्ड,

जातिभास्कर,

गागाभट्टकृत कायस्थपद्धति,

नित्यकर्म पूजा प्रकाश,

दुर्गासप्तशती,

मेरुतन्त्र,

कामाख्यातंत्र,

काली सिद्धि

ककारादिकालीसहस्त्रनामावली,

गौड़ वंश संदीपिका,

हिन्दुत्व,

पौरोहित्य कर्म-प्रशिक्षक,

आईने अकबरी,

भारत का संविधान,

संविधान सभा के वाद-विवाद,

क्या भूलूँ क्या याद करूँ,

आत्मकथा राजेन्द्र प्रसाद

EPIGRAPHIA INDICA,

htpp//gonda.nic.in/History.htm (1 of 7) 10/16/2013 9:32:40 PM.

DISCOVERY CHANNEL (Truth of Scare, The Best of Hunting)

HISTORY CHANNEL (Ancient Aliens).

राजतरंगिणी।

× × ×

विषय सूची-क्रम

उद्भव खण्ड

पुराण खण्ड

कायस्थ खण्ड

× × ×

॥ उद्भव खण्डः ॥

लोकशासक
महाकाल
चित्रगुप्तः

भगवान् चित्रगुप्त की प्रकट स्थली उज्जैन में स्थित
भगवान् चित्रगुप्त की मूर्ति का चित्र

शिवं ध्यात्वा हरिं स्तुत्वा प्रणम्य परमेष्ठिनम्।
चित्रभानुं च भानुं च नत्वा ग्रन्थमुदीरयेत्॥

शिव का ध्यान, विष्णु की स्तुति, ब्रह्मा को प्रणाम करके, दीप्तिमान्चित्रगुप्त और सूर्य को नमन करके, मैं इस ग्रन्थ का प्रारम्भ कर रहा हूँ।

ईश्वर - नश्वर नहीं हैं,
नश्वर - ईश्वर नहीं हैं।

भगवान् विष्णु
सदाशिव ही साकार रूप में सर्वप्रथम
भगवान् विष्णु हुए।

भगवान् ब्रह्मा
भगवान् विष्णु के कमलनाभि से
साकार रूप में भगवान् ब्रह्मा
उत्पन्न हुए।

भगवान् रुद्र [शङ्कर]
भगवान् ब्रह्मा के क्रोध से साकार रूप
में भगवान् रुद्र [शङ्कर]
उत्पन्न हुए।

भगवान् कायस्थ [चित्रगुप्त]
भगवान् ब्रह्मा की काया से साकार रूप
में भगवान् कायस्थ [चित्रगुप्त]
उत्पन्न हुए।

पितामह ब्रह्मा

पितामही सरस्वती

भगवान् चित्रगुप्त

प्रार्थना

हे परमपिता परमेश्वर चित्रगुप्त, आप पितामह ब्रह्मा तथा पितामही सरस्वती के पुत्र हैं। यह हमारा सौभाग्य है कि हम १२ कायस्थों **नैगम, गौड, श्रीवास्तव, कुलश्रेष्ठ, वाल्मीकि, अस्थाना, अम्बष्ट, कर्ण, सक्सेना, भट्नागर, सूर्यध्वज** तथा **माथुर** के, **परमज्ञानी भगवान् ब्रह्मा** 'दादा' तथा **परमज्ञानी देवी सरस्वती** 'दादी' तथा **स्वयं आप** हमारे 'पिता' हैं। **आप लोकशासक तथा यमलोक के धर्माधिकारी हैं, आप ज्ञान के देवता हैं,** आपके पुत्र होने के कारण हम १२ भाई आदिकाल से अब तक आपके ही ज्ञान के शक्तियों को पाकर मातृभूमि ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व को अपने ज्ञान से प्रकाशित करते हुये, आपके द्वारा दिये गये दायित्वों का पालन सत्यनिष्ठा से करके सनातन धर्म का मान बढ़ा रहे हैं।

हमारी नित्य आपसे प्रार्थना है कि हम कायस्थों पर आप अपनी विशेष कृपा दृष्टि सदैव बनाये रखें, जिससे कि हम आपके ज्ञान की शक्तियों को प्राप्त कर, आपके द्वारा दिये गये दायित्वों का पालन करते हुये आगे भी सम्पूर्ण विश्व को, अपने ज्ञान से प्रकाशित करते रहें। हम अपने कुल, अपने मातृभूमि तथा सनातन धर्म का गौरव सम्पूर्ण विश्व में बढ़ाते रहें। आपकी कृपा से हम मातृभूमि ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व में शान्ति, सद्भावना तथा मानवीय प्रेम को विकसित कर सकें।

मनोज कुमार श्रीवास्तव

अथ चित्रगुप्त ध्यानम्–

किरीटोज्ज्वलं वस्त्रभूषाभिरामं विचित्रासनासीनमिन्दुप्रभास्यम्।
नृणां पापपुण्यानि पत्रे लिखन्तं भजे चित्रगुप्तं सखायं यमस्य॥

मुकुट, कान्तियुक्त श्वेतवस्त्र एवं आभूषणों से सुशोभित विचित्र आसन पर विराजमान, चाँदनी जैसे (श्याम आभा वाले) उज्ज्वल मुख वाले, मनुष्यों के पाप–पुण्य को पत्र पर लिखने वाले, जिनके सहयोगी यमराज हैं उस भगवान् चित्रगुप्त का मैं भजन करता हूँ।

भगवान् चित्रगुप्त का पूजन अनिवार्य क्यों?

वैदिक तथा पौराणिक काल में राजतंत्र था। वह काल बल प्रधान था। बली मनुष्य अपने बल से राजा बनकर शासन करता था। उस काल में **ब्राह्मण** ज्ञान प्रधान, **क्षत्रिय** बल प्रधान तथा **वैश्य** व्यापार द्वारा धन प्रधान कार्य किया करते थे। **उस काल में केवल ब्रह्मकायस्थ ही ब्राह्मणकर्म पठन-पाठन, यजन-याजन तथा दान-प्रतिग्रह के साथ वेद तथा पुराणों के लेखन का कार्य भी किया करते थे।**

शेष सभी जातियाँ पठन-पाठन का कार्य कण्ठस्थ करके श्रुति एवं स्मृति के आधार पर किया करती थीं। **इसे आज भी आप संस्कृत पाठशाला में विद्यार्थियों को वेद-पुराणों के पाठों को कण्ठस्थ करते हुए देख सकते हैं।**

ब्राह्मणवर्ण के लोग **ज्ञान** प्राप्त करने के लिये **ब्रह्मा-सरस्वती** तथा **चित्रगुप्त** की उपासना करते थे क्योंकि इन्हें **ज्ञानदायक** कहा गया है। **क्षत्रियवर्ण** के लोग **बल** प्राप्त करने के लिये **शिव, दुर्गा** तथा **काली** की उपासना करते थे क्योंकि इन्हें **शक्तिदायक** कहा गया है। **वैश्यवर्ण** के लोग **धन** प्राप्त करने के लिये **गणेश** तथा **लक्ष्मी** की उपासना करते थे क्योंकि इन्हें **धनदायक** कहा गया है। इस उपासना के कारण वे सभी अपने-अपने उद्देश्यानुसार इष्ट की कृपा प्राप्त करते थे।

समय के परिवर्तन के साथ शिक्षा ग्रहण करने का स्वरूप भी बदल गया। अब सभी शिक्षाएँ लेखन पर आधारित हो गई हैं। हम चाहे **ज्ञानपरक** (शिक्षक, न्यायाधीश, वैज्ञानिक, IAS, PCS), **शक्तिपरक** (IPS, PPS, NDA, CDS) तथा **व्यापारपरक** (MBA, PO, CA) इत्यादि का रोजगार प्राप्त करना चाहते हों, यह लेखन शक्ति के बिना सम्भव ही नहीं है।

सनातन धर्म के अनुसार भगवान् चित्रगुप्त ऐसे देव हैं, जो दीर्घायु, ज्ञान, लिपि एवं **लेखन की शक्ति देने वाले हैं।** परन्तु सनातन समाज के अधिकांश लोग अपनी अज्ञानता के कारण **ज्ञान, लिपि** एवं **लेखन** की दैविक कृपा प्राप्त करने के लिये **भगवान् चित्रगुप्त** की आराधना नहीं करते हैं। जिसके परिणाम स्वरूप बहुत से लोग पूर्वजन्म के सत्कर्म के कारण विद्वान होने पर भी अपने ज्ञान को लिपिबद्ध नहीं कर सके। **भगवान् चित्रगुप्त की कृपा न प्राप्त होने के कारण इस सृष्टि में ऐसे असंख्य ज्ञानी महापुरूष उत्पन्न हुए और अपना ज्ञान अपने साथ लेकर स्वर्ग को चले गये। संसार में न उनका नाम है और न उनकी उत्कृष्ट कृतियाँ ही हैं।**

सनातनी समाज के लोग भगवान् चित्रगुप्त को केवल कायस्थों का देव जानते हैं। उन्हें ज्ञात नहीं है कि भगवान् चित्रगुप्त ब्रह्माजी के पुत्र तथा लोकशासक हैं और उनका शासन **देवलोक, मृत्युलोक** तथा **पाताललोक** सभी पर चलता है। **भगवान् चित्रगुप्त ही लोक में जीवन-मरण, यश-अपयश, दरिद्रता-सम्पन्नता को देने वाले हैं।**

देवलोक के **गुरु बृहस्पति, देवराज इन्द्र** तथा **यमराज** भी **भगवान् चित्रगुप्त के आदेशों का पालन करने वाले हैं।**

भगवान् चित्रगुप्त की कृपा से ही **ब्राह्मण कुल में** नारायण भक्त प्रह्लाद के पौत्र **'महादानी राजा बलि' उत्पन्न हुये।** इन सबका वर्णन **पद्मपुराण** तथा **स्कन्दपुराण** में विद्यमान है।

यद्यपि भगवान् चित्रगुप्त कायस्थों के पूर्वज हैं, तथापि यह सभी सनातनियों के देव हैं।

सनातन धर्म के अनुसार हम भगवान् चित्रगुप्त द्वारा ही इस मृत्युलोक में भेजे गये हैं तथा मृत्योपरान्त अपने कर्मों का फल भोगने के लिये भगवान् चित्रगुप्त के पास ही जायेंगे। इसीलिये **प्रत्येक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य** तथा **शूद्र** के **श्राद्ध में पितरों की मुक्ति के लिये भगवान् चित्रगुप्त का पूजन अनिवार्य होता है**।

प्रायः देखा जा रहा है कि सनातनी समाज के लोग नित्यपूजन केवल शक्ति दायक देवों का ही कर रहे हैं। जिसके फलस्वरूप हमारा समाज ज्ञान से वंचित होकर संघर्ष कर रहा है। यदि हम **शक्तिदायक** देव/देवी **(शिव, विष्णु, सूर्य, दुर्गा, काली)** के साथ **ज्ञानदायक** देव/देवी **(ब्रह्मा, सरस्वती तथा चित्रगुप्त)** का पूजन करें तो **ज्ञान** एवं **शक्ति** का सामंजस्य होने के कारण हमारा जीवन उत्कृष्ट हो सकेगा।

जो मनुष्य दीर्घायु, ज्ञान तथा लेखन की शक्ति को बढ़ाकर संसार में यशस्वी होना चाहते हैं, वह भगवान् चित्रगुप्त का नित्यपूजन अवश्य करें। भगवान् चित्रगुप्त की कृपा से अवश्य ही आप **ज्ञान** तथा **लेखन** की शक्ति में पारंगत होकर इस समाज में अग्रणी होंगे तथा अपने ज्ञान रूपी प्रकाश से समाज को प्रकाशित करेंगे।

× × ×

सनातन धर्म

जो धर्म सदैव से विद्यमान है, वही सनातन है। जैन, बौद्ध, ईसाई और इस्लाम के पहले भी जो धर्म था वह सनातन है। इस धर्म के दो आधार हैं–वेद तथा पुराण। **पुराण परिशीलन** में कहा गया है कि ४ वेद तथा १८ पुराण दोनों ही वेद हैं।

पुराण परिशीलन के अनुसार वेद दो प्रकार के हैं: १–यज्ञ वेद, २—पुराण वेद।

१–यज्ञ वेद—यज्ञ वेद चार प्रकार के हैं। १–ऋग्वेद, २–यजुर्वेद, ३–सामवेद और ४–अथर्ववेद। इन वेदों में अग्नि, अरुण, सूर्य, इन्द्र, केतु, गायत्री, बृहस्पति, ब्रह्मा, सरस्वती, यम, चित्र, रुद्र, वायु, विष्णु, शनि, सोम, शुक्र इत्यादि देवों का वर्णन तथा यज्ञीय प्रयोग हेतु मंत्र दिया गया है। वेद यज्ञीय मंत्रों का संग्रह है।

वेद यज्ञीय मंत्रों का संग्रह है जबकि पुराण उन मंत्रों का प्रयोग एवं विधि है।

२–पुराण वेद—पुराण वेद १८ प्रकार के कहे गये हैं। १–ब्रह्मपुराण, २–विष्णुपुराण, ३–वायुपुराण, ४–पद्मपुराण, ५–भागवतपुराण, ६–नारदीयपुराण, ७–मार्कण्डेयपुराण, ८–अग्निपुराण, ९–भविष्यपुराण, १०–ब्रह्मवैवर्तपुराण, ११ लिङ्गपुराण, १२–वाराहपुराण, १३–स्कन्दपुराण, १४–वामनपुराण, १५–कूर्मपुराण, १६–मत्स्यपुराण, १७–गरुडपुराण तथा १८–ब्रह्माण्डपुराण।

१८ पुराण अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये वेद की कुन्जी हैं।

वेद और पुराण साथ ही थे। आप ध्यान दें कि वेदों में अग्नि, अरुण, सूर्य, इन्द्र, केतु, गायत्री, बृहस्पति, ब्रह्मा, सरस्वती, यम, चित्र, रुद्र, वायु, विष्णु, शनि, सोम, शुक्र इत्यादि देवों का वर्णन दिया गया है, परन्तु इन देवों का स्वरूप क्या है? उनकी शक्तियाँ क्या हैं? यज्ञ में उनकी भूमिका क्या है? उनके पूजन से मनुष्यों को लाभ क्या है? इत्यादि का वर्णन वेदों में विद्यमान् नहीं है।

☞ यजुर्वेद के कुछ मंत्रों पर ध्यान दें—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।

(यजुर्वेद, अध्याय ३/६०)

सुगन्ध युक्त तथा अन्नादि की पुष्टि (समृद्धि) को बढ़ाने वाले **त्रिनेत्रशिव** को हम भजन करते हैं। हे त्र्यम्बक पके हुए खरबूज के समान हम मृत्यु बन्धन से छूट जायें॥ ३/६०॥

भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। (यजुर्वेद, अध्याय ३६/३)

भूः भुवः स्वः। वरणीय **सवितादेव** के उस तेज को हम धारण करते हैं। वह हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग में प्रेरित करें॥ ३६/३॥

☞ प्रथम मंत्र में त्रिनेत्रशिव कौन हैं? ये कैसे उत्पन्न हुए? उनका स्वरूप क्या है? इनकी शक्तियाँ क्या हैं? इनके पूजन का वृहत् फल क्या है? इसका वर्णन वेद में नहीं है।

☞ द्वितीय मंत्र में सवितादेव कौन हैं? ये कैसे उत्पन्न हुए? उनका स्वरूप क्या है? इनकी शक्तियाँ क्या हैं? इनके पूजन का वृहत् फल क्या है? इसका वर्णन भी वेद में नहीं है।

जबकि त्र्यम्बक, सवितादेव (सूर्य), सोम, बृहस्पति, रुद्र, यम तथा चित्र इत्यादि देवों का सम्पूर्ण परिचय

अष्टादश पुराणों में मिलता है। जैसे—

त्र्यम्बक — त्र्यम्बक **रुद्र (शंकर)** को कहते हैं। ये भगवान् ब्रह्मा के क्रोध से उत्पन्न हुए हैं।

चित्र — **चित्र (चित्रगुप्त)** को कहते हैं, ये ब्रह्मा ही काया से उत्पन्न हुए हैं तथा सृष्टि के नियन्ता हैं।

सवितादेव — **सवितादेव (सूर्य)** ब्रह्माजी से उत्पन्न **मरीचि** ऋषि के पौत्र हैं।

सोम — **सोम** ब्रह्माजी से उत्पन्न **अत्रि** ऋषि के पुत्र हैं।

बृहस्पति — **बृहस्पति** ब्रह्माजी से उत्पन्न **अंगिरा** ऋषि के पुत्र हैं।

यम — **यम-सूर्य** के पुत्र हैं।

☞ ऋग्वेद के दशम मण्डल, सूक्त ९० में ही ४ वर्णों की चर्चा है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।

(ऋग्वेद, मंडल १०, सूक्त ९०/१२)

विराटपुरुष (भगवान् ब्रह्मा) का मुख ब्राह्मण था, दोनों भुजाएँ क्षत्रिय हुईं, उनकी दोनों जंघाएँ वैश्य हुईं और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुये॥ ९०/१२॥

ऋग्वेद में चार वर्णों का उल्लेख होना प्रमाणित करता है कि वर्ण व्यवस्था वैदिक काल से ही थी तथा **मनुस्मृति** इत्यादि अष्टादश स्मृतियाँ भी उस काल में विद्यमान थीं, क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य इत्यादि वर्ण क्या हैं? इनका कर्म क्या है? सनातन समाज के **गर्भाधान** से **अन्त्येष्टि** तक का संस्कार क्या है? किस वर्ण का संस्कार किस प्रकार होगा? भक्ष्याभक्ष्य क्या हैं? दण्डादि का क्या विधान है? **इसका बोध बिना स्मृतियों के सम्भव ही नहीं है।**

इसी प्रकार वैदिक काल में पुराण भी विद्यमान थे, क्योंकि बिना पुराण के यज्ञ सम्भव ही नहीं था। वेद में वर्णित देव कौन हैं? इनकी शक्तियाँ क्या हैं? यजमान को यज्ञ का क्या फल प्राप्त होगा? यज्ञ का विधान क्या है? यज्ञ कराने का अधिकारी कौन है? ये वर्णन किसी वेद में नहीं है। इसका व्याख्यान केवल पुराणों में ही है। प्रश्न यह उठता है कि क्या वैदिक काल में लोगों को देवों के विषय में ज्ञान नहीं था? क्या उस काल में बिना विधि विधान के ही यज्ञ होते थे? क्या उस काल में यज्ञ सभी वर्णों के लोग कराते थे? जिस वैदिक काल में मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने मन्त्रों को देखा, जिनका प्रयोग आज भी पूर्णतया प्रामाणिक हैं, क्या उस काल में सभी अल्प ज्ञानी थे? ऐसा कदापि नहीं है।

पूर्वकाल में सभी यज्ञ, संस्कार इत्यादि **श्रुति-स्मृति से वाचन क्रिया द्वारा** होती थी। **यद्यपि वेदों के लिखित साक्ष्य पुराण से पुराने हों तो भी स्मृति, पुराण इत्यादि धार्मिक व्यवस्था को नवीन कहना अनुचित होगा।**

ऋग्वेद का भाष्य **सायणचार्य** ने पुराणों के आधार पर किया है, जिसे **फादर मैक्समूलर** ने लंदन से मुद्रित कराया था, फादर मैक्समूलर द्वारा मुद्रित ऋग्वेद की प्रामाणिकता एवं मान्यता सम्पूर्ण विश्व में है। इसी प्रकार **आदिशंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र अध्याय-३, पाद-१, के सूक्त-१३ से सूक्त-१६ का भाष्य पुराण के आधार पर करते हुए चित्रगुप्तादि यमों को ७ रौरव आदि नरकों का अधिष्ठाता बताया है।**

श्रुति-स्मृति से चली आ रही सनातनी परम्परा में—वेद, स्मृति तथा पुराण आदि धार्मिक ग्रन्थों की रचनायें कब की गई और ये सृष्टि पर कब से विद्यमान थीं? इसका निर्णय लिखित साक्ष्य के आधार पर नहीं किया जा सकता है।

यज्ञ के मंत्र **वेद से**—सनातनी १६ संस्कार एवं अनुशासन **स्मृतियों से**—यज्ञीय विधि एवं काम्य प्रयोग आदि **पुराणों से** हैं। वेदों के मंत्र उसी रूप में विद्यमान हैं, परन्तु पुराणों में वैदिक से लेकर नवीन विषयों का भी समावेश हुआ। समय-समय पर नवीन घटनाओं को भी जोड़ा गया, क्योंकि पुराण सनातन धर्म का पुराना इतिहास है।

लिखित पाण्डुलिपि के आधार पर इतिहासकारों का मत है कि वेद प्राचीन तथा पुराण और स्मृतियाँ नवीन हैं, परन्तु ये सत्य नहीं है। इतिहासकारों ने सनातनी सभ्यता को विभाजित करके वैदिककाल तथा पौराणिककाल का नाम दिया, जबकि वेद की पाण्डुलिपि एवं पुराण की पाण्डुलिपि सनातनी सभ्यता का लिखित रूप में साक्ष्य मात्र है। **श्रुति-स्मृति से चली आ रही हमारी सनातनी परम्परा को किसी काल में बाँध कर गणना करना सम्भव ही नहीं है।** इसे वैदिककाल तथा पौराणिककाल का नाम देकर प्राचीन एवं नवीन कहना उचित नहीं होगा।

☞ **दुर्गा, काली, तारा, षोडषी** तथा **बगलामुखी** जैसी **महाशक्तिशाली देवियाँ** पौराणिक हैं। **दुर्गा** तथा **काली** का प्रत्यक्ष दर्शन अनेक महात्माओं ने किया है। **ये पुराणों की सत्यता का अकाट्य प्रमाण है।**

सनातन धर्म के पूजा-पाठ एवं त्यौहार भी पौराणिक ही हैं। वासन्तिक नवरात्र, शारदीय नवरात्र, दीपावली जैसे अनेकों महत्वपूर्ण त्यौहार पुराणों से ही हैं। पुराणों की प्रामाणिकता पर किसी भी प्रकार का कुतर्क करके प्रश्न चिन्ह उठाना सनातन धर्म को ध्वस्त करना तथा धर्म विरुद्ध कार्य है।

जो दैविक है वही वैदिक है, जो वैदिक है वही याज्ञिक है और जो याज्ञिक है वही वैदिक है। **जो-जो इससे शाखायें निकलीं और जिस-जिस ने इसको आत्मसात किया वही 'पुराण' है।**

वेद के समान ही पुराण भी प्रामाणिक हैं। समयानुसार पौराणिक कथाओं में यत्र-तत्र थोड़ा अन्तर देखने को मिलता है परन्तु सार एक ही है।

× × ×

सनातनधर्म साकार रूप में विद्यमान् है

सदाशिव निराकार प्रकृति रूप में विद्यमान् हैं, जो सर्वत्र कण-कण में व्याप्त हैं, उन्होंने जगत के कल्याण हेतु स्वयं को साकार करके विष्णु रूप में उत्पन्न किया, विष्णु ने ब्रह्मा को, ब्रह्मा ने शङ्कर, चित्रगुप्त, ऋषि, मनु, सनकादि को उत्पन्न किया। सम्पूर्ण जगत में सदाशिव साकार रूप में विद्यमान् होकर आदिकाल से अनन्त की ओर निरन्तर चलायमान हैं, सम्पूर्ण जगत क्रियाशील है।

सम्पूर्ण जगत साकार रूप में ही विद्यमान् है, **सभी प्राणी एवं उन प्राणियों के नियन्ता स्थूल अथवा चैतन्य रूप में साकार ही हैं।**

लोक में विद्यमान जो भी प्राणी हैं, वे विष्णु से उत्पन्न ब्रह्मा की ही प्रजा हैं। चाहे देवकुलीन ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मण हों अथवा ऋषिकुलीन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इत्यादि हों, सभी ब्रह्मा की ही प्रजा हैं।

सृष्टि में प्राणियों का जन्म, पालन तथा संहार साकार रूप से ही किया जा रहा है, ब्रह्मलोक, विष्णुलोक तथा शिवलोक गमन, नरकलोक का दण्ड, पशु, पक्षी से लेकर मनुष्य योनि का भोग साकार रूप द्वारा ही

देय है। परब्रह्मस्वरूप विष्णु, ब्रह्मा, शिव तथा चित्रगुप्त की कृपा भी साकार रूप में ही है।

दृष्य प्राणी आकाश, वायु, धरती, अग्नि तथा जल द्वारा निर्मित हैं। जो प्राणी आकाश तथा वायु तत्व द्वारा निर्मित हैं, उन्हें भौतिक नेत्रों से देखना सम्भव नहीं है, जबकि आकाश, वायु, धरती, अग्नि तथा जल द्वारा निर्मित प्राणी को हम भौतिक नेत्रों से आसानी से देख सकते हैं। **जिन परब्रह्मस्वरूप विष्णु, ब्रह्मा, शिव तथा चित्रगुप्त को, हम अपने तपोबल की कमी के कारण दिव्य दृष्टि के अभाव में प्रत्यक्ष नहीं देख सकते उसे अस्तित्व रहित अथवा निराकार कहकर भ्रमित विवेचना करने से हमें उनकी कृपा नहीं मिलेगी, इन परब्रह्मों की कृपा के अभाव में हमारा जीवन नरकगामी (कष्टकारी) होगा। विष्णु, ब्रह्मा, शिव तथा चित्रगुप्त, साकार रूप में हैं, ये आकाश तथा वायु तत्व में रहकर सदैव विद्यमान् हैं। आप इन्हें तपोबल से प्रत्यक्ष आज भी देख सकते हैं।** इस लोक में अनेक तपस्वी मनुष्यों ने अपने तपोबल से इन्हें देखा और अपने जीवन को कृतार्थ किया।

आदि काल के ऋषि-महर्षि से लेकर सन् ७८८ में जन्में आदिशङ्कराचार्य तक सभी ने साकार रूप को स्वीकारा है। आदिशङ्कराचार्य ने ब्रह्मसूत्र के अध्याय-३, पाद-१ के १३ से १६ सूक्त में लिखा है कि प्राणी अपने पाप कर्म का भोग करने के लिये यमलोक को जाता है, जहाँ रौरव आदि ७ नरक हैं, वहाँ के अधिष्ठाता चित्रगुप्तादि यम हैं। प्राणी यम की यातना से शुद्ध होकर पुनः सृष्टि में जन्म लेता है। आदिशङ्कराचार्य ने पौराणिक आख्यान एवं यमराज, वैवस्वत तथा चित्रगुप्त आदि यमों के अस्तित्व को स्वीकारा है। आदिशङ्कराचार्य भी सनातनधर्म के साकार रूप में विद्यमान् परब्रह्मों की उपासना के प्रबल प्रवर्तक थे। साकार के बिना निराकार की कल्पना हो ही नहीं सकती।

जैसे—यदि **ब्रह्मा अस्तित्व में हैं या थे,** तभी उनसे **ऋषि, सनकादि, रुद्र [शङ्कर]** तथा **चित्रगुप्त** उत्पन्न हुये और तभी लोक में **ऋषि से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य** और **चित्रगुप्त से उत्पन्न ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मण उत्पन्न हुये।**

यदि हम ब्रह्मा आदि परब्रह्मस्वरूप को काल्पनिक मान लें तो हमारी उत्पत्ति ही संदेहास्पद हो जायेगी, जब ब्रह्मा काल्पनिक हैं तो पुराणों में विद्यमान् ब्रह्मा से उत्पन्न नारद, पुलह, क्रतु आदि १० ऋषि, शङ्कर और चित्रगुप्त आदि की उत्पत्ति भी झूठी होगी, ऋषि से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और चित्रगुप्त से उत्पन्न ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मणों की उत्पत्ति भी झूठी होगी अर्थात सनातनधर्म ही झूठा हो जायेगा।

☞ सत्यता ये है कि जो सनातनधर्म से इतर धर्म के लोग हैं, वे ही निराकार की बात करके समाज को भ्रमित कर अपने को उत्तम कहते हैं। **इनके अतिरिक्त कुछ पापी सनातनी भी हैं जो अपने पापों को सही सिद्ध करने के लिये दूसरे धर्म का उदाहरण देते हैं।**

सनातनी बन्धु! साकार रूप में परब्रह्मस्वरूप विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र [शङ्कर], चित्रगुप्त सहित ऋषि, देव तथा दानवों की उत्पत्ति आगे दी जा रही है—

सनातन धर्म के देव, ऋषि, मनु तथा दानवों की साकार रूप में उत्पत्ति

भगवान् चित्रगुप्त के उद्भव, स्वरूप एवं शक्तियों को समझने से पूर्व सनातन धर्म के परब्रह्मस्वरूप विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र [शङ्कर], चित्रगुप्त तथा "ऋषि, देव, मनु, दानवों" आदि के उद्भव को जानें—

भगवान् विष्णु की उत्पत्ति

☞ सनातन धर्म के अनुसार सर्वप्रथम क्षीर सागर में शेषनाग पर शयन करते हुए **'विष्णुजी'** प्रकट हुये—

उदाप्लुतं विश्वमिदं तदाऽऽसीद् यन्निद्रयामीलितदृङ् न्यमीलयत्।
अहीन्द्रतल्पेऽधिशयान एकः कृतक्षणः स्वात्मरतौ निरीहः॥

(श्रीमद्भागवत महापुराण, स्कन्द-३, श्लोक १०)

सृष्टि के पूर्व सम्पूर्ण विश्व जल में डूबा हुआ था। उस समय एक मात्र श्रीनारायणदेव शेषशय्यापर पौढ़े हुए थे। वे अपनी ज्ञान शक्ति को अक्षुण्ण रखते हुए ही, योग निद्रा का आश्रय ले अपने नेत्र मूँदे हुए थे। सृष्टि कर्म से अवकाश लेकर आत्मानन्द में मग्न थे। उनमें किसी भी क्रिया का उन्मेष नहीं था॥

× × ×

भगवान् विष्णु के कमलनाभि से भगवान् ब्रह्मा की उत्पत्ति

☞ उनके बाद विष्णुजी के कमल नाभि से 'ब्रह्माजी' उत्पन्न हुये—

तस्यार्थसूक्ष्माभिनिविष्टदृष्टेरन्तर्गतोऽर्थो रजसा तनीयान्।
गुणेन कालानुगतेन विद्धः सूष्यंस्तदाभिद्यत नाभिदेशात्॥

जिस समय भगवान् की दृष्टि अपने में निहित लिंग शरीरादि सूक्ष्म तत्त्व पर पड़ी, तब वह कालाश्रित रजोगुण से क्षुभित होकर सृष्टि रचना के निमित्त उनके नाभि देश से बाहर निकला।

स पद्मकोशः सहसोदतिष्ठत् कालेन कर्मप्रतिबोधनेन।
स्वरोचिषा तत्सलिलं विशालं विद्योतयन्नर्क इवात्मयोनिः॥

कर्म शक्ति को जाग्रत् करने वाले काल के द्वारा विष्णु भगवान् की नाभि से प्रकट हुआ वह सूक्ष्म तत्त्व कमल कोश के रूप में सहसा ऊपर उठा और उसने सूर्य के समान अपने तेज से उस अपार जल राशि को देदीप्यमान कर दिया।

तल्लोकपद्मं स उ एव विष्णुः प्रावीविशत्सर्वगुणावभासम्।
तस्मिन् स्वयं वेदमयो विधाता स्वयम्भुवं यं स्म वदन्ति सोऽभूत॥

सम्पूर्ण गुणों को प्रकाशित करने वाले उस सर्वलोकमय कमल में वे विष्णु भगवान् ही अन्तर्यामी रूप से प्रविष्ट हो गये। तब उसमें से बिना पढ़ाये ही स्वयं सम्पूर्ण वेदों को जानने वाले साक्षात् वेदमूर्ति ब्रह्माजी प्रकट हुए, जिन्हें लोग स्वयम्भू कहते हैं।

तस्यां स चाम्भोरुहकर्णिकायामवस्थितो लोकमपश्यमानः।
परिक्रमन् व्योम्नि विवृत्तनेत्रश्चत्वारि लेभेऽनुदिशं मुखानि॥

(श्रीमद्भागवत महापुराण, स्कन्द-३, श्लोक १३—१६)

उस कमल की कर्णिका (गद्दी)-में बैठे हुए ब्रह्माजी को जब कोई लोक दिखायी नहीं दिया, तब वे आँखें फैलाकर आकाश में चारों ओर गर्दन घुमाकर देखने लगे, इससे उनके चारों दिशाओं में चार मुख हो गये।

× × ×

उसके बाद विष्णुजी के आज्ञा से ब्रह्माजी ने सृष्टि का कार्य प्रारम्भ किया.....

भगवान् ब्रह्मा के १० अलग-अलग अङ्गों से १० ऋषियों की उत्पत्ति

भगवान् ब्रह्मा ने सृष्टि के विस्तार में सर्वप्रथम १० ऋषियों को अपने १० अलग-अलग अंगों से उत्पन्न किया—

अथाभिध्यायतः सर्गं दश पुत्राः प्रजज्ञिरे। भगवच्छक्तियुक्तस्य लोकसन्तानहेतवः॥ २१॥
मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः। भृगुर्वसिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः॥ २२॥
उत्सङ्गान्नारदो जज्ञे दक्षोऽङ्गुष्ठात्स्वयंभुवः। प्राणाद्वसिष्ठः सञ्जातो भृगुस्त्वचि करात्क्रतुः॥ २३॥
पुलहो नाभितो जज्ञे पुलस्त्यः कर्णयोर्ऋषिः। अङ्गिरा मुखतोऽक्ष्णोऽत्रिर्मरीचिर्मनसोऽभवत्॥ २४॥

(श्रीमद्भागवत महापुराण, स्कन्द-३)

इसके बाद भगवान् की शक्ति से सम्पन्न ब्रह्माजी फिर सृष्टि कार्य करने का विचार करने लगे और उनके शरीर से ये १० पुत्र उत्पन्न हुए॥ २१॥

मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और नारद॥ २२॥

इनमें ब्रह्माजी की गोद से-**नारद**, अंगूठे से-**दक्ष प्रजापति**, श्वास से-**वसिष्ठ**, त्वचा से-**भृगु**, हाथ से-**क्रतु**॥ २३॥ नाभि से-**पुलह**, कानों से-**पुलस्त्य ऋषि**, मुख से-**अंगिरा**, नेत्रों से-**अत्रि** और मन से-**मरीचि** उत्पन्न हुए॥ २४॥

इनमें नारद ने वंश वृद्धि नहीं की। शेष ९ ऋषि—मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ और दक्ष ने सृष्टि में वंश वृद्धि की। इन्हीं ९ ऋषियों के वंशज 'ऋषिपुत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य इत्यादि' हैं।

☞ १ ऋषि-**ब्रह्मा के 'दशांश'** शक्ति के हैं।

9 ऋषियों का वंश परिचय इस प्रकार है

महर्षि मरीचि—

पत्नी मरीचेस्तु कला सुषुवे कर्दमात्मजा। कश्यपं पूर्णिमानं च ययोरापूरितं जगत्॥ १३॥

(श्रीमद्भागवत महापुराण, स्कन्द-४)

महर्षि मरीचि की पत्नी **कला** कर्दम जी की पुत्री थी। **कला** से—**कश्यप** और **पूर्णिमा** नाम के दो पुत्र हुए। उन्हीं की सन्तान से सारा जगत भरा हुआ है॥ १३॥

कश्यप ऋषि की २ पत्नियाँ थीं। अदिति और दिति।

विवस्वान्कश्यपात्पूर्वमदित्यामभवत्पुरा । तस्यपत्नीत्रयंतद्वत्संज्ञाराज्ञीप्रभातथा ॥ ३७॥
रेवतस्यसुताराज्ञीरेवतंसुषुवेसुतम् । प्रभाप्रभातंसुषुवेत्वाष्ट्रंसंज्ञातथामनुम् ॥ ३८॥
यमश्चयमुनाचैवयमलौचबभूवतुः ।

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय-८)

कश्यप ऋषि की पत्नी अदिति से सर्वप्रथम **सूर्य** उत्पन्न हुए। सूर्य की ३ पत्नियाँ थीं, **संज्ञा, राज्ञी** तथा **प्रभा**। राज्ञी रेवत की पुत्री थीं उसने रेवत नाम के पुत्र को जन्म दिया, प्रभा ने प्रभात नामक पुत्र को उत्पन्न किया। संज्ञा ने **वैवस्वत नामक मनु** को जन्म दिया, संज्ञा से ही **यम** नामक पुत्र एवं **यमुना** नाम की पुत्री जुड़वा जन्म लिये॥ ३७-३८१/२ ॥

कश्यप ऋषि की द्वितीय पत्नि दिति से—**हिरण्यकशिपु** एवं **हिरण्याक्ष** नामक **२ दानव पुत्र** उत्पन्न हुए।

☞ महर्षि मरीचि के वंशज **यम** ही **यमलोक** के राजा होकर **यमराज** हुए। इन्हें ही **धर्मराज** कहा जाता है। **यह महर्षि मरीचि के वंशज हैं।**

महर्षि अत्रि–

अत्रेः पत्न्यनसूया त्रीञ्जज्ञे सुयशसः सुतान्। दत्तं दुर्वाससं सोममात्मेशब्रह्मसम्भवान्॥ १५॥

(श्रीमद्भागवत महापुराण, स्कन्द-४)

महर्षि अत्रि की पत्नी **अनसूया** के श्रीविष्णु, महादेव और ब्रह्माजीके अंशसे उत्पन्न **दत्तात्रेय, दुर्वासा** और **चन्द्रमा** नाम के **३ अति यशस्वी पुत्र हुए**॥ १५॥

महर्षि अंगिरा–

श्रद्धा त्वङ्गिरसः पत्नी चतस्रोऽसूत कन्यकाः। सिनीवाली कुहू राका चतुर्थ्यनुमतिस्तथा॥ ३४॥
तत्पुत्रावपरावास्तां ख्यातौ स्वारोचिषेऽन्तरे। उतथ्यो भगवान्साक्षाद्ब्रह्मिष्ठश्च प्रजापतिः॥ ३५॥

महर्षि अंगिरा की पत्नी **श्रद्धा** से—**सिनीवाली, कुहू, राका** तथा **अनुमति** ये चार कन्यायें उत्पन्न हुईं॥ ३४॥ इनके अतिरिक्त उनके साक्षात् **भगवान् उतथ्यजी** और **ब्रह्मनिष्ठ बृहस्पतिजी**-ये दो पुत्र भी हुए थे, जो स्वारोचिष मन्वन्तर में प्रसिद्धि प्राप्त किये॥ ३५॥

महर्षि पुलस्त्य–

पुलस्त्योऽजनयत्पत्न्यामगस्त्यं च हविर्भुवि। सोऽन्यजन्मनि दह्राग्निर्विश्रवाश्च महातपाः॥ ३६॥
तस्य यक्षपतिर्देवः कुबेरस्त्विडविडासुतः। रावणः कुम्भकर्णश्च तथान्यस्यां विभीषणः॥ ३७॥

महर्षि पुलस्त्य की पत्नी **हविर्भू** से **अगस्त्य** और **महातपस्वी विश्रवा** उत्पन्न हुए। इन दोनोंमें अगस्त्यजी दूसरे जन्म में जठराग्नि के रूप में उत्पन्न हुए॥ ३६॥ **विश्रवा मुनि** की पत्नी **इडविडा** के गर्भ से **यक्षराज कुबेर** का जन्म हुआ और उनकी **कैकसी** नाम की दूसरी स्त्री से **रावण, कुम्भकर्ण** और **विभीषण** हुए॥ ३७॥

महर्षि पुलह–

पुलहस्य गतिर्भार्या त्रीनसूत सती सतान्। कर्मश्रेष्ठं वरीयांसं सहिष्णुं च महामते॥ ३८॥

हे महामते! **महर्षि पुलह** की परमसाध्वी स्त्री **गति** ने **कर्मश्रेष्ठ, वरीयान्** और **सहिष्णु** नाम के तीन पुत्रों को उत्पन्न किया॥ ३८॥

महर्षि क्रतु-

क्रतोरपि क्रिया भार्या वालखिल्यानसूयत। ऋषीन्षष्टिसहस्त्राणि ज्वलतो ब्रह्मतेजसा॥ ३९॥

इसी तरह **क्रतु** की पत्नी **क्रिया** ने बालखिल्य आदि **साठ हजार ऋषियों** को उत्पन्न किया, जो ब्रह्मतेज से देदीप्यमान हो रहे थे॥ ३९॥

महर्षि वसिष्ठ-

ऊर्जायां जज्ञिरे पुत्रा वसिष्ठस्य परंतप। चित्रकेतुप्रधानास्ते सप्त ब्रह्मर्षयोऽमलाः॥ ४०॥
चित्रकेतुः सुरोचिश्च विरजा मित्र एव च। उल्बणो वसुसृद्यानो द्युमाञ्च्छक्त्याद्योऽपरे॥ ४१॥

हे परन्तप! **वसिष्ठ** जी के उनकी भार्या **ऊर्जा अर्थात् अरुन्धती** से चित्रकेतु आदि सात पुत्र हुए, ये ही सातों शुद्धचित्त ब्रह्मर्षि थे॥ ४०॥ उनके नाम ये थे-**चित्रकेतु, सुरोचि, विरजा, मित्र, उल्बण, वसुसृयान** और **द्युमान्।** इनके अतिरिक्त उनके शक्ति आदि अन्य पुत्र भी हुए थे॥ ४१॥

महर्षि भृगु-

भृगुः ख्यात्यां महाभागः पत्न्यां-पुत्रानजीजनत्। धातारं च विधातारं श्रियं च भगवत्पराम्॥ ४३॥

महाभाग **भृगु** ने **ख्याति** नाम की अपनी भार्या से **धाता** और **विधाता** नाम के पुत्र तथा भगवत्परायण **श्री** नाम की एक कन्या उत्पन्न की (श्री ही नारायण की पत्नि लक्ष्मी हैं)॥ ४३॥

महर्षि दक्ष-

प्रसूतिं मानवीं दक्ष उपयेमे ह्यजात्मजः। तस्यां ससर्ज दुहितृः षोडशामललोचनाः॥ ४७॥
त्रयोदशादाद्धर्माय तथैकामग्नये विभुः। पितृभ्य एकां युक्तेभ्यो भवायैकां भवच्छिदे॥ ४८॥

(श्रीमद्भागवत महापुराण, स्कन्द ४, ३४ ४८)

ब्रह्माजी के पुत्र **दक्ष प्रजापति** से मनुजी की पुत्री **प्रसूति** का विवाह हुआ था। उन्होंने उससे १६ सुनयनी कन्याएँ उत्पन्न कीं॥ ४७॥ भगवान् दक्ष ने उनमें से १३ कन्यायें धर्म को, १ कन्या अग्नि को, १ कन्या समस्त पितृगणों को और **१ संसार का संहार करने वाले भगवान् शिव को अर्पण की**॥ ४८॥

× × ×

उपर्युक्त 10 में से नारद को छोड़कर शेष ९ ऋषियों से-ऋषि, देव तथा दानव उत्पन्न हुए-

ऋषि-कश्यप, भारद्वाज, शाण्डिल्य, सांकृत, कात्यायन, उपमन्यु, गार्ग्य, धनन्जय, कविस्त, गौतम, गर्ग, कृष्णात्रेय, कौशिक, वशिष्ठ, वत्स, पराशर, मांडव्य, श्रीहर्ष, सौरभ, सौभरि, हारित, वाल्मीक, दालभ्य, हंस, भट्ट, माथुर इत्यादि।

देव-'इन्द्र', सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, 'बृहस्पति', शुक्र, शनि, यमराज, विश्वकर्मा, राम, कृष्ण, हनुमान इत्यादि।

दानव- हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, रावण, अहिरावण, कुम्भकर्ण इत्यादि।

× × ×

ब्रह्माजी से उत्पन्न ऋषियों की वंश सारिणी

महर्षि मरीचि इनकी पत्नी का नाम **कला** था इनसे २ पुत्र उत्पन्न हुए। १-**कश्यप** २-पूर्णिमा।

कश्यप ऋषि की २ पत्नियाँ थीं। **अदिति** एवं **दिति।**

१-अदिति—इनसे **सूर्य** उत्पन्न हुए। **सूर्य** की ३ पत्नियाँ थीं। १-प्रभा २-**संज्ञा** ३-राज्ञी। संज्ञा से **वैवस्वतमनु, यम** तथा **यमुना** नामक ३ सन्तानें उत्पन्न हुईं।

२-दिति—इनसे **हिरण्यकशिपु** एवं **हिरण्याक्ष** नामक २ **दनुज पुत्र** भी उत्पन्न हुए।

महर्षि दक्ष इनकी पत्नी का नाम **प्रसूति** था इनसे १६ कन्याएं उत्पन्न हुईं। **धर्म** से १३, **अग्नि** से १, **पितृ** से १ तथा **भगवान् शिव** से—१ कन्या विवाहित हुईं, जिनका नाम माता **सती** था।

वसिष्ठ इनकी पत्नी का नाम **ऊर्जा (अरुन्धती)** था इनसे ७ पुत्र चित्रकेतु, सुरोचि, विरजा, मित्र, उल्वण, वसुभृद्यान तथा द्युमान् उत्पन्न हुए।

महर्षि भृगु इनकी पत्नी का नाम **ख्याति** था इनसे २ पुत्र—धाता एवं विधाता तथा १ पुत्री—श्री (लक्ष्मी) उत्पन्न हुईं। इनका विवाह विष्णुजीके साथ हुआ था।

महर्षि क्रतु इनकी पत्नी का नाम **क्रिया** था इनसे बालखिल्य सहित ६० हजार ऋषि उत्पन्न हुए।

महर्षि पुलह इनकी पत्नी का नाम **गति** था इनसे कर्मश्रेष्ठ, वरीयान तथा सहिष्णु नामक ३ पुत्र उत्पन्न हुए।

महर्षि पुलस्त्य इनकी पत्नी का नाम **हविर्भू** था इनसे २ पुत्र उत्पन्न हुए। **अगस्त्य** एवं **विश्रवा।** विश्रवा की दो पत्नियाँ थीं।

१-**इडविडा** २-**केशिनी।**

इडविडा से कुबेर तथा **केशिनी से—रावण, कुम्भकर्ण** एवं **विभीषण** उत्पन्न हुए।

महर्षि अंगिरा इनकी पत्नी का नाम **श्रद्धा** था। इनसे २ पुत्र—उतथ्य एवं **बृहस्पति** तथा सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति ४ पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं।

अत्रि इनकी पत्नी का नाम **अनुसूया** था इनसे ३ पुत्र उत्पन्न हुए। १-**दत्तात्रेय** २-**दुर्वासा** ३-**चन्द्रमा।**

× × ×

☞ इसी क्रम में ब्रह्माजी ने **स्वायंभुवमनु** और **शतरूपा** को उत्पन्न किया।

भगवान् ब्रह्मा से स्वायंभुवमनु एवं शतरूपा की उत्पत्ति

ततोऽपरामुपादाय स सर्गाय मनो दधे। ऋषीणां भूरिवीर्याणमपि सर्गमविस्तृतम् ॥ ४९ ॥
ज्ञात्वा तद्धृदये भूयश्चिन्तयामास कौरव। अहो अद्भुततमेतन्मे व्यापृतस्यापि नित्यदा ॥ ५० ॥
न ह्येधन्ते प्रजा नूनं दैवमत्र विघातकम्। एवं युक्तकृतस्तस्य दैवं चावेक्षतस्तदा ॥ ५१ ॥
कस्य रूपमभूद् द्वेधा यत्कायमभिचक्षते। ताभ्यां रूपविभामाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥ ५२ ॥
यस्तु तत्र पुमान् सोऽभून्मनुः स्वायम्भुवः स्वराट्। स्त्री याऽऽसीच्छतरूपाख्या महिष्यस्य महात्मनः ॥ ५३ ॥

(श्रीमद्भागवत महापुराण, स्कन्द ३, ४९, ५२)

उन ब्रह्मा ने पूर्व कथित नीहारात्मक शरीर को त्याग कर दूसरा शरीर धारण किया और फिर सृष्टि कार्य करने का विचार करने लगे। पहले उन्होंने जिन महाशक्तिमान् मरीचि, वसिष्ठ आदि ऋषियों की सृष्टि की थी, वे सृष्टि का विस्तार नहीं कर सके ॥ ४९ ॥ उन्होंने सोचा कि यद्यपि मैं नित्य सृष्टि के विस्तार की चेष्टा करता रहता हूँ, फिर भी उसका सन्तोष जनक विस्तार नहीं होता ॥ ५० ॥ ये प्रजा जो नहीं बढ़ रही है, मैं समझता हूँ कि इसमें दैव बाधा डाल रहा है। दैव के विषय में वे इस प्रकार झींक ही रहे थे ॥ ५१ ॥ उसी समय ब्रह्माजी का शरीर दो भागों में विभक्त हो गया, उन दो भागों में एक स्त्री और एक पुरुष हो गया ॥ ५२ ॥ उनमें पुरुष सार्वभौम सम्राट स्वाम्भुवमनु हुए और स्त्री उनकी महारानी शतरूपा हुईं ॥ ५३ ॥

☞ इसके पश्चात् मैथुनी क्रिया से सृष्टि का विस्तार हो सका। मनु की कन्याओं से ऋषियों का विवाह हुआ, पुनः उनकी सन्तति से सम्पूर्ण जगत का विस्तार हुआ।

× × ×

☞ इसके बाद ब्रह्माजी ने सनकादि तथा रुद्र (शंकर/महादेव) को उत्पन्न किया..........

भगवान् ब्रह्मा के क्रोध से भगवान रुद्र [शंकर] की उत्पत्ति

☞ इसके बाद ब्रह्माजी ने सनकादि को उत्पन्न करके वंश वृद्धि करने को कहा। सनकादि ने ब्रह्मचर्य रहने की इच्छा व्यक्त की, तब ब्रह्माजी अत्यन्त क्रोधित हुए, तत्पश्चात् उनके **क्रोध से रुद्र (शंकरजी)** उत्पन्न हुये—

सनंदनादयोयेचपूर्वसृष्टास्तु वेधसा। नतेलोकेष्वसज्जंतनिरपेक्षा:प्रजासुते ॥ १६९ ॥
सर्वेह्यागतविज्ञानावीतरागाविमत्सरा: । तेष्वेवंनिरपेक्षेपुलोकसृष्टोमहात्मन: ॥ १७० ॥
ब्रह्मणोभून्महान्क्रोधस्त्रैलोक्यदहनक्षम्: । तस्यक्रोधात्समुद्भूतंज्वालामालावदीपितम् ॥ १७१ ॥
ब्रह्मणस्तुतदाज्योतिस्त्रैलोक्यमखिलंदहत् । भ्रूकुटीकुटिलात्तस्यललाटात्क्रोधदीपितात् ॥ १७२ ॥
समुत्पन्नस्तदारुद्रोमध्याह्नार्कसमप्रभ: । अर्द्धनारीनरवपु:प्रचण्डोतिशरीरवान् ॥ १७३ ॥

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय-३)

पुलस्त्य ऋषि भीष्म से बोले—ब्रह्मा ने सनकादि ऋषियों की सृष्टि प्रजा की उत्पत्ति के लिए किया था। किन्तु ये ऋषि वीतरागी बनने की इच्छा प्रकट किये तथा सन्तान उत्पन्न करने हेतु अनिच्छा प्रकट किये, ये ऋषि वेद के ज्ञाता थे तथा सन्यासी के समान जीवन जीना चाहते थे। उनके इस प्रकार की स्थिति को जानकर ब्रह्माजी क्रोधित हुये, ब्रह्माजी का क्रोध तीनों लोकों को जलाने वाला था। उनके क्रोध में एक तीव्र प्रकाशित ज्वाला प्रकट हुई। उसी ज्वाला से मध्याह्न कालिक सूर्य के समान 'रुद्र' की उत्पत्ति हुई जिनका आधा शरीर पुरुष एवं आधा स्त्री का था जिसे अर्धनारीश्वर कहते हैं॥ १६९-१७३ ॥

एवंप्रकारोरुद्रोऽसौसतींभार्यामविंदत ॥ २०३ ॥
दक्षकोपाच्चतत्याजसासतीस्वंकलेवरम् । हिमवद्दुहितासाभून्मेनायांनृपसत्तम ॥ २०४ ॥

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय-३)

इस प्रकार सती जो रुद्र की पत्नी के रुप में जानीं गईं, वे दक्ष पर क्रोध के कारण अपने शरीर का त्याग करके, नृप श्रेष्ठ हिम और मेना की पुत्री (पार्वती) बनीं॥ २०३-२०४ ॥

× × ×

☞ '**रुद्र**' ही '**महाकाल**' के नाम से विख्यात हुये। इनका विवाह दक्षपुत्री सती से हुआ। जो देह त्यागकर **पार्वती** के रूप में उत्पन्न हुईं। इनसे **कार्तिकेय** एवं **गणेश** नामक दो पुत्र उत्पन्न हुये। '**रुद्र**' का '**महाकाल**' के रूप में वर्णन अनेक पुराणों में विद्यमान है। **रुद्राक्ष** इन्हीं का अंश है तथा **रुद्राभिषेक** इन्हीं को प्रसन्न करने के लिये किया जाता है।

☞ '**रुद्र**' (शंकर) अनादि देव नहीं हैं। '**रुद्र**' भगवान् ब्रह्मा के समान शक्ति के **प्रथम पुत्र** हैं।

☞ **उसके बाद ब्रह्माजी ने यमलोक का निर्माण किया।** ब्रह्माजी ने मरीचि ऋषि के वंशज, सूर्य के पुत्र यम को यमलोक का राजा बनाया तथा बलपूर्वक जीवन-मृत्यु का संचालन करने को कहा, इन्हें ही यमराज कहते हैं। यमराज ने संचालन करने में असमर्थता जतायी।

☞ यमराज के असहाय होने का कारण अगले पृष्ठ पर दिया गया है............

यमराज द्वारा सृष्टि का नियन्त्रण न कर पाने का कारण

ब्रह्माजी ने **महर्षि मरीचि** के वंशज, सूर्य के पुत्र '**यम**' को यमलोक का '**राजा**' बनाया। **यमराज** ने सृष्टि का संचालन करने में असमर्थता जताई क्योंकि ऋषि, देव तथा दानव, यमराज के समान शक्ति के तथा ब्रह्माजी के दशांश शक्ति से थे। इनको मृत्यु देकर कर्मानुसार पुनर्जन्म देना यमराज के लिये दुष्कर था। इस कारण यमराज ने सृष्टि का संचालन करने में असमर्थता जताई।

☞ **यमराज ने अपने समान शक्ति के मांडव्य ऋषि के शाप तथा रावण से युद्ध करके इस समस्या को भोगा भी! जिसका वर्णन नीचे दिया जा रहा है—**

☞ **मांडव्य ऋषि का यमराज को शाप**—तपस्या में लीन मांडव्य ऋषि को एक राजा ने चोरी के आरोप में शूली पर चढ़ा दिया। जब वेदना हुई तो ऋषि ने यमराज का ध्यान करके पूछा कि मैं किस पाप का दण्ड भोग रहा हूँ, तब यमराज बोले, पिछले जन्म में जब आप बालक थे, उस समय आपने एक पक्षी को शूल से कष्ट दिया था, ये उसी का दण्ड है। यह सुनकर मांडव्य ऋषि यमराज पर क्रोधित होकर बोले कि! बालक की त्रुटि क्षम्य होती है। धर्मराज होकर तुमने मुझे गलत दण्ड दिया है, इसलिये मैं शाप देता हूँ कि तू शूद्रा की योनि से उत्पन्न हो। इस शाप को सत्य करके यमराज शूद्रा के योनि से उत्पन्न होकर **द्वापरयुग में विदुर** हुये।

☞ **रावण द्वारा यमराज पर हमला**—एक बार रावण सर्व लोक पर विजय प्राप्त करके विचार करने लगा कि मैंने यमराज को तो पराजित किया ही नहीं। यह सोच कर रावण यमलोक पहुँच कर यमराज पर हमला कर दिया। बहुत ही भयानक युद्ध हुआ, विवश होकर यमराज ने ऋषि, देव तथा दानव को नष्ट करने वाला ब्रह्मदण्ड उठा लिया। तत्पश्चात् ब्रह्माजी प्रकट हो गये और यमराज से बोले अभी रावण के वध का समय नहीं आया है इसलिये इसे छोड़ दो। तब यमराज अन्तर्ध्यान हो गये। रावण स्वयं को विजेता समझ कर लौट आया।

इसी संकट को देख कर यमराज ब्रह्माजी के पास जाकर बोले-हे भगवन् आपने मुझे ८४ लाख योनियों पर शासन करने के लिये नियुक्त किया है। मैं असहाय (असमर्थ) हूँ, इस कार्य को कैसे करूँ? तब भगवान् ब्रह्मा ने तपस्या करके अपने **पूर्णांश शक्ति** से, अपने समान **महाकाल चित्रगुप्त** को उत्पन्न करके यमलोक का '**धर्माधिकारी**' नियुक्त किया। उसके बाद ही सृष्टि का संचालन सम्भव हो सका।

महाकाल चित्रगुप्त की उत्पत्ति का वर्णन आगे विद्यमान है....

भगवान् ब्रह्मा की काया से कायस्थ [चित्रगुप्त] की उत्पत्ति

सूत उवाच–

एकदा ब्रह्मलोके तु यमः प्रोवाच कं प्रति। चतुरशीतिलक्षाणां शासनेऽहं नियोजितः॥ १ ॥
असहायः कथं स्थातुं शक्नोमि पुरुषर्षभ।

सूत ने कहा—एक बार यमराज ब्रह्मलोक में जाकर ब्रह्माजी से बोले! आपने मुझे चौरासी लाख योनियों पर शासन करने के लिए नियुक्त किया है। हे पुरुषर्षभ! मैं असहाय (असमर्थ) हूँ, इस कार्य को कैसे करूँ॥ १-१½॥

ब्रह्मोवाच–

प्राप्स्यते पुरुषः शीघ्रमित्युक्त्वा विससर्ज तम्॥ २ ॥
धर्मराजे गते ब्रह्मा समाधिस्थो बभूव ह। तत् शरीरात् महाबाहुः श्यामः कमललोचनः॥ ३ ॥
लेखनीपट्टिकाहस्तो मषीभाजनसंयुतः। स निर्गतोऽग्रतस्तस्थौ नाम देहीति चाब्रवीत्॥ ४ ॥

ब्रह्मा ने कहा—हे यमराज तुमको अतिशीघ्र कोई पुरुष मिल जायेगा ये कह कर ब्रह्माजी ने यमराज को वहाँ से विदा कर दिया। यमराज के चले जाने के बाद ब्रह्माजी समाधि में लीन हो गये। उनके शरीर से एक व्यक्ति निकले, जिसकी बाँह घुटने तक लम्बी, श्यामवर्ण वाले, कमल के समान आँखों वाले, हाथ में कलम, पट्टिका और दावात लिए हुए थे। उन्होंने ब्रह्मा से पूछा कि मेरा नाम क्या है?॥ २-४॥

ब्रह्मोवाच–

गच्छ पुरुष भद्रं ते तप आचरतामिति। इत्याज्ञप्तः स पुरुषो ययौ धौरेयदेशकान्॥ ५ ॥
उज्जयिन्याः समीपे तु क्षिप्रायाश्च तटे शुभे। पंचक्रोशात्मके क्षेत्रे तपस्तप्तुं महत्तरम्॥ ६ ॥
ततः कतिपये काले ब्रह्मा लोकपितामहः। उज्जयिन्यां ततः श्रीमानाजगाम मुदान्वितः॥ ७ ॥
यजनार्थाय यज्ञैश्च नानासंभारसंयुतः। चित्रगुप्तोऽपि धर्मात्मा कन्याः प्राप सुलक्षणाः॥ ८ ॥
वैवस्वतमनोः कन्याश्चतस्त्रः शुभलक्षणाः। अष्टौ सुरूपा नागीया पितृभक्तिपरायणाः॥ ९ ॥
तासां समभवन्पुत्रा द्वादशैव जगत्प्रियाः। ब्रह्मा वर्षसहस्रं तु यज्ञैरिष्ट्वा सुदक्षिणैः॥ १० ॥
चित्रगुप्तमुवाचेदं वाक्यं धर्मार्थमेव च।

ब्रह्मा ने कहा—हे भद्र पुरुष तुम तप का आचरण करो, ऐसी आज्ञा प्राप्त करके वह पुरुष (चित्रगुप्त) धौरेय देश को चल दिये। उज्जयनी नगरी के समीप क्षिप्रा नदी के सुन्दर तट पर पाँच कोश के इस पुण्य क्षेत्र में घोर तप करने लगे। उस पुरुष के तपस्या करने के कुछ दिन बाद प्रसन्न मुद्रा में पितामह ब्रह्मा उज्जयनी नगरी में पहुँचे। उन्होंने अनेक सामग्रियों से युक्त एक महान यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। तत्पश्चात् धर्मात्मा चित्रगुप्त को विवाह हेतु सुन्दर लक्षणों वाली कन्याएं प्राप्त हुई। सुन्दर लक्षणों वाली चार कन्यायें वैवस्वतमनु से और पिता की सेवा करने में तत्पर आठ कन्यायें नागों (नागर ब्राह्मणों) से प्राप्त हुईं। इस प्रकार बारह स्त्रियों से संसार को प्रिय लगने वाले तदनुरूप **बारह पुत्र उत्पन्न हुए** और ब्रह्मा हजार वर्ष तक दक्षिणा देने वाले इस यज्ञ को पूर्ण किये। चित्रगुप्त से अत्यन्त प्रिय धर्म एवं अर्थ से युक्त वाणी से ब्रह्मा बोले–॥ ५—१०½॥

ब्रह्मोवाच–

चित्रगुप्त महाबाहो मत्प्रियोऽस्मत्समुद्भवः॥ ११ ॥

चित्रगुप्त सुगुप्तांग तस्मात् नाम्ना सुविश्रुतः। मम कायात् समुद्भूतः सर्वांगंप्राप्य सत्वरम्॥ १२॥ तस्मात् कायस्थविख्याता लोके त्वं तुभविष्यसि। एते वै तव पुत्राश्च काक पक्षधराः शुभाः॥ १३॥ सर्वे षोडशवर्षीयाः शुभाचाराः शुभाननाः। धर्मराजगृहं गच्छ कार्यं मे कुरु सुव्रत॥ १४॥ सत्-असत् सर्वजंतूनाम् लेखकः सर्वदैव हि।

ब्रह्मा ने कहा—हे महाबाहो चित्रगुप्त तुम मुझसे उत्पन्न हुए हो, इसलिए तुम मेरे अत्यन्त प्रिय हो। तुम्हारा अंग गुप्त है इसलिए तुम चित्रगुप्त के नाम से संसार में प्रसिद्ध होगे। तुम मुझसे उत्पन्न हुए हो इसलिए शीघ्र सभी अंगों को प्राप्त करोगे और सुन्दर शरीर वाले होगे। मेरी काया से उत्पन्न होने के कारण तुम संसार में 'कायस्थ' नाम से विख्यात होगे, और तुम्हारे सोलह वर्ष के सभी पुत्र, काक पक्ष (कौए का पंख) धारण करने वाले, सदाचारी, सुन्दर मुख एवं उत्तम आचरण करने वाले होंगे। हे सुव्रत (धर्मनिष्ठ) धर्मराज के गृह (यमलोक) में जाकर मेरा कार्य करो और सत्-असत् (कीटाणु से लेकर इन्द्र आदि देव तक) सर्वजन्तु (सम्पूर्ण प्राणियों) के सर्वदैव (सबके भाग्य) को लिखो॥ ११—१४½॥

× × ×

भगवान् विष्णु, भगवान् ब्रह्मा, भगवान् रुद्र [शङ्कर] तथा भगवान् चित्रगुप्त—सदाशिव [निराकार परब्रह्म] के साकार रूप हैं। ये चारो परब्रह्म समान शक्ति के हैं।

शेष सभी ऋषि, देवता तथा दानव इन चारो परब्रह्म से अल्प शक्ति के हैं।

विष्णुलोक के विष्णु, ब्रह्मलोक के ब्रह्मा, शिवलोक के रुद्र (शिव) तथा यमलोक के कायस्थ (चित्रगुप्त) स्वामी हैं।

भगवान् चित्रगुप्त-कायस्थ/चित्रगुप्त नामक '**यम**' हैं।

सनातनी बन्धु, उपर्युक्त परब्रह्म, ऋषि, देवता एवं दानवों की उत्पत्ति को जानकर ही कोई व्याख्या करें। परब्रह्म नियन्ता हैं, इनकी त्रुटिपूर्ण विवेचना अक्षम्य महापाप है।

ब्रह्माजी के समान शक्ति से उत्पन्न '**रुद्र (शंकर)**' तथा '**कायस्थ (चित्रगुप्त)**' निश्चित ही ऋषियों के बाद उत्पन्न हुये, तो भी ये **ऋषियों के नियन्ता** तथा '**महाकाल**' के रूप में प्रतिष्ठित हुये।

भगवान् चित्रगुप्त—भगवान् ब्रह्मा की काया में स्थित थे एवं काया से उत्पन्न हुये। इस कारण ब्रह्माजी ने इनका नामकरण करके कायस्थ नाम दिया तथा भगवान् चित्रगुप्त को यमलोक में अपनी जगह स्थापित करके सबका भाग्य निर्धारित करने को कहा।

भगवान् चित्रगुप्त की उत्पत्ति, **उनका ऋषि पुत्रियों से विवाह,** उनके १२ पुत्रों का ब्राह्मण संस्कार ग्रहण करने का वर्णन ६३ श्लोक में विद्यमान है, जो इस ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड में "**कायस्थानांसमुत्पत्ति**" नामक अध्याय में हिन्दी अनुवाद सहित दिया गया है।

भगवान् विष्णु के कमलनाभि से भगवान् ब्रह्मा उत्पन्न हुए

भगवान् ब्रह्मा के क्रोध से
भगवान् रुद्र (शङ्कर) उत्पन्न हुए

भगवान् ब्रह्मा की काया से
भगवान् कायस्थ (चित्रगुप्त) उत्पन्न हुए

भगवान् विष्णु, ब्रह्मा, शङ्कर तथा चित्रगुप्त परब्रह्म (सदाशिव) के चार स्वरूप हैं, ये सभी समान शक्ति के हैं।

लोकशासक महाकालचित्रगुप्त की शक्तियाँ

महाकाल चित्रगुप्त ही नित्य प्रलय करते हैं

भगवान् चित्रगुप्त लोकशासक तथा महाकाल हैं। प्रलय चार प्रकार के कहे गये हैं नैमित्तिक, प्राकृतिक, आत्यन्तिक और नित्य। **इनमें नित्य प्रलय भगवान् चित्रगुप्त द्वारा दिया जाता है—**

श्रीपाराशर उवाच—

नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवात्यन्तिको द्विज। नित्यश्च सर्वभूतानां प्रलयोऽयं चतुर्विधः॥ ४१॥
ब्राह्मो नैमित्तिकस्तत्र शेतेऽयं जगतीपतिः। प्रयाति प्राकृते चैव ब्रह्माण्डं प्रकृतौ लयम्॥ ४२॥
ज्ञानादात्यन्तिकः प्रोक्तो योगिनः परमात्मनि। नित्यः सदैव भूतानां यो विनाशो दिवानिशम्॥ ४३॥

(विष्णुपुराण, प्रथम अंश ४१—४३)

श्रीपाराशर बोले—हे द्विज! समस्त भूतों का चार प्रकार का प्रलय है—**नैमित्तिक, प्राकृतिक, आत्यन्तिक** और **नित्य**। **नैमित्तिक-प्रलय** ही ब्राह्म प्रलय है, जिसमें जगत्पति ब्रह्माजी कल्पान्त में शयन करते हैं तथा **प्राकृतिक-प्रलय** में ब्रह्माण्ड प्रकृति में लीन हो जाता है। **आत्यन्तिक-प्रलय** ज्ञान के द्वारा योगी का परमात्मा में लीन होना होता है और रात-दिन जो भूतों का क्षय होता है वही **नित्य-प्रलय** है॥ ४१—४३॥

१. नैमित्तिक-प्रलय-हर कल्प के अन्त में प्रलय होकर नये मनु की उत्पत्ति होती है, ये ब्रह्माजी द्वारा बनाया नियम है। **इसे नैमित्तिक-प्रलय कहा जाता है।**

२. प्राकृतिक-प्रलय-इस प्रलय में ब्रह्माण्ड मूल प्रकृति में विलय हो जाता है। इस प्रलय को सदाशिव करते हैं। **इसे प्राकृतिक-प्रलय कहा जाता है।**

३. आत्यन्तिक-प्रलय-ज्ञानी योगी अपनी इच्छा से अपना प्राण त्याग करके परमात्मा (परब्रह्म) में विलीन हो जाते हैं। **इसे आत्यन्तिक-प्रलय कहा जाता है।**

४. नित्य-प्रलय-यह प्रलय नित्य चल रहा है, प्राणी प्रतिदिन मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं, प्रतिदिन प्रकृति में कुछ विनाश हो कर प्राणियों का अन्त हो रहा है, **यही नित्य प्रलय है।**

☞ कहीं बाढ़ से डूबकर, कहीं पहाड़ खिसकने से, कहीं भूकम्प से, कहीं भवन के गिरने से, कहीं भयानक असाध्य रोग से, कहीं दुर्घटना इत्यादि से जो नित्य प्राणियों का संहार हो रहा है, ये नित्य प्रलय है। **ये नित्य-प्रलय, लोकशासक एवं महाकाल-भगवान् चित्रगुप्त द्वारा नित्य प्राणियों का संहार करके किया जा रहा है।**

महाकाल चित्रगुप्त—शाश्वत महाकाल हैं। यह आदिकाल से लेकर अबतक विद्यमान हैं तथा भविष्य में भी रहेंगे। यमलोक में १४ यम विद्यमान् हैं—यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर, दध्न, नील, परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र तथा 'चित्रगुप्त'। यमदूत को ही 'काल' कहते हैं, ये साक्षात् प्राण हन्ता हैं। यमदूत—बड़े-बड़े तपस्वी, महारथी तथा दानव सहित सभी प्राणियों का अन्त क्षणभर में करने वाले हैं। ये यमदूत १४ यमों के सेवक हैं।

इनमें **भगवान् चित्रगुप्त**-धर्मराज सहित उपर्युक्त सभी यमों के स्वामी तथा यमलोक में **'धर्माधिकारी'** नाम के **यम** हैं। भगवान् चित्रगुप्त कालों के काल अर्थात् साक्षात् **'महाकाल'** हैं।

भगवान् चित्रगुप्त लोकशासक हैं अर्थात् देवलोक, मृत्युलोक तथा पाताललोक पर भगवान् चित्रगुप्त का शासन चलता है। लोक (देवलोक, मृत्युलोक तथा पाताललोक) का विधान [सनातनी धार्मिक नियम] लोकशासक महाकालचित्रगुप्त का बनाया हुआ है। **यह लोक के महाकाल हैं।**

सनातन धर्म के देवों की शक्तियों को जानने के लिये इसे जानें—

१-विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र तथा चित्रगुप्त एक कुल एवं समान शक्ति के हैं। ये सदाशिव (परब्रह्म) के चार स्वरूप तथा अविनाशी हैं।

२-यमलोक ही लोक (सृष्टि) पर शासन करता है।

३-लोक (यमलोक सहित देवलोक, मृत्युलोक तथा पाताललोक) का विधान **[सनातनी धार्मिक नियम] लोकशासक महाकालचित्रगुप्त का बनाया हुआ है।**

४-लोकशासक महाकालचित्रगुप्त के आदेश का पालन **यमराज** द्वारा कराया जाता है।

५-यमराज के आदेश का पालन ब्रह्माजी से उत्पन्न १० ऋषि मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष, नारद, मनु, बृहस्पति देवाचार्य तथा शुक्र दनुजाचार्य जैसे ज्ञानी यमराज की सभा में रहकर करते हैं।

इस प्रकार यमलोक के धर्माधिकारी एवं लोकशासक चित्रगुप्त के आदेश का पालन—यमराज (धर्मराज) तथा यमराज के आदेश का पालन सभी ऋषि, मनु, बृहस्पति देवाचार्य तथा शुक्र दनुजाचार्य करते हैं।

यही सनातनी सत्य है। यमलोक के धर्माधिकारी एवं लोकशासक चित्रगुप्त उच्चस्थ—रुद्र (शंकर), ब्रह्मा तथा विष्णु ही हैं, जो कि चित्रगुप्तजी के कुल के ही हैं।

इस ग्रन्थ में इन सबका पौराणिक प्रमाण विद्यमान है। इसे पढ़कर एवं इसे अपना कर अपना कलियुगी जीवन उत्कृष्ट बनायें।

इसका पौराणिक वर्णन आगे दिया जा रहा है..........

यमराज के आदेश का पालन अङ्गिरा-भृगु-पुलहादि १० ऋषि, बृहस्पति-शुक्र आचार्य एवं मनु इत्यादि ज्ञानी यमलोक में रहकर करते हैं

भगवान् चित्रगुप्त की शक्तियों को जानने के पूर्व यह जानना आवश्यक है कि ब्रह्मा के अलग-अलग अङ्गों से उत्पन्न १० ऋषि, मनु, देवाचार्य बृहस्पति तथा दनुजाचार्य शुक्र क्या करते हैं?

वाराहपुराण में वर्णित है कि यमलोक में यमराज के दरबार में ऋषि, मनु, देवाचार्य बृहस्पति, दनुजाचार्य शुक्र जैसे ज्ञानी यमराज की सहायता के लिये नियुक्त हैं तथा यमराज के आदेश का पालन करते हैं। **इसे नचिकेता नाम के ऋषि ने प्रत्यक्ष देखा था।** वाराहपुराण का सन्दर्भ इस प्रकार है—

☞ संदर्भित श्लोक-[श्लोक संख्या १६ से १९]

ऋषि उवाच—

दशयोजनविस्तारं ततो द्विगुणमायतम्। प्राकारेण परिक्षिप्तं प्रासादशत शोभितम्॥ १॥
समालिखदिवाकाशं प्रदीप्तमिव तेजसा। गोपुरं तूत्तमं तत्र प्रासादशतशोभितमं॥ २॥
नानायन्त्रैः समाकीर्णं ज्वालामालासमायुतम्। देवतानामृषीणां च ये चान्ये शुभकारिणः॥ ३॥
प्रवेशस्तत्र तेषां हि विहितो धर्मदर्शिनाम्। राजते गोपुरं सर्वं शारदाभ्र चयप्रभम्॥ ४॥

नचिकेता ऋषि बोले— यमराजपुरी दस योजन लम्बा तथा बीस योजन चौड़ा है। वह नगरी चारो ओर से चहारदीवारी से सुरक्षित है, उसमें सैकड़ों भवन सुशोभित हैं। मानो वह स्वर्ग से आकाश तक फैला है, उसका तेज चमक रहा था। सैकड़ों भवनों से सुशोभित उस नगर का प्रवेश द्वार उत्तम है। अनेक प्रकार के यन्त्रों से घिरा हुआ प्रकाश का पुञ्ज दिखाई देता है। देवता और ऋषि तथा अन्य जो शुभ कार्य करने वाले हैं। उन्हीं धर्म प्राणियों का उसमें प्रवेश होता है। वहाँ के प्रवेश द्वार की चमक शरद्कालीन मेघ के समान प्रतीत होती है॥ १—४॥

मानुषाणां सुकृतिना प्रवेशस्तत्र निर्मितः। अग्निधर्मसमाकीर्णं सर्वदोषसमन्वितम्॥ ५॥
आयसं गोपुरं तत्र दक्षिणं भीमदर्शनम्। रौद्रं प्रतिभयाकारं सुतप्तं दुर्निरीक्षणम्॥ ६॥
प्रवेशो हि ततस्तेन विहितो रविसूनुना। पापिष्ठानां नृशंसानां कव्यादानां दुरात्मनाम्॥ ७॥
पापानां चैव सर्वेषां ये चान्ये घातकारकाः। औदुम्बरमवीचीकमुच्चावचमनःकृतम् ॥ ८॥

पुण्यशाली मनुष्य के लिए वहाँ प्रवेश है। गर्मी से युक्त सभी दोषों से युक्त जिसका दर्शन भयंकर है जो दक्षिण दिशा की ओर लोहे के दरवाजा से युक्त है। भयंकर है, भय देनेवाला है, जल रहा है बड़ी कठिनाई से देखा जाता है। धर्मराज ने पापी, क्रूर दानव, दुरात्मा जैसे जीव के प्रवेश के लिए बनाया है। पापियों और घात करने वाले आगे जो अन्य लोग हैं ऊँची-नीची तथा पाप करने वालों के लिए हैं॥ ५—८॥

गोपुरं पश्चिमं तच्च दुर्निरीक्षं समन्ततः। महता वह्निजालेन समालिप्तं भयानकम्॥ ९॥
दुष्कृतीनां प्रवेशार्थं यमेन विहितं स्वयम्। तस्मिन् पुरवरे रम्ये रम्या परम शोभना॥ १०॥
सर्वरत्नमयी दिव्या वैवस्वतनियोजिता। सभा परमसम्पन्ना धार्मिकैः सत्यवादिभिः॥ ११॥
जितक्रोधैरलुब्धैश्च वीतरागैस्तपस्विभिः। सा सभा धर्मयुक्तानां सा सभा पापकारिणाम्॥ १२॥

चारो ओर से कठिनता पूर्वक देखे जाने वाले पश्चिम दिशा की ओर प्रवेश द्वार बनाया गया है। यमराज ने स्वयं उन पापियों के लिए बनाया है उस नगरी में परम् सुन्दर, सभी रत्नमयी, दिव्य, नियोजित, परम् सम्पन्न, सत्यवादी धार्मिकों के लिए एक सभा है। जिसने क्रोध को जीत लिया है जो लोभी नहीं है, जो वितरागी है, तपस्वी है, उनके लिए है और वही सभा पाप कर्म करने वालों के लिये है॥ ९—१२॥

सा सभा सर्वलोकस्य शुभस्यैवाशुभस्य च। कर्मणा सूचितस्याथ सा सभा धर्मसंहिता॥१३॥
अनिवर्त्य यथा कर्म शास्त्रदृष्टेन कर्मणा। निर्विशङ्का निराक्षेपा धर्मज्ञा धर्मपाठकाः॥१४॥
चिन्तयन्ति च कार्याणि सर्वलोकहिताय ते। यथादृष्टं यथाशास्त्रं यथाकालनिवेदकाः॥१५॥
ततः सर्वे च तत्सर्वं चिन्तयन्ति सुयन्त्रिताः। मनुः प्रजापतिश्चैव पाराशर्यो महामुनिः॥१६॥
अत्रिरौद्दालकिश्चैव आपस्तम्बश्च वीर्यवान्। बृहस्पतिश्च शुक्रश्च गौतमश्च महातपाः॥१७॥
शङ्खश्चलिखितश्चैव ह्याङ्गिरा भृगुरेव च। पुलस्त्यः पुलहश्चैव ये चान्ये धर्मपाठकाः॥१८॥
यमेन सहिताः सर्वे चिन्तयन्ति प्रतिक्रियाम्। सर्वे च कामप्रचुरा ये दिव्या ये च मानुषाः॥१९॥
कुण्डलाभ्यां पिनद्धाभ्यामङ्गदाभ्यां महातपाः। भ्राजते मुकुटस्तस्य ब्रह्मदत्तो महाद्युति॥२०॥

वह सभा सभी लोक के शुभ-अशुभ कर्मों को सूचित करती है तथा धर्म से परिपूर्ण है। शास्त्र के नियमानुसार कर्म के अनुसार शंका रहित होकर, अपेक्षारहित, धर्मज्ञ, धर्म के पाठ करने वाले, सभी लोक के हित चाहने वाले व सभी के कर्मानुसार चिन्ता करते हैं। जैसा देखा, शास्त्रानुसार काल के कहने के अनुसार नियमानुसार सभी प्राणियों की चिन्ता करते हैं। मनु, प्रजापति, महामुनी पराशर, अत्रि औद्दालक, वीर्यवान् आपस्तम्व, बृहस्पति, शुक्र तपस्वी गौतम, शंख लिखित हैं जिनके पास ऐसे अङ्गिरा भृगु, पुलह तथा अन्य जितने धर्म परायण हैं, वे सभी लोग यमराज के साथ प्राणियों के कर्म के बारे में सोचते हैं। जो मनुष्य उत्तम हैं, कर्म को निष्ठा से करते हैं, उन महातपस्वियों का कुण्डल, बाजूबंद, कान्तिमान मुकुट जो ब्रह्माजी द्वारा दिया गया है, सुशोभित होता है॥ १३—२०॥

तेजसा वचसा चैव दुर्निरीक्ष्यो महाबलः। एकस्थमिव सर्वेषां तेजस्तेजस्विनां तदा॥२१॥
तस्य पार्श्वे महादिव्या ऋषयो ब्रह्मवादिनः। दीप्यमानाः स्ववपुषा वेदवेदाङ्गपारगाः॥२२॥
वेदार्थानां विचारज्ञाः सत्यधर्मपुरस्कृताः। छन्दःशिक्षाविकल्पज्ञाः सर्वशास्त्रविकल्पकाः॥२३॥
निरुक्तमतिवादाश्च सामगान्धर्वशोभिताः। धातुवादाश्च विविधा निरुक्ताश्चैव नैगमाः॥२४॥

वहाँ पर महाबलशाली कठिनता से देखे जाने वाले हैं, उनका तेज एवं वाणी दिव्य है, एक स्थान पर वे सभी अत्यन्त तेजवान लगते हैं। उनके पास में ब्रह्मवादी, तेजस्वी, तपस्वी, अपने शरीर से प्रकाशित एवं वेद, वेदांग में पारंगत, वेद एवं उसके अर्थ को जानने वाले, विचारक, सत्य और धर्म का पालन करने वाले, छन्दशास्त्र, तर्कशास्त्र के ज्ञाता, सभी शास्त्रों के ज्ञाता, निरुक्तशास्त्र, बुद्धिके अनुसार कार्य करने वाले, सामवेद, गायन से शोभित, धातु के ज्ञाता, अनेक निरुक्तशास्त्र के ज्ञाता, वेद के ज्ञाता हैं।॥ २१—२४॥

तत्र चैव मया दृष्टा ऋषयः पितरस्तथा। भवने धर्मराजस्य प्रगायन्तः कथाः शुभाः॥२५॥
तस्य पार्श्वे मया दृष्टः कृष्णवर्णो महाहनुः। उत्तमः प्रकृताकार उर्द्धरोमा निराकृतिः॥२६॥
वामवाहुश्च दण्डेन प्रवरेण समन्वितः। विकृतास्यो महादंष्ट्रो नित्यक्रुद्धो भयानकः॥२७॥
शिक्षार्थे धर्मराजेन सन्दिष्टः स पुनःपुनः। शृणोति चैव कालोऽसौ नित्ययुक्तः सनातनः॥२८॥

(वाराहपुराण, अध्याय-१९७)

वहाँ पर ऋषि एवं पितर लोगों को मैंने देखा जो 'धर्मराज' के भवन में शुभ देने वाली कथा का गायन करते हैं। उन्हीं के पास में काले वर्ण के बड़ी ठुड्डी वाले, उत्तम प्रकृति वाले, उर्द्धरोम वाले, आकृति रहित, बायें हाथ में सुन्दर दण्ड धारण किये हुये, विकृत मुख वाले बड़े-बड़े दाँत वाले, नित्य क्रुद्धों और भयानक को देखा। धर्मराज के द्वारा बार बार शासन हेतु निर्देश दिये जाते हैं, ऐसा मैंने देखा, ऐसा सुना जाता है कि वह 'काल' जो सनातन हैं॥ २५—२८॥

× × ×

लोकशासक महाकालचित्रगुप्त द्वारा सभी प्राणियों के हन्ता यमदूतों का वध कराना

भगवान् चित्रगुप्त के आदेश पर दयालु यमदूत जब किसी मनुष्य का प्राण हरण करते थे तो कोई विधवा, कोई अनाथ तो कोई पुत्र विहीन हो जाता था। यमदूतों ने विचार किया कि हम चल कर अपने स्वामी चित्रगुप्त से याचना करते हैं कि वो हमें किसी और कार्य पर लगा दें। यमदूतों के टालने की मंशा को जान कर भगवान् चित्रगुप्त अत्यन्त क्रोधित हुये, तत्क्षण उनके क्रोध से मन्देह नामक राक्षस उत्पन्न हो गये। भगवान् चित्रगुप्त के आदेश से मन्देहों ने कार्य में विघ्न डालने वाले यमदूतों का वध कर दिया। वाराहपुराण का सन्दर्भ इस प्रकार है—

☞ संदर्भित श्लोक-भगवान् चित्रगुप्त सभी प्राणियों के संहारकर्ता तथा कल्याणकर्ता हैं [श्लोक ७-८], भगवान् चित्रगुप्त द्वारा मन्देह राक्षसों को यमदूतों के वध का आदेश देना [श्लोक १३-१४½]।

ऋषि उवाच—

ततस्ते सहिताः सर्वे चान्योऽन्याभिरताः सदा। नानावेषधरा दूताः कृताञ्जलिपुटास्तदा॥ १॥

नचिकेता ऋषि बोले—इसके बाद वे दूत निरन्तर आपस में एक दूसरे के साथ मिलकर, अनेक वेष धारण किए हुए हाथ जोड़कर चित्रगुप्तजी से बोले॥ १॥

दूता उचुः—

वयं श्रान्ताश्च क्षीणाश्च ह्यन्यान् योजितुमर्हसि। वयमन्यत्करिष्यामः स्वामिन्कार्ये सुदुष्करम्॥ २॥
अन्ये हि तावत्तत्कुर्युर्यथेष्टं तव सुव्रत। भगवन्स्म परिक्लिष्टाः त्राहि नः परमेश्वर॥ ३॥
ततो विवृत्तरक्तक्षस्तेन वाक्येन रोषितः। विनिःश्वस्य यथा नागो ह्यपश्यत्सर्वतो दिशम्॥ ४॥
अदूरे दृष्टवान् कंचित्पुरुष सह्यनाकृतिम्। स तु वेगेन सम्प्राप्त इङ्गितज्ञो दुरात्मवान्॥ ५॥
निःसृतः स च रोषेण चित्रगुप्तेन धीमता। ततः स त्वरितं गत्वा मन्देहा नाम राक्षसाः॥ ६॥
नानारूपधरा घोरा नानाभरणभूषिताः। विनाशाय महासत्वो यत्र तिष्ठन्महायशाः॥ ७॥
चित्रगुप्तो महाबाहुः सर्वलोकार्थचिन्तकः। समः सर्वेषु भूतेषु भूतानां च समादिशत्॥ ८॥
ततस्ते विविधाकारा राक्षसाः पिशिताशनाः। उपरूह्य तथा सर्वे मातंगांश्च हयं तथा॥ ९॥
बद्धगोधाङ्गुलित्राणा नानायुधधरास्तया। अग्रतः किंकराः कृत्वा तिष्ठन्पादाभिवन्दनम्॥ १०॥
बुवन्तश्च पुनर्हृष्टाः शीघ्रमाज्ञापय प्रभो। तव सन्देशकर्त्तारः कस्य कृन्ताम जीवितम्॥ ११॥

दूतों ने कहा—हे स्वामी! हम लोग थके हुए हैं, आप इस कार्य हेतु दूसरे लोगों को लगा दीजिए। हे सुब्रत हम लोग कोई दूसरा दुष्कर कार्य कर देंगे, हम लोग अत्यन्त थके हैं, हे भगवन्! हे परमेश्वर! इससे हमारी रक्षा कीजिए। यमदूतों के वाक्य को सुनकर चित्रगुप्तजी क्रोधित हो गये, लाल-लाल नेत्रों से युक्त होकर लम्बी साँस लेने लगे, जैसे सर्प फुत्कार मारता हुआ चारो ओर देखता है। उसी क्षण कुछ दूर पर एक स्वरूप रहित पुरुष दिखाई दिया, वह इशारे से और वेग से इधर ही आ रहा था। वह मन्देह नामक राक्षस शीघ्र आकर क्रोधित धीमान् (बुद्धिमान) चित्रगुप्तजी से बोला! अनेक वेषधारण करने वाले, अनेक आभूषण से विभूषित, हे महान यशवाले सभी प्राणियों का विनाश करने वाले, हे चित्रगुप्त महाबाहु! आप सर्वलोक के लिये हित-चिन्तक हैं, आप सभी प्राणियों के कल्याण हेतु आदेश देते हैं। इसके बाद अनेक रूपवाले, मांस भक्षण करने वाले राक्षस घोड़े एवं हाथी पर बैठकर हाथ की अँगुली के कवच को धारण करके हाथ में अनेक हथियार लेकर किंकर को आगे करके चित्रगुप्तजी का अभिवादन करके प्रसन्न होकर बोला, हे प्रभो! आज्ञा दीजिए किसके जीवन का अन्त करना है॥ ६—११॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा चित्रगुप्तो ह्यभाषत। रोषगद्गदया वाचा निःश्वसन्वे मुहुर्मुहुः॥१२॥
भो भो मन्देहका वीराः मम चित्तानुपालकाः। एतान्बध्नीत गृहीत भूतराक्षसपुंगवाः॥१३॥
एवं हत्वा च बद्धा च ह्यागच्छत पुनर्यथा। हन्तारः सर्वभूतानां कृतज्ञा दृढविक्रमाः॥१४॥
हत्वा वै पापकानेतान्मम विप्रियकारिणः। एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य वचनं चेदमब्रुवन्॥१५॥

उनके वचन को सुनकर चित्रगुप्तजी क्रोध से बार-बार निःश्वास लेते हुए बोले। मेरी आज्ञा मानने वाले मन्देहक वीर, तुम राक्षसों में श्रेष्ठ हो, इन **भूतों (यमदूतों)** को तुम पकड़कर बांध दो। तुम उन लोगों को बांधकर मार दो, तुम सभी प्राणियों के हन्ता हो, दृढ़ निश्चयी हो। इन पापी यमदूतों को मारो, जो मेरी अप्रसन्नता के कारण हैं। यह सुनकर वे राक्षस चित्रगुप्तजी से बोले॥ १२—१५॥

☞ पुत्रहीन एवं पापी प्रेत को पहले नरक में शुद्ध करके **यमदूत** बनाया जाता है। इसलिये यमदूतों को श्लोक-13 में भूत कहा गया है। यह उद्धरण गरुडपुराण अध्याय-१८, श्लोक-३४ में विद्यमान् है।

राक्षसा ऊचुः-

श्रान्ता वा क्षुधिता वापि दुःखिता वा तपोधनाः। अमात्या एव ज्ञातव्या भृत्याः शतसहस्रशः॥१६॥
एते वधार्थे निर्दिष्टास्त्वयैव च महात्मना। न युक्तं विविधाकारा ह्यस्माकं नाशनाय वै॥१७॥
यथा ह्येते समुत्पन्नाः सर्वधर्मानुचिन्तकाः। तथा वयं समुत्पन्नस्तदर्थे हि भवानपि॥१८॥
मा न मिथ्या प्रतिज्ञातं धर्मिष्ठस्य भवत्विति। अस्माकं विग्रहे वीर मुच्यन्तां यदि मन्यसे॥१९॥
परित्रायस्व नो वीर किंकराणां महाबलान्। हन्यमानान्हि रक्षोभिरस्मानद्य रणाजिरे॥२०॥

(वाराहपुराण, अध्याय-२०१)

मन्देह राक्षस बोले— श्रान्त हो, भूखा हो या तपस्वी हो, मन्त्री हो, जानने योग्य हो, ऐसे हजारों सेवक आपके हैं। इन लोगों का वध करने हेतु आपने लगाया है यह उचित नहीं है। जिस प्रकार सभी धर्म की चिन्ता हेतु इन लोगों की उत्पत्ति हुई है इसी प्रकार आप और हम लोग सभी की चिन्ता करने हेतु उत्पन्न हुए हैं। हम लोग झूठ में प्रतिज्ञा न करें क्योंकि हम लोग धर्म के लिए हैं। हे वीर! यदि आप हमारी बात माने तो इनको छोड़ दें। हे वीर महाबलशाली इन किंकरों (यमदूतों) की रक्षा कीजिए। इस युद्ध में राक्षसों द्वारा किंकर (यमदूत) मारे जायेंगे॥ १६—२०॥

इसके बाद भगवान् चित्रगुप्त की आज्ञा से मन्देहों ने लाखों यमदूतों को मार डाला। जिसका वर्णन इसी ग्रन्थ में विस्तार से सम्पूर्ण अनुवाद के साथ दिया गया है।

× × ×

लोक का विधान लोकशासक महाकालचित्रगुप्त द्वारा बनाया गया है, जिसका अनुपालन यमराज द्वारा कराया जाता है

लोक का विधान (सनातन नियम) भगवान् चित्रगुप्त का ही बनाया हुआ है। इन्हीं नियमों के अनुसार यमदूतों द्वारा लोक में अकाल मृत्यु (पुत्र-पुत्री, पति-पत्नी, बन्धु-बान्धवों की अकाल मृत्यु), अङ्गहीन, कर्कटरोग, हृदयरोग, वातरोग, मधुमेहरोग, रक्तरोग, यौनरोग जैसे साध्य-असाध्य रोग देकर प्राणियों को कष्ट एवं मृत्यु देकर विधान का पालन किया जाता है। वाराहपुराण का सन्दर्भ इस प्रकार है—

ऋषिरुवाच–

विस्मयस्तु मया दृष्टस्तस्मिन्नद्भुतदर्शनः। चित्रगुप्तस्य सन्देशो धर्मराजेन धीमतः॥ १॥
प्राप्नुवन्ति फलं ते वै ये च क्षिप्ताः पुरा जनाः। अग्निना वै प्रतप्तास्ते बद्धा बन्धैः सुदारूणैः॥ २॥
सन्तप्ता बहवो ये ते तैस्तैः कर्मभिरूल्बणैः।

नचिकेता बोले—वहाँ अद्भुत दर्शन वाले बुद्धिमान चित्रगुप्तजी द्वारा धर्मराज के लिये कहे गये सन्देश को जो मैंने सुना, उसे सुनकर मैं विस्मय में पड़ गया। जो लोग उस नरक में डाले गये है, वे लोग कर्म के अनुसार भोग भोगते हैं। भयंकर बन्धन में बाँधकर उस पापात्मा को अग्नि से जलाये जाते हैं। वे लोग कर्म के अनुसार उन पापात्माओं को कठिन से कठिन कष्ट देते हैं॥ १—½॥

श्यामाश्च दशनाभिर्ये त्विमं शीघ्र प्रमापय॥ ३॥
दुराचारं पापरतं निर्घृणं पापचेतसम्। श्वानस्तु हिंसका ये च भक्षयन्तु दुरात्मकम्॥ ४॥
पितृघ्नो मातृगोघ्नस्तु सर्वदोषसमन्वितः। आरोप्य शाल्मलीं घोरां कण्टकैस्तैर्विपाटय॥ ५॥
एनं पाचय तैलस्य घृतक्षौद्रस्य वा पुनः। तप्तद्रोण्यां ततो मुञ्च ताम्रतप्तखले पुनः॥ ६॥
नराधममिमं क्षिप्त्वां प्रदीप्ते हव्यवाहने। ततो मनुष्यतां प्राप्य ऋणैस्तत्र प्रदीप्यते॥ ७॥
शयनासनहर्त्तारमग्निदायी च यो नरः। वैतरण्यामयं चैव क्षिप्यतामचिरं पुनः॥ ८॥
पापकर्मायमत्यर्थं सर्वतीर्थविनाशकः। तस्य प्रदीप्तः कीलोऽयं वाह्नितप्तोऽतिदुःस्पृशः॥ ९॥
आदेश्य चोभयोरस्य कर्णयोः कूटसाक्षिकः। यो नरः पिशुनः कूट साक्षी चालीकजल्पकः॥ १०॥
ग्रामयाजकं विप्रमध्रुवं दांभिकं शठम्। वद्धा तु बन्धने घोरे दीयतां तु न किंचन॥ ११॥
जिह्वाऽस्य छिद्यतां शीघ्रं वाचा दुष्टस्य पापिनः। गम्यागम्यं पुरा येन विज्ञातं न दुरात्मना॥ १२॥
कृतं लोभाभिभूतेन कामसम्मोहितेन च। तस्य च्छित्वा ततो लिंगं क्षारमग्निं च दीपय॥ १३॥

चित्रगुप्तजी बोले-काले दाँतों के द्वारा इनको काटो, जो दुराचारी है, पाप में लीन है, दया रहित है, ऐसे पाप हृदय वाले जीव को हिंसक कुत्तों से भक्षण कराओ। जो पितृ घाती है, मातृ घाती है, सभी दोष से युक्त हैं, उन जीव को काँटेदार सेमर के वृक्ष पर चढ़ाकर काट दो। इनको तेल में पकाओ, गर्म घी में डाल दो। जलती नदी में तथा जलते ताँबे के ओखल में डाल दो। इस नीच जीव को जलती आग में डाल दो। यह मनुष्य होकर ऋण खाया है, इसको जला दो। जो शयन, आसन को हरण करने वाला है, जो दूसरे के घर को आग लगा दिया है, उसको शीघ्र वैतरणी नदी में डाल दो। यह जीव पाप कर्म में लगा था, सभी तीर्थों का अपमान एवं नाश करने वाला है, इसको जलाते हुए अत्यन्त दुःख देने वाले कील से छेद करो अर्थात् इसे जलाओ। इसके दोनों कान असत्य सुनते हैं, ऐसा व्यक्ति जो क्रूर, झूठी गवाही देता है, झूठ बोलता है, गाँव में यज्ञ कराने वाला (ग्राम पुरोहित जो सभी जातियों का संस्कार कराने वाला) विप्र, अध्रुवं-अस्थिर

वचन का पालन न करने वाला है, यह अहंकारी है, दुष्ट है, यह किसी को कुछ नहीं देता, इसको बन्धन में बाँध दो, इस झूठ बोलने वाले पापी की जिह्वा छेद दो। यह दुष्ट आत्मा वाले को कहाँ जाना चाहिए कहाँ नहीं इसका ज्ञान नहीं है, जो लोभ के वशीभूत है और काम के मोह में है, उसके लिंग को काट कर क्षार अग्नि में जला दो॥ ३—१३॥

इमं तु खलकं कृत्वा दुरात्मा पापकारिणम्। दायादा बहवो येन स्वार्थहेतोर्विनाशिताः॥ १४॥
इमं वार्धुषिकं विप्रं सर्वत्रांगेषु भेदय। तथायं यातनां यातु पापं बहु समाचरन्॥ १५॥
सुवर्णस्तेयिनं पापं कृतघ्नं च तथा नरम्। क्रूरं पितृहणं चैनं ब्रह्मघ्नेषु समीकुरु॥ १६॥

यह खल का काम किया है, यह पापी है, दुष्टात्मा है, अपने स्वार्थ के कारण दया को नही किया है। इस सूदखोर के सभी अंग को छेद दो। यह बहुत सा पाप किया है, इसे अधिक यातना दो। यह सोने का चोरी किया है, कृतघ्न है, क्रूर है, पिता का हत्यारा है, यह ब्राह्मण की हत्या किया है, इसे दण्ड दो॥ १४—१६॥

अस्थि च्छित्वा ततः क्षिप्रं क्षारमग्निं च दापय। इमं तु विप्रं खादन्तु तीक्ष्णदंष्ट्राः सुदारुणाः॥ १७॥
पिशुनं हि महाव्याघ्राः पंच घोराः सुदारुणाः। इमं पचत पाकेषु बहुधा मर्मभेदिनम्॥ १८॥
येनाग्निरुज्झितः पूर्वं गृहीत्वा च न पूजितः। इमं पापसमाचारं वीरघ्नमतिपापिनम्॥ १९॥
कर्कटस्य तु घोरस्य नित्यक्रुद्धस्य मोचय। इमं घोरे ह्रदे क्षिप्तं सर्वयाजनयाजकम्॥ २०॥

इसके हड्डी को काटकर **क्षार के अग्नि में डाल दो**। कठोर एवं तेज दाँत वाले हिंसक जीव इसको खा जावें, इस चुगलखोर को बड़े सिंह कठोर दण्ड दें। इस मर्मभेदी अर्थात गोपनीय बात को प्रचारित करने वाले को आग में पका दो, इसे अग्नि में छोड़ दो। वीर पुरुष को मारने वाले इस पापी ने जो पाप किया, उसको बताओ। इसे भयंकर क्रोधित केकड़े (Cancer) के पास इसे छोड़ दो। यज्ञ को न करने वाले इस प्राणी को गहरी नदी में डाल दो॥ १७—२०॥

सर्वेषां तु पशूनां यो नित्यं धारयते जलम्। न त्राता न च दाता च पापस्यास्य दुरात्मनः॥ २१॥
अदानव्रतिनो विप्रा वेदविक्रयिणस्तथा। सर्वकर्माणि कुर्युर्ये दीयते न च किंचन॥ २२॥
तोयभाजनहर्त्तारं भोजनं योऽनिवारयन्। हन्यतां सुदृढैर्दण्डैर्यमदूतैर्महाबलैः॥ २३॥
वेणुदण्डकशाभिश्च लोहदण्डैस्तथैव च। जलमस्मै न दातव्यं भोजनं च कथंचन॥ २४॥
तस्मा अन्नं च पानं च न दातव्यं कदाचन। हत विश्वास्य हन्तारं वह्नौ शीघ्र प्रपाचय॥ २५॥
ब्रह्मदेयं हृतं येन तं वै शीघ्रं विपाचय। बहुवर्षसहस्राणि पातये कर्मविस्तरे॥ २६॥

जो नदी में सभी जीवों को पकड़ता है, जिस पापी ने कभी किसी की रक्षा नहीं की है, न कभी किसी को कुछ दिया है, दान नहीं दिया है, व्रत नहीं किया है, वेद के मन्त्रों को जो ब्राह्मण दुरूपयोग किया है, किसी को कुछ नहीं दिया तथा सभी कुत्सिक कार्य किया है, जलपात्र की चोरी किया, भोजन से सबको हटा दिया, इसे बलशाली यमदूतों द्वारा कठोर दण्ड दो। बाँस के दण्ड से, लोहे के दण्ड से, इसे दण्ड दो, यह कभी किसी को फल एवं भोजन नहीं दिया है। इसलिए इसको भी अन्न-जल मत दो, विश्वासघाती है, इसे अग्नि में शीघ्र पका दो, भगवान् के मन्दिर में जो चोरी किया है, शीघ्र इसके कर्म के अनुसार हजारों वर्षों तक इस नरक में गिरा दो॥ २१—२६॥

समुत्तीर्णं ततः पश्चात्तिर्यग्योनौ प्रपातये। सूक्ष्मदेहविपाकेषु कीटपक्षिविजातिषु॥ २७॥
क्लिष्टो जातिसहस्त्रैस्तु जायते मानुषस्ततः। तत्र जातो दुरात्मा च कुलेषु विविधेषु च॥ २८॥

हिंसारूपेण घोरेण ब्रह्मवध्यां प्रदापयेत्। राज्ञस्तु मारकं घोरं ब्रह्मघ्नं दुष्कृतं तथा॥ २९॥
सुवर्णस्तेयिनं चैव सुरापं चैव कारयेत्। अनुभूय ततः काले ततो यक्ष्म प्रयोजयेत्॥ ३०॥
गोघातको ह्ययं पापः कूटशाल्मलि मारुहेत्। कृष्यते विविधैर्घोरै राक्षसैर्घोरदर्शनैः॥ ३१॥
पूतिपाकेषु पच्येत जन्तुभिः संप्रयोजितः। ब्रह्मबध्याच्चतुर्भागैर्मृगत्वं पशुतां गतः॥ ३२॥
उद्विग्नवासं पतितं यत्र यत्रोपपद्यते। पापकर्मसमुद्विग्नो जातो जातः पुनःपुनः॥ ३३॥

इस कर्म से मुक्त होकर वह पक्षी के योनि में जन्म ले तथा सूक्ष्म शरीर के कारण कीट, पतंग आदि योनी में जाये। अनेक जातियों में भ्रमण करके पुनः मनुष्य योनि में जाये। यह दुरात्मा अनेक कुलों में जन्म ले। यह ब्रह्महत्या का घोर पाप किया है, सोना चुराने वाला, सुरा का पान किया, सभी समय का अनुभव करने वाले ऐसे पापी को क्षय (टी०वी०) जैसे रोग दो। गाय का वध करने वाले इस पापी को काँटे वाले सेमर के वृक्ष पर चढ़ा दो। जिनका दर्शन भयंकर है ऐसे राक्षसों द्वारा खींचा जाये। जन्तुओं के द्वारा प्रयोग में लाये गये अग्नि में पकाओ। ब्राह्मण के वध के पाप में जीवन के चार भाग मृग के योनी में जाये। पाप कर्म करने के कारण जिस-जिस योनि में जाये, वहाँ-वहाँ वह उद्विग्न ही रहे॥ २७—३३॥

अयं तिष्ठति किं पापः पितृघाती दुरात्मवान्। ते तु वर्षेशतं साग्रं भक्षयन्तु विचेतसः॥ ३४॥
ततः पाकेपु घोरेषु पच्यतां च नराधम्। ततो मानुषतां प्राप्य गर्भस्थो म्रियतां पुनः॥ ३५॥
व्यापन्नो दशगर्भेषु ततः पश्चाद्विमुच्यताम्। तत्रापि लब्ध्वा मानुष्यं क्लेशभागी च जायताम्॥ ३६॥
बुभुक्षारुग्विकारैश्च सततं तत्र पीड्यताम्। पापाचारमिमं घोरं मित्रविश्वासघातकम्॥ ३७॥
यन्त्रेण पीड्यतां क्षिप्रं ततः पश्चाद्विमुच्यताम्। दीप्यतां ज्वलने घोरे वर्षाणां च शतद्वयम्॥ ३८॥
जायतां च ततः पश्चाच्छुनां योनौ दुरात्मवान्। भ्रष्टोऽपि जायतां तस्मान्मानुषः क्लेशभाजनः॥ ३९॥
प्राप्तवान्विविधान्रोगान्संसारे चैव दारुणान्। ब्रह्मस्वहारी पापोऽयं नरो लवणतस्करः॥ ४०॥
वर्षाणां तु शतं पंच तत्र क्लिष्टो दुरात्मवान्। कृमिको जायते पश्चाद्विष्ठायां कृमिकोऽपरः॥ ४१॥

यह पितृघाती पापी यहाँ बैठा है, यह सौ वर्ष तक निश्चेष्ट हो, उसके बाद घोर अग्नि में यह पकाया जाये, उसके बाद मनुष्य योनि में जाये और वहाँ गर्भ में ही बार-बार मर जाये, दस बार गर्भ में मरने के बाद उससे छुटकारा मिले, वहाँ भी मनुष्य योनि पाकर अनेक कष्ट भोगे, वह भूख, रोग, विकार से सर्वदा पीडित रहे। यह मित्र से विश्वासघात जैसा महापाप करे। इसे कोल्हू में चलकर गन्ने की तरह पीसने के बाद इसे छोड़ दो और दो सौ वर्ष तक प्रदीप्त आग में इसे जलाओ। इसके बाद यह दुरात्मा कुत्ते की योनि में उत्पन्न हो, वहाँ भ्रष्ट होकर अनेक कष्ट पाये। तत्पश्चात् मनुष्य योनि में आकर अनेक रोग से ग्रसित रहे। ब्राह्मण के धन को चुराने वाला यह पापी नमक की चोरी करेगा, पाँच सौ वर्ष तक उस योनि में कष्ट से रहे, उसके बाद विष्ठा का कीड़ा हो॥ ३४—४१॥

शकुन्तो जायते घोरस्तत्र पश्चाद्बको भवेत्। इममग्निप्रदं घोरं काष्ठाग्नौ सम्प्रतापय॥ ४२॥
स्वकर्मसु विहीनेषु पश्चाल्लब्धगतिस्तथा। ततश्चाथ मृगो वापि ततो मानुषतां व्रजेत्॥ ४३॥
तत्रापि दारुणं दुःखमुपभुंक्ते दुरात्मवान्। सर्वदुष्कृतकार्येषु सह संघातचिन्तकैः॥ ४४॥
एवं कर्मसमायुक्तास्ते भवन्तु सहस्त्रशः। परद्रव्यापहाराश्च रौरवे पतितास्तथा॥ ४५॥
कुम्भीपाकेषु निर्दग्धः पश्चाद्गर्दभतां गतः। ततो जातस्त्वसौ पापः शूकरो मलभुक्तथा॥ ४६॥
प्राप्नोतु विविधांस्तापान्यथा हृतधनश्च सन्। क्षुधातृष्णापराक्रान्तो गर्दभो दशजन्मसु॥ ४७॥
मानुष्यं समनुप्राप्य चौरो भवति पापकृत। परोपघाती निर्लज्जः सर्वदोषसमन्वितः॥ ४८॥

इसके बाद पक्षी होगा पुनः भेड़िया हो, उस योनि में भी अनेक दुःख भोगे। यह पापी निरन्तर दुष्कृत कार्य ही किया है, अतः आतंकियों जैसा हो। इस प्रकार हजारों वर्षों तक इस क्रम में पड़ा रहे। दूसरे के धन का अपहरण करने के कारण रौरव नामक नरक में जाये। कुम्भीपाक नरक में जलने के बाद गधे की योनि में जाये। इसके बाद मल खाने वाले सुकर की योनि में जाये। जैसे किसी का धन समाप्त हो जाता है और कष्ट को भोगता है उसी प्रकार वहाँ वह कष्ट पाये। भूख, प्यास से आक्रान्त होकर दस जन्म तक गधा हो। पुनः मनुष्य योनि में जाकर चोरी का कार्य करे। वह दूसरे पर दोष लगाये और लज्जा हीन होकर सभी दोषों से युक्त हो॥ ४२—४८॥

वृक्षशाखावलम्बोऽत्र ह्यधःशीर्षः प्रजायते। अग्निना पच्यतां पश्चाल्लुब्धो वै पुरुषाधमः॥ ४९॥
ततो वर्षशते पूर्णे मुच्यते स पुनः पुनः। अजितात्मा तथा पापः पिशुनश्च दुरात्मवान्॥ ५०॥
पूर्वैश्च सूकरो भूत्वा नकुलो जायते पुनः। विमुक्तश्च ततः पश्चान्मानुष्यं लभते चिरात्॥ ५१॥
धिक्कृतः सर्वलोकेन कूटसाक्ष्यनृतव्रतः। न शर्म लभते क्वापि कर्मणा स्वेन गर्हितः॥ ५२॥
इमं ह्यानृतिकं दुष्टं क्षेत्रहारकमेव च। स्वकर्म दुष्कृतं यावत्तावद्दुःखं भुनक्त्वसौ॥ ५३॥

वृक्ष की शाखा पर नीचे सिर करके लटकाया जाये। उसके बाद वह पुरुषों में नीच लोभी अग्नि में पकाया जाये। इस अजितात्मा, पापी, क्रूर जीव को बार-बार इस प्रकार की यातना सहनी पड़े। पहले की भाँति सूकर के बाद नेवले की योनि में जाये। बहुत दिनों के बाद पुनः मनुष्य योनी में जन्म ले। झूठी गवाही देना, झूठ बोलना उस जीव की आदत हो, जिससे समाज में उसकी निन्दा हो, अपने निन्दित कर्म करने के कारण उसे लज्जा नहीं हो। यह दुष्ट जीव असत्यवादी, दूसरे की जमीन हड़प करने वाला अपने दुष्कर्म से अनेक दुःखों को भोगता रहे॥ ४९—५३॥

कर्मण्येकैकशश्चायं स तु तिष्ठत्वयं पुनः। वर्षलक्षं न सन्देहस्ततस्तिष्ठत्वयं पुनः॥ ५४॥
ततो जातीः स्मरेत्सर्वास्तिर्यग्योनिं समाश्रितः। जायतां मानुषः पश्चात्क्षुधया परिपीडितः॥ ५५॥
सर्वकामविमुक्तस्तु सर्वदोषसमन्वितः। क्वचिज्जात्यां भवेदन्धः क्वचिद्बधिर एव च॥ ५६॥
क्वचिन्मूकश्च काणश्च क्वचिद्व्याधिसमन्वितः। एवं हि प्राप्नुयाद्दुःखं न च सौख्यमवाप्नुयात्॥ ५७॥
जात्यन्तरसहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च। शान्तिं न लभते चैव भूमे क्षेत्रहरो नरः॥ ५८॥
तीव्रैरन्तर्गतैर्दुःखैर्भूमिहर्त्ता नराधमः। इमं बन्धैर्दृढैबद्ध्वा विपाचय तथाचिरम्॥ ५९॥

अपने कर्मो के कारण एक-एक योनि में जाये, ऐसा एक लाख वर्ष तक इन योनियों में रहे, इसमें सन्देह नहीं है। पुनः अपने पूर्व जन्म के जाति को स्मरण करता हुआ पुनः पक्षी के योनियों में जन्म ले। पुनः मनुष्य योनि में उत्पन्न होकर भूख से दुःखित हो। सत्कर्म से दूर होकर सभी दोष से पूर्ण हुआ वह जीव किसी योनि में अन्धा, किसी में बहरा हो, कहीं गूँगा, कहीं काना, कहीं रोग से ग्रसित हो, इस प्रकार अनेक दुःखों को भोगता रहे, कहीं उसे सुख नहीं मिले। हजारों, लाखों और अरबों योनियों में भ्रमण करता हुआ दुःख को भोगता रहे। जो भूमि का अपहरण करता है, भूमि का अपहरण करने वाले व्यक्ति का मन निरन्तर दुःखी रहे, कभी भी शान्ति न पाये। ऐसे जीव को कठोर बन्धन में बाँधकर शीघ्र अग्नि में पका दो॥ ५४—५९॥

प्रबद्धः सुचिरं कालं मम लोकं गतो नरः। जायतां स चिरं पापो मार्जारस्तेन कर्मणा॥ ६०॥
तीव्रक्षुधापरिक्लिष्टो बद्धो बन्धनयन्त्रितः। दुःखान्यनुभवंस्तत्र पापकर्मा नराधमः॥ ६१॥
सप्तधा सप्त चैकां च जातिं गत्वा स पच्यते। इमं शाकुनिकं पापं श्वभिर्गृध्रैश्च घातय॥ ६२॥
ततः कुक्कुटतां यातु विड्भक्षश्च दुरात्मवान्। दंशश्च मशकश्चैव ततः पश्चाद्भवेत्तु सः॥ ६३॥

जातिकर्म सहस्त्रं तु ततो मानुषतां व्रजेत्। इमं सौकरिकं पापं महिषा घातयन्तु तम्॥ ६४॥
वर्षाणां च सहस्त्रं तु धावमानं ततस्ततः। विभिन्न च प्रभिन्नं च शृंगाभ्यां पद्भिरेव च॥ ६५॥
तस्माद्देशात्ततो मुक्तस्ततः सूकरतां व्रजेत्। महिषः कुक्कुटश्चैव जम्बूक एव च॥ ६६॥

ऐसा जीव मेरे पाश में बंधकर मेरे लोक (यमलोक) में बहुत दिन तक निवास करे। अधिक पाप होने के कारण वह बिल्ली के योनि में उत्पन्न हो। वह नीच पुरुष अपने पाप कर्मों के कारण तीव्र भूख से दुःखी हो और उसको पाश में बाँध दो, इस प्रकार अनेक कष्टों का अनुभव करे। **एक जाति में वह सात (७) बार क्रम से जन्म लेकर दुःख भोगे।** यह पक्षी, कुत्ता एवं गीध के मारने के पाप में मुर्गा के योनि में जाकर विष्ठा खाये। वह इसके बाद-दंश मारने वाला एवं मच्छर योनि में जन्म ले। हजारों योनि के बाद वह पुनः मनुष्य योनि में जन्म ले। उस पापी को सूअर और भैंसा मारे, इस प्रकार हजारों वर्ष तक अनेक प्रकार के सींग एवं पैरों से दौड़ता रहे। उस स्थान से मुक्त होकर सूअर के योनि में जन्म ले। पुनः भैंस, मुर्गा, खरगोश और सियार योनि में जन्म ले॥ ६०—६६॥

☞ श्लोक-६२, **भगवान् चित्रगुप्त द्वारा बनाये नियम के अनुसार प्राणी का पशु-पक्षी आदि से लेकर शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय तथा ब्राह्मण योनि में जाना प्रत्येक ७-७ जन्म का होता है। इसीलिये विवाह में ७ फेरे सात जन्म तक साथ निभाने के लिये कराये जाते हैं।**

यां यां याति पुनर्जातिं तत्र भक्ष्यो भवेत्तु सः। कर्मक्षयोऽन्यथा नास्ति मया पूर्वं विनिर्मितम्॥ ६७॥
प्राप्य मानुषतां पश्चात्पुनर्व्याधो भविष्यति। अन्यथा निष्कृतिर्नास्ति जातिजन्मशतैरपि॥ ६८॥
उच्छिष्टान्नप्रदातारं पापाचारमधार्मिकम्। अङ्गारैः पचतां चैनं त्रीणि वर्षशतानि च॥ ६९॥
भिन्नचारित्रदुःशीला भर्त्तुर्व्यलीककारिणी। आयसान्पुरुषान्सप्त ह्यालिङ्गतु समन्ततः॥ ७०॥
ततः शुनी भवेत्पश्चात्सूकरी च ततःपरम्। कर्मक्षये ततःपश्चान्मानुषी दुःखिता भवेत्॥ ७१॥
न च सौख्यमवाप्नोति तेन दुःखेन दुखिता। अनेन भृत्या बहवः श्रांताः शांताः प्रवाहिताः॥ ७२॥
भक्ष्यं भोज्यं च पानं च न तेषामुपपादितम्। अनुमोदे प्रजा दृष्ट्वा लिप्समानो दुरात्मवान्॥ ७३॥
एवं कुरुत भद्रं वो मम पार्श्वे तु दुर्मतिः। रौरवे नरके घोरे सर्वदोषसमन्विते॥ ७४॥
सर्वकर्माणि कुर्वाणं क्षपयध्वं दुरासदम्। वर्षाणां तु सहस्त्राणि तैस्तैः कर्मभिरावृतम्॥ ७५॥

जिस-जिस जाति में जन्म ले उस-उस जाति का भक्ष्य हो, कर्म के अनुसार फल का क्षय नहीं होता है, **चित्रगुप्तजी यमदूतों से बोले! मेरा यही पूर्व में बनाया नियम है।** पुनः मनुष्य योनि में बहेलिया बने। इस प्रकार सैकड़ों जाति में भ्रमण करने पर भी निश्पाप नहीं हो। यह जूठा भोजन के देने वाला, अधार्मिक पापी को तीन सौ वर्ष तक आग में पकाओ। जिसका चरित्र गिर गया हे, जो पर पुरुषगामी है, पति पर व्यर्थ का आरोप लगाती है, ऐसे जीव को गर्म लोहे के पुरुष से स्पर्श करा दो। इसके बाद वह कुतिया तथा बाद में सूकरी योनी में जन्म ले। पाप कर्म के कुछ क्षय होने पर मनुष्य योनि में जन्म लेकर दुःख भोगती रहे। उस पाप से निरन्तर दुःखी रहे, कभी सुख न प्राप्त करे। सेवकों के द्वारा ये श्रान्त है, भोजन जो उपयुक्त है, उसे खिलाने एवं पान करने के कारण भी सन्तुष्ट न हो। यह दुरात्मा प्रजा के अनुमोदन पर भी लालचवश दुःख भोगता है। वह सब करने वाला पापी मेरे पास (यमलोक) में रहे और सभी दोषों से युक्त रौरव नामक नरक में निवास करे। यहाँ सभी कर्मों को करते

हुए अपने समय को बिताये। उन-उन कर्मों के कारण एक हजार वर्ष तक उसी में घिरा रहे॥ ६७—७५॥

☞ लोक यमलोक सहित—देवलोक, मृत्युलोक तथा पाताललोक के धर्म-अधर्म का नियम भगवान् चित्रगुप्त का बनाया हुआ है।

प्रक्षिप्यतामयं पश्चाद्दस्युजातौ दुरात्मवान्। जायतामुरगः पश्चात्ततः कर्म समाश्रयेत्॥ ७६॥
ततः पश्चाद्भवेत्पापश्चेतरः सर्वपापकृत्। सूकरस्तु भवेत्पश्चान्मेषः संजायते पुनः॥ ७७॥
हस्त्यश्वश्च शृगालश्च सूकरो बक एव च। ततो जातस्तु सर्वेषु संसारेषु पुनःपुनः॥ ७८॥
वर्षाणामयुतं साग्रं ततो मानुषतां व्रजेत्। पंचगर्भेषु सापत्सु पंच जातो म्रियेत सः॥ ७९॥
अपौगण्डो म्रियेत्पंच कर्मशेषक्षये तु सः। ततो मानुषतां याति चैष कर्मविनिर्णयः॥ ८०॥
पापस्य सुकृतस्याथ प्रजानां विनिपातने। भूतानां चाप्यसांनं दुष्प्रहारश्च सर्वशः॥ ८१॥
अतः स्वयम्भुवा पूर्वं कर्मपाको यथार्थवत्॥ ८२॥

(वाराहपुराण, अध्याय-२०२)

इसके बाद वह डाकू का कार्य करे। अपने कर्मो के अनुसार पुनः सर्प योनि में जाये। उसमें जो पाप हो **उन सभी पापों के कारण सूकर योनि में, पुनः बैल के योनि में उत्पन्न हो। इस संसार में हाथी, घोड़ा, सियार, सूकर, बगुला योनि में एक लाख वर्ष तक रहे, पुनः मनुष्य योनी में जाये। पुनः पाँच बार गर्भ में ही मर जाये। कुमार अवस्था में ही मर जाये क्योंकि पाप कर्म का भोग शेष है।** पुनः मनुष्य योनि में जन्म ले। पाप और पुण्य करने के कारण यह गति प्राणी की होगी। **मनुष्य का अपमान और अनर्गल व्यवहार के कारण पूर्व कर्म के फल को यथावत भोगेगा**॥ ७६—८२॥

☞ भगवान् चित्रगुप्त ही पापियों के पुत्रों को गर्भ में मार देते हैं। जिनके पुत्र युवावस्था में मर जाते हैं, वह भगवान् चित्रगुप्त द्वारा दिया पाप का दण्ड है।

ऋषि उवाच-

अन्यान्यपि च पापानि चित्रगुप्ता दिदेश ह। व्यामिश्रान्कथ्यमानांश्च शृणुष्वं तान्महौजसः॥ १॥
शीलसंयमहीनानां कृष्णपक्षनुगामिनाम्। महापापैरुपेतानां कथ्यतां तत्पराभवम्॥ २॥
राजद्विष्टा गुरुद्विष्टाः सर्वे ते वै विगर्हिता। अविश्वास्या हासम्भाष्याः कुक्षिमात्रपरायणाः॥ ३॥
हिंसाविहारिणः क्रूराः सूचकाः कार्यदूषकाः। गवेडकस्य वधकाः महिषाजादिकस्य च॥ ४॥
दावाग्निं ये च मुंचन्ति ये च सौकरिकास्तथा। तत्र कालमसंख्येयं पच्यन्ते पापकारिणः॥ ५॥
कर्मक्षयाद्यदा भूयो मानुष्यं प्राप्नुवन्ति ते। अल्पायुषो भवन्तीह व्याधिग्रस्ताश्च नित्यशः॥ ६॥

नचिकेता ऋषि बोले—महातेजस्वी चित्रगुप्तजी ने अन्य पापों का फल भी बताया, हे मुने! मिश्रित रूप से बताये गये उस पाप पुञ्ज को सुनिये! **चित्रगुप्तजी यमदूतों से बोले—**जो सदाचार, संयम से हीन निरन्तर पाप कर्म का अनुगमन करने वाला है, उसके पराभव (अपमान) को बता रहा हूँ। जो लोग राजा एवं गुरु से द्वेष करने वाले हैं, जो किसी पर विश्वास नहीं करते दुर्वाच्य बोलते हैं, अपना पेट पालते हैं, हिंसा का कार्य करते हैं, क्रूर हैं, कार्य के दोष देने वाले हैं, नीलगाय, भैंस, बकरी आदि का वध करने वाले हैं, जंगल में आग लगाने वाले हैं, जो सूकर की तरह अपना पेट पालता है, ऐसे पापी को बहुत दिनों तक आग में पकाओ। कर्म के कुछ क्षय होने से मनुष्य योनि में आये। **वह भी नित्य रोगी होता हुआ अल्पायु हो**॥ १—६॥

☞ भगवान् चित्रगुप्त ही पापियों को अल्पायु बनाते हैं।

गर्भ एव विपद्यन्ते म्रियन्ते बालकास्तथा। परिरिंगरताः केचिन्म्रियन्ते पुरुषाधमाः॥ ७॥
काष्ठवंशे च शस्त्रे च वायुना ज्वलनेन च। तोयेन वा पाशबन्धैः पतनेन विषेण वा॥ ८॥
मातापितृवधं कष्टं मित्रसम्बन्धिबन्धुजम्। बहुशः प्राप्नुवन्त्येते विद्रवं चाप्यभीक्ष्णशः॥ ९ ॥
प्राणातिपातनं ते वे प्राप्नुवन्ति यथा तथा। लोहकाः कारुकाश्चैव गर्भाणां विनिहिंसकाः॥ १०॥
मूलकर्मकरा ये च गरदाः पुरदाहकाः। ये च पञ्जरकर्त्तारो ये च शूलोपघातकाः॥ ११॥
पिशुनाः कलहाश्चैव ये च मिथ्याविदूषकाः। गोकुञ्जरखरोष्ट्राणां चर्मका मांसभेदका॥ १२॥
उद्वेजनकराश्चण्डाः पच्यन्ते नरकेषु ते। तत्र कालं तु सम्प्राप्य यातनाश्च सुदुःसहाः॥ १३॥
कर्मक्षयो यदा भूयो मानुष्यं प्राप्नुवन्ति ते। हीनाङ्गाः सुदरिद्राश्च भवंति पुरुषाधमाः॥ १४॥

वह गर्भ में ही विपत्ति लेकर आये और बाल्यावस्था में मर जाये। ऐसा पुरुषों में नीच लंगड़ा होकर मर जाये हैं। लकड़ी, शस्त्र आदि में वायु एवं अग्नि से, जल से, पाश के बन्धन से गिर जाने से, विष के द्वारा तथा माता-पिता के बध करने से, मित्र, सम्बन्धी से द्वेष करने के कारण भयंकर कष्ट प्राप्त करे। लोहे के काम पर रंगाई का कार्य, गर्भ का पतन, नगर में आग लगाने वाला, विष देने वाला, पक्षी को पिंजड़े में बन्द कर देने वाला, शूल के घात से काना, हिंसक, कलह प्रिय, मिथ्या दोषा रोपण करने वाला, गाय, हाथी, गधा, ऊँट का चर्म एवं मांस को काटने एवं बेचने वाला, ऐसे दुष्ट आत्मा वाले नरक में पकाओ। उस नरक में घोर यातना सहते हुए समय व्यतीत होने पर पुनः **मनुष्य योनि में प्राप्त करे और वह हीन अङ्गवाला एवं दरिद्र हो**॥ ७—१४॥

☞ भगवान् चित्रगुप्त ही पापियों के पुत्रों को बाल्यावस्था में मृत्यु देते हैं। पापियों को विकलांग एवं दरिद्र बनाते हैं।

श्रवणच्छेदनं चैव नासाच्छेदनमेव च। छेदनं हस्तपादानां प्राप्नुवंति स्वकर्मणा॥ १५॥
शारीरं मानसं दुःखं प्राप्नुवन्ति पुनःपुनः। गलवेदनास्तथोग्राश्च तथा मस्तकवेदनाः॥ १६॥
कुक्ष्यामयं तथा तीव्रं प्राप्नुवंति नराधमाः। जडान्धबधिरा मूकाः पंगवः पादसर्पिणः॥ १७॥
एकपक्षहताः काणाः कुनखाश्चामयाविनः। कुब्जाः खञ्जास्तथा हीना विकलाश्च घटोदराः॥ १८॥
गलत्कुष्ठाः श्वित्रकुष्ठा भवन्ति स्वैश्च कर्मभिः। वाताण्डाश्चाण्डहीनाश्च प्रमेहमधुमेहिनः॥ १९॥
योनिशूलाक्षिशुलाश्च श्वासहृदद्गुह्यशूलिनः। पिण्डकावर्त्तभेदैश्च प्लीहगुल्मादिरोगिणः॥ २०॥
बहुभिर्दारुणेर्घोरैर्व्याधिभिः समुनुद्गताः। इत्येतान्हिसकान्क्रूरान्घातयन्तु सुदारुणान्॥ २१॥

कान छेदना, नाक छेदना, अपने कर्म के अनुसार हाथ-पाँव छेदन करने वाला बार-बार शारीरिक एवं मानसिक दुःख प्राप्त करे। ऐसे जीव को **गले का रोग, मस्तक का रोग उदर का रोग हो। अन्धा, बहरा, गूँगा, लंगड़ा, पैर से सरकने वाला, एक पक्ष जिसका टूट गया हो, काना, कुत्सित नरक वाला रोगी, बूढा, हीन एवं व्यग्र रहने वाला, मोटे पेट वाला, कोढ़ी (पिब बहता हुआ), श्वेत कुष्ठ वाला, वात रोग, अण्डहीन, प्रमेह, मधुमेह आदि रोग अपने कुकर्मों के द्वारा हो। गुप्तांग में कष्ट, आँत में कष्ट श्वास, हृदय में कष्ट, पिण्ड का भंवर रोग (चक्कर आना) प्लेग रोग आदि रोग से नराधम ग्रसित हो जाये।** इस प्रकार अनेक व्याधियों से ग्रसित हो, ऐसे जीव को, जो हिंसक एवं क्रूर है, इनको क्रूरता के साथ दण्ड दो॥ १५—२१॥

☞ भगवान् चित्रगुप्त ही पापियों को रोग-व्याधि देकर मृत्यु देते हैं।

मिथ्याप्रलापिनो दूतान्पाचयन्तु यथाक्रमम्। कर्कशाः पुरुषाः सत्या ये च योषानिरर्थकाः॥ २२॥
एषां चतुर्विधा भाषा या मिथ्याप्यभिधीयते। हास्यरूपेण या भाषा चित्ररूपेण वा पुनः॥ २३॥
अरहस्यं रहस्यं वा पैशुन्येन तु निन्दनात्। उद्वेग जनना वापि कटुका लोकगर्हिताः॥ २४॥
स्नेहक्षयकरां रूक्षां भिन्नवृत्ताविभूषिताम्। कदलीगर्भनिस्सारां मर्मस्पृक्कटुकाक्षराम्॥ २५॥
स्वरहीनामसंख्येयां भाषंते च निरर्थकम्। अयंत्रितमुखा ये च ये निबद्धाः प्रलापिनः॥ २६॥
दूषयन्ति हि जल्पन्तोऽनृजवो निष्ठुराः शठाः। निर्दया गतलज्जाश्च मूर्खा मर्मविभेदिन्॥ २७॥
न मर्षयंति येऽन्येषां कीर्त्यमानाञ्छुभान्गुणान्। दुर्वाचः परुषांश्चण्डान्बन्धयध्वं नराधमान्॥ २८॥

मिथ्या प्रलाप करने वाले को क्रमानुसार पकाओ, कर्कशवादी, कठोरसत्यवादी, स्त्री प्रपञ्चवादी एवं निरर्थक वार्तालापवादी, ये चार प्रकार के लोग। हँसी करने वाले या विचित्र बात करने वाले, सारहीन या रहस्ययुक्त, चुगलखोर अथवा निन्दनीय, कष्ट देने वाला अथवा संसार में निन्दित, प्रेम को नष्ट करने वाला, कठोर वचन बोलने वाला, **अपने से विपरीत आचरण करने वाला,** केले के खम्भे के अन्दर जैसा तत्वहीन होता है उसी प्रकार सारहीन, अन्दर चोट पहुँचाने वाला, कडुवा बोलने वाला, स्वरहीन, असत्य एवं व्यर्थ बोलने वाला जिसका मुख नियन्त्रित नहीं रहता व्यर्थ का प्रलाप करने वाला, झूठ में दूसरे पर दोषारोपण करने वाला, निष्ठुर, धूर्त, दयारहित, जिसके पास लज्जा न हो, मूर्ख हो, हृदय पर चोट पहुँचाने वाला, दूसरे के कीर्ति एवं शुभ गुणों का सहन न करने वाला, दुर्वाच्य बोलने वाला, बधिर, कठोर बोलने वाले नीच पुरुष को बाँध दो॥ २२—२८॥

☞ पुरुष होकर स्त्री के समान एवं स्त्री होकर पुरुष के समान विपरीत आचरण करने वाले [समलैंगिक आदि] स्त्री-पुरुष महापापी हैं।

ततस्तिर्यक्प्रजायन्ते बहुधा कीटपक्षिणः। लोके दोषकराश्चैव लोकद्विष्टास्तथा परे॥ २९॥
तत्र कालं चिरं घोरं पच्यन्ते पापकारिणः। कर्मक्षयो यदा भूयो मानुष्यं प्राप्नुवन्ति ते॥ ३०॥
परिभूता अविज्ञाना नष्टचित्ता अकीर्त्तयः। अनर्च्याश्चाप्यनर्हाश्च स्वपक्षे ह्यवमानिताः॥ ३१॥
त्यक्त्वा मित्राणि मित्रेषु ज्ञातिभिश्च निराकृताः। लोकदोषकराश्चै लोकद्वेष्याश्च ये नराः॥ ३२॥
अन्यैरपि कृतं पापं तेषां पतति मस्तके। वज्रं शस्त्रं विषं वापि देहाद्देहनिपातनम्॥ ३३॥
मिथ्याप्रलापिनामेषा मुक्ता क्लेशपरम्परा। स्तेयहारं प्रहारं च नीतिहारं तथैव च॥ ३४॥
स्तेयकर्माणि कुर्वन्ति प्रसह्य हरणानि च। करचण्डाशिनो ये च राज शब्दोपजीविनः॥ ३५॥
पीडयन्ति जनान् सर्वान्कृपणान्ग्रामकूटकान्। सुवर्णमणिमुक्तानां कूटकर्मानुकारकाः॥ ३६॥
समये कृतहर्त्तारो लोकपीडाकरा नराः। अनादिबुद्ध्यश्चान्ये स्वार्थातिशयकारिणः॥ ३७॥
भूतनिष्ठाभियोगज्ञा व्यवहारेष्वनर्थकाः। भेदकाराश्च धातूनां रजतस्य च कारकाः॥ ३८॥
न्यासार्थहारका ये च सम्मोहनकराश्च ये। ये तथोपाधिकाः क्षुद्राः पच्यन्ते तेषु तेष्वथ॥ ३९॥
निरयेष्वप्रतिष्ठेषु दारुणेषु ततस्ततः। तत्र कालं तु सुचिरं पच्यन्तां पापकारिणः॥ ४०॥

उसके बाद अनेक प्रकार के कीट एवं पक्षी योनि में जन्म ले। संसार को दूषित करने तथा संसार में वैर करने वाला, उस योनि में अधिक दिन तक पाप को वह पापी भोगे। जब पुनः पाप कर्म का नाश हो तो मनुष्य योनि में जाये। पराभव, ज्ञान रहित, चित्त जिसका नष्ट हो गया है। अपयश, अशुद्ध, अयोग्य अपने पक्ष को अपमानित करने वाला, मित्र को मित्र से अलग करने वाला, अपने बान्धवों का निरादर करने वाला, संसार को दुःख देने वाला,

जो व्यक्ति संसार से द्वेष करता है, अन्य किया गया पाप उसके मस्तक पर पड़ता है, दूसरे को वज्र शस्त्र एवं विष देने वाला, झूठ बोलने वाला, वह दुःख की परम्परा में रहते हुए, चोरी करने वाला, प्रहार करने वाला, नीति को न मानने वाला, चोरी का कार्य करते हुए अर्थात् क्रूरतापूर्वक कर वसूलने वाला, हाथ पर सब कुछ समझने वाला, राज शब्द से जीविका चलाने वाला, सभी लोगों को पीड़ा देने वाला, कृपण एवं गाँव में जाल फैलाने वाला, सोना मार्ग और मुक्ता का झूठ में कर्म करने वाला, शर्त को न मानने वाला, संसार को दुःख देने वाला, धरोहर का अपहरण करने वाला, माया फैलाने वाला, ऐसे क्षुद्र उपाधि वाले जीव को पकाओ, यदि वह नरक में है तो बहुत दिन तक इस पापी को पकाओ॥ २९—४०॥

कर्मक्षयो यदा तेषां मानुष्यं प्राप्नुवन्ति ते। तत्र तत्रोपपद्यन्ते यत्र यत्र महद्भयम्॥ ४१॥
यस्मिंश्चौरभयं देशे क्षुद्भयं राजतो भयम्। आपद्भयोऽपि भयं यत्र व्याधिमृत्युभयं तथा॥ ४२॥
ईतयो यत्र देशेषु लुब्धेषु नगरेषु च। क्षयाः कालोपसर्गा वा जायन्ते तत्र ते नराः॥ ४३॥
बहूदुःखपरिक्लिष्टा गर्भवासेन पीडिताः। एकहस्ता द्विहस्ता वा कूटाश्च विकृतोदरा॥ ४४॥
शिराविवृतगात्राश्च हीनाङ्गा वातरोगिणः। अश्रुपातितनेत्राश्च भार्या न प्राप्नुवन्ति ते॥ ४५॥
तेषामपत्यं न भवेत्तद्रूपं च सुलक्षणम्। अतिह्रस्वं विवर्णं च विकृतं भ्रान्तलोचनम्॥ ४६॥
संसारे च यथा पक्वं कृपणं भैरवस्वनम्। महतः परिवारस्य तुष्टश्चोच्छिष्टभोजकः॥ ४७॥
रूपतो गुणतो हीनो बलतः शीलतस्तथा। राजभृत्या भवन्त्येते पृथिवीपरिचारकाः॥ ४८॥
अनालया निरामर्षा वेद नाभिः सुसंवृताः। समकार्यसजात्यानां मित्रसम्बन्धिनां तथा॥ ४९॥
कर्मान्तकारका ह्येते तृणीभूता भवन्ति ते। अनर्थो राजदण्डो वा नित्यमुत्पाद्यते वधः॥ ५०॥
कर्मकल्याणकृच्छ्रेषु भृशं चापि विमुह्यति। कर्षकाः पशुपालाश्च वाणिज्यस्योपजीवकाः॥ ५१॥
यद्यत्कुर्वन्ति ते कर्म सर्वत्र क्षयभागिनः। सत्यमन्विष्यमाणाश्च नैव ते कीर्त्तिभागिनः॥ ५२॥
यत्किञ्चिदशुभं कर्म तस्मिन्देशे समुच्छ्रितम्। तस्य देशस्य नैवास्ति वर्जयित्वातुरान्नरान्॥ ५३॥
सुवृष्ट्यामपि तेषां वै क्षेत्रं तं तु विवर्जयेत्। अशनिर्वा पतेत्तत्र क्षेत्रं वापि विनश्यति॥ ५४॥

पुनः इसके कर्म का क्षय होते ही मनुष्य योनि में जाये। वह प्राणी जहाँ-जहाँ जाये वहाँ-वहाँ उसे बहुत बड़ा भय रहे। जिस देश मे वह रहे वहाँ चोर का भय, भूख का भय, राजा का भय, दैवी आपत्ति का भय, रोग एवं मृत्यु का भय, उस देश में इत्तियों का भय, लोलुपता नगरों में, जहाँ वह पापी भर रहता है वहाँ अनेक प्रकार का संकट आये। यदि वह गर्भ में रहे तो भी अनेक कष्ट का सामना करे। उसका एक हाथ, दोनों हाथ, विकट एवं विकृत पेट वाला, नस दिखाई पड़े, शरीर का अङ्ग टेढ़ा-मेढ़ा अंगहीन, वात रोगी, उसके नेत्र से निरन्तर आँसू गिरता रहे, उसको पत्नी नहीं मिले, उसे सुन्दर एवं सुलक्षण पुत्र भी नहीं मिले। नाटा, विकृत एवं खुला मुखवाला, जिसके नेत्र के आँसू सूख रहे हों, संसार में पका, कृपण, भयंकर शब्द करने वाला, बड़े परिवार के तुष्टी के लिये जूठा भोजन कराने वाला, रूप, बल गुण एवं शील से हीन, पृथ्वी पर विचरण करने वाला, राजा का सेवक होकर घर रहित, व्यर्थ में क्रोध करने वाला, दुःख से घिरा हुआ, सजाती मित्र सम्बन्धी का कार्य करने वाला, दूसरे का कर्म करने वाला, वह तृण के समान हो। व्यर्थ में राजदण्ड नित्य सहने वाला, कर्म के कल्याण हेतु कठिनता से करने वाला, मोहित होने वाला, कृषि का काम करने वाला, पशु पालन एवं व्यापार द्वारा जीविका चलाने वाला, जो-जो कार्य वह करता है, सब नष्ट हो जाये। सत्य का खोज करने पर भी उसको यश नहीं मिले, उस देश में समस्त अशुभ ही दिखाई दे। यदि वह व्यग्र व्यक्ति उस देश को नहीं छोड़ता तो उस क्षेत्र में सुन्दर वर्षा न हो। उस क्षेत्र में वज्र गिरे और वह देश नष्ट हो॥ ४१—५४॥

न सुखं नापि निर्वाणं तेषां मानुषता भवेत्। उत्पद्यते नृशंसानां तीव्रः क्लेशः सुदारुणः॥ ५५॥
स्तेयकर्मप्रयुक्तानां मुक्त्वा क्लेशपरम्पराम्। परदारप्रसक्तानामिमां शृणुत यातनाम्॥ ५६॥
तिर्यङ्मानुषदेहेषु यान्ति विक्षिप्तमानसाः। विहरन्ति ह्यधर्मेषु धर्मचारित्रदूषकाः॥ ५७॥
तांस्तेनैव प्रदानेन संग्रहेत्तु ग्रहेण वा। मूलकर्मप्रयोगेण राष्ट्रस्यातिक्रमेण वा॥ ५८॥
प्रसह्य वा प्रकृत्या वै ये चरन्ति कुलाङ्गनाः। वर्णसङ्करकर्त्तारः कुलधर्मादिदूषकाः॥ ५९॥
शीलशौचादिसम्पन्नं ये जनं धर्मलक्षणम्। धर्षयान्ति च ये पापाः श्रूयतां तत्पराभवः॥ ६०॥
निरयं पापभूयिष्ठा अनुभूय महाभयम्। बहुवर्षसहस्राणि कर्मणा तेन दुष्कृताः॥ ६१॥

वह मनुष्य होकर भी सुख एवं शान्ति को प्राप्त नहीं करे। उसे कठिन एवं तीव्र क्लेश उत्पन्न हो। चोरी के कार्य में लगे रहने के कारण अत्यन्त दुःख प्राप्त करे। दूसरी स्त्री से आसक्त होने पर जो दुःख मिलता है उसे सुनो– पक्षी और मनुष्य देह में भी वह विक्षिप्त मन वाला हो। वह धर्म और चरित्र का दूषक बनकर अधर्म में विचरण करे। उसे कोई अनिष्ट ग्रह पकड़ ले, मूल कर्म के प्रयोग अथवा राष्ट्र का अतिक्रमण से जो कुल की स्त्रियाँ उस कार्य को स्वभाव या प्रकृतिवश करती हैं तो वे वर्ण संकर पुत्र को उत्पन्न करे, जो उसके कुल के धर्म के विपरीत होता है। शीलवान, पवित्र एवं धार्मिक व्यक्ति को जो पापी दुःख देता है उनका अपमान करता है उनका क्या हश्र होता है, उसे सुनो। महाभयंकर नरक में डाला जाये, अपने खराब कर्म के कारण वे हजार वर्ष तक उस नरक में निवास करे॥ ५५—६१॥

कर्मक्षये यदा भूयो मानुष्यं यान्ति दारुणम्। सङ्कीर्णयोनिजाः क्षुद्रा भवन्ति पुरुषाधमाः॥ ६२॥
वेश्यालङ्ककूटानां शौण्डिकानां तथैव च। दुष्पाषण्डनारीणां नैकमैथुनगामिनाम्॥ ६३॥
निर्ल्लज्पुण्ड्रकाः केचिद्बद्धपौरुषगण्डकाः। स्त्रीबन्धकाः स्त्रीविनाशाः स्त्रीवेषाः स्त्रीविहारिणः॥ ६४॥
स्त्रीणां चानुप्रवृद्ध ये स्त्रीभोगपरिभोगिनः। तद्दैवतास्तन्नियमास्तद्वेषास्तत्प्रभाषिताः॥ ६५॥
तद्भावास्तत्कथालापास्तद्भोगाः परिभोगिनः। विप्रलोभं च दानेषु प्राप्नुवन्ति नराधमाः॥ ६६॥
सौभाग्यपरमासक्ता नरा बीभत्सदर्शनाः। अबुद्धेः सह संवासं प्रियं चाविप्रियं तथा॥ ६७॥
शारीरं मानसं दुःखं प्राप्नुवन्ति नराधमाः। कृमिभिर्भक्षणं चैव तप्ततैलोपसेचनम्॥ ६८॥
अग्निक्षारनदीभ्यां तु प्राप्नुवन्ति न संशयः। परदारप्रसक्तानां भयं भवति निग्रहः॥ ६९॥
सर्वं च निखिलं कार्यं यन्मया समुदाहृतम्॥ ७०॥

(वाराहपुराण, अध्याय-२०३)

जब उसका कुछ कर्म नष्ट हो जाये तो पुनः मनुष्य योनि को प्राप्त करे। नीच योनि में उस नीच पुरुष का जन्म हो। वैश्या का समागम करने वाला, दुस्साहसी व्यर्थ में पाखण्ड करने वाला, परनारियों से मैथुन करने वाला, निर्लज्ज, त्रिपुण्ड लगाने वाला, पुरुष की आकृति बनाने वाला, स्त्री को बन्धक बनाने वाला, स्त्री का नाश करने वाला, स्त्री वेषधारी, स्त्रीको त्याग देने वाला तथा स्त्रियों में अनुरक्त रहने वाला, देवताओं द्वारा बनाये नियमों का उलङ्घन करने वाला, उनके साथ वार्तालाप, भोग करने वाला, ऐसा नीच प्राणी दुःख को भोगे, ज्ञानहीन के साथ वास करने वाला चाहे प्रिय हो अथवा अप्रिय हो, शरीर एवं मन सम्बन्धी दुःख प्राप्त करे। ऐसे व्यक्ति को कीड़े काटें तथा गरम तेल में स्नान कराया जाये। नमक युक्त जलती नदी में पड़े। दूसरे की स्त्री के साथ आसक्त रहने वाले को निश्चित यह भय प्राप्त हो। **चित्रगुप्तजी यमदूतों से बोले— जो मैंने कहा वही व्यवहार उसके साथ होगा॥** ६२—७०॥

× × ×

भगवान् चित्रगुप्त—ब्राह्मणों के राजा, लोकशासक तथा ऋषियों के दण्डदाता, मनुष्यों के मृत्युदाता तथा ब्रह्मा एवं रुद्र (शंकर) के समान आज्ञा देने वाले देव हैं

वाराहपुराण के अध्याय २०४ में बताया गया है कि नचिकेता ऋषि ने यमलोक में प्रत्यक्ष देखा कि भगवान् चित्रगुप्त ब्राह्मणों के राजा, लोकशासक (देवलोक, मृत्युलोक तथा पाताललोक पर शासन करने वाले), ऋषियों सहित सभी मनुष्यों के दण्डदाता-प्राणहन्ता तथा ब्रह्मा एवं रुद्र (शंकर) के समान आज्ञा देने वाले महाकाल हैं।

☛ संदर्भित श्लोक-भगवान् चित्रगुप्त ब्राह्मणों के राजा तथा लोकशासक हैं [श्लोक-१], भगवान् चित्रगुप्त मनुष्यों के प्राणहन्ता हैं [श्लोक-९-१६], भगवान् चित्रगुप्त की आदेश से यमदूत ही मनुष्यों को दुःख तथा सुख देते हैं [श्लोक-१५], भगवान् चित्रगुप्त शुद्ध ब्राह्मणों को अभयदान दिये हैं, यही ऋषियों के दण्डदाता हैं [श्लोक-२२-२३], भगवान् चित्रगुप्त ब्रह्मा एवं रुद्र (शंकर) के समान आज्ञा देने वाले महाकाल हैं [श्लोक-१५]।

ऋषि उवाच—

<u>इदं चैवापरं तस्य वदतो हि मया श्रुतम्। चित्रगुप्तस्य विप्रेन्द्रा वचनं लोकशासिनः</u>॥ १॥
दूरेऽसाविति किं कार्यं न क्षयोऽस्त्यस्य कर्मणः। किं कृपां कुरुते तस्मिन्गृहाण हि मा व्यथः॥ २॥
व्रीडितः किम्भवाञ्ज्ञातं किं तिष्ठति पराङ्मुखः। किं न गच्छसि वेगेन किं त्वया सुचिरं कृतम्॥ ३॥
गच्छ गच्छ पुनस्तत्र शीघ्रं चैतमिहानय। अशक्तोऽस्मीति किं रोषमर्हन्ते दर्पमीदृशम्॥ ४॥

नचिकेता ऋषि बोले—मैंने ब्राह्मणों के राजा (विप्रेन्द्रा) एवं लोकशासक भगवान् चित्रगुप्त द्वारा बतायी गयी जिन बातों को सुना उन बातों को मुझसे सुनें। चित्रगुप्तजी यमदूतों से बोले-यदि वह (पापी) दूर हो तो उसके कर्म का क्षय नहीं होता है, तुम लोग उसके ऊपर कृपा क्यों करते हो? पकड़ो, मारो और दुःखी मत हो। तुम लोग लज्जित मत हो, सब जानते हुए भी पराङ्मुख होकर क्यों बैठे हो? तुम लोग वेग से क्यों नहीं जाते हो? तुम लोग शीघ्रता क्यों नहीं करते? तुम लोग शीघ्र वहाँ जाओ और उसको यहाँ पर ले आओ, मैं अशक्त हूँ, ऐसा तुम लोग क्यों कहते हो?॥ १—४॥

किं त्वं वदसि दुर्बुद्धे विवाहस्तस्य वर्त्तते। ऊर्ध्वरेतास्तपस्वीति त्वं मां भाषयसे कथम्॥ ५॥
किं त्वं वदसि गर्ह्यं च मुहूर्त्तं परिपालय। रमते कान्तया सार्द्धमिति किं त्वं प्रभाषसे॥ ६॥
पतिव्रतेति साध्वीति रहस्यं भाषसे पुनः। किं किं वदसि बालो हि निशि चैवागतो गृहम्॥ ७॥
आनीयते कथं ज्ञात्वा भोक्तुकामं कथं हरे। जलशायिनं कथं चैव दातुकामं कथं हरे॥ ८॥

हे दुर्बुद्धे उनका विवाह है, ऐसा क्यों कहते हो? वह उर्ध्वरेता तपस्वी है, ऐसा मुझसे क्यों कहते हो? तुम ऐसी निन्दित बात क्यों करते हो? क्षण भर प्रतिक्षा कीजिए वह पत्नी के साथ है, ऐसा क्यों कहते हो? वह पतिव्रता है, साध्वी है, इस रहस्य को क्यों कहते हो? वह बाला रात्रि में घर आती है ऐसा क्यों कहते हो? हे हरे यह भोग की कामना करने वाला है, यह जानकर इसको कैसे लाऊँ? जल में सोने वाले और दान देने वाले को कैसे लाऊँ?॥ ५—८॥

धार्मिका यूयमेवात्र अहमेको नृशंसवत्। यात यात तथा दृष्ट्वा यथाकालोऽनतिक्रमेत्॥ ९॥
शीघ्रं त्वं भव सर्पो हि व्याघ्रस्त्वं च सरीसृपः। जले ग्राहो भव त्वं हि त्वं कृमिस्त्वं सरीसृपः॥ १०॥
नरकानुगतस्त्वं हि व्याधिभूतः समाश्रयः। अतीसारो भव त्वं हि त्वं छर्दिस्त्वं पुनर्भवः॥ ११॥
कर्णरोगो विषूची च नित्यरोगश्च सम्भवः। ज्वरो भव महाघोरो जलेग्राहो दुरासदः॥ १२॥
वातव्याधिस्तथा घोरस्तथैव त्वं जलोदरः। अपस्मारस्त्वमुन्मादो वातरोगस्तथैव च॥ १३॥

विभ्रमस्त्वं भवेच्छीघ्रं विष्टम्भश्च पुनर्भव। व्याधिर्भव महाघोरो ह्ययं तृष्णां तु विन्दतु॥ १४॥

चित्रगुप्तजी यमदूतों से बोले—तुम लोग धार्मिक हो, मैं ही एक नृशंस के समान (अत्यन्त क्रूर) हूँ। तुम लोग यहाँ से जल्द जाओ, कहीं उसका समय न निकल जाय, तुम लोगों को जो भी बनना पड़े वह बनो, चाहे सर्प बनो, व्याघ्र बनो, सरकने वाला कीड़ा बनो, तुम लोग ग्राह्य बनो, या कीड़ा अथवा सरीसृप बनो, रोग का आश्रय लेकर नरक में जाओ, वहाँ अतिसार बनो, क्षय रोग बनो, कर्ण रोग बनो, बिच्छू बनो, यदि वह जल में भी हो तो तुम जबरन उसे पकड़ो, वातव्याधि बनो, जलोदर रोग बनो, मृगी बनो, उन्माद रोग बनो, वात रोग बनो, भ्रम रहित होकर विष्टभस रोग बनकर उसको पकड़ो॥ ९—१४॥

यथाकालं यथादृष्टं तावत्कालोऽत्र तिष्ठतु। कालसंहरणे वापि शुभस्यागमनेऽपि वा॥ १५॥
यूयं च कृतकर्माणस्ततो मोक्षमवाप्स्यथ। द्रुतं द्रवत वेगेन सर्वे गच्छत मा चिरम्॥ १६॥

जब तक वह दिखायी नहीं देता तब तक तुम लोग वहाँ रूको, **चित्रगुप्तजी यमदूतों से बोले—जब मैं कहूँ तो काल बनकर संहार करो और जब मैं कहूँ तो शुभ फलदाता बनकर शुभफल दो,** तभी मुक्ति पाओगे, तुम सभी लोग शीघ्र जाओ बिलम्ब मत करो॥ १५-१६॥

☞ भगवान् चित्रगुप्त की आज्ञा से ही यमदूत प्राणियों को सुख अथवा मृत्यु देते हैं। [श्लोक-१५]

वराज्ञा धर्मराजस्य या मया समुदाहृता। एकाहं क्षपयेस्तत्र द्विरात्रं तत्र मा चिरम्॥ १७॥
त्रिरात्रं वै चतुरात्रं षड्रात्रं दशरात्रकम्। पक्षं वा मासमेकं वा बहून्मासांस्तथापि वा॥ १८॥
क्षपयित्वा यथाकालं ततो मोक्षमवाप्स्यथ। भूतात्मा मोहवास्तत्र करुणः कष्टमेव च॥ १९॥
यस्मिन्यस्मिंस्तु कालेऽहं यावतश्च श्रयाम्यहम्। तस्मिंस्तस्मिन्महाकालं यूयं तत्कर्त्तुमर्हथ॥ २०॥

चित्रगुप्तजी यमदूतों से बोले—मैंने जो कहा! वही धर्मराज की आज्ञा है। तुम लोग जाओ चाहे एक दिन, दो रात्रि, तीन रात्रि, चार रात्रि, छः या दस रात्रि, एक पक्ष या एक मास अथवा बहुत से मास व्यतीत हो जाय कार्य को करने पर ही मोक्ष प्राप्त करोगे। **प्राणियों के मोह में आने पर चाहे कष्ट हो अथवा मोह हो, मैं जिस-जिस समय जो-जो कार्य कहूँ उस-उस कार्य को तुम लोग अवश्य करो क्योंकि तुम लोग भी महाकाल हो**॥ १७—२०॥

☞ यमदूत जैसे महाकाल का वध कराने वाले एवं यमदूतों को आदेश देने वाले परब्रह्म के स्वरूप लोकशासक एवं महाकाल चित्रगुप्त ही हैं।

विनियोगा मया युक्ता यथापूर्वं यथाश्रुतम्। जाग्रतं वा प्रमत्तं वा यथा कालो न सम्पतेत्॥ २१॥
यत्नतथा तु कर्त्तव्यं भवद्भिर्मम शासनात्। अभयं चात्र यच्छामि ब्राह्मणेभ्यो न संशयः॥ २२॥
तस्माद्यात ऋषिभ्यश्च स्त्रीभ्यश्चैव महाबलाः। यातनाया न भेतव्यमहमाज्ञापयामि वः॥ २३॥
यथावाच्यं च कुरुत यथा कालो न गच्छति। यथाकामं प्रकुरुत यच्च दृष्टं यथा तथा॥ २४॥
मयाज्ञप्ता विशेषेण मृत्युना सह सङ्गतः। यथा वीरो महातेजाश्चित्रगुप्तो महायशाः॥ २५॥
यथाब्रवीत्स्वयं रुद्रो यथा शक्रः शचीपतिः। यथाज्ञापयते ब्रह्मा चित्रगुप्तस्तथा प्रभुः॥ २६॥

(वाराहपुराण, अध्याय-२०४)

चित्रगुप्तजी यमदूतों से बोले—जिसे तुमने पूर्व में सुना उसकी व्यवस्था मैंने ही की है। चाहे जाग्रत अवस्था में अथवा प्रमत्त अवस्था में तुमको कार्य करना है, इसमें समय न व्यतीत करो। मेरी आज्ञा का पालन

तुम लोगों को उसी रूप में करना होगा। **मैं शुद्ध ब्राह्मणों को अभय दिया हूँ, इसमें संशय नहीं है। चाहे ऋषि हों, चाहे स्त्री हों या महाबली हों, यातना देने में तुम भेद मत करो, ये मेरा आदेश है।** जैसा कहा जाय वैसा ही करो, समय न बिताओ। जैसा देखो उसी के अनुसार कार्य करो। मेरी विशेष आज्ञा से तुम लोग **मृत्यु** के साथ जाकर कार्य करो, **ऐसा महापराक्रमी, महातेजस्वी और महायशस्वी चित्रगुप्त ने कहा। जिस प्रकार स्वयं 'रुद्र' (शंकर) शचिपति इन्द्र और ब्रह्मा' आदेश देते हैं, वैसे ही प्रभु चित्रगुप्त ने यमदूतों को आदेश दिया**॥ २१—२६॥

☞ [भगवान् चित्रगुप्त ब्राह्मणों एवं 'ऋषियों' के अभयदाता एवं दण्डदाता हैं।]

☞ [रुद्र—इनका नाम महादेव, पशुपति, उग्र, भव, शर्व, ईशान तथा भीम है। 'रुद्र' का विवाह 'दक्ष' की पुत्री 'सती' के साथ हुआ था।] (संदर्भ—पद्मपुराण, सष्टिखण्ड, अध्याय-३)

☞ [नचिकेता ने देखा कि भगवान् चित्रगुप्त—महादेव, इन्द्र तथा ब्रह्मा के समान आज्ञा देने वाले देवता हैं।]

× × ×

परब्रह्म—ऋषि एवं देवता

परब्रह्म कौन हैं? ये समझना आवश्यक है। परब्रह्म साक्षात् सदाशिव हैं, ये निराकार, प्रकृति रूप में विद्यमान् हैं, **सदाशिव ने ही भगवान् विष्णु को साकार उत्पन्न किया, भगवान् विष्णु ने ब्रह्माण्ड के निर्माता ब्रह्माजी को उत्पन्न किया, ब्रह्माजी के क्रोध से रुद्र (शंकर) तथा काया से कायस्थ (चित्रगुप्त) उत्पन्न हुए। यही परब्रह्म के चार स्वरूप हैं, ये निर्माता हैं।** जिस ब्रह्माजी ने ब्रह्माण्ड का निर्माण किया, उस ब्रह्मा का निर्माण विष्णु ने किया।

ब्रह्माजी ने सर्वप्रथम १० ऋषियों को उत्पन्न किया, ये ब्रह्माजी के १० अलग-अलग अङ्गों से उत्पन्न ऋषि, देव एवं दानव, उपर्युक्त चारों परब्रह्म अर्थात् **विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र (शंकर) तथा कायस्थ (चित्रगुप्त) से अल्प शक्ति के हैं।**

ऋषियों से ही इन्द्र, धर्मराज, सूर्य, बृहस्पति, शुक्रादि देवता भी उत्पन्न हुए, ये सभी ऋषि एवं देवता परब्रह्म के नियमों के पालक हैं, **ये निर्माता नहीं हैं।**

ब्रह्माजी ने वेदों का निर्माण करके ऋषियों को दिया, ऋषियों ने इसे स्थापित करके सभ्य एवं दैविक कृपा युक्त सनातन समाज को स्थापित किया।

भगवान् चित्रगुप्त लोकशासक हैं, इन्होंने धर्म-अधर्म का नियम बनाया, **इन नियमों का पालन यमलोक सहित-देवलोक, मृत्युलोक तथा पाताललोक में किया जाता है।**

विष्णु, ब्रह्मा, शंकर तथा चित्रगुप्त—इन ऋषि, देवता तथा दानवों के नियन्ता हैं जबकि ऋषि, देवता इत्यादि सृष्टि विस्तार एवं संचालन के लिये उत्पन्न किये गये हैं। ऋषियों द्वारा समयानुसार जिन वेद, पुराण, उपनिषद् तथा स्मृति को लिखा गया, **वह विष्णु, ब्रह्मा, शंकर तथा चित्रगुप्त द्वारा निर्मित है।**

भगवान् चित्रगुप्त द्वारा निर्मित सनातन अनुशासन का वर्णन आगे वाराहपुराण के अंश में विस्तार से दिया गया है। इन सत्यताओं से अवगत होकर अपना जीवन उत्कृष्ट बनायें।

× × ×

परब्रह्म (सदाशिव) के चार स्वरूप

परब्रह्म के चार स्वरूपों में भगवान् विष्णु—भोगदाता, भगवान् ब्रह्मा—ज्ञानदाता तथा भगवान् रुद्र—योगदाता हैं। मनुष्य भी इन्हीं 3 स्वरूपों में विद्यमान हैं—

1-भगवान् विष्णु एवं विष्णुलोक—यह परब्रह्म के प्रथम रूप हैं। भगवान् विष्णु की पत्नि का नाम लक्ष्मी है। भगवान् विष्णु सत् तथा लक्ष्मी धनदायक देव/देवी हैं। इनका लोक विष्णुलोक है।

2-भगवान् ब्रह्मा एवं ब्रह्मलोक—यह परब्रह्म के द्वितीय रूप हैं। भगवान् ब्रह्मा की पत्नि का नाम सावित्री है। भगवान् ब्रह्मा तथा सावित्री ज्ञानदायक देव/देवी हैं। इनका लोक ब्रह्मलोक है।

3-भगवान् रुद्र (शिव) एवं शिवलोक—यह परब्रह्म के तृतीय रूप हैं। भगवान् रुद्र ब्रह्माजी के क्रोध से उत्पन्न, समान शक्ति के बड़े पुत्र हैं। भगवान् रुद्र की पत्नि का नाम पार्वती है। भगवान् रुद्र तथा पार्वती योग एवं सन्यासदायक देव/देवी हैं। इनका लोक शिवलोक है।

☞ मनुष्य भी इन देवों की भाँति 3 प्रकार के हैं। भोगपरक, ज्ञानपरक, योगपरक।

भोगपरक—ऐसा मनुष्य निरन्तर भोग के कर्म में लगा रहता है। धन वैभव से युक्त होकर धर्म का पालन, धर्म की रक्षा करना इनका सत्कर्म होता है। राजा तथा वैश्य भोगपरक प्रवृत्ति के होते हैं।

ज्ञानपरक—ऐसा मनुष्य निरन्तर ज्ञान के कर्म में लगा रहता है। ज्ञानपरक कार्य करना तथा धर्म का विस्तार ही इनका उद्देश्य होता है। ऋषि-महर्षि तथा ब्राह्मण ज्ञानपरक होते हैं।

योगपरक—ऐसा मनुष्य निरन्तर योग के कर्म में लगा रहता है। ब्रह्मचारी तथा साधु-सन्यासी योगपरक होते हैं।

4-भगवान् चित्रगुप्त एवं यमलोक—यह परब्रह्म के चतुर्थ रूप हैं। भगवान् चित्रगुप्त ब्रह्माजी की काया से उत्पन्न समान शक्ति के हैं। **ये लोकशासक एवं यमलोक में 'धर्माधिकारी' नामक 'यम' हैं।** यमलोक **सृष्टि का न्यायालय है।** भगवान् चित्रगुप्त सृष्टि के प्रथम न्यायाधीश हैं। यहाँ सभी प्राणियों को अपने कर्मों का भोग भोगने के लिये जाना ही होता है।

शिवपुराण में लिखा है कि **''ऐसे कोई प्राणी नहीं होते जो यमलोक को नहीं जाते क्योंकि किये गये कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है।''** यथा—

न केचित्प्राणिनः सन्ति ये न यान्ति यमक्षयम्। अवश्यं हि कृतं कर्म भोक्तव्यं तद्विचार्य्यताम्॥ ४॥

(शिवपुराण, उमासंहिता)

प्राणियों को सम्पूर्ण भोग भगवान् चित्रगुप्त द्वारा दिया जाता है। लोक में प्राणी हानि-लाभ, जीवन-मरण तथा यश-अपयश जो कुछ प्राप्त करता है वो सब भगवान् चित्रगुप्त द्वारा ही दिया होता है।

× × ×

अंशावतार क्या है ?

राजा-**भोगपरक,** ऋषि और ब्राह्मण-**ज्ञानपरक** तथा साधु सन्यासी-**योगपरक** कहे गये हैं। ऋषियों की उत्पत्ति पीछे दी गई है। **१ ऋषि—विष्णु, ब्रह्मा तथा शिव से 'दसवेंअंश' के हैं।** इसीलिये जब ऋषि कुल में **धर्मपरायण-राजा** होता है तो उसे **विष्णु** का **अंशावतार** तथा **धर्मपरायण-योगी, साधु संयासियों** को **रुद्र (शंकर)** का **अंशावतार** कहा जाता है।

☛ पद्मपुराण, पातालखण्ड के वृन्दावन माहात्म्य में कहा गया है कि **वृन्दावन में विद्यमान् पुरुष-विष्णु तथा स्त्री-लक्ष्मी के दशांश से उत्पन्न हैं—**

वृक्षं गुरुद्रुमं तत्र सुरभिवृन्दसेवितम्। स्त्रीं लक्ष्मीं पुरुषं विष्णुं तद्दशांशसमुद्भवः॥ ६१॥

(पद्मपुराण, पातालखण्ड, वृन्दावनमाहात्म्य-६१)

☛ श्रीमद्भागवत्पुराण में कहा गया है कि विष्णु का सानिध्य पाने के लिये ऋषि ही गोपियों के रूप में वृन्दावन में जन्म लिये।

ऋषि—विष्णु, ब्रह्मा एवं शिव के अंश हैं इसीलिये इनके कुल में **अंशावतार** होता है।

☛ **अवतार साक्षात् विष्णु, ब्रह्मा तथा रुद्र (शंकर) नहीं हैं।**

विष्णु के अवतार-**मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण** आदि अंश हैं।

देवों की सच्चाई को पुराणों में पढ़े बिना कभी भी चर्चा न करें, ये अक्षम्य अपराध तथा नरकगामी है।

× × ×

भगवान् चित्रगुप्त जन्मदाता, पालनकर्ता तथा संहारकर्ता हैं

भगवान् ब्रह्मा-**जन्मदाता,** भगवान् विष्णु-**पालनकर्ता** एवं भगवान् शंकर को **संहारकर्ता** कहा गया है।

ब्रह्माजी ने चित्रगुप्तजी को उत्पन्न करके इन्हें तीनों देवों की शक्तियाँ प्रदान की अर्थात् **लोकशासक भगवान् चित्रगुप्त स्वयं जन्मदाता, पालनकर्ता एवं संहारकर्ता हैं। यथा—**

ॐ नमो विचित्राय, धर्मलेखकाय, यमवाहिकाधिकारिणै, म्ल्व्यूँ जन्म-सम्पत्-प्रलयं, कथय-कथय स्वाहा।

(मंत्रमहार्णव, मंत्रमहोदधि, मेरुतन्त्र)

अर्थ—हे विचित्र! (चित्रगुप्त) आप **धर्म को लिखने** वाले हैं, **यम के अधिकार** को चलाने वाले हैं, आप ही के कहने पर **जन्म, पालन तथा संहार** होता है, मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

× × ×

देवपूजा एवं पितृपूजा क्या है ?

पूजा दो प्रकार की कही गई है। **1-देवपूजा 2-पितृपूजा।**

1-देवपूजा—विष्णु-लक्ष्मी, ब्रह्मा-सावित्री, शिव-पार्वती, गणेश, कार्तिकेय, काली, दुर्गा तथा **चित्रगुप्त** की पूजा देवपूजा कही गई है। **ये देवता अजर-अमर हैं, ये नश्वर नहीं हैं।** इनकी पूजा सर्वदा कल्याणकारी एवं सुखप्रद है। इनकी पूजा से प्राणी **लौकिक तथा पारलौकिक** सुख को प्राप्त करता है।

2-पितृपूजा—मृत मनुष्यों की पूजा पितृपूजा कही गई है। पितृपूजा केवल अपने पितृ (पूर्वज) की ही होती है।

× × ×

मनुष्यों की पूजा निष्फल होती है

सभी सनातनियों को परब्रह्मस्वरूप **भगवान् विष्णु, भगवान् ब्रह्मा, भगवान् रुद्र (शंकर)** एवं **चित्रगुप्तादि** देवों की पूजा ही मान्य है।

सनातन धर्म के नियमों के अनुसार प्रत्येक मनुष्य पिछले जन्म के शुभाशुभ फलों को यथावत भोगता है। कष्ट स्वरूप **वातरोग, प्रमेहरोग, मधुमेहरोग, कर्कटरोग, क्षयरोग, जलोदररोग** जैसे **असाध्यरोग यमदूत** ही हैं जो **लोकशासक महाकाल चित्रगुप्त** की आज्ञा से रोग व्याधि बन कर मनुष्यों के शरीर में प्रवेश करके मृत्यु को प्राप्त कराते हैं। मनुष्यों के साथ जो दुर्घटनायें होती हैं, वह भी **यमदूत** ही देते हैं और मनुष्यों को मार कर **महाकाल चित्रगुप्त** के पास ले जाते हैं। जिसका वर्णन आपने पिछले अध्याय में पढ़ा है।

इसके अतिरिक्त हम जो धन-धान्य, पुत्र-पौत्रादि, आरोग्यता एवं समस्त सुख पाते हैं वो भी **लोकशासक महाकाल चित्रगुप्त** सहित **भगवान् विष्णु, भगवान् ब्रह्मा, भगवान् रुद्र (शंकर)** इत्यादि का ही दिया होता है।

मृत्युलोक में मनुष्य, पशु तथा पक्षी विद्यमान हैं। इनमें पशु तथा पक्षी की योनि अधम [नीच] योनि कही गयी है। भगवान् चित्रगुप्त द्वारा मृत्युलोक में जन्म लेकर दिवंगत हुए या होने वाले मनुष्य, पशु तथा पक्षी को कल्याणकारी और मोक्षदाता मानकर पूजा करना निष्फल है क्योंकि लोक में जन्में मनुष्य, पशु तथा पक्षी भगवान् चित्रगुप्त का दिया भोग भोगते हैं। ये भगवान् चिंत्रगुप्त का दिया भोग बदलने में सक्षम नहीं हैं।

सृष्टि में उत्पन्न होकर जो नष्ट हुए हैं और जो नष्ट होंगे उनकी पूजा पूर्णतया निष्फल होती है, क्योंकि जब मनुष्य **वातरोग, प्रमेहरोग, मधुमेहरोग, कर्कटरोग, क्षयरोग, जलोदररोग** जैसे **असाध्यरोग** के कष्ट को भोगते हुये मृत्यु की ओर बढ़ता है। उस समय वह जीवित अथवा मृत प्राणी (जिसे वह इष्ट समझता है) उससे अपने आरोग्यता के लिये याचना करता है, तब उसे कोई लाभ नहीं होता क्योंकि **जो स्वयं यमदूतों से अपने भोग एवं मृत्यु को नहीं रोक सका वह यमदूतों से दूसरे की रक्षा कैसे करेगा?** याचक को मनुष्यों की पूजा करने के बाद भी जब आरोग्यता नहीं मिलती और अप्रिय घटना हो जाती है, तो वह घूम-घूम कर प्रचारित करता है कि देवी-देवता और पूजा-पाठ सब बेकार है।

सत्यता ये है कि **यमदूतों के प्रकोप को रोकना, यमराज अथवा उनसे अधिक शक्ति के देवों की पूजा से ही सम्भव है। जैसे-गणाध्यक्ष गणेश, विष्णु-लक्ष्मी, ब्रह्मा-सावित्री, शिव-शक्ति, चित्रगुप्त, कार्तिकेय, और यमराज।** इनकी आराधना से अकाल मृत्यु नहीं होती है एवं रोग व्याधि समाप्त हो जाती है। यही सनातनी सत्य है, अनेक पुराणों में इसकी व्याख्या विद्यमान है और उनकी पूजा करना ही सनातन धर्म है।

देवों की इस सत्यता को समस्त विद्वानों द्वारा प्रचारित किया जाना चाहिये। जिससे कि सभी सनातनी, अविनाशी देवों की कृपा प्राप्त करके सफल हों और अपने धर्म में श्रद्धा रखें। इससे सम्पूर्ण सनातनी समाज मजबूत होगा।

× × ×

सभी सनातनियों के लिये परब्रह्मस्वरूप इन देवों की आराधना कल्याणकारी है–

लोक (देवलोक, मृत्युलोक तथा पाताललोक) में विद्यमान् कोई ऋषि, देव तथा दानव भगवान् चित्रगुप्त के दिये भोग को बदल नहीं सकता है। भगवान् चित्रगप्त का दिया भोग केवल विष्णुजी, ब्रह्माजी, शंकरजी तथा स्वयं चित्रगुप्तजी ही बदल सकते हैं।

इनके अतिरिक्त भगवान् चित्रगप्त की कृपा से यमराज भी परिवर्तन कर सकते हैं—

विष्णु —विष्णुजी ने अबोध **ध्रुव** को परमलोक प्राप्त कराया, जो पुराणों में परमआदरणीय है।

ब्रह्मा —ब्रह्माजी ने **अल्पायु मार्कण्डेय ऋषि** एवं **हनुमान** को जीवित किया।

शिव —शिवजी ने गणेश तथा दक्ष को जीवित किया।

चित्रगुप्त —चित्रगुप्तजी ने भीष्म को इच्छामृत्यु का वरदान दिया।

यमराज —यमराजजी ने सत्यवान को प्राणदान दिया।

ध्रुव, मार्कण्डेय, हनुमान, गणेश, दक्ष, भीष्म तथा सत्यवान के भोग को बदला गया।

☞ यमदूतों से बचाने वाले देवों की आराधना ही सफल आराधना है, यही आराधना सुख दायक एवं कल्याणकारी है—

गणाध्यक्ष गणेश,
भगवान् विष्णु–माता लक्ष्मी,
भगवान् ब्रह्मा–माता सावित्री,
भगवान् शिव–माता पार्वती, कर्तिकेय
माता काली, माता दुर्गा,
तथा भगवान् चित्रगुप्त।

यही देव प्राणियों को यमदूतों के कोप से बचाने में सक्षम हैं। इन्हीं की आराधना सर्वकल्याणकारी, सर्वकामनादायक है। इनकी आराधना लोक तथा परलोक दोनों में शुभ को करने वाली है।

× × ×

ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश ही साक्षात् गुरु हैं, इनकी आराधना ही लोक तथा परलोक में सिद्धि दायक है

भगवान् ब्रह्मा, भगवान् विष्णु तथा भगवान् शिव को ही गुरू कहा गया है। परब्रह्म स्वरूप ये देव परमकल्याणकारी, दु:ख नाशक, सुख प्रदायक तथा मोक्ष देने वाले हैं। यथा—

गुरूर्ब्रह्मा, गुरूर्विष्णु, गुरूर्देवोमहेश्वरो। गुरूर्साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरूवेनमः॥

गुरू ब्रह्मा हैं, गुरू विष्णु हैं तथा गुरू महेशदेव (शिव) गुरू हैं। ये गुरू साक्षात् परब्रह्म हैं, इन श्रेष्ठ गुरूओं को मैं प्रणाम करता हूँ॥

इस गूढ़ विषय का प्रारम्भ करने के पूर्व कामाख्या तंत्र में वर्णित गुरुतत्व वर्णनम् में शिव-पार्वती संवाद का अवलोकन करें—

श्रीदेव्युवाच–

गुरुतत्त्वं महादेव विशेषणे वद प्रभो। दुर्वहा गुरुता देव सम्भवेन्मानुषे कथम्॥ १ ॥
तत्रैव सद्गुरुः को वा श्रेष्ठः को वा वद प्रभो। दूरीकुरु महादेव संशयं मे महोत्कटम्॥ २ ॥
इति देव्या वचः श्रुत्वा प्रोवाच शङ्करप्रभुः।

श्री देवी ने कहा—हे महादेव! हे प्रभो! विशेष रूप से गुरुतत्त्व को आप बतायें, देव की दुष्कर गुरुता मनुष्यों में कैसे सम्भव है?-इसे कहिये॥ १ ॥ उनमें सद्गुरु कौन है और कौन श्रेष्ठ है?—आप बतायें, हे महादेव! मेरे इस संशय एवं महाउत्कण्ठा को दूर कीजिये॥ २ ॥ देवी के इस वचन को सुनकर भगवान् शङ्कर ने कहा—॥ २१/२ ॥

शङ्कर उवाच–

श्रृणु सारतरं ज्ञानं साधूनां हितकारणम्॥ ३ ॥
गुरुः सदाशिवः प्रोक्तं आदिनाथः स उच्यते। महाकाल्या युतो देवः सच्चिदानन्दविग्रह॥ ४ ॥
सनातनः परं ब्रह्म श्रीधर्मस्त्रिगुणः प्रभुः। तत्प्रसादान्महामाये शिवोऽहमजरामरः॥ ५ ॥
अत एव गुरुर्नैव मनुजः किन्तु कल्पना। दीक्षायै साधकानाञ्च वृक्षादौ पूजनं यथा॥ ६ ॥

शङ्कर ने कहा—हे देवि! साधुओं के लिये हितकारक सारतर ज्ञान को सुनें॥ ३ ॥ '**गुरु सदाशिव को कहा गया है**' वे आदिनाथ हैं, वे महाकाली से युक्त देव हैं, वे सत्-चित्-आनन्द शरीर वाले हैं॥ ४॥ वे प्रभु सनातन, परब्रह्म, श्रीधर्म, त्रिगुण वाले हैं, **हे महामाये! उनकी कृपा से मैं अजर अमर शिव हूँ॥ ५॥ इसीलिये गुरु मनुष्य नहीं होता है, किन्तु साधकों के दीक्षा में गुरु की कल्पना की जाती है,** जैसे वृक्ष आदि के पूजन में होता है॥ ६॥

मन्त्रदातुः शिरः पद्मे यज्ज्ञानं कुरुते गुरोः। तज्ज्ञानं शिष्यशिरसि चोपदिष्टं न चान्यथा॥ ७ ॥
अत एव महेशानि कुतो हि मानुषो गुरुः। मानुषे गुरुता देवि कल्पना न तु मुख्यता॥ ८ ॥
अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्। तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ९ ॥
प्रसिद्धमिति यद् देवि तत्पदं दर्शको नरः। अत एव नरे देवि गुरुता कल्पनैव हि॥ १०॥

मन्त्र देने वाले के शिरकमल मे ज्ञान गुरु (**सदाशिव**) करते हैं, उस ज्ञान को शिष्य के शिर में उपदेश किया जाता है, ये अन्यथा नहीं है॥ ७॥ इसलिये हे महेशानि! मनुष्य कैसे गुरु हो सकता है? **हे देवी! मनुष्य में गुरुता**

कल्पित होती है! मुख्य नहीं ॥ ८ ॥ वे (सदाशिव) अखण्ड-मण्डल-आकार वाले, चर-अचर रूप में व्याप्त हैं, उस पद को दिखलाने वाले उस श्रेष्ठ गुरु को नमस्कार है ॥ ९ ॥ **ये प्रसिद्ध है देवी! कि उस पद को दिखलाने वाला मनुष्य होता है, इसलिये हे देवी! मनुष्य की गुरुता केवल कल्पित होती है** ॥ १० ॥

न तु गुरुः स्वयं न च मुख्यता चोभयोरपि। अयं गुरुरिति ज्ञानं शिष्योऽयं खलु मे सदा॥ ११ ॥
दर्शकः पठनश्चैव न स्वयं मानुषो गुरुः। मोक्षो न जायते सत्यं मानुषे गुरुभावना॥ १२ ॥

(कामाख्यातन्त्रम्, पंचम पटल, १-१२)

मनुष्य स्वयं गुरु नहीं होता और न तो मनुष्य में (सदाशिव तथा गुरु) दोनों की मुख्यता होती है, 'ये गुरु है और ये शिष्य है'—यह ज्ञान सदा मुझको रहता है ॥ ११ ॥ **मनुष्य मार्गदर्शक, पाठक [धर्म-शास्त्र के संदेशों को बताने वाला] है, मनुष्य स्वयं गुरु नहीं है, ये सत्य है! उसे मोक्ष नहीं मिलता जिसकी मनुष्य में गुरुभावना होती है** ॥ १२ ॥

[शिव का वचन है कि मनुष्य मार्गदर्शक, पाठक (धर्म-शास्त्र के संदेशों को बताने वाला) होता है। मनुष्य स्वयं गुरु नहीं है। गुरु परब्रह्म सदाशिव हैं।]

☞ साधु-सन्तों के परमगुरु महादेव का क्या वचन है, इसे आपने पढ़ा। **ब्रह्मा, विष्णु** तथा **शिव** की गुरुभावना किस तरह जीवनोपयोगी एवं कल्याणकारी है, इसको जानें!

परब्रह्म के इन चार स्वरूपों में त्रिदेव **विष्णु, ब्रह्मा तथा शिव** को ही गुरु बनाकर आराधना करने को तथा इन्हें ही सर्वोपरि क्यों कहा गया है। इसे जानें—

भूलोक के मनुष्य **भोग, ज्ञान** तथा **योग** की कामना चाहने वाले हैं। कुछ लोग **भोग की कामना** लेकर, कुछ लोग **ज्ञान की कामना** लेकर तो कुछ लोग **योग-सन्यास की कामना** लेकर जीवन जीते हैं।

☞ **भोग की कामना** वाला मनुष्य यदि **नारायण-लक्ष्मी** को गुरु मान कर नित्य उनकी **साधना/आराधना** में रत रहे, **ज्ञान की कामना** वाला मनुष्य यदि **ब्रह्मा-सरस्वती** को गुरु मान कर नित्य उनकी **साधना/आराधना** में रत रहे तथा **योग-सन्यास की कामना** वाला मनुष्य यदि **शिव-पार्वती** को गुरू मान कर नित्य उनकी **साधना/आराधना** में रत रहे तो वह आरोग्यता एवं दुःख रहित जीवन बिताकर सुख पूर्वक अपने मनोकामनाओं को प्राप्त करता है।

परब्रह्म के चौथे स्वरूप **धर्माधिकारी चित्रगुप्त** हैं, यह प्राणी का भोग निर्धारित करते हैं। प्राणी विष्णुलोक, ब्रह्मलोक, शिवलोक, नरकलोक जायेगा, पुनः जन्म लेगा अथवा प्रेत योनि में भटकता रहेगा इसे निर्धारित करते हैं। जिसे आपने पीछे पढ़ लिया है।

☞ जगह-जगह आश्रम बनाकर एवं स्वयं को गुरु कहने वाले कथित धर्माचार्य अपने आश्रम के सदस्यों को कहते हैं कि मनुष्य रूपी गुरु ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा वही साक्षात् परब्रह्म है।

तनिक विचार करें! कि नश्वर मनुष्य को गुरु मानकर पूजा करने पर क्या मनुष्य रूपी गुरु, दुःख देने वाले यमदूतों से हमें बचा कर सुख दे सकेगा? कदापि नहीं! स्वयं को गुरु कहने वाला मनुष्य और उसका शिष्य दोनों ही यमदूतों द्वारा सुख-दुःख को यथावत् भोगेंगे।

वहीं यदि कोई मनुष्य सासांरिक भोग हेतु **विष्णु–लक्ष्मी, ज्ञान हेतु ब्रह्मा–सावित्री (सरस्वती), योग, सन्यास एवं संहार हेतु शिव–शक्ति** को गुरु बनाकर पूजा करे तो वह यमदूतों के दुःखों से वंचित रह कर लोक तथा परलोक को सिद्ध करेगा।

परब्रह्म के चार स्वरूपों **विष्णु, ब्रह्मा, शिव** एवं **चित्रगुप्त** में, **विष्णु, ब्रह्मा, शिव** तथा **चित्रगुप्त** कामनानुसार भोग दायक हैं।

परब्रह्म के ये चार स्वरूप नश्वर नहीं हैं, शेष ऋषि, देवराजइन्द्र, सूर्य, चन्द्र इत्यादि देव, बृहस्पति, शुक्र जैसे आचार्य सभी नश्वर हैं। ब्रह्माण्ड नष्ट होगा, देवराजइन्द्र, सूर्य, चन्द्र इत्यादि देव, बृहस्पति, शुक्र जैसे आचार्य भी नष्ट होंगे।

पुनः सृष्टि का सृजन होगा परन्तु ये परब्रह्म के चार रूवरूप **विष्णु, ब्रह्मा, शिव** एवं **चित्रगुप्त—विष्णुलोक, ब्रह्मलोक, शिवलोक** एवं **यमलोक** में रहकर नई सृष्टि का निर्माण एवं संचालन करेंगे।

सभी सनातनियों के लिये **विष्णु, ब्रह्मा, शिव तथा चित्रगुप्त** की कृपा भूलोक में सर्वकामना को देने वाली तथा परलोक में मोक्षदाता है, इसीलिये परब्रह्म स्वरूप ये त्रिदेव विष्णु, ब्रह्मा तथा शिव ही गुरु हैं।

× × ×

सनातनी धर्मियों का शिक्षक एवं पाठक (धार्मिक शिक्षक) आर्यसमाजी, बौद्धधर्म, सिक्खधर्म, इत्यादि दूसरे धर्म का मनुष्य नहीं हो सकता है

सनातन धर्म के लोग अत्यन्त धार्मिक हैं। ये नित्य पूजा-पाठ में रत हैं, आपने पिछले अध्याय में पढ़ा कि भगवान् शिव का वचन है कि मनुष्य स्वयं गुरू नहीं होता बल्कि मनुष्य में गुरुता केवल कल्पित होती है। शिव का वचन है कि मनुष्य केवल शिक्षक तथा पाठक अर्थात् वेद, पुराण, उपनिषद् तथा स्मृतियों का पढ़कर केवल सुनाता है। वह मनुष्य स्वयं उन धार्मिक वचनों का निर्माता नहीं है।

वर्तमान् में देखा जा रहा है कि अपना जीवन उत्कृष्ट बनाने हेतु सनातनी बन्धु विभिन्न आश्रमों में जाकर सत्संग के नाम पर ऐसे वचनों को सुनते हैं जो उनके धर्म का नहीं होता है, ये अत्यन्त गम्भीर विषय है। इस त्रुटि को जानें।

सनातन धर्मी वह है, जो ४ वेद, १८ पुराण, १८ स्मृति, ४ वर्ण तथा सनातन १६ संस्कारों को मानता है। सनातनी मनुष्य इन्हीं धार्मिक ग्रन्थों में दिये गये संदेशों का पालन करते हुये अपने जीवन को उत्तम बनाता है। सनातन धर्मी मनुष्य का शिक्षक एवं पाठक (धर्म शास्त्र को बताने वाला) केवल सनातन धर्मी ४ वर्णों का मनुष्य ही हो सकता है।

☞ जिस मनुष्य का जन्म सिक्खधर्म, आर्यसमाजधर्म, बौद्धधर्म, जैनधर्म, इस्लामधर्म, ईसाईधर्म इत्यादि में हुआ हो वह सनातन धर्मी मनुष्यों का शिक्षक एवं पाठक (धर्म शास्त्र को बताने वाला) कदापि नहीं हो सकता है।

सिक्ख धर्म, आर्यसमाज धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म इत्यादि ४ वर्ण तथा सनातन १६ संस्कारों की मान्यता में नहीं हैं, इसलिये इन धर्मों में जन्म लिया मनुष्य सनातनी नहीं है, ऐसा विधर्मी कभी भी सनातन धर्मियों का धार्मिक शिक्षक नहीं हो सकता है। इसके निम्न कारणों को जानें—

सनातन धर्मी जानता है कि सदाशिव ने सर्वप्रथम विष्णु को, विष्णु ने ब्रह्मा को, ब्रह्मा ने १० ऋषि, मनु-शतरूपा, सनकादि, रुद्र (शंकर) तथा चित्रगुप्त को उत्पन्न किया। इन्हीं से सारा संसार भरा पड़ा है। इस लोक में विद्यमान् ब्रह्मकायस्थदेवब्राह्मण एवं अन्य ऋषिब्राह्मण, सूर्यवंशीय, चन्द्रवंशीय तथा अग्निवंशीय क्षत्रिय, विश्वकर्मावंशीय वैश्य इत्यादि, देव तथा ऋषियों से उत्पन्न हुये हैं। अलग-अलग कुल से उत्पन्न होने के कारण मनुष्यों के गुणों में भी भिन्नता है, इसीलिये हमें ४ वर्ण में बाँट करके कर्म निर्धारित किया गया है।

शिक्षक एवं पाठक के विषय में जानने से पहले कुछ सनातन धर्म एवं विज्ञान के सत्य को जानें—

हमें किसी अन्य लोक से लाकर बसाया गया है, ऐसा हमारा पुराण कहता है। इसी बात की पुष्टि अभी कुछ दिनों पहले नासा ने की है। नासा ने बताया कि सभी मनुष्य एक समान नहीं हैं, पृथ्वी पर जो बुद्धिमान जातियाँ हैं वे किसी और लोक से यहाँ लाकर बसाई गई हैं।

नासा ने एक शिला पर ध्यान केन्द्रित कराया इसे देखें—

उपर्युक्त चित्र में दो शिलाओं के ऊपर एक शिला रखी गई है, ये इतनी विशाल शिला है कि इसे उठा कर रखना आज भी सम्भव नहीं है। विश्व में अभी तक ऐसी कोई क्रेन नहीं है जो इसे उठा कर रख दे। नासा ने बताया कि सृष्टि के प्रारम्भ में दूसरे लोक के लोग यहाँ नियमित आते थे और यहाँ के लोगों को ज्ञान एवं विज्ञान से मदद करते थे।

पुराणों में देवताओं, ऋषियों का आकर यहाँ के लोगों को मदद करने का अनेकों प्रकरण विद्यमान् है। विज्ञान ने स्वीकार किया है कि पृथ्वी पर बुद्धिमान जातियाँ किसी अन्य लोक से लाकर बसाई गई हैं।

नासा ने परग्रही मनुष्यों एवं पृथ्वी के मूल निवासियों के कंकाल से सिर को निकाल कर परीक्षण किया। उसने पाया कि बाहर से लाकर बसाये गये मनुष्यों का दिमाग कुछ बड़ा है और दिमाग को ढकने वाली हड्डी में अन्तर है। परग्रही के सिर की हड्डी कुछ मोटी है। नासा द्वारा ये परीक्षण **मिस्र, पूर्वी भारत** एवं **चीन** के कुछ हिस्से से प्राप्त नरकंकालों पर किया गया था।

ये किस लोक से आये हैं किसके वंशज है, विज्ञान को इसका पता नहीं है जबकि पुराणों में स्पष्ट रूप में विद्यमान् है। **ये दृष्टिकोण तो विज्ञान का है, जो हमारे पौराणिक कथानक के सत्यता की पुष्टि करता है।**

उपर्युक्त विवरण विस्तार से History Channel पर Ancient Aliens (प्राचीन परग्रही) नामक सीरियल में दिखाया गया था।

हमारा सनातन धर्म सत्य रूप में विद्यमान् है, इसके कुछ अन्य सत्यों पर भी ध्यान दें—

1-चर-अचर रूप में प्राणी—

वैज्ञानिक प्रो० जगदीश चन्द्र बसु ने कुछ वर्षों पूर्व प्रमाणित किया कि वनस्पतियों में प्राण है, जबकि ब्रह्माजी ने सृष्टि के प्रारम्भ में ही स्वाम्भुवमनु को बता दिया था कि वनस्पतियों में भी प्राण है। यथा—

प्राणस्यान्नमिदं सर्वं प्रजापतिरकल्पयेत्। स्थावरं जङ्गमं चैव सर्वं प्राणस्य भोजनम्॥ २८॥

(मनुस्मृति, अध्याय-५, श्लोक-२८)

ब्रह्मा ने सब प्राणी के लिये अन्न कल्पित किया है। स्थावर (अचर प्राणी/वनस्पति) और जंगम (चर प्राणी/पशु-पक्षी) इत्यादि प्राण के ही भोजन हैं॥ २८॥

यदि विज्ञान सनातन धर्म को मानकर मनुस्मृति को पढ़ लेता तो उसे प्राणी के विषय में ज्ञान पहले ही हो जाता और शोध में धन नष्ट नहीं होता।

2-आत्मा का अस्तित्व—

सनातन धर्म के अनुसार आत्मा अविनाशी है, यह अलग-अलग प्राणी का रूप लेकर भोग करती है। आत्मा के निकलते ही प्राणी मृत हो जाता है। विज्ञान ने सर्वप्रथम सनातन धर्म के इस सिद्धान्त को नकार दिया, क्योंकि विज्ञान का मानना था कि हृदयगति रुकने से प्राणी मृत हो जाता है। विज्ञान ने शोध करते हुये इस सिद्धान्त का परीक्षण किया।

सर्व प्रथम एक मनुष्य को तुला रूपी शैया पर लेटा कर छोड़ दिया, जब वह दिवंगत हुआ तब कुछ वजन कम हो गया। वैज्ञानिकों को अत्यन्त आश्चर्य हुआ, पुनः एक मनुष्य को तुला रूपी शैया पर लेटा कर उसे 10 mm के शीशे में बन्द कर दिया गया, उस मनुष्य के मृत होते ही शीशा टूट गया, तब विज्ञान ने समझा कि ऐसी कोई चीज वायु रूप में रहती है जिसके निकलने से हृदयगति रुक जाती है और प्राणी मृत हो जाता है।

3-अगला जन्म—

सनातन धर्म जन्मजन्मान्तर के भोग को मानता है। विज्ञान एवं अन्य धर्मों की मान्यता थी कि मनुष्य इसी जन्म को भोग कर नष्ट हो जाता है, जबकि सनातन धर्म की मान्यता है कि मनुष्य योनि को प्राप्त करने के पूर्व प्राणी ८४ लाख योनियों का भोग करके मनुष्य योनि को प्राप्त करता है तथा अपने दुष्कर्मों के कारण पुनः अधोयोनि में चला जाता है।

विज्ञान ने इसे भी नकार दिया, परन्तु यूरोप सहित अनेक देशों में पुनर्जन्म की घटनाऐं सामने आईं। किसी के घर बच्चा जन्म लेकर जब बड़ा हुआ तो उसने उस घर को अपना घर मानने से मना कर दिया, उस बालक ने अपना घर अन्यत्र बताया। जब परिजन उस बालक को बताये स्थान पर ले गये, तो उस बालक ने अपनी पत्नी, बच्चे तथा सगे सम्बन्धियों को पहचान लिया।

इसी प्रकार सनातन धर्म का मानना है कि अकाल मृत्यु एवं अतृप्त आत्माऐं भटकती रहती हैं। विज्ञान ने इसे भी नहीं माना, परन्तु भूत-पिशाचों की अनेक घटनाऐं यूरोप में पायी गईं, इसे भी विज्ञान को स्वीकार करना पड़ा। इन सत्य घटनाओं को Discovery Channel पर The Best of Hunting एवं Truth of Scare नामक सीरियल में दिखाया जा चुका है, और भी बहुत से सनातनी सत्य हैं, जिसे विज्ञान ने सत्य माना है।

सनातन धर्म के बाद ही अन्य धर्मों का उदय हुआ है। परन्तु सनातन सत्य ही विज्ञान की परख पर सत्य साबित हुआ है।

सनातन धर्म से भारत में जैनधर्म, बौद्धधर्म, आर्यसमाजधर्म तथा सिक्खधर्म का उदय हुआ है।

आर्यसमाज धर्म ने सनातन धर्म के कुछ अंश को चुराकर मनगढ़न्त व्याख्या करके असत्य धर्म की स्थापना की, आर्य समाज कहता है कि विष्णु, ब्रह्मा, शिव, चित्रगुप्त, यमराज इत्यादि देव एवं ऋषि काल्पनिक हैं। सूर्य, चन्द्र ग्रह हैं। आर्यसमाज के दृष्टि में विष्णु से ब्रह्मा तथा ब्रह्मा से १० ऋषि, मनु-शतरूपा, सनकादि, रुद्र (शंकर) तथा चित्रगुप्त उत्पन्न नहीं हैं। ये सभी देवता काल्पनिक हैं, ये अस्तित्व में नहीं हैं।

आर्यसमाज धर्म का मानना है कि सभी मनुष्य एक समान हैं, जो लोग वेद-पुराणों का पाठ करते थे। वे ब्राह्मण हैं। जो लेखन का कार्य करने वाले हैं वे कायस्थ हैं।

जो सूर्य के समान तेजस्वी राजा थे, उनके वंशज सूर्यवंशीय हैं। जो चन्द्र के समान सौम्य राजा थे, उनके वंशज चन्द्रवंशीय हैं। जो अग्नि के समान तेजस्वी राजा थे, उनके वंशज अग्निवंशीय हैं।

इसी प्रकार जो मनुष्य तकनीकी कार्य को करने वाले हैं वे विश्वकर्मा के वंशज हैं।

आर्यसमाज धर्म ब्रह्मा के अंग से उत्पन्न ऋषियों के वंश को नकारता है, चित्रगुप्त नामक देव, सूर्य नामक देवता, चन्द्र नामक देवता, अग्नि नामक देवता एवं विश्वकर्मा नामक देवता से उत्पन्न वंश को नकारता है। जबकि सनातन धर्म के अनुसार ये सभी देव एवं ऋषि अस्तित्व में हैं।

सनातन धर्म से इतर आर्यसमाज धर्म सहित जितने भी धर्म हैं, सभी धर्मों की मान्यता लगभग एक समान ही है। जिनके हृदय में सनातन धर्म है ही नहीं वो सनातन धर्मियों का शिक्षक और पाठक कदापि नहीं हो सकता है। वर्तमान् समय में देखा जा रहा है कि पश्चिम भारत के सिक्ख तथा आर्य समाज में जन्म लिये मनुष्य सनातनियों को प्रवचन सुनाते हैं और देवता, ऋषियों और पुराणों में विद्यमान् पाठ का नकल करके ढोंग करते हैं जबकि वे स्वयं जन्म से ही सनातन धर्म को नहीं मानने वाले हैं।

यदि कोई सनातनी—कुरान और बाईबिल को पढ़ ले और उस धर्म के लोगों को धार्मिक शिक्षा दे, तो वह केवल नकल और ढोंग करेगा क्योंकि हृदय से वह इस्लामिक और ईसाई नहीं है। इसी प्रकार दूसरे धर्म के लोग सनातन धर्म का नकल करके ढोंग कर रहे हैं, इनका संग—सत्संग न होकर कुत्संग है। ऐसे ढोंगी समाज में बहुत हो गये हैं।

सनातन धर्मियों का शिक्षक और पाठक सनातन धर्मी-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ही हो सकता है। नारदजी ने राम को बताया था कि कलियुग में सभी वर्ण के लोग तपस्वी होंगे, जिसका वर्णन श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकाण्ड, सर्ग-२७ में विद्यमान् है। यथा—

हीनवर्णो नृपश्रेष्ठ तप्यते सुमहत्तपः। भविष्यच्छूद्रयोन्यां वै तपश्चर्या कलौ युगे॥ २७॥

(श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकाण्ड, सर्ग-७४)

नारदजी ने राम से कहा कि हे राजन् कलियुग में हीनवर्ण के लोग भी कठोर तपस्या करेंगे॥ २७॥

इस कलियुग में सभी वर्ण के लोग धार्मिक कर्म को करने योग्य हैं इसलिये सनातन धर्मी का शिक्षक और पाठक सनातन धर्मी—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र कुल का मनुष्य ही हो सकता है। **सनातनी बन्धु! दूसरे**

धर्म के लोगों के प्रवचन को आप कदापि न सुनें क्योंकि वे मिथ्या वचन एवं ढोंग है।

सनातन आश्रम की पहचान—

सनातनी आश्रम को आप शीघ्र ही पहचान लेंगे। जो सनातनी मठ होगा वहाँ के धर्माचार्य मृत्यु के पश्चात् सनातनी विधि से श्राद्ध करने के लिये कहेंगे, क्योंकि ये सनातन धर्म का नियम है। सनातनी श्राद्ध में पीपल के वृक्ष पर घट (मिट्टी के घड़े) में जल भरकर पितृ को जलाञ्जली देने का नियम है। जिस धर्म में पितृ को जलाञ्जली देने का नियम नहीं है, वह न तो सनातन धर्म है और न तो सनातन धर्म की शाखा है। **वेद के मंत्रों का अनर्गल प्रयोग करके स्वाहा, स्वाहा करना सनातन धर्म नहीं है।**

सनातन धर्म लोक और परलोक के अस्तित्व को स्वीकार करता है, वह मानता है कि आकाश और वायु तत्व से निर्मित प्राणी भी इस लोक में विद्यमान् हैं। इन प्राणियों में देवता, भूत, पिशाच इत्यादि भी हैं जो बिना योगबल के देखे नहीं जा सकते हैं। आकाश और वायु तत्व से निर्मित ये प्राणी अपनी इच्छानुसार दृष्य हो जाते हैं, परन्तु हम उन्हें तभी देख सकते है, जब हममें यौगिक बल हो।

जिस आश्रम में इस नियम का पालन नहीं होता है वह सनातनी आश्रम नहीं है। वह आश्रम सनातन धर्मियों के लिये अधर्म और सर्वनाश का कारण है।

सनातनी बन्धु! सदैव अपने धर्म के आश्रम के ही सदस्य बनें और आश्रम में जाकर ठीक तरह से जाँच-पड़ताल कर लें कि वह सनातन धर्मी आश्रम है अथवा नहीं। सनातनी आश्रमों में जुड़ने से आपका सदैव कल्याण होगा।

× × ×

महाकाल एवं ऋषियों का परस्पर सम्बन्ध

भगवान् ब्रह्मा ने सृष्टि विस्तार के क्रम में दो **महाकाल** को उत्पन्न किया। इन्होंने अपने '**क्रोध**' से '**भगवान् रुद्र [शंकर]**' तथा '**काया**' से '**भगवान् कायस्थ [चित्रगुप्त]**' को उत्पन्न किया। इन्हें ही **ब्रह्मपुत्र कायस्थ** कहा जाता है। इन दोनों '**महाकालों**' का विवाह '**ऋषि पुत्रियों**' के साथ हुआ।

महाकाल रुद्र

भगवान् रुद्र को ही **महादेव तथा शंकर** कहते हैं। ये संहार के देवता अर्थात **महाकाल** कहे गये हैं। इनका विवाह **दक्ष ऋषि** की पुत्री **सती** के साथ हुआ। सती ने अपने पिता द्वारा भगवान् रुद्र के अपमान के कारण शरीर को त्याग दिया। वही सती हिमालय की पुत्री के रूप में उत्पन्न होकर **पार्वती** हुईं।

महाकाल चित्रगुप्त

'**महाकाल**' **भगवान् चित्रगुप्त**–'**शाश्वत महाकाल**' **हैं। भगवान् चित्रगुप्त** ही प्रत्येक प्राणियों का अन्त करने वाले देवता हैं। आदिकाल से लेकर अब तक जितने भी मनुष्य जन्म लेकर मरे हैं और आगे मरेंगे, सबका अन्त इन्हीं के द्वारा हुआ और आगे भी होगा। **यह 'शाश्वत महाकाल' हैं।**

महाकाल चित्रगुप्त का विवाह कश्यप ऋषि के वंशज वैवस्वतमनु की ४ एवं नागर ब्राह्मणों की ८ कन्याओं के साथ हुआ था। **महाकाल चित्रगुप्त की पत्नियाँ भी ऋषिपुत्रियाँ हैं।**

भगवान् चित्रगुप्त के पिता 'भगवान् ब्रह्मा'

ऋग्वेद के दशम् मण्डल के १२१ सूक्त में भगवान् ब्रह्मा के विषय में कहा गया है कि—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकआसीत्। सदाधार पृथ्वीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ १ ॥

सबसे पहले केवल परमात्मा वा हिरण्यगर्भ थे। उत्पन्न होने पर वे सारे प्राणियों के अद्वितीय अधीश्वर थे। उन्होंने इस पृथिवी और आकाश को अपने-अपने स्थानों में स्थापित किया। उन "**क**" नामवाले प्रजापति देवता की हम हवि के द्वारा पूजा करेंगे अथवा हम हव्य के द्वारा किन देवता की पूजा करें?॥ १॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवायं हविषां विधेम॥ २ ॥

जिन प्रजापति ने जीवात्मा को दिया है, बल दिया है, जिनकी आज्ञा सारे देवता मानते हैं, जिनकी छाया अमृत-रूपिणी है और जिनके वश में मृत्यु है, उन "**क**" नामवाले आदि॥ २॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव। य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ३ ॥

जो अपनी महिमा से दर्शनेन्द्रिय और गतिशक्तिवाले जीवों के अद्वितीय राजा हुए हैं और जो इन द्विपदों और चतुष्पदों के प्रभु है उन "**क**" नामवाले आदि॥ ३॥

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसायां सहाहुः। यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ४ ॥

जिनकी महिमा से ये सब हिमाच्छन्न पर्वत उत्पन्न हुए हैं, जिनकी सृष्टि यह ससागरा धरित्री कही जाती है और जिनकी भुजायें ये सारी दिशाएँ हैं, उन "**क**" नाम आदि॥ ४॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळहा येन स्वः स्तभितं येन नाकः। यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ५ ॥

जिन्होंने इस उन्नत आकाश और पृथिवी को अपने-अपने स्थानों पर दृढ़ रूप से स्थापित किया है, जिन्होंने स्वर्ग और आदित्य को रोक रक्खा है और जो अन्तरिक्ष में जल के निर्माता हैं, उन उन "**क**" नाम आदि॥ ५॥

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसारेजमाने। यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ६ ॥

जिनके द्वारा द्यौ और पृथिवी, शब्दायमान होकर, स्तम्भित और उल्लसित हुए थे और दीप्तिशील द्यौ और पृथिवी ने जिन्हें महिमान्वित समझा था तथा जिनके आश्रय से सूर्य उगते और प्रकाश करते हैं, उन उन "**क**" नाम आदि॥ ६॥

आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन्गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्। ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ७ ॥

प्रचुर जल सारे भुवन को आच्छन्न किये हुए था। जल में गर्भ धारण करके अग्नि या आकाश आदि सबको उत्पन्न किया। इससे देवी के प्राण वायु उत्पन्न हुए उन "**क**" नाम आदि॥ ७॥

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्। यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ८ ॥

जल धारण करके जिस समय जल ने अग्निको उत्पन्न किया, उस समय जिन्होंने अपनी महिमा से उस जल के ऊपर चारों ओर निरीक्षण किया तथा जो देवों में अद्वितीय देवता हुए, उन "**क**" नाम आदि॥ ८॥

मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान। यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ९ ॥

जो पृथिवी के जन्मदाता हैं, जिनकी धारण-क्षमता सत्य है, जिन्होंने आकाश को जन्म दिया और जिन्होंने आनन्द-वर्द्धक तथा प्रचुर परिमाण में जल उत्पन्न किया, वे हमें नहीं मारें। उन "**क**" नाम आदि॥ ९॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ताबभूव। यत् कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥ १०॥

(ऋग्वेद, दशम् मण्डल, सूक्त १२१, ऋचा १-१०)

प्रजापति, तुम्हारे अतिरिक्त और कोई इस समस्त उत्पन्न वस्तुओं को अधीन करके नहीं रख सकता। **जिस अभिलाषा से हम तुम्हारा हवन करते हैं, वह हमें मिले। हम धनाधिपति हों**॥ १०॥

× × ×

भगवान् ब्रह्मा की उपासना के बिना 'धर्म, ज्ञान, वैराग्य, और ऐश्वरीय भाव' प्राप्त नहीं हो सकता है

तस्य चाकथयत्प्रीत्या यन्मुनिर्भृगुनन्दनः। तत्ते प्रकथयिष्यामः शृणु त्वं द्विजसत्तम॥ १८॥
प्रणिपत्य जगन्नाथं पद्मयोनिं पितामहम्। जगद्योनि स्थितं सृष्टौ स्थितौ विष्णुस्वरूपिणम्॥
प्रलये चान्तकर्त्तारं रुद्रस्वरूपिणम्॥ १९॥

मार्कण्डेय उवाच—

उत्पन्नमात्रस्य पुरा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः। पुराणमेतद्वेदाश्च सुखेभ्योऽनुविनिःसृताः॥ २०॥
पुराणसंहिताश्चक्रुर्बहुलाः परमर्षयः। वेदानां प्रविभागश्च कृतस्तैस्तु सहस्रशः॥ २१॥
धर्मज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च महात्मनः। तस्योपदेशेन विना नहि सिद्धं चतुष्टयम्॥ २२॥

(मार्कण्डेयपुराण, अ० ४२)

पक्षी बोले—हे द्विजश्रेष्ठ! भृगुनन्दन (मार्कण्डेयजी) ने प्रसन्नचित्त होकर जो कहा था मैं वही तुमसे कहता हूँ सुनो!॥ १८॥ जो जगत्कारण पद्मयोनि पितामहरूप से इस विश्व को उत्पन्न करते हैं विष्णुस्वरूप से स्थिति विधान करते हैं, रौद्रस्वरूप रूद्ररूप से प्रलयकाल में सबका संहार करते हैं, उन्हीं जगन्नाथ का प्रणाम करके हम भी वही सविशेष वर्णन करते हैं सुनो॥ १९॥

मार्कण्डेय जी बोले—पूर्व काल में अव्यक्तयोनि ब्रह्मा जी के उत्पन्न होते ही उनके चारों मुख से वेदों और पुराणों का आविर्भाव हुआ॥ २०॥ ऋषियों ने उस पुराणसंहिता को विविध अंश में और वेद को भी सहस्र भाग में विभक्त किया॥ २१॥ **उन महात्मा (भगवान् ब्रह्मा) के विना उपदेश के 'धर्म, ज्ञान, वैराग्य, और ऐश्वरीय भाव', इन चारों की सिद्धि नहीं हो सकती है॥ २२॥**

× × ×

भगवान् ब्रह्मा की मूर्ति स्थापना

प्रत्येक **नगर** एवं **गृह** का मध्य भाग '**ब्रह्मस्थान**' कहा गया है। नगर के मध्य में **भगवान् ब्रह्मा** के मूर्ति की स्थापना करने का विधान है। यथा—

ब्रह्मा मध्ये तु नगरे पूर्वे शक्रस्य शोभनम्॥ १०॥

(अग्निपुराण, अ० ३९)

भगवान् ब्रह्मा का मन्दिर नगर के मध्य भाग में तथा इन्द्र का पूर्व दिशा में शोभित होता है।

× × ×

'पुष्कर तीर्थ' माहात्म्य (अग्निपुराण)

अग्निपुराण के १०९ वें अध्याय में पुष्कर तीर्थ का माहात्म्य दिया गया है। पुष्कर तीर्थ भगवान् ब्रह्मा की तीर्थ स्थली है।

पुष्करं परमं तीर्थं सांनिध्यं हि त्रिसंध्यकम्। दशकोटिसहस्त्राणि तीर्थानां विप्र पुष्करे॥ ५॥
ब्रह्मा सह सुरैरास्ते मुनयः सर्वमिच्छवः। देवाः प्राप्ताः सिद्धिमत्र स्नाताः पितृसुरार्चकाः॥ ६॥
अश्वमेधफलं प्राप्य ब्रह्मलोकं प्रयान्ति ते। कार्तिक्यामन्नदानाच्च निर्मलो ब्रह्मलोकभाक्॥ ७॥
पुष्करे दुष्करं गन्तुं पुष्करे दुष्करं तपः। दुष्करं पुष्करे दानं वस्तुं चैव सुदुष्करम्॥ ८॥

हे **ब्राह्मण देव! पुष्कर तीर्थ सर्वोत्कृष्ट तीर्थ है।** (कम-से-कम) तीन संध्याओं तक उसका सान्निध्य प्राप्त

करना चाहिये, क्योंकि **पुष्कर तीर्थ में दस करोड़ सहस्त्र तीर्थ रहा करते हैं।** वहाँ सभी देवताओं के साथ ब्रह्मा तो रहते ही हैं, सभी प्रकार की इच्छा करने वाले मुनिजन भी वहाँ निवास करते हैं। पुष्कर तीर्थ में स्नान करके पितरों और देवताओं की पूजा करने वाले देवताओं ने सिद्धि प्राप्त की थी। इसमें स्नान करनेवाले (प्राणी) अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करके ब्रह्मलोक पहुँच जाते हैं। वहाँ कार्तिक के महीने में अन्नदान करने वाला व्यक्ति भी पवित्र होकर ब्रह्मलोक का अधिकारी हो जाता है। पुष्कर की यात्रा तो कठिन है ही, वहाँ तपस्या करना, दान देना तथा निवास करना और भी कठिन है॥ ५—८॥

तत्र वासाज्जपाच्छ्राद्धात्कुलानां शतमुद्धरेत्।

(अग्निपुराण)

वहाँ पर निवास करने से, जप करने से और श्राद्ध करने से सौ कुलों का उद्धार हो जाता है।

× × ×

पुष्कर तीर्थ माहात्म्य (पद्मपुराण)

भीष्म उवाच–

किंकृतंब्रह्मणाब्रह्मन्प्रेष्यवाराणसीपुरीम् । जनार्दनेन किंकर्म शंकरेण च यन्मुने॥ १॥
कथंयज्ञःकृतस्तेनकस्मिंस्तीर्थेवदस्वमे । केसदस्यात्रऋत्विजश्चसर्वा स्तान्प्रब्रवीहिमे॥ २॥
के देवास्तर्पितास्तेन एतन्मे कौतुकं महत्।

भीष्म जी बोले—भीष्मजी पुलस्त्यजी से भगवान् ब्रह्मा द्वारा किये गये यज्ञ एवं स्थान के विषय में पूछे- ॥ १-२$^{1}/_{2}$ ॥

पुलस्त्य उवाच–

श्रीनिधानं पुरं मेरोःशिखरे रत्नचित्रिम्॥ ३॥
अनेकाश्चर्यनिलयं बहुपादपसंकुलम्। विचित्रधातुभिश्रितं स्वच्छस्फटिकनिर्मलम्॥ ४॥
लतावितानशोभाढडं शिखिशब्दविनादितम्। मृगेन्द्ररववित्रस्तगजयूथसमाकुलम् ॥ ५॥
निर्झरांवुप्रपातोत्थशीकरासारशीतलम् । वाताहततरुव्रातप्रसन्नापानचित्रितम् ॥ ६॥
मृगनाभिवरामोदवासितशेषकाननम् । लतागृहरतिश्रान्तसुप्तविद्याधराध्वगम् ॥ ७॥
प्रगीतकिन्नरव्रातमधुरध्वनिनादितम् । तस्मिन्ननेक विन्यासशोभिताशेषभूमिकम्॥ ८॥
वैराजं नाम भवनं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः। तत्र दिव्यांगनोद्गीतमधुरध्वनिनादिता॥ ९॥
पारिजाततरूत्पन्नमंजरीदाममालिनी । रत्नरश्मिसमूहोत्थबहुवर्णविचित्रिता ॥ १०॥

पुलस्त्यजी बोले—मेरु पर्वत के शिखर पर अनेक रत्नों से युक्त श्री का घर की तरह एक स्थान है जहाँ वृक्ष आपस में गोलाकार बनाकर घर के आकृति के अनुसार लग रहे थे। वह स्वच्छ स्फटिक के समान निर्मल और अनेक वर्ण के धातु थे। वहाँ की नदियों का जल उपर से नीचे की तरफ गिर रहा था जिसका जल अत्यन्त शीतल था। हवा के कारण अपने आप वृक्षों के टकराने से विचित्र लगता है सम्पूर्ण जंगल में कस्तुरी की महक व्याप्त थी। मानो विद्याधर, अप्सरों के मार्ग के श्रम को लतारूपी गृह दूर कर देती है। किन्नरों के द्वारा सुन्दर गीत गाया जा रहा है। वहाँ की अन्य भूमि भी अत्यन्त शोभा को प्राप्त कर रही है। ब्रह्मा के द्वारा बतायी गयी वैराग नाम के भवन में दिव्यांगनाओं द्वारा सुन्दर गीत की ध्वनि सुनाई देती है। पारिजात के वृक्ष से उत्पन्न मञ्जरी का समूह ऐसा लगता था मानो अनेक रत्नों की रश्मियाँ एक साथ बाहर निकल रही हो॥ ३—१०॥

विन्यस्तस्तंभकोटिस्तु निर्मलादर्शशोभिता। अप्सरोनृत्यविन्यासविलासोल्लासलासिता॥ ११॥
बह्वातोद्यसमुत्पन्नसमूहस्वननादिता। लयतालयुतानेकगीतवादित्रशोभिता॥ १२॥
सभा कांतिमतीनाम देवानां शर्मदायिका। ऋषिसंघसमायुक्ता मुनिवृन्द निषेविता॥ १३॥
द्विजातिसामशब्देन नादितानंददायिनी। तस्यां निविष्टो देवेशःसंध्यासक्तः पितामहः॥ १४॥
ध्यायतिस्म परं देवं येनेंदं निर्मितंजगत्। ध्यायतो बुद्धिरुत्पन्ना कथं यज्ञं करोम्यहम्॥ १५॥
कस्मिन्स्थाने मया यज्ञः कार्यः कुत्रधरातले। काशीप्रयागस्तुंगा च नैमिषं शृंखलं तथा॥ १६॥
कांची भद्रा देविका च कुरुक्षेत्रं सरस्वती। प्रभासादीनि तीर्थानि पृथिव्यामिहमध्यतः॥ १७॥
क्षेत्राणि पुण्यतीर्थानि संति यानीह सर्वशः। मदादेशाच्च रुद्रेण कृतान्यन्यानिभूतले॥ १८॥
यथाहं सर्वदेवेषु आदिदेवो व्यवस्थितः। तथाचेकं परं तीर्थमादिभूतं करोम्यहम्॥ १९॥
अहं यत्र समुत्पन्नः पद्मं तद्विष्णुनाभिजम्। पुष्करं प्रोच्यते तीर्थमृषिभिर्वेदपाठकैः॥ २०॥
एवं चितयतस्तस्य ब्रह्मणस्तु प्रजापतेः। मतिरेषा समुत्पन्ना व्रजाम्येषधरातले॥ २१॥

इस जंगल रूपी भवन में अनेक स्तम्भ लगे हैं जो सुन्दर दर्पण के समान हैं, वहाँ निवास करने वाले अप्सरायें अत्यन्त हर्षित थीं। जिस प्रकार देवताओं की कान्तिमती नाम की सभा में अनेक वाद्य यन्त्र के द्वारा निकला सुर उस सभा में लय-ताल दे अत्यन्त शोभित होती है, जिसमें मुनियों ऋषियों से वह सभा सुशोभित होती है, ऐसा ही दृश्य उस पर्वत शिखर पर लग रहा था। ब्राह्मणों द्वारा सामवेद के शब्दों से सबको आनन्दित किया जा रहा था और ब्रह्माजी उन शब्दों से मुग्ध होकर संध्या के करने में मग्न थे। उसी समय उनके मन में एक बात ध्यान आई कि मैं परमदेव हूँ, इस संसार को मैंने जन्म दिया है, एक यज्ञ किया जाना चाहिये, वह यज्ञ पृथ्वी के किस स्थल पर किया जाय यह सोचने लगे कि यह स्थान काशी, प्रयाग से श्रेष्ठ नैमिषारण्य से ऊँचा, काञ्ची, भद्रा, देविका, कुरुक्षेत्र, सरस्वती तथा प्रभास आदि पृथ्वी के समस्त तीर्थों के मध्य में हो उपर्युक्त समस्त तीर्थों में मेरे आदेश से रुद्र ने जिन-जिन तीर्थों को इस पृथ्वी पर निर्मित किया है, उन सबमें सबसे श्रेष्ठ पुण्य तीर्थ हो। मैं स्वयं विष्णु के नाभि कमल से उत्पन्न हुआ हूँ इसलिए वेदपाठी ऋषि लोग इस तीर्थ को पुष्कर नाम से जानेंगे। ऐसा विचार करते हुए प्रजापति ब्रह्मा जी के मन में विचार आया कि मैं पृथ्वी पर जाऊँ॥ ११—२१॥

प्राक्स्थानं स समासाद्य प्रविष्टस्तद्वनोत्तमम्। नानाद्रुमलताकीर्णनानापुष्पोपशोभितम्॥ २२॥
नानापक्षिरवाकीर्णं नानामृगगणाकुलम्। द्रुमपुष्पभरामोदैर्वासयद्यत्सुरासुरान्॥ २३॥
बुद्धिपूर्वमिवन्यस्तैः पुष्पैर्भूषितभूतलम्। नानागंधरसैः पक्कैः पक्कैश्च षड्तूद्भवैः॥ २४॥
फलै सुवर्णरूपाढ्यं घ्राणदृष्टिमनोहरैः। जीर्णं पत्रं तृणं यत्र शुष्ककाष्ठफलानि च॥ २५॥
बहिः क्षिपति जातानि मारुतोऽनुग्रहादिव। नानापुष्पसमूहानां गंधमादाय मारुतः॥ २६॥
शीतलो वाति खं भूमिं दिशो यत्राभिवासयन्। हरितस्निग्धनिश्छिद्रैरकीटकवनोत्कटैः॥ २७॥
वृक्षैरनेकसंज्ञैर्यद्भूषितं शिखरान्वितैः। अरोगैर्दर्शनीयेश्च सुवृत्तैः केश्चिदुज्ज्वलैः॥ २८॥
कुटुंबमिव विप्राणमृत्विग्भिर्भाति सर्वतः। शोभंते धातुसंकाशेरंकुरैः प्रावृता द्रुमाः॥ २९॥
कुलीनैरिवनिश्छिद्रैः स्वगुणैः प्रावृतानराः। पवनाविद्धशिखरैः स्पृशन्तीवपररूपरम्॥ ३०॥

सबसे पहले उसी वन प्रदेश पर पहुँचे जहाँ अनेक वृक्ष लताओं, पुष्पों से सुशोभित थे। वहाँ पक्षियाँ शब्द कर रही थीं। अनेक मृगों से वह वन व्याप्त था। उस वन के पुष्पों के सुगन्ध से देव, राक्षस सभी सुगन्धित हो रहे थे, वह वन पुष्पों से व्याप्त थे। सभी ऋतु में उस वन में पके फल अनेक रस से युक्त थे। वहाँ के फल सोने के

रूपवाले एवं सूँघने तथा देखने में सुन्दर लगते थे। उस जंगल के सूखे पत्र, लकड़ी, घास, फल, वायु के द्वारा बाहर कर दिया जाता था, मानो वायु कृपा कर उस वन प्रदेश को साफ किया करते थे। वायु अनेक फूलों के गन्ध को लेकर चलती थी। वायु इस वन प्रदेश में शीतल बहती थी, इसमें रहने वाले प्राणी सुख का अनुभव करते थे। हरे, चिकने, छिद्र रहित, काँटे रहित, अनेक वृक्ष, उसके ऊँचे भाग पर सुन्दर लगते थे। मानो उस वन में यज्ञ करने वाले ब्राह्मण अपने परिवार के साथ रहते हों। उसी प्रकार वहाँ के वृक्ष सुन्दर पत्ते एवं फूल, फलों से युक्त दिखाई देते थे। दोष रहित एवं कुलीन मनुष्य जैसे अपने गुणों के कारण चारों ओर ख्याति प्राप्त करता है, उसी प्रकार वायु के द्वार वृक्षों के शिखर एक दूसरे से गोलाकार बने हुए दिखाई देते है॥ २२—३०॥

आजिघ्रंतीवचान्योन्यं पुष्पशाखावतंसकाः। नागवृक्षाः क्वचित्पुष्पैर्द्रुमवानीरकेसरैः॥ ३१॥
नयनैरिव शोभंते चंचलैः कृष्णतारकैः। पुष्प संपन्न शिखराः कर्णिकारद्रुमाःक्वचित्॥ ३२॥
युग्मयुग्माद्विधाचेह शोभन्त इवदंपतीः। सुपुष्पप्रभवाटोषैर्स्सिदुवारदु पंक्तयः॥ ३३॥
मूर्तिमत्य इवाभांति पूजिता वनदेवताः। क्वचित्क्वचित्कुंदलताः सपुष्पाभरणोज्वलाः॥ ३४॥
दिक्षु वृक्षेषु शोभंते बालचन्द्राइवोच्छ्रिताः। सर्जार्जुनाः क्वचिद्वाग्ति वनोद्देशेषु पुष्पिताः॥ ३५॥
धौतकौशेयवासोभिः प्रावृताः पुरुषाइव। अतिमुक्तकवल्लीभिः पुष्पिताभिस्तथाद्रुमाः॥ ३६॥
उपगूढा विराजन्ते स्वनारीभिरिवप्रियाः। अपरस्परसंसक्तैः सालाशोकाश्च पल्लवैः॥ ३७॥
हस्तैर्हतान्स्पृशंतीव सुहृदश्चिसरसंगताः। फलपुष्पभरा नम्राः पनसाः सरलार्जुनाः॥ ३८॥
अन्योन्यमर्चयन्तीव पुष्पैश्चैवफलैस्तथा। मारुतावेगसंश्लिष्टैःपादपास्सालबाहुभिः॥ ३९॥
अभ्याशमागतं लोकं प्रतिभावैरिवोत्थिताः। पुष्पाणामवरोथेन सुशोभार्थं निवेशिताः॥ ४०॥
वसन्तामहमासाद्य पुरुषान्स्पर्धयंति हि। पुष्प शोभाभरनुतैः शिखरैर्वायुकम्पितैः॥ ४१॥

वहाँ के वृक्ष पुष्प एवं शाखा से एक दूसरे का अलंकार बनते हैं। नाग के वृक्ष, बेंत के वृक्ष फूलों से युक्त, केसर वृक्ष का फूल नेत्रों को सुख देता है। कर्णिकार का वृक्ष फूलों से लदा हुआ दिखाई देता है। दम्पति (पति-पत्नी) की तरह वृक्ष एवं लता सुन्दर लगती है। वृक्षों की पंक्तियाँ और उस पर फल, फूल सुन्दर लगते थे। मानो ये वृक्ष सजीव होकर वन के देवता की पूजा कर रहे हैं। कहीं पर कुन्द की लता पुष्प के अलंकार से स्वच्छ लगती थी। अन्य दिशाओं में वृक्ष बाल चन्द्रमा की तरह सुन्दर लगते हैं। सर्ज, अर्जुन का पुष्पित वृक्ष वन में सुन्दर लगता है। मानो कौशेम रंग की धोती पहने कोई पुरुष हो। वहाँ के वृक्ष एवं लता फूलों एवं फलों से पूर्ण थे। वृक्ष एवं लता एक दूसरे से ऐसे लगे हुए थे मानो पुरुष अपने प्रिय नारी के साथ आलिंगन किया हो। साल एवं अशोक के पल्लव एक दूसरे से सशक्त थे। जैसे मित्र एक दूसरे का हाथ पकड़कर स्वागत करता है, उसी प्रकार ये वृक्ष के शिखर एक दूसरे से हवा के कारण लिपट कर मित्रता का परिचय देते थे। सरल एवं पनस एवं अर्जुन का वृक्ष फल-पुष्प से युक्त होकर मुरझा गये थे। ये वृक्ष एक दूसरे की पूजा फल एवं पुष्पों के करते हैं, वृक्ष अपने शिखा रूपी बाहु से हवा के वेग के कारण दूसरे से लिपट जाते थे॥ ३१—४१॥

नृत्यंतीव नराः प्रीताः स्त्रगलंकृतशेखराः। शृंगाग्रपवनक्षिताः पुष्पाबलियुताद्रुमाः॥ ४२॥
सवल्लीकाः प्रनृत्यंति मानवा इव सप्रियाः। स्वपुष्पनतवल्लीभिः पादपाः क्वचिदावृताः॥ ४३॥
भांति तारागणैश्चित्रैः शरदीवनभस्तलम्। द्रुमाणामथ वाग्रेषु पुष्पिता मालती लताः॥ ४४॥
शेखराइव शोभंते रचिता बुद्धिपूर्वकम्। हरिताः कांचनच्छायाःफलिताःपुष्पिताद्रुमाः॥ ४५॥
सौहृदं दर्शयंतीव नराः साधुसमागमे। पुष्पकिंजल्ककपिलागताः सर्वदिशासु च॥ ४६॥

कदंबपुष्पस्य जयं घोषयंतीव षट्पदाः। क्वचित्पुष्पासवक्षीवाः संपतंति ततस्ततः ॥ ४७ ॥
पुंस्कोकिलगणा वृक्षगहनेष्विवसप्रियाः। शिरीषपुष्पसंकाशाः शुकामिथुनशःक्वचित् ॥ ४८ ॥
कीर्तयंति गिरिश्चवाः पूजिता ब्राह्मणा यथा। सहवारिसुसंयुक्ता मयूराश्चित्रबर्हिणः ॥ ४९ ॥
वनंतेष्वपि नृत्यंति शोभंतइव नर्त्तकाः। कूजन्तः पक्षिसंघातानानारुतविराविणः ॥ ५० ॥
कुर्वंति रमणीयं वै रमणीयतरं वनम्। नानामृगगणकीर्णं नित्यं प्रमुदितांडजम् ॥ ५१ ॥
तद्वनं नन्दनसमं मनोदृष्टिविवर्धनम्। पद्मयोनिस्तु भगवांस्तथा रूपं वनोत्तमम् ॥ ५२ ॥
ददर्शादर्शवद्दृष्ट्या सौम्यया पाययन्निव। तावृक्षपंक्तयः सर्वा दृष्ट्वा देवं तथागतम् ॥ ५३ ॥
निवेद्य ब्रह्मणे भक्त्या मुमुचुः पुष्पसंपदः। पुष्पप्रतिग्रहं कृत्वा पादपानां पितामहः ॥ ५४ ॥
वरं वृणीध्वं भद्रंवः पादपानित्युवाच सः। एवमुक्ता भगवता तरयो निरवग्रहाः ॥ ५५ ॥
ऊचुः प्रांजलयः सर्वे नमस्कृत्वा विरिंचिनम्। वरं ददासि चेद्देव प्रपन्नजनवत्सल ॥ ५६ ॥
इहैव भगवन्नित्यं वने संनिहितोभव। एष नः परमः कामः पितामह नमोऽस्तु ते ॥ ५७ ॥
त्वंचेद्वससि देवेश वनेऽस्मिन्विश्वभावन। सर्वात्मना प्रपन्नानां वांछतामुत्तमं वरम् ॥ ५८ ॥
वरकोटिभिरन्याभिरलंनो दीयतां वरम्। सन्निधानेन तीर्थेभ्य इदं स्यात्प्रवरं महत् ॥ ५९ ॥

उस वन में अनेक प्रकार के पक्षियों मयूरों के शब्द हो रहे हैं मानो वहाँ आने वाले अतिथियों को स्वागत कर रहे हो। फल, पुष्पों से वृक्ष लताएँ पक्षियों का कलरव उस वन की रमणीयता को बढ़ा रहे हैं। वह वन नन्दन वन के समान मन एवं दृष्टि को सुख देने वाला लगता है। भगवान् ब्रह्मा ने उस वन को उत्तम वन बताया है। उसे देखते ही आँखों से पीने की इच्छा करती है अर्थात् देखने की इच्छा करती है। उन वृक्षों की पक्तियों की शोभा को देखकर वहाँ सभी देवता आ गये हैं और ब्रह्माजी पर पुष्प की वृष्टि कर रहे हैं। मानो विग्रह रहित उन वृक्षों की पूजा से सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा ने कहा कि हे वृक्षों आप से मैं प्रसन्न हूँ अतः आप वर माँग लीजिए। इस प्रकार ब्रह्माजी के कहने पर हाथ जोड़कर वे बोले शरण में आये हुए पर कृपा करने वाले हे भगवन् हम लोगों को एक वर दीजिए, हे भगवन् आज से आप इसी वन में नित्य निवास कीजिए यह हम लोगों की इच्छा है हे भगवन् आप को नमस्कार है। आप इसी वन में निवास करें यही उत्तम वरदान हमें दे दीजिए। अन्य करोड़ों वरदान हमें मत दीजिए केवल इस तीर्थ में आप निवास करें यही उत्तम तीर्थ हो यही वरदान दीजिए॥ ४२—५९ ॥

ब्रह्मोवाच–

उत्तमं सर्वक्षेत्राणां पुण्यमेतद्भविष्यति। नित्यं पुष्पफलोपेता नित्यं सुस्थिरयौवनाः ॥ ६० ॥
कामगाः कामरूपाश्च कामरूपफलप्रदाः। कामसंदर्शनाः पुंसां तपः सिद्ध्युज्ज्वलानृणाम् ॥ ६१ ॥
श्रिया परमया युक्ता मत्प्रसादाद्भविष्यथ। एवं स वरदो ब्रह्मा अनुजग्राहपादपान् ॥ ६२ ॥
स्थित्वा वर्षसहस्रंतु पुष्करंप्राक्षिपद्भुवि। क्षितिर्निपतितातेन व्यकंपत रसातलम् ॥ ६३ ॥
विवशास्तत्यजुर्वेलां सागराः क्षुभितोर्मयः। शक्राशनिहतानीवव्याघ्रव्यालावृतानि च ॥ ६४ ॥
शिखराण्यप्यशीर्यंत पर्वतानां सहस्रशः। देवसिद्धविमानानि गंधर्वनगराणि च ॥ ६५ ॥
प्रचेलुबर्भ्रमुःपेतुर्विविशुश्च धरातलम्। कपोतमेधाःखात्पेतुः पुटसंवातदर्शिनः ॥ ६६ ॥
ज्योतिर्गणांश्छादयंतो बभूवुस्तीव्रभास्कराः। महता तस्य शब्देन मूकान्धबधिरीकृतम् ॥ ६७ ॥
बभूव व्याकुलं सर्व त्रैलोक्यं स चराचरम्। सुरासुराणांसर्वेषां शरीराणिमनांसि च ॥ ६८ ॥
अवसेदुश्चकिमितिकिमित्येतन्नजज्ञिरे। धैर्यमालंव्य सर्वेऽथ ब्रह्माणं चाप्यलोकयन् ॥ ६९ ॥

न च ते तमपश्यंतकुत्र ब्रह्मा गतोह्यभूत्। किमर्थं कंपिता भूमि र्निमित्तोत्पातदर्शनम्॥ ७०॥
तावद्विष्णुर्गतस्तत्र यत्र देवा व्यवस्थिताः। प्रणिपत्य इदं वाक्यमुक्तवंतोदिवौकसः॥ ७१॥
किमेतद्भगवन्नब्रूहि निमित्तोत्पातदर्शनम्। त्रैलोक्यं कंपितं येन संयुक्तं कालधर्मणा॥ ७२॥
जातकल्पावसानंतु भिन्नमर्यादसागरम्। चत्वारोदिग्गजाःकिंतु बभूबुरचलाश्चलाः॥ ७३॥
समावृता धरा कस्मात्सप्तसागरवारिणा। उत्पत्तिर्नास्ति शब्दस्य भगवन्निष्प्रयोजना॥ ७४॥
यादृशोवास्मृतः शब्दो न भूतो न भविष्यति। त्रेलोक्यमाकुलंयेन चक्ररौद्रेण चोद्यता॥ ७५॥
शुभोऽशुभोवाशब्दोऽयंत्रैलोक्यस्यदिवौकसाम्। भगवन्यदिजानासिकिमेतत्कथयस्वनः॥ ७६॥
एवमुक्तोऽब्रवीद्विष्णुः परमेणानुभावितः। माभैष्टमरुतःसर्वे श्रृणुध्वंचात्र कारणम्॥ ७७॥
निश्चयेनानुविज्ञाय वक्ष्याम्येषयथाविधम्। पद्महस्तोहिभगवान्ब्रह्मा लोकपितामहः॥ ७८॥
भूप्रदेशेपुण्यराशौ यज्ञं कर्त्तुं व्यवस्थितः। अवरोहे पर्वतानां वने चातीवशोभने॥ ७९॥
कमलंतस्य हस्तात्तु पतितं धरणीतले। तस्यशब्दोमहानेष येन यूयं प्रकंपिताः॥ ८०॥
तत्रासौ तरुवृंदेन पुष्पामोदाभिनंदितः। अनुगृह्याथभगवान्वनंतत्समृगांडजम्॥ ८१॥
जगतोऽनुग्रहार्थाय वासं तत्रान्वरोचयत्। पुष्करं नाम तत्तीर्थं क्षेत्रं वृषभमेव च॥ ८२॥

ब्रह्माजी बोले—यह क्षेत्र सभी क्षेत्रों में उत्तम एवं पुण्य क्षेत्र होगा। यहाँ के वृक्ष उत्तम फल एवं पुष्पों से सुदृढ़ रहेंगे। यहाँ पर तपस्या करने पर काम की पूर्ति, कामना अनुसार फल एवं तपस्या के सिद्धि प्राप्त होगी। मेरी कृपा से यह क्षेत्र धन-धान्य से समृद्ध रहेगी। इस प्रकार उन वृक्षों पर ब्रह्मा जी ने कृपा की तथा एक कमल का फूल उसी जगह पर फेंका जिससे पृथ्वी एवं रसातल काँपने लगा। समय विवश हो गया सागर में तेज लहरें चलने लगी, व्याघ्र एवं वन्य के जीव व्यग्र हो गये, हजारों पर्वतों के शिखर टूटने लगे, देवता सिद्धों के विमान, गन्धर्व के नगर पृथ्वी तल काँपने लगा, आकाश में उल्कापात होने लगा सूर्य के चारों ओर तारा गण दिखाई देने लगा उस पुष्प के महान शब्द से सब को गूंगा, बहरा एवं अन्धा बना दिया। तीनों लोकों में चर और अचर सब को व्याकुल वह महान शब्द व्यग्र कर दिया। देवता, राक्षस सभी लोगों के मन में यह भय हो गया कि यह कैसा शब्द है तथा यह क्यों हो गया है। वहाँ ब्रह्माजी भी नहीं दिखाई देते हैं। ब्रह्माजी कहाँ चले गये, यह पृथ्वी क्यों काँप रही है इस प्रकार का उत्पात क्यों हुआ है। विष्णु के पास पहुँच कर देवता लोग पूछे—

हे भगवन् आप ही बतावें यह उत्पात कैसा है जिनके क्रोध से तीनों लोक काँप रहा है, सागर अपनी मर्यादा त्याग दिया है लगता है इस कल्प का अन्त आ गया है। चारो दिशाएँ जो अचल थी वे चलायमान हो गयी है। किस कारण से सातों समुद्र इस पूरे पृथ्वी को आवृत कर लिया है। हे भगवन् बिना प्रयोजन के इस शब्द की उत्पत्ति नही होगी। इस प्रकार का शब्द अब तक न हुआ है और न होगा। तीनों लोकों को जिससे व्यग्र कर दिया है। देवताओं ने भगवान् विष्णु से इस प्रकार पूछा कि हे भगवन् यह शब्द शुभ है अथवा अशुभ है यदि आप जानते हैं तो बतावें। परम कृपालु भगवान् विष्णु ने उनके पूछने पर बताया, हे देवता आप लोग भयभीत मत होवे इसके कारण को सुने—निश्चय को जानकर मैं विधि पूर्वक बताता हूँ, संसार के पितामह, कमल हाथ में है जिसके, ऐसे ब्रह्माजी इस प्रदेश में यज्ञ करना चाहते हैं इसलिए इस सुन्दर पर्वत वाले वन में प्रवेश किये उनके हाथ से कमल पृथ्वी पर गिर गया उसी के महान शब्द से सम्पूर्ण पृथ्वी काँप गयी यह सुनकर वृक्ष, मृग, पक्षी सभी अत्यन्त प्रसन्न हुए कि भगवान् ब्रह्माजी ने हम लोगों पर अनुग्रह किया है। संसार पर कृपा करने के लिए यहाँ निवास करेंगे। यह क्षेत्र सभी तीर्थों में श्रेष्ठ पुष्कर नाम से जाना जायेगा॥ ६०—८२॥

जनितं तद्भगवता लोकानां हितकारिणा। ब्रह्माणंतत्रवैगत्वा तोष्यध्वं मया सह॥८३॥
आराध्यमानो भगवान्प्रदास्यतिवरान्वरान्। इत्युक्त्वाभगवान्विष्णुः सहतैर्देवदानवै॥८४॥
जगामतद्वनोद्देशं यत्रास्ते स तु कंजजः। प्रहृष्टास्तुष्टमनसः कोकिलालापलापिताः॥८५॥
पुष्पोच्चयोज्ज्वलं शस्तं विविशुर्ब्रह्मणोवनम्। संप्रातंसर्वदेवैस्तु वनंनंदनसंमितम्॥८६॥
पद्मिनीमृगपुष्पाढ्यं सुदृढं शुशुभे तदा। प्रविष्याथ वनंदेवाः सर्वपुष्पोपशोभितम्॥८७॥
इहदेवोऽस्तीतिदेवा बभ्रुमुश्चदिदृक्षवः। मृगयं तस्ततस्ते तु सर्वेदेवाः सवासवाः॥८८॥

भगवान् जो समस्त संसार का हित चाहने वाले हैं वह ब्रह्माजी मेरे साथ सभी लोगों को सन्तुष्ट करेंगे। उनकी आराधना में प्रसन्न होकर श्रेष्ठ वर देंगे। इस प्रकार भगवान् विष्णु के कहने पर देवता, राक्षस उस वन प्रदेश में गये जहाँ ब्रह्माजी थे। वहाँ प्रसन्न मन से कोयल सुन्दर शब्द कर रहे थे। फूल के समान स्वच्छ उस ब्रह्मा के वन में प्रवेश किये। सभी देवताओं को प्रसन्न करने वाले नन्दन वन के समान वन में प्रवेश किये। उस वन के तलाब में फूल खिले थे तथा मृगों से सुशोभित वट वन। सभी पुष्पों से शोभित उस वन में देवता लोग प्रवेश कर कहते हैं यहाँ ब्रह्माजी है ऐसा कहकर चारो ओर इन्द्र के साथ सभी देवता लोग खोजने लगे॥८१—८८॥

अद्भुतस्यवनस्यांतं न ते दद्दशुराशुगाः। विचिन्वद्भिस्तदादेवं दैवैर्वायुर्विलोकितः॥८९॥
स तानुवाच ब्रह्माणं न द्रक्ष्यथ तपोविना। तदाखिन्नाविचिन्वंतस्तस्मिन्पर्वतरोधसि ॥९०॥
दक्षिणेचोत्तरेचैव अंतरालेपुनःपुनः। वायूक्तं हृदये कृत्वा वायुस्तानब्रवीत्पुनः॥९१॥
त्रिविधो दर्शनोपायो विरिचेरस्य सर्वदा। श्रद्धाज्ञानेन तपसा योगेन च निगद्यते॥९२॥
सकलंनिष्कलं चैव देवं पश्यंतियोगिनः। तपस्विनस्तु सकलं ज्ञानिनोनिष्कलं परम्॥९३॥
समुत्पन्ने तु विज्ञाने मंदश्रद्धो न पश्यति। भक्त्या परमयाक्षिप्रं ब्रह्मपश्यंतियोगिनः॥९४॥
द्रष्टव्योनिर्विकारोऽसौप्रधानपुरुषेश्वरः। कर्मणा मनसा वाचा नित्ययुक्ताःपितामहम्॥९५॥

उस वन के अन्त में एक अद्भुत दृश्य दिखाई दिया उन देवताओं के सामने वायु देवता दिखाई दिये। उस वायु ने कहा हे तपस्वी लोग आप लोग ब्रह्माजी को नहीं देख सकते। इस बात पर सभी लोग दुःखी हो गये वायु के कहे जाने पर ये लोग उत्तर दक्षिण मध्य आदि में बार-बार देखे किन्तु ब्रह्माजी नहीं दिखाई दिये तब वायु देवता उन तपस्वी लोगों से पुनः बोले—हे देवता लोग, ब्रह्माजी को तीन प्रवास से देखा जा सकता है। (१) श्रद्धापूर्वक ज्ञान से (२) तपस्या से (३) योग के द्वारा। योगीजन मूर्त्य एवं अमूर्त्य (सकल, निष्कल) रूप में देखते हैं। तपस्वी लोग मूर्त्य रूप में देखते हैं। ज्ञानी लोग अमूर्त्य रूप में देखते हैं। यदि ज्ञान होने पर कम श्रद्धा रखने वाले लोग नहीं देख सकते, योगी लोग परम भक्ति के द्वारा शीघ्र देख लेते हैं। इस प्रधान पुरुषेश्वर को कर्मणा मनसा, वाचा से दोषरहित होकर इस पितामहको श्रद्धापूर्वक देखा जा सकता है॥८९—९५॥

सर्वलोकेषुचाप्यस्यगतिर्नप्रतिहन्यते। दिव्येनेश्वर्ययोगेन स्वारूढःसपरिग्रहः॥२००॥
बालसूर्यप्रकाशेन विमानेन सुवर्चसा। वृतः स्त्रीणांसहस्त्रैस्तुस्यच्दंदगमनालयः॥२०१॥
विचरत्यानिवार्येणसर्वलोकान्यद्वच्छया। स्पृहणीयतमः पुंसांसर्वधर्मोत्तमोधनी॥२०२॥
स्वर्गच्युतः प्रजायेत कुले महति रूपवान्। धर्मज्ञो धर्मभक्तश्च सर्वविद्यार्थपारगः॥२०३॥
तथैववब्रह्मवर्षेण गुरुशुश्रूषणेव। वेदाध्यनसंयुक्तो भैक्ष्यवृत्तिर्जितेन्द्रियः॥२०४॥
नित्यंसत्यव्रतेयुकतः स्वधर्मेष्वप्रमादवान्। सर्वकामसमृद्धेनसर्वकांमावलंबिना ॥२०५॥
सूर्येणैवद्वितीयेनविमानेनानिवारितः। गुह्यका नाम ब्रह्माख्यगणाः परमसंमताः॥२०६॥

पुलस्त्य ऋषि भीष्म जी से कहते हैं—जो पुण्यवान् हैं वे सभी लोकों में स्वच्छन्द होकर विचरण करेंगे इनके गति को कोई रोक नहीं सकता है। अपने परिवार के साथ दिव्य ऐश्वर्य से युक्त होकर निवास करेंगे। सुन्दर बाल्य कालीन अर्थात् प्रातः काल के सूर्य के समान प्रदीप्त विमान से विचरण करेंगे हजारों स्त्रियों से घिरे हुए होकर स्वच्छन्द रूप से भ्रमण करेंगे। अपनी इच्छा के अनुसार सभी लोकों में विचरण करते हैं। सभी धर्मों के उत्तम धर्म रूपी धन को प्राप्त करेंगे जो लोगों के द्वारा आदर दिये जायेंगे। इस प्रकार किसी कर्म वश स्वर्ग के भोग से च्यूत होंगे तो उत्तम कुल में रूपवान होकर जन्म लेंगे। धर्म परायण, धर्म को जानने वाला तथा सभी विद्याओं में पारंगत होंगे। इसी प्रकार ब्रह्मवैवर्त वर्ष में, गुरू की सेवा करते हुए, वेद के अध्ययन में तल्लीन जितेन्द्रिय होकर भीक्षा वृत्ति करते हुए, नित्य प्रति सत्य का आचरण करते हुए, अपने धर्म के प्रति निष्ठावान (कभी भी धर्म में प्रमाद न करने वाला) सर्वकाम में तथा सभी कर्म को निष्ठा से करने वाला द्वितीय सूर्य के समान बिना किसी के रोक से विमान में स्वच्छन्द विचरण करने वाला गुह्यक नामक ब्रह्माजी का एक गण अत्यन्त बुद्धिमान था॥ २००—२०६॥

अप्रमेयबलैश्वर्या देवदानवपूजिताः। तेषां स समतां यातितुल्यैश्वर्यसमन्वितः॥ २०७॥
देवदानवमर्त्येषु भवत्यनियतायुधः। वर्षकोटिसहस्त्राणि वर्षकोटिशतानि च॥ २०८॥
एवमैश्वर्यसंयुक्तो विष्णुलोकेमहीयते। उषित्वासौविभूत्यैवंयदाप्रच्यवतेपुनः ॥ २०९॥
विष्णुलोकात्स्वकृत्येन स्वर्गस्थानेषु जायते॥ २१०॥
पुष्करारण्यमासाद्यब्रह्मचर्याश्रमेस्थितः । अभ्यासेनतुवेदानांवसतेम्रियतेऽपिया ॥ २११॥
मृतोऽसौयातिदिव्येनविमानेनस्वतेजसा । पूर्णचंद्रप्रकाशेनशशिवत्प्रियदर्शनः ॥ २१२॥
रुद्रलोकं समासाद्यगुह्यकैः सहमोदते। ऐश्वर्यं महदाप्नोति सर्वस्यजगतः प्रभुः॥ २१३॥

अप्रतिम बल होने के कारण देवताओं और दानवों से वह पूजित है, वह अपने समान ऐश्वर्य एवं धन वाले की समता करने में समर्थ हैं। देवता, दानव एवं मनुष्यों में वह अपराजेय है इस तरह करोड़ों हजार वर्ष एवं करोड़ों सौ वर्ष ऐश्वर्यशाली होकर '**विष्णुलोक**' को प्राप्त करता है। समस्त ऐश्वर्य को भोग करते हुए '**विष्णुलोक**' से स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है। पुष्कर क्षेत्र में पहुँचकर ब्रह्मचर्य आश्रम का पालन करते हुए, वेद का अध्ययन करते हुए निवास करता है और मृत्यु को प्राप्त होता है। वह मरकर अपने तेजके कारण दिव्य विमान के द्वारा पूर्णचन्द्र के प्रकाश के समान उसका दर्शन चन्द्रमा के समान आनन्ददायी होता है। वह '**रुद्रलोक**' में जाकर गुह्यकों के साथ प्रसन्न होता है। महद् ऐश्वर्य को प्राप्त कर सम्पूर्ण संसार का स्वामी बनता है॥ २०७—२१३॥

● पद्मपुराण में बताया गया है कि जो व्यक्ति भगवान् ब्रह्मा की उपासना करते हैं वे सर्वप्रथम '**ब्रह्मलोक**' को जाते हैं। पुनः पुण्य क्षीण होने पर '**विष्णुलोक**' को जाते हैं। पुनः पुण्य क्षीण होने पर '**रुद्रलोक**' को जाते हैं। पुनः पुण्य क्षीण होने पर '**महान ब्राह्मण के कुल में**' जन्म लेते हैं।

भुक्त्या युगसहस्त्राणि रुद्रलोकेमहीयते। प्रच्युतस्तुपुनस्तस्माद्रुद्रलोकात्क्रमेणतु ॥ २१४॥
नित्यंप्रमुदितस्तत्रभुक्त्वा सुखमनायम्। द्विजानां सदने दिव्ये कुलेमहतिजायते॥ २१५॥
मानुषेषुसधर्म्मात्मासुरूपोवाक्पतिर्भवेत् । स्पृहणीयवपुःस्त्रीणाम्महाभोगपतिर्वली॥ २१६॥
वानप्रस्थसमाचारोग्राम्योपाधिविवर्जितः । सर्वलोकेषुचाप्यस्यगतिर्नप्रतिहन्यते ॥ २१७॥

रूद्रलोक को प्राप्तकर अनेक सुखको वह भोगता है वहाँ स्वस्थ रहते हुए प्रसन्नचित्त सुख का भोग करते हुए वह **रूद्रलोक से पुनः एक 'महान ब्राह्मण के कुल में' उत्पन्न होता है।** मनुष्यों में वह धर्मात्मा एवं विद्वान होते है। अपने शरीर एवं स्त्रियों से बहुत प्रेम करते है अनेक ऐश्वर्य का भी भोग करते हैं। अन्त में वह जंगल

में रहकर वानप्रस्थ जीवन व्यतीत करते हैं सभी लोकों में इनके गाति को (तेजको) कोई रोक नहीं पाता है॥ २१४—२१७॥

शीर्णलर्णफलाहारःपुष्पमूलांबुभोजनः । कपोतेनाश्मकुट्टेन दंतोलूखलिकेन च॥ २१८॥
वृत्त्युपायेनजीवेतचीरवल्कलवाससः । जटीत्रिषवणस्त्रायीत्यक्तदोषस्तुदंडवान् ॥ २१९॥
कृच्छ्रव्रतपरोयस्तुश्वपचोयदिवापरः । जलशायीपंचतपावर्षास्यभ्रावगाहकः ॥ २२०॥
कीटकंटकपाषाणभूम्यांतुशयनंतथा । स्थानवीरासनरतः संविभागीदृढव्रतः॥ २२१॥
अरण्यौषधिभोक्ताचसर्वभूताभयप्रदः । नित्यंधर्मोर्जनरतोजितक्रोधोजितेंद्रियः ॥ २२२॥

वानप्रस्थ जीवन में सुखे पत्ते खाकर फलाहार एवं पुष्प के मूलका आहार लेते है। कबुतरों के कुतरने के बाद बचा हुआ वस्तु, पत्थर के कूटकर एवं दाँत को ही ऊखल बनाकर अर्थात चबाकर वल्कल वस्त्र धारण करते हुए जीवन यापन करते हैं। जटाधारी बनकर, त्रिवेनी में स्नान करते हुए कृच्छ व्रत का पालन करते हुए तीनों समय स्नान करते हैं। वर्षा में भी स्नान करते हैं। कीट, काँटे एवं पत्थर से युक्त स्थान पर शयन करते हैं, वीरासन में बैठते हैं दृढ़व्रती है। जंगल के औषधियों का उपभोग करते हुए सभी प्राणियों को अभय देने वाले हैं। नित्य प्रति धर्म करने वाले क्रोध रहित एवं इन्द्रियों को वश में करने वाले हैं॥ २१८—२२२॥

ब्रह्मभक्तक्षेत्रवासीपुष्करेवसतेमुनिः । सर्वसंगपरित्यागीस्वारामोविगतस्पृहः ॥ २२३॥
यश्चात्रवसतेभीष्मशृणुतस्यापियागतिः । तरुणार्कप्रकाशेनवेदिकास्तंभशोभिना ॥ २२४॥
ब्रह्मभक्तोविमानेनयातिकामप्रचारिणा । विराजमानोनभसिद्धितीयइवचंद्रमाः ॥ २२५॥

(पद्मपुराण, सृष्टिखंड)

इस पुष्कर क्षेत्र में रहने वाले यह ब्रह्मभक्त है सभी संग का परित्याग करने वाले आत्मतुष्ट एवं स्पृहा रहित होते हैं। **पुलस्त्य जी भीष्म से कहते हैं—हे भीष्म! इस पवित्र पुष्कर क्षेत्र में जो रहता है उसकी गति को आप सुने! मध्याह्नकाल के सूर्य के समान वे लोग चमकते हैं वे लोग ब्रह्माजी के भक्त हैं उनके इच्छानुसार स्वर्ग में विमान प्राप्त कर स्वेच्छा से वे विचरण करते हैं। ये लोग आकाश में दूसरे चन्द्रमा की तरह सुशोभित होते हैं॥ २२३—२२५॥**

× × ×

'भगवान् ब्रह्मा' द्वारा अल्पायु मार्कण्डेय को जीवनदान

मार्कण्डेय जी अल्पायु थे। जिन्हें परम् पूज्य भगवान् ब्रह्मा ने चिरंजीवीभवः का आशिर्वाद देकर पूर्णायु प्रदान किया।

भीष्म उवाच—

मार्कण्डेये न वैरामः कथमत्र प्रबोधितः। कथं समागमो भूतः कस्मिन्काले कदामुने ॥ १ ॥
मार्कण्डेयः कस्य सुतः कथं जातो महातपाः। नाम्नोऽस्य निगमंब्रूहियथाभूतंमहामुने ॥ २ ॥

भीष्म पुलस्त्यऋषि से बोले—हे मुनि आप कृपा करके बताइये राम ने मार्कण्डेय जी से क्या कहा? कैसे वह महान तपस्या किये हे महामुने! उनके विषय में शास्त्र सम्मत बात बतावें।

पुलस्त्य उवाच—

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि मार्कण्डेयोद्भवं पुनः। पुरा कल्पे मुनिः पूर्वं मृकण्डुर्नाम विभुतः ॥ ३ ॥
भृगोः पुत्रो महाभागः सभार्यस्तप्तवांस्तपः। तस्यपुत्रस्तदा जातो वसतस्तु वनान्तरे ॥ ४ ॥
स पञ्चवार्षिको भूतो बालएव गुणाधिकः। ज्ञानिना सूतदाहृष्टो भ्रमन्वालस्तदाङ्गणे ॥ ५ ॥
स्थित्वा ससुचिरंकालं भाव्यर्थं प्रत्यबुध्यत। तस्य पित्रा सवै पृष्ठः कियदायुः सुतस्यमे ॥ ६ ॥
सङ्ख्यया ऽऽचक्ष्व वर्षाणि तस्याल्पान्यधिकानि वा। मृकण्डुनैव मुक्तस्तु स ज्ञानी वाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥
षण्मासमायुः पुत्रस्य धात्रा सृष्टं मुनीश्वर। नैवशोकस्त्वया कार्यः सत्यमेतदुदाहृतम् ॥ ८ ॥

पुलस्त्य जी बोले—अब मैं मार्कण्डेय जी के उत्पत्ति बता रहा हूँ, प्राचीन काल में भृगु के पुत्र मृकन्डु नाम के महान तपस्वी अपनी पत्नी के साथ रहते थे। उसी जंगल में उनको एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह बालक जब पाँच वर्ष का हुआ तभी वह गुणवान् हो गया। वह महाज्ञानी निरन्तर प्रसन्नचित्त रहते हुए उस जंगल में बालकों के साथ रहता था। कुछ दिन के बाद मृकन्डु को उस बालक के भविष्य के विषय में जानने की इच्छा हुई, उस बालक के पिता ने ज्ञानी से उस बालक की आयु के सम्बन्ध में पूछा-हे मुनि! आप बतावें इस बालक की आयु अधिक है या कम। इस प्रकार मृकण्डु के वचन को सुनकर वह ज्ञानी इस प्रकार बोले! हे मुनि श्रेष्ठ ब्रह्मा ने इस बालक की आयु कम की है अब केवल छः मास ही शेष है, आप अब शोक मत करें। यह सत्य आपको बता दिया गया है ॥ १—८ ॥

सतच्छुत्वा वचो भीष्म ज्ञानिनायदुदाहृतम्। अथोपनयनं चक्रे बालकस्य पिता तदा ॥ ९ ॥
आह चैनं पिता पुत्रमृषींस्त्वमभिवादय। एवमुक्तः सवैपित्रा प्रहृष्टश्चाभिवादने ॥ १० ॥
न वर्षावर्णतां वेत्ति सर्ववर्षाभिवादनः। पञ्चमासास्त्वतिक्रानता दिवसाःपञ्चविंशति ॥ ११ ॥
मार्गेणाय समायाता ऋषयस्तत्र सप्त वै। बालेन तेन ते दृष्टाः सर्वे चाप्यभिवादिताः ॥ १२ ॥
आयुष्मान्भव तै रुक्तः स बालो दण्डमेखली। उक्त्वैवं तेषुनर्बालमपश्यञ्क्षीणजीवितम् ॥ १३ ॥
दिनानि पञ्च तस्यायुर्ज्ञात्वा भीताश्चतेनृप। तंगृहीत्वाबालकंचगतास्तेब्रह्मणोऽरितकम् ॥ १४ ॥
प्रतिमुच्य च तं राजन्प्रणिपेतुः पितामहम्। अयमावेदितस्तैस्तु तेन ब्रह्माभिवादितः ॥ १५ ॥
चिरायुर्ब्रह्मणा बालः प्रोक्तः स ऋषिसन्निधौ। ततस्ते मुनयः प्रीताः श्रुत्वा वाक्यं पितामहात् ॥ १६ ॥

हे भीष्म उस मुनि के इस प्रकार की वाणी को सुनकर पिता मृकण्ड ने उस पुत्र का उपनयन संस्कार कर दिया और अपने पुत्र से कहा हे पुत्र! आज से तुम अपने सामने आये हुए समस्त ऋषियों को प्रणाम करते रहो। इस प्रकार पिता के कहने पर मार्कण्डेय प्रसन्नचित्त होकर अभिवादन (प्रणाम) करने लगा वह वर्ण और अवर्ण

का भेद न करते हुए सभी को प्रणाम करने लगा। पाँच और पच्चीस दिन बीत जाने पर वहाँ एक दिन सप्तऋषि आ गये। बालक ने उन ऋषियों को देखकर उनका अभिवादन किया। दण्ड एवं मेखला धारण किये उस बालक को उन ऋषियों ने आयुष्मान कहा। किन्तु आयुष्मान कहने के पश्चात् उस बालक के अल्पायु को देखकर कि इस बालक की आयु अब केवल पाँच दिन शेष है। इससे वह सभी बहुत भयभीत हुए और उस बालक को लेकर ब्रह्माजी के समीप चले गये। उस बालक को छोड़कर सप्तऋषियों ने ब्रह्मा जी का अभिवादन किया। **उस बालक ने भी उनकी तरह ब्रह्माजी का अभिवादन (प्रणाम) किया। ऋषियों के सामने ही ब्रह्मा ने उस बालक को चिरञ्जीवी होने का वरदान दे दिया।** यह बात सुन कर सभी मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ ९—१६॥

पितामहो ऋषीन्दृष्ट्वा प्रोवाच विस्मयान्वितः। कार्येण येन चायातः कोऽयं बालो निवेद्यताम्॥ १७॥
ततस्त ऋषयो राजन्सर्वं तस्मै न्यवेदयन्। पुत्रोमृकण्डोः क्षीणायुः सायुषंकुरुबालकम्॥ १८॥
अल्पायुषस्त्वस्य मुनिर्बद्ध्वेमा चापि मेखलाम्। यज्ञोपवीतंदण्डं च दत्त्वाचैनमबोधयत्॥ १९॥
यं कंचित्पश्यसे बालभ्रमन्तं भूतले जनम्। तस्याभिवादः कर्तव्यं एवमाह पिता वचः॥ २०॥
अभिवादनशीलोऽयं क्षितौ दृष्टः परिभ्रमन्। तीर्थयात्राप्रसङ्गेन देवयोगात्पितामह॥ २१॥
चिरायुर्भवपुत्रेति प्रोक्तोऽसौ तत्र बालकः। कथं वचो भवेत्सत्यमस्माकं भवतासह॥ २२॥
एवमुक्तस्तदा तैस्तु ब्रह्मा लोकपितामहः। ऋतवाक्यादियं भूमिः संस्थिता सर्वतोमया॥ २३॥

ब्रह्मा ने सप्तऋषियों से कहा यह बालक कौन है? किसलिए आप लोग आये हैं, बतायें, हे राजन! इसके बाद ऋषियों ने ब्रह्मा से सब कुछ बता दिया, उन्होंने कहा यह मृकण्डु का पुत्र क्षीण आयु वाला है इसे आप दीर्घायु बना दीजिए। यह अल्पायु है यह जान कर इसके पिताजी ने इसे दण्ड एवं मेखला देकर यज्ञोपवीत कर दिया और कहा, हे बालक पृथ्वी पर जिस किसी को भ्रमण करते हुए देखना उसे तुम अभिवादन करना। हे पितामह संयोग से तीर्थ यात्रा के प्रसंग में यह हम लोगों को मिला हम लोगों ने भी इसे दीर्घायु होने का आशीर्वाद दे दिया है। हे भगवन् अब आप ही बतावें हम लोगों के साथ ही आप का वचन कैसे सत्य होगा। उन सप्तऋषियों के वाक्य को सुनकर ब्रह्माजी ने कहा यह भूमि उत्तम है यहाँ पर कही गयी बात सत्य होती है॥ १७—२३॥

ब्रह्मोवाच–

मत्समश्चायुषाबालो मार्कण्डेयो भविष्यति। ऋषीणांचापिमुख्यश्चमत्सहायोभविष्यति॥ २४॥
कल्पस्यादौ तथा चान्ते मतो मे मुनिसत्तमः। एवं ते मुनयो बालं ब्रह्मलोकेपितामहात्॥ २५॥
संसाध्य प्रेषयामासु भूयोऽप्येनं धरातलम्। तीर्थयात्रां गताविप्रामार्कण्डेयोनिर्जगृहम्॥ २६॥

ब्रह्माजी ने कहा—यह बालक मेरे समान आयु वाला होगा, तथा इसे लोग मार्कण्डेय नाम से जानेंगे। कल्प के प्रारम्भ एवं कल्पान्त में यह मेरे पास मेरा सहयोगी तथा ऋषियों में मुख्य होगा। इस प्रकार पितामह ब्रह्माजी ने मुनि एवं बालक को सिद्धि देकर पुनः पृथ्वी पर भेज दिया। सप्तऋषि तीर्थयात्रा पर तथा वह मार्कण्डेयजी अपने घर चले गये॥ २४—२६॥

जगाम तेषु यातेषु पितरं स्वमथाब्रवीत्। ब्रह्मलोकमहंनीतो मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः॥ २७॥
दीर्घायुश्च कृतश्चास्मि रान्दत्वा विसर्जितः। एतदन्यच्च मे दत्तं गतं चिन्ताकरं तव॥ २८॥
कल्पस्यादौ तथा चान्ते भविष्ये समनन्तरे। लोककर्तुर्ब्रह्मणोऽहं प्रसादात्तस्य वै पितः॥ २९॥
पुष्करं वै गमिष्यामि तपस्तप्तुं समुद्यतः। तत्राहं देवदेवेशमुपासिष्ये पितामहम्॥ ३०॥
सर्वाकामवासिकरं सर्वारातिनिवर्हणम्। सर्वसौख्यप्रदं देवमिन्द्रादीनां परायणम्॥ ३१॥

ब्रह्माणंतोषयिष्यामि सर्वलोकपितामहम्। मार्कण्डेयवचः श्रुत्वा मृकण्डुर्मुनिसत्तमः॥ ३२॥
जगाम परमं हर्षक्षणमेकं समुच्छ्वसन्। धैर्यं सुमनसास्थाय इदं वचनमब्रवीत्॥ ३३॥
अद्य मे सफलं जनम जीवितं च सुजीवितम्। सर्वस्य जगतां स्त्रष्टा येन दृष्टःपितामहः॥ ३४॥
त्वया दायादवानस्मि पुत्रेण वंशधारिण। त्वं गच्छ पश्य देवेशं पुष्करस्यं पितामहम्॥ ३५॥
दृष्टेतस्मिञ्जगन्नाथे न जरामृत्युरेव च। नृणां भवति सौख्यानि तथैश्वर्यं तपोऽक्षयम्॥ ३६॥
त्रीणि शृङ्गाणि शुभ्राणि त्रीणि प्रस्त्रवणानिच। पुष्कराणि तथा त्रीणि न विद्मस्तत्र कारणम्॥ ३७॥

उन ऋषियों के चले जाने पर उस बालक ने अपने पिता से ऐसा कहा कि हे पिताजी ब्रह्मवादी मुनियों के द्वारा मैं ब्रह्मलोक में गया हुआ था। ब्रह्माजी ने मुझे दीर्घायु होने का आशीर्वाद देकर हम लोगों को भेज दिया। हे पिता संसार की सृष्टि करने वाले ब्रह्माजी ने आप की चिन्ता समाप्त करते हुए कहा कि कल्प के आदि एवं अन्त में मैं उनके साथ रहूँगा। मैं अब पुष्करक्षेत्र में तपस्या करने जाऊँगा। वहाँ मैं देवताओं के देव ब्रह्माजी की उपासना करूँगा। वहाँ व्यक्ति सर्व कामनाओं को प्राप्त करता है तथा सभी दुःख नष्ट हो जाता है सभी सुख को देने वाले इन्द्रादि देव लोग वहाँ रहते है। सभी लोकों के पितामह को मैं वहाँ प्रसन्न करूँगा। इस प्रकार मार्कण्डेय की वाणी को सुनकर मुनि मृकण्डु उच्छ्वास लेते हुए परम हर्ष का अनुभव करने लगे। पुनः धैर्य के साथ अपने पुत्र से यह बोले कि हे पुत्र आज मैं धन्य हो गया, मेरा जीवन धन्य हो गया कि मेरा पुत्र सम्पूर्ण संसार के रचयिता ब्रह्माजी को देख लिया है। अपने वंश में तुम्हारे समान पुत्र जन्म देने का मुझे गौरव प्राप्त हो गया। हे पुत्र तुम जाओ और देवताओं के स्वामी पितामह को पुष्कर में दर्शन करो। उस जगन्नाथ का दर्शनमात्र से व्यक्ति जरा एवं मृत्यु से रहित हो जाता। हे राजन उनके दर्शनमात्र से समस्त सुख तथा कभी नष्ट न होने वाला ऐश्वर्य प्राप्त होता है। वहाँ स्वच्छ तीन पर्वत की चोटी तीन नदियाँ तथा तीन पुष्कर क्षेत्र है, इसे बतायें ऐसा भीष्मजी ने पुलस्त्य मुनि से पूछा॥ २७—३७॥

कनीयांसंमध्यमं च तृतीयं ज्येष्ठपुष्करम्। शृङ्गशब्दाभिधानानि शुभ्रप्रस्त्रवणानि च॥ ३८॥
ब्रह्माविष्णुस्तथा रुद्रो नित्यं सन्निहितास्त्रियः। पुष्करेषु महाराज नातःपुण्यतमं भुवि॥ ३९॥
चिरजंविमलं तोयंत्रिषु लोकेषु विश्रुतम्। ब्रह्मलोकस्य पन्थानं धन्याःपश्यन्तिपुष्करम्॥ ४०॥
यस्तु वर्षशतं सामग्रमग्निहोत्रमुपासिता। कार्तिकीं वावसेदेकां पुष्करे सममेवच॥ ४१॥
कर्तुम्मया न शकितं कर्मणा नैव साधितम्। तदयत्नात्त्वया तात मृत्युस्सर्वहरोजितः॥ ४२॥
तत्र दृष्टस्सदेवेशो ब्रह्मालोकपितामहः। नान्योमर्त्यस्त्वया तुल्योभविता जगतीतले॥ ४३॥
अहं वै तोषितो येन पञ्चवार्षिकजनमना। वरेण त्वं मदीयेन उपमा चिरजीविनाम्॥ ४४॥
गमिष्यसि न सन्देहस्तथाशीर्ववचनम्मम। एवं वदन्ति ते सर्वे व्रजलोकान्यथेप्सितान्॥ ४५॥
एवं लब्धप्रसादेन मृकण्डुवनयेन च। आश्रमः स्थापितस्तेन मार्कण्डाश्रम इत्युत॥ ४६॥
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा वाजपेयफलं लभेत्। सर्वपापविशुद्धात्मा चिरायुर्जायते नरः॥ ४७॥

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय-३३)

ज्येष्ठ, मध्यम एवं कनिष्ठ पुष्कर तीन प्रकार के हैं। शृङ्ग शब्द से जानने वाली तीन स्वच्छ झरने (नदियाँ) यहाँ है। जहाँ पर ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र निरन्तर निवास करते हैं। हे राजन् इस पृथ्वी पर पुष्कर के अलावा कोई पुण्यतम स्थान नही है। यहाँ का स्थायी एवं निर्मल जल तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। ब्रह्मलोक का मार्ग यहीं से जाता है, अस्तु पुष्कर क्षेत्र धन्य है, सैकड़ों वर्षों तक अग्निहोत्र की उपासना का फल, केवल कार्तिकमास में एक

मास यदि पुष्कर में निवास करें तो उसके समान फल मिल जाता है, मैं अपने कर्म से यह कार्य करने में समर्थ नहीं था, हे पिता जी बिना परिश्रम से मैंने मृत्यु पर विजय प्राप्त किया। वहाँ ब्रह्मलोक में पितामह ब्रह्मा जी का दर्शन किया इस मृत्यु लोक में आप के अलावा अन्य कोई भी नहीं है जिन्होंने इस प्रकार मेरे उपर कृपा की। मैं तो केवल पाँच वर्ष के जीवन में सन्तुष्ट था, पर ब्रह्माजी ने मुझे चिरञ्जीव के समान कर दिया। इस प्रकार सप्तऋषि भी मुझे आशीर्वाद देकर अपने स्थान चले गये और मार्कण्डेय जी इस प्रकार दीर्घजीवी आशीर्वाद प्राप्त कर वहीं मार्कण्डाश्रम को स्थापित किया। जहाँ पर मनुष्य स्नान करके पवित्र होता है, अश्वमेधयज्ञ का फल प्राप्त करता है तथा सभी पापों से मुक्त होकर, विशुद्ध आत्मा वाला होकर, दीर्घायु वाला हो जाता है॥ ३८—४७॥

× × ×

श्राद्ध एवं पिण्डदान का सर्वोच्च स्थान 'पुष्कर तीर्थ' है

श्राद्ध एवं पिण्डदान के लिये सर्वोत्तम स्थान पुष्कर तीर्थ है। यह बात पुरुषोत्तम राम को भगवान् ब्रह्मा से उत्पन्न महर्षि अत्रि ने बताया था। महर्षि अत्रि की बात मानकर पुरुषोत्तम राम ने दशरथ का पिण्डदान **माता के जीवित रहते हुये** पुष्कर में जा कर किया। इसका वर्णन इस प्रकार है—

पुलस्त्य उवाच—

तथान्यं ते प्रवक्ष्यामि इतिहासं पुरातनम्। यथा रामेण वे तीर्थं पुष्करं तु विनिर्मितम्॥ ४८॥
चित्रकूटात्पुरा रामो मैथिल्या लक्ष्मणेनच। अत्रेराश्रममासाद्य पप्रच्छ मुनिसत्तमम्॥ ४९॥

पुलस्त्य ऋषि भीष्म से बोले—हे राजन् एक पुराना इतिहास मैं बता रहा हूँ राम के द्वारा जो पुष्करतीर्थ में किया गया है। चित्रकूट के पहले अत्रि के आश्रम पर लक्ष्मण एवं सीता जी के साथ पहुँचकर राम **अत्रिजी** से पूछे— ॥ ४८-४९ ॥

राम उवाच—

कानि पुण्यानि तीर्थानि किं वा क्षेत्रं महामुने। यत्र गत्वा नरो योगिन्वियोगं सह बन्धुभिः॥ ५०॥
नैव प्राप्नोति भगवन्स्तन्ममाचक्ष्वसुव्रत। अनेन वनवासेन राज्ञस्तु मरणेन च॥ ५१॥
भरतस्य वियोगेन परितप्ये ह्यहं त्रिभिः। तद्वाक्यं राघवेणोक्तं श्रुत्वा विप्रर्षभस्तदा॥ ५२॥
ध्यात्वा च सुचिरं कालमिदं वचनमब्रवीत्।

राम बोले—कौन सा क्षेत्र तथा कौन सा पुण्य तीर्थ है जहाँ बन्धुओं के साथ जाकर मनुष्य वियोग को नहीं प्राप्त करता है। हे भगवन् आप मुझे बतावें। मैं आज-वनवास, राजा दशरथ की मृत्यु तथा भरत का वियोग इन तीनों दुःखों से दुःखी हूँ। इस प्रकार राम के वचन को सुनकर अत्रि मुनि बहुत देर तक सोचते हुए इस प्रकार बोले— ॥ ५०—५२१/२

अत्रिरुवाच—

साधु पृष्टं त्वया वीर रघूणां वंशवर्धन॥ ५३॥
मम पित्रा कृतं तीर्थं पुष्करं नाम विश्रुतम्। पर्वतौ द्वौ च विख्यातौ मर्यादायज्ञपर्वतौ॥ ५४॥
कुण्डत्रयं तयोर्मध्ये ज्येष्ठमध्यकनिष्ठकम्॥ ५५॥
तेषु गत्वा दशरथं पिण्डदानेन तर्पय। तीर्थानां प्रवरं तीर्थक्षेत्राणामपि चोत्तमम्॥
अवियोगा च सुरसा वापी रघुकुलोद्वह॥ ५६॥
तथा सौभाग्यकूपोऽन्यः सुजलो रघुनन्दन। तेषु पिण्डप्रदानेन पितरो मोक्षमाप्नुयुः॥ ५७॥

अत्रि जी बोले—हे रघु के वंश को बढ़ाने वाले राम आपने बहुत अच्छा प्रश्न पूछा है। मेरे पिता ने पुष्कर नाम का एक तीर्थ का निर्माण किया है, जहाँ पर मर्यादा तथा यज्ञ नाम का दो पर्वत है। उन दोनों पर्वतों के मध्य में **ज्येष्ठ, मध्यम तथा कनिष्ठ तीन कुण्ड हैं।** वहाँ जाकर दशरथ जी का पिण्डदान और तर्पण करें, वह तीर्थों में श्रेष्ठ तथा तीर्थ क्षेत्रों में उत्तम है, वहाँ **अत्रियोग** तथा **सुरसा** नामक कुण्ड है। एक अन्य कुण्ड है, हे राम जिसका नाम **सौभाग्य** है, उसका जल सुन्दर है। उसके जल से पिण्डदान करने से पितर लोग मोक्ष को प्राप्त करते हैं॥ ५३—५७॥

आभूतसम्प्लवं कालमेतदाह पितामहः। तत्र राघव गच्छस्व भूयोऽप्यगमनं क्रिया॥ ५८॥
तथेति चोक्त्वा रामोऽपि गमनाय मनो दधे। ऋक्षवन्तमभिक्रम्य नगरं वेदिशन्तया॥ ५९॥

चर्मण्वतीं समुत्तीर्य प्राप्तोऽसौ यज्ञपर्वतम्। तमतिक्रम्य वेगेन मध्यमे पुष्करे स्थितः॥ ६०॥
पितृन्सन्तर्पयामास अद्भिर्देवांश्च सर्वशः। स्नानाचसाने रामेण मार्कण्डो मुनिपुङ्गव॥ ६१॥
आगच्छञ्शिष्यसंयुक्तो दृष्टस्तत्रैव धीमता। गत्वा वै सम्मुखं तस्य प्रणिपतय च सादरम्॥ ६२॥
पृष्टोऽवियोगदः कूपः कतमस्यां दिशि प्रभो। सुतो दशरथस्याहं रामो नाम जनैः स्मृतः॥ ६३॥
सौभाग्यवापींतां द्रष्टुमहं प्राप्तोऽत्रिशासनात्। तत्स्थानंतौ चैव कूपौ भगवान्प्रब्रवीतुमे॥ ६४॥
एवमुक्तश्च रामेण मार्कण्डः प्रत्युवाच ह।

यह समय अत्यन्त महत्वपूर्ण है, हे राम आप जाये वहाँ क्रिया करें। ऐसा ही होगा, यह कहकर राम वहाँ जाने हेतु मन बना लिए। ऋक्षवन्त तथा विदिशा नाम की नगरी को पार कर, चर्मण्वती नदी को प्राप्त करने पर, यज्ञ पर्वत प्राप्त हुआ। उस पर्वत को वेग से पार करने के बाद मध्यम पुष्कर है। वहाँ अपने पितरों को तर्पण किया तथा देवताओं की पूजा की। स्नान कर लेने के बाद मुनियों में श्रेष्ठ मार्कण्डेय जी अपने शिष्यों के साथ वहाँ आ गये उस मुनि को देखकर राम उनके पास जाकर आदर के साथ प्रणाम किये और बोले मैं दशरथ का पुत्र राम अवियोग कूप देखना चाहता है वह कूप किस दिशा में है। महर्षि अत्रि के आदेशानुसार सौभाग्य कूप देखना चाहता हूँ। वह दोनों स्थान कहाँ है मुझे बतायें॥ ५८—६४॥

मार्कण्डेय उवाच-

साधु राघव भद्रं ते सुकृतं भवता कृतम्॥ ६५॥
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन यत्प्राप्तोऽसीह साम्प्रतमम्। एह्यागच्छस्व पश्यस्व वापीं तामवियोगदाम्॥ ६६॥
अवियोगश्च सर्वेश्च कूप एवात्र जायते। आमुष्मिके चैहिके च जीवतोऽपि मृतस्य वा॥ ६७॥
एतद्वाक्यं मुनीन्द्रस्य श्रुत्वा लक्ष्मणपूर्वजः। सस्मार रामो राजानं तदा दशरथं नृप॥ ६८॥
भरतं सह शत्रुघ्नं भ्रातृनन्यांश्च नागरान्। एवं चिन्तयतस्तस्य सन्ध्याकालो ध्यजायत॥ ६९॥
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां मुनिभिः सह राघवः। सुष्वाप तां निशां तत्र भ्रातृभार्यासमन्वितः॥ ७०॥
विभावर्यवसाने तु स्वप्नान्ते रघुनन्दनः। पित्रा मात्रा तथा चान्यैरयोध्यायां स्थितः किल॥ ७१॥
विवाहमङ्गले वृत्ते बहुभिर्वान्धवैः सह। समासीनः सभार्योऽसावृषिभिः परिवारितः॥ ७२॥
लक्ष्मणेनाप्येवमेव दृष्टोऽसौ सीतया तथा। प्रभाते तुमुनीनांतत्सर्वमेव प्रकीर्तितम्॥ ७३॥
ऋषिभिश्चतथेत्युक्तः सत्यमेतद्रघूत्तम। मृतस्य दर्शने श्राद्धं कार्यमावश्यकं स्मृतम्॥ ७४॥
वृद्धिकामास्तु पितरस्तथा चैवान्नकाङ्क्षिणः। ददन्ति दर्शनं स्वप्ने भक्तियुक्तस्य राघव॥ ७५॥
अवियोगस्तु ते भ्रात्रा पित्रा च भरतेन च। चतुर्दशानां वर्षाणां भविता राघव ध्रुवम्॥ ७६॥
कुरु श्राद्धं तथा वीर राज्ञो दशरथस्य च। अमी च ऋषयः सर्वे तव भक्ताःकृतक्षणाः॥ ७७॥
अहं च जमदग्निश्च भारद्वाजश्च लोमश। देवरातः शमीकश्च षडेते वै द्विजोत्तमाः॥ ७८॥
श्राद्धे च ते महाबाहो संभारांस्त्वमुपाहर। मुख्यं चेङ्गुदिपिण्याकं बदरामलकैः सह॥ ७९॥
श्रीफलानि च पक्वानि मूलं चोच्चावचं बहु। मार्गेण चाथ मांसेनधान्येन विविधेन च॥ ८०॥
तृप्तिं प्रयच्छ विप्राणां श्राद्धदानेन सुव्रत। पुष्करारण्यमासाद्य नियतो नियताशनः॥ ८१॥
पितृंस्तर्पयते यस्तु सोऽश्वमेधमवाप्नुयात्। स्नानार्थं तु वयं राम गच्छामो ज्येष्ठपुष्करम्॥ ८२॥

मार्कण्डेय जी बोले—हे राघव आप का कल्याण हो, आपने अत्यन्त पुण्य किया है, इस तीर्थ यात्रा के प्रसङ्ग में इस समय ज़ो प्राप्त हुए हैं, यहाँ आओ और उन **अवियोग कूप** को देखो। यहाँ आने पर सभी लोगों का

वियोग नहीं होता है। जीवित या मरे हुए का यहाँ आत्मिक तथा दैहिक क्रिया किया जाता है। इस प्रकार मार्कण्डेय की बात सुनकर राम-राजा दशरथ, भरत, शत्रुघ्न तथा नगर के अन्य लोगों का स्मरण किये तब तक सायंकाल हो गया। सायंकाल की पूजा मुनि के साथ राम ने किया। उस रात्रि को राम—लक्ष्मण एवं सीता के साथ सोये, रात्रि के अन्तिम प्रहर में राम ने एक स्वप्न देखा कि मैं माता, पिता एवं अन्य लोगों के साथ अयोध्या में बैठा हूँ। किसी विवाह के मंगल कार्य में बान्धवों, ऋषियों, परिवार एवं अपने भार्या के साथ राजा दशरथ बैठे हैं। प्रातः सीता एवं लक्ष्मण के सामने राम ने इस स्वप्न को बताया तथा उस मार्कण्डेय मुनि से रात के स्वप्न को सब कुछ बता दिया। ऋषियों ने ऐसा कहा कि हे राम! रात्रावसान में मरने वाले का स्वप्न देखा जाय तो निश्चित रूप से उसका श्राद्ध करना चाहिए यह शास्त्र सम्मत है। हे राघव परिवार की वृद्धि की कामना से तथा अन्न की इच्छा से पितर लोग स्वप्न में दर्शन देते हैं। हे राघव! भाई भरत एवं पिता से १४ वर्ष तक वियोग नहीं होगा, यह सत्य है। हे राम! आप राजा दशरथ का श्राद्ध करें, समस्त ऋषि लोग उस श्राद्ध को देखेंगे। मैं, जमदग्नि, भारद्वाज, लोमश, देवरात और शमीक सब लोग ब्राह्मणों में उत्तम हैं। हे महाबाहो श्राद्ध की सामग्री आप ले आयें मुख्य रूप से इङ्गुरीका फल, बेर, आँवला, श्रीफल, पके हुए फल अधिक मात्रा में, विविध प्रकार के धान, **माँस**, श्राद्ध में दान के द्वारा ब्राह्मणों को, ब्रह्मा के द्वारा निर्मित पुष्कर क्षेत्र में तृप्त करो। जो व्यक्ति यहाँ पितरों का तर्पण करता है उसे अश्वमेधयज्ञ का फल प्राप्त होता है। हे राम अब हम लोग ज्येष्ठ पुष्कर में स्नान के लिए जा रहे हैं॥ ६५—८२॥

इत्युक्त्वा ते गताः सर्वे मुनयो राघवं नृप। लक्ष्मणं चाब्रवीद्रामो मेध्यमाहर मे मृगम्॥ ८३॥
शुद्धे क्षणं च शशकं कृष्णशाकन्तथा मधु। जम्बीराणि च मुख्यानि मूलानि विविधानि च॥ ८४॥
पक्वानि च कपित्थानि फलान्यन्यानि यानि च। तान्याहरस्व वै श्राद्धे क्षिप्रमेवास्तु लक्ष्मण॥ ८५॥
तथा तत्कृतवान्सर्वं रामादेशाच्च राघवः। बदरेङ्गुदिशाकानि मूलानि विविधानि च॥ ८६॥
तत्राहृत्य च रामेण कूटाकारः कृतो महान्। परिपक्वं च जानक्या सिद्धं रामे निवेदितम्॥ ८७॥
स्नात्वा रामो योगवाप्यां मुनींस्तानमुपालयन्। मध्याह्नाच्चलिते सूर्य कालेकुतपकेतया॥ ८८॥
आयाताऋषयः सर्वे येरामेणानुमन्त्रिताः। तानागतान्मुनीन्दृष्ट्वा वैदेही जनकात्मजा॥ ८९॥
रामान्तकं परित्यज्य व्रीडिताऽन्यत्रसंस्थिता। विस्मयोत्फुल्लनयना चिन्तयानाचवेपती॥ ९०॥
ब्राह्मणा नेह जानन्ति श्राद्धकाले ह्युपस्थिताः। रामेण भोजिता विप्राः स्मृत्युक्तेन यथाविधि॥ ९१॥
वैदिक्यश्च कृतास्सर्वाः सत्क्रियायास्समीरिताः। पुराणोक्तो विधिश्चैव वैश्वदेधिकपूर्वकः॥ ९२॥
भुक्तवत्सु च विप्रेषु दत्वा पिण्डान्यथाक्रमम्। प्रेषितेषु यथाशक्ति दत्वातेषुचदक्षिणाम्॥ ९३॥
गतेषु विप्रमुख्येषु प्रियांरामोऽब्रवीदिदम्। किमर्थं सुभ्रु नष्टासि मुनीन्दृष्ट्वा त्विहागतान्॥ ९४॥
तत्सर्वं त्वमिदं तत्त्वं कारणं वद मा चिरम्। भवितव्यं कारणेन तच्च गोप्यंनमे कुरु॥ ९५॥
शापितासि मम प्राणैर्लक्ष्मणस्य शुचिस्मिते। एवमुक्ता तदा भर्त्रा त्रपयाऽवाङ्मुखी स्थिता॥ ९६॥
विमुञ्चन्ती साऽश्रुपातं राघवं वाक्यमब्रवीत्। शृणुत्वं नाथ यदृष्टमाश्चर्यमिह यादृशम्॥ ९७॥
राम त्वया चिन्त्यमानो राजेन्द्रस्त्विह चागतः। सर्वाभरणसंयुक्तौ द्वौ चान्यौ च तथाविधो॥ ९८॥
द्विजानां देहसंयुक्तास्त्रयस्ते रघुनन्दन। पितरस्तु मया दृष्टा ब्राह्मणाङ्गेषु राघव॥ ९९॥
दृष्ट्वा त्रपान्विता चाहमपत्रान्ता तवान्तिकात्। त्वया वै भोजिता विप्राः कृतं श्राद्धं यथाविधि॥ १००॥
वल्कलाजिनसंवीता कथं राज्ञःपुरःसरा। भवामि रिपुवीरघ्न सत्यमेतद्ब्रुदाहृतम्॥ १०१॥
कौशेयानि च वस्त्राणि कैकेय्यापहृतानिव। ततः प्रभृति चैवाहं चीरिणी तु वनाश्रयम्॥ १०२॥

ज्ञात्याहं न वदेकिञ्चिन्मा ते दुःखं भवत्विति। नाहं स्मरामि वै मातुर्न पितुश्च परन्तप॥ १०३॥
कदा भविष्यतीहान्तो वनवासस्य राघव। एतदेवानिशं राम चिन्तयन्त्याः पुनःपुनः॥ १०४॥
व्रजन्ति दिवा नाथ तव पद्मयां शपाम्यहन्। एवहस्तेन कथं राज्ञो दास्ये ये भोजनं त्विदम्॥ १०५॥

(पद्मपुराण, सृष्टिखंड, अध्याय-३३)

ऐसा कहकर वे ऋषिगण वहाँ से चले गये तथा **राम ने लक्ष्मण से कहा हे लक्ष्मण! मृगका माँस** ले आओ। शुद्ध एवं तत्काल मारे हुए **खरगोश, कृष्णमृग का माँस,** शाक, **मधु,** जम्बीरी नीबू अन्य मुख्य आसव फल-फूल पके एवं कपित्थ वर्ण के फल, इन सबको शीघ्र ले आओ। राम के आदेश से लक्ष्मण जी बेर, इङ्गुरीका फल, शाक अनेक प्रकार के फल, मूल, शीघ्र ले आकर पर्वत पर रख दिये सीताजी ने उन सभी को पकाकर राम से निवेदन करके रख दिया। मुनि के द्वारा बताये गये वापी में स्नान कर लिए और सूर्य आकाश के मध्य में चले गये अर्थात् मध्याह्नकाल हो गया, उसी समय राम के द्वारा निमन्त्रित सभी ऋषि लोग आये। उन निमन्त्रित मुनियों को आते हुए देखकर जनकात्मजा सीता, राम के पास से उठकर अत्यन्त लज्जा से अधोमुखी होकर काँपती हुई चली गयी।

श्राद्ध के समय उपस्थित ब्राह्मण लोग भी इस रहस्य को नहीं जाने। **राम ने शास्त्र के अनुसार विधिपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराया** पुराणों में वर्णित विधि के अनुसार वेदियों पर विश्वदेव की पूजा की तथा ब्राह्मणों को भोजन देकर पिण्डदान का कार्य सम्पन्न कराकर अपने सामर्थ्य के अनुसार उन ब्राह्मणों को दक्षिणा दिया। उन ब्राह्मणों के वहाँ से चले जाने पर राम ने अपने प्रिया सीता से बोले—हे सुन्दर भौहों वाली आप बताओ मुनि लोगों को देखकर वहाँ से क्यों चली गयी। इन सब कारणों को सत्य रूप में मुझे बताओ। कौन-सा ऐसा कारण है, जिससे आप वहाँ से चली गयी इसमें कुछ गुप्त मत रखियेगा। मैं अपने प्राणों तथा लक्ष्मण का शपथ दिला रहा हूँ। इस प्रकार राम के कहने के बाद सीताजी नीचे मुख करके बैठ गयीं, तथा रोती हुई राम से बोलीं-हे नाथ! जो मैंने एक आश्चर्य देखा उसे आप सुनें-हे भगवन्! आप अपने पिता की चिन्ता कर रहे थे, तो राजा दशरथजी यहाँ आये थे उनके साथ समस्त अलंकार से युक्त अन्य दो लोग थे। ब्राह्मणों के अङ्ग में तीन लोग थे, अपने पितरों को उन ब्राह्मणों के शरीर में देखकर मुझे लज्जा होने लगी इसलिए मैं आप के पास से अन्यत्र चली गयी। इसलिए आपने अकेले श्राद्ध किया तथा ब्राह्मणों को भोजन कराये।

हे भगवन् इस वल्कल वस्त्र में मैं राजा के सामने कैसे जाऊँ इसी भय से मैं अन्यन्त्र चली गयी। यह मैं सत्य कह रही हूँ। मेरा रेशमी वस्त्र माँ कैकेयी ने ले लिया था उसी समय में यह वल्कल वस्त्र धारण की हूँ जानकर आप को दुःख होगा इसलिए मैं नहीं बतायी। हे भगवन्! कब वनवास का अन्त होगा, यही चिन्ता बार-बार हो रही है। मैं आप का शपथ लेकर कहती हूँ कि इस वेष में मैं कैसे राजा को भोजन कराऊँगी इसलिए अन्यत्र चली गयी॥ ८३—१०५॥

× × ×

विभिन्न देवताओं का शापित होना

भगवान् विष्णु एवं भृगुऋषि का शापित होना—

भृगु ऋषि की **ख्याति** नाम की भार्या से **धाता** और **विधाता** नाम के पुत्र तथा भगवत्परायण **श्री (लक्ष्मी)** नामकी एक कन्या उत्पन्न हुईं। **भृगुपुत्री 'लक्ष्मी' का ही विवाह 'भगवान् विष्णु' के साथ हुआ था।** लक्ष्मी ने लक्ष्मीपुर का निर्माण किया तथा उसे अपने पिता भृगु को सौंपकर स्वर्ग को चली गईं। कुछ दिन बाद लक्ष्मी ने लक्ष्मीपुर को अपने पिता भृगु से मांगा। भृगु ने क्रोधित होकर लक्ष्मीपुर देने से मना कर दिया। लक्ष्मी ने बैकुण्ठ जाकर यह बात अपने पति **भगवान् विष्णु** को बताईं। भगवान् विष्णु ने भी लक्ष्मीपुर को भृगुऋषि से मांगा। तब **भृगुऋषि ने विष्णु को शाप दिया—हे विष्णु! पत्नि के पक्षपात में पड़कर तुमने मुझ पर दबाव डाला है। इस कारण तुम्हारे मनुष्य रूप में १० जन्म होंगे परन्तु उन जन्मों में तुम स्त्री वियोग के कष्ट से दुःखी होगे।** इस शाप को सुन कर **विष्णु ने भृगुऋषि को शाप दिया—हे भृगु! तुम भी लक्ष्मी का सुख कभी प्राप्त नहीं करोगे।** विष्णु ने भगवान् ब्रह्मा से कहा कि आपके पुत्र भृगु ने मुझे शाप दिया है। इस कारण मैं वैकुण्ठ छोड़कर क्षीरसागर में निवास करुँगा, तब **भगवान् ब्रह्मा ने विष्णु से कहा—हे विष्णु! आपको कौन शाप दे सकता है।** आपका जन्म संसार के हितार्थ मनुष्यलोक में होगा। ब्राह्मण का सम्मान करना ही उचित है क्योंकि ब्राह्मण आपके ही अङ्ग हैं। भगवान् ब्रह्मा के वचन को सुनकर विष्णु वैकुण्ठ वापस आकर निवास करने लगे।

☞ भगवान् ब्रह्मा ने विष्णु जी को बताया कि **आपको कोई शापित नहीं कर सकता है।**

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड)

भगवान् ब्रह्मा का शापित होना—

एक बार भगवान् ब्रह्मा ने देवताओं, मनुष्यों के हित तथा लोक कल्याण के लिये एक यज्ञ का विचार किया। उस यज्ञ में कपिल, सप्तऋषि, त्रयम्बक, सनत्कुमार, प्रजापतिमनु, विष्णु, शङ्कर, पुलस्त्य, भृगु, नारद, मरीचि, विश्वकर्मा, तथा कुबेर इत्यादि ऋषि-देवता विद्यमान् थे। भगवान् ब्रह्मा की पत्नि **'सावित्री'** जी यह सोच कर कि लक्ष्मी, गौरी, अग्निपत्नि स्वाहा, वरुणानी, अरुन्धती, एवं अनसूया इत्यादि अभी नहीं आयी हैं, इस कारण मैं थोड़ा विलम्ब करके जाऊँगी। उधर यज्ञ का मुहुर्त निकला जा रहा था, तब क्रोधित होकर भगवान् ब्रह्मा ने इन्द्र को कहा कि शीघ्र ही यज्ञ के निमित्त एक कन्या को ले आओ जिससे पाणिग्रहण करके मैं यज्ञ सम्पन्न कर सकूँ। इन्द्र भगवान् ब्रह्मा की आज्ञा मान कर एक रूपवती कन्या ले आये जो ग्वाल वंश की थी। इनका नाम **'गायत्री'** हुआ, इनसे पाणिग्रहण करके भगवान् ब्रह्मा ने देवताओं, मनुष्यों के हित तथा लोक कल्याण के लिये यज्ञ को सम्पन्न किया। **यज्ञ सम्पन्न होने के पश्चात् सावित्री जी ने वहाँ आकर ब्रह्मा जी को शाप दिया कि तुम्हारी कार्तिकी पूजा के अलावा कभी पूजा नहीं होगी। इसके अतिरिक्त वहाँ उपस्थित सभी देवी-देवताओं को भी सावित्री जी ने शाप दिया।** इस शाप को निष्फल करते हुए गायत्री जी ने भगवान् ब्रह्मा के पूजा की प्रशंसा की, साथ ही भगवान् ब्रह्मा सहित उस यज्ञ में उपस्थित सभी देवी-देवताओं को सावित्री जी के शाप से मुक्त किया।

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड)

☞ **भगवान् ब्रह्मा शापित नहीं हैं,** जो लोग भ्रमित होकर भगवान् ब्रह्मा की पूजा नहीं कर रहे हैं वह अपना जीवन नारकीय बना रहे हैं क्योंकि भगवान् ब्रह्मा का पूजन न करने वाला मनुष्य ज्ञान, सुख तथा मोक्ष कुछ भी नहीं प्राप्त कर सकता है। भगवान् ब्रह्मा का पूजन न करने के कारण ही सनातन समाज के बहुतायत लोग उत्तम कुल में जन्म लेने के बाद भी ज्ञानशून्य होकर कुल की गरिमा नष्ट करते हुए अपराधी (राक्षस) बनकर निन्दनीय कार्य कर रहे हैं।

ऋग्वेद में भगवान् चित्र

ऋग्वेद सनातनधर्म का प्राचीन ग्रन्थ है। सायणाचार्य नामक विद्वान ने ऋग्वेद का पुराणों के आधार पर संस्कृत में भाष्य किया था जो विजयनगर के राजा के पास था। मैक्समूलर नामक अंग्रेज ईसाई पादरी ने विजयनगर के राजा से उसे मुद्रित कराने का निवेदन किया और उसे प्राप्त करके LONDON, HENRY FROWDE, OXFORD UNIVERSITY PRESS WAREHOUSE, AMEN CORNER से प्रकाशित कराया।

फादर मैक्समूलर द्वारा मुद्रित ऋग्वेद सायणभाष्य कहलाता है, **सायणभाष्य, पुराणों के आधार पर ऋग्वेद की व्याख्या है।** आदिशंकराचार्य ने उपनिषद् एवं वेदान्त की व्याख्या भी पुराणों के आधार पर ही की है। इस कारण पुराणों को वेद, उपनिषद् तथा वेदान्तों से भिन्न कहकर अप्रामाणिक कहना मूढ़ता है।

सनातनधर्म से इतर धर्म के लोगों द्वारा वर्तमान् में विद्यमान् ऋग्वेद को विदेशियों द्वारा भारत में लाया मनगढ़न्त ऋग्वेद कहकर दुष्प्रचार किया जाता है, जबकि सत्यता ये है कि **फादर मैक्समूलर ने सनातनी ऋग्वेद को केवल मुद्रित कराने का कार्य किया, जिससे कि ऋग्वेद जन-जन तक पहुँच सके।**

ऋग्वेद में **चित्र** नाम के देवता का वर्णन लगभग ७० ऋचाओं में विद्यमान् है। यही देवता पुराणों में **चित्रगुप्त** के नाम से विख्यात् हैं। **पुराणों के अनुसार चित्रगुप्त लोकशासक तथा १४ यमों में धर्माधिकारी नामक यम हैं।** पुराणों में लोकशासक चित्रगुप्त का देवलोक, मृत्युलोक तथा पाताललोक पर शासन करने का अनेक उदाहरण विद्यमान हैं। इन्हीं के नाम से हिन्दी मास का प्रथम मास **चित्रमास** [अपभ्रंश होकर **चैत्रमास**] तथा २७ नक्षत्रों में से एक **चित्रनक्षत्र** [अपभ्रंश होकर **चित्रानक्षत्र**] कहलाता है।

चित्र देव का, ऋग्वेद से, केवल उदाहरण के लिये दो ऋचा दी जा रही है।

क्रमशः—

RIG-VEDA-SAMHITA

THE

SACRED HYMNS OF THE BRÂHMANS

TOGETHER WITH THE

COMMENTARY OF SÂYANÂKÂRYA

EDITED BY
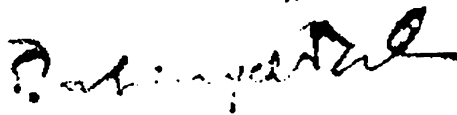
F. MAX MÜLLER

SECOND EDITION

VOLUME III

MANDALAS VII-IX

PUBLISHED UNDER THE PATRONAGE OF

HIS HIGHNESS THE MAHÂRÂJAH OF VIJAYANAGAR

LONDON
HENRY FROWDE
OXFORD UNIVERSITY PRESS WAREHOUSE, AMEN CORNER
1892

वर्जितोऽसि । यद्वा त्वयापित्वं बांधवमिच्छसे इच्छसि तव युधियुधेव । युद्धं कुर्वन्नेव स्तोतॄणां सखा भवसीति ॥

नकी रेवंतं सख्याय विंदसे पीयंति ते सुराश्वः ।
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित्पितेव हूयसे ॥१४॥
नकिः । रेवंतं । सख्याय । विंदसे । पीयंति । ते । सुराश्वः ।
यदा । कृणोषि । नदनुं । सं । ऊहसि । आत् । इत् । पिताऽइव । हूयसे ॥१४॥

हे इंद्र रेवंतं धनवंतं केवलधनवंतं दानादिरहितमयष्टारमाढ्यं मानवं सख्याय सखिभावाय नकिर्विंदसे । न भजसे । नाश्रयसीत्यर्थः । अयष्टारो जनाः किं संतीत्यत आह । सुराश्वः ॥ टुओश्वि गतिवृद्ध्योः ॥ सुरया वृद्धास्तत् प्रमत्ता नास्तिकाश्च त्वां पीयंति ॥ पीयतिर्हिंसाकर्मा । हिंसंति । तान्नाश्रयसीत्यर्थः ॥

मा ते अमाजुरो यथा मूरास इंद्र सख्ये त्वावतः । नि षदाम सचा सुते ॥१५॥
मा । ते । अमाऽजुरः । यथा । मूरासः । इंद्र । सख्ये । त्वाऽवतः । नि । सदाम ।
सचा । सुते ॥१५॥

हे इंद्र ते तव स्वभूता वयं तथा मा भूम मा भवाम यथा त्वावतस्त्वादृशस्त्वत्सदृशस्य देवस्य सख्ये मूरासो मूराः । सोमप्रदानादिंद्रेण सह सख्यं कुर्म इत्येतदजानंतो मूढा जनाः । अमाजुरः सोमाभिषवमकुर्वतस्ते गृहैः पुत्रैः पौत्रैर्धनादिभिश्च सह जीर्णा भवंति । तथा वयममाजुरो न भवाम । कथं । सचा ऋत्विग्भिः सह सुतेऽभिषुते सोमे वयं तु नि षदाम । निषदाम । तस्मात्सोमदानेन त्वया सह सखिभावं कुर्म इत्यर्थः ॥ ॥३॥

मा ते गोदत्र निरराम राधस इंद्र मा ते गृहामहि ।
दृळ्हा चिदर्यः प्र मृशाभ्या भर न ते दामान आदभे ॥१६॥
मा । ते । गोऽदत्र । निः । अराम । राधसः । इंद्र । मा । ते । गृहामहि ।
दृळ्हा । चित् । अर्यः । प्र । मृश । अभि । आ । भर । न । ते । दामानः । आऽदभे ॥१६॥

हे गोदत्र स्तोतॄणां गवादिदानशील हे इंद्र ते तव स्वभूता वयं राधसो धनान्मा निरराम । मा निर्गमाम ॥ अर्तेर्लुङि सर्तिशास्त्यर्तिभ्यश्चेत्यङादेशः । ऋदृशोऽङीति गुणः ॥ सर्वदा त्वत्तो धनाढ्या भवाम । किंच ते तव स्वभूता वयं धनं मयच्छाम । कस्माच्चिन्मा गृहामहि । तस्मादन्यस्मान्न गृह्णीमः । अपि तु त्वत्त एव धनं गृह्णीम इत्यर्थः ॥ गृहेर्लुङि बहुलं छंदसीति शः । ग्रहिज्यादिना संप्रसारणं ॥ अर्यः स्वामी त्वं दृळ्हा चिद्दृढान्यपि चिरकालावस्थितानि धनानि प्र मृश । प्रकर्षेणास्मासु स्थापय । किंचाभ्याभिमुख्येना भर । धनादिभिः समंतादस्मान्पोषय । ते तव दामानस्तानि दानानि नादभे न केचिदप्यादंभितुं शक्नुवंति । तस्माद्दानादियुक्तानस्मान् कुर्वित्यर्थः ॥

इंद्रो वा घेदियन्मघं सरस्वती वा सुभगा ददिर्वसु । त्वं वा चित्र दाशुषे ॥१७॥
इंद्रः । वा । घ । इत् । इयत् । मघं । सरस्वती । वा । सुऽभगा । ददिः । वसु । त्वं ।
वा । चित्र । दाशुषे ॥१७॥

अत्र चित्रस्य दानं स्तौति । चित्रो नाम राजा सरस्वतीतीरे इंद्रार्थं यागमकृत । तत्र मंत्रद्रष्टर्षिरिंद्रमध-

मं० ८. अ० ४. सू० २२.] ॥ षष्ठोऽष्टकः ॥ ३४३

यजमानमात्मानमेतावद्धनं को वा प्रायच्छदिति विकल्पयति । दाशुषे इंद्राय हवींषि दत्तवते मह्यमिंद्रो वा वेदिंद्र एव किं खल्वेतावन्मघं मंहनीयं धनं ददिः प्रायच्छत् । यद्वा सुभगा शोभनधना सरस्वती नदी वसु धनं ददिः किं प्रायच्छत् । अथवा चित्र एतन्नामक हे राजन् त्वं वैतावद्धनं मह्यं प्रादा इति ॥

चित्र इद्राजा राजका इदन्यके यके सरस्वतीमनु ।
पर्जन्य इव ततनद्धि वृष्ट्या सहस्रमयुता ददत् ॥१८॥
चित्रः । इत् । राजा । राजकाः । इत् । अन्यके । यके । सरस्वतीं । अनु ।
पर्जन्यःऽइव । ततनत् । हि । वृष्ट्या । सहस्रं । अयुता । ददत् ॥१८॥

अनया चित्र एव प्रादादिति निश्चयमकार्षीत् । सहस्रं सहस्रसंख्याकं धनमयुतायुतानि च धनानि च ददत् प्रयच्छंश्चित्र इच्चित्रनामैव राजा । अन्यके यके ॥ अल्प इत्यर्थे कः ॥ अल्पा येऽन्ये राजका इद्राजान एव सरस्वतीमनु सरस्वत्यास्तीरे वर्तंते । तान् सर्वानप्यवमानानयमेव चित्रो राजा ततनत् धनैस्तनोति ॥ तनोतेर्लुङि चङि रूपं । अन्यतरस्यामिति स्वरः ॥ तत्र दृष्टांतः । पर्जन्य इव यथा पर्जन्यः पृथिवीं वृष्ट्या तनोति प्रीणयति तथायं चित्रः सर्वान् धनैः प्रीणयतीत्यर्थः ॥ ॥४॥

यो त्वमग्न इत्यष्टादशर्चं द्वितीयं सूक्तं काण्वस्य सोभरेरार्षं । आद्यातृतीयापंचम्यो बृहत्यो द्वितीयाचतुर्थीषष्ठ्यः सतोबृहत्यः सप्तमी बृहत्यष्टम्यनुष्टुप् । काकुभं प्रागाथं इत्युक्तत्वादानुपूर्व्याः शिष्टाश्चत्वारः काकुभाः प्रगाथाः । अश्विनौ देवता । तथा चानुक्रांतं । यो त्वमाश्विनं विप्रगाथादि बृहत्यनुष्टुबेकादशाद्ये ककुम्मध्येज्योतिषी इति ॥ प्रातरनुवाक आश्विने क्रतौ बार्हते छंदस्याश्विनशस्त्रे चाद्याः सप्तर्चः । सूत्रितं च । यो त्वमग्न आ रथमिति सप्त । आ० ४. १५. । इति ॥

[ऋषि—सोभरि काण्व। देवता—इन्द्र एवं चित्र १७-१८। छन्द—प्रगाथ। विषमा कुकुप्, समासतो बृहति]

इन्द्रो वा वेदियन्मघं सरस्वती वा सुभगा ददिर्वसु।
त्वं वा चित्र दाशुषे॥ १७॥

मैं हव्यदाता हूँ। क्या इन्द्र ने मुझे दान दिया है? अथवा शोभना-धनादि सरस्वती ने दिया है? अथवा हे चित्र आपने ही दिया है?

चित्र इद् राजा राजका इदन्यके यके सरस्वतीमनु।
पर्जन्य इव ततनद्धि वृष्ट्या सहस्रमयुता ददत्॥ १८॥

(ऋग्वेद, मं० ८, सुक्त २१, ऋचा १८)

जैसे मेघ वृष्टि-द्वारा पृथ्वी को प्रसन्न करता है, "वैसे ही सरस्वती [नदी] के तीरे पर रहने वाले अन्य राजाओं को सहस्र और अयुत (दश-सहस्र) धन देकर चित्र राजा उन्हें प्रसन्न करते हैं।"

☞ पुराणों में चित्र [चित्रगुप्त] सरस्वती के ही पुत्र हैं।

संदर्भ—ऋग्वेद।

ऋग्वेद में **चित्रदेव** [चित्रगुप्त] को राजा [शासक] कहा गया है, इसी प्रकार **इन्द्रदेव** तथा **वरुणदेव** को भी राजा कहकर सम्बोधित किया गया है। राजा का अभिप्राय शासक से है। यथा—

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चितदर्वाक्॥ ३॥

(ऋग्वेद, मं० ७, सुक्त २७, ऋचा ३)

यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम्।
मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥ ३॥

(ऋग्वेद, मं० ७, सुक्त ४९, ऋचा ३)

ऋग्वेद में **यम** नाम के देवता का भी वर्णन है जो पुराणों में **यमराज** कहे गये हैं। इन यमों के अतिरिक्त **मृत्यु, अन्तक** तथा **वैवस्वत** नामक **यमों** का भी वर्णन ऋग्वेद में विद्यमान् है। **ये सभी देव वैदिक हैं।**

× × ×

ऋग्वेद में—चित्र, विचित्र।

पुराणों में—चित्रगुप्त, कायस्थ, 'पण्डित', लेखक, चैत्र तथा **चित्रक** कहा गया है।

चित्र, विचित्र, चित्रगुप्त, कायस्थ, 'पण्डित', लेखक, चैत्र तथा चित्रक यह सब भगवान् चित्रगुप्त के ही 'नाम' है।

यजुर्वेद में भगवान् चित्र

यजुर्वेद अत्यन्त महत्वपूर्ण वेद है। सनातन धर्म के समस्त धार्मिक अनुष्ठान इसी वेद के अनुसार किये जाते हैं। नवग्रह की स्थापना करके नवग्रह के अधिदेवता के रूप में सूर्य के लिये शिव की, चन्द्रमा के लिये उमा की, मंगल के लिये स्कन्द (कार्तिकेय) की, बुध के लिये विष्णु की, गुरू के लिये ब्रह्मा की, शुक्र के लिये इन्द्र की, शनि के लिये यम की, राहु के लिये काल की तथा **केतु के लिये चित्रगुप्त की स्थापना की जाती है।** इनकी स्थापना में देवों के लिये जिन वैदिक मंत्रों का प्रयोग किया जाता है, वे क्रमशः इस प्रकार हैं—

▶ **सूर्य** के अधिदेवता **शिव** को स्थापित करते समय इस वैदिक मंत्र का प्रयोग किया जाता है—

त्रयम्कम् यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥ (यजुर्वेद, अध्याय-३/६०)

▶ **चन्द्रमा** की अधिदेवता **उमा** को स्थापित करते समय इस वैदिक मंत्र का प्रयोग किया जाता है—

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्।
इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं मे इषाण॥ (यजुर्वेद, अध्याय-३१/२२)

▶ **मंगल** के अधिदेवता **स्कन्द** को स्थापित करते समय इस वैदिक मंत्र का प्रयोग किया जाता है—

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यान्त्समुद्रादुत वा पुरीषात्।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन्॥ (यजुर्वेद, अध्याय-२९/१२)

▶ **बुध** के अधिदेवता **विष्णु** को स्थापित करते समय इस वैदिक मंत्र का प्रयोग किया जाता है—

विष्णो रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि।
वैष्णवमसि विष्णवे त्वा॥ (यजुर्वेद, अध्याय-५/२१)

▶ **गुरू** के अधिदेवता **ब्रह्मा** को स्थापित करते समय इस वैदिक मंत्र का प्रयोग किया जाता है—

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्॥

(यजुर्वेद, अध्याय-२२/२२)

▶ **शुक्र** के अधिदेवता **इन्द्र** को स्थापित करते समय इस वैदिक मंत्र का प्रयोग किया जाता है—

सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान्।
जहि शत्रूँरप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः॥ (यजुर्वेद, अध्याय-७/३७)

▶ **शनि** के अधिदेवता **यम** को स्थापित करते समय इस वैदिक मंत्र का प्रयोग किया जाता है—

यमाय त्वाऽङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा। स्वाहा धर्माय स्वाहा धर्मः पित्रे॥ (यजुर्वेद, अध्याय-३८/९)

▶ **राहु** के अधिदेवता **काल** को स्थापित करते समय इस वैदिक मंत्र का प्रयोग किया जाता है—

कार्षिरसि समुद्रस्य त्वा क्षित्या उन्नयामि। समापो अद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः॥

(यजुर्वेद, अध्याय-६/२८)

▶ **केतु** के अधिदेवता **चित्रगुप्त** को स्थापित करते समय इस वैदिक मंत्र का प्रयोग किया जाता है—

चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय॥ (यजुर्वेद, अध्याय-३/१८)

× × ×

वेदान्त में भगवान् चित्रगुप्त

आदिशङ्कराचार्य ने वेदान्तग्रन्थ **ब्रह्मसूत्र** का भाष्य किया था जिसे **ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य** नाम से जाना जाता है। यह ग्रन्थ अद्वैतवाद का परमपूज्य ग्रन्थ है, ब्रह्मसूत्र में आदिशङ्कराचार्य ने अध्याय-३ के पाद-१ के सूक्त १३ से १६ में नचिकेता द्वारा यमलोक जाकर प्राणियों के भोग को प्रत्यक्ष देखे गये प्रकरण का उल्लेख किया है। **इससे स्पष्ट होता है कि आदिशङ्कराचार्य भी वेद तथा पुराण को समान रूप से प्रामाणिक मानते थे। उन्होंने साकार रूप में यम, वैवस्वत तथा चित्रगुप्त के अस्तित्व को माना है।**

१४ यम हैं, जिनके नाम यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर, दध्न, नील, परमेष्ठि, वृकोदर, चित्र तथा चित्रगुप्त हैं।

इन यमों में **यमराज—धर्मराज** तथा **चित्रगुप्त—धर्माधिकारी** नामक **'यम'** हैं।

''धर्माधिकारी चित्रगुप्त'' शेष तेरह यमों के स्वामी हैं।

संयमने त्वनुभूयेतरेषामारोहावरोहौ तद्गतियर्शनात्॥ १३॥

[ब्रह्मसूत्र, अध्याय-३, पाद-१, सूक्त-१३]

शाङ्करभाष्य—तुशब्दः पक्षं व्यावर्तयति। नैतदस्ति—सर्वे चन्द्रमसं गच्छन्तीति। एतत् कस्मात्? यतो भोगायैव चन्द्रारोहणं न निष्प्रयोजनम्। नापि प्रत्यवरोहायैव—यथा कश्चिद्वृक्षमारोहति पुष्पफलोपादानायैव, न निष्प्रयोजनं, नापि पतनायैव। भोगश्चानिष्टादिकारिणां चन्द्रमसिनास्तीत्युक्तम्। तस्मादिष्टादिकारिण एव चन्द्रमसमारोहन्ति, नेतरे। **ते तु संयमनं यमालयमवगाह्य स्वदुष्कृतानुरूपा यामीर्यातना अनुभूय पुनरेवेमं लोकं प्रत्यवरोहन्ति। एवंभूतौ तेषामारोहावरोहौ भवतः।** कुतः? तद्गतिदर्शनात्। तथाहि यमवचनसरूपा श्रुतिः प्रयतामनिष्टादिकारिणां यमवश्यतां दर्शयति—

न सांपरायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं विक्षमोहेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमाद्यपे मे॥
[कठ० २।६] इति।

'वैवस्वतं संगमनं जनानाम्' **इत्येवंजातीयकं च बह्वेव यमवश्यताप्राप्तिलिङ्गं भवति॥ १३॥**

शाङ्करभाष्यार्थ—'तु' शब्द पूर्वपक्ष की व्यावृत्ति करता है। यह नियम नहीं है कि सब चन्द्रमण्डल में जाते हैं। यह किससे? इससे कि भोग के लिये ही चन्द्रमण्डल में आरोहण होता है निष्प्रयोजन नहीं, और केवल लौटने के लिये भी नहीं। जैसे कोई पुष्प और फलों के ग्रहण करने के लिये ही वृक्ष पर चढ़ता है न निष्प्रयोजन और न पतन के लिये ही, और यह कहा गया है कि अनिष्ट आदि कारियों का चन्द्रमण्डल में भोग नहीं है। इसलिये इष्ट आदि कारी ही चन्द्रमण्डल में आरोहण करते हैं अन्य नहीं। **वे अनिष्ट आदि कारी तो संयमन-यमालय में प्रवेश कर अपने दुष्कृतों के अनुसार यम की यातना का अनुभव कर फिर से इस लोक में लौटते हैं। इस प्रकार उनका [प्राणी का] आरोह और अवरोह [मृत्युलोक से यमलोक तथा यमलोक से मृत्युलोक में आना-जाना] होता है।** किससे? उनकी गति के दर्शन होने से। जैसे कि **'न सांपरायः प्रतिमाति०'** [वित्त मोह से मूढ, प्रसाद करने वाले उस अज्ञ को परलोक का साधन

नहीं सूझता। स्त्री, पुत्र आदि विशिष्ट यह लोक है, परलोक नहीं है, ऐसा मानने वाला पुरुष बारम्बार मेरे वश को प्राप्त होता है] इस प्रकार यमवचन रूप श्रुति मरकर जाने वाले अनिष्ट आदि कारियों को यम की अधीनता दिखलाती है। और **'वैवस्वतं संममनं जनानाम्'** [यमलोक पापीजनों का गम्य स्थान है] इस प्रकार के भी बहुत ही यम की अधीनता की प्राप्ति के लिङ्ग बोधक श्रुति वाक्य हैं॥ **१३**॥

☞ उपर्युक्त पाद में संयमनी का वर्णन है। यमलोक का मध्य भाग संयमनीपुरी है। वहाँ धर्माधिकारी चित्रगुप्त और यमराज विद्यमान हैं। प्राणी के धर्माऽधर्म का नियम जो यमलोक सहित त्रिलोक [देवलोक, मृत्युलोक तथा पाताललोक] में पालन किया जाता है, वह यमलोक के **धर्माधिकारी चित्रगुप्त** नामक **यम** का बनाया हुआ है। प्राणी अपने कर्मों का भोग करने यमलोक तथा मृत्युलोक में आता-जाता रहता है।

स्मरन्ति॥ १४॥

[ब्रह्मसूत्र, अध्याय-३, पाद-१, सूक्त-१४]

शाङ्करभाष्य—अपि च मनुव्यासप्रभृतयः शिष्टाः संयमने पुरे यमायत्तं कपूयकर्मविपाकं स्मरन्ति **नाचिकेतोपाख्यानादिषु**॥ १४॥

शाङ्करभाष्यार्थ—और मनु, व्यास आदि शिष्टों के संयमन-यमलोक में पापकर्मों का विपाक यम के अधीन है, इस प्रकार **नाचिकेतोपाख्यान** आदि में स्मरण किया है॥ **१४**॥

☞ संयमनीपुरी में मनु, ऋषि, देवगुरू बृहस्पति तथा दनुजगुरू शुक्राचार्य भी चैतन्य रूप में विद्यमान् हैं, वे सभी यमराज के आदेश का पालन करते हैं, स्वयं यमराज—धर्माधिकारी चित्रगुप्त के बनाये नियमों एवं भगवान् चित्रगुप्त के आदेश का पालन करते हैं। इसी प्रकार सृष्टि का संचालन निरन्तर किया जाता है और प्राणियों के भोगों को निर्धारित कर अगला जन्म दिया जाता है, ऐसे ही सृष्टि आदिकाल से अनन्तकाल की ओर निरन्तर बढ़ती जा रही है। उपर्युक्त पाद में संयमनीपुरी का वर्णन है, जिसमें यमराज द्वारा मनु इत्यादि को आदेश दिया जाता है। **इसे नचिकेता ने प्रत्यक्ष देखा था, जिसका वर्णन वाराहपुराण के नाचिकेतः प्रयाणवर्णनम् में दिया गया है। इसी सत्य का वर्णन आदिशङ्कराचार्य ने किया है।**

अपिच सप्त॥ १५॥

[ब्रह्मसूत्र, अध्याय-३, पाद-१, सूक्त-१५]

शाङ्करभाष्य—अपिच सप्त नरका रौरवप्रमुखा दुष्कृतफलोपभोगभूमित्वेन स्मर्यन्ते **पौराणिकैः,** ताननिष्टादिकारिणः प्राप्नुवन्ति। कुतस्ते चन्द्रं प्राप्नुयुरित्यभिप्रायः॥ १५॥ ननु विरुद्धमिदं-यमायत्ता यातनाः पापकर्मणोऽनुभवन्ति—इति। यावता तेषु **रौरवादिष्वन्ये चित्रगुप्तादयो नानाधिष्ठातारः** स्मर्यन्त इति। नेत्याह—

शाङ्करभाष्यार्थ—और रौरव प्रमुख ७ नरक पाप फल के भूमिरूप से पौराणिक लोग स्मरण करते हैं। उनको अनिष्टादिकारी प्राप्त करते हैं। वे चन्द्रलोक को कैसे प्राप्त करें? ऐसा अभिप्राय है॥ **१५**॥ परन्तु यह विरुद्ध है कि **पापकर्म करने वाले यम [धर्माधिकारी चित्रगुप्त नामक यम] के अधीन यातना का अनुभव**

करते हैं, क्योंकि उन रौरव आदि नरकों में चित्रगुप्त आदि [चित्रगुप्त से इतर अन्य १३ यम] अधिष्ठाता जाने जाते हैं।

☞ रौरव, महारौरव, वह्नि, वैतरणी, कुम्भी, तामिस्त्रा और अन्धामिस्त्रा ये ७ प्रमुख नरक हैं। उपर्युक्त पाद में इन्हीं ७ नरकों का वर्णन आदिशङ्कराचार्य ने किया है। नरकलोक—परब्रह्मस्वरूप यमलोक के धर्माधिकारी चित्रगुप्त के अधीन है। **नरकलोक—देव तथा दानवों से भी अभेद्य है क्योंकि यमलोक के धर्माधिकारी चित्रगुप्त—देव-दानवों से १० गुने अधिक शक्ति के तथा देव-दानवों के स्वामी हैं।** परमपूज्य आदिशङ्कराचार्य ने सनातनी समाज के कल्याण हेतु चित्रगुप्त का व्याख्यान ब्रह्मसूत्र में लिखा है।

तत्रापि च तद्व्यापारादविरोधः ॥ १६ ॥

[ब्रह्मसूत्र, अध्याय-३, पाद-१, सूक्त-१६]

शाङ्करभाष्य—तेष्वपि सप्तसु नरकेषु तस्यैव यमस्याधिष्ठातृत्वव्यापाराभ्युपगमादविरोधः। यमप्रयुक्ता एव हि ते **चित्रगुप्तादयोऽधिष्ठातारः** स्मर्यन्ते॥ १६ ॥

शाङ्करभाष्यार्थ—उन सात नरकों में भी उस यम [धर्माधिकारी चित्रगुप्त नामक यम] के ही अधिष्ठातृरूप से व्यापार स्वीकृत है, अतः विरोध नहीं है, क्योंकि **वे चित्रगुप्त आदि से प्रयुक्त ही अधिष्ठाता स्मरण किये जाते हैं॥ १६ ॥**

☞ सभी नरकों के स्वामी यमलोक के धर्माधिकारी चित्रगुप्त हैं। धर्माधिकारी चित्रगुप्त द्वारा विभिन्न नरकों में वैवस्वत, काल, मृत्यु आदि यमों को नियुक्त किया गया है।

संदर्भ—ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य।

× × ×

अगले पृष्ठ पर सन् १९३८ में प्रकाशित **ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य** को आपके दृष्टार्थ स्कैन करके मूल रूप में दिया गया है, उसके बाद वाराहपुराण का **नाचिकेतः प्रयाणवर्णनम्** सम्पूर्ण मूल एवं हिन्दी अनुवाद के साथ दिया गया है, **जिसका वर्णन ब्रह्मसूत्र में आदिशङ्कराचार्य ने किया है।**

ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यम् ।

श्रीमदप्पय्यदीक्षितविरचितपरिमलोपबृंहितश्रीमदमलानन्दसरस्वतीप्रणीत-
कल्पतरुव्याख्यायुतश्रीमद्वाचस्पतिमिश्रकृतभामतीविलसितम् ।
साग्रम् । अद्वैतमेवौपनिषदमितिनिरूपणभूमिकया
ब्रह्मसूत्रकोशेन भाष्योद्धृतवचनकोशादिना च संहितम् ।

कलिकाताविश्वविद्यालयाध्यापकैः महामहोपाध्याय-
अनन्तकृष्णशास्त्रिभिः
टिप्पणेनोपस्कृतम् ।

तस्येदं
द्वितीयसंस्करणम्
शास्त्राचार्यपदवीविभूषितेन परशुरामाभिजनश्रीभिकाजीसूनुना भार्गवशास्त्रिणा
पाठान्तरैर्भाष्यस्थवचनकोशादिना च समलङ्कृत्य संशोधितम् ।

तच्च
मुम्बय्याम्
पाण्डुरङ्ग जावजी इत्येतैः,
स्वीये निर्णयसागराख्यमुद्रणयन्त्रालये मुद्रापयित्वा
प्राकाश्यं नीतम् ।

शाकः १८६०, सन १९३८.

न्त्युत न गच्छन्तीति चिन्त्यते । तत्र तावदाहुः—इष्टादिकारिण एव चन्द्रमसं गच्छन्तीत्येतन्न । कस्मात् । यतोऽनिष्टादिकारिणामपि चन्द्रमण्डलं गन्तव्यत्वेन श्रुतम् । तथाह्यविशेषेण कौषीतकिनः समामनन्ति—'ये वै के चास्माल्लोकात्प्रयन्ति चन्द्रमसमेव ते सर्वे गच्छन्ति' (कौषी० १।२) इति । देहारम्भोऽपि च पुनर्जायमानानां नान्तरेण चन्द्रप्राप्तिमवकल्पते । पञ्चम्यामाहुताविल्याहुतिसंख्यानियमात् । यस्मात्सर्वे एव चन्द्रमसमासीदेयुः । इष्टादिकारिणामितरेषां च समानगतित्वं न युक्तमिति चेत् । न । इतरेषां चन्द्रमण्डले भोगाभावात् ॥ १२ ॥

संयमने त्वनुभूयेतरेषामारोहावरोहौ तद्गतिदर्शनात् ॥ १३ ॥

तुशब्दः पक्षं व्यावर्तयति । नैतदस्ति सर्वे चन्द्रमसं गच्छन्तीति । एतत्कस्मात् । यतो भोगायैव चन्द्रारोहणं न निष्प्रयोजनम् । नापि प्रत्यवरोहायैव । यथा कश्चिद्वृक्षमारोहति पुष्पफलोपादानायैव न निष्प्रयोजनं नापि पतनायैव । भोगश्चानिष्टादिकारिणां चन्द्रमसि नास्तीत्युक्तम् । तस्मादिष्टादिकारिण एव चन्द्रमसमारोहन्ति नेतरे । ते तु संयमनं यमालयमवगाह्य स्वदुष्कृतानुरूपा यामीर्यातना अनुभूय पुनरेवेमं लोकं प्रत्यवरोहन्ति । एवंभूतौ तेषामारोहावरोहौ भवतः । कुतः—तद्गतिदर्शनात् । तथाहि यमवचनरूपा श्रुतिः प्रयतामनिष्टादिकारिणां यमवश्यतां दर्शयति—'न सांपरायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम् । अयं लोको

भाष्यरत्नप्रभा

माधिकरणेन सिद्धनियमाक्षेपसंगत्या पूर्वपक्षसूत्रं व्याचष्टे—तत्रेत्यादिना । यमराजं पापिजनानां सम्यग्गम्यं, हविषा प्रीणयतेति श्रुत्यर्थः । पूर्वपक्षे पुण्यवतामेव चन्द्रगतिरिति नियमाभावात् पुण्यवैयर्थ्यं पापाद्वैराग्यादार्ढ्यं चेति फलं, सिद्धान्ते पापिनां चन्द्रलोकदर्शनमपि नास्तीति पुण्यार्थत्वं वैराग्यदार्ढ्यं चेति फलम् । पञ्चमाग्नौ देहारम्भ इति नियमात्पापिनामपि प्रथमद्युलोकाग्निप्राप्तिर्वाच्येत्याह—देहारम्भ इति । पापिनां स्वर्गभोगाभावेऽपि मार्गान्तराभावाच्चन्द्रगतिरिति भावः ॥ १२ ॥ सिद्धान्तसूत्रं व्याचष्टे—तुशब्द इत्यादिना । संयमने यमलोके यमकृता यातना अनुभूयावरोहन्तीत्येवमारोहावरोहाविति योजना सूत्रस्य ज्ञेया । प्रयतां मृत्वा गच्छताम् । सम्यक् परस्तात्प्राप्यत इति संपरायः परलोकः, तदुपायः सांपरायः, बालमज्ञं, विशेषतो वित्तरागेण मूढं मोहात्प्रमादं कुर्वन्तं प्रति न भाति । स च बालोऽयं स्त्रीवित्तादिर्लोकोऽस्ति न परलोकोऽस्तीति मानी । स मे मम यमस्य वशमापद्यते इत्यर्थः । पापिनां

भामती

गच्छन्ति' इति कौषीतकिनां समाम्नानात्, देहारम्भस्य च चन्द्रलोकगमनमन्तरेणानुपपत्तेः पञ्चम्यामाहुतावित्याहुतिसंख्यानियमात् । तथाहि—द्युसोमवृष्ट्यन्नरेतःपरिणामक्रमेण ता एवापो योषिदग्नौ हुताः पुरुषवचसो भवन्तीत्यविशेषेण श्रुतम् । न चैतन्मनुष्याभिप्रायं, कपूयचरणाः श्वयोनिमित्यमनुष्यस्यापि श्रवणात् । गमनागमनाय च देवयानपितृयाणयोरेव मार्ग-

न्यायनिर्णयः

वैराग्ये दृढीकृते पूर्ववदेव पादादिसंगतयः । पूर्वपक्षे शुभाशुभकारिणामविशेषेण चन्द्रगतेस्तत्र शुभकरणमकिंचित्करमिति फलति, सिद्धान्ते त्वशुभकारिणां गत्यन्तरभोग्याच्चन्द्रगतौ प्रयोजकमिष्टाद्येवेति मत्वा पूर्वपक्षसूत्रं योजयति—तत्रेति । तेषामिष्टादिकं कर्म चन्द्रलोकप्रापकमस्तीत्यतो नियमनिषेधो न युक्तिमानिति शङ्कते—कस्मादिति । श्रुत्या परिहरति—यत इति । तामेवोदाहरति—तथाहीति । श्रुतेश्चन्द्रलोकगमनमुपपाद्य चकारसूचितयुक्तितोऽपि तदुपपादयति—देहेति । देवयानपितृयाणातिरेकेण गमनागमनमार्गाश्रवणादनयोः पथोर्न कतरेणचनेत्यारभ्य जायस्व म्रियस्वेत्येतत्तृतीयं स्थानमिति स्थानमात्रस्यश्रुत्या पथित्वेनाप्रतीतेश्चन्द्रमण्डलं प्राप्यावतीर्णानामपि तद्भोगात्तु केषांचिदेव गतिरिति मत्वोपसंहरति—तस्मादिति । सर्वेषां तुल्यगतित्वे तत्प्राप्तिहेत्वनुष्ठानवैयर्थ्यमिति शङ्कते—इष्टादीति । तत्र भोगाभावेऽपि मार्गान्तरशून्यतया ग्रामं गच्छन्वृक्षमूलान्युपसर्पतीतिवदुपपन्ना गतिरित्याह—नेतरेषामिति ॥ १२ ॥ सिद्धान्तमुपक्रमते—संयमने त्विति । सूत्रं व्याचष्टे—तुशब्द इति । पक्षव्यावृत्तिमेव व्यनक्ति—नैतदिति । का पुनरत्रानुपपत्तिः । तत्र तेषां तद्गमनमफलं सफलं चेति विकल्प्याद्यं प्रत्याह—भोगायेति । द्वितीयेऽपि गमनस्य प्रत्यवरोहो वा भोगो वा फलं, नाद्य इत्याह—नापीति । पक्षद्वयनिरासं दृष्टान्तेन स्पष्टयति—यथेति । कल्पान्तरं निरस्यति—भोगश्चेति । तुशब्दार्थमुपसंहरति—तस्मादिति । कथं तर्हि तेषामारोहावरोहावित्याशङ्क्य संयमने त्वनुभूयेत्यादि विभजते—ते त्विति । तत्र प्रश्नपूर्वकं हेतुमाह—कुत इति । हेतुं व्याचष्टे—तथाहीति । प्रयतां प्रेत्य गच्छतां संपरायः परलोकः । सम्यगवश्यंभावेन परा परस्ताद्देहपातादीयते गम्यत इति व्युत्पत्तेः । तत्प्राप्त्यर्थः साधनविशेषः सांपरायः । स बालमविवेकिनं विशेषतो वित्तनिमित्तेन मोहेन मूढं छन्नदृष्टिमत एव प्रमाद्यन्तं प्रमादं कुर्वन्तं विषयप्रवणं प्रति न भाति । स न केवलमज्ञ एव किंतु विपरीतदर्शी च यस्मादयमेव लोकोऽन्नपानादिरस्ति न पर इति मानी मननशीलस्तस्मात्तदनुरूपमाचरन्पुनःपुनर्जननमरणप्राप्त्या

नास्ति पर इति मानी पुनःपुनर्वशमापद्यते मे' (कठ० २।६) इति । 'वैवस्वतं संगमनं जनानाम्' इत्येवंजातीयकं च बह्वेव यमवश्यताप्राप्तिलिङ्गं भवति ॥ १३ ॥

स्मरन्ति च ॥ १४ ॥

अपिच मनुव्यासप्रभृतयः शिष्टाः संयमने पुरे यमायत्तं कपूयकर्मविपाकं स्मरन्ति नाचिकेतोपाख्यानादिषु ॥ १४ ॥

अपि च सप्त ॥ १५ ॥

अपिच सप्त नरका रौरवप्रमुखा दुष्कृतफलोपभोगभूमित्वेन स्मर्यन्ते पौराणिकैः ।ताननिष्टादिकारिणः प्राप्नुवन्ति । कुतस्ते चन्द्रं प्राप्नुयुरित्यभिप्रायः ॥ १५ ॥ ननु विरुद्धमिदं यमायत्ता यातनाः पापकर्माणोऽनुभवन्तीति । यावता तेषु रौरवादिष्वन्ये चित्रगुप्तादयो नानाधिष्ठातारः स्मर्यन्त इति । नेत्याह—

तत्रापि च तद्व्यापारादविरोधः ॥ १६ ॥

तेष्वपि सप्तसु नरकेषु तस्यैव यमस्याधिष्ठातृत्वव्यापाराभ्युपगमादविरोधः । यमप्रयुक्ता एव हि ते चित्रगुप्तादयोऽधिष्ठातारः स्मर्यन्ते ॥ १६ ॥

विद्याकर्मणोरिति तु प्रकृतत्वात् ॥ १७ ॥

पञ्चाग्निविद्यायाम् 'वेत्थ यथासौ लोको न संपूर्यते' (छा० ५।३।३) इत्यस्य प्रश्नस्य प्रतिवचनावसरे श्रूयते—'अथैतयोः पथोर्न कतरेणचन तानीमानि क्षुद्राण्यसकृदावर्तीनि भूतानि भवन्ति । जायस्व म्रियस्वेत्येतत्तृतीयं स्थानं तेनासौ लोको न संपूर्यते' (छा० ५।१०।८) इति । तत्रैतयोः पथोरिति विद्याकर्मणोरित्येतत् । कस्मात् । प्रकृतत्वात् । विद्याकर्मणी हि देवयानपितृयाणयोः पथोः प्रतिपत्तौ प्रकृते । 'तद्य इत्थं विदुः' इति विद्या तया प्रतिपत्तव्यो देवयानः

भाष्यरत्नप्रभा

यमवश्यतावादिविशेषश्रुतिस्मृतिबलात् 'ये वै के च' इत्यविशेषश्रुतिरिष्टादिकारिविषयत्वेन व्याख्येयेति भावः ॥ १३ ॥ सूत्रत्रयस्य भाष्यं सुबोधम् ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ यदुक्तं मार्गान्तराभावात् पापिनामपि चन्द्रगतिरिति । तन्न । तृतीयमार्गश्रुतेरित्याह—**विद्याकर्मणोरिति** । मार्गद्वितयोक्त्यनन्तरं तृतीयमार्गोक्तिप्रारम्भार्थः श्रुतावथशब्दः । एतयोर्विद्याकर्मणोः पथिद्वयसाधनयोरन्यतरेणापि साधनेन ये नरा न युक्तास्ते जन्ममरणावृत्तिरूपतृतीयमार्गस्थानि भूतानि भवन्ति, क्रियावृत्तौ लोट्, तेन पापिनां चन्द्रगत्यभावाच्चन्द्रलोको न संपूर्यत इति श्रुत्यर्थः । **प्रतिपत्ताविति** । प्राप्तिसाधने इत्यर्थः । अपिच पापिनां चन्द्रगतावसौ लोकः संपूर्येत 'अतश्च न संपूर्यते' इत्येतत्प्रतिवचनं

भामती

योराम्नानात्, पथ्यन्तरस्याश्रुतेः, 'जायस्व म्रियस्वेति तृतीयं स्थानम्' इति च स्थानत्वमात्रेणावगमात्पथित्वेनाप्रतीतेश्चन्द्रलोकादवतीर्णानामपि च तत्स्थानत्वसंभवादसंपूरणेन प्रतिवचनोपपत्तेः, अनन्यमार्गतया च तद्भोगविरहिणामपि प्राप्तं गच्छन्

न्यायनिर्णयः

मे वशमापद्यत इति मृत्योर्नचिकेतसं प्रति वचनम् । श्रुत्यन्तरमाह—**वैवस्वतमिति** । जनानां परलोकगतानां संगमनं संगम्यं वैवस्वतं यमं राजानं हविषा दुवस्यत प्रीणयतेत्यर्थः । 'ये वै के चास्मा'दित्यादिश्रुत्या सर्वेषां चन्द्रगतिः सिद्धेत्युक्तमित्याशङ्क्य विरोधयनेकलिङ्गदृष्टया तदन्यथा नेयमित्याह—**बह्वेवेति** । 'ये वै के च' 'वैवस्वतं संगमनम्' इत्यनयोर्वाक्ययोः सामान्येन चन्द्रलोकयमलोकगतिवादिनोर्विद्याकर्मविशेषितमार्गद्वयभ्रष्टानामनिष्टादिकारिणां तृतीयस्थानगतिवादिवाक्येनेष्टादिकारिणां चन्द्रगतिवाक्येन च विशेषार्थेन विषयविशेषनियतिरिति भावः ॥ १३ ॥ इतश्चेष्टादिकारिविषये ये वै के चेत्यादिवाक्यस्य संकोच इत्याह—**स्मरन्ति चेति** । तद्व्याकरोति—**अपिचेत्यादिना** ॥ १४ ॥ इतश्चानिष्टादिकारिणां न चन्द्रगतिरित्याह—**अपीति** । तद्व्याख्याति—**अपिचेत्यादिना** ॥ १५ ॥ अनिष्टादिकारिणां चन्द्रमण्डले भोगाभावाद्यमवश्यतायाश्च श्रुतिस्मृतिसिद्धत्वान्न चन्द्रगतिरित्युक्तमिदानीं तेषां यमवश्यतामाक्षिपति—**नन्विति** । विरुद्धत्वे हेतुमाह—**यावतेति** । सूत्रेण परिहरति—**नेत्याहेति** । तद्विभजते—**तेष्वपीति** । एकत्रोभयोरधिष्ठातृत्वायोगमाशङ्क्याह—**यमेति** ॥ १६ ॥ मार्गद्वयभ्रष्टानां तृतीयस्थानोक्तेरपि नानिष्टादिकारिणां चन्द्रगतिरित्याह—**विद्येति** । हेत्वन्तरमेव प्रकटयन्भूमिकोक्तिपूर्वकं श्रुतिमुदाहरति—**पञ्चेति** । तद्विधेति प्रकरणमुक्तम् । श्रौती प्लुतिर्विचारणार्था । तृतीयस्थानोक्त्यारम्भार्थोऽथशब्दः । तत्प्रतिपत्तिफलमाह—**तेनेति** । श्रुत्यर्थं सूत्रयोजनया विशदयति—**तत्रेति** । उक्ता श्रुतिः सप्तम्यर्थः । पथिशब्दस्यार्थान्तरे रूढेर्विद्याकर्मार्थत्वे न मानमिति शङ्कते—**कस्मादिति** । तत्र प्रकरणं प्रमाणयति—**प्रकृतत्वादिति** । तदेव विवृणोति—**विद्येति** । प्रतिपत्तौ प्रतिपत्तिसाधने । तत्र देवयानस्य पथो विद्याद्वारा प्रकृतत्वं प्रकटयति—**तद्य इति** । कर्मद्वारा पितृयाणस्यापि

॥ पुराण खण्डः ॥

वाराहपुराण में भगवान् चित्रगुप्त

औद्दालक नाम के एक ऋषि थे। उनके पुत्र का नाम नचिकेता था, जो महातेजस्वी, वेद-वेदांगों में पारंगत एवं परम् योगी था। एक बार क्रोधित होकर औद्दालक ऋषि ने अपने पुत्र नचिकेता को यम के पास जाने का शाप दे दिया। नचिकेता ने अपने पिता के शाप को सत्य करते हुये यम को प्राप्त किया। यमलोक पहुँचकर नचिकेता ने सम्पूर्ण यमलोक को भगवान् चित्रगुप्त की कृपा से प्रत्यक्ष देखा तथा पुनः मृत्युलोक में वापस आकर प्रत्यक्ष देखे गये सत्य प्रकरण को तपस्वी ब्राह्मणों को बताया।

नचिकेता द्वारा प्रत्यक्ष देखा गया वृत्तान्त वाराहपुराण के अध्याय-१९३ से लेकर अध्याय-२०६ तक में वर्णित है। सनातन धर्म के विधान को समझाने के उद्देश्य से इसके कुछ अंश पीछे दिये गये थे। जिसका सम्पूर्ण और क्रमबद्ध वर्णन आगे दिया जा रहा है।

नचिकेता ने ब्राह्मणों को बताया कि यमलोक-लोक का न्यायालय है, देवलोक, मृत्युलोक तथा पाताललोक पर इसी न्यायालय का शासन चलता है। यह न्यायालय परब्रह्म के चार स्वरूप विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र (शंकर) तथा चित्रगुप्त में से एक, लोकशासक महाकाल चित्रगुप्त द्वारा शासित है। हानि-लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश इत्यादि सब कुछ इसी यमलोक से तथा लोकशासक महाकाल चित्रगुप्त द्वारा दिया जाता है।

लोक का विधान भगवान् चित्रगुप्त का ही बनाया हुआ है, जिसे यमराज द्वारा पालन कराया जाता है। शुद्ध ब्राह्मणों को भगवान् चित्रगुप्त ने अभयदान दिया है। भगवान् चित्रगुप्त—ऋषि, ब्राह्मण सहित लोक में विद्यमान् सभी प्राणियों के नियन्ता हैं। **इसका पौराणिक साक्ष्य इस अंश में विद्यमान् है।**

यमलोक द्वारा प्रदत्त जन्म-पुनर्जन्म की सशक्त एवं अनिवार्य भूमिका को नचिकेता ने प्रत्यक्ष देखा था, जन्म-पुनर्जन्म की घटना की सनातन सत्यता को 'विज्ञान' ने भी स्वीकारा है। मरना सबको है, मर कर कोई विष्णुलोक, ब्रह्मलोक तथा शिवलोक जाये या न जाये, मृत्योपरान्त अगले जन्म के निर्माण हेतु यमलोक में सभी को यमलोक के "धर्माधिकारी" एवं लोकशासक महाकालचित्रगुप्त द्वारा अपने कर्मों का फल भोगने जाना ही है।

ये कभी न सोचें कि मरने के बाद ही यमलोक की भूमिका है। **इस लोक में माता-पिता, पुत्र-पुत्री, बन्धु-बान्धवों की अकाल मृत्यु, पत्नी वियोग,** अङ्गहीन होना, **कैंसररोग,** वातरोग, प्रमेहरोग, **मधुमेहरोग, हृदयरोग,** मस्तिष्करोग, जलोदररोग, यौनरोग जैसे साध्य-असाध्य रोग **"कुकर्मों का भोग है,"** जो कि **भगवान् चित्रगुप्त** के आदेश से **यमदूत ही अकालमृत्यु तथा रोगव्याधि बनकर हमें दण्ड देते हैं।**

वहीं सन्यास, ज्ञानपूरक, धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक उत्कृष्ट कार्य भी "लोकशासक महाकालचित्रगुप्त की आज्ञा से यमदूत ही देते हैं।"

कठोपनिषद् में इसका विद्वत्जनों के लिये संक्षिप्त एवं दार्शनिक रूप में वर्णन है। उपनिषद् वेदों के अङ्ग हैं। जिन्हें पढ़ने का अधिकार केवल प्रशिक्षित विद्वत्जनों को ही था, जो कि अत्यन्त दुष्कर था, जबकि पुराण में सर्वजन का अधिकार है। इसीलिये नारायण के अंश वेदव्यास ने इस सत्य को वाराहपुराण में वर्णित किया। जिससे कि समस्त जनमानस को यमपुरी की स्थिति एवं परब्रह्म स्वरूप लोकशासक महाकाल चित्रगुप्त एवं यमराज के शक्तियों एवं स्वरूपों से अवगत कराया जा सके। यमलोक की सत्ता से अवगत हुये बिना

सनातन धर्म के अनुशासन एवं देवों की शक्ति को समझा नहीं जा सकता है।

वाराहपुराण में वर्णित, नचिकेता द्वारा प्रत्यक्ष देखे गये दृष्य को पढ़ने के बाद निश्चित ही आप सनातन सत्य से अवगत होकर अपने जीवन को उत्कृष्ट बना सकेंगे।

संदर्भित श्लोक विशेष—

१—**यमराज की सहायता के लिये—ऋषि, मनु, देवाचार्यबृहस्पति तथा दनुजाचार्यशुक्र जैसे ज्ञानी ऋषि/देवता इत्यादि यमलोक में रहकर यमराज के आदेश के अनुसार कार्य करते हैं**
[अध्याय १९७, श्लोक १६—१९½, एवं श्लोक २८]

२—**धर्मराज की स्तुति** [अध्याय १९८, श्लोक ९—२०]

३—**भगवान् चित्रगुप्त के आदेश से नचिकेता का प्रेत नगरी का दर्शन करना** [अध्याय १९८, श्लोक ३८]

४—**भगवान् चित्रगुप्त के बनाये नियम के अनुसार प्राणी का कीटाणु से लेकर ब्राह्मण कुल तक का जन्म होता है** [अध्याय १९९, श्लोक ६०—६६]

५—यमदूतों पर क्रोधित **भगवान् चित्रगुप्त के क्रोध से, मन्देह नामक राक्षसों की उत्पत्ति** [अध्याय २०१, श्लोक ४—११], भगवान् चित्रगुप्त द्वारा सबके प्राणहन्ता **यमदूतों का वध करने के लिये मन्देह राक्षसों को आदेश देना** [अध्याय २०१, श्लोक १२—१५]

६—भगवान् चित्रगुप्त द्वारा **एक जाति में ७ बार जन्म देने का आदेश देना** [अध्याय २०२, श्लोक ६२]

७—**"लोक का नियम" भगवान् चित्रगुप्त द्वारा बनाया गया है [अध्याय २०२, श्लोक ६७]**

८—**भगवान् चित्रगुप्त**—गले का रोग, मस्तिष्करोग, अन्धा, गूँगा, बहरा, काना बनाने वाले एवं वातरोग, प्रमेहरोग, मधुमेहरोग, श्वाँसरोग एवं हृदयरोग को दे कर मारने वाले हैं [अध्याय २०३, श्लोक १६—२१]

९—**भगवान् चित्रगुप्त-ब्राह्मणों के राजा एवं लोक (देवलोक, मृत्युलोक तथा पाताललोक) शासक हैं** [अध्याय २०४, श्लोक १],

भगवान् चित्रगुप्त के कहने पर यमदूत ही 'शुभफल' और 'मृत्यु' देते हैं [श्लोक १५],

भगवान् चित्रगुप्त—ब्राह्मणों के अभयदाता, ऋषियों, स्त्रियों एवं महाबलियों के दण्डदाता हैं [श्लोक २२-२३],

भगवान् चित्रगुप्त-**ब्रह्मा, रुद्र (शंकर) तथा इन्द्र के समान आदेश देने वाले देवता हैं**
[श्लोक २५-२६]

१०—**भगवान् चित्रगुप्त—ऋषिकुल में जन्म देते हैं** [अध्याय २०५, श्लोक २५],

भगवान् चित्रगुप्त—ब्रह्मलोक भेजने वाले हैं [अध्याय २०५, श्लोक ३०],

११—**भगवान् चित्रगुप्त—काल सहित मृत्यु हैं** [अध्याय २०६, श्लोक ३],

भगवान् चित्रगुप्त—विष्णुलोक भेजने वाले हैं [अध्याय २०५, श्लोक ३०]

मूल संस्कृत एवं हिन्दी अनुवाद के साथ वाराहपुराण का **नचिकेतः प्रयाणवर्णनम्** इस प्रकार है—

अध्याय-१९३
[अथ नचिकेतः प्रयाणवर्णनम्]

लोमहर्षण उवाच–

व्यासशिष्यं महाप्राज्ञं वेदवेदाङ्गपारगम्। द्वारदेशे समास्तीनं कृतपूर्वाह्णिकक्रियम्॥ १॥
अश्वमेधे तथा वृत्ते राजा वै जनमेजयः। ब्रह्मवध्याभिभूतस्य दीक्षां द्वादशवार्षिकीम्॥ २॥
प्रायश्चित्तं चरित्वैवमागतो गजसाह्वयम्। उपगम्य महात्मानं जाह्नवीतीरसंश्रयम्॥ ३॥
ऋषिं परमसम्पन्नं वैशम्पायनमञ्जसा। कर्मणा प्रेरितस्तेन चिन्ताव्याकुललोचनः॥ ४॥
कुरूणां पश्चिमो राजा पश्चात्तापेन पीडितः। व्यासशिष्यमुपागम्य प्रश्नमेनमपृच्छत॥ ५॥

लोमहर्षण ऋषि बोले—व्यास के शिष्य बुद्धिमान वेद एवं उपनिषदों के ज्ञाता प्रातः क्रिया को सम्पादित करके दरवाजे पर बैठे थे। राजा जनमेजय ने जब अश्वमेघ यज्ञ करा लिया तो ब्रह्मवध से उत्पन्न पाप का प्रायश्चित करने हेतु बारह वर्ष की दीक्षा लेकर हस्तिनापुर चले आये। गंगा के किनारे पहुँच कर परम ज्ञान सम्पन्न वैशम्पायन ऋषि को देखे। कर्म से प्रेरित चिन्ता से व्यग्र कुरूवों के अन्तिम राजा जो पश्चात्ताप से पीड़ित थे व्यास के शिष्य को पाकर एक प्रश्न पूछे— ॥ १—५ ॥

जनमेजय उवाच–

भगवञ्जायते तीव्रं चिन्तयानस्य सुव्रत। कर्मपाकफलं यस्मिन्मानुषैरूपभुज्यते॥ ६॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कीदृशं तु यमालयम्। किंप्रमाणं च किंरूपं कथं गत्वा स पश्यति॥ ७॥
न गच्छेयं कथं विप्र प्रेतराज्ञो निवेशनम्। धर्मराजस्य धीरस्य सर्वलोकानुशासिनः॥ ८॥

जनमेजय बोले—हे भगवन् अति चिन्ता व्याप्त है, क्योंकि मनुष्य कर्म के द्वारा उत्पन्न फल को यहाँ भोगता है। यम का घर कैसा है, यह मैं सुनना चाहता हूँ, आप बतायें—यमपुरी कितना विशाल है, उसका स्वरूप कैसा है, क्यों वहाँ जाकर कोई नहीं देखा जा सकता है। हे विप्र, सभी संसार पर शासन करने वाले धर्मराज की नगरी में प्राणी क्यों नहीं सशरीर जाता है? ॥ ६—८ ॥

सूत उवाच–

एवं पृष्टो महातेजास्तेन राज्ञा द्विजोत्तमः। उवाच मधुरं वाक्यं राजानं जनमेजयम्॥ ९॥

सूत बोले—इस प्रकार महातेजस्वी राजा द्वारा पूछे जाने पर विप्र ने सुन्दर वाणी में राजा जनमेजय को बताया ॥ ९ ॥

वैशम्पायन उवाच–

शृणु राजन्पुरावृत्तां कथां परमशोभनाम्। धर्मवृद्धिकरीं नित्यां यशस्यां कीर्तिवर्द्धिनीम्॥ १०॥
पावनीं सर्वपापानां प्रवृत्तौ शुभकारिणीम्। इतिहासपुराणानां कथां वै विदुषां प्रियाम्॥ ११॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन्! मैं एक अत्यन्त शोभनीय प्राचीन कथा सुना रहा हूँ, जो नित्य धर्म एवं यश को बढ़ाने वाली है। सभी पापों को नष्ट करने वाली तथा शुभ को देने वाली है। इतिहास एवं पुराणों में यह कथा विद्वानों को प्रिय लगने वाली है॥ १०-११॥

कश्चिदासीत्पुरा राजनृषिः परमधार्मिकः। उद्दालक इति ख्यातः सर्ववेदाङ्गतत्त्ववित्॥ १२॥
तस्य पुत्रो महातेजा योगमास्थाय बुद्धिमान्। नचिकेत इति ख्यातः सर्ववेदाङ्गतत्त्ववित्॥ १३॥
तेनं रुष्टेन शप्तोऽभूत्पुत्रः परमधार्मिकः। गच्छ शीघ्रं यमं पश्य मम क्रोधेन दुर्मते॥ १४॥

तथेत्युक्त्वा महातेजाः पुत्रः परमधार्मिकः। चिन्तयित्वा मुहूर्त्तं तु योगमास्थाय बुद्धिमान्॥ १५॥
क्षणेनान्तर्हितो जातः पितरं प्रत्युवाच ह। विनयात्पृष्ठतो वाक्यं भावेन च समन्वितम्॥ १६॥
मा भूद्वाक्यं च ते मिथ्या धार्मिकस्य कदाचन। गमिष्यामि पुरं रम्यं धर्मराजस्य धीमतः॥ १७॥
इह चैव पुनस्तावदागमिष्ये न संशयः॥ १८॥

परमधार्मिक सभी शास्त्रों के ज्ञाता उद्दालक नाम के एक ऋषि थे। उनके पुत्र का नाम नचिकेता था, नचिकेता महातेजस्वी, वेद-वेदांगों में पारंगत एवं परमयोगी थे। अपने परमधार्मिक पुत्र से रूष्ट होकर उद्दालक ऋषि ने उसे शाप दे दिया कि मेरे क्रोध के कारण, हे दुर्बुद्धे, तुम शीघ्र यमराज के नगरी में चले जाओ। क्षण भर के लिये वह पुत्र इस बात को सुनकर चिन्तित हुआ। शाप देने के क्षण भर बाद उद्दालक ऋषि से वह पुत्र बोला—भक्ति भाव से युक्त एवं विनय पूर्वक कहता हूँ कि आपका परमधार्मिक वचन मिथ्या मत होवे। मैं यमराज के भवन को जाऊँगा, और पुनः वहाँ से यहाँ आऊँगा, इसमें संशय नहीं है॥ १२—१८॥

पितोवाच—

एकस्त्वमसि वत्सश्च नान्यो बन्धुर्विधीयते। अधर्मे चानृतं चास्तु अकीर्त्तिर्वापि पुत्रक॥ १९॥
मिथ्याभिशंसिनं तात यथेष्टं तारयिष्यति। रोषेण हि मृषावादी निर्दयः कुलपांसनः॥ २०॥
अप्रवृत्तस्त्वसम्भाष्यो योऽहं मिथ्या प्रयुक्तवान्। त्वां वै धर्मसमाचारमभिधानेन शप्तवान्॥ २१॥
अहं पुत्र न सद्वादी न क्षमे धर्मदूषितम्। मम त्वं हि महाभाग नित्यं चित्तानुपालकः॥ २२॥
धर्मज्ञश्च यशस्वी च नित्यं क्षान्तो जितेन्द्रियः। शुश्रूषुरनहंवादी शक्तस्तारयितुं मम॥ २३॥
याचितस्त्वं मया पुत्र गन्तुं वै तत्र नार्हसि॥ २४॥

पिता बोले—हे पुत्र, तुम मेरे लिए एक ही हो, अन्य मेरा हित करने वाला कोई नहीं है। हे पुत्र, मेरा यह अधर्म झूठा और अपयश हो। झूठा अभिमान करने वाले मुझको तुम ही तारोगे। रोष के कारण निर्दयता पूर्वक मैंने यह कहा है। जो मेरा शाप है, वह झूठा हो जाये, तुम जैसे सदाचारी को मैंने शाप दे दिया। हे पुत्र, धर्म को दोष देखने वाला असत्यवादी मुझे क्षमा न करो। तुम निरन्तर मेरे हित कार्य में लगे रहते हो। तुम धर्मज्ञ हो, यशस्वी हो, जितेन्द्रिय हो, क्षमा करने वाले हो, सेवावृत्ति हो, तुम अहंकार से परे हो, तुम ही मेरा उद्धार कर सकते हो। हे पुत्र, तुमसे मैं याचना करता हूँ, तुम वहाँ नहीं जा सकते हो॥ १९—२४॥

यदि वैवस्वतो राजा तत्र प्राप्तं यदृच्छया। रोषेण त्वां महातेजा विसृजेन्न कदाचन॥ २५॥
विनश्येयमहं पश्य कुलसेतुविनाशनः। धिक्कृतः सर्वलोकेन पापकर्त्ता नराधमः॥ २६॥
पुतेति नरकस्याख्या दुःखेन नरकं विदुः। पुत्रित्राणं भवेत् पुत्रमिहेष्यन्ति परत्र च॥ २७॥
हुतं दत्तं तपस्तप्तं पितरश्चापि पोषिताः। अपुत्रस्य हि तत्सर्वे मोघं भवति निश्चयः॥ २८॥

यदि धर्मराज तुम्हें प्राप्त हो जायें तो क्रोध से तुमको वहाँ से वह लौटा देंगे। मैं अपने कुल के सेतु का नाश करने वाला हूँ। मुझे धिक्कार है, मैं मनुष्यों में नीच हूँ, पाप करने वाला हूँ। जहाँ दुःख दर्द हो उसे नरक कहते हैं, उसका पुत नामक नरक है, पुत्र ही उस पुत नरक से यहाँ और परलोक में रक्षा करता है, इसी से उसका नाम पुत है। **पुत्रहीन का किया गया हवन, दान, पितरों का तर्पण सब कुछ निष्फल हो जाता है**॥ २५—२८॥

शुश्रूषावान्भवेच्छूद्रो वैश्यो वा कृषिजीवनः। तस्यगोप्ता तु राजन्यो ब्राह्मणो वा स्वकर्मकृत्॥ २९॥
तपो वा विपुलं तप्त्वा दत्त्वा दानमनुत्तमम्। अपुत्रो नाप्नुयात्स्वर्गं यथा तात मया श्रुतम्॥ ३०॥

सेवा कार्य करने के कारण शूद्र एवं खेती का कार्य से वैश्य होता है, जो इनकी रक्षा करता है उनको राजा

कहते हैं और अपना उत्तम कर्म के कारण ब्राह्मण कहा जाता है। हे पुत्र, मैंने सुना है कि अनेक प्रकार की तपस्या करने तथा उत्तम दान देने से भी पुत्र हीन को स्वर्ग नहीं मिलता है॥ २९-३०॥

पुत्रेण लभते जन्म पौत्रेण तु पितामहः। पुत्रस्य च प्रपौत्रेण मोदते प्रपितामहः॥ ३१॥
न हास्यामीति वत्स त्वां मम वंशविवर्द्धनम्। याच्यमानः प्रयत्नेन तत्र गन्तुं न चार्हसि॥ ३२॥

पुत्र के नाम से पिता, पौत्र से पितामह (बाबा) और प्रपौत्र से परदादा प्रसन्न होते हैं। हे पुत्र, मेरे वंश की वृद्धि करने वाला कोई नहीं है, मैं तुमसे याचना करता हूँ, तुम वहाँ (यमपुरी) नहीं जा सकते हो॥ ३१-३२॥

वैशम्पायन उवाच-

एवं विलपमानं तं पितरं प्रत्युवाच ह। हृष्टपुष्टवपुर्भूत्वा पुत्र परमधार्मिकः॥ ३३॥

वैशम्पायन जी बोले—इस प्रकार उस विलाप करते पिता के बोलने पर, स्वस्थ शरीर एवं प्रसन्न चित्त मन वाले परमधार्मिक पुत्र नचिकेता बोले!॥ ३३॥

पुत्र उवाच-

न विषादस्त्वया कार्यो द्रक्ष्यसे मामिहागतम्। दृष्ट्वा च तमहं देवं सर्वलोकनमस्कृतम्॥ ३४॥
आगच्छामि पुनश्चात्र न भयं मेऽस्ति मृत्युतः। पूजयिष्यति मां तात राजा त्वदनुकंपया॥ ३५॥
सत्ये तिष्ठ महाभाग सत्यं च परिपालय। सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव॥ ३६॥

पुत्र बोला—हे पिता, आप दुःखी मन न होंये, आप मुझे पुनः यहाँ पर देखेंगे। सभी लोगों के लिए प्रणम्य उस यमपुरी को देखकर मैं आ जाऊँगा। मुझे मृत्यु से भय नहीं है। वह राजा (धर्मराज) आप की कृपा से मेरी पूजा करेंगे। हे पिता, सत्य की सेवा करनी चाहिए, सत्य की रक्षा करनी चाहिए, जिस प्रकार समुद्र को पार करने के लिए नाव की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार स्वर्ग प्राप्त करने हेतु सत्य रूपी सोपान (सीढ़ी) की आवश्यकता होती है॥ ३१—३६॥

सूर्यस्तपति सत्येन वातः सत्येन वाति च। अग्निर्दहति सत्येन सत्येन पृथिवी स्थिता॥ ३७॥
उदधिर्लङ्घयेन्नैव मर्यादां सत्यपालितः। मन्त्राः प्रयुक्ता सत्येन सर्वलोकहितायते॥ ३८॥
सत्येन यज्ञा वर्त्तन्ते मन्त्रपूताः सुपूजिताः। सत्येन वेदा गायन्ति सत्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः॥ ३९॥
सत्यं गाति तथा साम सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्। सत्यं स्वर्गश्च धर्मश्च सत्यादन्यन्न विद्यते॥ ४०॥

सत्य के कारण सूर्य तेज देता है, सत्य से ही वायु हवा देती है। सत्य के कारण अग्नि जलती है और सत्य पर पृथ्वी स्थित है। मर्यादा के कारण समुद्र को पार नहीं किया जाता। सभी लोगों के हित के लिए सत्य के कारण मन्त्र का प्रयोग किया जाता है। पूजित एवं पवित्र मन्त्रों के द्वारा सत्य से यज्ञ किया जाता है। वेद भी सत्य के लिए गान करता है, संसार सत्य के कारण प्रतिष्ठित है। सामवेद सत्य का गान करता है सब कुछ सत्य में प्रतिष्ठित है। स्वर्ग और धर्म सत्य पर आधारित है, सत्य के अलावा कुछ भी नहीं है॥ ३७—४०॥

सत्येन सर्वे लभते यथा तात मया श्रुतम्। न हि सत्यमतिक्रम्य विद्यते किंचिदुत्तमम्॥ ४१॥
देवदेवेन रुद्रेण वेदगर्भः पुरा किल। सत्यस्थितेन देवानां परित्यक्तो महात्मना॥ ४२॥
दीक्षां धारयते ब्रह्मा स तेनैव सुयन्त्रितः। और्वेणाग्निस्तथा क्षिप्तः सत्येन वडवामुखे॥ ४३॥
संवर्त्तेन पुरा तात सर्वे लोकाः सदैवताः। देवानामनुकंपार्थे धृता वीर्यता तदा॥ ४४॥
पाताले पालयन् सत्यं बद्धो वैरोचनो वसन्। वर्द्धमानो महाशृङ्गैः शतशृङ्गो महागिरिः॥ ४५॥
स्थितः सत्ये महाविन्ध्यो वर्द्धमानो न वर्द्धते। सर्वे चराचरमिदं सत्येन श्रीयते जगत्॥ ४६॥

गृहधर्मांश्च ये दृष्टवा वानप्रस्थाश्च शोभिताः। यतीनां च गतिः शुद्धा ये चान्ये व्रतसंस्थिताः ॥ ४७॥

हे तात्, मैंने सुना है कि सत्य के द्वारा सब कुछ प्राप्त किया जाता है। सत्य का अतिक्रमण करने पर कुछ भी उत्तम नहीं होता। वेदगर्भ ब्रह्मा ने प्राचीन काल में देवों के देव महादेव रुद्र से कहा था कि महात्मा लोग सत्य में स्थित होने पर (परब्रह्म को प्राप्त करके) देवताओं का त्याग करते हैं। ब्रह्मा सत्य की दीक्षा धारण करके ही (सृष्टि को) सुव्यवस्थित कर पाये। सत्य के द्वारा ही और्वेणाग्नि वडवा के मुख में फेंकी गई। प्राचीन काल में देवताओं और लोकों पर कृपा करने के लिये ही संवर्त नामक प्रलय द्वारा पराक्रम धारण किया गया। सत्य से बँधकर ही विरोचन के पुत्र 'बलि' पाताल में निवास करते हुये उसका पालन करते हैं। सैकड़ों चोटियों वाले महान पर्वत (हिमालय) का महान शिखर निरन्तर बढ़ रहा है। सत्य में स्थित होने के कारण ही विन्ध्याचल पर्वत बढ़ने की योग्यता रखते हुये भी नहीं बढ़ता है। यह सभी चर और अचर जगत् सत्य से ही श्रीयुक्त (वैभवशाली) होता है। जो गृहस्थ धर्म को देखते हैं, जो वानप्रस्थ को सुशोभित करते हैं, जो सन्यासी की गति वाले हैं या किसी अन्य व्रत में स्थित हैं, सबकी सत्य से ही शुद्धि होती है।॥ ४१—४७॥

श्लोक संख्या ४२ में ब्रह्मा ने कहा है कि महात्मा परब्रह्म को पाकर देवताओं का त्याग करते हैं। इसको जानें! **परब्रह्म के चार रूप विष्णु, ब्रह्मा, शिव तथा चित्रगुप्त हैं,** इनकी कृपा मिलने के बाद सूर्य, चन्द्र, अग्नि, इन्द्र, बृहस्पति, शुक्र इत्यादि अल्प शक्ति के किसी भी देवता के कृपा की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि परब्रह्म के ये चारो स्वरूप सूर्य इत्यादि देवों से १० गुने अधिक शक्ति के हैं।

पुराणों में अनेक उदाहरण विद्यमान हैं जिसमें सूर्य इत्यादि देवों से प्राप्त शस्त्रों को शिव, ब्रह्मा तथा विष्णु के दिये शस्त्र नष्ट कर देते हैं। ये इन परब्रह्म की शक्ति का प्रमाण है।

अश्वमेधसहस्त्रं च सत्यं च तुलया धृतम्। अश्वमेधसहस्त्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥ ४८॥
सत्येन पाल्यते धर्मो धर्मो रक्षति रक्षितः। तस्मात् सत्यं कुरूष्वाद्य रक्ष आत्मानमात्मना ॥ ४९॥
एवमुक्त्वा हृष्टपुष्टः स्वेन देहेन सुव्रत। तपसा प्राप्तयोगस्तु जितात्मा कृतसंयमः ॥ ५०॥
ऋषिपुत्रो महातेजा सत्यवागनसूयकः। प्राप्तश्च परमं स्थानं यत्र राज्ञो यमस्य तु ॥ ५१॥

हजारों अश्वमेध यज्ञ सत्य के बराबर नहीं हैं क्योंकि उस यज्ञ में भी सत्य की विशेषता होती है। धर्म भी सत्य का पालन करता है जब हम धर्म की रक्षा करते हैं तो धर्म हमारी रक्षा करता है, इसलिये अपने आपको उत्सर्ग करके भी सत्य की रक्षा करनी चाहिए। इस प्रकार परमपुष्ट एवं सन्तुष्ट, जितेन्द्रिय, संयमी, महातेजस्वी सत्यवान, निन्दा से परे वह ऋषिपुत्र (नचिकेता) यमराज के परम् स्थान अर्थात् यमपुरी को प्राप्त हुए॥ ४८—५१॥

× × ×

अध्याय-१९४

वैशम्पायन उवाच–

गतश्च परमं स्थानं यत्र राजा दुरासदः। अर्चितस्तु यथान्यायं दृष्ट्वैव तु विसर्जितः॥ १ ॥
ततो हृष्टमना राजन्पुत्रं दृष्ट्वा तपोनिधिः। परिष्वज्य च बाहुभ्यां मूर्द्धन्याघ्राय यत्नतः॥ २ ॥
दिवं च पृथिवीं चैव नादयामास हृष्टवत्। स संहृष्टमनाः प्रीतस्तानुवाच तपोधनान्॥ ३ ॥
पश्यन्तु मम पुत्रस्य प्रभावं दिव्यतेजसः। यमस्य भवनं गत्वा पुनः शीघ्रमिहागतः॥ ४ ॥

वैशम्पायन बोले—उस राजा (यमराज) के पुरी में नचिकेता के जाने पर यमराज उनको देखकर उनके जीवन के आगे की स्थिति को देख कर पुनः मृत्युलोक पर भेज दिये। हे राजन! अपने पुत्र नचिकेता को आया हुआ देखकर वह महान तपस्वी अत्यन्त प्रसन्न हुए। वह तपस्वी अपने पुत्र को अपने गले से लगाकर उनके मस्तक को चूमने लगे उनकी प्रसन्नता से स्वर्ग एवं पृथिवी पर जय शब्द का घोष होने लगा। वह तपस्वी प्रसन्न होकर इस प्रकार बोले—आप लोग मेरे दिव्य तेज वाले पुत्र की तपस्या के प्रभाव को देखो, वह सशरीर यमपुरी में जाकर पुनः शीघ्र आ गया॥ १—४॥

पितृस्नेहानुभावेन गुरुशुश्रूषयापि च। दैवेन हेतुना चायं जीवन्दृष्टो मया सुतः॥ ५ ॥
लोके मत्सदृशो नास्ति पुमान्भाग्यसमन्वितः। एष मृत्युमुखं गत्वा मम पुत्र इहागतः॥ ६ ॥
कच्चित्त्वं न हतो वत्स नैव बद्धो यमालये। कच्चित्ते स शिवः पन्था गच्छतस्तव पुत्रक॥ ७ ॥
कच्चित्ते व्याधयो घोरा नान्वगच्छन्यमालये। किमपूर्वं त्वया दृष्टं कच्चित्तुष्टो महातपाः॥ ८ ॥
कच्चिद्राजा त्वया दृष्टः प्रेतानामधिपो बली। परुषेण न कच्चित्त्वां यमः पश्यति चक्षुषा॥ ९ ॥
कच्चिन्न तुष्टो भगवांस्त्वां दृष्ट्वा स्वयमागतम्। कच्चिच्छीघ्रं विसृष्टोऽसि धर्मराजेन पुत्रक॥ १० ॥

पिता के स्नेह से, गुरु की कृपा से, देवताओं की कृपा से, मेरे पुत्र ने उस जीवन को देखा। इस संसार में मेरे समान कोई भी दूसरा भाग्यशाली नहीं है, क्योंकि मेरा पुत्र मृत्यु के मुख में जाकर यहाँ आ गया। क्या यमराज के पुरी में तुमको, न कोई बाधा, न कोई मारा, तुम्हारा मार्ग प्रशस्त कैसे हुआ? उस यमपुरी में क्या व्याधियाँ तुम्हें नहीं पकड़ पायीं? क्या तुमको वहाँ प्रेतों के स्वामी यमराज ने अपने विशाल एवं क्रूर आँखों से नहीं देखा? हे पुत्र, धर्मराज क्या तुमको देखकर स्वयं तुम्हारे पास नहीं आये अथवा स्वयं उन्होंने तुम्हें नहीं छोड़ा॥ ५—१०॥

कच्चिद्दौवारिकास्तत्र न रौद्रास्त्वां यमालये। कच्चिद्राज्ञा विसृष्टं तु ना बाधन्तेतरे जना॥ ११ ॥
कच्चित्पन्थास्त्वया लब्धो निर्गमो वा यमालये। अयं मम सुतः प्राप्तः प्रसन्ना मम देवताः॥ १२ ॥
ऋषयश्च महाभागा द्विजाश्च सुमहाव्रताः। यन्मे वत्स पुनः प्राप्तो यमलोकाद्दुरासदात्॥ १३ ॥

क्या उस यमराज के दरवाजे पर भयंकर द्वारपाल नहीं थे? क्या उस राजा के छोड़ने पर अन्य लोग नहीं देखे। तुम उस भयंकर यमपुरी के मार्गको कैसे पार किये। मेरे ऊपर मेरे देवता प्रसन्न हैं, तभी तो अपने पुत्रको मैंने प्राप्त किया। ऋषि, देवता एवं ब्राह्मणों की कृपा से उस कठिन यमराज के घर से पुनः मैं प्राप्त किया॥ ११—१३॥

एवमाभाषमाणं तु श्रुत्वा सर्वे वनौकसः। त्यक्त्वा व्रतानि सर्वाणि नियमांश्च तथैव च॥ १४ ॥
जपन्तश्चैव जाप्यानि पूजयन्तश्च देवताः। उदूद्ध्वबाहवः केचित्तिष्ठन्तोऽन्ये सुदारुणम्॥ १५ ॥
एकपादने तिष्ठन्तः पश्यन्तोऽन्ये दिवाकरम्। एवमेव परित्यज्य नियमान्पूर्वसंचितान्॥ १६ ॥
वैश्वानरा महाभागास्तपसा संशितव्रताः। आगतास्त्वरितं द्रष्टुं नाचिकेतं सुतं तदा॥ १७ ॥
दिग्वाससश्च ऋषयो दन्तोलूखलिनस्तथा। अश्मकूटाश्च मौनाश्च शीर्णपर्णाबुभोजनाः॥ १८ ॥

धूमदाश्च तथा चान्ये तप्यमानाश्च पावके। परिवार्य तथा दृष्ट्वा तस्य पुत्रं तपोनिधिम्॥ १९॥

इस प्रकार ऋषि अपने पुत्र के विषय में कहते हुए चले। उस जंगल में निवास करने वाले सभी तपस्वी अपनी तपस्या त्यागकर उसे (नचिकेताको) देखने चल पड़े। लोग जयकार कर रहे थे, देवता की पूजा कर रहे थे, कोई ऊपर हाथकर तपस्या कर रहा था, कोई भयंकर आसन लगा कर पूजा कर रहा था, कोई एक पैर पर खड़ा होकर सूर्य को देख रहा था, उन सभी पूर्व में किये गये संकल्प पूर्वक नियमों को छोड़कर वैश्वानर आदि महातपस्वी को नचिकेता को यमपुरी से शीघ्र आया हुआ जानकर देखने चल पड़े। जो ऋषि नग्न तपस्या करते थे, कुछ जो दाँत से ही कूटकर खाते थे, वे जो पत्थर पर कूटकर भोजन करते थे, जो मौन व्रत को धारण किये थे, जो गिरे हुए पत्ते को खाते थे, वे लोग जो धूएँ युक्त स्थान पर तपस्या कर रहे थे, पञ्चाग्नि में तपस्या करते थे, सब कुछ छोड़कर उस नचिकेता को देखने चल पड़े॥ १४—१९॥

उपविष्टास्तथा चान्ये स्थिताश्चान्ये सुयन्त्रिताः। ते सर्वे तं तु पृच्छन्ति ऋषयो वेदपारगाः॥ २०॥
तं नाचिकेतसं दृष्ट्वा यमलोकादिहागतम्। भीतास्तत्र स्थिता हृष्टा केचित्कौतूहलान्विताः॥ २१॥
केचिद्विमनसश्चैव केचित्संशयवादिनः। तमूचुः सहिताः सर्वे ऋषिपुत्रं तपोधनम्॥ २२॥

कुछ बैठे थे कुछ लोग खड़े थे, वेद में पारंगत वे ऋषि उस बालक के बारे में पूछते हैं। नचिकेता यमराज के पास से यहाँ आ गया है, यह जान कर कुछ भयभीत हो रहे हैं। कुछ लोग इस बात पर शंका कर रहे हैं। सभी ऋषि उस बालक से पूछे—॥ २०—२२॥

ऋषय ऊचुः—

भो भो सत्यव्रताचार गुरुशुश्रूषणे रत। नाचिकेतः सुत प्राज्ञ स्वधर्मपरिपालक॥ २३॥
ब्रूहि सत्यं त्वया दृष्टं श्रुतं च सविशेषकम्। ऋषीनां श्रोतुकामानां पितुश्चैव विशेषतः॥ २४॥
अपि गुह्यं च वक्तव्यं पृष्टे सति विशेषतः। सर्वस्यापि भयं तीव्रंयद्द्वारा प्रतिदृश्यते॥ २५॥
मृतं नैव परं तात दृश्यते कालमायया। स्वकर्म भुज्यते तात प्रयत्नेन च मानवैः॥ २६॥
इह चैव कृतं यत्तु तत्परत्रोपभुज्यते। करोति यदि तत्कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम्॥ २७॥

ऋषि बोले—गुरू की सेवा करने वाले सत्य का आचरण में तल्लीन, अपने धर्म का पालक नचिकेता, आपने वहाँ जो सुना है, जो देखा है, उस बात को ये ऋषि गण सुनना चाहते हैं और आपके पिता भी। आप अत्यन्त गोपनीय बात, जो वहाँ हुआ है, वह सब शीघ्र बतायें, जो यमराज के पुरी में आपने देखा। काल की माया से मृत व्यक्ति उसको नहीं बता सकता। मानव अपने कर्म का भोग करता है, जैसा यहाँ करता है, वैसा ही वहाँ भोग करता है, शुभ हो या अशुभ कर्म सबको भोगना पड़ता है॥ २३—२७॥

तथाऽत्र दृश्यते काले कालस्यैव तु मायया। म्रियते च यथा जन्तुर्यथा गर्भे च तिष्ठति॥ २८॥
तस्य पारं न गच्छन्ति बहवः पारचिन्तकाः। तत्र स्थिते जगत्सर्वं लोभमोहतमोवृतम्॥ २९॥
चिन्तयेत न चिन्ताऽत्र मृगयन्ति च यद्धितम्। करोति चित्रगुप्तः किं किं च जल्पत्यसौ पुनः॥ ३०॥
धर्मराजस्य किं रूपं कालो वा कीदृशो मुने। किंरूपा व्याधयश्चैव विपाको वापि कीदृशः॥ ३१॥
किंच कुर्वन्प्रमुच्येत किं वा कर्म समाचरेत्। आस्पदं सर्वलोकस्य तत्कर्म दुरतिक्रमम्॥ ३२॥

बहुत से तत्त्ववेत्ता प्राणी के मृत्यु तथा गर्भ में आने आदि का ज्ञान काल की काया से नहीं जान सकते हैं। क्योंकि सम्पूर्ण संसार भय एवं मोह के अन्धकार में पड़े रहते हैं। चिन्ताकी चिन्ता न करते हुए उसके हित को खोजता है। **वहाँ चित्रगुप्तजी क्या-क्या कह रहे थे**? हे मुनी, यमराज का कैसा स्वरूप है, वहाँ व्याधियों का क्या

रूप है? उसका फल कैसा होता है, किस कर्म का क्या फल देते हैं उनका आचरण कैसा होता है? संसार का कर्म अत्यन्त कठिन है॥ २८—३२॥

क्रोधबन्धनजं क्लेशं कर्षणं छेदनं तथा। येन गच्छन्ति विप्रेन्द्र लोके कर्मविदो जनाः॥ ३३॥
जितात्मानः कथं यान्ति कथं गच्छति पापकृत। यथाश्रुतं यथादृष्टं यथा चैवावधारितम्॥ ३४॥
प्रणयासौहृदात्स्नेहादस्माभिरभिपृच्छितम् । वद सर्वं महाभाग याथातथ्येन विस्तरम्॥ ३५॥

कर्म के अनुसार इस क्रोध के बन्धन में जलकर खींचते एवं काटते हैं। जो लोग अपने कर्म को जानते हैं, वे वहाँ जाते हैं। कैसे संयमी और कैसे पापात्मा उस नगरी को जाते हैं, जैसा आपने वहाँ सुना है, जैसा आपने देखा है, उन सबको-हे भाग्यशाली, विस्तार पूर्वक बतावें॥ ३३—३५॥

वैशम्पायन उवाच-

ऋषिभिस्त्वेवमुक्तस्तु नाचिकेतो महामनाः। यदुवाच महाराज शृणु तज्जनमेजय॥ ३६॥

वैशम्पायनजी बोले—हे जनमेजय जी, नचिकेता जी जैसा बताये, वैसा मैं वर्णन करता हूँ आप सुनें- ॥ ३६॥

× × ×

अध्याय-१९५

नाचिकेत उवाच-

कथ्यमानं मया विप्राःशृण्वन्तु तपसि स्थिताः। नमश्च तस्मै देवाय धर्मराजाय धीमते॥ १॥
संसारं तु यथाशक्ति कथ्यमानं निबोधत। असत्यवादिनो ये च जन्तुस्त्रीबालघातकाः॥ २॥
तथा ब्रह्महणः पापा ये च विश्वासघातकाः। ये ये शठाः कृतघ्नाश्च लोलुपाः पारदारिकाः॥ ३॥
कन्यानां दूषका ये च ये च पापरता नराः। वेदानां दूषकाश्चैव वेदमार्गविहिंसकाः॥ ४॥

नचिकेता बोले—हे तपस्या में अनुरक्त विप्रों, आप सभी सुनें, उस धीमान् देव धर्मराज को नमस्कार है। मैं उस यमराज की पुरी का वर्णन अपने शक्त्यानुसार कहता हूँ। जो झूठ बोलने वाले हैं, स्त्री, बालक और प्राणियों के हिंसक हैं, जो ब्राह्मण की हिंसा करते हैं, जो विश्वास को तोड़ने वाले हैं, जो कृतघ्न हैं, जो लालची हैं, परायी स्त्री में आसक्त हैं, कन्या को बेचने वाले हैं, पाप में लीन रहने वाले हैं, वेद के निन्दक हैं, वेद के द्वारा बताये गये मार्ग पर नहीं चलने वाले हैं।॥ १—४॥

शुद्राणां याजकाश्चैव हाहाभूता द्विजातयः। अयाज्ययाजकाश्चैव ये ये कुष्ठयुता नराः॥ ५॥
सुरापो ब्रह्महा चैव यो द्विजो वीरघातकः। तथा वार्धुषिका ये च जिह्माप्रेक्षाश्च ये नराः॥ ६॥
मातृत्यागी पितृत्यागी यः स्वसाध्वीं परित्यजेत्। गुरुद्वेषी दुराचारो दूताश्चाव्यक्तभाषिणः॥ ७॥
गृहक्षेत्रहरा ये च सेतुबन्धविनाशकाः। अपुत्राश्चाप्यदाराश्च श्रद्धया च विवर्जिताः॥ ८॥
अशौचा निर्दयाः पापा हिंसका व्रतभञ्जकाः। सोमविक्रयिणश्चैव स्त्रीजितः सर्वविक्रयी॥ ९॥
भूम्यामनृतवादी च वेदजीवी च यो द्विजः। नक्षत्री च निमित्ती च चाण्डालाध्यापकस्तथा॥ १०॥
सर्वमैथुनकर्ता च अगम्यागमने रतः। मायिका रतिकाश्चैव तुलाधाराश्च ये नराः॥ ११॥
सर्वपापसुसङ्गाश्चचिन्तका येऽतिवैरिणः। स्वाम्यर्थे न हता ये च ये च युद्धपराङ्मुखाः॥ १२॥
परवित्तापहारी च राजघाती च यो नरः। अशक्तः पापघोषश्च तथा ये ह्याग्निजीविनः॥ १३॥
शुश्रूषया च मुक्ता ये लिङ्गिनः पापकर्मिणः। पात्रकारी चक्रिणश्च नरा ये चाप्यधार्मिकाः॥ १४॥
देवागारांश्च सत्राणि तीर्थविक्रयिणस्तथा। व्रतविद्वेषिणो ये च तथाऽसद्वादिनो नराः॥ १५॥

मिथ्या च नखरोमाणि धारयन्ति च ये नराः। कूटा वक्रस्वभावाश्च कूटशासनकारिणः॥ १६॥
अज्ञानादव्रती यश्च यश्चाश्रमबहिष्कृतः। विप्रकीर्णप्रतिग्राही सूचकस्तीर्थनाशकः॥ १७॥
कलही च प्रतर्क्यश्च निष्ठुरश्च नराधमः। एते चान्ये च बहवो ह्यनिर्दिष्टाः सहस्रशः॥ १८॥
स्त्रियो नराश्च गच्छन्ति यत्र तच्छृणुतामलाः। कुर्वन्तीह यथा सर्वे तत्र गत्वा यमालये॥ १९॥
तानि वै कथयिष्यामि श्रूयतां द्विजसत्तमाः।

शूद्रों का यज्ञ करने वाला, ब्राह्मण का अपमान करने वाला, अयोग्य का यज्ञ करने वाला, कुष्ठ रोगी, शराब का पान करने वाला, ब्रह्म हत्या करने वाला, ब्राह्मणों का घात करने वाला, ठगी कार्य तथा भूल करने वाला, माता पिता का त्याग करने वाला, अपनी पत्नी का त्याग करने वाला, गुरु से वैर करनेवाला, दुराचारी, द्यूत कार्य करने वाला, स्पष्ट न बोलने वाला, किसी का मकान एवं खेती को चुराने वाला, सेतुको तोड़ने वाला, पुत्रहीन, पत्नीरहित, श्रद्धा से विहीन, भयभीत, निर्दयी, पापी, हिंसक, व्रत को तोड़ने वाला, शराब बेचने वाला, स्त्री के वशीभूत, सब कुछ बेचने वाला, असत्य भाषण करने वाला, वेद बेचकर जीविका चलाने वाला ब्राह्मण, ज्योतिषी, अध्यापक होकर चुगलखोर का आचरण करने वाला, सभी से मैथुन करने वाला, अगम्य के साथ गमन करने वाला, मायावी, प्रेमी, व्यापारी, सभी पापों में संलग्न, शत्रु की चिन्ता करने वाला, स्वामी के कार्य के लिए अपने को समर्पित न करने वाला, युद्ध से विमुख होने वाला, दूसरे का धन चुराने वाला, राज्य का नाशक, शक्तिहीन, पापी अग्निके द्वारा जिविका चलाने वाला, सेवा न करने वाला, पाप कर्म में लीन, पात्रकारी, चक्र चलाने वाला, अधार्मिक, देवालय एवं तीर्थ को बेचने वाला, व्रत का द्वेष करने वाला, असत्य बोलने वाला, नख एवं बाल बढ़ाकर सन्यासी का झूठा रूप बनाने वाला, कूट एवं वक्र स्वभाव वाला, छद्म शासन करने वाला, अज्ञान से भी व्रत न करने वाला आश्रम से बहिष्कृत, ब्राह्मण से कर लेने वाला, तीर्थ को नष्ट करने वाला, झगड़ा करने वाला, कुतर्क करने वाला, निष्ठुर, नीच, ऐसे हजारों जीव निम्न कर्म करने वाले उस यमपुरी में जाते हैं उनके बारे में आपलोग सुनें उस यमपुरी में उनके साथ जैसा व्यवहार होता है, उन सभी प्रसङ्गों को मैं कहूँगा— ॥ १—१९१/२ ॥

वैशम्पायन उवाच—

एवं तस्य वचः श्रुत्वा सर्व एव तपोधनाः॥ २०॥
पप्रच्छुर्विस्मयाविष्टा नाचिकेतमृषिं तदा।

वैशम्पायन बोले—इस प्रकार नचिकेता की वाणी को सुनकर सभी तपस्वी आश्चर्यचकित हो गये।

ऋषय ऊचुः—

त्वया सर्वं यथा दृष्टं ब्रूहि तत्र विदां वर॥ २१॥
यथास्वरूपः कालोऽसौ येन सर्वं प्रवर्त्तते। इह कर्माणि यः कृत्वा पुरुषो ह्यल्पचेतनः॥ २२॥
वारयेत्स तदा तं तु ब्रह्मलोके च स प्रभुः। कल्पान्तं पच्यमानोऽपि दह्यमानोऽपि वा पुनः॥ २३॥
न नाशो हि शरीरस्य तस्मिन्देशे तपोधनाः। यस्य यस्य हि यत्कर्म पच्यमानः पुनःपुनः॥ २४॥

ऋषि लोगबोले—हे सत्यवादी, आपने जैसा देखा है, वैसा ही वर्णन कीजिए। उस काल का (यमराज) कैसा स्वरूप है, जो सबको सञ्चालित करते हैं। इस संसार में अल्पज्ञानी जो कार्य करते हैं, उसे वह रोकते हैं। कल्पके अन्त में बार-बार पकाये एवं जलाये जाने पर भी शरीरका नाश नहीं होता उस यमपुरी में, जिसका जो कर्म है उसी अनुसार बार-बार पकाये जाते हैं॥ २०—२४॥

अवश्यं चैव गन्तव्यं तस्य पार्श्वं पुनःपुनः। न तु त्रासाद्विजः शक्तस्तत्र गन्तुं हि कश्चन॥ २५॥

न गच्छन्ति च ये तत्र दानेन नियमेन च। वैतरण्याश्च यद्रूपं किंतोयं च बहत्यसौ॥ २६॥
रौरवो वा कथं विप्र किंरूपं कूटशाल्मलेः। कीदृशा वा हि ते दूताः किं कार्याः किंपराक्रमाः॥ २७॥
किंच किंच तु कुर्वाणाः किंच किंच समाचरन्। न चेतो लभते जन्तुच्छादितं पूर्वतेजसा॥ २८॥
धृतिं न लभते किंचित्तैस्तैर्दोषैः सुवासिताः। दोषं सत्यमजानन्तस्तथा मोहेन मोहिताः॥ २९॥
बोद्धव्यं नावबुध्यन्ते गुणानां तु गुणोत्तरम्। हाहाभूताश्च चिंतार्त्ताः सर्वदोषसमन्विताः॥ ३०॥
परं परमजानन्तो रमन्ते कस्य मायया। क्लिश्यन्ते बहवस्तत्र कृत्वा पापमचेतसः॥ ३१॥
एतत्कथय वत्स त्वं यतः प्रत्यक्षदर्शिवान्॥ ३२॥

उनके पास बार-बार जाना पड़ता है, उनके त्रास से कोई निकल नहीं सकता। दान एवं नियम आदि के द्वारा ही वहाँ नहीं जा सकते। नचिकेता ने बताया, वहाँ एक वैतरणी नदी है उसमें कितना जल है, वह कैसी बहती है, रौरव नरक कैसा है, पास स्थित शाल्मली का वृक्ष कैसा है, वहाँ के दूत कैसे हैं, कितने पराक्रमी हैं, वे लोग कौन-सा कार्य करते हैं। जो जीव पूर्व तेज से प्रभावित है, उनको वे नहीं प्राप्त करते हैं। जीव के उन दोषों के कारण वहाँ धैर्य नहीं प्राप्त होता सत्य को न जानते हुए दोष एवं मोह से मोहित होकर गुण एवं दोष को नहीं जानते हैं। सभी दोषों के कारण चिन्ता से दुखी होकर जीव हाहाकार करते हैं। वे जीव किसकी माया से वहाँ घूमते हैं। पापी हृदय वाले वे जीव दुःख प्राप्त करते हैं। यह सब जो आपने देखा है, उसे बताइये॥२५-३२॥

× × ×

अध्याय-१९६

वैशम्पायन उवाच-

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा ऋषीणां भाषितात्मनाम्। उवाच वाक्यं वाक्यज्ञः सर्वं निरवशेषतः॥ १॥

वैशम्पायन बोले—उन ऋषि लोगों के वचन को सुनकर शब्द शास्त्र के ज्ञाता नचिकेता जी सम्पूर्ण बात बताये।

नाचिकेत उवाच-

श्रूयतां द्विजशार्दूलाः कथ्यमानं मया द्विजाः। योजनानां सहस्रं तु विस्तराद् द्विगुणायतम्॥ २॥
द्विगुणं परिवेषेण तद्वै प्रेतपतेः पुरम्। भवनैरावृत्तं दिव्यैर्जाम्बूनदमयैः शुभैः॥ ३॥
हर्म्यप्रासादासंबाधमहाट्टालसमन्वितम्। सौवर्णेनैव महता प्राकारेणाभिवेष्टितम्॥ ४॥
कैलासशिखराकारैर्भवनैरुपशोभितम्। तत्र वै विमला नद्यस्तोयपूर्णाः सुशोभनाः॥ ५॥

नचिकेता बोले—ब्राह्मणों में श्रेष्ठ महर्षि आप लोग सुनें-यमराज की नगरी हजार योजन लम्बा तथा उसके दूना चौड़ा है। उसके दुगुना परिवेष (चहरदीवारी) से युक्त है। सुन्दर सोने के बने भवनों से परिपूर्ण है। उसमें सोने के घरों से युक्त महान अट्टालिकाएँ हैं, बड़ी-बड़ी दीवारे सोने से ही बनायी गयी हैं, कैलास पर्वत के शिखर के समान ऊँचे भवन वहाँ शोभित हैं। वहाँ जलसे पूर्ण नदियाँ सुशोभित हैं॥ १—५॥

दीर्घिकाश्च तथा कान्ता नलिन्यश्च सरांसि च। तडागाश्चैव कूपाश्च वृक्षषण्डाः सुशोभनाः॥ ६॥
नरनारीसमाकीर्णा गजवाजिसमाकुलाः। नानादेशसमुत्थानैर्नानाजातिभिरेव च॥ ७॥
सर्वजीवैस्तथाकीर्णे तस्य राज्ञः पुरोत्तमम्। क्वचिद्युद्धं क्वचिद्द्वंद्वं तेन बद्धो यमालये॥ ८॥
क्वचिद्गायन् हसंश्चैव क्वचिद्दुःखेन दुःखितः। क्वचित्क्रीडन्यथाकर्म क्वचिद्भुञ्जन् क्वचित्स्वपन्॥ ९॥
क्वचिन्नृत्यन् क्वचित्तिष्ठन् क्वचिद्बन्धनसंस्थितः। एवं शतसहस्राणि तस्य राज्ञः पुरोत्तमे॥ १०॥

स्वकर्मभिः प्रदृश्यन्ते स्थूलाः सूक्ष्माश्च जन्तवः। मया दृष्टा द्विजश्रेष्ठास्तस्य राज्ञः पुरोत्तमे॥ ११॥

बावड़ी तथा कमल के युक्त सरोवर, तालाब, कुआँ, वृक्षका समुदाय सुशोभित हैं। **उस नगरी में नर-नारी, हाथी, घोड़े 'अनेक देश एवं अनेक जातियों के लोग' विद्यमान हैं।** उस राजा के राज्य में सभी प्रकार के जीव निवास करते हैं, कहीं पर शुद्ध कहीं पर बँधा हुआ उस यमराज के द्वारा सभी आबद्ध है। कहीं पर गीत गाये जाते हैं, कहीं पर हँस रहे हैं, कहीं पर दु:ख से दु:खित हैं। अपने कर्मों के अनुसार कहीं क्रीडा करते हैं, कहींपर भोजन करते, कहीं पर सो रहे हैं। कहींपर नाचते हैं, कहीं लोग बैठे हैं, कहीं पर बन्धन से बांधे गये हैं। इस प्रकार उस राजा के उत्तमपुरी में सैकड़ों, हजारों लोग हैं अपने कर्म के प्रभाव से वहाँ जीव सूक्ष्म एवं स्थूल दिखायी देता है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों इस प्रकार मैंने उस यमराज की उत्तम नगरी को देखा॥ ६—११॥

अङ्गानि चैव सीदन्ति मनो विह्वलतीव मे। दिव्यभावाः स्पृशन्त्येते चिन्तयानस्य तत्फलम्॥ १२॥
तथापि कथयिष्यामि यथादृष्टं तथाश्रुतम्। पुष्पोदका नाम तत्र नदीनां प्रवरा नदी॥ १३॥
दृश्यते न च दृश्येत नानावृक्षसमाकुला। सुवर्णकृतसोपाना दिव्यकांचनवालुका॥ १४॥
प्रसन्नेन च तोयेन शीतलेन सुगन्धिना। पुष्प्यत्फलवनाकीर्णा नानापक्षिसमाकुला॥ १५॥
भ्राजते सरितां श्रेष्ठा सर्वपापप्रणाशिनी। तस्यास्तीरे मया दृष्टाः पादपाश्च सहस्रशः॥ १६॥

वहाँ (यमपुरी) में जीवों को जो फल मिलता है, उसे सोचकर मेरा अङ्ग दुखित हो रहा है, मन विह्वल हो जाता है और मन में अनेक भाव स्पर्श कर रहा है। फिर भी जो मैंने देखा है, जो सुना है, उसको मैं कहूँगा। नदियों में एक पुष्पोदक नाम की श्रेष्ठ नदी है। अनेक वृक्षों से युक्त वह नदी है, ऐसा पहले नहीं देखा गया है। जिसकी सिढ़ियाँ सोने से बनायी गयी है और उस नदी का बालू सुन्दर सोने की तरह है। उस नदी का जल स्वच्छ शीतल और सुगन्धित था। वहाँ के वन, फल पुष्प एवं अनेक पक्षियों से परिपूर्ण थे। उस यमपुरी में सभी पापों को नाश करने वाली नदियाँ थीं। जिसके तटपर हजारों वृक्ष लगे हुए हैं, जौ मैंने देखा॥ १२—१६॥

अमराः क्रीडमानाश्च जलक्रीडां पुनःपुनः। विशालजघना यस्यां गन्धर्वाः सामगा इव॥ १७॥
भुजङ्गावनताङ्ग्यश्च किन्नर्यर्थश्च सुगायनाः। दिव्यभूषणसम्भोगैः क्रीडन्त्यत्र समागताः॥ १८॥
एवं नारीसहस्राणि तत्र दिव्यानि नित्यशः। क्रीडन्ति सलिले तत्र प्रसादेषु शुभेषु च॥ १९॥
तत्रापरे वृक्षषण्डा नित्यपुष्पफलान्विताः। ते च कामप्रदा नित्यं तथा द्विजसमायुताः॥ २०॥

देवता लोग जहाँ जल क्रीड़ा बार-बार करते हैं, सामवेद के गायन करने वाले गन्धर्वों की तरह बड़े-बड़े जंघा हैं जिनके। सर्प के समान टेढ़े मेढ़े शरीरवाले तथा जहाँ पर किन्नर लोग मधुर गायन करते हैं। दिव्य आभूषणों को धारण किये हुये अनेक किन्नर आदि क्रीडा करते हैं। नित्य प्रति जहाँपर हजारों नारियाँ हैं, उस सुन्दर महल में निवास करती तथा उस नदी के जल में क्रीडा करती हैं। दूसरी ओर अनेक वृक्ष हैं, जो फल एवं पुष्प से युक्त हैं, वे वृक्ष नित्य आये हुए ब्राह्मणों की कामनाओं को पूर्ण करते हैं॥ १७—२०॥

प्रमदाश्च जले तत्र कामरूपाः सुमेखलाः। रमयन्त्यो नरांस्तत्र यथाकामं यथासुखम्॥ २१॥
तां नदीं क्षोभयन्त्यस्ताः क्रीडन्ति सहिताः प्रियैः। गायन्ति सलिले काश्चिन्मधुरं मधुविह्वलाः॥ २२॥
जलतूर्यनिनादेन भूषणानां स्वनेन च। भाति सा निम्नगा दिव्या दिव्यरत्नैरलंकृता॥ २३॥

वैवस्वती नाम महानदी सा शुभा नदीनां प्रवराऽतिरम्या।
प्रयाति मध्ये नगरस्य नित्यं मातेव पुत्रं परिपालयन्ती॥ २४॥
तोयानुरूपा च मनोहरा च दिव्येन तोयेन सदैव पूर्णा।

यस्यास्तु हंसाः पुलिनेषु मत्ताः कुन्देन्दुवर्णाः प्रचरन्ति नित्यम्॥ २५॥
रथाङ्गसाह्वैः प्रवरैश्च पद्मैः प्रतप्तजाम्बूनदकर्णिकाभिः।
या दृश्यते चैव मनोज्ञरूपा सुवर्णसोपानयुता सुकान्ता॥ २६॥
यस्यास्तु तोयं विमलं सुगन्धि स्वादु प्रसन्नं त्वमृतोपमं च।
वृक्षास्तु यस्या वनखण्डजाताः सदा शुभैः पुष्पफलैरुपेता॥ २७॥
नार्यः सुरूपा मदविह्वलाश्च क्रीडन्ति ता यत्र मनोज्ञरूपाः।
यस्यां जनः क्रीडनताडनाद्यैर्विवर्णतां याति न वै कदाचित्॥ २८॥
या देवतानामपि पूजनीया तपोनिधीनां च तथा मुनीनाम्।
या दृश्यते तोय भरेण कान्ताकृतिः कवीनामिव निर्मलार्था॥ २९॥
जलं च दत्तं बहुभिर्नरैश्च तस्याः स्वरूपप्रतिमा च निष्ठा।
प्रासादपङ्क्तिर्ज्वलनप्रकाशा तस्यास्तु तीरे बहुभक्तिरम्या॥ ३०॥
वादित्रगीतस्वनतालयुक्ता गायन्ति नार्यः सहिताः सदा हि।
कन्याकुलानां मृदुभाषितानि मनोहराणां च वनेषु तेषु॥ ३१॥

काम से मोहित उस जल में तथा सुन्दर किनारे में पुरुष, सुखपूर्वक अपनी इच्छानुसार क्रीडा करते हैं, जैसे सुन्दर स्त्रियों के साथ काम मोहित होकर क्रीडा करते हैं। अपने प्रिया के साथ उस नदी में अच्छी तरह क्रीडा करते हैं। मद से विह्वल होकर उस जल में मधुर गान करते हैं। वे दिव्य स्त्रियाँ अनेक प्रकार के रत्नों के झंकार तथा उस नदी के वेग के शब्द से मिश्रित शब्द के कारण अत्यन्त सुन्दर लगने लगती हैं। उस नगर के मध्य में वैवस्वती नाम की एक उत्तम नदी है, जिस प्रकार माता अपने पुत्र की रक्षा करती है, उसी प्रकार वह नगर की रक्षा करती है, उस नदी का जल शुद्ध, मनोहरता से पूर्ण है। जिसके किनारे श्वेत कमल एवं चन्द्रमा के समान स्वच्छ हंस नित्य विचरण करते हैं। चक्रवात पक्षी कमल से युक्त तपाये हुए सोने की कर्णफूल के समान, सोने की सीढ़ियों से युक्त हैं-जिस नदी का जल सुगन्ध पूर्ण, स्वच्छ, स्वादयुक्त और अमृत के समान है, वहाँ के वन वृक्ष पुष्प एवं फल से पूर्ण हैं। सुन्दर रूपवाली स्त्री मदमस्त होकर जिसमें क्रीडा करती हैं, उनके क्रीडा एवं जल में ताड़न करने पर भी वह जल अलग नहीं होता है। जो नदी, तपस्वी, मुनियों और देवताओं के द्वारा वन्दनीय है, जैसे कवियों के कविता का अर्थ निर्मल होता है, वैसे ही इस नदी का जल अत्यन्त निर्मल है। उस नदीका जल अनेकों नर द्वारा दिया जाता है, उसके जल में निष्ठा रहती है। उस नदी के किनारे मकानों की पंक्तियाँ अत्यन्त सुन्दर प्रकाशित हो रही हैं। निरन्तर स्त्रियाँ जहाँ पर वाद एवं गीत का शब्द ताल एवं लय से युक्त होकर गाया करती हैं, उसके सुन्दर वनों में मनोहर कन्याओं का समुदाय है॥ २१—३१॥

कुर्वन्ति संहर्षमिव स्वनेन मनोज्ञरूपा दिविदेवतानाम्।
मृदङ्गनादश्च सुतन्त्रियुक्तगीतध्वनिश्चैव सुवंशयुक्तः॥ ३२॥
प्रासादकुञ्जेषु विहार्यमाणा न तृप्तिमेवं बहु ताः प्रयान्ति।
गन्धः सुगन्धोऽगुरुचन्दनानां वातः शुभो वाति सुशीतमन्दः॥ ३३॥
क्वचित् सुगन्धः प्रचचार भूयः प्रासादरोधं प्रविरूढमार्गः।
क्वचिज्जनाः क्रीडनकावसाक्ताः क्वचिच्च नारीनरगीतशब्दाः॥ ३४॥
तथाऽपरे क्रीडनकाः सकान्ताः सुवर्णवेदीकृतसानुशोभाः।

विमानभूताः प्रचरन्ति तोये प्रमत्तनारीनरसंकुलाश्च॥ ३५॥
शक्यो विभागो न हि रम्यताया ह्यासौ दिनैर्वा बहुभिः प्रवक्तुम्।
नैषा कथा कर्मसमाधियुक्ता शक्त्या प्रवक्तुं दिवसैरनल्पैः॥ ३६॥

स्वर्ग के देवता लोग सुन्दर प्रसन्न चित्त शब्द करते हैं। वहाँ पर मृदंग, ढोल तथा वंशीयुक्त गीतकी ध्वनि सुनायी देती है। प्रायः उन महलों में विहार करते हुए तृप्ति को नहीं प्राप्त करते हैं। अगर चन्दन के गन्ध में सुवासित हवा शीतल, मन्द और सुगन्ध बह रही है। उस मार्ग के मकान के किनारे सुगन्धित हवा फैल रही है। वहाँ पर कुछ लोग खिलौने से खेल रहे हैं, कुछ पुरुष एवं नारियाँ गीत गाने में आसक्त हैं। कुछ लोग सोने की बनी सुन्दर वेदी पर खेल रहे हैं। जिस प्रकार विमान पर व्यक्ति विचरण करता है, उसी प्रकार उसके जल से नर-नारियों का समुदाय विचरण कर रहे हैं। उस नदी की सुन्दरता को अनेक दिनों तक कहने पर भी बाँटा नहीं जा सकता है कर्म एवं समाधि से युक्त इस कथा को अनेक दिनों तक नहीं कहा जा सकता है। इस कथा को कुछ दिन के श्रवण से जीव अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है॥ ३२—३६॥

× × ×

अध्याय-१९७

ऋषि उवाच—

दशयोजनविस्तारं ततो द्विगुणमायतम्। प्राकारेण परिक्षिप्तं प्रासादशत शोभितम्॥ १॥
समालिखदिवाकाशं प्रदीप्तमिव तेजसा। गोपुरं तूत्तमं तत्र प्रासादशतशोभितमं॥ २॥
नानायन्त्रैः समाकीर्णं ज्वालामालासमायुतम्। देवतानामृषीणां च ये चान्ये शुभकारिणः॥ ३॥
प्रवेशस्तत्र तेषां हि विहितो धर्मदर्शिनाम्। राजते गोपुरं सर्वं शारदाभ्र चयप्रभम्॥ ४॥

ऋषि बोले—यमराज की पुरी दस योजन लम्बा तथा बीस योजन चौड़ा है। वह नगरी चारो तरफ से चहारदीवारी से सुरक्षित है, उसमें सैकड़ों भवन सुशोभित हैं। मानो वह स्वर्ग से आकाश तक फैला है, उसका तेज चमक रहा था। सैकड़ों भवनों से सुशोभित उस नगर का प्रवेश द्वार उत्तम है। अनेक प्रकार के यन्त्रों से घिरा हुआ प्रकाश का पुञ्ज दिखाई देता है। देवता और ऋषि तथा अन्य जो शुभ कार्य करने वाले हैं। उन्हीं धर्म प्राणियों का उसमें प्रवेश होता है। वहाँ के प्रवेश द्वार की चमक शरद्कालीन मेघ के समान प्रतीत होती है॥ १—४॥

मानुषाणां सुकृतिना प्रवेशस्तत्र निर्मितः। अग्निधर्मसमाकीर्णं सर्वदोषसमन्वितम्॥ ५॥
आयसं गोपुरं तत्र दक्षिणं भीमदर्शनम्। रौद्रं प्रतिभयाकारं सुतप्तं दुर्निरीक्षणम्॥ ६॥
प्रवेशो हि ततस्तेन विहितो रविसूनुना। पापिष्ठानां नृशंसानां क्रव्यादानां दुरात्मनाम्॥ ७॥
पापानां चैव सर्वेषां ये चान्ये घातकारकाः। औदुम्बरमवीचीकमुच्चावचमनःकृतम् ॥ ८॥

पुण्यशाली मनुष्य के लिए वहाँ प्रवेश है। गर्मी से युक्त सभी दोषों से युक्त जिसका दर्शन भयंकर है जो दक्षिण दिशा की ओर लोहे के दरवाजा से युक्त है। भयंकर है, भय देनेवाला है, जल रहा है, बड़ी कठिनाई से देखा जाता है। धर्मराज ने पापी, क्रूर दानव, दुरात्मा जैसे जीव के प्रवेश के लिए बनाया है। पापियों और घात करने वाले आगे जो अन्य लोग हैं ऊँची-नीची तथा पाप करने वालों के लिए हैं॥ ५—८॥

गोपुरं पश्चिमं तच्च दुर्निरीक्षं समन्ततः। महता वह्निजालेन समालिप्तं भयानकम्॥ ९॥
दुष्कृतीनां प्रवेशार्थं यमेन विहितं स्वयम्। तस्मिन् पुरवरे रम्ये रम्या परम शोभना॥ १०॥
सर्वरत्नमयी दिव्या वैवस्वतनियोजिता। सभा परमसम्पन्ना धार्मिकैः सत्यवादिभिः॥ ११॥

जितक्रोधैरलुब्धैश्च वीतरागैस्तपस्विभिः। सा सभा धर्मयुक्तानां सा सभा पापकारिणाम्॥ १२॥

चारो ओर से कठिनतापूर्वक देखे जाने वाले पश्चिम दिशा की ओर प्रवेश द्वार बनाया गया है। यमराज ने स्वयं उन पापियों के लिए बनाया है उस नगरी में परमसुन्दर, सभी रत्नमयी, दिव्य, नियोजित, परमसम्पन्न, सत्यवादी धार्मिकों के लिए एक सभा है। जिसने क्रोध को जीत लिया है, जो लोभी नहीं है, जो वितरागी है, तपस्वी है, उनके लिए है और वही सभा पाप कर्म करनेवालों के लिये है॥ ९—१२॥

सा सभा सर्वलोकस्य शुभस्यैवाशुभस्य च। कर्मणा सूचितस्याथ सा सभा धर्मसंहिता॥ १३॥
अनिर्वर्त्य यथा कर्म शास्त्रदृष्टेन कर्मणा। निर्विशङ्का निराक्षेपा धर्मज्ञा धर्मपाठकाः॥ १४॥
चिन्तयन्ति च कार्याणि सर्वलोकहिताय ते। यथादृष्टं यथाशास्त्रं यथाकालनिवेदकाः॥ १५॥
ततः सर्वे च तत्सर्वं चिन्तयन्ति सुयन्त्रिताः। मनुः प्रजापतिश्चैव पाराशर्यो महामुनिः॥ १६॥
अत्रिरौद्दालकिश्चैव आपस्तम्बश्च वीर्यवान्। बृहस्पतिश्च शुक्रश्च गौतमश्च महातपाः॥ १७॥
शङ्खश्चलिखितश्चैव ह्याङ्गिरा भृगुरेव च। पुलस्त्यः पुलहश्चैव ये चान्ये धर्मपाठकाः॥ १८॥
यमेन सहिताः सर्वे चिन्तयन्ति प्रतिक्रियाम्। सर्वे च कामप्रचुरा ये दिव्या ये च मानुषाः॥ १९॥
कुण्डलाभ्यां पिनद्धाभ्यामङ्गदाभ्यां महातपाः। भ्राजते मुकुटस्तस्य ब्रह्मदत्तो महाद्युति॥ २०॥

वह सभा सभी लोक के शुभ अशुभ कर्मों को सूचित करती है तथा धर्म से परिपूर्ण है। शास्त्र के नियमानुसार कर्म के अनुसार शंका रहित होकर, अपेक्षारहित, धर्मज्ञ, धर्म के पाठ करने वाले सभी लोक के हित चाहने वाले व सभी के कर्मानुसार चिन्ता करते हैं। जैसा देखा, शास्त्रानुसार काल के कहने के अनुसार नियमानुसार सभी प्राणियों की चिन्ता करते हैं। **मनु, प्रजापति, महामुनी पराशर, अत्रि औद्दालकि, वीर्यवान् आपस्तम्ब, बृहस्पति, शुक्र तपस्वी गौतम, शंख लिखित हैं जिनके पास ऐसे अङ्गिरा भृगु, पुलह तथा अन्य जितने धर्म परायण हैं, वे लोग यमराज के साथ सभी प्राणियों के कर्म के बारे में चिन्तन करते हैं।** जो उत्तम मनुष्य हैं, कर्म को निष्ठा से करते हैं, उन महातपस्वियों का कुण्डल, बाजूबंद, कान्तिमान मुकुट जो ब्रह्माजी द्वारा दिया गया है, सुशोभित होता है॥ १३—२०॥

> **मनु,** प्रजापति, पाराशर, अङ्गिरा, भृगु, पुलहादि **ऋषि,** गुरु, शुक्र आदि **आचार्य** सभी यमलोक में रहकर यमराज के आदेश का पालन करते हैं [श्लोक=२८] और यमराज—भगवान् चित्रगुप्त के आदेश का पालन करते हैं। **सनातनी धर्माऽधर्म का नियम भगवान् चित्रगुप्त द्वारा निर्मित है।**
>
> **भगवान् चित्रगुप्त द्वारा बनाये गये सनातनी नियमों का विस्तार ही, ऋषियों द्वारा संकलित अष्टादश स्मृतियाँ हैं।**

तेजसा वचसा चैव दुर्निरीक्ष्यो महाबलः। एकस्थमिव सर्वेषां तेजस्तेजस्विनां तदा॥ २१॥
तस्य पार्श्वे महादिव्या ऋषयो ब्रह्मवादिनः। दीप्यमानाः स्ववपुषा वेदवेदाङ्गपारगाः॥ २२॥
वेदार्थानां विचारज्ञाः सत्यधर्मपुरस्कृताः। छन्दःशिक्षाविकल्पज्ञाः सर्वशास्त्रविकल्पकाः॥ २३॥
निरुक्तमतिवादाश्च सामगान्धर्वशोभिताः। धातुवादाश्च विविधा निरुक्ताश्चैव नैगमाः॥ २४॥

वहाँ पर महाबलशाली कठिनता से देखे जाने वाले हैं, उनका तेज एवं वाणी दिव्य है, एक स्थान पर वे सभी अत्यन्त तेजवान लगते हैं। उनके पास में ब्रह्मवादी, तेजस्वी, तपस्वी, अपने शरीर से प्रकाशित एवं वेद, वेदांग में पारंगत, वेद एवं उसके अर्थ को जानने वाले, विचारक, सत्य और धर्म का पालन करने वाले, छन्दशास्त्र, तर्कशास्त्र

के ज्ञाता, सभी शास्त्रों के ज्ञाता, निरुक्तशास्त्र, बुद्धिके अनुसार कार्य करने वाले, सामवेद, गायन से शोभित, धातु के ज्ञाता, अनेक निरुक्तशास्त्र के ज्ञाता, वेद के ज्ञाता हैं।॥ २१—२४ ॥

तत्र चैव मया दृष्टा ऋषयः पितरस्तथा। भवने धर्मराजस्य प्रगायन्तः कथाः शुभाः॥ २५॥
तस्य पार्श्वे मया दृष्टः कृष्णवर्णो महाहनुः। उत्तमः प्रकृताकार उर्द्धरोमा निराकृतिः॥ २६॥
वामवाहुश्च दण्डेन प्रवरेण समन्वितः। विकृतास्यो महादंष्ट्रो नित्यकुद्धो भयानकः॥ २७॥
शिक्षार्थे धर्मराजेन सन्दिष्टः स पुनःपुनः। श्रृणोति चैव कालोऽसौ नित्ययुक्तः सनातनः॥ २८॥

वहाँ पर ऋषि एवं पितर लोगों को मैंने देखा जो 'धर्मराज' के भवन में शुभ देने वाली कथा का गायन करते हैं। उन्हीं के पास में काले वर्ण के बड़ी ठुड्डी वाले, उत्तम प्रकृति वाले, उर्द्धरोम वाले, आकृति रहित, बायें हाथ में सुन्दर दण्ड धारण किये हुये, विकृत मुख वाले बड़े-बड़े दाँत वाले, नित्य क्रुद्धों और भयानक को देखा। **धर्मराज के द्वारा बार-बार शासन हेतु निर्देश दिये जाते हैं, ऐसा मैंने देखा, ऐसा सुना जाता है कि वह 'काल' जो सनातन हैं**॥ २५—२८ ॥

तथान्ये चापरे तत्र शासनेषु समाहिताः। दृष्टास्तत्र मया तात सर्वतेजोमयी शुभा॥ २९॥
यमेन पूज्यमाना सा दिव्यगन्धानुलेपनैः। संहारः सर्वलोकानां गतीनां चमहागतिः॥ ३०॥
अतः परं न कर्त्तव्यं साधनं कथितं बुधैः। बिभ्यति ह्यसुरास्तत्र ऋषयश्च तपोधनाः॥ ३१॥
असुराश्च सुराश्चैव योगिनश्च महौजसः। नमस्कार्या च पूज्या च मोहिनी सर्वसाधनी॥ ३२॥

वहाँ अन्य दूसरे भी जो शासन हेतु नियुक्त हैं, ऐसे सभी तेजों के पुञ्ज 'शुभा' को मैंने देखा। यमराज से पूजित दिव्य गन्धको शोभित, सभी लोकों के संहारकर्त्ता, महागतियों के भी गति। विद्वान् लोग कहते हैं कि इसके अलावा कोई कुछ नहीं कर सकता। 'राक्षस' एवं 'तपस्वी ऋषि' लोग उससे डरते है। वह शुभा देवता, राक्षसों महान योगियों के द्वारा पूजनीय एवं नमस्कार योग्य है, वह सभी कार्यों को साधने वाली एवं मोहित करने वाली है॥ २९—३२ ॥

तस्याङ्गेभ्यः समुद्भूता व्याधयः क्लेशसम्भवाः। अपराश्च महाघोराः व्याधयः कालनिर्मिताः॥ ३३॥
पौरुषेण समायुक्ताः सर्वलोकनयायताः। प्रकृत्या दुर्विनीतश्च महाक्रोधः सुदारुणः॥ ३४॥
महासत्त्वो महातेजाः जरामरणवर्ज्जितः। मृत्युदृष्टा दुराधर्षो दिव्यगन्धानुलेपनः॥ ३५॥
गायका हासकाश्चैव सर्वजीवप्रबोधकाः। मृत्युना सहिता नित्यं कालज्ञाः कालसम्मताः॥ ३६॥

उसके अंग से समस्त क्लेश एवं व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। अन्य भी जो काल के द्वारा बनायी गयी व्याधियाँ सशरीर होती है, पौरुष से युक्त सभी लोगों के ले जाने वाली, स्वभावसे भयंकर, क्रोध करने वाली, महान बलशाली, महानतेजस्वी, बुढ़ापे एवं मृत्यु से रहित, जिसको पकड़ना कठिन है, सुन्दर गन्ध से सुशोभित, **'मृत्यु'** को देखा। गायन करने वाले, हँसाने वाले, सभी जीवों को जगाने वाले, कालज्ञ है, काल के समान है, वह मृत्युके साथ नित्य रहते हैं॥ ३३—३६ ॥

दिव्याभरणशोभाभिः शोभमानाः सुतेजसः। सवालव्यजनच्छन्नैः केचित्तत्र महौजसः॥ ३७॥
पर्यास्तरणसंछन्नेष्वासनेषु तथा परे। पूज्यमाना मया दृष्टाः केचित्तत्र महोजसः॥ ३८॥
अनेकाश्च ज्वरास्तत्र वेदनाश्च सुदारुणाः। नारीनरस्वरूपाश्च मया दृष्टास्त्वनेकशः॥ ३९॥
कामक्रोधविचारिण्यो नानारूपधराः स्त्रियः। जीवभक्षकरा घोरास्तीव्ररोषा भयानकाः॥ ४०॥
तासां हलहलाशब्दः सर्वासां च समन्ततः। धर्मराजसमीपे तु दारयन्ति धरामिमाम्॥ ४१॥

दिव्य अलंकार से शोभित, तेजसे दिप्त, जिसके पास पंखे से हवा किया जाता है, वहाँ पर कुछ पराक्रमी बैठे हैं, दूसरे जगह आसन हेतु विस्तर लगा है। कुछ प्राणियों के द्वारा पूजित हैं, ऐसे व्यक्ति को मैंने देखा। अनेक ज्वर, वेदना, वहाँ पर नर-नारी के रूप में मैंने देखा। काम क्रोध का विचार करने वाले अनेक स्त्रियों के वेष को धारण करके जीवों के भक्षण करने वाले, भयंकर, तीव्र भयानक क्रोध करने वाले, उन लोगों का हलाहल शब्द चारो ओर सुनाई देता है, जो धर्मराज के पास है वह इस पृथ्वी को फाड़ने वाले हैं।॥ ३७—४१ ॥

कूष्माण्डा यातुधानाश्च राक्षसाः पिशिताशनाः। एकपादा द्विपादाश्च त्रिपादा बहुपादकाः॥ ४२॥
एकबाहुर्द्विबाहुश्च त्रिबाहुर्बहुबाहुकः। शङ्कुकर्णा महाकर्णा हस्तिकर्णास्तथाऽपरे॥ ४३॥
केचित्तु तत्र पुरुषाः सर्वशोभाविशोभिताः। केयूरैर्मुकुटैश्चान्ये चित्रैरङ्गैस्तथाऽपरे॥ ४४॥

कूष्माण्ड, राक्षस, खून पीने वाले राक्षस, एक पैर वाला, दो पैर वाले, तीन पैर वाले, अनेक पैर वाले, एक भुजा वाले, दो भुजावाले, तीन भुजा वाले, अनेक भुजावाले, कील के सामन पतले कान वाले, बड़े कान वाले तथा कुछ हाथी के कान वाले, वहाँ कुछ पुरुष सभी शोभाओं से शोभित हैं। कुछ कुण्डल, मुकुट अनेक प्रकार के बाजूबन्द से सुशोभित हैं।॥ ४२—४४॥

स्त्रग्विणो बद्धपादाश्च सर्वभरणभूषिताः। सकुठाराः सकुद्दालाः सचक्राः शूलपाणयः॥ ४५॥
सशक्तितोमयः केचित्सधनुष्का दुरासदाः। असिहस्तास्तथा चान्ये तथा मुद्गरपाणयः॥ ४६॥
सृज्जिता दधिहस्ताश्च गन्धहस्ता ह्यनेकशः। विचित्रभक्षहस्ताश्च वस्त्रहस्तास्तथैव च॥ ४७॥
धूपान्प्रगृह्य विविधान्वासांसि शुभ दर्शनाः। शिबिकाश्च महाशोभा यानानि विविधानि च॥ ४८॥

माला धारण करने वाले, पैर बंधा है जिसका, सभी अलंकारों से सुशोभित, हाथ में कुठारी, कुदाल, चक्र एवं शूल धारण करने वाले, शक्ति शाली तोमर, बड़ा कठिन धनुष को धारण करने वाले, तलवार को हाथ में लेने वाले तथा अपने हाथ में मुद्गर धारण किये हैं। अनेक लोग हाथ में दधि तथा गन्ध लिये हुए हैं। अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थ हाथ में लिए हैं, कुछ हाथ में वस्त्र धारण किये हैं। अनेक प्रकार के धूप को ग्रहण किये हैं, जिनका दर्शन शुभकारी हैं, ऐसा वस्त्र धारण किये हैं। अत्यन्त सुन्दर शिविका (डोली) अनेक प्रकार के वाहन हैं॥ ४५—४८॥

वाजिकुञ्जरयुक्तानि हंसयुक्तानि चापरे। शरभै ऋषभैश्चापि हस्तिभिश्च सुदर्शनैः॥ ४९॥
मयूरैः सारसैश्चैव चक्रवाकैश्च वाजिभिः। एवंरूपा मया दृष्टातत्र चान्ये भयानकाः॥ ५०॥
उज्ज्वला मलिनाश्चै जीर्णवस्त्रा नवांशुकाः। सुमनाभिसना मूका मारकाः शतमारकाः॥ ५१॥
समाजोरी काचवर्णो कृष्णा चैव कालिस्तथा। धर्महस्ता यशोहस्ताः कीर्त्तिहस्तास्तथापरे॥ ५२॥

कुछ घोड़े, हाथी एवं हंस से युक्त हैं। कुछ अष्टपाद (शरभ) ऋषभ, सुन्दर हाथियों से युक्त हैं। मयूर, सारस, चक्रावाक घोड़े से युक्त एवं अनेक भयानक रूप वाले वहाँ मैंने देखा। सफेद, मलिन, पुराने वस्त्र वाले एवं कुछ नये वस्त्रवाले, सुन्दर मनवाले, गुंगा, मारने वाले, सैकड़ों को मारने वाले, बिल्ली, कांचवर्ण वाली, काली एवं काल के समान, धर्म को हाथ में लिए हुए, यश को हाथ में लिये हुए, कुछ कीर्ति को हाथ में लिए हुए हैं॥ ४९—५२॥

एते पुरोगमास्तत्र कृतान्तस्य महात्मनः। यद्येतानि यजेद्विप्रो नास्ति तस्य पराभवः॥ ५३॥
नमस्कार्याश्च पूज्याश्च आपन्नेन हि नित्यशः। परितुष्य कृता नित्यं विहिताः सार्वलौकिकाः॥ ५४॥

इस प्रकार के प्राणी उस महात्मा **यमराज** के आगे-आगे चलते हैं, जो ब्राह्मण! इन लोगों का जप या यज्ञ करता है, उसका कभी पराभव नहीं होता है। ये नमस्कार के योग्य है, जो आपत्ति में नित्य इनकी पूजा करता है, वह नित्य

सभी लोकों में सन्तुष्ट करके इनकी पूजा करता है, वह नित्य सभी लोकों में उसको सन्तुष्ट करते हैं॥ ५३-५४॥

× × ×

अध्याय-१९८

वर्त्तमानः सभामध्ये राजा प्रेतपुराधिपः। मामेकमृषभं तत्र दर्शनं च ददौ यमः॥ १॥
याथातथ्येन मे पूजा कार्येण विधिनाऽकरोत्। आसनं पाद्यमर्ध्यं च वेददृष्टेन कर्मणा॥ २॥
अब्रवीच्च पुनर्हृष्टो ह्यास्यतां च वरासने। कांचने कुशसंच्छन्ने दिव्यपुष्पोपशोभिते॥ ३॥
तस्य वक्रं महारौद्रं नित्यमेव भयानकम्। पश्यतस्तस्य मां विप्रास्ततः सौम्यतरं बभौ॥ ४॥

प्रेतपुरी के राजा यम सभा के मध्य में बैठे हुये दिखायी दिये। विधि पूर्वक वैदिक रीतिसे मुझ ऋषिका आसन, पाद्य एवं अर्घ द्वारा पूजन करके यमराज बोले—श्रेष्ठ सोने के कुश से बनाया गया एवं सुन्दर पुष्पसे सुशोभित दिव्य आसन पर बैठें। उनका टेढ़ा एवं नित्य भयानक रूप मुझ तपस्वी को देखकर अत्यन्त सौम्य हो गया॥ १—४॥

लोहिते तस्य वै नेत्रे जल्पतश्च पुनःपुनः। पद्मपत्रेनिभे चैव जज्ञाते मम सौहृदात्॥ ५॥
ततोऽहं तस्य भावेन भावितश्च पुनःपुनः। प्रहृष्टमानसो जातो विश्वासं च परं गतः॥ ६॥
तस्य प्रीतिकरं सद्यः सर्वदोषविनाशनम्। कामदं च यशोदं च दैवतैश्चापि पूजितम्॥ ७॥
काल वृद्धिक्करं स्तोत्रं क्षिप्रं तत्र उदरियन्। येन प्रीतो महातेजा यमः परमधार्मिकः॥ ८॥

उनके आँख लाल थे कुछ बुद्बुदा रहे थे। कमलके पत्ते के समान निर्मल हृदय वाले लग रहे थे। उसके बाद उनके भावको मै समझ गया उस प्रसन्न मन वाले पर विश्वास हो गया। उनकी प्रसन्नता सभी दोषोंको नाश करने वाली है। कामना को देने वाली, यश को देने वाली और देवताओं द्वारा पूजित है। काल को बढ़ाने वाले परमधार्मिक महातेजस्वी परमप्रसन्न उस यमराज के स्तोत्र का मैंने पाठ किया॥ ५—८॥

॥ धर्मराज स्तुति ॥

ऋषिपुत्र उवाच–

त्वं धाता च विधाता च श्राद्धे चैव हि दृश्यसे। पितृणां परमो देवश्चतुष्पाद नमोऽस्तु ते॥ ९॥
कालज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवादी दृढव्रतः। प्रेतनाथ महाभाग धर्मराज नम्गेऽस्तु ते॥ १०॥
कर्म कारयिता चैव भूतभव्य भवत्प्रभो। पावको मोहनश्चैव संक्षेपो विस्तरस्तथा॥ ११॥
दण्डपाणे विरूपाक्ष पाशहस्त नमोऽस्तु ते। आदित्यसदृशाकार सर्वजीवहर प्रभो॥ १२॥
कृष्णवर्ण दुराधर्ष तैलरूप नमोऽस्तु ते। मार्तण्डसदृश श्रीमन्मार्तण्डसदृशद्युतिः॥ १३॥

ऋषि पुत्र बोले—आपको धाता और विधाता भी श्रद्धा से देखते हैं, आप पितरों के परमदेवता हैं, चार पैर वाले (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को देने वाले) धर्मराज आपको नमस्कार है। आप समय को जानने वाले हैं, उपकारी हैं, सत्यवादी हैं दृढ निश्चयी हैं। हे प्रेतों के स्वामी महाभाग धर्मराज आपको नमस्कार है। कर्म को करवाने वाले आप भूत, भविष्य एवं वर्तमान सबके स्वामी हैं। आप अग्नि के समान हैं, सम्मोहन करने वाले हैं, संक्षेप एवं विस्तार भी आप ही हैं। पाश एवं दण्ड है हाथ में जिसके विशाल नेत्र वाले आपको नमस्कार है। सूर्य के समान आकार वाले सभी जीवों को हरने वाले, काले वर्ण वाले, आपको कोई पराजित नहीं कर सकता, तेल के रूप वाले आपको नमस्कार है। सूर्य के समान तेजस्वी आप ही हैं॥ ९—१३॥

हव्यकव्यवहस्त्वं हि प्रभविष्णो नमोऽस्तु ते। पापहन्ता व्रती श्राद्धा नित्ययुक्तो महातपाः॥ १४॥
एकदृग्बहुदृग्भूत्वा काल मृत्यो नमोऽस्तु ते। क्वचिद्दण्डी क्वचिन्मुण्डी क्वचित् कालो दुरासदः॥ १५॥

क्वचिद्बालः क्वचिद्बालः क्वचिद्रौद्रौ नमोऽस्तु ते। त्वया विराजितो लोकः शासितो धर्महेतुना॥ १६॥
प्रत्यक्ष्यं दृश्यते देव त्वां विना न च सिध्यति। देवानां परमो देवस्तपसां परमं तपः॥ १७॥

आप ही हवनीय द्रव्य एवं श्राद्धीय द्रव्य को ग्रहण करते हैं, आप स्वामी हैं, अतः नमस्कार है, आप ही पापियों को मारने वाले हैं, व्रती हैं। हे महातपस्वी आप नित्य श्रद्धा करने वाले हैं। आप एक दृष्टि एवं बहुदृष्टि वाले हैं, आप काल हैं, मृत्यु आप ही हैं, आप को नमस्कार है। आप ही कहीं दण्डी एवं कहीं जटा रखने वाले तपस्वी हैं, कहीं भयंकर काल के रूप में हैं। कहीं पर बालक, कहीं पर वृद्ध और कहीं पर रुद्र रूप धारण करने वाले आपको नमस्कार है। धर्म के लिये आप संसार में रहकर शासन करते हैं। आपके बिना देवता जो किसी प्रकार के सिद्धि को नहीं कर सकते, आप देवताओं के परमदेव हैं, तपस्यामें परमतप भी आप ही हैं॥ १४—१७॥

जपानां परमं जप्यं त्वत्तश्चान्यो न दृश्यते। ऋषयो वा तथा क्रुद्धा हतबन्धुसुहृज्जनाः॥ १८॥
पतिव्रतास्तु या नार्यो दुःखितास्तपसि स्थिताः। न त्वं शक्त इह स्थानात्पातनाय कदाचन॥ १९॥
तस्मात्त्वं सर्वदेवेषु चैको धर्मभृतां वरः। कृतज्ञः सत्यवादी च सर्वभूतहिते रतः॥ २०॥

जपों में आप परमजप हैं, आपके अलावा कोई वस्तु नहीं दिखाई देती, आपके क्रुद्ध होने पर भाई, मित्र लोग अथवा ऋषि सब नष्ट हो जाते हैं। यदि पतिव्रता नारी भी दुखित होकर तपस्या करे, फिर भी इस स्थान से आपको नहीं हटा सकती। सभी देवताओं में आप ही एक हैं, जो धर्म को धारण किये हैं। आप कृतज्ञ हैं, सत्यवादी एवं सभी प्राणियों के हित करने वाले हैं॥ १८—२०॥

श्लोक संख्या ९ से लेकर २० तक धर्मराज की स्तुति है, इस स्तुति को नित्य करने वाला मनुष्य धर्मराज की कृपा से नरक के दुःखों से मुक्त होता है।

वैशम्पायन उवाच—

एवं श्रुत्वा स्तवं दिव्यमृषिपुत्रेण भाविषतम्। परितुष्टस्तदा धर्मो ह्यौद्दालकसुतं प्रति॥ २१॥

वैशम्पायन बोले—इस प्रकार ऋषिपुत्र के द्वारा अपनी स्तुति सुनकर यमराज औद्दालक के पुत्र से अति प्रसन्न तथा अत्यन्त सन्तुष्ट हुए।

यम उवाच—

परितुष्टोऽस्मि भद्रं ते माधुर्येण तवानघ। याथातथ्येन वाक्येन ब्रूहि किं करवाणि ते॥ २२॥
वरं वरय भद्रं ते यं वरं काङ्क्षसे द्विज। शुभं वा श्रेयसा युक्तं जीवितं वाप्यनामयम्॥ २३॥

यमराज बोले—हे पाप रहित ऋषिपुत्र आपके मधुर वचन से मैं प्रसन्न हूँ, आप बतायें, मैं आप के लिए क्या करूँ? हे भद्र, आप बतायें आप को कौन सा वरदान चाहिये, क्या आपको शुभ, कल्याणकारी निरोग जीवन चाहिए?॥ २२-२३॥

ऋषि उवाच—

नेच्छाम्यहं महाभाग मृत्युं वा जीवितं प्रभो। यदि त्वं वरदो राजन्सर्वभूतहिते रतः॥ २४॥
द्रष्टुमिच्छाम्यहं देव तव देशं यथा तथम्। पापानां च शुभानां च या गतिस्त्विह दृश्यते॥ २५॥
सर्वं दर्शय मे राजन्यदि त्वं वरदो मम। चित्रगुप्तं च तं राजन्कार्यार्थे तव चिन्तकम्॥ २६॥

ऋषि पुत्र बोले—हे महाभाग, मुझे मृत्यु या जीवन नहीं चाहिए। सभी प्राणियों की रक्षा करने वाले, हे प्रभो यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो आप मुझे वरदान दीजिए! मैं आपके देश [यमलोक] का दर्शन करना चाहता

हूँ, जिसमें पापियों तथा पुण्यात्मा की गति कैसी होती है। **हे राजन यदि आप हमें वरदान देते हैं तो अपने नगर [यमपुरी] का समग्र और "चित्रगुप्तजी" का दर्शन करा दीजिए, जो आपके चिन्तक हैं** ॥ २४—२६ ॥

दर्शयस्य महाभाग सर्वलोकस्य चिन्तक। यथा कर्मविशेषाणां दर्शनार्थं करोति सः॥ २७॥
एवमुक्तो महातेजा द्वारस्थं संदिदेश ह। चित्रगुप्तसकाशं तु नय विप्रं सुयन्त्रिम्॥ २८॥
वक्तव्यश्च महाबाहुरस्मिन्विप्रे यथातथम्। प्राप्तकालं च युक्तं च तत्सर्वं वक्तुमर्हसि॥ २९॥
ततोऽहं त्वरितं नीतस्तेन दूतेन दर्शितः। प्राप्तश्च परया प्रीत्या चित्रगुप्तनिवेशनम्॥ ३०॥
प्रत्युत्थितश्च मां दृष्ट्वा चिन्तयत्विा तु तत्त्वतः। स्वागतं मुनिशार्दूल यथेष्टं परिगम्यताम॥ ३१॥
एवं सम्भाष्य मां वीरः स्वान्भृत्यान्सन्दिदेश ह। कृताञ्जलि पुटान्सर्वान्घोररूपान्भयानकान्॥ ३२॥

सम्पूर्ण संसार के चिन्तक आप मुझे दर्शन करा दीजिए। विशेष पुण्य के कारण वह दर्शन हो सके। इस प्रकार द्वार पर स्थित द्वारपाल को आदेश देते हुए धर्मराज कहते हैं कि हे द्वारपाल इस ब्राह्मण को ठीक से **चित्रगुप्तजी** के पास ले जाओ। **महाबाहु चित्रगुप्तजी से समस्त बात समयानुसार बता देना।** इसके बाद शीघ्र उस दूत के द्वारा बताये मार्ग से चलकर परम प्रसन्नता देने वाले चित्रगुप्तजी के भवन पर पहुँचा। **परमतत्त्व को जानने वाले चित्रगुप्तजी** मुझे देखकर मेरा स्वागत करते हुए कहते हैं कि हे मुनिश्रेष्ठ! आप निःसंकोच आइये। इस प्रकार अपने सेवकों (यमदूतों) को आदेश दिया। **महाभयानक रूप वाले यमदूतों ने चित्रगुप्तजी को प्रणाम किया** ॥ २७-३२ ॥

चित्रगुप्त उवाच–

भो भो शृणुत मे दूता मम चित्तानुवर्त्तकाः। भक्तिमन्तो दुराधर्षा नित्यं व्रतपरायणाः॥ ३३॥
अयं विप्रो मयादिष्टः प्रेतावासं गमिष्यति। अस्य रक्षा च गुप्तिश्च भवद्भिः क्रियतामिति॥ ३४॥
नैव दुःखेन खेदः स्यान्न चोष्णेन च शीततः। बुभुक्षापि तृषा वापि एष आज्ञापयामि वः॥ ३५॥

चित्रगुप्त जी बोले—मेरे वशवर्ती हे दूतों! सुनो, तुम भक्ति करने वाले हो, वीर हो नित्य अपने कार्यरूपी व्रत में लीन रहने वाले हो, **मेरे आदेश से यह ब्राह्मण प्रेत नगरी को देखने जायेंगे।** इनकी रक्षा एवं आन्तरिक सुरक्षा तुम लोगों को करना है। इस ब्राह्मण को न गर्मी से, न शीतलता से, न भूख से, न प्यास से, इन्हें किसी प्रकार का भय न हो, ये ध्यान रखना॥ ३३—३५ ॥

भगवान् चित्रगुप्त ही यमलोक के स्वामी हैं, धर्मराज भी भगवान् चित्रगुप्त के आदेश का पालन करने वाले हैं। **भगवान् चित्रगुप्त के आदेश से यमदूतों ने नचिकेता ऋषि को यमपुरी का दर्शन कराया।**

एवं दत्तवरो विप्रो गुरुचित्तानुचिन्तकः। सर्वभूतदयावांश्च द्रव्यवांश्च स वै द्विजः॥ ३६॥
यथाकाममयं पश्येद्धर्मराजपुरोत्तमम्। एवमुक्त्वा महातेजा गच्छ गच्छेति चाब्रवीत्॥ ३७॥

चित्रगुप्तजी ने, गुरु की आज्ञा का अनुशरण करने वाले ब्राह्मण को, इस प्रकार वरदान देकर कहा कि यह ब्राह्मण सभी प्राणियों पर दया करने वाले हैं, अतः अपनी इच्छानुसार ये धर्मराज के उत्तमपुरी का दर्शन कर लें, ऐसा कह कर, ब्राह्मण से बोले! आप जाईये॥ ३६-३७ ॥

ऋषिपुत्र उवाच–

सन्दिष्टाश्च ततो दूताश्चित्रगुप्तेन धीमता। धावन्तस्त्वपरमाणास्तु गृह्णन्तो घ्नन्त एव च॥ ३८॥
बन्धयन्ति महाकाया निर्दहन्ति महाबलाः। पाटयन्ति प्रहारैश्च ताडयन्ति पुनःपुनः॥ ३९॥

वेणुयष्टिप्रहारैश्च प्रहरन्ति ततोऽधिकैः। भग्ना विभिन्नाश्च तथा भग्नशिरोधराः॥ ४०॥
रुदन्ति करुणं घोरं त्रातारं नाप्नुवन्ति ते। नरकेऽपि तथा पूर्णे ह्यगाधे तमसावृते॥ ४१॥
केचिच्च तेषु पच्यन्ते दह्यन्ते पावकेन्धनम्। तेलपाके तथा केचित्केचित्क्षारण सर्पिषा॥ ४२॥

ऋषिपुत्र बोले—धीमान् (बुद्धिमान) चित्रगुप्त के आदेश से मैं प्रेतनगरी में पहुँचा, वहाँ का दृश्य अत्यन्त विभत्स था, जो इस प्रकार है। कुछ दूत पापी प्राणियों को मार रहे हैं, कुछ को पकड़कर पटक रहे थे। ये महाशक्तिशाली उस विशालकाय प्राणी को बाँधकर जलाते हैं, मारते हैं, बार-बार प्रताड़ित करते हैं। बाँस की छड़ी से जोर-जोर से मारते हैं। जिसके कारण प्राणी के शिर एवं धड़ टूट जाते हैं। पापी प्राणी करुण विलाप करता है, किन्तु कोई बचाता नहीं है। वह भयंकर नरक घोर अन्धकार से घिरा हुआ है, कुछ प्राणी आग में पकाये जाते हैं, कुछ जलाये जाते हैं, कुछ को तप्त तेल में डाला जाता, कुछ को सरसों की तरह गरम किया जाता है। ३८—४२॥

पतन्ति ते दुरात्मानस्तत्र तत्र च कर्मभिः। यातनाभिर्दह्यमाना घोराभिश्च ततस्ततः॥ ४३॥
केचिद्यन्नमुपारोप्य संपीड्यन्ते तिला व। तेषां संपीड्यमानानां शोणितं स्त्रवते बहु॥ ४४॥
ततो वैतरणी घोरा संभूता निम्नगा तथा। सफेनसलिलावर्त्ता दुस्तरा पापकर्मिणाम्॥ ४५॥
अथान्ये शूलं आरोप्य दूताः पादेषु गृह्य वै। वैतरण्यां सुघोरायां प्रक्षिपन्ति सहस्त्रशः॥ ४६॥

अपने-अपने किये पाप कर्मों के अनुसार वहाँ दुष्ट प्राणियों को अनेक भयंकर यातना दूतों के द्वारा दिया जाता है। कुछ पापी जीव को तिल के अन्न में रखकर धीरे-धीरे जलाया जाता है तथा उनके शरीर से बहुत सा रक्त गिरने लगता है। वहीं पर वैतरणी नदी विकराल रूप में है, उसी में डुबो दिया जाता है। पाप कर्म करने वाला जीव उस वैतरणी नदी के फेन वाले जल के भंवर में पड़ जाता है, जिससे निकलना अत्यन्त कठिन है। दूत लोग, पापी जीव के पैर को पकड़कर शूल पर चढ़ाते हैं तथा उस भयंकर वैतरणी में हजारों बार डाल देते हैं॥ ४३—४६॥

नानुष्णे रुधिरे तत्र फेनमालासमाकुलाः। दशन्ति सर्पास्तांस्तत्र प्राणिनस्तु सहस्त्रशः॥ ४७॥
अनुत्तार्य तदा तस्या उच्छ्रिता विकृता वशाः। आवर्त्तादूर्मयश्चैव ह्युत्तिष्ठिन्ति सहस्त्रशः॥ ४८॥
तत्र शुष्यन्ति ते पापाः सर्वदोपसमन्वितः। भजन्तश्च वमन्तश्च त्रातारं नाप्नुवन्ति ते॥ ४९॥
अथान्ये बहवस्तत्र बहुभिश्चापि दूतकैः। कूटशाल्मलिमारोप्य लोहकण्टकसंवृताम्॥ ५०॥
असिशक्तिप्रहारैश्च ताडयन्ति पुनः पुनः। तत्र शाखासु घोरासु मया दृष्टाः सहस्त्रशः॥ ५१॥

उस नदी में खून के फेन से व्यग्र उस प्राणी को हजारों सर्प काटते हैं। उस नदी में उपर नीचे होने के कारण प्राणी विवश हो जाता तथा उस भंवर में हजारों वृक्ष दिखाई देने लगते हैं। सभी दोषों से युक्त पापी प्राणी उसमें सूख जाते हैं। उस नदी में डूबते रहते हैं, उल्टी (वमन) करते हैं, किन्तु कोई उनको बचाता नहीं है। अन्य अनेकों दूतों से घिरे हैं लोहे के काँटे के युक्त शाल्मली वृक्ष पर चढ़ाकर उनको बार-बार तेज प्रहार करते हैं, उस वृक्ष की शाखा पर हजारों जीव बैठे हुए दिखाई दिये॥ ४७—५१॥

कूष्माण्डा यातुधानाश्च लंबमाना भयानकाः। अतिक्रम्य च ते स्कन्धास्तीक्ष्णकण्टकसङ्कुलाः॥ ५२॥
वेदनार्त्तास्तु वेगेन शीघ्रं शाखा उपारुहन्। तत्र ते निहता घोरा राक्षसाः पिशिताशनाः॥ ५३॥
घ्नन्ति चारूढगात्राणि निःशङ्कं तमसा वृत्तम्। संक्रमाच्चैव खादन्ति शालायां कपिवद्धशम्॥ ५४॥
यथा च कुक्कुटं खादेत् कश्चिन्म्लेच्छोनिराकृतः। तथा कटकटाशब्दस्तस्मिन्वृक्षे मया श्रुतः॥ ५५॥

बड़े-बड़े भयानक राक्षसादि तीक्ष्ण काँटा से युक्त उन शाखाओं पर रहते हैं। जब पापी जीव दुःखित होकर बचने के लिए उन शाखाओं पर चढ़ता है तो वे राक्षस तेजधार वाले अस्त्रों से उनको मारते हैं। उनके शरीर पर

प्रहार करते हैं, चारों तरफ अन्धकार रहता है, जैसे बन्दर डाली पर बैठ कर खाते रहते हैं, वैसे ही भयानक राक्षस उस पापी जीव को खाते हैं, जैसे म्लेच्छ लोग मुर्गा इत्यादि को खाते हैं। उसी प्रकार उस वृक्ष पर कुछ शब्द हो रहा है, ऐसा मैंने सुना॥ ५२—५५॥

पक्कमाम्रफलं यद्वन्नरः खादेद्यथा वने। एवं ते मुखतः कृत्वा महावक्रा दुरासदाः॥ ५६॥
चूषयित्वा तु तान्सर्वांस्ते च तस्मिन्नगोत्तमे। विसृजन्ति क्षितिं यावदास्थिभूतान्नरांस्तथा॥ ५७॥
ततो जवेन संयुक्ता वनस्थाश्रूषिताः पुनः। आविष्टानि च कर्माणि पुनः शीघ्रमकामयन्॥ ५८॥
अधस्तात्तु पुनस्तत्र पश्यन्तः पापकर्मिणः। बहुसंख्येषु पापेषु दारुणेषु सुदुःखिताः॥ ५९॥
भो देव पाहि मुञ्चेति वन्दतः पुरुषं वचः। यमदूता निरामर्षाः सूदयन्ति पुनः पुनः॥ ६०॥

जैसे जंगल में मानव पका आम खाता है, उसी प्रकार ये राक्षस उस उँचे स्थान पर प्राणियों को चूसते हैं और नीचे फेंक देते हैं। उन राक्षसों के द्वारा बार-बार चूष लिए जाने के बाद अपने अवशिष्ट पाप कर्म के कारण वे पापी अनेक कठिन दुख को भोग रहे हैं। हे देव, हमारी रक्षा कीजिए, इस प्रकार का वचन बोलते हैं, किन्तु ये यमदूत निर्दयी होकर बार-बार कष्ट देते हैं॥ ५६—६०॥

पाषाणवर्षैः केचित्तु पांसुवर्षेश्च विद्रुताः। प्रविशन्ति नगच्छायां ततस्ते प्रज्वलन्ति तु॥ ६१॥
द्रवन्ति च पुनस्तत्र दूतैश्चापि दृढं हताः। भुवनेषु च घोरेषु पच्यन्ते ते दृढग्निना॥ ६२॥
वारिपूर्णे ततः कुम्भं शीतलं च जलं पुनः। दीयतां दीयतां चेति बुवते नः प्रसीदय॥ ६३॥
ततः पानीयरूपेण जलं तप्तं तु दीयते। तेन दग्धाष्च आर्त्ताश्च क्रोशन्तश्च परस्परम्॥ ६४॥
आलिङ्ग्यालिङ्ग्य दुःखिर्त्ताः केचित्तत्र पतन्ति वै। तथान्ये क्षुधितास्तत्र हाहाभूतमचेतः॥ ६५॥

कहीं पर पत्थर की वर्षा होती है, कहीं पर केवल आंधी ही आती है। भयभीत होकर जीव जब पहाड़ के द्वार में प्रवेश करता है तो वहां भी आग से जलने लगते हैं। उन दूतों के द्वारा बार-बार मारने से वे बेचैन हो जाते हैं। भयंकर अग्निमें वे जीव पकाये जाते हैं। पापी जो इन कष्टों से घबराकर दूतों से शीतल जल की इच्छा करते हैं, किन्तु वे उन पर प्रसन्न नहीं होते। पानी के नाम पर गर्म जल पीने के लिए दिया जाता है, जिससे जलकर दुखी होकर आपस में मिल कर रोते हैं। दुखी होकर आपस में आलिंगन करके गिर जाते हैं। कुछ जीव भूख से व्याकुल होकर मुर्च्छित हो जाते हैं॥ ६१—६५॥

अन्नानां च सुमिष्टानां भक्ष्याणां च विशेषतः। पश्यन्ति राशिं तत्रस्थां सुगन्धां पर्वतोपमाम्॥ ६६॥
दधिक्षीररसांश्चैव कृसरान्पायसं तथा। मधुमाधवपूर्णानि सुरामैरेयकस्य च॥ ६७॥
माध्वीकस्य च पानस्य सीधोर्जातरिसस्य च। पानानि दिव्यानि सुगन्धीनि वै शीतलानि च॥ ६८॥
गोरसस्य च पानानि भोजनानि च नित्यशः। तपोऽर्जितानि दिव्यानि तिष्ठन्ति सुकृतात्मनाम्॥ ६९॥

पुण्यात्मा जीव दिव्य लोक में मीठा एवं स्वादिष्ट भोजन करते हैं, वहाँ सुन्दर एवं सुगन्धित भोज्य पदार्थ पर्वत के समान रखे गये थे। दही, दूध, खिचडी, खीर, मीठा भोजन देवताओं के लिए जो भोज्य है। मैरेय, माध्वी तथा सिधु नामक आसव, मीठा पान एवं सुष्टरस, सुगन्धित एवं शीतल, दिव्य जल पीने हेतु गाय का रस। जो लोग तपस्या के द्वारा पुण्य अर्जित किए है, ऐसे पुण्यशाली जीव को नित्य भोजन हेतु प्राप्त होता है॥ ६६—६९॥

माल्यानि धूपं गन्धाश्च नानारससमायुताः। मनोहराश्च कान्ताश्च भूयिष्ठाश्च सहस्त्रशः॥ ७०॥
भोजनेषु च सर्वेषु स्त्रियः कान्ता मनोहराः। गृहीतकुम्भ मणिकाः सर्वाभरणभूषिताः॥ ७१॥
फलानि कुण्डहस्ताश्च पात्रहस्तास्तथापराः। सुमनः पाद्य हस्ताश्च अदीनाः परमाङ्गनाः॥ ७२॥

अन्नदानस्ताश्चैव भोजयन्ति सहस्रशः। नूपुरोज्वलपादाश्च तिष्ठन्ति च मनोहराः॥ ७३॥
उपस्थाप्य महायोग्यमत्र काले च योषितः। ब्रुवन्ति सर्वास्ताश्चैव तस्यां तस्य च दक्षिणाः॥ ७४॥

नाना रस एवं गन्ध से युक्त माला, हजारों सुन्दर स्त्रियों वहाँ थी। सुन्दर सभी स्त्रियाँ भोजन के समय सभी अलंकारों से युक्त मणि के कलश हाथ में पकड़ी हैं। कुछ स्त्रियाँ सुन्दर फल के विशाल पात्र को हाथ में ली हुई हैं। सुन्दर एवं प्रसन्नचित्त वाली स्त्रियाँ आतिथ्य सेवा के लिए खड़ी थीं। जो अन्न का दान किये हैं, ऐसे हजारों लोग भोजन करते हैं। सुन्दर नूपुर पहनी हुई स्त्रियाँ बैठी हैं। महान योग्य स्त्रियाँ वहाँ थीं। आपस में बातें करती रहती हैं, लग रहा है इनकी यही दक्षिणा है॥ ७०—७४॥

निघ्नन्तश्च हसन्तश्च दूता निष्ठुरवादिनः। भो भो कृतघ्ना लुब्धाश्च परदाराभिमर्शकाः॥ ७५॥
पापाशया निष्कृतिकाः सर्वदानविवर्जिताः। परापवादनिरताः पापैर्बद्धकथानकाः॥ ७६॥
निर्लज्जा गृहका देया याचितुं मनसा हिताः। सुलभानि न दत्तानि विभवे सति लौकिके॥ ७७॥
पानीयमथ काष्ठानि यद्यन्नं सुखमागतम्। तेन वध्या भवन्तो वै यातनाभिरनेकशः॥ ७८॥

वहीं कठोर वचन बोलने वाले दूत आपस में हंस रहे थे कि हे कृतघ्न, लोभी दूसरी स्त्री पर नजर रखने वाला, पाप कर्म करने वाला निष्ठुर कभी दान न देने वाला, दूसरे के अपयश को करने वाला तथा नित्य पाप युक्त कथानक को बताने वाला, लज्जाहीन याचक को माँगने पर भी कुछ न देने वाला, कभी दूसरे का हित न करने वाला इस संसार में धन होते हुए भी किसी को कुछ न देने वाला, पीने योग्य जल एवं सुखपूर्वक अन्न जो कड़ा है, उसका भोजन कराने वाले पापी को उन दूतों के द्वारा अनेक बार यातनाओं के द्वारा कष्ट दिया जाता है॥ ७५—७८॥

कर्मणां च क्षयो जातः संसारे यदि पच्यते। विमुक्ताश्चेह लोकात्तु जनिष्यथ सुदुर्गताः॥ ७९॥
कुलेषु सुदरिद्रेषु सञ्जाताः पापकर्मिणः। पापैरनुगता घोरैर्मानुषं लोकमाश्रिताः॥ ८०॥
वृत्तस्थाभुञ्जत हेमांश्चतुर्वर्ण्यान्विशेषतः। ततः सत्यरताः शान्ता दयावन्तः सुधार्मिकाः॥ ८१॥
इह विश्राम्य ते धीराः किंचित्कालं सहानुगाः। गच्छन्ति परमं स्थानं पृथिव्यां वा महत्कुले॥ ८२॥
बहुसुन्दरनारीके समृद्धे सुसमाहिताः। अजायन्त तथा क्षान्ताः प्राप्स्यन्ति परमां गतिम्॥ ८३॥

इस संसार में जो कर्म किया है, उस कर्म का फल क्षय हो जाता है और इस लोक में ही जो गति है वह अपने कर्मों के कारण समाप्त हो जाती है। मनुष्यलोक में घोर पाप कर्म करने के कारण कुल में दरिद्रता आती है। अपनी वृत्ति के अनुसार चारों वर्ण विशेषकर सुख एवं दुःख भोगता है। इसलिए सत्यवादी, शान्त, धार्मिक एवं दयावान होना चाहिए। धैर्यवान व्यक्ति इस संसार में कुछ समय विश्राम करके उत्तम कुल में इस पृथ्वी पर जाते हैं। सुन्दर एवं समृद्ध स्त्री के साथ इस पृथ्वी पर जन्म लेकर शान्ति को प्राप्त करते हुए परम गति को प्राप्त करते हैं॥ ७९—८३॥

× × ×

अध्याय-१९९

ऋषि उवाच—

तस्मिन क्षितितलं सर्वमायसैः कण्टकैश्चितम्। प्रभवन्ति पुनः केचिद्विषमं तमसाश्रितम्॥ १ ॥
अथान्यै छिन्नपादास्तु छिन्नपाणिशिरोधराः। पापाचारः स्तथा देशादुपसर्पत मा चिरम्॥ २ ॥
ये तु धर्मरता दान्ता वपुष्मन्तो यथा गृहे। परिपान्ति क्षितिं सर्वे पात्यन्ते पापकारिणः॥ ३ ॥
याचमानाः स्थिता नित्यं सुशीतैस्तोयभोजनैः। स्त्रियः श्रीरूपसंकाशाः सुकुमाराः सुभोजना॥ ४ ॥

कृत्वा पूजां परां तत्रं प्रतीक्षन्ते परं जनम्। अग्नितप्ते सुघोरे च निक्षिप्यन्ते शिलातले॥ ५ ॥
आलोके च प्रदर्श्यन्ते वृक्षाश्च भुवनानि च। आयान्ति दह्यमानेषु पृष्ठपादोदरेषु च॥ ६ ॥

नचिकेता उस यमपुरी का वर्णन कर रहे हैं-उस यमपुरी में चारों ओर लोहे का काँटा व्याप्त है, कुछ जगह घोर अन्धकार दिखाई देता है। कुछ पापी जीव जिनके हाथ, पैर कटे हुए हैं, वे लोग उस स्थान से निकलना चाहते हैं। वे जो धर्म परायण हैं, उदार हैं, वे सुन्दर शरीर वाले होकर, घर के समान ही रहते हैं और नित्य शीतल जल, भोजन, सुकुमारी स्त्रियों द्वारा निर्मित भोजन को पाने के अधिकारी होते हैं। परब्रह्म की पूजा करके उनके दूतों की प्रतिक्षा करते हैं। पापियों पर अग्नि से जलते पत्थर पर फेंके जाते हैं। वहाँ अनेक वृक्ष, पृथ्वी दिखायी देती है। वहाँ पीठ, पैर एवं उदर को जलाये जाते हैं॥ १—६॥

तत्र गत्वा तु ते दूताः प्रविशन्ति सुदारुणाः। क्लिश्यन्ति बहवस्तत्र त्रातारं नाप्नुवन्ति ते॥ ७ ॥
अथान्ये तु श्वभिर्घोररौपादतलमस्तकम्। भक्ष्यमाणा रुदन्तश्च क्रोशन्तश्च पुनःपुनः॥ ८ ॥
अथान्ये तु महारूपा महाद्रंष्ट्रा भयानकाः। सूचीमुखं कृताः पापाः क्षुधितास्तृषितास्तथा॥ ९ ॥
अन्नानि दीयमानानि भक्ष्याणि विविधानि च। भोज्यानि लेह्यचोष्याणि यौर्निषिद्धं दुरात्मभिः॥ १०॥
अयःसारमयी नारी वह्नितप्ता सुदारुणा। आलिङ्गति नरं तत्र धावन्तं चानुधावति॥ ११॥
धावन्तं चानुधावंती त्विदं वचनमब्रवीत्। अहं ते भगिनी पाप ह्यहं भार्या सुतस्य ते॥ १२॥
मातृष्वसा ते दुर्बुद्धे मातुलानी पितृष्वसा। गुरुभार्या मित्रभार्या भ्रातृभार्या नृपस्य च॥ १३॥
श्रोत्रियाणां द्विजातीनां जाया वै धर्षितास्त्वया। मोक्ष्यसे न हि पापात्त्वं रसातलगतो यथा॥ १४॥

वहाँ से आगे वे दूत भयंकर क्षेत्र में प्रवेश करते हैं, जहाँ पापी जीव दुःखी होकर अपनी रक्षा के लिये पुकारते हैं, किन्तु कोई रक्षा नहीं करता। कुछ भयंकर कुत्ते पापियों के पैर एवं मस्तक को खा रहे हैं, वे पापी रो रहे हैं और अपने किए कार्य पर पश्चाताप करते हुए कोस रहे हैं। अन्य भयंकर रूपवाले बड़े दाँत वाले, भयानक लगने वाले सूई के समान मुख वाले पापी भूख और प्यास से तड़प रहे हैं। दिये गये अन्न, अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थ का भोजन करते हैं, गरम पदार्थ जो चाहते हैं, उससे उन पापियों को रोक दिया जाता है। लोहे की बनी स्त्री, जो अग्नि से गरम की गयी है वे आलिङ्गिन हेतु उस पापात्मा को पकड़ती है, वे भागते हैं, उनके पीछे वह लोहे की स्त्री दौड़ती हुई कहती है कि मैं तुम्हारी बहन लगती हूँ, मैं आपकी पुत्र की बधू हूँ। मौसी हूँ, हे दुर्बुद्धे मैं मामी, चाची, गुरु पत्नी, मित्र की पत्नी, भाई की पत्नी, राजा की पत्नी लगती थी, मैं वेद पाठी ब्राह्मण की पत्नी हूँ, किन्तु तुमने कुदृष्टि डाली है, तुमने मुझे खींचा है, अब मैं तुमको नहीं छोड़ूंगी, जब तक तुम रसातल में नहीं चले जाओगे॥ १०—१४॥

किं प्रधावसि निर्लज्ज व्यसनैश्चोपपादितः। हनिष्येऽहं ध्रुवं पाप यथा कर्म त्वया कृतम्॥ १५॥
एवं वै बोधयन्तीह श्रावयन्ति पुनःपुनः। अभिद्रवन्ति तं पापं घोररूपा भयानकाः॥ १६॥
ज्ञानिनां च सहस्त्रेषु जातं जातं तथा स्त्रियः। अनुपीड्य दुरात्मानं धर्षयंति सुदारुणम्॥ १७॥
बृषलीर्बहुलैर्दुःखैः किं क्रन्दसि पुनःपुनः। किं क्रन्दसि सुदुर्बुद्धे परिष्वक्तः स्वयं मया॥ १८॥
दशधा त्वं मया पाप नीयमानः पुनःपुनः। अञ्जलि वापि कुर्वाणो याचमानो न लज्जसे॥ १९॥
न मोक्ष्यसे मया पाप कुतो गच्छसि मूढ वै। यत्र यत्र प्रयासि त्वमिति गत्वा यमालये॥ २०॥
तत्र तत्रैव पाप त्वां न त्यक्ष्ये पारदारिकम्। लोहयष्टिप्रहारैश्च ताडयन्ति पुनःपुनः॥ २१॥

हे पापी निर्लज्ज, क्यों तुम बुरे व्यसनों में दौड़ते थे, तुमने जो कर्म किया है, उसे अब भोगो। उस प्रकार वे नारी बार-बार उस पापी को बताती है, सुनाती है और उस भयानक पापी के पीछे दौड़ती है। ज्ञानियों के हजार

बार मना करने पर हे दुष्ट आत्मा वाले तुम स्त्रियों के पीछे-पीछे दौड़ते थे। धर्मविरूद्ध कार्य करने वाले अब दु:ख पड़ने पर क्यों बार-बार रोते हो। मैं तुम्हें अब आलिंगन करती हूँ तो क्यों रो रहे हो। इस प्रकार के पाप में तुम मुझे ले गये हाथ जोड़ने पर भी याचना करने पर भी तुम्हें लज्जा नहीं आयी। हे पापी मुझे तुम नहीं छोड़े, अब तुम कहाँ जा रहे हो। इस यमपुरी में परस्त्री गामी, तुम जहाँ जाते हों, वहाँ मैं पहुँचकर तुम्हें पकड़ूंगी, छोड़ूँगी नहीं और लोहे की छड़ी से बार-बार प्रहार करती है॥ १५—२१॥

गोपाला इव दण्डेन कालयन्तो मुहुर्मुहुः। व्याघ्रसिंहसृगालैश्च तथा गर्दभराक्षसैः॥ २२॥
भक्ष्यन्ते श्वापदैरन्यैः श्वभिः काकैस्तथाऽपरे। असि तालवनं तत्र धूमज्वालासमाकुलम्॥ २३॥
दावाग्निसदृशाकारं प्रदीप्तं सर्वतोऽर्चिषा। तत्र क्षिप्त्वा ततः पापं यमदूतैः सुदारुणैः॥ २४॥
दह्यमानान्सुतप्तांश्च संश्रयन्ते द्रुमान्पुनः। असिपत्रैस्ततो वृक्षाच्छिन्दन्ति बहुशो नरान्॥ २५॥
तत्र छिन्नाश्च दग्धाश्च हन्यमानाश्च सर्वशः। विधृष्टा विकृताश्चैव दह्यमाना नदन्ति ते॥ २६॥
असितालवनद्वारि ये तिष्ठन्ति महारथाः। पापकर्मसमायुक्तांस्तर्जयन्ति सुदारुणाः॥ २७॥
भो भो पापसमाचारा धर्मसेतुविनाशकाः। अतो निमित्तं पापिष्ठा यातनाभिः सहस्त्रशः॥ २८॥

गोपालकों की तरह बार-बार दण्ड से दण्ड देती है। उस जीव को व्याघ्र, सिंह, सियार, गदर्भ, राक्षस, अन्य जानवर, कुत्ते, कौवे खा रहे हैं। उनके दाँत तीक्ष्ण तलवार के समान बने हैं, वहाँ घोर अन्धकार है। जंगल में जिस प्रकार आग लगती है और उसकी लपटें चारों ओर फैल जाती है, उसी प्रकार उस अग्नि में यमदूत उस जीव को डाल देते हैं। जब पापी जीव उसमें जलने लगते हैं तो बचने के लिए उस वृक्ष पर चढ़ते हैं उस वृक्ष के पत्ते तलवार की धार के समान तेज हैं, जिससे उन जीवों का शरीर काट दिया जाता है। वहाँ छेदा जाता है, जलाया जाता है, मारा जाता हुआ जीव, खिन्न होकर शब्द करने लगता है। उस असिताल बन के दरवाजे पर बैठे हुए महारथी उस पापी को खूब डाँटते हैं। हे पापी, तुमने धर्म के सेतु को नष्ट किया है, इसलिए तुम हजारों यातनाओं को भोगो॥ २४-२८॥

अनुभूयेह तत्सर्वे मानुष्यं यदि यास्यथ। कुलेषु सुदरिद्राणां गर्भवासेन पीडिताः॥ २९॥
भोगैश्च पीडिता नित्यं उत्पत्स्यथ सुदुर्गताः। अग्निज्वालानिभास्तत्र अग्निस्पर्शा महारथाः॥ ३०॥
पक्षिणश्चायसैस्तुण्डैर्व्याघ्राश्चै सुदारुणाः। तत्र घोरा बहुविधाः कव्यादाः श्वादयस्तथा॥ ३१॥
खादंति रुषितास्तत्र बहवो हिंसका नरान्। ऋक्षद्वीपिसमाकीर्णे बहुकीटपिपीलिके॥ ३२॥
असितालवने विप्रा बहुदुःखसमाकुले। तत्र क्षिप्ता मया दृष्टा यमदूतैर्महाबलैः॥ ३३॥
असिपत्र सुभग्नाङ्गाः शूललग्नास्तथाऽपरे। तथाऽपरो महादेशो नानारूपो भयानकः॥ ३४॥
पुष्करिण्यश्च वाप्यश्च ह्रदा नद्यस्तथैव च। तडागानि च कूपाश्च रुधिरस्य सहस्त्रशः॥ ३५॥
पूतिमांसकृमीणां च अमेध्यस्य तथैव च। अन्यानि च मया तत्र दृष्टानि मुनिसत्तमाः॥ ३६॥

इस लोक में समस्त यातनाओं को भोगकर यदि तुम मनुष्य योनि में जाओगे तो तुम दरिद्र एवं दु:खी कुल के गर्भ में जन्म लोगे। उस योनि में जन्म लेकर भी अनेक कष्टों को भोगोगे, इतना कहकर वह स्त्री अग्नि की ज्वाला के समान गर्म होकर जब उस जीव को स्पर्श करती है तो वह चिल्लाता है। वहाँ लोहे के चोंच वाली पक्षियाँ, व्याघ्र, कुत्ते राक्षस आदि इसके माँस को खाते हैं, उस जीव के मांस को हिंसक जीव खाते हैं और वे खून को पीते हैं। रीछ, सिंह, चींटी अनेक प्रकार के कीड़े उस जीव को काटते हैं॥ ३१-३२॥ वहाँ असिताल वन है जो अत्यन्त दु:ख देने वाला है, हे विप्र! महाबलशाली यमदूत उन जीवों को उस वन में डाल देते हैं। कुछ लोगों को

तलवार के धार के समान पत्ते से शरीर कट रहे हैं, उस पत्ते के नुकीले भाग से शरीर छेदे जा रहे हैं। वहाँ पर पुष्करणी, वापी, छोटी नदियाँ, बड़ी नदी, तालाब और कुँआ ये सब खून से भरे हुए थे, इनकी संख्या हजारों की थी। हे मुनि लोग वहाँ माँस, कीड़े से भरा हुआ अन्य भी स्थान मैंने देखा॥ ३३—३६॥

तत्र क्लिश्यन्ति ते पापास्तस्मिन्मध्ये सहस्रशः। जिघ्रन्तश्च तथा गन्धं मज्जन्तश्च सहस्रशः॥ ३७॥
अस्थिपाषाणवर्षाणि रुधिरस्य बलाहकाः। अश्मवर्षाणि ते घोराः पातयन्ति सहस्रशः॥ ३८॥
धावतां प्लवतां चैव हा हतोऽस्मीतिभाषिणाम्। प्राहतानां पुनः शब्दो वध्यतां च सुदारुणः॥ ३९॥
क्रन्दतां करुणोन्मिश्रं दिशोऽपूर्यन्त सर्वशः। क्वचिद्बद्धः क्वचिद्रुद्धः क्वचिद्विद्धः सुदारुणैः॥ ४०॥
क्वचित्स्थूलैस्तथा बद्धः उद्बद्धश्च क्वचित्तथा। हाहाभयानकोन्मिश्रः शब्दोऽश्रूयत दारूणः॥ ४१॥
अपश्यं पुनरन्यत्र यत्स्मृत्वा चोद्विजेन्नरः॥ ४२॥

उसमें हजारों पापी कष्ट को भोग रहे थे, उसके गन्ध को सूँध रहे थे, उसमें हजारों की संख्या के पापी डूब रहे थे। वहाँ के मेघ हड्डी एवं मांस की वर्षा कर रहे थे। हजारों पत्थरों की वर्षा हो रही थी, जिससे वे पापी जीव गिराये जा रहे थे, भागते हुए डूबते हुए जीव चिल्ला-चिल्ला कर कह रहे थे कि मैं मारा गया। जीव को जब दूत कठोरता से बाँधते थे तो वे जीव मारे जाने पर शब्द कर रहे थे। इन पापी जीवों के करुण क्रन्दन से चारों दिशा गुँज रही थी। कहीं बाँधे जाते हैं, कहीं पर छेदे जाते हैं, कहीं पर रोक लिए जाते हैं। कहीं मोटे स्थान पर बाँध लिये जाते हैं। कहीं पर ऊपर से लटकाये जाते हैं। हाहाकार से मिश्रित भयंकर शब्द सुनायी देता है। उस यमपुरी में मैंने जो देखा, उसे स्मरण करके मन काँप उठता है।

× × ×

अध्याय-२००

ऋषिपुत्र उवाच—

तप्तं चैव महातप्तं महारौरवरौरवौ। सप्ततालश्च नरको नरकः कालसूत्रकः॥ १॥
अन्धकारश्च नरको अन्धकारवरस्तथा। अष्टावेते तु नरकाः पच्यन्ते यत्र पापिनः॥ २॥
प्रथमे प्रथमं विद्याद्द्वितीये द्विगुणं तथा। तृतीये त्रिगुणं विद्याच्चतुर्थे तु चतुर्गुणम्॥ ३॥
पञ्चमे तु गुणाः पञ्च षष्ठे षड्गुणमुच्यते। सप्तमे तु गुणाः सप्त अष्टमेऽष्टविद्या गुणाः॥ ४॥
अहोरात्रेण चाध्वानं प्रेता गच्छन्ति तत्पुरम्। दुःखितानां ततो दुःखं दुःखाद्दुःखतरं ततः॥ ५॥
दुःखमेवात्र न सुखं दुःखैर्दुःखं विवर्ध्यते। उपायस्तत्र नैवास्ति येन स्वल्पं सुखं भवेत्॥ ६॥

नचिकेता ऋषि बोले—तप्त, महातप्त, महारौरव, रौरव, सप्तताल, कालसूत्र, अन्धकार, अन्धकारवर यह आठ प्रकार के नरक हैं। इस नरक में पापी लोग पकाये जाते हैं। प्रथम नरक में प्रथम बार दूसरे नरक में उसके दूना अर्थात् दो बार, तीसरे नरक में त्रिगुण चौथे में चतुर्गुण, पाँचवें में पाँच गुणा, छठे में छः गुणा सातवें में सात गुना और आठवें में आठ गुना दुःख देते हैं, रात दिन चलकर उस पुरी में जीव जाता है, इस नरक में अत्यन्त दुःख ही रहता है, सुख कहीं दिखाई नहीं देता, दिन रात दुःख और बढ़ता जाता है। वहाँ पर कोई ऐसा उपाय नहीं है, जिससे थोड़ा भी सुख हो॥ १—६॥

मुच्यते च मृतस्तत्र मारकास्तत्र दुर्लभाः। शब्दे स्पर्शे तथा रूपे रसे गन्धे तु पञ्चमे॥ ७॥
न सुखं तत्र तस्यास्ति किञ्चिदेवत्र विद्यते। शारीरैर्मानसैश्चैव दुःखेदुःखांतगामीभिः॥ ८॥
आयसेः कण्टकेस्तीक्ष्णेस्तप्तैस्तप्तावृता मही। अन्तरिक्षं खगानीकैरग्निजिह्वैः समावृतम्॥ ९॥

अतीव च बुभुक्षात्र पिपासा चाप्यतीव हि। उष्णमत्युष्णमेवात्र शीतलं चातिशीतलम्॥ १०॥
पातुकामश्च पानीयं राक्षसैर्नीयते सरः। हंससारससंकीर्णं पद्मोत्पलविभूषितम्॥ ११॥
पातुकामश्च पानीयं सहसा तत्र धावति। सलिलं प्रेक्षते चैव तत्र तप्ततरं तथा॥ १२॥

उस नरक में सुख नाम मात्र भी नहीं है, केवल मृत जीव ही है, अन्य दुर्लभ है, पञ्च तन्मात्रा अर्थात शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध, ये सब सुख से परे होकर दु:ख का भोग करते हैं। यहाँ पर शारीरिक एवं मानसिक दु:ख ही दु:ख मिलता है। वहाँ की पृथ्वी लोहे के तीक्ष्ण काटों से तथा अग्नि से व्याप्त है। आकाश अग्नि के समान जिह्वा वाली पक्षियों से युक्त है। वहाँ भूख और प्यास लगने पर गरम से गरम भोजन एवं ठण्डा से ठण्डा जल दिया जाता है। प्यास की इच्छा होने पर हंस एवं सारस पक्षी से युक्त खिले कमल वाले तालाब में पानी पीने के लिए राक्षसों द्वारा ले जाया जाता है, उसे देखकर जीव सहसा पानी पीने हेतु दौड़ता है। जल तो दिखाई देता है पर अत्यन्त गरम जल है॥ ७—१२॥

ततः पक्वानि मांसानि राक्षसैः परिणीयते। क्षारोदकेऽपि च तथा क्षिप्यतेऽत्र महाह्रदे॥ १३॥
तत्र चैव ह्रदे नैका मत्स्याः खादन्ति सर्वशः। ततः कालावसाने तु कथञ्चित्प्रपलायिनः॥ १४॥
किञ्चिदन्तरमागम्य वेदनार्थाः पतन्ति हिः। यातनार्थे पुनस्तत्र मांसं चैवोपजायते॥ १५॥
शिरस्येवोपविष्टस्य प्रस्थितस्य प्रधावतः। तस्यार्त्तायामवस्थायां दु:खं भवति दारुणम्॥ १६॥
करीषगर्त्तस्तत्रैव कुम्भीपाकः सुदारुणः। पद्मपत्राकृतिस्तस्य पेशी तत्र शरीरजः॥ १७॥

उस जल में राक्षसों द्वारा माँस पकाने हेतु रखा जाता है, उस जलाशय में जिसका जल नमक से युक्त है, उसमें फेंका जाता है। उस तालाब में अनेक मछलियाँ हैं, जो जीव को खाने लगती हैं, कुछ समय हो जाने पर जीव प्रलाप करने लगता है। कुछ दूर जाकर दु:खित होकर जीव गिर पड़ता है, यातना के लिए पुनः उसे माँस से लटकाया जाता है। उस माँस को शिर पर रखकर जीव दौड़ता है, उस समय उस जीव की अवस्था अत्यन्त कठिन हो जाती है। वहीं पर मल का गड्ढा है, दु:ख देने वाला "कुम्भीपाक" नरक भी है, शरीर से उत्पन्न कमल के पत्ते की आकृति के समान अड्डा दिखाई देता है।॥ १३—१७॥

पाटयन्ति सुमार्गेण राक्षसाः करपत्रिकाः। निपीड्य दशनै रोषं भीमनादाः सुरोषिताः॥ १८॥
असिपत्रवनं चात्र शृङ्गाटकवनं तथा। तत्र शृङ्गाटकाश्चैव तप्तवालुकमिश्रिताः॥ १९॥
दह्यते छिद्यते चैव विध्यते भिद्यते पथा। पात्यते पीड्यते चैव कृष्यते च विशस्यते॥ २०॥
श्यामाश्च शबलाश्चैव श्वानस्तेऽत्र दुरासदाः। खादन्ति च सुसंरब्धाः सर्ववृश्चिकसन्निभैः॥ २१॥
कण्टकैः प्रतिकूलैश्च तत्रान्या कूट शाल्मलिः। कर्षन्ति तत्र चैवैनं यावदस्थ्यवशेषितः॥ २२॥

वे राक्षस हाथ के पत्ते से उस जीव को पीटते हुए क्रोधित होकर दाँत से काट रहे हैं। वहाँ सेमर का वन, शृङ्गाटका वन है, उसके मार्ग में गरम बालू लगा है, उस मार्ग पर काटे जाते हैं, छेदे जाते हैं और टुकड़े टुकड़े किये जाते हैं। गिराये जाते हैं, पीड़ा दिये जाते हैं खींच कर टुकड़े-टुकड़े किये जाते हैं। वहाँ पर "श्याम" और "शबल" नाम के महाभयंकर कुत्ते रहते हैं, सर्प और बिच्छू की तरह काटते और खाते हैं। शाल्मली के वृक्ष के काँटे विपरीत लगते हैं। उस जीव को तब तक खींचते है, जब तक उसके शरीर में हड्डी समाप्त नहीं होती॥ १८—२२॥

यद्दु:खं तस्य दुर्बुद्धेः प्रतिकूलं च तस्य यत्। तत्तदोत्पद्यते शीघ्रं यातनार्थाय यत्नतः॥ २३॥
शीतकामस्य वै चोष्णमुष्णकामस्य शीतलम्। सुखकामस्य वै दु:खं सुखं नैवात्र विद्यते॥ २४॥
छिन्नाश्च शतधाप्येवं ह्यनिशं तैः सहस्रशः। छिन्नाङ्गाः सर्वगात्रेषु सर्वमेव स विन्दति॥ २५॥

सलिलं च नदीं घोरां व्यालाकीर्णां भयानकाम्। उत्तार्यन्ते च तां प्रेतां यां दृष्ट्वैव भयं भवेत्॥ २६॥
करम्भवालुका नाम शतयोजनमायता। अग्निज्वालासमा घोरा यथा येन स गच्छति॥ २७॥

उस जीव का जो दुःख है वह उसके प्रतिकूल है। वहाँ जो भी वस्तु होती थी, वह वस्तु उनको यातना देती थी। यदि ठण्डा पीने की इच्छा होती, तो गरम जल दिया जाता, यदि गरम जल की आवश्यकता होती है, तो ठण्डा दिया जाता है। सुख की कामना पर दुःख दिया जाता है, वहाँ सुख नाम की कोई वस्तु नहीं है। वे हजारों राक्षस उस जीव को सैकड़ों टुकडों में काट देते हैं। शरीर के सभी अङ्ग अलग-अलग कर दिये जाते हैं, ऐसा मालूम पड़ता है। नदी के जल में भयंकर सर्प फैले हुए हैं। उस प्रेत को उसमें उतार दिये जाते हैं। जिसे देखकर जीव (प्रेत) भयभीत हो जाता है। वहाँ पर सौ योजन लम्बा बालू का मार्ग है। अग्नि की ज्वाला के समान है, जिस पर चलना कठिन है, उस पर वह जीव जाता है॥ २३—२७॥

ततो वैतरणी नाम क्षारोदा तु महानदी। योजनानि तु पञ्चाशदधस्थात्पंचयोजनम्॥ २८॥
अगाधपङ्का वै तत्र चर्ममांसास्थिभेदना। तत्र कर्कटका घोरा वज्रदंष्ट्रा विशन्ति ताम्॥ २९॥
उलूकाश्च धनुर्मात्रा वज्रजिह्वास्थिभेदनाः। महाविषा महाक्रोधा दुर्विषह्याः सुदारुणाः॥ ३०॥
समुत्तीर्य तु कृच्छ्रेण तस्माद्योजनकर्दमात्। वसन्त्यत्र धरे केचिच्छून्यागारे निराश्रये॥ ३१॥
यत्र वै मूषिकगणा भक्षयंति ह्यनेकशः। मूषकैर्जग्धगात्रस्तु ह्यास्थिमात्रावशेषितः॥ ३२॥
प्रभाते वायुना स्पृष्टः पुनर्मांसं स विन्दति। शून्यागारप्रवेशात्तु गव्यूतेर्नातिदूरतः॥ ३३॥
सहकारवनं नाम रौद्रा यत्र च पक्षिणः। निस्त्वगस्थिस्तैः क्रियते निर्मांसश्चैव मानवः॥ ३४॥

उसके बाद एक वैतरणी नदी है, जिसका जल नमकीन है। जो ५० योजन चौड़ी और पाँच योजन गहरी है। चर्म, मांस, मज्जा, हड्डी का कीचड़ उस नदी में है। उसमें वज्र समान दाँत वाले **कर्कट (Cancer)** रहते हैं, वहाँ पर सोलह अंगुल मात्र के उल्लू रहते हैं, जो अपने वज्र के समान जिह्वा से जीव की हड्डी को छेद देते हैं। विषैले क्रोधी और भयंकर दुःख देने वाले हैं। एक योजन उस कीचड़ को कठिनता से पार करने के बाद आश्रय रहित एक पर्वत है, जहाँ पर अनेक चूहे जीव को खाते हैं। चूहे के खाने मात्र से केवल हड्डी ही बची रह जाती है। प्रातः काल के वायु के स्पर्श से पुनः जीव में माँस आ जाता है। थोड़ी दूर दो कोस पर एक भवन में प्रवेश करते हैं, तो एक आग का वन दिखायी देता है, जहाँ भयंकर पक्षी रहतें है। वे मानव के शरीर की हड्डी और मांस को खा जाते है। २७—३४॥

निःशिराजालकश्चैव निरक्षिश्रवणस्तथा। वटवृक्षो नातिदूरे दक्षिणे तु त्रियोजनम्॥ ३५॥
सन्ध्याभ्र इव चाभाति प्रदीप्तो नित्यमेव तु। दशयोजनविस्तीर्णा अधः शतसमायता॥ ३६॥
यमचुल्लीति विख्याता गम्भीरा सा त्रियोजनम्। नित्यं प्रज्वलिता सा तु नित्यं धूमान्धकारिता॥ ३७॥
तत्र प्रेतसहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च। प्रक्षिप्यन्ते त्वहोरात्रं राक्षसैर्यमकिङ्करैः॥ ३८॥
मासमेकं वसत्यन्यो तस्यां चुल्ल्यां परिभ्रमन्। ततः शकुनिका नाम वसामेदोवहा नदी॥ ३९॥
चुल्लीकुक्षौ तु विश्रान्ता वेगिनी वहते तु सा। तां समुत्तीर्य कृच्छ्रेण यातनाः सप्तकाः पुनः॥ ४०॥
एकैकं दुस्तरं घोरं यथापूर्वं यथाक्रमात्। अनुभुङ्क्ते स कृच्छ्रेण दुष्कृती तीव्रवेदनाः॥ ४१॥
दश तत्र लताः शूलाः कुम्भीपाकास्त्रयोदश। याति पापमहोरात्रं तस्मिन्नियमितेन तु॥ ४२॥

नस, आँख, कान से रहित जीव अब वहाँ से थोड़ी दूर पर तीन योजन एक वट वृक्ष को देखते हैं। वह वृक्ष सन्ध्या की आभा के समान निरन्तर चमकता रहता है। उसके नीचे १० योजन विस्तार है, वहीं पर यमराज की

एक चुल्ही है जो अत्यन्त गहरी और ३ योजन फैली है। नित्य वह जलती रहती है तथा धूआँ निरन्तर उठता है। उसमें यमराज के सेवक राक्षस लोग, हजारों लाखों करोड़ों जीव को उसमें डाल देते हैं। वहाँ शकुनिका नाम की चर्बी की एक नदी बहती है। उस नदी के वेग से उसमें जीव को कष्ट होता है, उस नदी में कठिनता पूर्वक पार करके सात प्रकार के और कष्ट को भोगता है। प्रत्येक अत्यन्त कष्टकारी है, पहले जैसा बताया जाता है, इन यातनाओं की वेदना को जीव बड़ी कठिनता से भोग करता है। वहाँ शूल के समान दस लता एवं १३ कुम्भीपाक नरक है। जिसमें दिनरात नियमित चलकर वहाँ जाते हैं॥ ३६—४२॥

राक्षसैर्निरनुक्रोशैर्दुर्निरीक्ष्यैस्ततस्ततः । अङ्गारेषु विधूमेषु शूलप्रोतस्तु पच्यते॥ ४३॥
शुष्कोदपाने धूमे च अधःशीर्षोऽवलम्बते। ज्वाल्यते तीक्ष्णतैले तु कटाहे स तु पच्यते॥ ४४॥
करीषगर्त्ते स पुनः पच्यते भेदवह्निना। एकैकस्मिन्दशाहं च शूलादिषु स पच्यते॥ ४५॥
यातनाः सप्तकास्तस्य निष्क्रान्तस्य त्रियोजने। यतो यमनदी नाम तप्तत्रपुजलोर्मिणी॥ ४६॥

दया रहित होकर राक्षस उनको देखते हैं और शूल को चुभोकर अग्नि में जीव को पकाते हैं। शुष्क एवं धूएँ पर नीचे सिर कर लटका देते हैं। जलाते हैं, तीखे तेल के कड़ाही में पकाते हैं। विष्ठा के गड्ढे में, मेधा की अग्नि में पकाते हैं। एक-एक को दस दिन तक शूल आदि से पकाते हैं, उस तीन योजन में व्याप्त सात प्रकार के यातना से बाहर निकल कर गर्म लौह वाली यम नदी (यमुना) के पास पहुँचते हैं॥ ४३—४६॥

समुत्तीर्य तु कृच्छ्रेण दह्यमानस्त्वचेतन। ततो मुहुर्त्ते विश्रान्तः किंचिदन्तरमागतः॥ ४७॥
दीर्घिकां मोक्षते कान्तां शीतोदां शीतकाननाम्। सर्वकामान्स लभते भगिनी सा यमस्य तु॥ ४८॥
भक्ष्यं भोज्यं च सर्वेस्तु पापिभिस्तत्र लभ्यते। स सर्वे विस्मरत्यत्र त्रिरात्रमुषितोऽपि सन्॥ ४९॥
ततः शूलत्रहो नाम पर्वतः शतयोजनः। निराश्रयः स सत्वानामेकपाषाण एव च॥ ५०॥
तत्र वर्षति पर्जन्यस्तत्र तप्तजलं सदा। तत्र कृच्छ्रेण तरति अहोरात्रेण मानवः॥ ५१॥
शृङ्गारकवनं नाम तत्र पश्यन्ति शाद्वलम्। नीलमक्षिकदंशैश्च सुव्याप्तं तद्वनं महत्॥ ५२॥
यैस्तु स्पृष्टश्च दृष्टश्च कृमिरूपश्च जायते। प्रेतो वर्षति मांसासृगस्मात्कृच्छ्रात्तु निर्गतः॥ ५३॥

बड़ी कठिनता से उस नदी को पार करते हैं, उसके जल से जलने के कारण मूर्च्छित हो जाते हैं। क्षणभर विश्राम करने के बाद दूसरे स्थान पर जाते हैं। वहाँ एक दीर्घिका है, जिसमें जल की तरह जीव फेंके जाते हैं तथा जंगल भी सुख देने वाले हैं, वह सभी कामनाओं को देने वाली यमराज की बहन (यमुना) लगती है। खाने योग्य, भोग भोग्या पापियों को सब कुछ मिलता है। वहाँ तीन रात निवास करने पर जीव को सब कुछ भूल जाता है। वहाँ सौ योजन फैला हुआ एक शूलत्रहो नाम का पर्वत है, वह प्राणियों को सहारा नहीं देता, वह एक पत्थर का है। वहां मेघ गर्म जल की वर्षा करता है। मनुष्य उस पर्वत को रात दिन चलकर बड़ी कठिनता से पार करता है। हरी घास वाला एक शृङ्गारक वन दिखायी देता है। उस जंगल में नीले मच्छर, जो काटने वाले हैं, व्याप्त है। जिसके स्पर्श से, देखने से, कीड़े हो जाते हैं, प्रेत के उपर मांस, खून की वर्षा करते हैं, उसे कठिनता से पार करते हैं॥ ४७—५३॥

ततोऽन्यल्लभते चैव यातनार्थे प्रयत्नतः। ततः पश्यति पुत्रांस्तु महदुःखं सुदारुणम्॥ ५४॥
मातरं पितरं चैव पुत्रान्दारांस्तथा प्रियान्। पुरस्ताद्वध्यमानं स क्रन्दमानमचेतनम्॥ ५५॥
हा त्राहि त्राहि पुत्रेति क्रन्दमानस्ततस्ततः। लगुडैर्मुद्गरैर्दण्डैर्जानुभिर्वेणुभिस्तथा॥ ५६॥
मुष्टिभिश्च कशाभिश्च व्यालैरङ्कगतैरपि। तद्दृष्ट्वा तादृशं दुःखं ततो मोहं स गच्छति॥ ५७॥

इसके बाद अनेक यातनायें सहते हैं, आगे वहाँ अपने पुत्र आदि को देखते हैं, उससे भयंकर कष्ट होता है।

माता-पिता, स्त्री, पुत्र तथा अपने प्रिय लोगों को बंधा हुआ एवं रोते देखकर जीव मूर्च्छित हो जाता है। हे पुत्र रक्षा करो, इस प्रकार रोते बिलखते हैं, उनको डण्डा, मुद्गल, घुटनों से, बंसी से, मुष्ठिका से, चाबुक से, साँप से, मारा जाता है, इस प्रकार के दुःख को देखकर जीव मूर्च्छित हो जाता है॥ ५४—५७॥

एवमेवात्मकर्माणि पर्यायेण पुनःपुनः। प्राप्नुवन्तीह तेऽत्रैव नरा दुष्कृतकारिणः॥ ५८॥
पातकानि च चत्वारि समाचारेण पंचमम्। कृत्वा तानि नरा यान्ति तं देशं पापकारिणः॥ ५९॥
तदादिषु च सर्वेषु गुणान्तरपथं गतः। यदा भवति स प्रेतस्तदा स्थावरतां व्रजेत॥ ६०॥
तदा वा स्थावरे तेषु जातस्य हि भवेन्नरः। क्रमशः स भवेत्प्रेतस्तदा पशुगणेष्वपि॥ ६१॥
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च। गतः स वसति प्रेतो नरके तु पुनःपुनः॥ ६२॥
ततो निवृत्तकर्मा तु स्वेदजः सम्भवेत्पुनः। स्वेदजानां ततो नित्यं सर्वसंसारचक्रंमात्॥ ६३॥
ततश्च पक्षिणां योनिं सर्वां संसरते पुनः। गोयोनौ तु ततो गत्वा पुनर्मानुषतां व्रजेत्॥ ६४॥
मानुषे शूद्रतां याति लब्ध्वा यदि तु तुष्यति। ततो वैश्यत्वमागच्छेत्कर्मणाऽनेन वेष्टितः॥ ६५॥
वेश्यात्क्षत्रियतां याति तस्माज्ज ब्राह्मणो भवेत्। ब्राह्मणत्वमपि प्राप्तः पापकर्मा दुरात्मवान्॥ ६६॥

इस प्रकार अपने पूर्व किये गये कर्मों के अनुसार मनुष्य भोग भोगता है। चार महापातक (ब्रह्महत्या करने वाला, बिना विधि सुरापान करने वाला, राजा एवं पिता का हत्यारा, सोना चुराने वाला) पाँचवें महापातक (भ्रूण हत्या) के द्वारा वह व्यक्ति उस देश को जाता है। **पहले सुख भोगता है, उसके बाद पाप का दण्ड भोगता है।** तदन्तर स्थावर वृक्ष के होता है। क्रमशः स्थावर के बाद पशु योनि में जन्म लेता है। वह प्रेत ६६ हजार वर्ष तक नरक में निवास करता है। अपने कर्म के द्वारा उस योनि से निवृत्त होकर स्वेदज (पसीने से उत्पन्न होने वाले जीव) होता है। वह स्वदेज संसार में चक्र के समान घूमता रहता है, उसके बाद पक्षी की योनि में होकर संसार में विचरण करता है। इसके बाद गाय की योनि में जाता है, तत्पश्चात मनुष्य की योनि में अवतरित होता है। मनुष्य में भी **शूद्र** होकर सन्तुष्ट होता है। पुनः **वैश्य** योनि में जाता है और अपना कर्म करता रहता है। **वैश्य से** क्षत्रिय और **क्षत्रिय से** ब्राह्मण होता है। **ब्राह्मण** होते हुए भी वे लोग पाप कर्म में आसक्त रहते हैं॥ ५८—६६॥

दुःशिक्षितेन मनसा ह्यात्मद्रोग्धा भवेत्तदा। शरीरं मानसं घोरं व्यसनै रूपपादितम्॥ ६७॥
उपयुक्तो नरो जातः पूर्वकर्मभिरन्वितः। ज्ञेयश्च ब्रह्महा कुष्ठी काकाक्षः काकतालुकः॥ ६८॥
सुरापः श्यावदन्तश्च पूतिगन्धश्च पापकृत। राजहा पितृहा चैव सुरापश्चापि यो भवेत्॥ ६९॥
सुवर्णहर्ता च नरो ब्रह्मघ्नेन समो हि सः। क्वचिच्चात्र विरूपाणां नराणां पापकर्मिणाम्॥ ७०॥
यावद्भिः कर्मभिस्तैस्तैस्तेषु निर्याणवेश्मसु। छिन्नभिन्नविशस्तानां रुधिरेण समन्ततः॥ ७१॥
व्याप्तं महीतलं सर्वमापगाश्चापि निर्गताः। अजस्त्रं क्लिश्यमानानां क्रन्दतां च सुदारुणम्॥ ७२॥
समुत्तस्थौ महानादो हाहाकारसमाकुलः। वध्नतो विविधैर्बन्धैर्वातयन्तश्च दारुणम्॥ ७३॥
लौहयष्टिप्रहारैश्च आयुधैश्च सुदारुणैः। छेदनैर्भेदनैश्चोग्रैः पीडनाभिश्च सर्वशः॥ ७४॥
श्रान्ताः कर्मकरा दूता मोहेनायत्तचेतसः। यदा श्रान्ताश्च खिन्नाश्च हन्तारः पापकर्मिणाम्॥ ७५॥
विज्ञापयेत्तदा दूतांश्चित्रगुप्तं महौजसम्॥ ७६॥

उचित शिक्षा के अभाव में ये लोग आत्मद्रोही होते हैं, शरीर से मन से बुरे कर्म में व्याप्त रहते हैं। अपने पूर्व कर्म के प्रभाव से मनुष्य कार्य करता है। ब्रह्महत्या करने वाला-कोढ़ी, एक आँख वाला काक, तालबाज, सुरा का पान करने वाला, काला दाँत वाला, दुर्गन्ध वाला पापी होता है। राजा का हन्ता पितृ घाती,

सुरा पीने वाला-यह सब पूर्व कर्म के अनुसार ही होता है। सोना को चुराने वाला व्यक्ति, ब्रह्महत्या के पाप के समान होता है। कुछ विकृत रूप वाले, जैसा कर्म करते हैं उसी प्रकार के घर में प्रवेश लेता है। काटने, भेदन करने पर पृथ्वी पर चारों तरफ खून ही बहता है। निरन्तर ऐसा जीव कठिन क्रन्दन करता है। हाहाकार जैसा शब्द सुनाई देता है। अनेक बन्धन से बांधे जाते हैं, वहाँ अनेक प्रकार की हवाएँ चलने लगती हैं। लोहे की छड़ी के प्रहार से, भयंकर शस्त्र के प्रहार से, छेदन एवं भेदन करने से, चारों ओर दुःख ही दिया जाता है। वे दूत इस प्रकार उस जीव को देते हैं, मोह में आकर पापियों को मारते हुए थक गये और **महाशक्तिशाली चित्रगुप्तजी** से बोले॥ ६७—७६ ॥

× × ×

अध्याय-२०१

ऋषि उवाच–

ततस्ते सहिताः सर्वे चान्योऽन्याभिरताः सदा। नानावेषधरा दूताः कृताञ्जलिपुटास्तदा॥ १ ॥

नचिकेता ऋषि बोले—इसके बाद वे दूत निरन्तर आपस में एक दूसरे के साथ मिलकर, अनेक वेष धारण किए हुए हाथ जोड़कर **चित्रगुप्तजी** से बोले॥ १॥

दूता उचुः–

वयं श्रान्ताश्च क्षीणाश्च ह्यन्यान् योजितुमर्हसि। वयमन्यत्करिष्यामः स्वामिन्कार्ये सुदुष्करम्॥ २ ॥
अन्ये हि तावत्तत्कुर्युर्यथेष्टं तव सुव्रत। भगवन्स्म परिक्लिष्टाः त्राहि नः परमेश्वर॥ ३ ॥
ततो विवृत्तरक्तक्षस्तेन वाक्येन रोषितः। विनिःश्वस्य यथा नागो ह्यपश्यत्सर्वतो दिशम्॥ ४ ॥
अदूरे दृष्टवान् कंचित्पुरुष सह्यनाकृतिम्। स तु वेगेन सम्प्राप्त इङ्गितज्ञो दुरात्मवान्॥ ५ ॥
निःसृतः स च रोषेण चित्रगुप्तेन धीमता। ततः स त्वरितं गत्वा मन्देहा नाम राक्षसाः॥ ६ ॥
नानारूपधरा घोरा नानाभरणभूषिताः। विनाशाय महासत्वो यत्र तिष्ठन्महायशाः॥ ७ ॥
चित्रगुप्तो महाबाहुः सर्वलोकार्थचिन्तकः। समः सर्वेषु भूतेषु भूतानां च समादिशत्॥ ८ ॥
ततस्ते विविधाकारा राक्षसाः पिशिताशनाः। उपरूह्य तथा सर्वे मातंगांश्च हयं तथा॥ ९ ॥
बद्धगोधाङ्गुलित्राणा नानायुधधरास्तया। अग्रतः किंकराः कृत्वा तिष्ठन्पादाभिवन्दनम्॥ १० ॥
बुवन्तश्च पुनर्हृष्टाः शीघ्रमाज्ञापय प्रभो। तव सन्देशकर्त्तारः कस्य कृन्ताम जीवितम्॥ ११ ॥

दूत लोग बोले—हे स्वामी! हम लोग थके हुए हैं, आप इस कार्य हेतु दूसरे लोगों को लगा दीजिए। हे सुब्रत हम लोग कोई दूसरा दुष्कर कार्य कर देंगे, हम लोग अत्यन्त थके हैं, हे भगवन्! हे परमेश्वर! इससे हमारी रक्षा कीजिए। यमदूतों के वाक्य को सुनकर **चित्रगुप्तजी** क्रोधित हो गये, लाल-लाल नेत्रों से युक्त होकर लम्बी साँस लेने लगे, जैसे सर्प फुत्कार मारता हुआ चारो ओर देखता है। उसी क्षण कुछ दूर पर एक स्वरूप रहित पुरुष दिखाई दिया, वह इशारे से और वेग से इधर ही आ रहा था। वह मन्देह नामक राक्षस शीघ्र आकर **क्रोधित धीमान् (बुद्धिमान) चित्रगुप्तजी** से बोला! अनेक वेषधारण करने वाले, अनेक आभूषण से विभूषित, हे महान यशवाले सभी प्राणियों का विनाश करने वाले, **हे चित्रगुप्त महाबाहु! आप सर्वलोक के लिये हित-चिन्तक हैं**, आप सभी प्राणियों के कल्याण हेतु आदेश देते हैं। इसके बाद अनेक रूपवाले, मांस भक्षण करने वाले राक्षस घोड़े एवं हाथी पर बैठकर हाथ की अँगुली के कवच को धारण करके हाथ में अनेक हथियार लेकर किंकर को आगे करके **चित्रगुप्तजी** का अभिवादन करके प्रसन्न होकर

बोला, **हे प्रभो! आज्ञा दीजिए किसके जीवन का अन्त करना है**॥ ६—११ ॥

महाकाल चित्रगुप्त के क्रोध से मन्देह नाम के राक्षस उत्पन्न हो गये और उन मन्देहों ने महाकाल चित्रगुप्तजी के आदेश से यमदूतों का संहार कर डाला।

इसी तरह ब्रह्माजी के क्रोध से रुद्र (शंकर) उत्पन्न हुये थे। शंकर महाकाल संहारक हैं।

दक्ष के यज्ञ में जब अपमानित होकर सती ने देह त्याग दिया तो शंकरजी ने अपनी एक जटा उखाड़ कर भूमि पर पटक दिया, उस जटा से वीर रुद्र (वीर भद्र) उत्पन्न हो गये। वीर भद्र ने दक्ष का सिर काट डाला और भृगु ऋषि को बाँध कर दाढ़ी-मूँछ नोच डाली।

ब्रह्माजी के क्रोध से महाकाल रुद्र/शंकरजी का उत्पन्न होना, शंकरजी से वीर भद्र का उत्पन्न होना एवं महाकाल चित्रगुप्तजी से मन्देहों का उत्पन्न होकर संहार करना एक अद्भुत घटना है।

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा चित्रगुप्तो ह्यभाषत। रोषगद्गदया वाचा निःश्वसन्वे मुहुर्मुहुः॥ १२॥
भो भो मन्देहका वीराः मम चित्तानुपालकाः। एतान्बध्नीत गृहीत भूतराक्षसपुंगवाः॥ १३॥
एवं हत्वा च बद्ध्वा च ह्यागच्छत पुनर्यथा। हन्तारः सर्वभूतानां कृतज्ञा दृढविक्रमाः॥ १४॥
हत्वा वै पापकानेतान्मम विप्रियकारिणः। एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य वचनं चेदमब्रुवन्॥ १५॥

उनके वचन को सुनकर **चित्रगुप्तजी** क्रोध से बार-बार निःश्वास लेते हुए बोले। मेरी आज्ञा मानने वाले मन्देहक वीर, तुम राक्षसों में श्रेष्ठ हो, इन भूतों (यमदूतों) को तुम पकड़कर बांध दो। तुम उन लोगों को बांधकर मार दो, तुम सभी प्राणियों के हन्ता हो, दृढ़ निश्चयी हो। इन पापी यमदूतों को मारो, जो मेरी अप्रसन्नता के कारण हैं। यह सुनकर वे राक्षस **चित्रगुप्तजी** से बोले॥ १२—१५ ॥

राक्षसा ऊचुः-

श्रान्ता वा क्षुधिता वापि दुःखिता वा तपोधनाः। अमात्या एव ज्ञातव्या भृत्याः शतसहस्रशः॥ १६॥
एते वधार्थे निर्दिष्टास्त्वयैव च महात्मना। न युक्तं विविधाकारा ह्यस्माकं नाशनाय वै॥ १७॥
यथा ह्येते समुत्पन्नाः सर्वधर्मानुचिन्तकाः। तथा वयं समुत्पन्नस्तदर्थे हि भवानपि॥ १८॥
मा न मिथ्या प्रतिज्ञातं धर्मिष्ठस्य भवत्विति। अस्माकं विग्रहे वीर मुच्यन्तां यदि मन्यसे॥ १९॥
परित्रायस्व नो वीर किंकराणां महाबलान्। हन्यमानान्हि रक्षोभिरस्मानद्य रणाजिरे॥ २०॥

मन्देह राक्षस बोले—श्रान्त हो, भूखा हो या तपस्वी हो, मन्त्री हो, जानने योग्य हो ऐसे हजारों सेवक आपके हैं। इन लोगों का वध करने हेतु आपने लगाया है यह उचित नहीं है। जिस प्रकार सभी धर्म की चिन्ता हेतु इन लोगों की उत्पत्ति हुई है इसी प्रकार आप और हम लोग सभी की चिन्ता करने हेतु उत्पन्न हुए हैं। हम लोग झूठ में प्रतिज्ञा न करें क्योंकि हम लोग धर्म के लिए हैं। हे वीर! यदि आप हमारी बात मानें तो इनको छोड़ दें। हे वीर महाबलशाली इन किंकरों (यमदूतों) की रक्षा कीजिए। इस युद्ध में राक्षसों [मन्देहों] द्वारा किंकर [यमदूत] मारे जायेंगे॥ १६—२० ॥

एवमुक्त्वा ततो घोरा व्याधयः कामरूपिणः। सन्नद्धास्त्वरितं शूरा भीमरूपा भयानकाः॥ २१॥
गजेरन्ये तथा चाश्वै रथैश्चापि महाबलाः। कण्टकैस्तुरगैर्हंसैरन्ये सिंहैस्तथापरे॥ २२॥
मृगैः सृगालैर्महिषैर्व्याघ्रैर्मेषैस्तथापरे। गृध्रैः श्येनैर्मयूरैश्च सर्पगर्दभकुकुटैः॥ २३॥
एवं वाहनसंयुक्ता नानाप्रहरणोद्यताः। समागता महासत्त्वा अन्योन्यमभिकांक्षिणः॥ २४॥

तूर्यक्ष्वेडितसंघुष्टैर्बलितास्फोटितैरपि । जयार्थिनो द्रुतं वीराश्चलयन्तश्च मेदिनीम्॥ २५॥

इतना कहकर इच्छानुसार रूपधारण करने वाली व्याधियाँ सन्नद्ध हो गयीं, जिनका रूप भयंकर एवं भीमकाय था। कुछ लोग घोड़ेपर, कुछ हाथी पर, कुछ रथ पर, कुछ त्रिशूल लेकर रथ पर, कुछ सिंह पर, आरूढ़ हो, मृग, सियार, भैंसें, व्याघ्र, भेंड़, गिद्ध, बाजपक्षी, मयूर, सर्प, गदहा, मुर्गा आदि वाहन से युक्त होकर प्रहार करने के लिए उद्यत हो गये। महान बलवान लोग एक दूसरे को पराभव की इच्छा रखने वाले नगाड़ों से शब्द करने लगे, हठात् मारने की ध्वनि आने लगी। इस पृथ्वी पर विजय की अभिलाषा रखने वाले वीर चलने लगे॥ २१—२५॥

ततः समभवद्युद्धं तस्मिंस्तमसि सन्तते। मुकुटेरंगदैश्चित्रैः केयूरैः पट्टिशासिकैः॥ २६॥
सकुण्डलैः शिरोभिश्च भ्राजते वसुधातलम्। बहुभिश्च सकेयूरैश्छत्रैश्च मणिभूषणैः॥ २७॥
शूलशक्तिप्रहारैश्च यष्टितोमरपट्टिशैः। असिखड्गप्रहारैश्च बलप्राणसमीरितैः॥ २८॥
अभवद्दारुणं युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम्। नखैर्दन्तैश्च पादेश्च तेऽन्योऽन्यमभिजघ्निरे॥ २९॥

इसके बाद आपस में युद्ध होने लगा, चारों ओर अन्धकार दिखने लगा, भूमि पर भयंकर युद्ध होने लगा। कहीं कुण्डल गिरा हुआ सुशोभित है, अनेक प्रकार के बाजूबंद, केयूर, दुपट्टा एवं इस भूमि पर कुण्डल सहित झुण्ड पर शोभित हो रहे थे। अनेक प्रकार के केयूर, प्राणियों से सुशोभित छत्र, शूल के प्रहार से छड़ी तोमर से, तलवार के प्रहार से सेना के प्राण हरने हेतु भयंकर रोमाञ्चित कर देने वाला युद्ध हुआ, नख से दाँत से एवं पैरों से एक दूसरे पर प्रहार करने लगे॥ २६—२९॥

बाहुभिः समनुप्राप्तः केशाकेशि ततःपरम्। अयुक्तमतुलं युद्धं तेषां वै समजायत॥ ३०॥
ततस्ते राक्षसा भग्ना दूतैर्घोरपराक्रमैः। देहि देहि वदन्त्येव भिन्धि गृह्णीष्व तिष्ठ च॥ ३१॥
वध्यमानाः पिशाचास्ते ये निवृत्ता रणार्दिताः। आहूयन्त प्रति भयात्क्रोधसंरक्तलोचना॥ ३२॥
तिष्ठ तिष्ठ क्व यासीति न गच्छामि दृढो भव। मया मुक्तमिदं शस्त्रं तव देहविनाशनम्॥ ३३॥
किन्तु मूढ त्वया शस्त्रं न मुक्तं मे रुजाकरम्। मया क्षिप्तास्तु इषवः प्रतीच्छ क्व पलायसे॥ ३४॥

आपस में हाथों से तथा एक दूसरे के बाल पकड़कर आपस में भयंकर युद्ध करने लगे। उन राक्षसों के भग्न से दूतों लोगों का घोर पराक्रम टूटने लगा। दे दो-दे दो, रूक जाओ, पकड़ लो, काट दो, ऐसा कहने लगे। उन दूतों को बांध दो, जो राह से चले गये, उनको बुला रहे हैं, भय से एवं क्रोध से उनके आंख लाल हो गयी है। रूको-रूको, कहाँ जा रहे हो, मैं कही नहीं जाता हूँ, तुम दृढ हो जाओ। तुम्हारे शरीरको नाश करने वाला जो शस्त्र है, उसको मैं छोड़ दे रहा हूँ। किन्तु हे मूर्ख, मुझको कष्ट देने वाला शस्त्र को तुमने नहीं छोड़ा। अब रूको मेरे बाण अब छोड़े जा रहे हैं, तुम कहाँ भाग रहे हो॥ ३०—३४॥

किं त्वं व दसि दुर्बुद्धे एषोऽहं पारगो रणे। मम बाहुविमुक्तस्तु यदि जीवस्यतो वद॥ ३५॥
तत्र ते सहसा घोरा राक्षसाः पिशिताशनाः। मन्देहा नाम नाम्ना ते वध्यमानाः सहस्रशः॥ ३६॥
ततो भग्ना यदा ते तु राक्षसाः कामरूपिणः। प्रत्यपद्यन्त ते मायां तामसीं तमसा वृताः॥ ३७॥
अदृश्याश्चैव दृश्याश्च तद्बलं तमसा वृताः। ततस्ते शरणं जग्मुर्ज्वरं परमभीषणम्॥ ३८॥

हे दुर्बुद्धे तुम क्या बोल रहे हो, मैं रण में पारंगत हूँ, यदि मेरे बाहु से तुम जीवित बचोगे, तब बोलना। वहाँ वे मन्देह नाम के बलवान, मांस खाने वाले राक्षस एकाएक युद्ध के लिए हजारों पर टूट पड़े। वे इच्छा अनुसार रूप धारण करने वाले राक्षस माया के द्वारा चारों तरफ अन्धकार फैला दिये। उस अन्धकार में कभी दिखाई देते थे कभी अदृश्य हो जाते थे। वे यमदूत भागकर परमबलवान ज्वर के शरण में चले गये॥ ३५—३८॥

शूलपाणिं विरूपाक्षं सर्वप्राणिप्रणाशनम्। मन्देह्य नाम नाम्ना वै राक्षसाः पिशिताशनाः ॥ ३९ ॥
खादन्ति चैव घ्नन्ति स्म चित्रगुप्तेन चोदिताः। व्याधीनां च सहस्राणि दूतानां च महाबलाः ॥ ४० ॥
वयमद्य महाभाग त्रायस्व जगतः पते। ततस्तेषां वचः श्रुत्वा दूतानां कामरूपिणाम् ॥ ४१ ॥
ज्वरः क्रुद्धो मह्यतेजा योधानां तु सहस्रशः। कालो मुण्डः केकराक्षो लोहयष्टिपरिग्रह ॥ ४२ ॥
विविधान्सन्दिदेशाऽत्र पुरुषानग्निवर्चसः। बद्धाञ्जलिपुटान्सर्वानिदमाह सुरेश्वरः ॥ ४३ ॥

यमदूत ज्वर से बोले! **मन्देह नामक राक्षस, जो मांस भोगी है, उसके हाथ में त्रिशूल है, वह विशाल नेत्रों वाला एवं सभी प्राणियों के प्राण को हरने वाला है। वह चित्रगुप्तजी के द्वारा भेजा गया है, वह मारता है और खा जाता है। हजारों व्याधियों और महाबली दूतों को कष्ट दे रहा है,** आप हम लोगों की रक्षा करें यमदूतों के वचन को सुनकर क्रोधित होकर ज्वर हजारों योद्धाओं के साथ काल मुण्ड एवं वक्रदृष्टि वाले लोहे के छड़ी के समान शरीर वाले अग्नि के समान तेज वाले अनेक पुरुषों को आदेश दिया, हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा— ॥ ३९—४३ ॥

पच शीघ्रमिमान्पापान् योगेन च बलेन च। ततस्ते त्वरितं गत्वा यत्र ते पिशिताशनाः ॥ ४४ ॥
ज्वराज्ञया च ते सर्वे जीमूतघननिःस्वनाः। बहुंस्ते राक्षसान्घोरान्दर्पोत्सिक्तान् सहस्रशः ॥ ४५ ॥
बहुशस्त्रप्रहारैश्च विविधोज्ज्वलैः। तरसा राक्षसा विघ्ना रुधिरेण परिप्लुताः ॥ ४६ ॥
मोचयामास संग्रामं स्वयमेव यमस्ततः। राक्षसान्मोचयित्वाऽथ हन्यमानान्समन्ततः ॥ ४७ ॥
गत्वा ज्वरं महाभागं विनयात्सान्त्वयन्मुहुः। पूजयन्वै ज्वरं दिव्यं गृहहस्ते महायशाः ॥ ४८ ॥
प्रविवेश गृहं स्वं तु सम्भ्रमेणेदृशेन तु। आननं तु समुत्प्रोञ्छय संग्रामे स्वेदबिन्दुवत् ॥ ४९ ॥

इन पापों को योग से, बलसे, शीघ्र पका दो, शीघ्र जाओ, जहाँ वे मांस खाने वाले मन्देह राक्षस रह रहे हो। ज्वर की आज्ञा पाकर वे सभी जीमूत नामक मेघ के समान शब्द करते हुए आगे बढ़े, जहाँ दर्पयुक्त हजारों राक्षस रहते थे। दानों ओर के प्रहार से शस्त्र चमकने लगे, ज्वर [तरसा (बिमारी)] मन्देह राक्षसों द्वारा उद्दिग्न होकर खून से लथपथ हो गये। संग्राम को समाप्त करने के लिये स्वयं यमराज ने तब मन्देह राक्षसों को हटाकर, हर दिशा में फैले हुए, मारे जा रहे ज्वर के पास जाकर विनय पूर्वक सान्त्वना देते हुए उस समय हाथ पकड़कर आदर पूर्वक दिव्य ज्वरों को कहा! हे ज्वर, तुम महायशस्वी हो, तुम लड़खड़ाते हुये दिखाई दे रहे हो, तुम अपने घर जाओ अपने मुख पर संग्राम के कारण जो पसीना आ गया है, उसे पोछ दो ॥ ४४—४९ ॥

धर्मराजोऽथ विश्रान्तं कालभूतं महाज्वरम्। किंकिं वृत्तमिदं देव व्यापिनस्त्वं महातपाः ॥ ५० ॥
रोषायासकरं चैव सर्वलोकनमस्कृतः। अहं त्वं चैव देवेश इमं लोकं चराचरम् ॥ ५१ ॥
शासेमहि यथाकामं यथादृष्टं यथाश्रुतम्। त्वया ग्राह्यो ह्यहं देव मृत्युना च सुसंवृतः ॥ ५२ ॥
लोकान्सर्वानहं हन्मि सर्वधाती न संशयः। गच्छ गच्छ यथास्थानं युद्धं च त्वयजतु स्वयम् ॥ ५३ ॥

धर्मराज बोले—काल स्वरूप ज्वर युद्ध के कारण तुम थके हुए हो। हे महातपस्वी तुम्हारा चरित्र सब जगह व्याप्त है। तुम्हारे क्रोध को सभी लोगों के द्वारा नमस्कार किया जाता है। हे देवेश यह चर अचर सारा जगत तुम्हारा ही है। तुम जैसा देखते हो, जैसा सुनते हो, तुम भी इच्छानुसार इस संसार पर शासन करते हो। मृत्यु का वरण करने वाले देवता भी तुम्हारे द्वारा पकड़ लिये जाते हैं। सम्पूर्ण लोक को मैं मारता हूँ, इसमें संशय नहीं है। अब तुम लोग युद्ध को छोड़कर अपने-अपने स्थान पर जाओ ॥ ५०—५३ ॥

राक्षसानां हतास्तत्र पष्टिकोट्यो रणाजिरे। अमराश्चक्षयाश्चैव न हि त्वां प्रापयन्ति वै ॥ ५४ ॥
ततो ह्युपरतं युद्धं धर्मराजो यमः स्वयम्। दूतानां चित्रगुप्तेन सख्यमेकमकारयत् ॥ ५५ ॥

सम्भाषन्ते ततो दूताश्चित्रगुप्तं तथैव च। नियुङ्क्ष्व मया पूर्वे सर्वकर्माणि जन्तुषु॥५६॥
स्वकर्मगुणभूतानि ह्यशुभानि शुभानि च। रुद्रं दूताः समागम्य चित्रगुप्तस्य पार्श्वतः॥५७॥
उपस्थानं च कुर्वन्ति कालचिंतकमब्रुवन्। यथा लोका यथा राजा यथा मृत्युः सनातनः॥५८॥
तदैवोत्तिष्ठ तिष्ठेति क्षम्यतां क्षम्यतां प्रभो॥५९॥

यमराज ने सान्त्वना देते हुये ज्वर से कहा कि आपने युद्ध में साठ करोड़ राक्षसों को मारा है आपको देवता भी नहीं प्राप्त कर सकते। इस प्रकार स्वयं **धर्मराज-यम** ने युद्ध को रोककर **चित्रगुप्तजी** के साथ दूतों को पुनः एक कराया। पहले की भाँति सभी दूत पुनः **चित्रगुप्तजी** से बात करने लगे, वे कहने लगे कि हे देव प्राणियों का सर्व कार्य करने हेतु आप हमलोगों को नियुक्त करें। **शुभ और अशुभ कर्मों के ज्ञाता क्रोधित चित्रगुप्त** के पास वह यमदूत आ गये। समय को जानने वाले उन दूतों ने कहा कि जैसा लोक है, जैसा राजा है, उसी अनुसार मृत्यु सनातन है। उसी प्रकार हे देव, उठिये, अपने कार्य में सन्नद्ध हो जायें। **हे प्रभो हमें क्षमा कीजिए, क्षमा कीजिए**॥ ५४—५९॥

× × ×

अध्याय-२०२

अध्याय २०२ से लेकर २०६ तक भगवान् चित्रगुप्त द्वारा यमराज के लिये बनाये गये नियम का वर्णन है, जिसे भगवान् चित्रगुप्त ने यमदूतों को बताया है। इसे नचिकेता ने प्रत्यक्ष देखा और सुना।

ऋषिरुवाच—

विस्मयस्तु मया दृष्टस्तस्मिन्नद्भुतदर्शनः। चित्रगुप्तस्य सन्देशो धर्मराजेन धीमतः॥ १ ॥
प्राप्नुवन्ति फलं ते वै ये च क्षिप्ताः पुरा जनाः। अग्निना वै प्रतप्तास्ते बद्धा बन्धैः सुदारूणैः॥ २ ॥
सन्तप्ता बहवो ये ते तैस्तैः कर्मभिरूल्बणैः।

नचिकेता ऋषि बोले—वहाँ अद्भुत दर्शन वाले **बुद्धिमान चित्रगुप्तजी** द्वारा **धर्मराज के लिये कहे गये सन्देश** को जो मैंने सुना, उसे सुनकर मैं विस्मय में पड़ गया। जो लोग उस नरक में डाले गये हैं, वे लोग कर्म के अनुसार भोग भोगते हैं। उन पापात्माओं को भयंकर बन्धन में बाँधकर अग्नि में जलाया जाता है। वे लोग कर्म के अनुसार उन पापात्माओं को कठिन से कठिन कष्ट देते हैं॥ १—२$^1/_2$ ॥

श्यामाश्च दशनाभिर्ये त्विमं शीघ्र प्रमापय॥ ३ ॥
दुराचारं पापरतं निर्घृणं पापचेतसम्। श्वानस्तु हिंसका ये च भक्षयन्तु दुरात्मकम्॥ ४ ॥
पितृघ्नो मातृगोघ्नस्तु सर्वदोषसमन्वितः। आरोप्य शाल्मलीं घोरां कण्टकैस्तैर्विपाटय॥ ५ ॥
एनं पाचय तैलस्य घृतक्षौद्रस्य वा पुनः। तप्तद्रोण्यां ततो मुञ्च ताम्रतप्तखले पुनः॥ ६ ॥
नराधममिमं क्षिप्त्वां प्रदीप्ते हव्यवाहने। ततो मनुष्यतां प्राप्य ऋणैस्तत्र प्रदीप्यते॥ ७ ॥
शयनासनहर्त्तारमग्निदायी च यो नरः। वैतरण्यामयं चैव क्षिप्यतामचिरं पुनः॥ ८ ॥
पापकर्मायमत्यर्थं सर्वतीर्थविनाशकः। तस्य प्रदीप्तः कीलोऽयं वाह्नितप्तोऽतिदुःस्पृशः॥ ९ ॥
आदेश्य चोभयोरस्य कर्णयोः कूटसाक्षिकः। यो नरः पिशुनः कूट साक्षी चालीकजल्पकः॥१०॥
ग्रामयाजकं विप्रमध्रुवं दांभिकं शठम्। वद्धा तु बन्धने घोरे दीयतां तु न किंचन॥११॥

जिह्वाऽस्य छिद्यतां शीघ्रं वाचा दुष्टस्य पापिनः। गम्यागम्यं पुरा येन विज्ञातं न दुरात्मना॥ १२॥
कृतं लोभाभिभूतेन कामसम्मोहितेन च। तस्य च्छित्वा ततो लिंगं क्षारमग्निं च दीपय॥ १३॥

चित्रगुप्तजी यमदूतों से बोले—काले दाँतों के द्वारा इनको काटो, जो लोग दुराचारी हैं पाप में लीन हैं, दया रहित हैं, ऐसे पाप हृदय वाले जीव को हिंसक कुत्तों से भक्षण कराओ। जो पितृघाती हैं, मातृघाती हैं, सभी दोष से युक्त हैं, उन जीवों को काँटेदार सेमर के वृक्ष पर चढ़ाकर काट दो। इनको तेल में पकाओ, गर्म घी में डाल दो। जलती नदी में तथा जलते ताँबे के ओखल में डाल दो। इस नीच जीव को जलती आग में डाल दो। यह मनुष्य होकर ऋण खाया है, इसको जला दो। जो शयन-आसन को हरण करने वाला है, जो दूसरे के घर को आग लगा दिया है, उसको शीघ्र वैतरणी नदी में डाल दो। यह जीव पाप कर्म में लगा था सभी तीर्थों का अपमान एवं नाश करने वाला है, इसको जलते हुए अत्यन्त दुःख देने वाला कील से छेद करो अर्थात् इसे जलाओ। इसके दोनों कान असत्य सुनते है, ऐसा व्यक्ति जो क्रूर, झूठी गवाही देता है, झूठ बोलता है, गाँव में यज्ञ कराने वाला विप्र, अध्रुवं-अस्थिर वचन का पालन न करने वाला है, यह अहंकारी है, दुष्ट है, यह किसी को कुछ नहीं देता, इसको बन्धन में बाँध दो, इस झूठ बोलने वाले पापी की जिह्वा छेद दो। यह दुष्ट आत्मा वालेको कहाँ जाना चाहिए कहाँ नहीं इसका ज्ञान नहीं है, जो लोभ के वशीभूत होकर और काम के वश में आकर जो काम किया है, उस कारण इसके लिंग को काट कर क्षार अग्नि में जला दो॥ ३—१३॥

इमं तु खलकं कृत्वा दुरात्मा पापकारिणम्। दायादा बहवो येन स्वार्थहेतोर्विनाशिताः॥ १४॥
इमं वार्धुषिकं विप्रं सर्वत्रांगेषु भेदय। तथायं यातनां यातु पापं बहु समाचरन्॥ १५॥
सुवर्णस्तेयिनं पापं कृतघ्नं च तथा नरम्। क्रूरं पितृहणं चैनं ब्रह्मघ्नेषु समीकुरु॥ १६॥

यह खल का काम किया है यह पापी है दुष्टात्मा है, अपने स्वार्थ के कारण दया को नही किया है। इस सूदखोर के शरीर के सभी अंग को छेद दो। यह बहुत सा पाप किया है, इसे अधिक यातना दे। यह सोने का चोरी किया है, कृतघ्न है, क्रूर है, पिता का घातक है, यह ब्राह्मण की हत्या किया है, इसे दण्ड दो॥ १४—१६॥

अस्थि च्छित्वा ततः क्षिप्रं क्षारमग्निं च दापय। इमं तु विप्रं खादन्तु तीक्ष्णदंष्ट्राः सुदारुणाः॥ १७॥
पिशुनं हि महाव्याघ्राः पंच घोराः सुदारुणाः। इमं पचत पाकेषु बहुधा मर्मभेदिनम्॥ १८॥
येनाग्निरुज्झितः पूर्वं गृहीत्वा च न पूजितः। इमं पापसमाचारं वीरघ्नमतिपापिनम्॥ १९॥
कर्कटस्य तु घोरस्य नित्यक्रुद्धस्य मोचय। इमं घोरे ह्रदे क्षिप्तं सर्वयाजनयाजकम्॥ २०॥

इसके हड्डी को काटकर **क्षार के अग्नि में डाल दो।** कठोर एवं तेज दाँत वाले हिंसक जीव इसको खा जायें इस चुगलखोर को बड़े सिंह कठोर दण्ड दें। इस मर्मभेदी अर्थात गोपनीय बात को प्रचारित करने वाले को आग में पका दो। इसे अग्नि में छोड़ दो। वीर पुरुष को मारने वाले इस पापी को जो पाप किया, उसको बताओ। भयंकर क्रोधित **कर्कट (Cancer)** के पास इसे छोड़ दो। यज्ञ को न करने वाले इस प्राणी को गहरी नदी में डाल दो॥ १७—२०॥

सर्वेषां तु पशूनां यो नित्यं धारयते जलम्। न त्राता न च दाता च पापस्यास्य दुरात्मनः॥ २१॥
अदानव्रतिनो विप्रा वेदविक्रयिणस्तथा। सर्वकर्माणि कुर्युर्ये दीयते न च किंचन॥ २२॥
तोयभाजनहर्त्तारं भोजनं योऽनिवारयन्। हन्यतां सुदुर्द्धैर्दण्डैर्यमदूतैर्महाबलैः॥ २३॥
वेणुदण्डकशाभिश्च लोहदण्डैस्तथैव च। जलमस्मै न दातव्यं भोजनं च कथंचन॥ २४॥
तस्मा अन्नं च पानं च न दातव्यं कदाचन। हत विश्वास्य हन्तारं वह्नौ शीघ्र प्रपाचय॥ २५॥

ब्रह्मदेयं हृतं येन तं वै शीघ्रं विपाचय। बहुवर्षसहस्राणि पातये कर्मविस्तरे॥ २६॥

जो नदी में सभी जीवों को पकड़ता है, जिस पापी ने कभी किसी की रक्षा नहीं की है, न कभी किसी को कुछ दान नहीं दिया है, व्रत नहीं किया है, **वेद के मन्त्रों को जो ब्राह्मण दुरुपयोग किया है,** किसी को कुछ नहीं दिया तथा सभी कुत्सिक कार्य किया है, जलपात्र की चोरी किया, भोजन से सबको हटा दिया, इसे बलशाली यमदूतों द्वारा कठोर दण्ड दो। बाँस के दण्ड से, लोहे के दण्ड से इसे दण्ड दो, यह कभी किसी को फल एवं भोजन नहीं दिया है। इसलिए इसको भी अन्न जल मत दो, विश्वासघाती है, इसे अग्नि में शीघ्र पका दो, भगवान् के मन्दिर में जो चोरी किया है, इसे शीघ्र इसके कर्म के अनुसार हजारों वर्षों तक इस नरक में गिरा दो॥ २१—२६॥

समुत्तीर्णं ततः पश्चात्तिर्यग्योनौ प्रपातये। सूक्ष्मदेहविपाकेषु कीटपक्षिविजातिषु॥ २७॥
क्लिष्टो जातिसहस्रैस्तु जायते मानुषस्ततः। तत्र जातो दुरात्मा च कुलेषु विविधेषु च॥ २८॥
हिंसारूपेण घोरेण ब्रह्मवध्यां प्रदापयेत्। राज्ञस्तु मारकं घोरं ब्रह्मघ्नं दुष्कृतं तथा॥ २९॥
सुवर्णस्तेयिनं चैव सुरापं चैव कारयेत्। अनुभूय ततः काले ततो यक्ष्म प्रयोजयेत्॥ ३०॥
गोघातको ह्ययं पापः कूटशाल्मलि मारुहेत्। कृष्यते विविधैर्घोरै राक्षसैर्घोरदर्शनैः॥ ३१॥
पूतिपाकेषु पच्येत जन्तुभिः संप्रयोजितः। ब्रह्मबध्याच्चतुर्भागैर्मृगत्वं पशुतां गतः॥ ३२॥
उद्विग्नवासं पतितं यत्र यत्रोपपद्यते। पापकर्मसमुद्विग्नो जातो जातः पुनःपुनः॥ ३३॥

इस कर्म से मुक्त होकर यह पक्षी के योनि में जन्म ले तथा सूक्ष्म शरीर के कारण कीट, पतंग आदि योनी में जाये। अनेक जातियों में भ्रमण करके पुनः मनुष्य योनि में जाये। यह दुरात्मा अनेक कुलों में जन्म ले। यह ब्रह्महत्या का घोर पाप किया है, सोना चुराने वाला, सुरा का पान किया, सभी समय का अनुभव करने वाले ऐसे पापी को क्षय (टी०वी०) जैसे रोग हो। गाय का वध करने वाले इस पापी को काँटे वाले सेमर के वृक्ष पर चढ़ा दो। जिनका दर्शन भयंकर है ऐसे राक्षसों द्वारा खींचा जाये। जन्तुओं के द्वारा प्रयोग में लाये गये अग्नि में पकाओ। ब्राह्मण के वध के पाप में जीवन के चार भाग मृग के योनी में जाये। **पाप कर्म करने के कारण जिस-जिस योनि में जाये, वहाँ-वहाँ वह उद्विग्न ही रहे**॥ २७—३३॥

अयं तिष्ठति किं पापः पितृघाती दुरात्मवान्। ते तु वर्षशतं साग्रं भक्षयन्तु विचेतसः॥ ३४॥
ततः पाकेपु घोरेषु पच्यतां च नराधम्। ततो मानुषतां प्राप्य गर्भस्थो म्रियतां पुनः॥ ३५॥
व्यापन्नो दशगर्भेषु ततः पश्चाद्विमुच्यताम्। तत्रापि लब्ध्वा मानुष्यं क्लेशभागी च जायताम्॥ ३६॥
बुभुक्षारुग्विकारैश्च सततं तत्र पीड्यताम्। पापाचारमिमं घोरं मित्रविश्वासघातकम्॥ ३७॥
यन्त्रेण पीड्यतां क्षिप्रं ततः पश्चाद्विमुच्यताम्। दीप्यतां ज्वलने घोरे वर्षाणां च शतद्वयम्॥ ३८॥
जायतां च ततः पश्चाच्छुनां योनौ दुरात्मवान्। भ्रष्टोऽपि जायतां तस्मान्मानुषः क्लेशभाजनः॥ ३९॥
प्राप्तवान्विविधान्रोगान्संसारे चैव दारुणान्। ब्रह्मस्वहारी पापोऽयं नरो लवणतस्करः॥ ४०॥
वर्षाणां तु शतं पंच तत्र क्लिष्टो दुरात्मवान्। कृमिको जायते पश्चाद्विष्ठायां कृमिकोऽपरः॥ ४१॥

यह पितृघाती पापी यहाँ बैठा है, यह सौ वर्ष तक निश्चेष्ट हो, उसके बाद घोर अग्नि में यह पकाया जाये, **उसके बाद मनुष्य योनि में जाये और वहाँ गर्भ में ही बार-बार मर जाये,** दस बार गर्भ में मरने के बाद उससे छुटकारा मिले, वहाँ भी **मनुष्य योनि पाकर अनेक कष्ट भोगे, वह भूख, रोग, विकार से सर्वदा पीड़ित रहे।** यह मित्र से विश्वासघात जैसा महापाप करे। इसे कोल्हू में चलकर गन्ने की तरह पीसने के बाद इसे छोड़ दो और दो सौ वर्ष तक

प्रदीप्त आग में इसे जलाओ। इसके बाद यह दुरात्मा कुत्ते की योनि में उत्पन्न हो, वहाँ भ्रष्ट होकर अनेक कष्ट पाये। **तत्पश्चात् मनुष्य योनि में आकर अनेक रोग से ग्रसित रहे।** ब्राह्मण के धन को चुराने वाला यह पापी नमक की चोरी करेगा, पाँच सौ वर्ष तक उस योनि में कष्ट से रहे, उसके बाद विष्ठा का कीड़ा हो॥ ३४—४१॥

भगवान् चित्रगुप्त ही पापियों को गर्भपात देकर निःसन्तानी बनाते हैं।

शकुन्तो जायते घोरस्तत्र पश्चाद्वृको भवेत्। इममग्निप्रदं घोरं काष्ठाग्नौ सम्प्रतापय॥ ४२॥
स्वकर्मसु विहीनेषु पश्चाल्लब्धगतिस्तथा। ततश्चाथ मृगो वापि ततो मानुषतां व्रजेत्॥ ४३॥
तत्रापि दारुणं दुःखमुपभुंक्ते दुरात्मवान्। सर्वदुष्कृतकार्येषु सह संघातचिन्तकैः॥ ४४॥
एवं कर्मसमायुक्तास्ते भवन्तु सहस्त्रशः। परद्रव्यापहाराश्च रौरवे पतितास्तथा॥ ४५॥
कुम्भीपाकेषु निर्दग्धः पश्चाद्गर्दभतां गतः। ततो जातस्त्वसौ पापः शूकरो मलभुक्तथा॥ ४६॥
प्राप्नोतु विविधांस्तापान्यथा हृतधनश्च सन्। क्षुधातृष्णापराक्रान्तो गर्दभो दशजन्मसु॥ ४७॥
मानुष्यं समनुप्राप्य चौरो भवति पापकृत। परोपघाती निर्लज्जः सर्वदोषसमन्वितः॥ ४८॥

इसके बाद पक्षी हो, पुनः भेड़िया हो। उस योनि में भी अनेक दुःख भोगे। यह पापी निरन्तर दुष्कृत कार्य ही किया है, अतः आतंकियों जैसा हो। इस प्रकार हजारों वर्षों तक इस क्रम में पड़ा रहे। दूसरे के धन का अपहरण करने के कारण रौरव नामक नरक में जाये। कुम्भीपाक नरक में जलने के बाद गधे की योनि में जाये। इसके बाद मल खाने वाले सुकर की योनि में जाये। जैसा किसी का धन समाप्त हो जाता है और कष्ट को भोगता है उसी प्रकार वहाँ वह कष्ट पाये। भूख, प्यास से आक्रान्त होकर दस जन्म तक गधा हो। **पुनः मनुष्य योनि में जाकर चोरी का कार्य करे। वह दूसरे पर दोष लगाये और लज्जा हीन होकर सभी दोषों से युक्त हो**॥ ४२—४८॥

वृक्षशाखावलम्बोऽत्र ह्यधःशीर्षः प्रजायते। अग्निना पच्यतां पश्चाल्लुब्धो वै पुरुषाधमः॥ ४९॥
ततो वर्षशते पूर्णे मुच्यते स पुनः पुनः। अजितात्मा तथा पापः पिशुनश्च दुरात्मवान्॥ ५०॥
पूर्वैश्च सूकरो भूत्वा नकुलो जायते पुनः। विमुक्तश्च ततः पश्चान्मानुष्यं लभते चिरात्॥ ५१॥
धिक्कृतः सर्वलोकेन कूटसाक्ष्यनृतव्रतः। न शर्म लभते क्वापि कर्मणा स्वेन गर्हितः॥ ५२॥
इमं ह्यानृतिकं दुष्टं क्षेत्रहारकमेव च। स्वकर्म दुष्कृतं यावत्तावद्दुःखं भुनक्त्वसौ॥ ५३॥

वृक्ष की शाखा पर नीचे सिर करके लटकाया जाये। उसके बाद वह पुरुषों में नीच लोभी अग्नि में पकाया जाये। इस अजितात्मा, पापी, क्रूर जीव को बार-बार इस प्रकार की यातना सहनी पड़े। पहले की भाँति सूकर के बाद नेवले की योनि में जाये। बहुत दिनों के बाद पुनः मनुष्य योनी में जन्म ले। झूठी गवाही देना, झूठ बोलना उस जीव की आदत हो, जिससे समाज में उसकी निन्दा हो, अपने निन्दित कर्म करने के कारण उसे लज्जा नहीं हो। **यह दुष्ट जीव असत्यवादी, दूसरे की जमीन हड़प करने वाला अपने दुष्कर्म से अनेक दुःखों को भोगता रहे**॥ ४९—५३॥

कर्मण्येकैकशश्चायं स तु तिष्ठत्वयं पुनः। वर्षलक्षं न सन्देहस्ततस्तिष्ठत्वयं पुनः॥ ५४॥
ततो जातीः स्मरेत्सर्वास्तिर्यग्योनिं समाश्रितः। जायतां मानुषः पश्चात्क्षुधया परिपीडितः॥ ५५॥
सर्वकामविमुक्तस्तु सर्वदोषसमन्वितः। क्वचिज्जात्यां भवेदन्धः क्वचिद्बधिर एव च॥ ५६॥
क्वचिन्मूकश्च काणश्च क्वचिद्व्याधिसमन्वितः। एवं हि प्राप्नुयाद्दुःखं न च सौख्यमवाप्नुयात्॥ ५७॥
जात्यन्तरसहस्त्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च। शान्तिं न लभते चैव भूमे क्षेत्रहरो नरः॥ ५८॥

तीव्रैरन्तर्गतैर्दुःखैर्भूमिहर्त्ता नराधमः। इमं बन्धैदृढैबद्ध्वा विपाचय तथाचिरम्॥ ५९॥

अपने कर्मों के कारण एक-एक योनि में जाये, ऐसा एक लाख वर्ष तक इन योनियों में रहे, इसमें सन्देह नहीं है। पुनः अपने पूर्व जन्म के जाति को स्मरण करता हुआ **पुनः पक्षी की योनियों में जन्म ले। पुनः मनुष्य योनि में उत्पन्न होकर भूख से दुःखित हो। सत्कर्म से दूर होकर सभी दोष से पूर्ण हुआ वह जीव किसी योनि में अन्धा, किसी में बहरा हो, कहीं गूँगा, कहीं काना, कहीं रोग से ग्रसित हो, इस प्रकार अनेक दुःखों को भोगता रहे, कहीं उसे सुख नहीं मिले। हजारों, लाखों और अरबों योनियों में भ्रमण करता हुआ दुःख को भोगता रहे। जो भूमि का अपहरण करता है, भूमि का अपहरण करने वाला व्यक्ति का मन निरन्तर दुःखी रहे, कभी भी शान्ति नहीं पाये।** ऐसे जीव को कठोर बन्धन में बाँधकर शीघ्र अग्नि में पका दो॥ ५४—५९॥

प्रबद्धः सुचिरं कालं मम लोकं गतो नरः। जायतां स चिरं पापो मार्जारस्तेन कर्मणा॥ ६०॥
तीव्रक्षुधापरिक्लिष्टो बद्धो बन्धनयन्त्रितः। दुःखान्यनुभवंस्तत्र पापकर्मा नराधमः॥ ६१॥
सप्तधा सप्त चैकां च जातिं गत्वा स पच्यते। इमं शाकुनिकं पापं श्वभिर्गृध्रैश्च घातय॥ ६२॥
ततः कुक्कुटतां यातु विड्भक्षश्च दुरात्मवान्। दंशश्च मशकश्चैव ततः पश्चाद्भवेत्तु सः॥ ६३॥
जातिकर्म सहस्त्रं तु ततो मानुषतां व्रजेत्। इमं सौकरिकं पापं महिषा घातयन्तु तम्॥ ६४॥
वर्षाणां च सहस्त्रं तु धावमानं ततस्ततः। विभिन्न च प्रभिन्नं च शृंगाभ्यां पद्भिरेव च॥ ६५॥
तस्माद्देशात्ततो मुक्तस्ततः सूकरतां व्रजेत्। महिषः कुक्कुटश्चैव जम्बूक एव च॥ ६६॥

ऐसा जीव मेरे पाश में बंधकर मेरे लोक (यमलोक) में बहुत दिन तक निवास करे। अधिक पाप होने के कारण वह बिल्ली के योनि में उत्पन्न हो। वह नीच पुरुष अपने पाप कर्मों के कारण तीव्र भूख से दुःखी हो और उसको पाश में बाँध दो, इस प्रकार अनेक कष्टों का अनुभव करे। **चित्रगुप्तजी यमदूतों से बोले—एक जाति में वह सात (७-७) बार क्रम से जन्म लेकर दुःख भोगे।** यह पक्षी, कुत्ता एवं गिद्ध के मारने के पाप में मुर्गा के योनि में जाकर विष्ठा खाये। वह इसके बाद-दंश मारने वाला एवं मच्छर योनि में जन्म ले। हजारों योनि के बाद वह पुनः मनुष्य योनि में जन्म ले। उस पापी को सूअर और भैंसा मारे, इस प्रकार हजारों वर्ष तक अनेक प्रकार के सींग एवं पैरों से दौड़ता रहे। उस स्थान से मुक्त होकर सूअर की योनि में जन्म ले। पुनः भैंस, मुर्गा, खरगोश और सियार की योनि में जन्म ले॥ ६०—६६॥

> **श्लोक-६२, भगवान् चित्रगुप्त द्वारा बनाये नियम के अनुसार प्राणी का पशु-पक्षी आदि से लेकर शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय तथा ब्राह्मण योनि में जाना प्रत्येक ७-७ जन्म का होता है।** इसीलिये विवाह में ७ फेरे सात जन्म तक साथ निभाने के लिये कराये जाते हैं।

यां यां याति पुनर्जातिं तत्र भक्ष्यो भवेत्तु सः। कर्मक्षयोऽन्यथा नास्ति मया पूर्वं विनिर्मितम्॥ ६७॥
प्राप्य मानुषतां पश्चात्पुनर्व्याधो भविष्यति। अन्यथा निष्कृतिर्नास्ति जातिजन्मशतैरपि॥ ६८॥
उच्छिष्टान्नप्रदातारं पापाचारमधार्मिकम्। अङ्गारैः पचतां चैनं त्रीणि वर्षशतानि च॥ ६९॥
भिन्नचारित्रदुःशीला भर्त्तुर्व्यलीककारिणी। आयसान्पुरुषान्सप्त ह्यालिङ्गतु समन्ततः॥ ७०॥
ततः शुनी भवेत्पश्चात्सूकरी च ततःपरम्। कर्मक्षये ततःपश्चान्मानुषी दुःखिता भवेत्॥ ७१॥
न च सौख्यमवाप्नोति तेन दुःखेन दुखिता। अनेन भृत्या बहवः श्रांताः शांताः प्रवाहिताः॥ ७२॥
भक्ष्यं भोज्यं च पानं च न तेषामुपपादितम्। अनुमोदे प्रजा दृष्ट्वा लिप्समानो दुरात्मवान्॥ ७३॥

एवं कुरुत भद्रं वो मम पार्श्वे तु दुर्मतिः। रौरवे नरके घोरे सर्वदोषसमन्विते॥ ७४॥
सर्वकर्माणि कुर्वाणं क्षपयध्वं दुरासदम्। वर्षाणां तु सहस्राणि तैस्तैः कर्मभिरावृतम्॥ ७५॥

चित्रगुप्तजी यमदूतों से बोले—मेरा यही पूर्व में बनाया नियम है। जिस-जिस जाति में जन्म ले उस-उस जाति का भक्ष्य हो, कर्म के अनुसार फल का क्षय नहीं होता है। पुनः मनुष्य योनि में बहेलिया बने। इस प्रकार सैकड़ों जाति में भ्रमण करने पर भी निष्पाप नहीं हो। यह जूठा भोजन देने वाला, अधार्मिक पापी को तीन सौ वर्ष तक आग में पकाओ। **जिसका चरित्र गिर गया है, जो परपुरुषगामी है, पति पर व्यर्थ का आरोप लगाती है, ऐसे जीव को गर्म लोहे के पुरुष से स्पर्श करा दो। "इसके बाद वह शुनी [कुतिया] तथा बाद में सूकरी [सूअर] की योनी में जन्म ले।" पाप कर्म के कुछ क्षय होने पर मनुष्य योनि में जन्म लेकर दुःख भोगती रहे। उस पाप से निरन्तर दुःखी रहे, कभी सुख नहीं प्राप्त करे।** सेवकों के द्वारा ये श्रान्त है, भोजन जो उपयुक्त है, उसे खिलाने एवं पान करने के कारण भी सन्तुष्ट न हो। यह दुरात्मा प्रजा के अनुमोदन पर भी लालचवश दुःख भोगता है। वह सब करने वाला पापी मेरे पास (यमलोक) में रहे और सभी दोषों से युक्त रौरव नामक नरक में निवास करे। यहाँ सभी कर्मों को करते हुए अपने समय को बिताये। उन-उन कर्मों के कारण एक हजार वर्ष तक उसी में घिरा रहे॥ ६७—७५॥

प्रक्षिप्यतामयं पश्चाद्दस्युजातौ दुरात्मवान्। जायतामुरगः पश्चात्ततः कर्म समाश्रयेत्॥ ७६॥
ततः पश्चाद्भवेत्पापश्चेतरः सर्वपापकृत्। सूकरस्तु भवेत्पश्चान्मेषः संजायते पुनः॥ ७७॥
हस्त्यश्वश्च शृगालश्च सूकरो बक एव च। ततो जातस्तु सर्वेषु संसारेषु पुनःपुनः॥ ७८॥
वर्षाणामयुतं साग्रं ततो मानुषतां व्रजेत्। पंचगर्भेषु सापत्सु पंच जातो म्रियेत सः॥ ७९॥
अपौगण्डो म्रियेत्पंच कर्मशेषक्षये तु सः। ततो मानुषतां याति चैष कर्मविनिर्णयः॥ ८०॥
पापस्य सुकृतस्याथ प्रजानां विनिपातने। भूतानां चाप्यसांनं दुष्प्रहारश्च सर्वशः॥ ८१॥
अतः स्वयम्भुवा पूर्वं कर्मपाको यथार्थवत्॥ ८२॥

इसके बाद वह डाकू का कार्य करे। अपने कर्मो के अनुसार पुनः सर्प योनि में जाये। उसमें जो पाप हो उन सभी पापों के कारण सूकर योनि में, पुनः बैल के योनि में उत्पन्न हो। इस संसार में हाथी, घोड़ा, सियार, सूकर, बगुला योनि में एक लाख वर्ष तक रहे, पुनः मनुष्य योनी में जाये। **पुनः पाँच बार गर्भ में ही मर जाये। कुमार [युवा] अवस्था में ही मर जाये क्योंकि पाप कर्म का भोग शेष है।** पुनः मनुष्य योनि में जन्म ले। पाप और पुण्य करने के कारण यह गति प्राणी की होगी। मनुष्य का अपमान और अनर्गल व्यवहार के कारण पूर्व कर्म के फल को यथावत भोगेगा॥ ७६—८२॥

भगवान् चित्रगुप्त ही पापियों के पुत्रों को अकाल मृत्यु देते हैं।

× × ×

अध्याय-२०३

ऋषि उवाच–

अन्यान्यपि च पापानि चित्रगुप्ता दिदेश ह। व्यामिश्रान्कथ्यमानांश्च शृणुध्वं तान्महौजसः॥ १॥

नचिकेता ऋषि बोले—चित्रगुप्तजी ने अन्य पापों का फल भी बताया, हे मुने! मिश्रित रूप से बताये गये उस पाप पुञ्जको सुनिये— ॥ १॥

शीलसंयमहीनानां कृष्णपक्षनुगामिनाम्। महापापैरुपेतानां कथ्यतां तत्पराभवम्॥ २॥
राजद्विष्टा गुरुद्विष्टाः सर्वे ते वै विगर्हिता। अविश्वास्या हासम्भाष्याः कुक्षिमात्रपरायणाः॥ ३॥
हिंसाविहारिणः क्रूराः सूचकाः कार्यदूषकाः। गवेडकस्य वधकाः महिषाजादिकस्य च॥ ४॥
दावाग्निं ये च मुंचन्ति ये च सौकरिकास्तथा। तत्र कालमसंख्येयं पच्यन्ते पापकारिणः॥ ५॥
कर्मक्षयाद्यदा भूयो मानुष्यं प्राप्नुवन्ति ते। अल्पायुषो भवन्तीह व्याधिग्रस्ताश्च नित्यशः॥ ६॥

चित्रगुप्तजी यमदूतों से बोले—जो सदाचार, संयम से हीन निरन्तर पाप कर्म का अनुगमन करने वाला है, उसके पराभव (अपमान) को बता रहा हूँ। जो लोग राजा एवं गुरु से द्वेष करने वाले हैं, जो किसी पर विश्वास नहीं करते दुर्वाच्य बोलते हैं, अपना पेट पालते हैं, हिंसा का कार्य करते हैं, क्रूर हैं, कार्य के दोष वाले हैं, नीलगाय, भैंस, बकरी आदि के बध करने वाले हैं, जंगल में आग लगाने वाले हैं, जो सूकर की तरह अपना पेट पालता है, ऐसे पापी को बहुत दिनों तक आग में पकाओ। कर्म के कुछ क्षय होने से मनुष्य योनि में आये। **वह भी नित्य रोगी होता हुआ अल्पआयु हो** ॥ २—६॥

(भगवान् चित्रगुप्त ही पापियों को रोगी और अल्पआयु बनाकर मृत्यु देते हैं।)

गर्भ एव विपद्यन्ते म्रियन्ते बालकास्तथा। परिरिंगरताः केचिन्म्रियन्ते पुरुषाधमाः॥ ७॥
काष्ठवंशे च शस्त्रे च वायुना ज्वलनेन च। तोयेन वा पाशबन्धैः पतनेन विषेण वा॥ ८॥
मातापितृवधं कष्टं मित्रसम्बन्धिबन्धुजम्। बहुशः प्राप्नुवन्त्येते विद्रवं चाप्यभीक्ष्णशः॥ ९॥
प्राणातिपातनं ते वे प्राप्नुवन्ति यथा तथा। लोहकाः कारुकाश्चैव गर्भाणां विनिहिंसकाः॥ १०॥
मूलकर्मकरा ये च गरदाः पुरदाहकाः। ये च पञ्जरकर्त्तारो ये च शूलोपघातकाः॥ ११॥
पिशुनाः कलहाश्चैव ये च मिथ्याविदूषकाः। गोकुञ्जरखरोष्ट्राणां चर्मका मांसभेदका॥ १२॥
उद्वेजनकराश्चण्डाः पच्यन्ते नरकेषु ते। तत्र कालं तु सम्प्राप्य यातनाश्च सुदुःसहाः॥ १३॥
कर्मक्षयो यदा भूयो मानुष्यं प्राप्नुवन्ति ते। हीनाङ्गाः सुदरिद्राश्च भवंति पुरुषाधमाः॥ १४॥

वह गर्भ में ही विपत्ति लेकर आये और बाल्यावस्था में मर जाये। ऐसा पुरुषों में नीच लंगड़ा होकर मर जाये हैं। लकड़ी, शस्त्र आदि में वायु एवं अग्नि से, जल से, पाशके बन्धन से गिर जाने से, विष के द्वारा तथा माता-पिता के बध करने से, मित्र, सम्बन्धी से द्वेष करने के कारण भयंकर कष्ट प्राप्त करे। लोहे के काम पर रंगाई का कार्य, गर्भ का पतन, नगर में आग लगाने वाला, विष देने वाला, पक्षी को पिंजड़े में बन्द कर देने वाला, शूल के घातक से काना, हिंसक, कलह प्रिय, मिथ्या दोषारोपण करने वाला, गाय, हाथी, गधा, ऊँट का चर्म एवं मांस को काटने एवं बेचने वाला, ऐसे दुष्ट आत्मा वाले नरक में पकाओ। उस नरक में घोर यातना सहते हुए समय व्यतीत होने पर **पुनः मनुष्य योनि में प्राप्त करे और वह हीन अङ्गवाला एवं दरिद्र हो** ॥ ७—१४॥

(भगवान् चित्रगुप्त ही पापियों को अङ्गहीन एवं दरिद्र बनाते हैं।)

श्रवणच्छेदनं चैव नासाच्छेदनमेव च। छेदनं हस्तपादानां प्राप्नुवंति स्वकर्मणा॥ १५॥
शारीरं मानसं दुःखं प्राप्नुवन्ति पुनःपुनः। गलवेदनास्तथोग्राश्च तथा मस्तकवेदनाः॥ १६॥
कुक्ष्यामयं तथा तीव्रं प्राप्नुवंति नराधमाः। जडान्धबधिरा मूक्राः पंगवः पादसर्पिणः॥ १७॥
एकपक्षहताः काणाः कुनखाश्चामयाविनः। कुब्जाः खञ्जास्तथा हीना विकलाश्च घटोदराः॥ १८॥
गलत्कुष्ठाः श्वित्रकुष्ठा भवन्ति स्वैश्च कर्मभिः। वाताण्डाश्चाण्डहीनाश्च प्रमेहमधुमेहिनः॥ १९॥
योनिशूलाक्षिशुलाश्च श्वासहृदद्गुह्यशूलिनः। पिण्डकावर्त्तभेदैश्च प्लीहगुल्मादिरोगिणः॥ २०॥
बहुभिर्दारुणेर्घोरैर्व्याधिभिः समुनुद्गताः। इत्येतान्हिंसकान्क्रूरान्घातयन्तु सुदारुणान्॥ २१॥

कान छेदना, नाक छेदना, अपने कर्म के अनुसार हाथ-पाँव छेदन करने वाला बार-बार शारीरिक एवं मानसिक दुःख प्राप्त करे। **ऐसे जीव को गले का रोग, मस्तक का रोग, उदर का रोग हो। अन्धा, बहरा, गूँगा, लंगड़ा, पैर से सरकने वाला, एक पक्ष जिसका टूट गया हो, काना, कुत्सित नरक वाला रोगी, बूढ़ा, हीन एवं व्यग्र रहने वाला, मोटे पेट वाला, कोढ़ी (पिब बहता हुआ), श्वेत कुष्ठ वाला, वात रोग, अण्डहीन, प्रमेह, मधुमेह आदि रोग पापी के कुकर्मों के द्वारा हो। गुप्तांग में कष्ट, आँत में कष्ट श्वास, हृदय में कष्ट, पिण्ड का भंवर रोग (चक्कर आना) प्लेग रोग आदि रोग से नराधम ग्रसित हो जाये।** इस प्रकार अनेक व्याधियों से ग्रसित हो, ऐसे जीव को, जो हिंसक एवं क्रूर हैं, इनको क्रूरता के साथ दण्ड दो॥ १५—२१॥

भगवान् चित्रगुप्त ही पापियों को हृदयरोग, मधुमेह, वातव्याधि इत्यादि देकर मृत्यु देते हैं।

मिथ्याप्रलापिनो दूतान्पाचयन्तु यथाक्रमम्। कर्कशाः पुरुषाः सत्या ये च योषानिरर्थकाः॥ २२॥
एषां चतुर्विधा भाषा या मिथ्याप्यभिधीयते। हास्यरूपेण या भाषा चित्ररूपेण वा पुनः॥ २३॥
अरहस्यं रहस्यं वा पैशुन्येन तु निन्दनात्। उद्वेग जनना वापि कटुका लोकगर्हिताः॥ २४॥
स्नेहक्षयकरां रूक्षां भिन्नवृत्ताविभूषिताम्। कदलीगर्भनिस्सारां मर्मस्पृक्कटुकाक्षराम्॥ २५॥
स्वरहीनामसंख्येयां भाषंते च निरर्थकम्। अयंत्रितमुखा ये च ये निबद्धाः प्रलापिनः॥ २६॥
दूषयन्ति हि जल्पन्तोऽनृजवो निष्ठुराः शठाः। निर्दया गतलज्जाश्च मूर्खा मर्मविभेदिन्॥ २७॥
न मर्षयंति येऽन्येषां कीर्त्त्यमानाञ्छुभान्गुणान्। दुर्वाचः परुषांश्चण्डान्बन्धयध्वं नराधमान्॥ २८॥

मिथ्या प्रलाप करने वाले को क्रमानुसार पकाओ, कर्कशवादी, कठोरसत्यवादी, स्त्री प्रपञ्चवादी में एवं निरर्थक वार्तालापवादी, ये चार प्रकार के लोग। जो हँसी करने वाले या विचित्र बात करने वाले, सारहीन या रहस्ययुक्त, चुगलखोर अथवा निन्दनीय, कष्ट देने वाला अथवा संसार में निन्दित, प्रेम को नष्ट करने वाला, कठोर वचन बोलने वाला, **अपने से विपरित आचरण करने वाला,** केले का खम्भा अन्दर जैसे तत्वहीन होता है उसी प्रकार सारहीन, अन्दर चोट पहुँचाने वाला, कड़ुवा बोलने वाला, स्वरहीन, असत्य एवं व्यर्थ बोलने वाला, जिसका मुख नियन्त्रित नहीं रहता, व्यर्थ का प्रलाप करने वाला, झूठ में दूसरे पर दोषारोपण करने वाला, निष्ठुर, धूर्त, दयारहित, जिसके पास लज्जा न हो, मूर्ख हो, हृदय पर चोट पहुँचाने वाला, **दूसरे के कीर्ति एवं शुभ गुणों का सहन न करने वाला,** दुर्वाच्य बोलने वाला, कठोर बोलने वाले नीच पुरुष को बाँध दो॥ २२—२८॥

ततस्तिर्यक्प्रजायन्ते बहुधा कीटपक्षिणः। लोके दोषकराश्चैव लोकद्विष्टास्तथा परे॥ २९॥
तत्र कालं चिरं घोरं पच्यन्ते पापकारिणः। कर्मक्षयो यदा भूयो मानुष्यं प्राप्नुवन्ति ते॥ ३०॥
परिभूता अविज्ञाना नष्टचित्ता अकीर्त्तयः। अनर्च्याश्चाप्यनर्हाश्च स्वपक्षे ह्यवमानिताः॥ ३१॥

त्यक्त्वा मित्राणि मित्रेषु ज्ञातिभिश्च निराकृताः। लोकदोषकराश्चै लोकद्वेष्याश्च ये नराः॥ ३२॥
अन्यैरपि कृतं पापं तेषां पतति मस्तके। वज्रं शस्त्रं विषं वापि देहाद्देहनिपातनम्॥ ३३॥
मिथ्याप्रलापिनामेषा मुक्ता क्लेशपरम्परा। स्तेयहारं प्रहारं च नीतिहारं तथैव च॥ ३४॥
स्तेयकर्माणि कुर्वन्ति प्रसह्य हरणानि च। करचण्डाशिनो ये च राज शब्दोपजीविनः॥ ३५॥
पीडयन्ति जनान् सर्वान्कृपणान्ग्रामकूटकान्। सुवर्णमणिमुक्तानां कूटकर्मानुकारकाः॥ ३६॥
समये कृतहर्त्तारो लोकपीडाकरा नराः। अनादिबुद्ध्यश्चान्ये स्वार्थातिशयकारिणः॥ ३७॥
भूतनिष्ठाभियोगज्ञा व्यवहारेष्वनर्थकाः। भेदकाराश्च धातूनां रजतस्य च कारकाः॥ ३८॥
न्यासार्थहारका ये च सम्मोहनकराश्च ये। ये तथोपाधिकाः क्षुद्राः पच्यन्ते तेषु तेष्वथ॥ ३९॥
निरयेष्वप्रतिष्ठेषु दारुणेषु ततस्ततः। तत्र कालं तु सुचिरं पच्यन्तां पापकारिणः॥ ४०॥

उसके बाद अनेक प्रकार के कीट एवं पक्षी योनि में जन्म ले। संसार को दूषित करने तथा संसार में वैर करने वाला, उस योनि में अधिक दिन तक पाप को वह पापी भोगे। जब पुनः पापकर्म का नाश हो, तो मनुष्य योनि में जाये। पराभव, ज्ञानरहित, चित्त जिसका नष्ट हो गया है। अपयश, अशुद्ध, अयोग्य अपने पक्ष को अपमानित करने वाला, मित्र को मित्र से अलग करने वाला, अपने बान्धवों का निरादर करने वाला, संसार को दुःख देने वाला, जो व्यक्ति संसार से द्वेष करता है अन्य किया गया पाप उसके मस्तक पर पड़ता है दूसरे को वज्र शस्त्र एवं विष देने वाला, झूठ बोलने वाला वह दुःख की परम्परा में रहते हुए, चोरी करने वाला, प्रहार करने वाला, **नीति को न मानने वाला** (सनातन नियम को न मानने वाला), चोरी का कार्य करते हुए हठात् दूसरे का सामान हरण करने वाला, हाथ पर सब कुछ समझने वाला, राज शब्द से जीविका चलाने वाला, **सभी लोगों को पीड़ा देने वाला,** कृपण एवं गाँव में जाल फैलाने वाला, सोना, मार्ग और मुक्ता का झूठ में कर्म करने वाला, शर्त को न मानने वाला, **संसार को दुःख देने वाला,** धरोहर का अपहरण करने वाला, माया फैलाने वाला, ऐसे क्षुद्र उपाधि वाले जीव को पकाओ, यदि वह नरक में है तो बहुत दिन तक इस पापी को पकाओ॥ २९—४०॥

कर्मक्षयो यदा तेषां मानुष्यं प्राप्नुवन्ति ते। तत्र तत्रोपद्यन्ते यत्र यत्र महद्भयम्॥ ४१॥
यस्मिंश्चौरभयं देशे क्षुद्भयं राजतो भयम्। आपद्भ्योऽपि भयं यत्र व्याधिमृत्युभयं तथा॥ ४२॥
ईतयो यत्र देशेषु लुब्धेषु नगरेषु च। क्षयाः कालोपसर्गा वा जायन्ते तत्र ते नराः॥ ४३॥
बहूदुःखपरिक्लिष्टा गर्भवासेन पीडिताः। एकहस्ता द्विहस्ता वा कूटाश्च विकृतोदरा॥ ४४॥
शिराविवृतगात्राश्च हीनाङ्गा वातरोगिणः। अश्रुपातितनेत्राश्च भार्या न प्राप्नुवन्ति ते॥ ४५॥
तेषामपत्यं न भवेत्तद्रूपं च सुलक्षणम्। अतिह्रस्वं विवर्णं च विकृतं भ्रान्तलोचनम्॥ ४६॥
संसारे च यथा पक्वं कृपणं भैरवस्वनम्। महतः परिवारस्य तुष्टश्चोच्छिष्टभोजकः॥ ४७॥
रूपतो गुणतो हीनो बलतः शीलतस्तथा। राजभृत्या भवन्त्येते पृथिवीपरिचारकाः॥ ४८॥
अनालया निरामर्षा वेद नाभिः सुसंवृताः। समकार्यसजात्यानां मित्रसम्बन्धिनां तथा॥ ४९॥
कर्मान्तकारका ह्येते तृणीभूता भवन्ति ते। अनर्थो राजदण्डो वा नित्यमुत्पाद्यते वधः॥ ५०॥
कर्मकल्याणकृच्छ्रेषु भृशं चापि विमुह्यति। कर्षकाः पशुपालाश्च वाणिज्यस्योपजीवकाः॥ ५१॥
यद्यत्कुर्वन्ति ते कर्म सर्वत्र क्षयभागिनः। सत्यमन्विष्यमाणाश्च नैव ते कीर्त्तिभागिनः॥ ५२॥
यत्किञ्चिदशुभं कर्म तस्मिन्देशे समुच्छ्रितम्। तस्य देशस्य नैवास्ति वर्जयित्वातुरान्नरान्॥ ५३॥
सुवृष्ट्यामपि तेषां वै क्षेत्रं तं तु विवर्जयेत्। अशनिर्वा पतेत्तत्र क्षेत्रं वापि विनश्यति॥ ५४॥

पुनः इसके कर्म का क्षय होते ही मनुष्य योनि में जाये। **वह प्राणी जहाँ-जहाँ जाये वहाँ-वहाँ उसे बहुत बड़ा भय रहे। जिस देश मे वह रहे वहाँ चोर का भय, भूख का भय, राजा का भय, दैवी आपत्ति का भय, रोग एवं मृत्यु का भय, उस देश में इत्तियों का भय, लोलुपता नगरों में, जहाँ वह पापी रहे, वहाँ अनेक प्रकार का संकट आये।** यदि वह गर्भ में रहे तो भी अनेक कष्ट का सामना करे। उसका एक हाथ, दोनों हाथ, विकट एवं विकृत पेट वाला, नस दिखाई पड़े, शरीर का अङ्ग टेढ़ा-मेढ़ा अंगहीन, वातरोगी, उसके नेत्र से निरन्तर आँसू गिरता रहे, उसको पत्नी नहीं मिले, उसे सुन्दर एवं सुलक्षण पुत्र भी नहीं मिले। नाटा, विकृत एवं खुला मुखवाला, जिसके नेत्र के आँसू सूख रहे हों, संसार में पका, कृपण, भयंकर शब्द करने वाला, बड़े परिवार के तुष्टी के लिये जूठा भोजन कराने वाला, रूप, बल गुण एवं शील से हीन, पृथ्वी पर विचरण करने वाला, राजा का सेवक होकर घर रहित, व्यर्थ में क्रोध करने वाला, दुःख से घिरा हुआ, सजाती मित्र सम्बन्धी का कार्य करने वाला, दूसरे का कर्म करने वाला, वह तृण के समान हो। व्यर्थ में राजदण्ड नित्य सहने वाला, कर्म के कल्याण हेतु कठिनता से करने वाला, मोहित होने वाला, कृषि का काम करने वाला, पशु पालन एवं व्यापार द्वारा जीविका चलाने वाला, जो-जो कार्य वह करता है सब नष्ट हो जाये। **उस पापी को सत्य का खोज करने पर भी उसको यश नहीं मिले, उस देश में समस्त अशुभ ही दिखाई दे। ''यदि वह व्यग्र व्यक्ति उस देश को नहीं छोड़ता तो उस क्षेत्र में सुन्दर वर्षा न हो।'' उस क्षेत्र में वज्र गिरे और वह देश नष्ट हो** ॥ ४१—५४ ॥

जहाँ पाप होता है, वहाँ भगवान् चित्रगुप्त के कोप से ओले पड़ते हैं और अच्छी वर्षा भी नहीं होती हैं।

न सुखं नापि निर्वाणं तेषां मानुषता भवेत्। उत्पद्यते नृशंसानां तीव्रः क्लेशः सुदारुणः ॥ ५५ ॥
स्तेयकर्मप्रयुक्तानां मुक्त्वा क्लेशपरम्पराम्। परदारप्रसक्तानामिमां शृणुत यातनाम् ॥ ५६ ॥
तिर्यङ्मानुषदेहेषु यान्ति विक्षिप्तमानसाः। विहरन्ति ह्यधर्मेषु धर्मचारित्रदूषकाः ॥ ५७ ॥
तांस्तेनैव प्रदानेन संग्रहेत्तु ग्रहेण वा। मूलकर्मप्रयोगेण राष्ट्रस्यातिक्रमेण वा ॥ ५८ ॥
प्रसह्य वा प्रकृत्या वै ये चरन्ति कुलाङ्गनाः। वर्णसङ्करकर्त्तारः कुलधर्मादिदूषकाः ॥ ५९ ॥

वह मनुष्य होकर भी सुख एवं शान्ति को नहीं प्राप्त करे। उसे कठिन एवं तीव्र क्लेश उत्पन्न हो। चोरी के कार्य में लगे रहने के कारण अत्यन्त दुःख प्राप्त करे। दूसरी स्त्री से आसक्त होने पर जो दुःख मिलता है उसे सुनो-पक्षी और मनुष्य देह में भी वह विक्षिप्त मन वाला हो। वह धर्म और चरित्र का दूषक बनकर अधर्म में विचरण करे। उसे कोई अनिष्ट ग्रह पकड़ ले। मूल कर्म के प्रयोग अथवा राष्ट्र का अतिक्रमण से जो कुल की स्त्रियाँ उस कार्य को स्वभाव या प्रकृतिवश करती हैं तो वे वर्ण संकर पुत्र को उत्पन्न करे। जो उसके कुल के धर्म के विपरीत होता है ॥ ५५—५९ ॥

शीलशौचादिसम्पन्नं ये जनं धर्मलक्षणम्। धर्षयान्ति च ये पापाः श्रूयतां तत्पराभवः ॥ ६० ॥
निरयं पापभूयिष्ठा अनुभूय महाभयम्। बहुवर्षसहस्त्राणि कर्मणा तेन दुष्कृताः ॥ ६१ ॥
कर्मक्षये यदा भूयो मानुष्यं यान्ति दारुणम्। सङ्कीर्णयोनिजाः क्षुद्रा भवन्ति पुरुषाधमाः ॥ ६२ ॥
वेश्यालङ्ककूटानां शौण्डिकानां तथैव च। दुष्पाषण्डनारीणां नैकमैथुनगामिनाम् ॥ ६३ ॥
निर्ल्लज्पुण्ड्रकाः केचिद्वृद्धपौरुषगण्डकाः। स्त्रीबन्धकाः स्त्रीविनाशाः स्त्रीवेषाः स्त्रीविहारिणः ॥ ६४ ॥
स्त्रीणां चानुप्रवृद्ध ये स्त्रीभोगपरिभोगिनः। तद्दैवतास्तन्नियमास्तद्वेषास्तत्प्रभाषिताः ॥ ६५ ॥

तद्भावास्तत्कथालापास्तद्भोगाः परिभोगिनः। विप्रलोभं च दानेषु प्राप्नुवन्ति नराधमाः॥ ६६॥
सौभाग्यपरमासक्ता नरा बीभत्सदर्शनाः। अबुद्धेः सह संवासं प्रियं चाविप्रियं तथा॥ ६७॥
शारीरं मानसं दुःखं प्राप्नुवन्ति नराधमाः। कृमिभिर्भक्षणं चैव तप्ततैलोपसेचनम्॥ ६८॥
अग्निक्षारनदीभ्यां तु प्राप्नुवन्ति न संशयः। परदारप्रसक्तानां भयं भवति निग्रहः॥ ६९॥
सर्वं च निखिलं कार्यं यन्मया समुदाहृतम्॥ ७०॥

शीलवान, पवित्र एवं धार्मिक व्यक्ति को जो पापी दुःख देता है उनका अपमान करता है उनका क्या हश्र होता है उसे सुनो। महाभयंकर नरक में डाला जाये, अपने खराब कर्म के कारण वे हजार वर्ष तक उस नरक में निवास करे। जब उसका कुछ कर्म नष्ट हो जाये तो पुनः मनुष्य योनि को प्राप्त करे। नीच योनि में उस नीच पुरुष का जन्म हो। वैश्या का समागम करने वाला, दुस्साहसी व्यर्थ में पाखण्ड करने वाला, परनारियों से मैथुन करने वाला, निर्लज्ज, त्रिपुण्ड लगाने वाला, पुरुष की आकृति बनाने वाला, स्त्री को बन्धक बनाने वाला, स्त्री का नाश करने वाला, स्त्री वेषधारी, स्त्रीको त्याग देने वाला तथा स्त्रियों में अनुरक्त रहने वाला, **देवताओं द्वारा बनाये नियमों का उलङ्घन करने वाला,** उनके साथ वार्तालाप, भोग करने वाला, ऐसा नीच प्राणी दुःख को भोगे, ज्ञानहीन के साथ वास करने वाला चाहे प्रिय हो अथवा अप्रिय हो, शरीर एवं मन सम्बन्धी दुःख प्राप्त करे। ऐसे व्यक्ति को कीड़े काटें तथा गरम तेल में स्नान कराया जाये। नमक युक्त जलती नदी में पड़े। दूसरे की स्त्री के साथ आसक्त रहने वाले को निश्चित यह भय प्राप्त हो। **चित्रगुप्तजी यमदूतों से बोले—जो मैंने कहा वही व्यवहार उसके साथ होगा॥** ६२—७०॥

× × ×

अध्याय-२०४

ऋषि उवाच—

इदं चैवापरं तस्य वदतो हि मया श्रुतम्। चित्रगुप्तस्य विप्रेन्द्रा वचनं लोकशासिनः॥ १॥

नचिकेता ऋषि बोले—मैंने "ब्राह्मणों के राजा (विप्रेन्द्रा) एवं लोकशासक भगवान् चित्रगुप्त" द्वारा बतायी गयी जिन बातों को सुना उन बातों को मुझसे सुनें॥ १॥

भगवान् चित्रगुप्त ब्राह्मणों के राजा (विप्रेन्द्रा) एवं लोकशासक हैं। [श्लोक-१]

दूरेऽसाविति किं कार्यं न क्षयोऽस्त्यस्य कर्मणः। किं कृपां कुरुते तस्मिन्गृहाण हि मा व्यथः॥ २॥
व्रीडितः किम्भवाञ्ज्ञातं किं तिष्ठति पराङ्मुखः। किं न गच्छसि वेगेन किं त्वया सुचिरं कृतम्॥ ३॥
गच्छ गच्छ पुनस्तत्र शीघ्रं चैतमिहानय। अशक्तोऽस्मीति किं रोषमर्हन्ते दर्पमीदृशम्॥ ४॥
किं त्वं वदसि दुर्बुद्धे विवाहस्तस्य वर्त्तते। ऊर्ध्वरेतास्तपस्वीति त्वं मां भाषयसे कथम्॥ ५॥
किं त्वं वदसि गर्ह्यं च मुहूर्त्तं परिपालय। रमते कान्तया सार्द्धमिति किं त्वं प्रभाषसे॥ ६॥
पतिव्रतेति साध्वीति रहस्यं भाषसे पुनः। किं किं वदसि बालो हि निशि चैवागतो गृहम्॥ ७॥
आनीयते कथं ज्ञात्वा भोक्तुकामं कथं हरे। जलशायिनं कथं चैव दातुकामं कथं हरे॥ ८॥

चित्रगुप्तजी यमदूतों से बोले—यदि वह (पापी) दूर हो तो उसके कर्म का क्षय नहीं होता है, तुम लोग उस पर कृपा क्यों करते हो, पकड़ो, मारो और दुःखी मत हो। तुम लोग लज्जित मत हो, सब जानते हुए भी पराङ्मुख

होकर क्यों बैठे हो। तुम लोग वेग से क्यों नहीं जाते हो, तुम लोग शीघ्रता क्यों नहीं करते, तुम लोग शीघ्र वहाँ जाओ और उसको यहाँ पर ले आओ, मैं अशक्त हूँ, ऐसा तुम लोग क्यों कहते हो। हे दुर्बुद्धे उनका विवाह है, ऐसा क्यों कहते हो? वह उर्ध्वरेता तपस्वी है, ऐसा मुझसे क्यों कहते हो? तुम ऐसी निन्दित बात क्यों करते हो? क्षणभर प्रतिक्षा कीजिए वह पत्नी के साथ है, ऐसा क्यों कहते हो? वह पतिव्रता है, साध्वी है, इस रहस्य को क्यों कहते हो? वह बाला रात्रि में घर आती है ऐसा क्यों कहते हो? हे हरे यह भोग की कामना करने वाला है, यह जानकर इसको कैसे लाऊँ? जल में सोने वाले और दान देने वाले को कैसे लाऊँ?॥ २—८॥

धार्मिका यूयमेवात्र अहमेको नृशंसवत्। यात यात तथा दृष्ट्वा यथाकालोऽनतिक्रमेत्॥ ९॥
शीघ्रं त्वं भव सर्पो हि व्याघ्रस्त्वं च सरीसृपः। जले ग्राहो भव त्वं हि त्वं कृमिस्त्वं सरीसृपः॥ १०॥
नरकानुगतस्त्वं हि व्याधिभूतः समाश्रयः। अतीसारो भव त्वं हि त्वं छर्दिस्त्वं पुनर्भवः॥ ११॥
कर्णरोगो विषूची च नित्यरोगश्च सम्भवः। ज्वरो भव महाघोरो जलेग्राहो दुरासदः॥ १२॥
वातव्याधिस्तथा घोरस्तथैव त्वं जलोदरः। अपस्मारस्त्वमुन्मादो वातरोगस्तथैव च॥ १३॥
विभ्रमस्त्वं भवेच्छीघ्रं विष्टम्भश्च पुनर्भव। व्याधिर्भव महाघोरो ह्ययं तृष्णां तु विन्दतु॥ १४॥
यथाकालं यथादृष्टं तावत्कालोऽत्र तिष्ठतु। कालसंहरणे वापि शुभस्यागमनेऽपि वा॥ १५॥
यूयं च कृतकर्माणस्ततो मोक्षमवाप्स्यथ। द्रुतं द्रवत वेगेन सर्वे गच्छत मा चिरम्॥ १६॥

चित्रगुप्तजी यमदूतों से बोले—तुम लोग धार्मिक हो, **मैं ही एक नृशंस के समान (अत्यन्त क्रूर) हूँ।** तुम लोग यहाँ से जल्द जाओ, कहीं उसका समय न निकल जाय, तुम लोगों को जो भी बनना पड़े वह बनो, चाहे सर्प बनो, व्याघ्र बनो, सरकने वाला कीड़ा बनो, तुम लोग ग्राह्य बनो, या कीड़ा अथवा सरीसृप बनो, रोग का आश्रय लेकर नरक में जाओ, वहाँ अतिसार बनो, क्षयरोग बनो, कर्णरोग बनो, बिच्छू बनो, यदि वह जल में भी हो तो तुम जबरन उसे पकड़ो, वातव्याधि बनो, जलोदररोग बनो, मृगी बनो, उन्मादरोग बनो, वातरोग बनो, भ्रम रहित होकर विष्टभसरोग बनकर उसको पकड़ो। जब तक वह दिखायी नहीं देता तब तक तुम लोग वहाँ रूको, **चित्रगुप्तजी यमदूतों से बोले—जब मैं कहूँ तो काल बनकर मृत्यु दो और जब मैं कहूँ तो शुभ फलदाता बनकर शुभफल दो,** तभी मुक्ति पाओगे, तुम सभी लोग शीघ्र जाओ बिलम्ब मत करो॥ १५-१६॥

भगवान् चित्रगुप्त की आज्ञा से ही यमदूत प्राणियों को मृत्यु अथवा सुख देते हैं। [श्लोक-१५]

वराज्ञा धर्मराजस्य या मया समुदाहृता। एकाहं क्षपयेस्तत्र द्विरात्रं तत्र मा चिरम्॥ १७॥
त्रिरात्रं वै चतुरात्रं षड्रात्रं दशरात्रकम्। पक्षं वा मासमेकं वा बहून्मासांस्तथापि वा॥ १८॥
क्षपयित्वा यथाकालं ततो मोक्षमवाप्स्यथ। भूतात्मा मोहवास्तत्र करुणः कष्टमेव च॥ १९॥
यस्मिन्यस्मिस्तु कालेऽहं यावतश्च श्रयाम्यहम्। तस्मिंस्तस्मिन्महाकालं यूयं तत्कर्त्तुमर्हथ॥ २०॥

चित्रगुप्तजी यमदूतों से बोले—मैंने जो कहा है, वही धर्मराज की भी आज्ञा है। तुम लोग जाओ चाहे एक दिन, दो रात्रि, तीन रात्रि, चार रात्रि, छः या दस रात्रि, एक पक्ष या एक मास अथवा बहुत से मास व्यतीत हो जाय **कार्य को करने पर ही मोक्ष प्राप्त करोगे। प्राणियों के मोह में आने पर चाहे कष्ट हो अथवा मोह हो, मैं जिस-जिस समय जो-जो कार्य कहूँ उस-उस कार्य को तुम लोग अवश्य करो क्योंकि तुम लोग भी महाकाल हो**॥ १७—२०॥

विनियोगा मया युक्ता यथापूर्वं यथाश्रुतम्। जाग्रतं वा प्रमत्तं वा यथा कालो न सम्पतेत्॥ २१॥
यत्नतथा तु कर्त्तव्यं भवद्भिर्मम शासनात्। अभयं चात्र यच्छामि ब्राह्मणेभ्यो न संशयः॥ २२॥
तस्माद्यात ऋषिभ्यश्च स्त्रीभ्यश्चैव महाबलाः। यातनाया न भेतव्यमहमाज्ञापयामि वः॥ २३॥
यथावाच्यं च कुरुत यथा कालो न गच्छति। यथाकामं प्रकुरुत यच्च दृष्टं यथा तथा॥ २४॥
मयाज्ञप्ता विशेषेण मृत्युना सह सङ्गतः। यथा वीरो महातेजाश्चित्रगुप्तो महायशाः॥ २५॥
यथाब्रवीत्स्वयं रुद्रो यथा शक्रः शचीपतिः। यथाज्ञापयते ब्रह्मा चित्रगुप्तस्तथा प्रभुः॥ २६॥

चित्रगुप्तजी यमदूतों से बोले—जिसे तुमने पूर्व में सुना! उसकी व्यवस्था मैंने ही की है। चाहे जाग्रत अवस्था में अथवा प्रमत्त अवस्था में तुमको कार्य करना है, इसमें समय व्यतीत न करो। मेरी आज्ञा का पालन तुम लोगों को उसी रूप में करना होगा। **मैं शुद्ध ब्राह्मणों को अभय दिया हूँ, इसमें संशय नहीं है। चाहे ऋषि हों, चाहे स्त्री हों या महाबली हों, यातना देने में तुम भेद मत करो, ये मेरा आदेश है।** जैसा कहा जाय वैसा ही करो, समय न बिताओ। जैसा देखो उसी के अनुसार कार्य करो। मेरी विशेष आज्ञा से तुम लोग **मृत्यु** के साथ जाकर कार्य करो, **ऐसा महापराक्रमी, महातेजस्वी और महायशस्वी चित्रगुप्त ने कहा। जिस प्रकार स्वयं 'रुद्र' (शंकर) शचिपति इन्द्र और ब्रह्मा' आदेश देते हैं, वैसे ही चित्रगुप्त प्रभु ने यमदूतों को आदेश दिया॥** २१—२६॥

> १४ यमों में मृत्यु नामक यम भगवान् चित्रगुप्त के अधीन हैं।
>
> भगवान् चित्रगुप्त ब्राह्मणों एवं 'ऋषियों' के अभयदाता एवं दण्डदाता हैं।
>
> रुद्र—इनका नाम महादेव, पशुपति, उग्र, भव, शर्व, ईशान तथा भीम है। 'रुद्र' का विवाह 'दक्ष' की पुत्री 'सती' के साथ हुआ था। संदर्भ—पद्मपुराण, सष्टिखण्ड, अध्याय-३]
>
> नचिकेता ने देखा कि भगवान् चित्रगुप्त—महादेव, इन्द्र तथा ब्रह्मा जी के समान देवता हैं।

× × ×

अध्याय-२०५

ऋषि उवाच—

इदमन्यत्पुरा विप्राः श्रूयतां तस्य भाषितम्। यमस्य चित्रगुप्तस्य यच्च तत्र मयाश्रुतम्॥ १॥

ऋषि नचिकेता बोले—हे विप्रो! यम-चित्रगुप्त द्वारा कही गयी बात को जो मैंने सुना है, उसे सुनें—॥ १॥

अयं तु भवतां यातु यात स्वर्गं महीक्षिताम्। अयं वृक्षस्त्वयं तिर्यगयं मोक्षं व्रजेन्नरः॥ २॥
अयं नागो भवेच्छीघ्रमयं तु परमां गतिम्। स्वपूर्वकान्पयश्यतेऽयमात्मनस्तु पितामहान्॥ ३॥
क्लिश्यतो रुदतश्चैव वदतश्च पुनःपुनः। स्वेन दोषेण सर्वे वा अक्षयं नरकङ्गताः॥ ४॥
दारत्यागी त्वधर्मिष्ठः पुत्रपौत्रविवर्जित। क्षिप्तं वै रौरवे ह्येनं क्षपयन्तु महौजसः॥ ५॥

चित्रगुप्तजी यमदूतों से बोले—ये स्वर्ग में जाये, इसे भय मिले, वृक्ष हो या पक्षी हो या मनुष्य मोक्ष को प्राप्त करे। या शीघ्र नाग बने, या परमगति को प्राप्त करे या अपने पितामह आदि को देखे। जो जैसा कर्म किया है उसके अनुसार दु:खी होकर रो रहा है बार-बार कुछ कह रहा है। अपने ही दोष के कारण नष्ट

न होने वाले नरक को व्यक्ति प्राप्त करता है। जो पत्नी को अपने परिवार को (पुत्र-पौत्रको) त्याग दिया है अधर्मी है, वह व्यक्ति बहुत दिन तक **रौरव नरक** में निवास करे॥ २—५॥

मुच्यतां त इमे सर्वे ह्यतीतानागतास्तथा। मुच्यन्तामाशु मुच्यन्तां त एते पापवर्जिताः॥ ६॥
आगमे च विपत्तौ च सर्वधर्मानुपालकाः। ते तु कल्पान्बहून्स्वर्ग उषित्वा ह्यनसूयकाः॥ ७॥
बहुसुन्दरनार्यङ्के ह्याद्ये परमधार्मिकम्। कलौ मानुषतां यातु धर्मस्येह निदर्शनम्॥ ८॥
त्रिविष्टपे परिक्लेशो वासो ह्यस्याक्षयोभवेत्। अयमायोधने शत्रुं हत्वा तु निधनङ्गतः॥ ९॥

इन सबको छोड़ दो, जो अतीत को स्मरण करते हैं। ये पाप रहित हैं इनको छोड़ दो। सुख एवं दुःख में जो सभी धर्म का पालन करते हैं, **वे अनेक कल्पों तक स्वर्ग में निवास करें,** पहले परमधार्मिक थे सुन्दरनारी जिसके पास है और धर्म परायणता है वह कलियुग में मनुष्य बनकर धर्म का निर्देशन करे। स्वर्ग में निवास करने के कारण समस्त दुःख समाप्त होता है। यह युद्ध में शत्रु को मारकर मृत्यु को प्राप्त किया है॥ ६—९॥

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा राष्ट्रार्थे निधनङ्गतः। शक्रस्य ह्यमरावत्यां निवेदयत मा चिरम्॥ १०॥
तत्र वैमानिको भूत्वा कल्पमेकं निवत्स्यति। तथैवायं महाभागो धर्मात्मा धर्मवत्सल॥ ११॥
बहुदानरतो नित्यं सर्वभूतानुकम्पकः। एनं गन्धैश्च माल्यैश्च शीघ्रमेव प्रपूजय॥ १२॥

जिस जीव की मृत्यु, ब्राह्मण, गाय एवं राष्ट्र के रक्षा के लिए हुई है, उन्हें इन्द्र की अमरावती में शीघ्र भेज दो, वह देव होकर एक कल्प निवास करे। उसी प्रकार यह महात्मा धर्म को जानने वाले हैं, धार्मिकों से प्रेम करने वाले हैं, नित्य दान करने वाले सभी प्राणियों पर दया करने वाले जीव को गन्ध पुष्प से शीघ्र पूजन करो॥ १०—१२॥

अस्मै पूजा भवेद्देया मया दिष्टा महात्मन। वीज्यतां चामरैरेष रथमस्मै प्रदीयताम्॥ १३॥
प्रेतवासं समुत्सृज्य ह्रीतो यातु त्रिविष्टपम्। इन्द्रस्यार्द्धे भवेच्चैवं देवदेवस्य धीमतः॥ १४॥
शङ्खतूर्यनिनादेन तत्र वै विजयेन च। तत्र वै पूजयित्वा च प्रायशो लभतां सुखम्॥ १५॥
अयं गच्छतु भद्रं चापीन्द्रदेशं दुरासदम्। अनेन वै कीर्तिमता लोकः सर्वो ह्यलंकृतः॥ १६॥
गुणैश्च शतसंख्याकैः शक एनं प्रतीक्षते। तावत्स्थास्यति धर्मात्मा यावच्छक्रस्त्रिविष्टपे॥ १७॥
तावत्स मोदते स्वर्गे यावद्धर्मोऽनुमीयत। ततश्च्युतश्च कालेन मानुष्य सुखमश्नुते॥ १८॥
रत्नवेणुप्रदश्चैव सर्वधर्मैरलंकृत। अश्विनोर्नय लोकं तु सर्वसौख्यसमन्वितम॥ १९॥
अयं यातु महाभागो देवदेवं सनातनम्।

मैंने इनकी पूजा हेतु आदेश दिया है, देवता लोग इनको स्वर्ग में पहुँचाने हेतु रथ की व्यवस्था करें। नरक को छोड़कर **ये देवलोक में जाये। देवताओं के देव इन्द्र के यहाँ स्थान प्राप्त करे।** वहाँ अनेक प्रकार के बाजों के शब्द से इनकी पूजा करके अधिक सुख को प्राप्त करे। यह पुण्यात्मा अत्यन्त कठिन इन्द्र के नगरी को प्राप्त करे। इसके यश से समस्त लोक अलोकित हों। सैकड़ों, हजारों गुणों के कारण ये धर्मात्मा देव लोक में तब तक निवास करें जब तक इन्द्र की अमरावती रहे। जब तक धर्म की महत्ता रहती है, तब तक स्वर्ग में प्राणी प्रसन्न रहें। **मेरी कृपा से मनुष्य सुख को भोगता है।** सभी धर्म के जानने वाले

को रत्नजड़ित सभी सुख से युक्त अश्विनी के लोक में निवास कराओ। **चित्रगुप्तजी यमदूतों से बोले—यह सनातन "इन्द्र" के स्थान [इन्द्रलोक] को जाये॥** १३—१९½॥

भगवान् चित्रगुप्त ही सत्कर्मी को "**इन्द्रलोक**" में भेजते हैं।

अतिसृष्टः पुरा येन यथोक्ताः सुखदोहनाः॥ २०॥
सर्वशक्त्या समेतेन द्विजेभ्य उपपादिताः। शुचीनां ब्राह्मणानाम्बह्वन्नदानं विशेषतः॥ २१॥
तेन कल्पं वसिष्यन्ति रुद्रकल्पा मनोरमाः। तत्र कल्पं वसेद्गत्वा रुद्रलोकं न संशयः॥ २२॥

जिसने पहले सुखपूर्वक दूसरे का घर बनाया है। शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों के लिए जो धर्म किया है तथा पवित्रताके साथ जो ब्राह्मणों को अन्नदान किया है, उस लोक में एक कल्प निवास करते हुए सुन्दर रुद्र कल्प में जाये। **चित्रगुप्तजी यमदूतों से बोले—वह एक कल्प तक "शिवलोक" में निवास करे, इसमें संशय नहीं है॥** २०—२२॥

भगवान् चित्रगुप्त ही सत्कर्मी को "**शिवलोक**" में भेजते हैं।

तेन दत्तं द्विजातिभ्यो मधुखण्डपुरःसरम्। रसैश्च विविधैर्युक्तं सर्वगन्धमनोरमम्॥ २३॥
तरुणी क्षीरसम्पन्ना गौः सुवर्णयुता शुभा। सवत्सा हेमवासाश्च दत्ताऽनेन महात्मना॥ २४॥
अस्य लेख्यं मया दृष्टं तिस्रः कोट्यस्त्रिविष्टपे। स्वर्गान्परिच्युतश्चापि ऋषीणां जायते कुले॥ २५॥

जिनके द्वारा ब्राह्मणों को भिक्षादान दिया जाता है। सभी सुगन्ध से युक्त रस का दान करता है। युवा दूध देने वाली, सुवर्ण युक्त सुन्दर गाय, बछड़े सहित जिस महात्मा ने दान दिया है, इनके विषय में मैंने देखा है, तीन कोटि वर्ष स्वर्ग में निवास करे। **चित्रगुप्तजी यमदूतों से बोले—स्वर्ग को भोगने के बाद ऐसे धार्मिक लोगों को "ऋषिकुल" में जन्म दो॥** २३—२५॥

सभी सनातनी इस प्रकरण पर विशेष ध्यान दें! भगवान् चित्रगुप्त ही 'ऋषिकुल' में जन्म देते हैं अर्थात यही मृत्युलोक में जन्में 'ऋषि' 'देव' तथा 'दानव' के जन्मदाता हैं, ये सभी 'ऋषि' 'देव' तथा 'दानव' ऋषिकुल में ही जन्में हैं।

भगवान् चित्रगुप्त ही मृत्युलोक में ऋषिकुलीन—सभी ब्राह्मण, क्षत्रिय में रघुकुल तथा यदुकुल सहित सभी क्षत्रिय एवं वैश्य में विश्वकर्मा आदि कुल में जन्में सभी मनुष्यों को जन्म देते हैं।

सनातनधर्म में **ब्रह्मकायस्थों का कुल स्वयं भगवान् चित्रगुप्त** का है।

सुवर्णस्य प्रदाता च त्रिदशेभ्यो निवेद्यताम्। त्रिदशानभ्यनुज्ञाप्य यातु देवमुमापतिम्॥ २६॥
तत्रैव वै महातेजा यथेष्टं काममाप्नुयात्। तत्रैवायमपि प्रेतगणभक्तो महातपाः॥ २७॥
प्रयातु पितृभिः सार्द्धं तर्पिता येन पूर्वजाः। दानव्रता दिवं यान्तु नानालोकनमस्कृताः॥ २८॥
अयं भद्रो महाकामं सर्वभूतहिते रतः। सर्वकामैरयं पूज्यः सर्वकामप्रदो नरः॥ २९॥
क्षितिप्रदो द्विजातिभ्यो ह्यं यातु त्रिविष्टपम्। तत्रैव तिष्ठताद्वीरो ब्रह्मलोके सहानुगः॥ ३०॥
विविधैः कामभोगैस्तु सेव्यमानो नरोत्तमः। अक्षयं चाजरं स्थानं पूज्यमानो महर्षिभिः॥ ३१॥

ब्राह्मणों को सुवर्ण दान देने वाले मेरी आज्ञा से देवलोक को प्राप्त करें। ऐसे महान तेजवाले अपनी

इच्छानुसार सब कुछ प्राप्त करता है। उसी प्रकार ये भी प्रेतगण भक्त हैं महातपस्वी हैं। जो पिता सहित अपने पितरों का श्राद्ध [सनातन धर्म के अनुसार] किया है, पूर्वजों का तर्पण किया है, दान दिया है, व्रत रहा है, वह अनेक लोकों के द्वारा वन्दनीय अनेकलोक को जाये। यह व्यक्ति सभी प्राणियों के हित को करने वाला है, वह व्यक्ति सबका पूज्य है, सभी कामों को देने वाला है। जो ब्राह्मण को पृथ्वीदान करता है, वह देवलोक को प्राप्त करता है। **चित्रगुप्तजी यमदूतों से बोले—ऐसा धर्मिष्ठ व्यक्ति "ब्रह्मलोक" में निवास करे** एवं अनेक कामनाओं का भोग करते हुए एवं लोगों के द्वारा पूज्य महर्षियों के द्वारा पूज्य एवं अजर-अमर स्थान को प्राप्त हो॥ २६—३१॥

भगवान् चित्रगुप्त ही सत्कर्मी को "**ब्रह्मलोक**" में भेजते हैं।

× × ×

अध्याय-२०६

ऋषिरुवाच–

चित्रगुप्तस्य सन्देशो वदतो यो मया श्रुतः। श्रूयतां वै महाभागास्तपः सिद्धा द्विजोत्तमाः॥ १॥

ऋषि बोले—चित्रगुप्त के द्वारा बताये गये सन्देश को जो मैंने सुना उसे हे महाभाग्यशाली, तप से सिद्ध, द्विजोत्तम आप लोग भी सुनें॥ १॥

इमं सर्वातिथिं दान्तं सर्वभूतानुकम्पकम्। समान्नदानदातारं शेषभोजन-भोजिनम्॥ २॥
मुञ्च मुञ्च महाभृत्य चैष धर्मस्य निर्णयः। अहं कालेन सार्द्धं हि मृत्युना प्रकृतस्तथा॥ ३॥
मम स्थास्यन्ति पार्श्वेषु पापा वै विकृतास्तथा। एनं गास्यन्ति गन्धर्वा गगनेऽप्सरसस्तथा॥ ४॥
दीयतामासनं दिव्यं तथान्यद्यान्मेव च। अन्यान्यान्कामयेत्कामान्मनसा यानि चेच्छति॥ ५॥
तत्तु शीघ्रं प्रदातव्यं धर्मराजस्य शासनात्। अक्रियार्णि तु दानानि पूर्वे दत्तानि धीमता॥ ६॥

चित्रगुप्तजी यमदूतों से बोले—सभी अतिथि, शुद्ध, सभी पर कृपा करने वाले, समान रूपसे दान देने वाले, शेष भोजन करने वाले, इन लोगों को छोड़ दो, यह धर्म का निर्णय है। **मैं ही प्रकृति से काल सहित मृत्यु हूँ,** मेरे चारो ओर पाप रूपी विकृतियाँ रहती हैं। ये गन्धर्व और अप्सरा आकाश में गीत गाया करती हैं। अन्य जो अपनी इच्छा अनुसार जिस वस्तु की कामना करता है। उसे वह वस्तु प्रदान कराओ तथा दिव्य आसन प्रदान करो। अन्य अपनी इच्छा अनुसार जो व्यक्ति इच्छा करता है, उसे भी दे दो। पूर्व में जो दान दिया गया है, उसका फल नहीं दिया है, धर्मराज की आज्ञा से उसे शीघ्र दो। ॥ २—६॥

भगवान् चित्रगुप्त १४ यमों में से १३ यमों के स्वामी तथा साक्षात् काल और मृत्यु हैं। उनके आस-पास रोग-व्याधियाँ देवरूप में सदैव निवास करती हैं, भगवान् चित्रगुप्त के आदेश से ये रोग-व्याधियाँ पापियों को ग्रसित करके मृत्यु देती हैं। **इसका वर्णन गरुडपुराण में विद्यमान है।]**

प्रेक्षतां च महाभागो भोक्तुं चैव सहानुगः। तिष्ठत्येषोऽत्र वै वीरो ममादेशान्महायशाः॥ ७॥
यावत्स्वर्गाद्विमानानि समागच्छन्ति कृत्स्नशः। ततः स प्रवरैर्यानैः सानुगः सपरिच्छदः॥ ८॥
देवानां भवनं यातु दैवतैरभिपूजितः। तत्रैव रमतां वीरो यावल्लोको हि धार्यते॥ ९॥
स कृतार्थः सदा लोके यत्रैषोऽभिप्रयास्यति। तत्र मेध्यं पवित्रं च यत्र स्थास्यत्ययं शुचिः॥ १०॥

नैककन्याप्रदातारं नैकयज्ञकृतं तथा। पूज्यतां सर्वकामैस्तु पदं गच्छतु वैष्णवम्॥ ११॥
तत्रैष रमतां धीरः सहस्रमयुतं समाः। ततो वै मानुषे लोके आद्ये वै जायतां कुले॥ १२॥

साथ में चलने वाले लोग कैसे भोग करते हैं, उसे देखो। यह महायशस्वी वीर यहाँ उपस्थिति है। जब तक स्वर्ग से सम्पूर्ण विमान आता है, उसके बाद सेवक एवं अनुचरों के साथ, उस यान द्वारा देवताओं के भवन में जाये, वे देवताओं के तुल्य पूजित हैं, वे वीर वहीं पर निवास तबतक करें, जब तक यह संसार स्थित है। वह लोग सदा धन्य होंगे, जहाँ ये लोग निवास करेंगे, जहाँ पर ये पवित्र लोग निवास करें, वह ग्रहणीय एवं पवित्र हो। कन्यादान एवं अनेक यज्ञ करने के फल के बराबर ऐसे वीर लोगों की पूजा, सभी कामनाओं को देने वाली हो। **चित्रगुप्तजी यमदूतों से बोले—उनको "विष्णु" [विष्णुलोक] के श्रेष्ठ पद को प्राप्त कराओ,** ये धीर लोग दस हजार वर्ष तक वहाँ निवास करने के बाद मनुष्य लोक में उत्तम कुल में जन्म लें॥ ७—१२॥

भगवान् चित्रगुप्त ही सत्कर्मी को "विष्णुलोक" भेजते हैं।

भूतानुकम्पको ह्येष क्रियातामस्य चार्च्चनम्। वर्षाणामयुतं चायं तत्र तिष्ठतु देववत्॥ १३॥
जायते तु ततः पश्चात्सर्वमानुषपूजितः। उपानहौ च छत्रं च जलभाजनमेव च॥ १४॥
असकृद्येन दत्तानि तस्मै पूजां प्रयच्छथ। सभा यत्र प्रवर्त्तन्ते यस्मिन्देशे सहस्रशः॥ १५॥
हस्तेन संस्पृशत्येष मृदुना शीतलेन च। विद्याधरस्तथा ह्येष नित्यं मुदितमानसः॥ १६॥
महापद्मानि चत्वारि तस्मिंस्तिष्ठन्तु नित्यशः। ततश्च्युतश्च कालेन मानुषं लोकमास्थितः॥ १७॥
बहुसुन्दरनारीके कुले जन्म समाप्नुयात्। दधि क्षीरं घृतं चैवं येन दत्तं द्विजातिषु॥ १८॥
एष वा यातु न पार्श्वमस्मै पूजां प्रयच्छथ। नीयतां नीयतां शीघ्रं यत्र यत्र न चालयेत्॥ १९॥

ये प्राणियों पर कृपा करने वाले हैं, इनकी पूजा की जानी चाहिए। ये हजारों वर्षों तक देवता के समान पूजित हों। जो उपानह (जूता) छाता एवं जल से भरा बरतन दान करता है, वह सभी मनुष्यों द्वारा पूजा जाये। यह अनेक बार वस्तु दान देने वाला, जिस देश में जहाँ पर हजारों लोग सभा में बैठे हों, वहाँ उसकी पूजा हो। उनके हाथ का स्पर्श मुलायम और शीतल लगता है, देवता लोग भी नित्य उनसे प्रसन्न रहते हैं। चार महापद्म वर्ष वह वहाँ निवास करे। उसके बाद समय से च्युत होने पर मनुष्य लोक को प्राप्त करे। सुन्दर नारी के कुल में जन्म ले। दधि, दूध, घृत जो ब्राह्मण को दान देता है यह व्यक्ति नरक के पास नहीं जाये। इस व्यक्ति को शीघ्र ले जाओ।॥ १३—१९॥

गोरसस्य तु पूर्णानि भाजनानि सहस्रशः। यत्र दत्त्वा च पीत्वा च बान्धवेभ्यो विभागशः॥ २०॥
ततः पश्चादयं यातु यत्र लोकोऽनसूयकः। तत्रैव रमतां धीरो बहुवर्षशतान्ययम्॥ २१॥
बहुसुन्दरनारीभिः सेव्यमानो महातपाः। अमराख्यो भवेत्तत्र गोलोकेषु समाहितः॥ २२॥
इदमेवापरं चैव चित्रगुप्तस्य भाषितम्। सर्वदेवमया देव्यः सर्ववेदमयास्तथा॥ २३॥
अमृतं धारयन्त्यश्च प्रचरन्ति महीतले। तीर्थानां परमं तीर्थमतस्तीर्थं न विद्यते॥ २४॥
पवित्रं च पवित्राणां पुष्टीनां पुष्टिरेव च। तस्मात्पुरस्तु दातव्यं गवां वै मेध्यकारणात्॥ २५॥

जो व्यक्ति दूध से पूर्ण बर्तन सहित बन्धुओं में बाँटता है और पीता है। वह व्यक्ति राग द्वेष रहित लोक को प्राप्त करे। उसी लोक में वह सैकड़ों वर्ष तक निवास करे। अनेक सुन्दर नारियों से सेवित देवलोक में तथा स्वर्गलोक में रहे। **चित्रगुप्तजी के द्वारा यमदूतों से यह दूसरी बात भी कही गयी कि देवियाँ सभी**

देवता के स्वरूप है एवं वेद स्वरूप हैं, हाथ में अमृत लेकर पृथ्वी तल पर विचरण करती हैं। तीर्थों में यह परम तीर्थ हैं इसके अलावा कोई दूसरा तीर्थ नहीं है। पवित्रों में पवित्र, पुष्टों में पुष्ट है अपनी पवित्रता हेतु गाय का दान अवश्य करना चाहिए॥ २०—२५ ॥

दध्ना हि त्रिदशाः सर्वे क्षीरेण च महेश्वरः। घृतेन पावको नित्यं पायसेन पितामहः॥ २६॥
सकृद्दत्तेन प्रीयन्ते वर्षाणां हि त्रयोदश। तां दत्त्वा चैव पीत्वा च प्रीतो मेध्यस्तु जायते॥ २७॥
पंचगव्येन पीतेन वाजिमेधफलं लभेत्। गव्यं तु परमं मेध्यं गव्यादन्यन्न विद्यते॥ २८॥
दन्तेषु मरुतो देवा जिह्वायां तु सरस्वती। खुरमध्ये तु गन्धर्वाः खुराग्रेषु तं पन्नगाः॥ २९॥
सर्वसन्धिषु साध्याश्च चन्द्रादित्यो तु लोचन। ककुदे सर्वक्षत्राणि लांगुले धर्म आश्रितः॥ ३०॥

दधि में सभी देवता, दूध में भगवान् शंकर, घृत में अग्नि, उसके दूध से निर्मित खीर में भगवान् ब्रह्मा रहते हैं। एक बार इन वस्तुओं को दान देने से तेरह वर्ष तक देवता प्रसन्न रहते हैं। उसको पीकर या देकर प्राणी पवित्र हो जाता है। पञ्चगव्य के पीने से अश्वमेध यज्ञ का फल होता है। वह पञ्चगव्य अत्यन्त पवित्र है, उसके समान अन्य वस्तु नहीं है। गाय के दाँत में मरुत, जिह्वा में सरस्वती, खुर के मध्य में गन्धर्व, खुर के अग्रभाग में सर्पराज, सभी सन्धिओं में साध्यदेवी, उसके नेत्र में सूर्य और चन्द्रमा, उसके टीले (पीठ) में सभी पवित्र क्षेत्र, पूँछ में धर्म निवास करता है॥ २६—३० ॥

अपाने सर्वतीर्थानि प्रस्नावे जाह्नवी नदी। नानाद्वीपसमाकीर्णाश्चत्वारः सागरास्तथा॥ ३१॥
ऋषयो रोमकूपेषु गोमये पद्मधारिणी। रोमे वसन्ति विद्याश्च त्वक्केशे षव यनद्वयम्॥ ३२॥

गाय के गुदा में सभी तीर्थ, उसके गुप्ताङ्ग में जाह्नवी (गंगा) नदी एवं उसके चार स्तनों में अनेक द्वीप एवं समुद्र का निवास होता है। गाय के रोम में समस्त ऋषिलोग निवास करते है। उसके गोमय (गोबर) में लक्ष्मी जी रहती है, उसके रोम में विद्या एवं केश में दोनों अयन (उत्तरायण, दक्षिणायन) निवास करता है॥ ३१-३२॥

धैर्यं धृतिश्च शान्तिश्च पुष्टिर्वृद्धिस्त्रतथैव च। स्मृतिर्मेधा तथा लज्जा वपुः कीर्त्तिस्तथैव च॥ ३३॥
विद्या शान्तिर्मतिश्चैव सन्ततिः परमा तथा। गच्छन्तमनुगच्छन्ति ह्येता गावो न संशयः॥ ३४॥
यत्र गावो जगत्तत्र देवदेवपुरोगमाः। यत्र गावस्तत्र लक्ष्मीः सांख्यधर्मश्च शाश्वतः॥ ३५॥
सर्वरूपेषु ता गावस्तिष्ठन्त्यभिमतास्तथा। भवनेषु विशालेषु सर्वप्रासादपङ्क्तिषु॥ ३६॥
स्त्रियश्च पुरुषाश्चैव रक्षन्तश्च सुयन्त्रिताः। शयनासनपानेषु ह्युपविष्टाः सहस्त्रशः॥ ३७॥
क्रीडन्ति विविधैर्भोगैर्भोगेषु च सहस्त्रशः। तत्र पानगृहेष्वन्ये पुष्पमालाविभूषिताः॥ ३८॥
भक्ष्याणां विविधानां च भोजनानां च संचयात्। शयनासनपानानि वाजिनो वारणांस्तथा॥ ३९॥
अपश्यन्विविधास्तत्र स्त्रियश्च शुभलोचनाः। शोभयन्ति स्त्रियः काश्चिज्जलक्रीडा गतास्तथा॥ ४०॥
उद्यानेषु तथा चान्या भवनेषु च पुण्यतः। अनेन सदृशं नास्ति ह्यस्मादन्यन्न विद्यते॥ ४१॥
अहो सूत्रकृतं शिल्पमहोरत्नैरलंकृतम्। एवं गृहाद्गृहं गच्छन्नहं तत्र ततस्तमः॥ ४२॥
ततस्तु निखिलं सम्यग्दृष्ट्वा कर्म महोदयम्। पुनरेवागतः पार्श्वं यमस्य द्विजसत्तमाः॥ ४३॥

धैर्य, धृति, शान्ति, पुष्टि, वृद्धि, स्मृति, मेधा, लज्जा, वपु, कीर्ति, विद्या, शान्ति, मति ये उनके श्रेष्ठ सन्तति हैं ये सब गाय के पीछे ही चलते हैं, इसमें संशय नहीं है। जहाँ गाय है वही संसार है, देवता लोग भी वहीं रहते हैं। जहाँ गाय रहती है, वहीं लक्ष्मी निवास करती है, यह सांख्य शास्त्र का मत है।

सभी रूपों में गाय वहाँ निवास करती है विशाल मकान में, सभी घर क्रमशः होते हैं। वह नगरी स्त्रियों एवं

पुरुषों से रक्षित थी। वहाँ पर शयन करने, आसन पर एवं पीने के लिए हजारों लोग बैठे थे। अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थ वहाँ संचित थे। शयन हेतु, आसन हेतु पीने के लिए, घोडे एवं हाथी अनेक प्रकार के सुन्दर नेत्र वाले लोग दिखाई देते थे। वहाँ कुछ स्त्रियाँ जलक्रीडा करते हुए सुशोभित हो रही थीं। अनेक उद्यान, पुण्य, (सुन्दर) भवन दिखाई देता था वैसा अन्यत्र कहीं नहीं था। सूत्र के रूप में अनेक अलंकारों से अलंकृत शिल्पी द्वारा बनाये गये एक घर से दूसरे घर में जाते हुए अन्धकार में प्रविष्ट हुआ। **हे ब्राह्मणों मैं उस नगरी (यमलोक) का सम्यग् दर्शन करके पुनः यम के पास पहुँच गया** ॥ ३३—४३ ॥

॥ इति वाराहपुराणे, नचिकेतः प्रयाणवर्णनम्, अध्याय १९३–२०६ ॥

संदर्भ—वाराहपुराण।

× × ×

कठोपनिषद् का यम-नचिकेता संवाद इसी का दार्शनिक वृत्तान्त है।

अध्याय-२०२ से लेकर अध्याय-२०६ तक परब्रह्मस्वरूप भगवान् चित्रगुप्त द्वारा यमराज के लिये बनाया गया नियम है। भगवान् चित्रगुप्त द्वारा बनाये गये नियम के अनुसार ही यमराज यमलोक सहित तीनों लोक [देवलोक, मृत्युलोक तथा पाताललोक] के प्राणियों को कर्मानुसार शुभाऽशुभ फल देते हैं।

त्रिलोक में ऋषियों द्वारा प्रदत्त, वेद, पुराण तथा स्मृति इत्यादि परब्रह्मस्वरूप भगवान् ब्रह्मा अथवा भगवान् चित्रगुप्त द्वारा निर्मित हैं।

सनातन धर्म से इतर धर्म के लोग दुष्प्रचार कर रहे हैं कि ऋषियों ने अपने स्वार्थ हेतु ये व्यवस्था बनायी है। परन्तु सत्य ये है कि परमपूज्य ऋषियों ने परब्रह्मस्वरूप द्वारा बनाये गये नियमों का, ज्ञान को प्राथमिकता देते हुये, देवधर्म के नियमों का केवल पालन किया।

वेद स्वयं भगवान् ब्रह्मा द्वारा निर्मित है जबकि सनातन धर्म का अनुशासन भगवान् चित्रगुप्त द्वारा निर्मित है, जिसे आपने पढ़ा, ऋषियों ने त्रिलोक के कल्याण हेतु इसे संकलित किया। अष्टादश स्मृतियाँ ऋषियों द्वारा संकलित अनुशासन है, स्वयं ऋषियों द्वारा निर्मित नहीं है।

विश्व में बहुत से धर्म हैं **परन्तु विज्ञान के प्रयोग पर सनातन धर्म ही सत्य सिद्ध होता है। मनुष्य का पुनर्जन्म होना, भूत-प्रेत का होना, वनस्पतियों में प्राण का होना** इत्यादि को विज्ञान ने माना है, जिसे Discovery एवं History चैनलों पर कई बार दिखाया जा चुका है।

विज्ञान द्वारा की गई खोज का पूर्व में केवल सनातनधर्म के ग्रन्थों में ही वर्णन होने से स्पष्ट होता है कि परब्रह्मस्वरूप द्वारा निर्मित केवल सनातनधर्म ही सर्वोत्तम और सत्य पर आधारित है। शेष मिथ्या है।

भगवान् चित्रगुप्त यमलोक के धर्माधिकारी (न्यायाधीश) हैं

मुद्गल नाम के एक तपस्वी ऋषि थे, एक दिन अकस्मात् मूर्च्छित होकर गिर गये। उन्हें लगा कि वे अंगूठे के बराबर हो गये हैं और यमदूत उन्हें बाँध कर जबरन ले जा रहे हैं। कुछ ही क्षण में वह यमलोक पहुँच गये, वहाँ पहुँच कर उन्होंने यमराज को देखा जो कि अनेक दूतरूपी रोग-व्याधियों के साथ विद्यमान थे। वहाँ उन्होंने दूतरूपी रोग-व्याधियों से घिरे हुये **धर्माधिकारी चित्रगुप्त** को भी देखा जो अपने लेखकों के साथ विद्यमान थे।

यमराज ने मुद्गल ऋषि को देख कर यमदूतों से कहा कि तुम इस ऋषि को क्यों लाये हो, मैंने तुमको भीमक के वंशज मुद्गल को लाने के लिये कहा था, इन्हें छोड़कर उसे लाओ। तत्क्षण मुद्गल ऋषि की मूर्च्छा भंग हो गई, मुद्गल ऋषि ने होश में आकर यम-आराधना लिखा, जिसका पाठ करने से मनुष्य नरक नहीं भोगता है।

मुद्गल ऋषि का मूर्च्छित होकर यमलोक जाने से प्रतीत होता है कि ऋषि सहित सभी मनुष्य यमलोक जाकर अपने किये गये कर्मों के अनुसार मुक्त होते हैं।

संदर्भित श्लोक-भगवान् चित्रगुप्त-यमलोक के '**धर्माधिकारी**' हैं **[श्लोक संख्या १४]**, मुद्गल ऋषि द्वारा उपासित-भगवान् चित्रगुप्त का मन्त्र **[श्लोक संख्या ५४]**

मुद्गल ऋषि द्वारा प्रत्यक्ष देखे गये यमलोक एवं मनुष्यों के लिये परमहितकारी यमाराधना मूल एवं हिन्दी अनुवाद के साथ इस प्रकार है—

[यमाराधना]

नारद उवाच-

यमस्याराधनं ब्रूहि मद्धितार्थं सुरोत्तम!। कथं न गम्यते देव नरेण नरकान्तरम्॥ १॥
श्रूयते यमलोके तु सदा वैतरणी नदी। अनाधृष्या त्वपारा च दुस्तरा बहुशोणिता॥ २॥
दुस्तरा सर्वभूताना सा कथं सुतरा भवेत्। भयमेतन्महादेव यमलोकंप्रति प्रभो॥ ३॥
तस्य निर्मोचनार्थाय ब्रूहि कृत्यमशेषतः। भगवन्देवदेवेश कृपां कृत्वा ममोपरि॥ ४॥

नारद ने कहा—हे भगवान् मेरी भलाई के लिए **यम** की आराधना को बताइये। हे देव! मनुष्य कैसे नरक में नहीं जाता है। सुना जाता है कि यमलोक में एक वैतरणी नदी है जो अत्यन्त गहरा, खून से युक्त, जिसको पार करना अत्यन्त कठिन है। यह सभी प्राणियों के लिए अत्यन्त कठिन है वह कैसे सरल होगी आप बतायें यमलोक के प्रति यही भय लग रहा है। हे देवों के देव आप मेरे उपर कृपा करके यमलोक के भय से मुक्ति दिलाने वाला समस्त उपाय बताइये॥ १-४॥

महादेव उवाच-

द्वारवत्यां पुरा विप्र! स्नातोऽहं लवणाम्भसि। ददृशे मुनिमायान्तं मुद्गलं नाम वाडव!॥ ५॥
ज्वलन्तमिव चादित्य तपसाद्योतिताङ्गकम्। मां प्रणम्य मुनिः प्राह मुद्गलो विस्मयान्वितः॥ ६॥

महादेव ने कहा—हे विप्र प्राचीन समय में द्वारावती में लवणनामक नदी में मैं स्नान कर रहा था उसी समय मुद्गल नाम के एक सन्यासी को आते हुए देखा, उनका प्रत्येक अङ्ग तपस्या के कारण सूर्य के समान चमक रहा था। आश्चर्य से चकित मुद्गल ऋषि मुझे प्रणाम करके बोले— ॥ ५-६॥

मुद्गल उवाच-

अकस्मान्मूर्च्छितो देव पतितोस्मि धरातले। प्रज्वलन्ति ममाङ्गानि गृहीतो यमकिङ्करै॥ ७॥

बलादाकृष्यमाणोऽहं पुरुषोऽङ्गुष्ठमात्रकः। बद्धो यमभटैर्गाढं नीतोऽस्मि शमनान्तिकम्॥ ८॥
क्षणात्सभायां पश्यामि यमं पिंगललोचनम्। कृष्णमुखं महारौद्रं मृत्युव्याधिशतान्वितम्॥ ९॥

मुद्गल ने कहा—एक बार अकस्मात् पृथ्वी पर मैं मूर्च्छित होकर गिर गया उस समय मुझे दिखाई देता था कि मेरे अङ्गों को पकड़कर यमदूत अंगुष्ठ मात्र पुरुष को जो अत्यन्त प्रदीप्त था बलात् निकालकर दृढ़ बन्धनों में बांधकर यम के पास ले गये, क्षण मात्र में मैंने यम की सभा में पहुँच कर पिंगल नेत्र, कृष्ण वर्ण, भीषण मुख तथा सैकड़ों मृत्यु, व्याधियों से घिरे **यम** को देखा॥ ७—९॥

वातपित्तश्लेष्मदोषैर्मूर्तिमद्भिस्तु सेवितम्। कासशोष ज्वरातंक स्फोटिका लूतकादिभिः॥ १०॥
ज्वालांगमर्दशीर्षार्ति भगंदरबलक्षयैः। कंठमालाक्षिरोगैश्च मूत्रकृच्छ्र ज्वरव्रणैः॥ ११॥
विमूर्च्छिकागलग्राहहृद्रोगैर्भूततस्करैः। इत्थं बहुविधै रौद्रैर्नानारूपैर्भयङ्करैः॥ १२॥
कपालशिरोहस्तैश्च संग्रामे नरके तथा। राक्षसैर्दानवैर्घोरैरुषविष्टैः पुरः स्थितैः॥ १३॥

वात, पित्त, महाश्लेष्मा मूर्तिमान होकर उनकी उपासना कर रहे थे और कास (खाँसी) शोष, ज्वरान्तक, स्फोटक, लूता, मृगी, गर्दभशिखर, भगन्दर, कण्ठमाला, नेत्ररोग, मूत्रकृच्छ, ज्वर, चोट, हरव्रण, विषूचिका, गलग्रह, दरिद्रता, भूत तस्कर आदि अनेक भाँति के रौद्र एवं भीषण रूप वाले सशस्त्रधारी भयंकर दानव और राक्षस आदि उनके पास विद्यमान थे॥ १०—१३॥

धर्माधिकारिभिश्चात्र चित्रगुप्तादि लेखकैः। व्याघ्रसिंहवराहैश्च शिवासप्रैःसुदुर्धरैः॥ १४॥
वृश्चिकै दंष्ट्रिभिर्भूतैःकीटकैर्मत्कुणादिभिः। वृकचित्रादिशुनकैःकंकैर्गृध्रैश्चजंबुकैः॥ १५॥
तस्करैर्भूतदारिद्रैर्मारिभिर्डाकिनीग्रहैः। मुक्तकेशैःश्वासकासैर्भ्रुकुटीकुटिलाननैः॥ १६॥
बृहत्प्रतापैर्नो भीतैःशासकैःपापकर्मणाम्। यमःसभायां शुशुभे सेव्यमानःपरिग्रहैः॥ १७॥

'धर्माधिकारी चित्रगुप्त' आदि भी अपने लेखकों के साथ वहाँ विद्यमान् थे। सिंह, व्याघ्र, वाराह, भयंकर फन वाले सर्प, कीड़े, दाँत वाले भूत, खटमल, भेड़िये, पक्षी, कौआ, गिद्ध, सियार, चोर, भूत, प्रेत, डाकिनी, खुले केश, लंबी साँस लेने वाले, टेढ़ी एवं भयंकर मुख वाले, प्रतापी भय देने वाले, पापियों को दंड देने वाले यमराज की सभा में सुशोभित हो रहे थे॥ १४—१७॥

भीमाटविकजीवैश्च यथा व्यालाञ्जनोगिरिः। ततो विश्वेश्वरःप्राह स यमः किङ्करान्प्रति॥ १८॥

भीषण जंगल में जैसे जीव रहते हैं उसी तरह काले सर्प के पर्वत की तरह वह यमराज सेवकों से बोले—॥ १८॥

नामभ्रांतैर्भवद्भिश्च समानीतः कथं मुनिः। भीमकस्यात्मजो ग्रामे कौण्डिन्ये मुद्गलाभिधः॥ १९॥
क्षीणायुः क्षत्रियः सोऽस्ति आनेयो मुच्यतामसौ। श्रुत्वैतत्तेगतास्तस्मादायाताः पुनरेवते॥ २०॥
धर्मराजं पुनः प्राहुः सर्वे ते यमकिंकराः। तत्रास्माभिर्गतैर्देही क्षीणायुर्नोपलक्षितः॥
भानुसूनो! न जानीमः कथंचिद् भ्रान्तचेतसः॥ २१॥

यमराज ने दूतों से कहा—तुम लोग नाम के भ्रम में पड़कर इस महर्षि को क्यों ले आये, मैंने कौण्डिल्य नगर के निवासी भीमक के वंशज एवं क्षत्रिय कुलोत्पन्न उस मुद्गल को यहाँ लाने के लिए कहा था, अतः इस महर्षि को छोड़ दो, और उसी को ले आओ, इस भाँति उनके कहने पर दूत गण वहां जाकर पुनः लौट आये और विनीत भाव से आश्चर्य प्रकट करते हुए धर्मराज से कहने लगे। हे भानुपुत्र! भ्रान्त होने के कारण हमलोग वहाँ जाकर इस

क्षीण आयु वाले देही को नहीं देखा, नहीं जानते इसका रहस्य क्या है॥ १९—२१ ॥

यम उवाच–

किङ्कराणामदृश्यास्ते प्रायेणभवतांनराः। सुकृता द्वादशी यैस्तु ख्याता वैतरणीति या॥ २२॥
उज्जयिन्यां प्रयागे वा यमुनायां च ये मृताः। तिलहस्तिहिरण्यादि दत्तं यैस्तु गवादिकम्॥ २३॥

यमराज ने कहा– द्वादशी का व्रत जिसे वैतरणी कहते हैं उसके करने से पुण्यशाली मनुष्य तुम लोगों को दृश्य नहीं होगा। जो लोग उज्जैन, प्रयाग या यमुना नदी के किनारे दिवंगत होते हैं। जो लोग हाथी, तिल, सोना और गाय आदि का दान करते हैं वे पुण्यशाली हैं॥ २३ ॥

ता ऊचुः–

तद्व्रतं कीदृशं स्वामिन्ब्रूहि सर्वमशेषतः। किं तत्र देव कर्त्तव्यं पुरुषैस्तव तोषदम्॥ २४॥
येन कृता नरश्रेष्ठ! द्वादशी कृष्णपक्षजा। उपवासे च तेनैव कथं पापात्प्रमुच्यते॥ २५॥
तद्व्रतं केन विधिना कर्तव्यं च यथा वद। सुप्रसन्नेन वक्तव्यं दयां कृत्या दयानिधे॥ २६॥

वे लोग बोले—हे स्वामिन्! यह कैसा व्रत है? सम्पूर्ण बताने की कृपा करें। हे देव! उसका कर्तव्य क्या है, जिसे करके पुरुष आपकी कृपा प्राप्त कर लें। हे नरश्रेष्ठ! कृष्णपक्ष की द्वादशी का व्रत करके तथा उपवास करके मनुष्य कैसे समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। हे दयानिधे! प्रसन्न होकर इस व्रत के विधान को बताने की कृपा करें। २४-२६।

श्रीमुद्गल उवाच–

दूतानां वचनं श्रुत्वा उवाच मधुरं तदा। सर्वं वदामि भोदूता! यथादृष्टं यथा श्रुतम्॥ २७॥

मुद्गल ने कहा—दूतों के वचन को सुनकर अत्यन्त मधुर वाणी में यम ने कहा—हे दूतों मैंने जो देखा वह बता रहा हूँ सुनो। २७।

यम उवाच–

मार्गशीर्षादि मासे तु या इमाः कृष्णपक्षजाः। तासु सर्वासु विधिवद्दूता वैतरणीव्रतम्॥ २८॥
प्रतिमासं च कर्त्तव्य यावद्वर्षं भवेद्ध्रुवम्। यत्तु कृत्वा तु भो दूता मुच्यते नात्र संशयः॥ २९॥
उपवासस्य नियमःकर्त्तव्यो विष्णुतुष्टिदः। अद्य मे देवदेवेश उपवासो भविष्यति॥ ३०॥
द्वादश्या पूज्य गोविन्दं भक्तिभावसमन्वितम्। स्वप्न इन्द्रियवैकल्पयाद्भोजनं यच्च मैथुनम्॥ ३१॥
तत्सर्वं क्षम मे देव कृपां कृत्वा ममोपरि। एवं वै नियमं कृत्वा मध्याह्ने तीर्थमाव्रजेत्॥ ३२॥

यमराज ने कहा—मार्गशीर्ष आदि मास के कृष्ण पक्ष में वैतरणी व्रत को विधि पूर्वक करना चाहिए यह व्रत प्रतिमास एक वर्ष तक करना चाहिए। हे दूतों! इस व्रत को करके व्यक्ति सभी पापों से मुक्त हो जाता है। विष्णु को प्रसन्न करने वाला इस व्रत के दिन नियम से उपवास करें। हे देवाधिदेव आज मेरा व्रत है ऐसा कहें। भक्तिभाव से द्वादशी के दिन गोविन्द की पूजा करनी चाहिए और शयन इन्द्रियों की शिथिलता, भोजन अथवा मैथुन करने से जो दोष हैं उसे कृपया क्षमा करें इस प्रकार नियम का पालन करते हुए तीर्थ में अपराह्न को जाना चाहिए। २८-३२।

मृद्गोमयतिलान्नीत्वा गन्तव्यं विधिपूर्वकम्। स्नानं तत्र प्रकर्तव्यं व्रतसम्पूर्त्तिहेतवे॥ ३३॥
अश्वक्रान्तेतिमन्त्रेण स्नानं कुर्याद्विशेषतः। अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे॥ ३४॥
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया पूर्वसंचितम्। तया हतेन पापेन सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ३५॥

काश्याञ्चैव तु संभूतास्तिला वै विष्णुरूपिणः। तिलस्नानेन गोविन्दः सर्वपापं व्यपोहति॥ ३६॥

व्रत की पूर्णता के लिए मिट्टी, गोबर एवं तिल लेकर विधि पूर्वक स्नान करना चाहिए। अश्वक्रान्ते, रथक्रान्ते, विष्णुक्रान्ते, वसुन्धरे, मृत्तिके इस मन्त्र से स्नान करना चाहिए। हे मृतिका मेरे पूर्व के संचित सम्पूर्ण पाप को नष्ट करें। काशी में उत्पन्न होने वाला तिल जो साक्षात् विष्णु स्वरूप है ऐसे तिल के स्नान से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। ३३—३६।

विष्णुदेहोद्भवे देवि महापापापहारिणि। सर्वं पापं हरत्वं वै सर्वौषधि नमोऽस्तु ते॥ ३७॥
तुलसीपत्रकं धृत्वा नामोच्चारणपूर्वकम्। स्नानं सुकृतिभिः प्रोक्तं कर्तव्यं विधिपूर्वकम्॥ ३८॥
एवं स्नात्वा समुत्तीर्य परिधाय सुवाससी। तर्पयित्वा पितृन्देवांस्ततो विष्णोस्तु पूजनम्॥ ३९॥
संस्थाप्य चाव्रणं कुम्भं पञ्चपल्लवसंयुतम्। पञ्चरत्नसमोपेतं दिव्यस्त्रग्गन्धवासितम्॥ ४०॥

विष्णु के शरीर से उत्पन्न औषधियाँ जो समस्त पापों को नष्ट करने वाली हैं अतः हे देवी! हमारे समस्त पापों को नष्ट करें आपको मेरा प्रणाम है। तुलसी पत्र को धारण कर नाम का जप करते हुए पुण्यशाली लोग विधिपूर्वक स्नान करते हैं ऐसा भी कहना चाहिए। इस प्रकार स्नान करके सुन्दर वस्त्र पहनकर पितृ एवं देवताओं का तर्पण करने के बाद भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिए। छिद्र रहित कलश रखकर उसमें पंचपल्लव (आम, पीपल, पाकड़, बरगद, गूलर) से युक्त वस्त्र लपेटकर, पञ्च रत्न डालकर, गंध आदि लगाकर माला लगा दे। ३७—४०।

सद्रव्यं जलपूर्णं च ताम्रपात्रसमन्वितम्। तत्रस्थं श्रीधरं देवं देवदेवं तपोनिधिम्॥ ४१॥
पूर्णेन विधिना राजन्कुर्यात्पूजां गरीयसीम्। मृद्गोमयादि रचितं मण्डलं कारयेच्छुभम्॥ ४२॥
तण्डुलैः शुक्लधौतैश्चाप्यम्बुपिष्टैश्च कारयेत्। धर्मराजः प्रकर्त्तव्यो हस्ताद्यवयवान्वितः॥ ४३॥
नदीं वैतरणींताम्रां स्थापयित्वा तदग्रतः। पूजयेच्च पृथक्सम्यक्समावाहनपूर्वकम्॥ ४४॥

ताम्र के पात्र में द्रव्य एवं जल से पूर्ण करके वहाँ देवों के देव श्रीधर की पूजा करें। हे राजन! पूर्ण विधिपूर्वक मिट्टी एवं गोबर के द्वारा सुन्दर मंडप बनाकर पूजन करनी चाहिए। चावल एवं सफेद वस्त्र जल एवं आटा से धर्मराज का हाथ आदि अंग बनावें। वहीं वैतरणी नदी बनाकर अलग-अलग आह्वान पूर्वक पूजन करें। ४१—४४।

आवाहयामि देवेशं यमं वै विश्वरूपिणम्। इहाभ्येहि महाभाग सान्निध्यं कुरु केशव॥ ४५॥
इदं पाद्यं श्रियः कान्त! सोपविष्टं हरे! प्रभो!। विश्वोद्यानरतो नित्यं कृपां कुरु ममोपरि॥ ४६॥
भूतिदाय नमः पादावशेकाय च जानुनी। ऊरूनमःशिवायेति विश्वमूर्ते नमः कटिम्॥ ४७॥
कन्दर्पाय नमो मेढ्रमादित्याय फलं तथा। दामोदराय जठरं वासुदेवाय वै स्तनौ॥ ४८॥
श्रीधराय मुखं केशान्केशवायेति वै नमः। पृष्ठं शार्ङ्गधरायेति चरणौ वरदाय च॥ ४९॥

विश्वरूपी हे देवेश! आप यहां आकर केशव के सानिध्य में विराजमान होयें। हे लक्ष्मीपति! यह पाद्य हे हरे! हे प्रभो! आप विराजमान होवें नित्य आप विश्व का कल्याण करने वाले मेरे ऊपर दया करें। भूतिदायै नमः कहकर पैरों की, अशेषाय कहकर घुटने की, शिवायै नमः कहकर जंघे की, विश्वमूर्ते नमः कहकर कमर की, कन्दर्पाय नमः कहकर अण्डकोष की, आदित्याय नमः कहकर शरीर की, दामोदराय कहकर जठर की, वासुदेवाय नमः कहकर स्तनों की, श्रीधराय नमः कहकर मुख की, केशवाय नमः कहरकर केशव की, शार्ङ्गधराय नमः कहकर पीठ की, वरदाय नमः कहकर चरणों की पूजा करनी चाहिए। ४५—४९।

स्वनाम्ना शङ्खचक्रासिगदापरशुपाणये। सर्वात्मने नमस्तुभ्यं शिर इत्यभिधीयते॥५०॥
मत्स्यं कूर्मं च वाराहं नारसिंहं च वामनम्। रामं रामं च कृष्णं च बुद्धं कल्किं नमोऽस्तु ते॥५१॥
सर्वपापौघनाशार्थं पूजयामि नमोनमः। एभिश्च सर्वशो मन्त्रैर्विष्णुं ध्यात्वा प्रपूजयेत्॥५२॥
धर्मराज नमस्तेऽस्तु धर्मराज नमोऽस्तुते। दक्षिणाशापते तुभ्यं नमो महिषवाहन॥५३॥

शंख, चक्र, कृपाण, गदा और परशु जिसके हाथ में हैं ऐसे सर्वात्मन् आप को नमस्कार है। मत्स्य, कूर्म, वाराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध एवं कल्कि रूप में अवतरित आप को प्रणाम है। सभी पापों को नष्ट करने वाले आपको बार-बार नमस्कार है। इस प्रकार अनेक मन्त्रों द्वारा विष्णुका ध्यान करके पूजन करें। **हे धर्मराज आपको प्रणाम है, दक्षिण दिशा के स्वामी महिष वाहन वाले धर्मराज आपको प्रणाम है।** ५०—५३।

चित्रगुप्त नमस्तुभ्यं विचित्राय नमोनमः। नरकार्ति प्रशांत्यर्थं कामान्यच्छ ममेप्सितान्॥५४॥
यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चांतकाय च। वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च॥५५॥
वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः। नीलाय चैव दध्नाय नित्यं कुर्यान्नमोनमः॥५६॥
एवं द्वादशभिः पूज्यो नामभिर्धर्मराट् प्रभुः। वैतरणि सुदुःपारे पापघ्नि सर्वकामदे॥५७॥

हे चित्रगुप्त आपको प्रणाम है, हे विचित्र आपको प्रणाम है। मेरी मनोकामना पूर्ण करते हुए मुझे नरक के दुःख से मुक्त करें। यम के १२ नाम-यमाय, धर्मराजाय, मृत्यवे, अन्तकाय, वैवस्वताय, कालाय, सर्वभूतक्षयाय, वृकोदराय, **चित्राय, चित्रगुप्ताय**, नीलाय, दध्नाय को प्रणाम है, का जो जप करता है। वह व्यक्ति वैतरणी नदी को यम की कृपा से पार करते हुए सभी पापों को नष्ट करके सभी कामनाओं को प्राप्त करता है। ५४—५७।

इहाभ्येहि महाभागे गृहाणार्घं मया कृतम्। यमद्वारपथे घोरे ख्याता वैतरणीनदी॥५८॥
तस्या उद्धरणार्थाय जन्ममृत्युजरातिगा। या दुस्तरा दुष्कृतिभिः सर्वप्राणिभयापहा॥५९॥
यस्यां भयात्प्रमज्जन्ति प्राणिनो यातनापराः। तर्तुकामस्तु तां घोरां जयादेवि नमोनमः॥६०॥

हे देव यहाँ आकर मेरे अर्घ्य को ग्रहण करें यम के मार्ग में भयंकर नदी है, उस नदी को पार करने के लिए जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा से मुक्ति पाने के लिए जो वैतरणी नदी दुस्पार है, सभी प्राणियों को भय देने वाली है, जिस नदी के भय से प्राणी उसी में डूब जाता है और अनेक कष्ट सहता है, उस भयंकर नदी को पार करने की सहायता के लिए जया नामक देवी की मैं प्रार्थना करता हूँ, हे जया देवी आपको प्रणाम है। ५८—६०।

तस्यां देवा हि तिष्ठन्ति या सा वैतरणी नदी। सा चापि पूजिता भक्त्या प्रीत्यर्थं केशवस्य च॥६१॥
यस्यास्तटे प्रतिष्ठन्ति ऋषयः पितरस्तथा। सा चापि सिंधुरूपेण पूजिता पापहारिका॥६२॥
तरीतुं तां प्रदास्यामि सर्वपापविमुक्तये। पुण्यार्थं संप्रवक्ष्यामि तुभ्यं वैतरणीनदीम्॥६३॥
मयासि पूजिताभक्त्या प्रीत्यर्थं केशवस्य च। कृष्णकृष्ण जगन्नाथ संसारादुद्धरस्व माम्॥६४॥

उस वैतरणी नदी में समस्त देव विराजमान हैं केशव की प्रसन्नता के लिये उसी नदी की भक्तिभाव से पूजा करनी चाहिए। जिस नदी के तटपर ऋषि तथा पितृ लोग वास करते हैं, वह नदी समुद्र के रूप में सभी पापों को हरण करने वाली है, इसलिए इसकी पूजा की जाती है। उसे पार करने हेतु, सभी पापों से मुक्ति पाने हेतु, पुण्य के लिए हे वैतरणी नदी आपको प्रणाम है। केशव की प्रसन्नता के लिए एवं मैंने भक्तिपूर्वक आपका पूजन किया हे कृष्ण! हे जगन्नाथ! इस संसार रूपी सागर से मेरा उद्धार करें। ६१—६४।

नामग्रहणमात्रेण सर्वं पापं हरस्व मे। यज्ञोपवीतं परमं कारितं नवतंतुभिः॥६५॥

प्रतिगृह्णीष्व देवेश! प्रीतो यच्छ ममेप्सितम्। इदं तव च ताम्बूल यथा शक्त्या सुशोभनम्॥ ६६॥
प्रतिगृह्णीष्व देवेश मामुद्धर भवार्णवात्। पञ्चवर्ती प्रदीपोऽयं देवेशारार्तिकं तव॥ ६७॥
मोहान्धकारद्युमणेभक्तियुक्तो भवार्तिहृत्। परमान्नं सुपक्वान्नं समस्तरससंयुतम्॥ ६८॥
निवेदितं मया भक्त्या भगवन्प्रतिगृह्यताम्। द्वादशाक्षरमन्त्रेण यथासंख्यजपेन च॥ ६९॥

भगवान् के नाम लेने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, अतः मेरे समस्त पाप को नष्ट कीजिए। **नौ सूत्र द्वारा निर्मित जनेऊ को आप ग्रहण करें** और प्रसन्न होकर मेरे अभीष्ट फल को प्रदान करें। यह ताम्बूल अपनी शक्ति अनुसार आपको समर्पित है। हे देवेश! इसे आप ग्रहण करें और संसार रूपी सागर से मेरा उद्धार करें, हे देव! पंच प्रदीप्त द्वारा मैं आपकी आरती करता हूँ। मोहरूपी अंधकार को सूर्य की तरह दूर करने हेतु आप संसार के दुःख को नष्ट करें, सुन्दर पक्वान् समस्त रसों से युक्त बनाया हुआ मैं भक्ति पूर्वक आपको निवेदित करता हूँ। हे भगवन् इसे ग्रहण करें और द्वादशाक्षर **(ॐ नमो भगवते वासुदेवाय)** मन्त्र का जप अपने सामर्थ्य अनुसार करें। ६५—६९।

प्रीयतां मे श्रियः कांतः प्रीतो यच्छतु वांछितम्। पञ्चगावः समुत्पन्ना मध्यमाने महोदधौ॥ ७०॥
तासां मध्ये तु या नन्दातस्यै धेन्वै नमोनमः। गां संपूज्य विधानेन अर्घ्ये दद्यत्समाहितः॥ ७१॥
सर्वकामदुघे देवि सर्वान्तकनिवारिणी। आरोग्यं संततिं दीर्घांदेहि नन्दिनि मे सदा॥ ७२॥
पूजिता च वसिष्ठेन विश्वामित्रेण धीमता। कपिले हर मे पापं यन्मया पूर्वसंचितम्॥ ७३॥

हे लक्ष्मीपति! आप प्रसन्न होकर मेरी इच्छानुसार फल प्रदान करें, समुद्र में पंच गौ विराजमान थी। उसी नदी में नन्दिनी नाम की गाय विद्यमान है, उस गाय को बारम्बार प्रणाम है, उस गाय को विधान पूर्वक पूजन करके एकाग्रचित्त होकर अर्घ्य दिया जाय। हे देवी! सभी कामनाओं को देनेवाली हो, सभी दुःखों को नाश करने वाली हो, हे नन्दिनी मेरी संतति, दीर्घायु एवं आरोग्य को प्राप्त हों। जिस गाय की पूजा वशिष्ठ एवं विश्वामित्र ने किया है, हे कपिला! पूर्व में संचित समस्त पाप को नष्ट करें। ७०—७३।

गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः। नाके मामुपतिष्ठन्तु हेमशृङ्ग्यःपयोमुचः॥ ७४॥
सुरभ्यः सौरभेयाश्च सरितः सागरा यथा। सर्वदेवमये देवि सुभद्रे भक्तवत्सले॥ ७५॥
एवं संपूज्य विधिवद्द्याद् गोषु गवाह्निकम्। सौरभेय्यःसर्वहिताः पवित्राः पापनाशनाः॥ ७६॥

गाय मेरे आगे हों, गाय मेरे पीछे हों, सुवर्ण सींग एवं दूध देने वाली गाय मुझे स्वर्ग में स्थान प्रदान करें। गायें उनकी संतान हैं, नदी सागर है, सभी देवमय है, उसी तरह हे सुभद्रे! हे भक्तों पर प्रसन्न होने वाली इस प्रकार विधिवत पूजन करें। गो-ग्रास दें। ये गायें सभी का हित करने वाली हैं पवित्र हैं तथा पापों को नष्ट करने वाली हैं। ७४—७६।

प्रतिगृह्णंतु मे ग्रासं गावस्त्रैलोक्यमातरः। गं गदायै नमो भूत्यै सर्वपापप्रहाणये॥ ७७॥
अनेनैव तु मंत्रेण गदां वै धारयेद्बुधः। पं नमः पद्मनाभाय पद्मं वै धारयेत्सुधीः॥ ७८॥
चं चक्ररूपिणे विष्णो धारणं चक्रजं स्मृतम्। शं शंखरूपिणे तुभ्यं नमोऽस्तु सुखकारिणे॥ ७९॥
मंत्रेणानेन वै दूता धारणं शंखजं स्मृतम्। चतुर्णामायुधानां तु धारणं मुनिभिःस्मृतम्॥ ८०॥

हे गाय! आप तीनों लोकों की माता हैं, अतः मेरे द्वारा दिये गये ग्रास को ग्रहण करें तथा समस्त पापों को नष्ट करने के लिये कल्याण हेतु गं गदायै नमः ऐसा कहें। इसी मंत्र से विद्वान लोग गदा की पूजा करते थे, और पं नमः पद्मनाभाय ऐसा कहकर कमल धारण करते हैं। चं चक्ररूपिणे नमः ऐसा कहकर भगवान्

विष्णु के चक्र की पूजा करते हैं। शं शंखरूपिणे नमः कहकर सुख देने वाले शंख की पूजा करते हैं। हे दूतों! इन मन्त्रों से शंख धारण करते हैं। मुनियों ने बताया है कि भगवान् चारो अस्त्र (शंख, चक्र, गदा, कमल) धारण करते हैं। ७७—८०।

अग्निहोत्रं यथा नित्यं वेदस्याध्ययनं तथा। ब्राह्मणस्य अथैवेदं तप्तमुद्रादि धारणम्॥ ८१॥
चंदनेन सुगंधेन गोपिकाचंदनेन तु। धारणं च विशेषण ब्राह्मणैर्वेदपारगैः॥ ८२॥
चांडालोऽपि भवेच्छुद्धो धारणाच्च न संशयः। ऊर्ध्वपुंड्रमृजुं सौम्यं सचिह्नं धारयेद्यदि॥ ८३॥
स चांडालोऽपि शुद्धात्मा पूज्य एव सदा द्विजैः। चाण्डालानां गृहे दूतास्तुलसी यत्र दृश्यते॥ ८४॥
तत्रत्या तुलसी ग्राह्या भक्तिभावेन चेतसा॥ ८५॥

नित्य अग्नि में हवन करना, वेद का अध्ययन करना, वेद ब्राह्मणों द्वारा ग्रहण करना, तप्तमुद्रा आदि धारण करना, वेद के पारंगत ब्राह्मण विशेष करके सुगन्ध गोपीचंदन धारण करते हैं। चांडाल भी गोपीचंदन लगाने से शुद्ध हो जाता है। वह चंदन उर्ध्वमुख सीधे चिन्ह के रूप में धारण करें तो वह चांडाल भी शुद्धात्मा होकर सदा ब्राह्मणों से पूज्य होता है। यदि चांडाल के यहां तुलसी दिखायी दे तो प्रेम पूर्वक तुलसी को ग्रहण कर लेना चाहिए। ८१—८५।

महेश्वर उवाच—

इति श्रुतं धर्ममुखान्मुद्गलो द्विजसत्तमः। कथयित्वा ममाग्रे वै गतो यादृच्छिकको मुने॥ ८६॥
गोपिकाचन्दनं यत्र तिष्ठते वै द्विजोत्तम। तद्गृहं तीर्थरूपं च विष्णुना भाषितं किल॥ ८७॥
शोकमोहौ न तत्रस्तो न भवत्यशुभं क्वचित्। गोपिकाचन्दनं यस्य तिष्ठति द्विज! सद्मनि॥ ८८॥
सुखिनःपूर्वजास्तेषां सन्ततिर्वर्धते सदा। गोपिकाचन्दनं यस्य वर्ततेऽहर्निशं गृहे॥ ८९॥
गोपीपुष्करजा मृत्स्ना पवित्रा कायशोधिनी। उद्वर्त्तनाद्विनश्यति व्याधयो ह्याधयश्चये॥ ९०॥

महेश्वर ने कहा— धर्मराज के मुख से यह वचन सुनने के पश्चात् मुद्गल ऋषि मेरे सामने से चले गये। हे नारद! जहां **गोपीचंदन (पुष्कर की पवित्र मिट्टी)** रहती है, वह घर तीर्थ स्वरूप होता है। यह स्वयं विष्णु ने बताया है। जिसके घर में गोपीचंदन रहता है वहां शोक, मोह नहीं रहता, वहां कभी अशुभ नहीं होता। जिस व्यक्ति के घर सदैव गोपीचंदन रहता है उसके पूर्वज सुखी रहते हैं तथा उसके संतान की वृद्धि होती है। **यह गोपी पुष्कर के मिट्टी से बनी है जो पवित्र है,** शरीर को शुद्ध करने वाली है। इसके शरीर पर लेप करने से समस्त आधि और व्याधियां नष्ट हो जाती हैं। ८६—९०।

अतो देहे धृतं पुम्भिर्मुक्तिदं सर्वकामिकम्। तावद् गर्जन्ति तीर्थानि तावत्क्षेत्राणि सर्वदा॥ ९१॥
गोपिकाचन्दनं यावन्न दृष्टं न श्रुतं द्विज। इदं ध्येयमिदं पूज्यं मलदोषविनाशनम्॥ ९२॥
यस्य संस्पर्शनादेव पूतो भवति मानवः। अन्तकाले तु मर्त्यानां मुक्तिदं पावनं परम्॥ ९३॥

गोपीचंदन शरीर में धारण करने से सभी कामनायें पूर्ण होती हैं तथा मुक्ति प्राप्त होती है। तीर्थ या समस्त पुण्य क्षेत्र तब तक गर्जन करते हैं जब तक गोपीचंदन विद्यमान रहता है। न देखा है, न सुना है यह ध्यान योग्य है, पूज्य योग्य है, और मल दोष को दूर करने वाला है। जिस चंदन के स्पर्श मात्र से मनुष्य पवित्र हो जाता है और अन्तकाल तक पवित्र होकर परममुक्तिपद को प्राप्त करता है। ९१—९३।

किं वदामि द्विजश्रेष्ठ मुक्तिदं गोपिचन्दनम्। विष्णोस्तु तुलसीकाष्ठं तथा वै मूलमृत्तिका॥ ९४॥
गोपिकाचन्दनं चैव तथा वै हरिचन्दनम्। चत्वार्येतानि संमेल्य अङ्गमुद्वर्तयेत्सुधीः॥ ९५॥

तेन तीर्थं कृतं सर्वं जम्बूद्वीपेषु सर्वदा। तिलकं कुरुते यस्तु गोपिकाचन्दनद्रवैः॥ ९६॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो याति विष्णोः परंपदम्। पितुः श्राद्धादिकं तेन गयां गत्वा तु वै कृतम्॥ ९७॥
येन वा पुरुषेणापि विधृतं गोपिचन्दनम्। मद्यपो ब्रह्महा चैव गोघ्नो वा बालहा तथा
मुच्यते तत्क्षणादेव गोपीचन्दनधारणात्॥ ९८॥

हे द्विजश्रेष्ठ! क्या कहूँ यह गोपीचंदन मुक्ति देने वाला है, विष्णु का तुलसी की लकड़ी, मूल मिट्टी, गोपीचंदन, हरीचंदन, ये चारो मिलाकर जो विद्वान अपने शरीर पर लेपन करता है, वह जम्बूद्वीप के समस्त तीर्थों को कर लिया ऐसा माना जाता है। जो गोपीचंदन को अपने मस्तक पर लगाता है। वह व्यक्ति सभी पापों से मुक्त होकर विष्णु के परमपद को प्राप्त करता है। **जो गोपीचंदन धारण करता है, वह पिता का श्राद्ध गया न जाने पर भी कर लिया, ऐसा माना गया है।** शराब पीने वाला, ब्राह्मण का हत्यारा, गाय का बध करने वाला, बालक का बध करने वाला यदि गोपीचंदन धारण कर ले तो वह पापों से तत्काल मुक्त होकर **विष्णुलोक** को प्राप्त करता है। ९४-९८।

संदर्भ—पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, यमाराधनावैतरिणी व्रत विधान।

× × ×

भगवान् चित्रगुप्त ने एक जुआरी को 'देवराज इन्द्र' बनाया, पुनः उसे जन्म देकर महादानी राजा बलि बनाया

एक जुआरी नित्य दुष्कर्मों में रत था। एक दिन जुए में धन जीत कर वेश्यागमन के निमित्त धन, पुष्प, मिष्ठान इत्यादि लेकर घर से निकला। मार्ग में जाते समय उसका पैर फिसला और वह गिरकर मूर्च्छित हो गया, होश आने पर उसे बहुत ग्लानि हुई। वह उठ कर सभी सामग्री एकत्रित किया और पास के एक शिवालय में जाकर सभी सामग्री शिव को अर्पित कर दिया। कुछ दिनों बाद उसकी मृत्यु हो गई, उसे यमराज ने देख कर कहा कि हे धूर्त तू घोर नरक में डालने योग्य है। यह सुनकर जुआरी ने कहा कि हे यमराज यद्यपि मैं पापी हूँ तथापि यदि मैंने कोई शुभ कार्य किया हो तो उसे भी देख लें।

यह सुनकर चित्रगुप्त ने जुआरी से कहा तुमने शिव के निमित्त जो दान किया था उस सुकृत के कारण तुम ३ घटी (७२ मिनट) के लिये इन्द्र का पद प्राप्त करोगे, इसमें संशय नहीं है। देवगुरू बृहस्पति ने इन्द्र से कहा कि हे इन्द्र तुम तत्काल इन्द्र के आसन पर इसे बैठने दो, ये मेरी आज्ञा है। **वह जुआरी चित्रगुप्त की कृपा से तत्काल ही इन्द्र बन गया।** इन्द्र बनते ही उसने ऋषियों को निमंत्रित करके तथा **शिव का नाम लेकर** ऐरावत हाथी, उच्चैश्रवा घोड़ा तथा कल्पवृक्ष इत्यादि उन्हें दान दे दिया।

३ घटी (७२ मिनट) पश्चात् इन्द्र पुनः अपने लोक वापस आ गये, इन्द्र ने ऐरावत हाथी, उच्चैश्रवा घोड़ा तथा कल्पवृक्ष इत्यादि न पाकर गुरू बृहस्पति से इसका कारण पूछा तो बृहस्पति ने बताया कि पिछले इन्द्र ने उसे ऋषियों को दान दे दिया है। इस पर क्रोधित होकर इन्द्र यमराज के पास पहुँच कर बोले कि आपके कारण मेरा राज्य नष्ट हो गया। इस बात से क्रुद्ध होकर यमराज चित्रगुप्त से बोले हे चित्रगुप्त इसे नरक में भेज दें! इस बात को सुनकर चित्रगुप्त बोले हे यमराज इन्द्र का पद प्राप्त होने पर भी इसने भोग का त्याग करके शिव के निमित्त दान दिया है इसलिये ये तीनों लोकों में पूज्य है। जो स्वर्ग अथवा मृत्युलोक में शिव के निमित्त दान देता है, वह नरक भोगने योग्य नहीं है। इसलिये यह जुआरी नरक जाने योग्य नहीं है, तब **यमराज द्वारा सिर झुकाकर चित्रगुप्त की आज्ञा का पालन करते हुये प्रह्लाद का पौत्र बलि के रूप में जुआरी को नया जन्म दिया गया।** राजा बलि के पूर्वज का विवरण इस प्रकार है—

☞ **ब्रह्मा से**–मरीचिऋषि, **मरीचिऋषि से**–कश्यपऋषि, **कश्यपऋषि की पत्नी दिति से**–हिरण्यकशिपु, **हिरण्यकशिपु से**–प्रह्लाद, **प्रह्लाद से**–विरोचन, **विरोचन से**–'बलि' उत्पन्न हुये।

राजा बलि महादानी हुये। इनका निवास **पाताललोक** में था। ये ब्राह्मण थे, अब तक जितने भी ब्राह्मण उत्पन्न हुये उनमें सबसे पराक्रमी महादानी राजा बलि हुये। महादानी राजा बलि ही सावर्णिक मनु के मन्वन्तर में इन्द्र बनेंगे। इस अंश से ये स्पष्ट होता है कि ब्राह्मणों सहित सभी मनुष्यों के जन्मदाता भगवान् चित्रगुप्त हैं। भगवान् चित्रगुप्त के आदेश से ही जुआरी, इन्द्र के पश्चात् राजा बलि हुआ, इससे ये स्पष्ट होता है कि पालन भी भगवान् चित्रगुप्त द्वारा ही किया जाता है।

इस पौराणिक कथा में **भगवान् चित्रगुप्त के आदेश से जुआरी का इन्द्र बनना ''देवलोक की घटना है'' जबकि जुआरी का मोक्ष स्वरूप प्रह्लाद के पौत्र बलि के रूप में उत्पन्न होना ''पाताललोक की घटना है।'' ये पौराणिक अंश स्पष्ट करता है कि भगवान् चित्रगुप्त 'देवलोक' तथा 'पाताललोक' पर**

चलता है। चित्रगुप्तजी द्वारा जुआरी को नरक न भेजने का निर्णय देने पर यमराज द्वारा जुआरी को राजा बलि के रूप में जन्म दिया गया, इससे प्रतीत होता है कि मनुष्य को भगवान् चित्रगुप्त के निर्णयों से यमराज द्वारा जन्म दिया जाता है।

इसीलिये प्रत्येक मनुष्य के श्राद्ध में पितृ को प्रेतयोनि से मुक्ति के लिये चित्रगुप्त एवं यमराज से ही प्रार्थना की जाती है तथा गरुडपुराण का श्रवण किया जाता है जो कि चित्रगुप्त, यमराज एवं प्राणियों के भोग का वर्णन है।

संदर्भित श्लोक—

भगवान् चित्रगुप्त के आदेश से जुआरी इन्द्र बना **[श्लोक ६३-६६],**

यमराज द्वारा चित्रगुप्तजी से जुआरी को नरक भेजने का आग्रह, जिसे ठुकरा कर चित्रगुप्तजी द्वारा शिव के निमित्त दान करने के कारण जुआरी को नरक न भेजना **[श्लोक १०५-१०९],**

यमराज द्वारा जुआरी को विरोचन के पुत्र राजा बलि के रूप में जन्म देना **[श्लोक ११७]।**

महादानी बलि के उत्पत्ति का पौराणिक वर्णन मूल एवं हिन्दी अनुवाद के साथ आगे दिया जा रहा है—

[क्रमशः ....

[महादानी बलि की उत्पत्ति]

लोमश उवाच–

यत्नतो येन यत्किंचित्क्रियते सुकृतं नरैः। शुभं वाप्यशुभं वापि ज्ञातव्यं हि विपश्चिता॥ ४६॥
शक्रो हि याज्ञिको विप्रा अश्वमेधशतेन वै। प्राप्तराज्योऽमरावत्यां केवलं भोगलोलुपः॥ ४७॥
अर्थितं तत्फलं विद्धि पुनः कार्पण्यमाविशत्। पुनर्मरणमाविश्य क्षीणपुण्यो भविष्यति॥ ४८॥
य इंद्र कृमिरेव स्यात्कृमिर्रिद्रो हि जायते। तस्माद्दानात्परतरं नान्यदस्तीह मोचनम्॥ ४९॥
दानाद्धि प्राप्यते ज्ञानं ज्ञानान्मोक्षो न संशयः। मोक्षात्परतरा भक्तिः शूलपाणौ हि वै द्विजाः॥ ५०॥
ददाति सर्वं सर्वेशः प्रसन्नात्मा सदाशिवः। किंचिदल्पेन तोयेन परितुष्यति शंकरः॥ ५१॥

लोमश बोले—हे! ऋषि मनुष्य प्रयत्न के साथ जो पुण्य करता है, उसी पुण्य के कारण मनुष्य अपने शुभ एवं अशुभ कर्म को जान पाता है। इन्द्र पहले याज्ञिक थे उन्होंने सौ अश्वमेध यज्ञ करके अमरावती को प्राप्त किया है। किन्तु अब उनमें केवल भोग एवं लोलुपता व्याप्त है। अपने इच्छानुसार फल प्राप्त करने के बाद इन्द्र में अब कृपणता आ गयी है। जब पुण्य क्षीण होगा तब मृत्यु को प्राप्त करेंगे। **जो आज इन्द्र है वह कालान्तर में कीड़े हो सकते हैं जो आज कृमि है वह कल उसने पुण्य के कारण इन्द्र का पद प्राप्त कर सकता है।** इस संसार में दान के समान कुछ नहीं है, दान से ज्ञान प्राप्त होता है, ज्ञान से मोक्ष प्राप्त होता है, निष्कामदान सर्वोपरि है, इसमें संशय नहीं है। मोक्ष से भगवान् शंकर की परमभक्ति प्राप्त होती है। भगवान् शिव के प्रसन्न होने पर सब कुछ प्राप्त हो जाता है क्योंकि भगवान शंकर थोड़े से जल से ही प्रसन्न हो जाते हैं॥ ४६—५१॥

अत्रैवोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम्। विरोचनसुतेनेदं कृतमस्ति न संशयः॥ ५२॥
कितवो हि महापापो देवब्राह्मणनिंदकः। निकृत्या परयोपेतः परदाररतो महान्॥ ५३॥
एकदा तु महापापात्कैतवाच्च जितं धनम्। गणिकार्थे च पुष्पाणि तांबूलं चंदनं तथा॥ ५४॥
कौपीनमात्रं तस्यैव कितवस्य प्रदृश्यते। कराभ्यां स्वस्तिकं कृत्वा गंधमाल्यादिकं च यत्॥ ५५॥
गणिकार्थमुपादाय धावमानो गृहं प्रति। तदा प्रस्खलितो भूमौ निपपात च तत्क्षणात्॥ ५६॥
पतनान्मूर्छया युक्तः क्षणमात्रं तदाऽभवत्। ततो मूर्छागतस्यास्य पापिनोऽनिष्टकारिणः॥ ५७॥
बुद्धिः सद्यः समुत्पन्ना कर्मणा प्राक्तनेन हि। निर्वेदं परमापन्नः कितवो दुःखसंयुतः॥ ५८॥
भूम्यां निपतितं यच्च गंधपुष्पादिकं महत्। समर्पितं शिवायेति कितवे नाप्यबुद्धिना॥ ५९॥

विरोचन के पुत्र 'बलि' ने पूर्व जन्म में ऐसा ही किया था उसका इतिहास मैं कहता हूँ उसे आप सुनें— प्राचीन काल में एक महापापी एवं धूर्त, देवता ब्राह्मणों का निन्दा करने वाला एक जुआरी था। वह नित्य दुष्कर्म करने वाला था। एक बार उस जुआरी ने जुआ के द्वारा बहुत सा धन जीत लिया। उस धन से जुआरी ने एक वेश्या के लिए पुष्प, ताम्बुल तथा चन्दन का स्वास्तिक बनाकर हाथ में गंध, माला आदि लेकर दौड़ता हुआ वेश्या के घर की ओर चल पड़ा। उसी समय पैर फिसलने के कारण भूमि पर गिर कर मूर्च्छित हो गया। मूर्च्छा समाप्त होने पर (अर्थात् होश में आने पर) किसी अनिष्ट की आशंका से तथा पूर्व जन्म के किसी पुण्य के कारण उसके मन में ग्लानि होने लगी और वह जुआरी अत्यन्त दुखित हुआ। ग्लानि होने पर उस धूर्त ने अत्यन्त दुखित होकर भूमि पर गिरे हुए गन्ध पुष्प को उठाकर भगवान् शंकर को समर्पित कर दिया॥ ५२–५९॥

तेनैव सुकृतेनैव याम्यैर्नीतो यमालयम्। तं पापिति यमोऽवोचत्सर्वलोकभयावहः॥ ६०॥
पच्यनीयोसि मे मंद नरकेषु महत्सु च। इत्युक्तो धर्मराजेन कितवो वाक्यमब्रवीत्॥ ६१॥

पापाचारो हि भगवन्कश्चिन्नैव मया कृतः। विमृश्यतां मे सुकृतं याथातथ्येन भो यम॥ ६२॥
चित्रगुप्तेन चाख्यातं दत्तमस्ति त्वया पुनः। पतितं चैव देहांते शिवाय परमात्मने॥ ६३॥
तेन कर्मविपाकेन घटिकात्रयमेव च। शचीपतेः पदं विद्धि प्राप्स्यसि त्वं न संशयः॥ ६४॥
आगतस्तत्क्षणाद्देवः सुरैः सर्वैः समन्वितः। ऐरावतं समारूढो नीतोऽसौ शक्रमंदिरम्।
शक्रः प्रबोधितस्तेन गुरुणा भावितात्मना॥ ६५॥
घटिकात्रितयं यावत्तावत्कालं पुरंदर। निजासनेऽपि संस्थाप्यः कितवोऽपि ममाज्ञया॥ ६६॥
गुरोर्वचनमाकर्ण्य कृत्वा शिरसि तत्क्षणात्। गतोऽन्यत्रैव शक्रोऽसौ कितवो हि प्रवेशितः॥
भवनं देवराजस्य नानाश्चर्यसमन्वितम्॥ ६७॥
शक्रासनेऽभिषिक्तोऽसौ राज्यं प्राप्तः शतक्रतोः। शंभोर्गंधप्रदानाच्च पुष्पतांबूलसंयुतम्॥ ६८॥
किं पुनः श्रद्धया युक्ताः शिवाय परमात्मने। अर्पयंति सदा भक्त्या गंधपुष्पादिकं महत्॥ ६९॥
शिवसायुज्यमायाताः शिवसेनासमन्विताः। प्राप्नुवंति महामोदं शक्रो ह्येषां च किंकरः॥ ७०॥

वह **कितव (जुआरी)** जब मृत्यु को प्राप्त हुआ तो यम के दूत उसे यमपुरी ले गये। सभी लोकों को भय देने वाले यमराज जी ने उस पापी धूर्त से कहा—हे धूर्त तुम विशाल नरक में डालने योग्य हो इस प्रकार धर्मराज के वचन को सुनकर उस कितव ने कहा हे भगवन् मैंने अनेक पाप कृत्य किया है किन्तु आप यह भी विचार कीजिए कि क्या मैंने कोई पुण्य भी किया है? यह सुनकर **भगवान् चित्रगुप्त ने उस कितव से कहा—पृथ्वी पर गिरते समय जो गन्ध पुष्प कीचड़ में गिरा था उसे तुमने उठाकर भगवान् शिव के उपर चढ़ा दिया। उस सुकृत के फल के कारण तुम ३ घटी के लिये इन्द्र का उत्तम पद प्राप्त करोगे, इसमें संशय नहीं है।** इसके बाद तत्क्षण सभी देवता वहाँ आ गये ऐरावत पर बैठाकर उसे इन्द्र के भवन में ले गये। भविष्य को जानने वाले **देवगुरू बृहस्पति ने इन्द्र से कहा—हे इन्द्र तुम ३ घटी के लिए इस कितव को इन्द्र के आसन पर बैठने दो, यह मेरी आज्ञा है** । उसी समय गुरू की आज्ञा मानकर इन्द्र ने अपना आसन छोड़ दिया और **वह कितव ३ घटी के लिए इन्द्र बन गया।** जिस पद को इन्द्र ने सौ अश्वमेध यज्ञ करके प्राप्त किया था। उस पद को प्राप्तकर तथा इन्द्र के भवन में बहुमूल्य वस्तु देखकर वह कितव आश्चर्य में पड़ गया। उस कितव को यह पद केवल भगवान् शिव को गन्ध पुष्प प्रदान करने से मिल गया। यदि श्रद्धा भाव से शिव की पूजा की जाय तथा उन्हें फूल, गन्ध ताम्बूल आदि अर्पित किया जाय तो शिवगणों के साथ शिव का सामीप्य प्राप्त होता है। जिस प्रकार इस कितव ने महान पद को प्राप्त किया है॥ ६०—७०॥

☞ जिस इन्द्र के पद को मनुष्य १०० अश्वमेध यज्ञ को करके प्राप्त करता है। उसे भगवान् चित्रगुप्त की कृपा से कितव [जुआरी] शीघ्र पा गया।

शिवपूजारतानां च यत्सुखं शांतचेतसाम्। ब्रह्मशक्रादिकानां च तत्सुखं दुर्लभं महत्॥ ७१॥
वराकास्ते न जानंति मूढा विषयलोलुपाः। वंदनीयो महादेवो ह्यर्चनीयः सदाशिवः॥ ७२॥
पूजनीयो महादेवः प्राणिभिस्तत्त्ववेदिभिः। तस्मादिंद्रत्वमगमत्कितवो घटिकात्रयम्॥ ७३॥
पुरोधसाभिषिक्तोऽसौ पुरंदरपदे स्थितः। तदानीं नारदेनोक्तः कितवोऽसौ महायशाः॥ ७४॥
इन्द्राणीमानयस्त्वेति यथा राज्यं सुशोभितम्। ततः प्रहस्य चोवाच कितवः शिववल्लभः॥ ७५॥
इन्द्राण्या नास्ति मे कार्यं न वाच्यं ते महामते। एवमुक्त्वाथ कितवः प्रदातुमुपचक्रमे॥ ७६॥
ऐरावतमगस्त्याय प्रददौ शिववल्लभः। विश्वामित्राय कितवो ददौ हयमुदारधीः॥ ७७॥

उच्चैः श्रवससंज्ञं च कामधेनु महायशाः। ददौ वशिष्ठाय तदा चिंतामणिं महाप्रभम्॥७८॥
गालवाय महातेजास्तदा कल्पतरुं च सः। कौंडिन्याय महाभागः कितवोपि गृहं तदा॥७९॥
एवमादीन्यनेकानि रत्नानि विविधानि च। ददावृषिभ्यो मुदितः शिवप्रीत्यर्थमेव च॥८०॥

शिव की पूजा में तल्लीन रहने वाले शान्तचित्त व्यक्ति को जो सुख मिलता है, वह सुख ब्रह्मा, इन्द्र आदि को भी प्राप्त नहीं होता है। भोग विषयों में संलिप्त रहने वाला मूर्ख व्यक्ति भगवान् शिव की महिमा को नहीं जानता है। भगवान् शिव सदा वन्दनीय एवं पूजन करने योग्य हैं। तत्त्व के ज्ञाता प्राणियों के द्वारा भगवान् शिव पूजनीय हैं। इसी कारण वह धूर्त इन्द्र जैसे उत्तम पद को ३ घटी (७२ मिनट) के लिए प्राप्त किया। नारद ने उस कितव से कहा—आप इन्द्राणी के साथ इस पद (इन्द्र के पद) पर सुशोभित होवें। तब वह शिव प्रिय कितव हंसकर बोला—हे महामते इन्द्राणी से मेरा कोई कार्य नहीं है। ऐसा कहकर उस कितव ने दान देना प्रारम्भ कर दिया। शिवप्रिय एवं उदार बुद्धि वाले **अत्यन्त भाग्यशाली** कितव ने **भगवान् शिव की प्रसन्नता के लिए** ऐरावतहाथी **अगस्त ऋषि को,** उच्चैश्रवाघोड़ा **विश्वामित्र को,** कामधेनुगाय **महर्षि वशिष्ट को,** चिन्तामणिरत्न **गालव ऋषि को,** कल्पतरु **कौण्डिल्य ऋषि** को **तथा** वहाँ स्थित **अनेक रत्न** प्रसन्न होकर **अनेक ऋषियों** को दे दिया॥७१—८०॥

घटिकात्रितयं यावत्तावत्कालं ददौ प्रभुः। घटिकात्रितयादूध्व पूर्वस्वामी समागतः॥८१॥
पुरंदरोऽमरावत्यामुपविश्य निजासने। ऋषिभिः संस्तुतश्चैव शच्या सह तदाऽभत्॥८२॥
शचीमुवाच दुर्मेधाः कितवेनासि भामिनि। भुक्ता ह्यस्यैव कथय याथातथ्येन शोभने॥८३॥
तदा प्रहस्य चोवाच पुरंदरमकल्मषा। आत्मौपम्येन सर्वत्र पश्यसि त्वं पुरंदर॥८४॥

वह कितव ३ घटी तक दान देता ही रहा ३ घटी समाप्त होने पर उस पुरी के स्वामी इन्द्र वहाँ आ गये। उस अमरावती पुरी में **ऋषियों के द्वारा वन्दनीय इन्द्राणी के साथ अपने स्थान पर (सिंहासन पर) बैठे।** इन्द्र शची (इन्द्राणी) से बोले—तुम उस दुष्ट बुद्धिवाले कितव की स्त्री थी, उसने तुम्हें भोगा ही होगा वह प्रकरण तुम बताओ। इस पर हंसते हुए इन्द्राणी-इन्द्र से बोलीं—हे इन्द्र आप अपने ही समान सबको देखते हैं॥८१—८४॥

असौ महात्मा कितवस्वरूपी शिवप्रसादात्परमार्थविज्ञः।
वै राग्ययुक्तो हि महानुभावो येनापि सर्वं परमं प्रपन्नम्॥८५॥
राज्यादिकं मोहमयं च पाशं त्यक्त्वा परेभ्यो विजयी स जातः॥८६॥

वचो निशम्य देवेश इंद्राण्याः स पुरंदरः। व्रीडायुक्तोऽभवत्तूष्णीमिंद्रासनगतस्तदा॥८७॥
बृहस्पतिमुवाचेदं वाक्यं वाक्यविदां वरः। ऐरावतो न दृश्येत तथैवोच्चैःश्रवा हयः॥८८॥
पारिजातादयः सर्वे पदार्थाः केन वा हृताः। ततो गुरुरुवाचेदं कितवेन कृतं महत्॥८९॥
ऋषिभ्यो दत्त मद्यैव यावत्सत्ता हि तस्य वै। स्वसत्तायां महत्यां च स्वसत्ता ये भवंति च॥९०॥
अप्रमत्ताश्च ये नित्यं शिवध्यानपरायणाः। ते प्रियाः शंकरस्यैव हित्वा कर्मफलानि वै।
केवलं ज्ञानमाश्रित्य ते यांति परमं पदम्॥९१॥

एतच्छ्रुत्वा वचनं तस्य चेंद्रा बृहस्पतेर्वाक्यमिदं बभाषे।
प्रायो यमो वक्ष्यति सर्वमेतत्समृद्धये ह्यात्मनश्चैव शक्रः॥९२॥
तथेपि मत्वा गुरुणा सहैव राजा सुराणां सहसा जगाम।
स्वकार्यकामो हि तथा पुरंदरो ययौ पुरीं संयमिनीं तदानीम्॥९३॥

यमेन पूज्यमानो हि शक्रो वाक्यमुवाच ह। त्वया दत्तं मम पदं कितवाय दुरात्मने॥ ९४॥
अनेनैतत्कृतं कर्म्म जुगुप्सितं महत्तरम्। मदीयानि च रत्नानि यानि सर्वाण्यनेन वै॥
एभ्य एभ्यः प्रदत्तानि धर्म्म जानीहि तत्त्वतः॥ ९५॥
त्वं धर्मनामासि कथं कितवाय प्रदत्तवान्। मम राज्यविनाशाय कृतमस्ति त्वयाऽधुना॥ ९६॥
आनयस्व महाभाग गजादीनि च सत्वरम्। अन्यानि चैव रत्नानि दत्तानि च यतस्ततः॥ ९७॥

शिव की कृपा से वह कितव महात्मा स्वरूप, परमार्थ में विज्ञ तथा महावैरागी है। इसी कारण इसने इन्द्र के परम पद को प्राप्त किया। राज्य आदि के मोह युक्त बन्धन को त्याग कर, वह दूसरे पर विजय प्राप्त करने वाला है। इस बात को इन्द्राणी के मुख से सुन इन्द्र लज्जित होकर इन्द्रासन पर बैठे। इन्द्र ने समस्त विद्याओं के ज्ञाता एवं श्रेष्ठ, बृहस्पति जी से पूछा—हे प्रभो! अमरावती में ऐरावत हाथी, उच्चैश्रवा घोड़ा, पारिजात आदि सभी पदार्थ दिखाई नहीं देता क्या किसी ने चुरा लिया है? गुरु बृहस्पति ने कहा हे! इन्द्र जब तक वह कितव सत्ता में था, तबतक उसने अमरावती के समस्त वस्तुओं को ऋषियों को दे दिया। जो व्यक्ति अपनी महती सत्ता के होने पर भी प्रमादी नहीं होता है तथा नित्य शिव जी के ध्यान में परायण रहता है। वह कर्म के फल को त्यागकर शिवजी का परम भक्त हो जाता है तथा कर्म के अपेक्षा ज्ञान का आश्रय लेकर उस परम पद को प्राप्त करता है। इस प्रकार वह बृहस्पति के वचन को सुनकर इन्द्र बोले अपने सम्पत्ति के विषय में अभी मैं चलकर यमराज से पूछुँगा। ऐसा कहकर गुरू के साथ देवराज इन्द्र यमराज के पास चल दिये। **यमराज के द्वारा पूजन किये जाने के बाद इन्द्र ने इस प्रकार कहा**—जिस कितव को आपने इन्द्र के पद को दे दिया। उस कितव ने मेरे समस्त वस्तुओं को धर्मतत्त्व के ज्ञाताओं को दान देकर अत्यन्त निन्दित कार्य किया है। आप तो धर्म के ज्ञाता हैं, इस कितव को यह राज्य कैसे दे दिया? आपने इस समय मेरे राज्य को नष्ट कर दिया। जहाँ-जहाँ उस कितव ने मेरे हाथी, घोड़ा एवं समस्त रत्नों को दिया है उसे ले आइये॥ ८५—९७॥

निशम्य वाक्यं शक्रस्य यमो वचनमब्रवीत्। कितवं च रूषाविष्टः किं त्वया पापिना कृतम्॥ ९८ ॥
भोगार्थं चैव यद्दत्तं शक्रराज्यं त्वयाऽधुना। प्रदत्तं च द्विजातिभ्यो ह्यन्यथा वै कृतं महत्॥ ९९ ॥
अकार्यं वै त्वया मूढ परद्रव्यापहारणम्। तेन पापेन महता निरयं प्रतिगच्छसि॥ १००॥
यमस्य वचनं श्रुत्वा कितवो वाक्यमब्रवीत्। अहं निरयगामी च नात्र कार्या विचारणा॥ १०१॥
यावत्स्वता मम विभो जाता शक्रासने तथा। तावद्दत्तं हि यत्किंचिद्द्विजेभ्यो हि यथातथम्॥ १०२॥

इन्द्र के इस बात को सुनकर यमराज ने कितव पर क्रोधित होकर कहा—हे कितव तुमने बहुत बड़ा पाप किया है, जिस इन्द्र के राज्य को तुम्हें भोगने हेतु दिया गया था। तुमने उस अमरावती के समस्त बहुमूल्य वस्तुओं का दान ब्राह्मणों को देकर अनुचित कार्य किया। तुमने दूसरे के धन को दान करके अपहरण का कार्य किया है, इसलिए इस महापाप के कारण तुम नरकगामी होगे। यमराज के वचन को सुनकर वह कितव बोला, यद्यपि मैं नरकगामी हूँ, इसमें कोई सन्देह नहीं है किन्तु जब तक **मैं इन्द्र के आसन पर बैठा था वहाँ की सत्ता मेरे हाथ में थी इसलिए मैंने वहाँ के धन को ब्राह्मणों में बाँट दिया।**

यम उवाच—

दानं प्रशस्तं भूम्यां च दृश्यते कर्म्मणः फलम्। स्वर्गे दानं न दातव्यं केनचित्कस्यचित्क्वचित्॥
तस्माद्दंड्योऽसि रे मूढ अशास्त्रीयं कृतं त्वया॥ १०३॥
गुरुरात्मवतां शास्ता राजा शास्ता दुरात्मनाम्। सर्वेषां पापशीलानां शास्ताऽहं नात्र संशयः॥ १०४॥

एवं निर्भर्त्सयित्वा तं कितवं धर्मराट्स्वयम्। उवाच चित्रगुप्तं च नरके पच्यतामयम्॥
तदा प्रहस्य चोवाच चित्रगुप्तो यमं प्रति॥ १०५॥
कथं निरयगामित्वं कितवस्य भविष्यति। येन दत्तो ह्यगस्त्याय गज ऐरावतो महान्॥ १०६॥
तथाश्वो ह्यब्धिसंभूतो विश्वामित्राय धीमते। गालवाय भद्रं ते चिंतामणिर्महाप्रभः॥ १०७॥
एवमादीनि रत्नानि दत्तानि कितवेन हि। तेन कर्मविपाकेन पूजनीयो जगत्रये॥ १०८॥
शिवमुद्दिश्य यद्दत्तं स्वर्गे मर्त्ये च यैर्नरैः। तत्सर्वं त्वक्षयं विद्यान्निश्छिद्रं कर्म चोच्यते॥
तस्मान्नरकगामित्वं कितवस्य न विद्यते॥ १०९॥

यमराज बोले—दान इत्यादि मृत्युलोक के उत्तमकृत्य हैं जिसका प्रतिफल यहाँ प्राप्त होता है। स्वर्ग में केवल भोग-भोगना होता है, दान इत्यादि यहाँ के कृत्य नहीं हैं। हे मूर्ख! तूने शास्त्र विरूद्ध दण्डनीय कार्य किया है इसलिए इसका दण्ड तुम्हें भोगना ही होगा। अपने आत्म तत्व के द्वारा गुरु शासित होता है, गुरु-राजा को शासित करता है तथा मैं सभी पापाचार करने वालों पर यहाँ शासन करता हूँ इसमें सन्देह नहीं है। **इस प्रकार धर्मराज उस कितव की निन्दा करते हुए भगवान् चित्रगुप्त से बोले—हे! चित्रगुप्त इसे नरक में भेज दीजिए।**

धर्मराज का वचन सुनकर भगवान् चित्रगुप्त ने हंसते हुए उनसे कहा—यह कितव कैसे नरक में जायेगा इसने तो ऋषि अगस्त्य को ऐरावत हाथी, समुद्र से उत्पन्न उच्चैश्रवा घोड़ा महर्षि विश्वामित्र को, महान रत्न चिन्तामणि गालव को तथा अनेक रत्न पूज्यनीय ऋषियों को दे दिया है। इस कर्म के फल से यह कितव तीनों लोकों में पूजनीय हो गया है। **शिव के निमित्त जो व्यक्ति स्वर्ग या मृत्युलोक में दान देता है, वह दोष रहित होकर अक्षय होता है। इसलिए यह कितव नरक जाने योग्य नहीं है॥ ९८—१०९॥**

**यानियानि च पापानि कितवस्य महात्मनः। भस्मीभूतानि सर्वाणि जातानि स्मरणाच्च वै॥ ११०॥
शंभोः प्रसादात्सर्वाणि सुकृतानि च तत्क्षणात्। तद्वचश्चित्रगुप्तस्य निशमय प्रेतराट् स्वयम्॥ १११॥
प्रहस्यावाङ्मुखो भूत्वा इदमाह शतक्रतुम्। त्वं हि राजा सुरेंद्राणां स्थविरो राज्यलंपटः॥ ११२॥
अश्वमेधशतेनैव एकं जन्मार्जितं कृतम्। त्वया नास्त्यत्र संदेहोह्यर्जितं तेन वै महत्॥ ११३॥
प्रार्थयित्वा ह्यगस्त्यादीन्मुनीन्सर्वान्विशेषतः।
अर्थेन प्रणिपातेन त्वया लभ्यानि तानि च। गजादिकानि रत्नानि येन त्वं च सुखी त्वरन्॥ ११४॥
तथेति मत्वा वचनं पुरंदरो गतः पुरीं स्वामविवेकदृष्टिः।
अभ्यर्थयामास विनम्रकंधरश्चर्षीस्ततो लब्धवान्पारिजातम्॥ ११५॥
अनेनैव प्रकारेण लब्धराज्यः पुरंदरः। जातस्तदामरावत्यां राजा सह महात्मभिः॥ ११६॥
कितवस्य पुनर्जन्म दत्तं वैवस्वतेन हि। किंचित्कर्मविपाकेन विरोचनसुतोऽभवत्॥ ११७॥
सुरुचिर्जननी तस्य कितवस्याभवत्तदा। विरोचनस्य महिषी दुहिता वृषपर्वणः।
तस्थौ जठरमास्थाय तस्याः सोऽपि महात्मनः॥ ११८॥
तदाप्रभृति तस्यैव प्रह्लादस्यात्मजात्स वै। सुरुचेश्च तथाप्यासीद्धर्मे दाने महामतिः॥ ११९॥
तेनैव जठरस्थेन कृता मतिरनुत्तमा। कितवेन कृता विप्रा दुर्लभा या मनीषिणाम्॥ १२०॥
एकदा वै तदा शक्रो ययौ वैरोचनं प्रति। हंतुकामो हि दैत्येंद्रं विप्रो भूत्वाऽथ याचकः॥ १२१॥**

इस महात्मा कितव ने जो-जो पाप किया था, उसके समस्त पाप भगवान् शिव के स्मरण से भस्म हो गये। शिवजी की प्रसन्नता से उसका समस्त पाप-पुण्य में परिवर्तित हो गया है। इस प्रकार **चित्रगुप्त जी के बात को**

सुनकर—'धर्मराज नीचे मुख करके' इन्द्र से बोले—आप देवताओं के राजा हैं तथा इस राज्य के लोभी हैं, एक जन्म में आपने सौ अश्वमेध यज्ञ करके इस महत्वपूर्ण स्थान को प्राप्त किया, इसमें सन्देह नहीं है। आप विनम्रता पूर्वक अथवा धन के द्वारा उन सभी महर्षियों से निवेदन कर अपनी समस्त वस्तुएं प्राप्त करें। इसे पाकर आप सुखी होंगे। इस वचन को मान कर इन्द्र ने गुरु बृहस्पति के साथ अपने नगरी में जाकर उन ऋषियों से विनम्रतापूर्वक याचना करके पारिजात आदि समस्त रत्न प्राप्त किया। इस प्रकार इन्द्र ने पुनः अपने राज्य को प्राप्त किया। **उस कितव को वैवस्वत (यमराज) द्वारा पुनः जन्म दिया गया।** कुछ पुण्य कर्म के फल के कारण वह इस पृथ्वी पर विरोचन के पुत्र के रूप में जन्म लिया। उस कितव के माता का नाम सुरुचि था वह विरोचन की पत्नी तथा वृषपर्व की पुत्री थी। जिस समय वह कितव माता के गर्भ में आया उसी समय से प्रह्लाद के पुत्र विरोचन एवं उनकी पत्नी सुरूचि का मन दान एवं धर्म में लगने लगा। गर्भ में आते ही उसने अपने माता-पिता की बुद्धि उत्तम कर दी यह बड़े-बड़े मनीषियों के लिए भी दुर्लभ है। एक बार दैत्यराज विरोचन को मारने की इच्छा से **इन्द्र ब्राह्मण का वेष बनाकर याचक की भाँति विरोचन के घर गये**॥ ११०—१२१॥

विरोचनगृहं प्राप्त इंद्रो वाक्यमुवाच ह। स्थविरो ब्राह्मणो भूत्वा देहीति मम सुव्रत।
मनस्वी त्वं च दैत्येंद्र दाता च भुवनत्रये॥ १२२॥
तव विप्रा महाभाग चरितं परमाद्भुतम्। वर्णयन्ति समा जेषु स्थित्वा कीर्तिं च निर्मलाम्।
याचकोऽहं च दैत्येंद्र दातुमर्हसि सुव्रत॥ १२३॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दैत्येंद्रो वाक्यमब्रवीत्। किं दातव्यं तव विभो वद शीघ्रं ममाधुना॥ १२४॥
इंद्रो हि विप्ररूपेण विरोचनमुवाच ह। याचयामि च दैत्येंद्र यदहं परिभावितः॥ १२५॥
आत्म प्रीत्या च दातव्यं मम नास्त्यत्र संशयः। उवाच प्रहसन्वाक्यं प्रह्लादस्यात्मजोऽसुरः॥ १२६॥
ददाम्यात्मशिरो विप्र यदि कामयसेऽधुना। इदं राज्यमनायासमियं श्रीर्नान्यगामिनी।
अहं समर्पयिष्यामि तव नास्त्यत्र संशयः॥ १२७॥
इत्युक्तस्तेन दैत्येन विमृश्य च तदा हरिः। उवाच देहि मे स्वीयं शिरो मुकुटसेवितम्॥ १२८॥
एवमुक्ते तु वचने शक्रेण द्विजरूपिणा। त्वरन्महेंद्राय तदा शिर उत्कृत्त्य वै मुदा।
स्वकरेण ददौ तस्मै प्रह्लादस्यात्मजोऽसुरः॥ १२९॥
प्रह्लादेन पुरा यस्तु कृतो धर्म्मः सुदुष्करः। केवलां भक्तिमाश्रित्य विष्णोस्तत्परचेतसा॥ १३०॥
दानात्परतरं चान्यत्क्वचिद्वस्तु न विद्यते। तद्दानं च महापुण्यमार्तेभ्यो यत्प्रदीयते॥ १३१॥
स्वशक्त्या यच्च किंचिच्च तदानंत्याय कल्पते। दानात्परतरं नान्यत्रिषु लोकेषु विद्यते॥ १३२॥

विरोचन के घर पहुँचकर इन्द्र ने कहा—मुझ ब्राह्मण को अपने रुचि के अनुसार दान चाहिए। हे! दैत्यराज आप मनस्वी (बुद्धिमान) एवं तीनों लोकों में महान दानी हैं। हे! ब्राह्मण आपका चरित अत्यन्त उत्तम है। आपके निर्मल यश को समाज में लोग वर्णन करते हैं। मैं याचक हूँ हे! दैत्यराज आप दान देने में सक्षम हैं, उनके वचन को सुनकर दैत्यराज विरोचन ने कहा—हे! ब्राह्मण आप शीघ्र बतायें कि इस समय आप को मैं क्या दूँ। ब्राह्मण रूपधारी इन्द्र ने विरोचन से कहा—हे! दैत्यराज मैं आप की प्रिय वस्तु की याचना करता हूँ। मुझे मालूम है कि आप अपने प्रिय वस्तु को भी दान देने में सक्षम हैं, इसमें संशय नहीं है। ब्राह्मण रूपी इन्द्र के बात को सुनकर प्रह्लाद के पुत्र विरोचन ने हंसते हुए कहा—हे! ब्राह्मण यदि आप इस समय मेरे सिर को भी मागेंगे तो इसे मैं दे दूंगा। यह राज्य अनायास ही प्राप्त है। धन दूसरे लोक में नहीं जायेगी यदि आप मागेंगे तो मैं सब कुछ दे दूंगा इसमें

संशय नहीं है। इस प्रकार विरोचन के कहने पर इन्द्र सोचकर बोले—हे ! दैत्यराज आप अपने मुकुट से युक्त सिर मुझे दे दीजिए। **ब्राह्मण रूपधारी इन्द्र के ऐसा कहने पर प्रसन्न होकर दैत्यराज विरोचन शीघ्र अपने सिर को काटकर उनको दे दिया।** प्रह्लाद के द्वारा जो कठिन धर्म किया गया है भगवान् विष्णु की विशुद्ध मन से केवल भक्ति का सहारा लेकर किया गया। किन्तु विरोचन दान देकर समाज में पूज्य हो गया क्योंकि दान के अलावा अन्य कोई वस्तु इस संसार में नहीं है। यदि दान दु:खी व्यक्ति को दिया जाय तो वह दान अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। अपनी शक्ति के अनुसार दिया दान कल्प तक क्षय नहीं होता। इस तीनों लोकों में दान के समान अन्य कुछ भी नहीं है॥ १२२—१३२॥

सात्त्विकं राजसं चैव तामसं च प्रकीर्तितम्। तथा कृतमनेनैव दानं सात्त्विकलक्षणम्॥ १३३॥
शिर उत्कृत्त्य चेंद्राय प्रदत्तं विप्ररूपिणे। किरीटः पतितस्तत्र मणयो हि महाप्रभाः॥ १३४॥
ऐकपद्येन पतितास्ते जाता मंडलाय वै। दैत्यानां च नरेंद्राणां पन्नगानां तथैव च॥ १३५॥
विरोचनस्य तद्दानं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्। गायंत्यद्यापि कवयो दैत्येंद्रस्य महात्मनः॥ १३६॥
विरोचनस्य पुत्रोऽभूत्कितवोऽसौ महाप्रभः। मृते पितरि जातोऽसौ माता तस्य पतिव्रता॥ १३७॥
कलेवरं च तत्याज पतिलोकं गता ततः। भार्गवेणाभिषिक्तोऽसौ जनकस्य निजासने॥ १३८॥
नाम्ना बलिरिति ख्यातो बभूव च महायशाः। तेन सर्वे सुरगणास्त्रासिताः सुमहाबलाः॥ १३९॥

यह दान सात्विक, राजसिक एवं तामसिक तीन प्रकार का है, विरोचन का दान, सात्विक दान है। वह ब्राह्मणरूपधारी इन्द्र को अपना शिर काटकर दे दिया। उसके मुकुट की महातेजवान मणियाँ वहाँ गिर गयीं चक्कर काटकर वह वही गिर गये। जो दान विरोचन ने दिया वह दान दैत्य, राजाओं और सर्पों में नहीं देखा गया इसलिए विरोचन का दान तीनों लोकों में प्रसिद्ध हो गया। उस महात्मा दैत्यराज के दान की महत्ता आज भी कवि लोग करते हैं। **वह कितव विरोचन के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ।** पुत्र के जन्म के बाद उसकी माता सुरुचि अपना शरीर त्याग कर पति लोक चली गयीं। **शुक्राचार्य जी ने उस विरोचन के आसन पर बालक का अभिषेक किया उसका नाम 'बलि' रखा जो महान यशस्वी हुआ। उस 'बलि' के दान द्वारा सभी देवता अत्यन्त भयभीत हुए**॥ १३२—१३९॥

संदर्भ—स्कन्दपुराण, माहेश्वर खण्ड, अध्याय १८।

× × ×

श्रीकृष्ण ने सत्यभामा को बताया कि कैकयी के हठ के कारण, राम के बनवास से दशरथ की मृत्यु, भगवान् चित्रगुप्त का दशरथ को दण्ड था

सौराष्ट्र नगर में भिक्षु नाम का एक ब्राह्मण था, उसके पत्नी का नाम कलहा था। वह अपने पति भिक्षु से द्वेष रखती थी, मीठा अन्न नहीं देती थी, निरन्तर झगड़ा करती थी एवं पाक करने के पात्र (बटुली-कड़ाही) में भोजन करती थी। भिक्षु ने बहुत समझाया जब वह नहीं मानी तो उसने दूसरा विवाह करने का निर्णय लिया, इससे क्रुद्ध होकर कलहा ने आत्मघात (आत्महत्या) कर लिया।

तदन्तर यमदूत उसे पीटते हुये यमलोक ले गये, यमराज ने चित्रगुप्तजी से कहा आप देखिये कि इसने क्या शुभाऽशुभ कर्म किया है, ये अपने कर्मों का भोग करे। तब चित्रगुप्त बोले—इसने कोई शुभ कर्म नहीं किया है। इसने पति को मीठा अन्न (खीर इत्यादि) नहीं दिया, इस कारण **ये अपना मल खाने वाली बगुली बने।** पति से निरन्तर झगड़ा करती थी, इस कारण **ये दूसरे का मल खाने वाली सूअर बने।** यह पाक के पात्र में भोजन करती थी, इस कारण **ये अपने बच्चों को खाने वाली बिल्ला बने।** इसने अपने पति से द्वेष करके आत्महत्या की है, इस कारण **ये दीर्घकाल तक प्रेत योनि में भटकती रहे।** पहले ये प्रेतयोनि का भोग करे तत्पश्चात् इससे मुक्त होने पर, ये अन्य तीन योनियों का भोग करे।

कलहा प्रेत बनकर ५०० वर्ष तक भटकती रही। एक दिन राक्षसी रूप में विद्यमान कलहा कार्तिक व्रत करने वाले धर्मदत्त नामक ब्राह्मण के सामने पड़ गयी। धर्मदत्त उसके वीभत्स स्वरूप को देख कर काँपने लगे, तदन्तर उन्होंने **ॐ नमो नारायणाय** के मंत्र से अभिमंत्रित करके जल उसके ऊपर फेका। उस जल के स्पर्श होते ही कलहा अपने पूर्व रूप में आकर धर्मदत्त को चित्रगुप्तजी के दण्ड को बतायी, उसने कहा हे विप्र अभी मुझे तीन निकृष्ट योनियों में जन्म लेकर चित्रगुप्तजी के दण्ड को भोगना है, इससे मुझे मुक्त करें।

चित्रगुप्तजी के दण्ड को जानने के बाद भी धर्मदत्त ने अपना आधा पुण्य क्षय करके विष्णु का यज्ञ किया जिससे कलहा मुक्त हो गई। कलहा विष्णुलोक को चली गयी, कुछ दिनों के बाद आयु को पूर्ण करके धर्मदत्त भी विष्णुलोक को चले गये। [विष्णु, ब्रह्मा, शिव तथा चित्रगुप्तजी का आराधक कभी भी नरक नहीं भोगता है।]

धर्मदत्त ने भगवान् चित्रगुप्त के न्याय में विघ्न डाला। जब पुण्यों का क्षय हुआ तो कलहा एवं धर्मदत्त को पुनः जन्म लेना पड़ा, **यमलोक द्वारा पुनः जन्म देकर कलहा ब्राह्मणी एवं धर्मदत्त ब्राह्मण को, "एक वर्ण नीचे करके" कैकयी एवं दशरथ बनाया गया। यह स्पष्ट करता है कि भगवान् चित्रगुप्त के बनाये नियमों के अनुसार ब्राह्मण सहित सभी मनुष्य उच्च अथवा निम्न योनि में भेजे जाते हैं। भगवान् चित्रगुप्त द्वारा बनाये गये नियमों को आप पीछे पढ़ चुके हैं।**

यह प्रसंग **पद्मपुराण के, उत्तर खण्ड के, कार्तिक माहात्म्य** का अंश है। जिसे देवकी नन्दन कृष्ण ने सत्यभामा को चित्रगुप्त के शक्तिशाली स्वरूप से अवगत कराया था। इसे **कृष्ण-सत्यभामा संवाद** कहते हैं। यह प्रकरण वाल्मीकि द्वारा रचित **आनन्दरामायण** में भी विद्यमान है।

यमलोक द्वारा पहले दशरथ को पुत्र वियोग दिया गया, पुनः पुत्र देकर, पुनः पुत्र वियोग दिया गया तथा कलहा रूपी कैकयी से धर्मदत्त रूपी दशरथ का प्राण ले लिया गया। दशरथ के पुत्र एवं पुत्रवधू राम, सीता तथा लक्ष्मण को वन-वन भटकना पड़ा, भरत, शत्रुघ्न एवं उनकी पत्नियों ने भी सुख नहीं भोगा। सीताजी भूमि में समा गईं,

लक्ष्मण ने दुःखी होकर सरयू तट पर प्राण त्याग दिया, राम ने दुःखी होकर जल समाधि ले ली। इसका वर्णन **वाल्मीकीयरामायण** में यथावत दिया हुआ है।

संदर्भित श्लोक—भगवान् चित्रगुप्त द्वारा कलहा नामक ब्राह्मणी को दण्डित करके अपना विष्ठा खाने वाली बगुली, दूसरे की विष्ठा खाने सूअर, अपने बच्चों को खाने वाली बिल्ला तथा प्रेतयोनि में दीर्घकाल तक रहने का दण्ड देना **[अध्याय-१०६ श्लोक २०-२५]**, धर्मदत्त का दशरथ तथा कलहा का कैकयी के रूप में उत्पन्न होना **[अध्याय-१०७ श्लोक २५-२६]**।

कृष्ण सत्यभामा संवाद इस प्रकार है—

[क्रमशः ....

कलहाचरितवर्णनम्–कृष्णसत्यभामासंवाद

पृथुरुवाच–

सेतिहासमिदं ब्रह्मन्! माहात्म्य कथितं मम। अत्याश्चर्यकरंसम्यक्तुलस्यास्तु श्रुतं महत्॥ १॥
यदूर्जव्रतिनः पुंसः फलं महदुदाहृतम्। तत्पुनर्ब्रूहि माहात्म्यं केन चीर्णमिदं कथम्॥ २॥

पृथु बोले—हे महाराज! आपने इतिहास सहित अति आश्चर्य करने वाला तुलसी का माहात्म्य और व्रत का वर्णन किया वह मैंने भली-भाँति श्रवण किया। कार्तिक व्रत करने वाले पुरुष का फल आपने कहा, अब फिर माहात्म्य कहिये और यह व्रत पहले किसने और कैसे किया वह मुझे सम्पूर्ण कथा बताइये॥ १-२॥

नारद उवाच–

आसित्सह्यद्रिविषये करवीरपुर पुरा। ब्राह्मणो धर्मवित्कश्चिद्धर्मदत्तेति विश्रुतः॥ ३॥
विष्णुव्रतकरः शश्वद्विष्णुपूजारतः सदा। द्वादशाक्षरविद्यायां जपनिष्ठोऽतिथिप्रियः॥ ४॥
काचित्कार्तिके मासि हरिजागरणाय सः। रात्र्यां तुर्यांशशेषायां जगाम हरिमन्दिरम्॥ ५॥
हरिपूजोपकरणान्प्रगृहा व्रजता तदा। तेन दृष्टा समायाता राक्षसी भीमदर्शना॥ ६॥

नारद बोले—सह्याचल पर्वत पर करबीरपुर नामक नगर में **धर्मज्ञ धर्मदत्त** नाम से प्रसिद्ध एक ब्राह्मण रहते थे। सदा वह विष्णु का व्रत करने वाला निरन्तर विष्णु-पूजा में तत्पर, द्वादशाक्षर मन्त्र (**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**) के जप में निष्ठावान् तथा अभ्यागतों के सेवक थे। एक समय वह कार्तिक महीने में पहर भर रात्रि रहते हरि जागरण के निमित्त हरि मन्दिर को गये। हरि के पूजन की सामग्री लेकर जाते उस ब्राह्मण ने आती हुई एक भयावनी राक्षसी को देखा॥ ३—६॥

वक्रदंष्ट्रा लोलजिह्वा निमग्ना रक्तलोचना। दिगम्बरा शुष्कमांसा लम्बोष्ठी घर्घरस्वना॥ ७॥
तां दृष्ट्वा भयवित्रस्तः कम्पितावयवस्तदा। पूजोपकरणैस्सर्वैः पयोभिश्चाहनद्भयात्॥ ८॥
संस्मृत्य यद्धरेर्नाम तुलसीयुक्तवारिणा। साहतापातकं तस्मात्तस्यास्सर्वमगात्क्षयम्॥ ९॥
अथ संस्मृत्य सा पूर्वजन्मकर्मविपाकजाम्। स्वां दशामब्रवीद्विप्रं दण्डवच्च प्रणम्य सा॥ १०॥

टेढ़ी दांत, चलायमानजीभ, भीतर को गड़े हुए लाल नेत्र और नंगी तथा रूखे मांस तथा लम्बे होठ एवं घर्घराहटयुक्त शब्द करने वाली एक राक्षसी को देखा। उसे देख वह भय से घबरा गये और उनके अङ्ग काँपने लगे। भय के मारे उस ब्राह्मण ने पूजा की सामग्री और पूजा के निमित्त लिये हुए जल से उस राक्षसी को मारा। हरि का स्मरण करके तुलसीयुक्त जल से मारने के कारण उस राक्षसी के सब पाप नष्ट हो गये। इसके बाद पूर्व जन्म के कर्मों के फल से उत्पन्न अपनी दशा का स्मरण कर ब्राह्मण को दण्डवत् प्रणाम करके वह बोली—॥ ७—१०॥

कलहोवाच–

पूर्वकर्मविपाकेन दशामेतां गतास्म्यहम्। तत्कथं तु पुनर्विप्र प्राप्नुयामुत्तमां गतिम्॥ ११॥

कलहा बोली—पूर्व कर्म के फल से मैं इस दशा को प्राप्त हुई हूँ। हे ब्राह्मण! मैं कैसे उत्तम गति को प्राप्त करूँ?॥ ११॥

नारद उवाच–

तां दृष्ट्वा प्रणतां सम्यग्वदामानां स्वकर्म तत्। अतीव विस्मितो विप्रस्तदा वचनमब्रवीत्॥ १२॥

नारद बोले—भली-भाँति प्रणाम करके अपने कर्म को कहती हुई कलहा को देखकर ब्राह्मण विस्मित होकर बोले—॥ १२॥

धर्मदत्त उवाच–

केन कर्मविपाकेन त्वं दशामीदृशीं गता। कुतस्त्या का च किं शीला तत्सर्वं कथयस्व मे॥ १३॥

धर्मदत्त बोले—किस कर्म के कारण तुम्हारी यह दशा हुई है तुम कहाँ की रहने वाली हो तुम्हारा शील क्या है सब कुछ मुझसे बताओ॥ १३॥

कलहोवाच–

सौराष्ट्रनगरे ब्रह्मन् भिक्षुनामाऽभवद् द्विजः। तस्याहं गृहिणी पूर्वं कलहाख्योऽतिनिष्ठुरा॥ १४॥
न किञ्चिन्मया भर्तुर्वचसापि शुभं कृतम्। नार्पितं तस्य मिष्ठान्नं भर्तुर्वुञ्चनशीलया॥ १५॥
कलहप्रियया नित्यं भयोद्विग्नमना यदा। परिणेतुं तदाऽन्यां तु पतिश्चक्रे मतिं मम॥ १६॥
ततो गरं समादाय प्राणांस्त्यक्त्वा मृत्युं गता। अथ बद्ध्वावध्यमानां मा निन्युर्यमकिङ्कराः॥ १७॥
यमश्च मां तदा दृष्ट्वा चित्रगुप्तमपृच्छत।

कलहा बोली—सौराष्ट्र नगर में भिक्षु नाम के एक ब्राह्मण थे। मैं उस ब्राह्मण की पत्नी थी, कलहा मेरा नाम था और मैं बहुत निष्ठुर थी। मैंने कभी वचन से भी पति का शुभ नहीं किया और कभी मीठा अन्न खाने को नहीं दिया। मैं सदा पति को धोखा देती रही। मुझ कलहा से जब ब्राह्मण उद्विग्न हो गये तब उन्होंने दूसरी स्त्री से विवाह करने का विचार किया, तब मैंने विष खाकर प्राण त्याग दिया। यम के दूत मुझे बाँधकर मारते हुए यमलोक ले गये। यमराज ने मुझे देखकर **चित्रगुप्त से पूछा**— ॥ १४—१७॥

यम उवाच–

अनया किं कृतं कर्म चित्रगुप्तविलोकय॥ १८॥
प्राप्नोत्वेषा कर्मफलं शुभं वा यदि वाऽशुभम्।

यमराज बोले—हे चित्रगुप्त! इसने क्या कर्म किया है—इसे देखिये। इसने जो भी शुभाऽशुभ कर्म किया हो, यह उसी का फल प्राप्त करे॥ १८१/२॥

कलहोवाच–

चित्रगुप्तस्तदा वाक्यं भर्त्सयन्मामुवाच स॥ १९॥

कलहा बोली—तब **चित्रगुप्त** मेरी भर्त्सना करते हुए बोले— ॥ १९॥

चित्रगुप्तउवाच–

अनया तु शुभं कर्म कृतं किंचिन्न विद्यते। मिष्ठान्नं भुञ्जमानेयं न भर्तरि तदार्पितम्॥ २०॥
अतश्च वल्गुनीयोन्यां स्वविष्ठादी च विष्ठतु। भर्तृद्वेषकरी ह्येषा नित्यं कलहकारिणी॥ २१॥
विष्ठादशीशूकरीयोनौ तस्मात्तिष्ठत्वियं हरे। पाकभाण्डे सदा भुक्ते चैका यतस्ततः॥ २२॥
तमादेषा विडाली तु स्वजातापत्यभक्षिणी। भर्त्तारमपि चोद्दिश्य ह्यात्मघातः कृतोऽनया॥ २३॥
तस्मात्प्रेतशरीरेपि तिष्ठत्वेषातिनिन्दिता। अतश्चैव मरौ देशे प्रापितव्या भटैस्तव॥ २४॥
तत्र प्रेतशरीरस्थं चिरं तिष्ठत्वियं ततः। ऊर्ध्वं योनित्रयं चैषा भुनक्त्वशुभकारिणी॥ २५॥

चित्रगुप्त बोले—इसने कोई भी शुभ कर्म नहीं किया है, स्वयं मीठे अन्न को खाती रही तथा पति को नहीं दिया। **इस कारण यह अपनी विष्ठा खाने वाली वल्गुली (बगुला) नामक पक्षी की योनि को प्राप्त करे।** इसने पति से सदा द्वेष और कलह किया है। **इस कारण यह दूसरे की विष्ठा खाने वाली शूकर (सूअर) की योनि को प्राप्त करे।** सदा पाक करने के पात्र अर्थात् कड़ाही और बटुली आदि में अकेली भोजन करती थी। **इस**

कारण अपने उत्पन्न हुए बच्चों को खाने वाली बिल्ले की योनि को प्राप्त करे। इसने पति के कारण विष खाकर आत्मघात किया है। **इस कारण यह अतिनिंदित प्रेत शरीर में स्थिर रहे।** हे धर्मराज! यह आपके दूतों द्वारा मरुस्थल में पहुँचाने योग्य है। वहाँ यह प्रेतयोनि में दीर्घकाल तक रहे, **पुनः अशुभ कर्म करने वाली यह कलहा इसी प्रकार अन्य तीन योनियों का भोग करे॥** २०—२५॥

कलहोउवाच–

साऽहं पञ्चशताब्दानि प्रेतदेहे स्थिता किल। क्षुत्तृड्भ्यां पीडिता नित्यं दुःखिता स्वेन कर्मणा॥ २६॥

कलहा बोली—तदनुसार मैं पाँच सौ वर्षों से प्रेतयोनि में क्षुधा-पिपासा से पीड़ित और अपने कर्म से सदा दुःखयुक्त होकर रह रही हूँ॥ २६॥

क्षुत्तृड्भ्यां पीडिताऽऽविश्य शरीरं वणिजं त्वहम्। आयाता दक्षिणं देशं कृष्णावेण्योश्च संगमम्॥ २७॥
तत्तीरं संश्रिता यावत्तावत्तस्य शरीरतः। शिवविष्णुगणैर्दूरमपकृष्टा बलादहम्॥ २८॥
ततः क्षुत्क्षामया हि त्वं गच्छन्दृष्टो द्विजोत्तम। त्वद्धस्ततुलसीनीर-संसर्गगत-पापया॥ २९॥
तत्कृपां कुरु विप्रेन्द्र कथं मुक्तिमवाप्नुयाम्। योनित्रयादग्रभवादस्माच्च प्रेतदेहतः॥ ३०॥

क्षुधा-पिपासा से पीड़ित मैं एक वैश्य के शरीर में प्रवेश करके दक्षिण दिशा में कृष्णा और वेणी इन दोनों नदियों के संगम पर आयी। जब उनके तट पर पहुँची, तभी शिव तथा विष्णुगणों ने मुझे उसके शरीर से दूर कर दिया। हे ब्राह्मणोत्तम! इसके बाद क्षुधा से दुखित मुझपर आपकी दृष्टि गई और आपके हाथ के तुलसीदल युक्त जल के संसर्ग से मेरे समस्त पाप दूर हो गये। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! मुझ पर कृपा करें, जिससे कि मैं आगे आने वाली तीन योनि तथा इस प्रेत योनि से मुक्ति पा जाऊँ॥ २७—३०॥

इत्थं निशम्य कलहावचनं द्विजाग्र्य सत्कर्मपाकभव-विस्मयःदुःखयुक्तः।
तद्ग्लानिदर्शनकुपाचलचित्तवृत्तिर्ध्यात्वा चिरं स वचनं निजगाद् दुःखात्॥ ३१॥

(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, कार्तिकमाहात्म्य, श्रीकृष्ण-सत्यभामा संवाद, अध्याय-१०६)

इस प्रकार कलहा के वचन को सुन करके पूर्व में किये गये उसके कर्म फल के कारण उसके ग्लानि को देखकर चलायमान चित्तवृत्ति वाले वह ब्राह्मण बहुत देर तक विचार करते हुये दुःख से यह वचन बोले—॥ ३१॥

अध्याय-१०७

धर्मदत्त उवाच–

विलयं यान्ति पापानि तीर्थदानव्रतादिभि। प्रेतदेहस्थितायास्ते तेषु नैवाधिकारिता॥ १॥
त्वद्ग्लानिदर्शनादस्मात्खिन्नं च मम मानसम्। नैव निर्वृतिमायाति त्वामनुद्धृत्य दुःखिताम्॥ २॥
पातकं च तवात्युग्रं योनित्रयविपाकदम्। नैवाऽल्पैः क्षीयते पुण्यैः प्रेतत्वं चातिगार्हितम्॥ ३॥
तस्मादाजन्मचरितं यन्मया कार्तिकव्रतम्। तत्पुण्यस्यादर्धभागेन सद्गतित्वमवाप्नुहि॥ ४॥
कार्तिकव्रतपुण्येन न साम्यं यान्ति सर्वथा। यज्ञदानानि तीर्थानि दततान्यपि यतो ध्रुवम्॥ ५॥

धर्मदत्त बोले—तीर्थ, दान तथा व्रत आदि से पाप दूर होते हैं, परन्तु प्रेत देह में स्थित तुम दुखिया का उन पर अधिकार नहीं है। तेरी ग्लानि को देखकर मेरा मन खेदयुक्त हो गया है और उद्धार किये बिना मेरा मन भी सुखी न होगा। तीन योनि को देने वाले तेरे पाप अतिशय उग्र हैं और अति निन्दित प्रेतयोनि भी थोड़े पुण्य से क्षीण न होगी। अतएव **मैंने जन्म से आज तक जो कार्तिक व्रत किया है उस पुण्य के आधे भाग से तुम उत्तम गति को प्राप्त होगी।** क्योंकि यज्ञ, दान, तीर्थ तथा व्रत के पुण्य से कार्तिक व्रत के पुण्य की समता नहीं प्राप्त हो सकती॥ १—५॥

नारद उवाच–

इत्युक्त्वा धर्मदत्तोऽसौ यावत्तामभ्यषेचयत्। तुलसीमिश्रिततोयेन श्रावयन् द्वादशाक्षरम्॥ ६॥
तावत्प्रेतत्वनिर्मुक्ता ज्वलदग्निशिखोपमा। दिव्यरूपधरा जाता लावण्येन यथेन्दिरा॥ ७॥
ततः सा दण्डवद्भूमौ प्रणनामाथ तं द्विजम्। उवाच सा तदा वाक्यं हर्षगद्गदभाषिणी॥ ८॥

नारद ने कहा—ऐसा कहकर जैसे ही धर्मदत्त ने उसे द्वादशाक्षर मंत्र [ॐ नमो भगवते वासुदेवाय] सुनाया और तुलसीदलों से मिश्रित जल उस पर छिड़का तत्काल ही वह प्रेत योनि से छूट गयी और जलती हुई अग्नि की ज्वाला के समान दिव्य रूप धारण कर लक्ष्मी के समान सुन्दरी हो गयी। तब उसने ब्राह्मण को दण्डवत् प्रणाम किया और हर्ष से गद्गद वाणी में बोली— ॥ ६—८ ॥

कलहोवाच–

त्वत्प्रसादाद् द्विजश्रेष्ठ निर्मुक्ता निरयादहम्। पापौघमज्जमानायास्त्वं नौर्भूतोऽसि मे ध्रुवम्॥ ९॥

कलहा बोली—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! मैं तुम्हारे प्रसाद से नरक से मुक्त हो गयी। पाप के प्रवाह में डूबी हुई मेरे लिये आप नौका हो गये॥ ९ ॥

नारद उवाच–

इत्थं सा वदती विप्रं ददर्शायान्तमम्बरात्। विमानं भास्वरैर्युक्तं विष्णुरूपधरैर्गणैः॥ १०॥
अथ सा तद्विमानाग्र्यं द्वाःस्थाभ्यामधिरोपिता। पुण्यशीलसुशीलाभ्यामप्सरोगणसेविता ॥ ११॥
तद्विमानं तदापश्यद्धर्मदत्तः सविस्मयम्। पपात् दण्डवद् भूमौ दृष्ट्वा तौ विष्णुरूपिणौ॥ १२॥
पुण्यशीलसुशीलौ च तमुत्थाप्यानतं द्विजम्। समभ्यनन्दयन् वाक्यमूचतुर्धर्मसंयुतम्॥ १३॥

नारद बोले—उस ब्राह्मण से ऐसा कहती हुई उस कलहा ने प्रकाशमान तथा विष्णु जैसे रूपवाले गणों से युक्त विमान देखा। उस कलहा को **पुण्यशील और सुशील नामक विष्णु के द्वारपालों** ने उत्तम विमान में बैठाया। उस समय उस विमान को धर्मदत्त ने विस्मय सहित देख उन गणों को विष्णु का रूप मानकर पृथ्वी पर दण्डवत् प्रणाम किया। पुण्यशील तथा सुशील नामक दोनों विष्णु के गणों ने प्रणाम करते हुए ब्राह्मण को उठाकर उसकी प्रशंसा की और धर्मयुक्त वचन बोले॥ १०—१३ ॥

गणवूचतुः–

साधु साधु द्विजश्रेष्ठ यत्तवं विष्णुरतः सदा। दीनानुकम्पी धर्मज्ञो विष्णुव्रतपरायणः॥ १४॥
आबालत्वाच्छुभं त्वेतद्यत्त्वया कार्त्तिकव्रतम्। कृतं तस्यार्धदानेन यदस्याः पूर्वसञ्चितम्॥ १५॥
जन्मान्तरशतोद्भूतं पापं तद्विलयं गतम्। स्नानादेव गतं पापं यदस्याः पूर्वकर्मजम्॥ १६॥
हरिजागरणाद्यैश्च विमानमिदमास्थितम्। वैकुण्ठं नीयते साधो नानाभोगयुता त्वियम्॥ १७॥
दीपदानभवैः पुण्यैस्तेजसां रूपमास्थिता। तुलसीपूजनाद्यैश्च कार्तिकव्रतकैः शुभैः॥ १८॥
विष्णोः सन्निधिगा जाता त्वया दत्ते कृपानिधे। त्वमप्यस्य भवस्यान्ते भार्याभ्यां सह यास्यसि॥ १९॥

गण बोले—हे द्विजश्रेष्ठ! तुम बहुत अच्छे हो और विष्णु की भक्ति में सदा रत रहते हो। तुम दीनों पर दया करने वाले, धर्मज्ञ और सदा विष्णु के व्रत में तत्पर रहते हो। **बालकपन से आज तक तुमने जो कार्तिक का व्रत किया था, उसका आधा फल देने से कलहा के सौ जन्मों के संचित पाप नष्ट हो गये।** इसके पूर्व जन्म के पाप तो स्नान ही से दूर हो गये और हरि का जागरण आदि जो तुमने किया है, उसके फल से यह विमान आया है। हे साधो! यह नाना प्रकार के भोगों से युक्त वैकुण्ठ को जा रही है, और जो कार्तिक में तुमने दीपदान किया है, उसके पुण्य से उसे यह तपस्वी रूप प्राप्त हुआ है। कार्तिक व्रत में किये हुए तुलसी आदि के पूजन से जो तुमको

पुण्य प्राप्त हुआ है, उससे यह विष्णु के समीप जाने की अधिकारिणी हुई है और हे कृपानिधे! इस जन्म के अन्त में स्त्रियों समेत आप भी विष्णुलोक जायेंगे॥ १४—१९॥

वैकुण्ठभवनं विष्णोः सान्निध्यं चसमरूपताम्। ते धन्याः कृतकृत्यास्ते तेषां च सफलो भव॥ २०॥
यैर्भक्त्याऽऽराधितो विष्णुर्धर्मदत्त त्वयायथा। सम्यगाराधितो विष्णुः किन्न यच्छति देहिनाम्॥ २१॥
औत्तानचरणिर्येन ध्रुवत्वे स्थापितः पुरा। यन्नामस्मरणादेव देहिनो यान्ति सद्गतिम्॥ २२॥
ग्राहगृहीतो नागेन्द्रो यन्नामस्मरणात्पुरा। विमुक्तः सन्निधिं प्राप्तो जातोऽयं जयसंज्ञकः॥ २३॥

वैकुण्ठ भवन में भगवान् के समीप समरूपता मुक्ति को प्राप्त होगा। वे धन्य हैं और वे कृतकृत्य हैं और उन्हीं का जन्म सफल है। जिन्होंने भक्तिपूर्वक आपकी तरह विष्णु की पूजा की है। पूर्णरूप से पूजित भगवान् विष्णु क्या मनुष्यों को फल नहीं देते। जिन्होंने उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव को निश्चल स्थान प्रदान किया और जिस भगवान् के नाम स्मरण से ही मनुष्य सद्गति अर्थात् उत्तम गति को प्राप्त होते हैं। ग्राह ने जब गजेन्द्र को पकड़ लिया उस समय गजेन्द्र भगवान् के नाम का स्मरण करके मुक्त होकर जय नामका गण बनकर भगवान् के समीप रहने लगा॥ २०—२३॥

यतस्त्वयाऽर्चितो विष्णुस्तत्सान्निध्यं प्रयास्यसि। बहून्यब्दसहस्राणि भार्याद्वययुतस्य ते॥ २४॥
ततः पुण्यक्षये जाते यदा यास्यति भूतले। सूर्यवंशोद्भवो राजा विख्यातस्त्वं भविष्यसि॥ २५॥
नाम्ना दशरथस्तत्र भार्याद्वययुतः पुनः। तृतीययाऽनया चापि या ते पुण्यार्द्धभागिनी॥ २६॥
तत्रापि तव सान्निध्यं विष्णुर्यास्यति भूतले। आत्मानं तव पुत्रत्वे प्रकल्प्यामरकार्यकृत्॥ २७॥
तवोर्जस्य व्रतादस्माद् विष्णुसन्तुष्टिकारकात्। न यज्ञा न च दानानि न तीर्थान्यधिकानि वै॥ २८॥
धन्योऽसि विप्रेन्द यतस्त्वयैतद् व्रतं कृतं तुष्टिकरं जगद्गुरोः।
यदर्धभागात्सफला मुरारे प्रणीयतेऽस्माभिरियं सलोकताम्॥ २९॥

(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, कार्तिकमाहात्म्य, श्रीकृष्ण-सत्यभामा संवाद, अध्याय-१०७)

आपने भी भगवान् का पूजन किया है, इसलिए आप भी कई हजार वर्ष तक दोनों स्त्रियों समेत संसार में भोग करके उनके सानिध्य में रहेंगे। तदनन्तर **जब पुण्य क्षीण हो जायेगा तब पृथ्वी पर आकर सूर्यवंश में उत्पन्न एक प्रसिद्ध राजा होगें। तुम्हारा नाम दशरथ होगा,** वहाँ भी तुम दोनों स्त्रियों से युक्त होगे और **तीसरी कलहा भी (कैकयी बनकर) साथ रहेगी क्योंकि वह भी तुम्हारे आधे पुण्य की अधिकारिणी है। उस जन्म में विष्णु पृथ्वी में तुम्हारी समीपता को प्राप्त होंगे और स्वयं तुम्हारे पुत्र होकर देवताओं का कार्य करेंगे।** विष्णु को प्रसन्न करने वाले तुम्हारे इस कार्तिक व्रत से न यज्ञ, न दान और न तीर्थ अधिक हैं अर्थात् यह कार्तिक का व्रत सब यज्ञादिकों में श्रेष्ठ है। हे विप्रेन्द्र! तुम धन्य हो इसी से तुम्हारे द्वारा भगवान् को प्रसन्न करने वाला यह व्रत सम्पन्न हुआ और इस व्रत के आधे भाग के फल को प्राप्त करके कलहा हमारे साथ श्रीभगवान् के समीप जा रही है॥ २४—२९॥

संदर्भ—पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, कलहाचरित, **कृष्ण-सत्यभामा संवाद**।

× × ×

दशरथ नन्दन राम पर—महाकाल शिव एवं महाकाल चित्रगुप्त का प्रभुत्व था

दशरथनन्दन राम अपने पिता की मृत्यु, भरत के वियोग एवं बनवास से अत्यन्त दुःखी थे। अनेक दुःखों से पीड़ित राम ने उज्जैन जाकर शिव का पूजन किया, शिव के प्रकट होने पर दुःख से पीड़ित राम ने—शिवजी से लोकशासक एवं धर्माधिकारी महाकाल चित्रगुप्त द्वारा लिखे दुर्भाग्य से मुक्ति पाने का उपाय पूछा, शिव ने राम को बताया कि, शिव की पूजा कर भस्म धारण (श्मशान भस्म द्वारा शिव की पूजा) करके चित्रगुप्तजी द्वारा लिखा दुर्भाग्य मिटाया जा सकता है।

जिस स्थान पर राम-शम्भू संवाद हुआ था, वह स्थान उज्जैन में स्थित, महाकाल मंदिर के पीछे, क्षिप्रानदी के तट पर स्थित, चित्रगुप्त मंदिर है। यह स्थान आज भी विद्यमान् है।

इस रहस्य को जानकर राम ने लंका दमन के पूर्व रामेश्वरम में शिव का पूजन करके कूच किया और विजयी हुए। भगवान् चित्रगुप्त द्वारा लिखे भोग को—साक्षात् विष्णु, साक्षात् ब्रह्मा एवं साक्षात् शिव की आराधना करके ही परिवर्तित किया जा सकता है। त्रिलोक में विद्यमान सभी प्राणियों को लोकशासक एवं धर्माधिकारी चित्रगुप्त द्वारा निर्धारित सुख-दुःख को भोगना ही पड़ता है।

यमलोक के धर्माधिकारी महाकाल चित्रगुप्त का दिया भोग, स्वयं भगवान् चित्रगुप्त सहित—भगवान् विष्णु, भगवान् ब्रह्मा तथा भगवान् शंकर ही परिवर्तन करने में सक्षम हैं।

इन्हीं की पूजा सनातनी पद्धति है। यही बात इस ग्रन्थ में बार-बार बतायी जा रही है।

पद्मपुराण, पातालखण्ड, राम-शम्भू संवाद इस सत्यता का साक्षी है—

श्रीराम उवाच—

चित्रगुप्तेन लिखिता ललाटे या लिपिर्दृढा। तया तु लिप्या नियतं नरकं कथमन्यथा॥ १३७॥
करोति पूजनं शंभोः पापं नाशयते कथम्।

श्रीराम शम्भू से बोले—चित्रगुप्तजी ने दृढ़ लिपि में ललाट पर जो लिख दिया है, उस लिखे के अनुसार नरक भोगना **नियति** है, तो किस प्रकार शंभु की पूजा करके पाप को नष्ट किया जा सकता है॥ १३७-१३७१/२ ॥

शंभुरुवाच—

पापं नाशयते कृत्स्नमपि जन्मशतार्जितम्॥ १३८॥
भर्त्सनात्सर्वपापानांस्मरणाच्च महेशितुः। भस्मेति पदमाख्यातं तस्य धारणमुत्तमम्॥ १३९॥
यथाविधि ललाटे वै वाह्निवीर्यप्रधारणात्। नाशयेल्लिखितां यामीं पटस्थामिव हव्यभुक्॥ १४०॥

[पद्मपुराण, पाताल खण्ड, राम-शम्भू संवाद]

शंभु बोले—समस्त पापों की भर्त्सना [पश्चाताप] और शिव के स्मरण से सौ जन्मों का भी पाप नष्ट हो जाता है। भस्म को विधिपूर्वक धारण करना उत्तम है, अग्निशेष भस्म को ललाट पर धारण करने से यम [चित्रगुप्त] द्वारा लिखा दुर्भाग्य, उसी प्रकार नष्ट हो जाता है, जैसे कपड़े को अग्नि जला देती है॥ १३८-१४०॥

× × ×

दशरथनन्दन राम पर—महाकाल शिव तथा महाकाल चित्रगुप्त का प्रभुत्व था।

वानरश्रेष्ठ हनुमान पर–भगवान् ब्रह्मा का प्रभुत्व था

हनुमान् जी जब बालक अवस्था में थे तब वह सूर्य देव को फल समझ कर निगलने को चल दिये, तब इन्द्र ने हनुमान् पर वज्र से प्रहार कर दिया, वज्र लगने से वह मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। इस कृत्य से पवन कुपित होकर अपनी गति को रोक दिये। वायु के प्रकोप से पीड़ित देवता, गन्धर्व, दैत्य और मनुष्य रूपिणी सारी प्रजा ब्रह्मा के पास गयी। सबकी व्यथा सुनकर भगवान् ब्रह्मा सबके साथ उस स्थान की ओर चल दिये, जहाँ इन्द्र द्वारा आहत पुत्र हनुमान् को लेकर वायु देव बैठे थे। **वहाँ पहुँचकर ब्रह्मा सहित अनेक देवों ने हनुमान् को वर दिया जिसके कारण हनुमान् दीर्घायु हुए—**

(हनूमद्वरप्राप्त्यादि)

ततः पितामहं दृष्ट्वा वायुः पुत्रवधादितः। शिशुकं तं समादाय उत्तस्थौ धातुरग्रतः॥ १॥
चलत्कुण्डलमौलिस्रक्तपनीयविभूषणः। पादयोर्न्यपतद्वायुस्त्रिरुपस्थाय वेधसे॥ २॥
तं तु वेदविदा तेन लम्बाभरणशोभिना। वायुमुत्थाप्य हस्तेन शिशुं तं परिमृष्टवान्॥ ३॥
स्पृष्टमात्रस्ततः सोऽथ सलीलं पद्मयोनिनः। जलसिक्तं यथा सस्यं पुनर्जीवितमाप्तवान्॥ ४॥

(हनुमानवरप्राप्ति)

ब्रह्मा को देखते ही वायुदेव हाथ जोड़ और हनुमान् को लेकर खड़े हो गये। हिलते कुण्डल, मुकुट, माला और अनेक स्वर्णिम आभूषणों को धारण करने वाले वायुदेव ने तीन बार ब्रह्मा को प्रणाम किया। वेदों को जानने वाले ब्रह्मा ने आभूषणों से सुशोभित अपनी भुजा से वायु को उठाया और बालक हनुमान् को सहलाया। ब्रह्मा के स्पर्श करते ही वायु पुत्र जल से सींचे धान की तरह जी उठे॥ १—४॥

प्राणवन्तमिमं दृष्ट्वा प्राणो गन्धवहो मुदा। चचार सर्वभूतेषु सन्निरुद्धं यथा पुरा॥ ५॥
मरुद्रोधाद्विनिर्मुक्तास्ताः प्रजा मुदिता भवन्। शीतवातविनिर्मुक्ताः पद्मिन्य इव साम्बुजाः॥ ६॥
ततस्त्रियुग्मस्त्रिककुत् त्रिधामा त्रिदशार्चितः। उवाच देवता ब्रह्मा मारुतप्रियकाम्यया॥ ७॥
भो महेन्द्रेशवरुणप्रजेश्वरधनेश्वराः। जानतामपि वः सर्वं वक्ष्यामि श्रूयतां हितम्॥ ८॥

गन्ध लेकर चलने वाले वायुदेव अपने पुत्र को जीवित देखकर बड़े प्रसन्न हुए और पुनः सब प्राणियों में संचरण करने लगे। जिस तरह पाला और वायु के कष्ट से छूटकर कमलिनी खिल उठती है, उसी तरह वायु का संचार होने से सारी प्रजा प्रसन्न हो गयी। यश, वीर्य, ऐश्वर्य, लक्ष्मी और ज्ञान-वैराग्य से युक्त विभूतियों में मुख्य और तीनों लोकों को जानने वाले ब्रह्मा वायु का हित करने के लिये बोले। हे महेन्द्र, अग्नि, वरुण, कुबेर रुद्र आदि देवगण! मैं तुम्हारे कल्याण का बात कहता हूँ, सुनो॥ ५—८॥

अनेन शिशुना कार्यं कर्तव्यं वो भविष्यति। तद्दध्वं वरान् सर्वे मारुतस्यास्य तुष्टये॥ ९॥
ततः सहस्रनयनः प्रीतियुक्तः शुभाननः। कुशेशयमयीं मालामुत्क्षिप्येदं वचोऽब्रवीत्॥ १०॥
मत्करोत्सृष्टवज्रेण हनुरस्य यथा हतः। नाम्ना वै कपिशार्दूलो भविता हनुमानिति॥ ११॥
अहमस्य प्रदास्यामि परमं वरमद्भुतम्। इतः प्रभृति वज्रस्य मयाऽवध्यो भविष्यति॥ १२॥

यह बालक तुम लोगों का कार्य सिद्ध करेगा। इसलिए वायु को प्रसन्न करने के लिए तुम सब लोग इसे वरदान दो। तब **देवराज इन्द्र** ने बड़ी प्रसन्नता से सुवर्ण के कमल की माला देकर कहा कि मेरे वज्र प्रहार से इसका हनु टूट गया है। इसलिए **यह वानरश्रेष्ठ हनुमान् नाम से प्रसिद्ध होगा** और इसे मैं वर देता हूँ कि अब कभी यह मेरे वज्र प्रहार से भी नहीं मरेगा॥ ९—१२॥

मार्तण्डस्त्वब्रवीत्तत्र भगवांस्तिमिरापहः। तेजसोऽस्य मदीयस्य ददामि शतिकां कलाम्॥ १३॥
यदा तु शास्त्राण्यध्येतुं शक्तिरस्य भविष्यति। तदास्य शास्त्रं दास्यामि येन वाग्मी भविष्यति॥ १४॥
न चास्य भविता कश्चित् सदृशः शास्त्रदर्शने। वरुणश्च वरं प्रादान्नास्य मृत्युर्भविष्यति॥ १५॥
वर्षायुतशतेनापि मत्पाशादुदकादपि। यमो दण्डादवध्यत्वमरोगित्वं च नित्यशः॥ १६॥
वरं ददामि संतुष्टं अविषादं च संयुगे। गदेयं मामिका चैनं संयुगे न वधिष्यति॥ १७॥
इत्येवं धनदः प्राह तदा ह्येकाक्षिपिङ्गलः। मत्तो मदायुधानां च न वध्योऽयं भविष्यति॥ १८॥

इसके बाद अन्धकार को नष्ट करने वाले **सूर्य ने कहा कि मेरे तेज का सौवाँ भाग इसे प्राप्त होगा**। योग्य होने पर मैं स्वयं इस बालक को शास्त्र पढ़ाऊँगा, जिससे यह बहुत बड़ा वक्ता बनेगा। इसके समान शास्त्रज्ञ संसार में और कोई नहीं रहेगा। **वरुणदेव** ने कहा कि मेरे शाप और जलवर्षा से दस लाख वर्ष तक भी यह नहीं मरेगा। यमराज ने कहा कि मैं इस बालक को प्रसन्नतापूर्वक वर देता हूँ कि यह बालक युद्ध में मेरे दण्ड से नहीं मरेगा और सदा निरोग बना रहेगा। एकाक्षिपिंगल **कुबेर** ने कहा कि यह बालक कभी मुझसे या मेरे शस्त्रों से नहीं मरेगा॥ १३—१८॥

इत्येवं शंकरेणापि दत्तोऽस्य परमो वरः। सर्वेषां ब्रह्मदण्डानामवध्योऽयं भविष्यति॥ १९॥
<u>दीर्घायुश्च महात्मा च इति ब्रह्माब्रवीद्वचः</u>। विश्वकर्मा च दृष्ट्वेनं बालसूर्योपमं शिशुम्॥ २०॥
शिल्पिनां प्रवरः प्रादाद्वरमस्य महामतिः। मत्कृतानि च शस्त्राणि यानि दिव्यानि संयगे॥ २१॥
तैरवध्यत्वमापन्नश्चिरञ्जीवी भविष्यति। ततः सुराणां तु वरैर्दृष्ट्वा ह्येनमलंकृतम्॥ २२॥
चतुर्मुखस्तुष्टमना वायुमाह जगद्गुरुः। अमित्राणां भयकरो मित्राणामभयंकरः॥ २३॥
अजेयो भविता पुत्रस्तव मारुत मारुतिः। कामरूपः कामचारी कामगः प्लवतां वरः॥ २४॥
भवत्वव्याहतगतिः कीर्तिमांश्च भविष्यति। <u>रावणोत्सादनार्थानि रामप्रियकराणि च</u>॥ २५॥
<u>रोमहर्षकराण्येव कर्ता कर्माणि संयुगे</u>। एवमुक्त्वा तमामन्त्र्य मारुतं त्वमरेः सह॥ २६॥
यथागतं ययुः सर्वे पितामहपुरोगमाः। सोऽपि गन्धवहः पुत्रं प्रगृह्य गृहमानयत्॥ २७॥

(वाल्मीकीय रामायण, उत्तरकाण्ड, सर्ग-३६)

शङ्कर ने वर दिया कि यह बालक मेरे किसी भी अस्त्र-शस्त्र से नहीं मरेगा। **ब्रह्मा ने कहा कि यह बालक ब्रह्मज्ञानी और दीर्घायु होगा।** ब्रह्मास्त्र से या ब्रह्मशाप से भी नहीं मरेगा। **विश्वकर्मा** ने कहा कि यह बालक मेरे बनाये हुए अस्त्र-शस्त्रों से नहीं मरेगा और सदा जीवित रहेगा। इस प्रकार सबके द्वारा वरदान मिल जाने पर प्रसन्न ब्रह्मा ने वायु से कहा कि हे मारुत! तुम्हारा पुत्र मारुति शत्रुओं का विध्वंसक, मित्रों को सुख देने वाला और अजेय होगा। यह **वानरश्रेष्ठ** इच्छानुसार रूप धारण कर सकेगा। इस कीर्तिमान् की गति कहीं भी न रुकेगी। **रावण को मारने वाले रामचन्द्र को प्रसन्न करने वाले कार्यों को करके युद्ध में यह अद्भुत पराक्रम दिखलायेगा।** वायु को प्रसन्न करके और उनसे अनुमति लेकर सम्पूर्ण देवताओं के साथ ब्रह्मा देवलोक चले गये और वायु देव अपने पुत्र को लेकर अपने घर गये॥ १९—२७॥

× × ×

वानरश्रेष्ठ हनुमान पर—भगवान् ब्रह्मा एवं भगवान् शंङ्कर का प्रभुत्व था।
भगवान् ब्रह्मा के वरदान से वानरश्रेष्ठ हनुमान इस कल्पान्त तक जीवित हैं।

देवकी नन्दन कृष्ण पर—महाकाल शिव एवं महाकाल चित्रगुप्त का प्रभुत्व था

देवकीनन्दन कृष्ण को पुत्र नहीं हो रहे थे, तब उन्होंने रुक्मिणी के साथ निराहार रहकर बारह वर्ष तक शिव की पूजा की, पूजा से प्रसन्न शिव की कृपा से कृष्ण को आठ पुत्र प्राप्त हुये। यथा—

षोडस्त्रीसहस्त्राणि शतमेकं तथाधिकम्॥ ६६॥
कृष्णस्य तासु सर्वासु प्रिया ज्येष्ठा च रुक्मिणी। तया द्वादशवर्षाणि कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा॥ ६७॥
उष्यता वायुभक्षेण पुत्रार्थं पूजितो हरः। चारुदेष्णः सुचारुश्च चारुवेषो यशोधरः॥ ६८॥
चारुश्रवाश्चारुयशाः प्रद्युम्नः सांब एव च। एते लब्धास्तु कृष्णेन शूलपाणिप्रसादतः॥ ६९॥

[लिंगपुराण, अध्याय-६९, श्लोक-६६ से ६९]

कृष्ण के सोलह हजार एक सौ पत्नियाँ थीं। उन सबमें सबसे प्रिय रुक्मिणी थीं। रुक्मिणी और कृष्ण ने बारह वर्ष तक पुत्र प्राप्ति के लिये वायु का आहार करते हुए शिव की पूजा की। **त्रिशूलधारी शिव की कृपा से आठ पुत्र उत्पन्न हुये।** उनके नाम **चारुदेष्ण, सुचारु, चारुवेष, यशोधर, चारुश्रवा, चारुयश, प्रद्युम्न** तथा **सांब** था।

☞ **कृष्ण ने सत्यभामा को भगवान् चित्रगुप्त की शक्तियों से अवगत कराया था, जिसको आप पद्मपुराण, उत्तरखण्ड के कलहाचरित नामक अध्याय में पीछे पढ़ चुके हैं।** कृष्ण ने सत्यभामा को बताया था कि भगवान् चित्रगुप्त द्वारा दिये गये कलहा के दण्ड में धर्मदत्त नामक ब्राह्मण ने विघ्न डाला था, जिसके कारण धर्मदत्त को भगवान् चित्रगुप्त ने **ब्राह्मण से** दशरथ रूपी "**क्षत्रिय**" बनाया। दशरथ का कष्ट और कलहा रूपी कैकयी के हठ से मृत्यु, **ये सब भगवान् चित्रगुप्त का ही दिया था।**

× × ×

कृष्ण की मृत्यु, कृष्ण के शव का दाह संस्कार एवं कृष्ण के प्रेत-कर्म का वर्णन

विष्णुपुराण में जरा नामक बधिक के बाण से देवकीनन्दन **कृष्ण की मृत्यु,** कृष्ण के **शव का दाह संस्कार** एवं **अर्जुन द्वारा** किया गया **प्रेत-कर्म [श्राद्ध]** का वर्णन दिया गया है। यथा—

पाराशर उवाच—

अजन्मन्यमरे विष्णवप्रमेयेऽखिलात्मनि। तत्याज मानुषं देहमतीत्य त्रिविधां गतिम्॥ ७५॥

[विष्णुपुराण, पञ्चम अंश, अध्याय-३७, श्लोक-७५]

पाराशर बोले—अजन्मा, अमर, अप्रमेय, अखिलात्मा और विष्णु में लीन कर त्रिगुणात्मक गति को पार करके **कृष्ण ने मनुष्य शरीर को छोड़ दिया**॥ ७५॥

पाराशर उवाच—

अर्जुनोऽपि तदान्विष्य रामकृष्णकलेवरे। संस्कारं लम्भयामास तथान्येषामनुक्रमात्॥ १॥

[विष्णुपुराण, पञ्चम अंश, अध्याय-३८, श्लोक-१]

पाराशर बोले—अर्जुन ने बलराम-कृष्ण तथा अन्य मुख्य-मुख्य यादवों के शव को खोज कराकर क्रमशः उन सबके **और्ध्वदैहिक [अग्निदाह] संस्कार** किया॥ १॥

पाराशर उवाच—

ततोऽर्जुनः प्रेतकार्यं कृत्वा तेषां यथाविधि। निश्चक्राम जनं सर्वं गृहीत्वा वज्रमेव च॥ ५॥

[विष्णुपुराण, पञ्चम अंश, अध्याय-३८, श्लोक-५]

पाराशर बोले—तदनन्तर अर्जुन उन सबका विधि पूर्वक [सनातनधर्म के अनुसार] **प्रेत-कर्म [श्राद्ध]** कर वज्र तथा अन्य कुटुम्बियों को साथ लेकर द्वारका से बाहर आ गये॥ ५॥

× × ×

अर्जुन ने मृत कृष्ण के शव का अग्निदाह करके उनका प्रेत-कर्म [श्राद्ध] किया।

☞ पाठक बन्धु! आप ध्यान दें कि सनातन विधि के श्राद्ध में भगवान् चित्रगुप्त एवं यमराज की पूजा होती है। श्राद्धकर्ता प्रार्थना करता है कि हे भगवान् चित्रगुप्त मैं जिस प्रेत का श्राद्ध कर रहा हूँ, उस प्रेत को प्रेतयोनि से मुक्त करके सद्गति दें और यमराज से प्रार्थना करता है कि, हे यमराज मेरे पितृ को दण्ड न दें। **श्राद्ध के मध्य गरुडपुराण का पाठ करके भगवान् चित्रगुप्त एवं यमराज से क्षमा याचना की जाती है।**

सनातनी श्राद्ध में यमतर्पण इस मंत्र द्वारा होता है—

यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च। वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च॥ १२॥
औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने। वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः॥ १३॥

[पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, कार्तिकमाहात्म्य, अध्याय-१२२]

प्रेत को मुक्ति केवल भगवान् चित्रगुप्त ही दे सकते हैं अर्थात् भगवान् चित्रगुप्त की कृपा से देवकीनन्दन कृष्ण विष्णुलोक को प्राप्त किये।

देवकी नन्दन कृष्ण पर–महाकाल शिव तथा महाकाल चित्रगुप्त का प्रभुत्व था।

त्रिलोक में विद्यमान सभी प्राणियों पर परब्रह्मस्वरूप—भगवान् विष्णु, भगवान् ब्रह्मा, भगवान् शंङ्कर तथा भगवान् चित्रगुप्त का ही प्रभुत्व था, है और आगे भी रहेगा।

त्रिलोक में अनेक ऋषि, देव तथा दानव आये एवं आते रहेंगे और अपनी लीला दिखा कर मुक्त होते रहेंगे। त्रिलोक में आये सभी ऋषि, देव तथा दानव परब्रह्मस्वरूप—भगवान् विष्णु, भगवान् ब्रह्मा, भगवान् शंङ्कर तथा भगवान् चित्रगुप्त के हाथों की कठपुतली हैं। सभी ने इन्हीं परब्रह्मों की शक्ति को पाकर उत्तम कार्य किया और आदर पाया।

पाठक बन्धु! दाता ही सर्वशक्तिमान है, दाता ही नियन्ता है, याचक और प्राप्तकर्ता नगण्य है। प्राप्तकर्ता दाता के दिये गये शक्तियों से दाता का ही कार्य करता है, प्राप्तकर्ता दाता के बनाये गये नियमों का केवल पालनकर्ता है।

दाता ही सर्वशक्तिमान है, दाता ही नियन्ता है, इसलिये दाता परब्रह्मस्वरूप—भगवान् विष्णु, भगवान् ब्रह्मा, भगवान् शंङ्कर तथा भगवान् चित्रगुप्त ही पूज्य हैं।

दाता की शक्तियों को पाकर लोक में उत्तम कृत्य करने वाले, शेष सभी आदरणीय हैं।

यही सनातन सत्य है।

भगवान् चित्रगुप्त के न्याय से राजा धर्मकीर्ति ने विष्णुलोक को प्राप्त किया

गालव नाम के एक तपस्वी ऋषि थे, उनके पुत्र का नाम भद्रशील था। वह बचपन से ही नारायण भक्त था, बालकों के साथ खेलते समय मिट्टी से नारायण की प्रतिमा बनाकर, मित्रों के साथ नारायण की पूजा करता था। नारायण की पूजा करते समय वह एकादशी व्रत रहने पर जोर देता था। गालव पुत्र भद्रशील को पूर्वजन्म की घटनाओं का स्मरण था। एक दिन गालव ऋषि ने कहा कि हे पुत्र तुम्हें तो पूर्वजन्म की घटना भी स्मरण में है, पिछले जन्म में तुम क्या थे, तुम्हारे साथ क्या हुआ था, ये बताओ?

भद्रशील ने कहा! हे पिता मैं सोमवंश में उत्पन्न धर्मकीर्ति नामक राजा था। मैंने बहुत पुण्य भी किया किन्तु पाखण्ड में फँसकर वेद मार्ग का त्याग कर दिया। एक दिन मैं शिकार करने के लिये जंगल में गया, आखेट करते हुये मैं अपने सैनिकों से दूर हो गया। घने जंगल में भटकते-भटकते रात्रि हो गई, मैं भूख-प्यास से व्याकुल होकर रेवा (नर्मदा) नदी के तट पर पहुँचा। रेवा नदी में स्नान किया, सायं काल में देखा कि रेवा तट के निवासी एकादशी का व्रत कर रहे थे। मैं भी वहीं भूखा रहा, तदन्तर मेरी मृत्यु हो गई। यम के दूत मुझे बाँध कर यमलोक ले गये, यमराज ने मुझे देखकर भगवान् चित्रगुप्त से कहा हे पंडित इसके किये गये कर्मों का शिक्षा विधान बतायें।

धीमान् चित्रगुप्त कुछ देर तक सोच कर बोले! यह पापी रेवा नदी के तट पर प्राण त्यागने के कारण ही पाप मुक्त हो गया है, इसके अतिरिक्त यह एकादशी के दिन निराहार रहा है। इसके समस्त पाप नष्ट हो गये हैं। भगवान् चित्रगुप्त के ऐसा कहने पर मैं विष्णुलोक चला गया।

चित्रगुप्तजी के बनाये नियम के अनुसार सोमवंशीय राजा धर्मकीर्ति अगले जन्म में ब्राह्मण श्रेष्ठ गालव ऋषि का पुत्र भद्रशील हुआ। मनुष्य उच्चकुल अथवा निम्नकुल भगवान् चित्रगुप्त के आदेश से ही प्राप्त करता है। **यह गालव ऋषि के पुत्र भद्रशील का प्रत्यक्ष देखा गया प्रकरण है।**

संदर्भित श्लोक—भगवान् चित्रगुप्त लोक के "**पंडित**" हैं **[श्लोक ६७]।**

गालव ऋषि के पुत्र भद्रशील के प्रत्यक्ष देखे गये पूर्व जन्म का आख्यान इस प्रकार है—

[क्रमशः ....

[एकादशीव्रतमहिमानुवर्णनम्]

नास्ति गङ्गासमं तीर्थं नास्ति मातृसमो गुरुः। नास्ति विष्णुसमं देवं तपो नानशनात्परम्॥ ३०॥
नास्ति क्षमासमा माता नास्ति कीर्तिसमं धनम्। नास्ति ज्ञानसमो लाभो न च धर्मसमः पिता॥ ३१॥
न विवेकसमो बन्धुर्नैकादश्याः परं व्रतम्। अत्राप्युदाहरंतीममितिहासं पुरातनम्॥ ३२॥

गंगा के समान कोई तीर्थ नहीं है, माता के समान कोई गुरु नहीं है, विष्णु के समान कोई देवता नहीं है और उपवास से बढ़कर कोई तपस्या नहीं है। क्षमा के समान माता नहीं है और कीर्ति के समान धन नहीं है। इसी प्रकार विवेक के समान कोई बन्धु नहीं है और एकादशी से बढ़कर कोई व्रत नहीं है। इस व्रत के विषय में एक पुरातन इतिहास, जो भद्रशील और उनके पिता गालव के संवाद के रूप में है, सुना रहा हूँ॥ ३०-३२॥

संवादं भ्रदशीलस्य तत्पितुर्गालयस्य च। पुरा हि गालवो नाम मुनिः सत्यपरायणः॥ ३३॥
उवास नम्रदातीरे शान्तो दान्तस्तपोनिधिः। बहुवृक्षसमाकीर्णे गजभल्लुनिषेविते॥ ३४॥

प्राचीन काल में गालव नाम के एक सत्यवादी मुनि थे। वे शान्त, दान्त और तपोनिधि मुनि नर्मदा तट पर एक घने वन में रहते थे। जंगली हाथी और भालुओं से भरा वह वन सिद्ध, चारण, गन्धर्व, यक्ष और विद्याधरों का क्रीड़ा स्थल था॥ ३३-३४॥

सिद्धचारणगन्धर्वयक्षविद्याधरान्विते। कन्दमूलफलैः पूर्ण मुनिवृन्दनिषेवते॥ ३५॥
गालवो नाम विप्रेन्द्रो निवासमकरोच्चिरम्। तस्याभवद्भद्रशील इति ख्यातः सुतो वशी॥ ३६॥
जातिस्मरो महाभागो नारायणपरायणः। बालक्रीडनकालेऽपि भद्रशीलो महामतिः॥ ३७॥
मृदा च विष्णोः प्रतिमां कृत्वा पूजयते क्षणम्। वयस्यान्बोधयेच्चापि विष्णुः पूज्यो नरैः सदा॥ ३८॥

कंद, मूल और फलों से परिपूर्ण और मुनियों से सुशोभित उस वन में वे विप्रशिरोमणि गालव चिरकाल तक निवास करते रहे। उनको भ्रदशील नामक एक संयमी पुत्र उत्पन्न हुआ। वह नारायण का भक्त, महासौभाग्यशाली और अपने पूर्वजन्म की घटनाओं का ज्ञाता था। वह महामति भद्रशील बालकों के साथ खेलने के समय भी, मिट्टी से विष्णु की प्रतिमा बनाकर कुछ देर तक पूजा करता था और अपने साथियों को समझाता था कि मनुष्य को विष्णु की पूजा सर्वदा करनी चाहिए॥ ३५—३८॥

एकादशीव्रतं चैव कर्त्तव्यमपि पण्डितैः। एवं ते बोधितास्तेन शिशवोऽपि मुनीश्वर॥ ३९॥
हरिं मृदेव निर्माय पृथक्संभूय वा मुदा। अर्चयन्ति महाभागा विष्णुभक्तिपरायणाः॥ ४०॥
नमस्कुर्वन्भद्रमतिः विष्णवे सर्वविष्णवे। सर्वेषां जगतां स्वस्ति भूयादित्यब्रवीदिदम्॥ ४१॥
क्रीडाकाले मुहूर्तं वा मुहूर्तार्द्धमथापि वा। एकादशीति संकल्प्य व्रतं यच्छति केशवे॥ ४२॥
एवं सुचरितं दृष्ट्वा तनयं गालवो मुनिः। अपृच्छद्विस्मयाविष्टः समालिंग्य तपोनिधिः॥ ४३॥

ज्ञानी को भी एकादशी व्रत करना चाहिए। मुनीश्वर! इस प्रकार उसके द्वारा उपदेश पाये हुए वे भाग्यशाली बालक भी मिलजुलकर या अलग प्रेमपूर्वक मिट्‌टी की विष्णु-प्रतिमा बनाते थे और विष्णुभक्तिपरायण कल्याण हो' यही कहता था। क्रीड़ा के समय क्षणभर या आधे क्षण तक एकादशी व्रत का संकल्प कर भगवान् को अर्पण करता था। मुनि गालव पुत्र के शुभ चरित्र को देखकर आश्चर्यचकित हो गए। उस तपोनिधि ने पुत्र को हृदय से लगाकर पूछा॥ ३९—४३॥

गालव उवाच—

भद्रशील महाभाग भद्रशीलोऽसि सुव्रत। चरितं मंगलं यत्ते योगिनामपि दुर्लभम्॥ ४४॥

हरिपूजापरो नित्यं सर्वभूतहितेरतः। एकादशीव्रतपरो निषिद्धाचारवर्जितः॥ ४५॥
निर्द्वन्द्वो निर्ममः शान्तो हरिव्यानपरायणः।
एवमेतादृशी बुद्धिः कथं जातार्भकस्य ते। विनापि महतां सेवां हरिभक्तिर्हि दुर्लभा॥ ४६॥

गालव बोले—भद्रशील! महाभाग! सुव्रत! तुम सचमुच भ्रदशील हो, क्योंकि तुम्हारा शुभ चरित्र योगियों के लिए भी दुर्लभ है। तुम नित्य हरि की पूजा करते हो, सब प्राणियों के हित में लगे रहते हो, एकादशी व्रत करते हो और निषिद्ध कर्मों से सदा दूर रहते हो। तुम शान्त, निर्मम, निर्द्वन्द्व और भगवान् के ध्यान में मग्न रहते हो। तुम बालक की ऐसी बुद्धि कैसे हो गई? बिना महात्माओं की सेवा के हरि-भक्ति दुर्लभ है॥ ४४—४६॥

स्वभावतो जनस्यास्य ह्यविद्याकामकर्मसु। प्रवर्त्तते मतिवत्स कथं तेऽलौकिकी कृतिः॥ ४७॥
सत्सङ्गेऽपि मनुष्याणां पूर्वपुण्यातिरेकतः। जायते भगवद्भक्तिस्तदहं विस्मयं गतः॥ ४८॥

स्वभावतः मनुष्यों को बुद्धि अविद्या, काम आदि दुष्कर्मों की ओर ही झुकती है, परन्तु वत्स! तुममें यह अलौकिक क्रियाशीलता कैसे आई? सत्संगति में भी पूर्वजन्म के पुण्यों की अधिकता से ही भगवद्भक्ति प्राप्त होती है, परन्तु तुम्हारे सदाचार को तो देखकर मैं आश्चर्यचकित हूँ। मैं अत्यन्त प्रसन्न होकर पूछ रहा हूँ, तुम अवश्य मुझसे कहो॥ ४७-४८॥

पृच्छामि प्रीतिमापन्नस्तद्भवान्वक्तुमर्हसि। भद्रशीलो मुनिश्रेष्ठः पित्रैवं सुवकल्पितेः॥ ४९॥
जातिस्मरः सुकृतात्मा हृष्टप्रहसिताननः। स्वानुभूतं यथावृत्तं सर्वं पित्रे न्यवेदयत्॥ ५०॥

भद्रशील मुनिश्रेष्ठ पिता के इस प्रकार के शुभ विकल्पों को सुनकर प्रसन्न हो गया। सुकृतशील, पूर्व जन्म का ज्ञान रखने वाले उस बालक ने अपने पूर्वानुभूत रहस्यों को यथावत् रूप से पिता में कह दिया॥ ४९-५०॥

भद्रशील उवाच–

श्रृणु तात मुनिश्रेष्ठ ह्यनुभूतं मया पुरा। जातिस्मरत्वाज्जानामि यमेन परिभाषितम्॥ ५१॥
एतच्छ्रुत्वा महाभागो गालवो विस्मयान्वितः। उवाच प्रीतिमापन्नो भद्रशीलं महामतिम्॥ ५२॥

भद्रशील बोला—हे तात! मुनिश्रेष्ठ! मुझे पूर्वकाल की जो अनुभूति है, उसको सुनें। मैं जातिस्मर होने के कारण उन सब बातों को जानता हूँ, जिसको यम ने कहा था। महाभाग्यशाली गालव इतनी बातें सुनकर विस्मित हो गए और प्रसन्न हो महामति भद्रशील से बोले॥ ५१-५२॥

गालव उवाच–

कस्त्वं पूर्वं महाभाग किमुक्तं च यमेन ते। कस्य वा केन वा हेतोस्तत्सर्वं वक्तुमर्हसि॥ ५३॥

गालव बोले—महाभाग! तुम पूर्व जन्म में कौन थे? यम ने क्यों किसलिए और क्या कहा? इसको पूर्णरूप से मुझसे कहो॥ ५३॥

भद्रशील उवाच–

अहमासं पुरा तात राजा सोमकुलोद्भवः। धर्मकीर्तिरिति ख्यातो दत्तात्रेयेण शासितः॥ ५४॥
नव वर्षसहस्त्राणि महीं कृत्स्नामपालयन्। अधर्माश्च तथा धर्मा मया तु बहवः कृताः॥ ५५॥
ततः श्रिया प्रमत्तोऽहं बह्वधर्ममकारिणम्। पाषण्डजनसंसर्गात्पाषण्डचरितोऽभवम्॥ ५६॥

भद्रशील बोला—हे तात! मैं पहले (पूर्व जन्ममें) सोमवंशीय राजा था। धर्मकीर्ति मेरा नाम और दत्तात्रेय द्वारा मुझे ज्ञान प्राप्त हुआ था। मैंने नौ हजार वर्ष तक इस सम्पूर्ण भूमण्डल पर शासन किया। इस बीच बहुत से धर्म और अधर्म भी किये। पाखण्डीजनों की कुसंगति में पड़कर मैं स्वयं पाखण्डी बन गया॥ ५४—५६॥

पुरार्जितानि पुण्यानि मया तु सुबहून्यपि। पाषण्डैर्बाधितोऽहं तु वेदमार्गं समत्यजम्॥ ५७॥
मखाश्च सर्वे विध्वस्ता कूटयुक्तिविद मया। अधर्मनिरतं मां तु दृष्ट्वा मद्देशजाः प्रजाः॥ ५८॥
सदैव दुष्कृतं चक्रुः षष्ठांशस्तत्र मेऽभवत्। एवं पापसमाचारो व्यसनाभिरतः सदा॥ ५९॥
मृगयाभिरतो भूत्वा ह्येकदा प्राविशं वनम्। ससैन्योऽहं वने तत्र हत्वा बहुविधान्मृगान्॥ ६०॥

यद्यपि मैंने पूर्व जन्म में बहुत से पुण्य किये थे, तथापि पाखण्ड में फँसकर वेदमार्ग का त्याग कर दिया। कूटनीति के सहारे मैंने सारे यज्ञों को ध्वस्त कर दिया। मुझको पापकर्म करते देखकर मेरी प्रजा भी सर्वदा दुष्कर्म ही करती रही, जिसका छठा भाग मुझे भी प्राप्त हुआ। इस प्रकार पापाचार में लीन रहने वाला, व्यसनशील मैं एक दिन आखेट खेलने के लिए वन में गया। सैनिकों के सहित मैंने उस वन में बहुविध पशुओं का वध किया॥ ५७—६०॥

क्षुत्तृअपरिवृतः श्रांतो रेवातीरमुपागमम्। रवितीक्ष्णातपक्लांता रेवायां स्नानमाचरम्॥ ६१॥
अदृष्टसैन्य एकाकी पीड्यमानः क्षुधा भृशम्॥ ६२॥
समेतास्तत्र ये केचिद्रेवातीरनिवासिन। एकादशीव्रतपरा मया दृष्टा निशामुखे॥ ६३॥
निराहाराश्च तत्राहनेकाकी तज्जनैः सह। जागरं कृतवांश्चापि सेनया रहितो निशि॥ ६४॥

भूख प्यास से व्याकुल और थका हुआ मैं रेवा (नर्मदा) के तीर पर पहुँचा। उस समय सूर्य के असह्य ताप से मेरा शरीर झुलस गया था। अकेला ही रेवा में नहाकर सैनिकों के दृष्टिपथ से दूर चला गया। मैं भूख से उस समय अत्यन्त पीड़ित था। सायंकाल देखा कि नर्मदा तीर निवासी सभी एकादशी व्रत कर रहे हैं। मैं भी उन्हीं लोगों के साथ रात्रि में अकेला ही निराहार रह गया और जागरण भी करता रहा। मेरे सैनिक तो पीछे छूट ही गये थे॥ ६१—६४॥

अध्वश्रमपरिश्रांतः क्षुत्पिपासाप्रपीडितः। तत्रैव जागरन्तेऽहं तात पंचत्वमागतः॥ ६५॥
ततो यमभटैर्बद्धो महादंष्ट्राभयंकरैः। अनेकक्लेशसंपन्नमार्गेणाप्तो यमांतिकम्।
दंष्ट्राकरालवदनमपश्यं समवर्तिनम्॥ ६६॥
<u>अथ</u> <u>कालश्चित्रगुप्तमुपसाद्याकथयत</u>। <u>अस्य</u> <u>शिक्षाविधानं</u> <u>च</u> <u>यथावद्वद</u> <u>पंडित</u>॥ ६७॥

हे तात! रास्ता चलते-चलते थक जाने, भूखप्यास से पीड़ित होने तथा जागरण के बाद वहीं मेरी मृत्यु हो गई। तदनन्तर महाभयङ्कर दाँतों वाले यमदूतों ने मुझे बाँधा और अनेक कष्टों से युक्त मार्ग से यमराज के समीप ले आये। वहाँ मैंने भयङ्कर दाँत और मुख वाले, समीप में बैठे हुए अनेक समान आकार वाले यमदूतों से घिरे हुए यमराज को देखा, ऐसे यमराज चित्रगुप्त के पास जाकर बोले—**हे पंडित!** इसके किये गये कर्मों का शिक्षा विधान (न्याय एवं शुभ-अशुभ कर्म) यथार्थ रूप में बतायें॥ ६५—६७॥

<u>एवमुक्तश्चित्रगुप्तो</u> <u>धर्मराजेन</u> <u>सत्तम</u>। <u>चिरं</u> <u>विचारयामास</u> <u>पुनश्चेदमभाषत्</u>॥ ६८॥
<u>असौ</u> <u>पापरतः</u> <u>सत्यं</u> <u>तथापि</u> <u>शृणु</u> <u>धर्मप</u>। <u>एकादश्यां</u> <u>निराहारः</u> <u>सर्वपापैः</u> <u>प्रमुच्यते</u>॥ ६९॥
<u>एव</u> <u>रेवातटे</u> <u>रम्ये</u> <u>निराहरी</u> <u>हरेर्दिने</u>। <u>जागरं</u> <u>चोपवासं</u> <u>च</u> <u>कृत्वा</u> <u>निष्पापतां</u> <u>गतः</u>॥ ७०॥
<u>यानि कानि</u> <u>च</u> <u>पापानिकृतानि</u> <u>सुबहूनि</u> <u>च</u>। <u>तानि</u> <u>सर्वाणि</u> <u>नष्टानि</u> <u>ह्य</u> <u>पवासप्रभावतः</u>॥ ७१॥
<u>एवमुक्तो</u> <u>धर्मराजश्चित्रगुप्तेन</u> <u>धीमता</u>। <u>ननाम</u> <u>दंडवद्भूमौ</u> <u>ममाग्रे</u> <u>सोऽनुकंपितः</u>॥ ७२॥

सज्जनाग्रणो! धर्मराज के इस प्रकार कहने पर चित्रगुप्त बहुत देर तक विचार करते रहे। अन्त में उन्होंने कहा यद्यपि यह पापी है तथापि हे धर्मराज! आप सुने! एकादशी के दिन निराहार रहने से मनुष्य सब प्रकार

के पापोंसे मुक्त हो जाता है। यह तो नर्मदा नदी के तट पर एकादशी के दिन निराहार रहा है तथा रात्रि में जागरण करने और उपवास करने से यह तो निष्पाप हो गया है। इसने जो अत्यधिक पाप किये थे, वे तो व्रत के प्रभाव से ही नष्ट हो गये, **धीमान् (बुद्धिमान्) चित्रगुप्त** के इस प्रकार कहने पर धर्मराज ने मुक्त कर बहुत कृपा की और मेरे सामने ही दण्डवत् प्रणाम किया। धर्मराज ने भक्तिपूर्वक मेरी पूजा की और अपने अनुचरों को बुलाकर कहा॥ ६८—७२॥

धर्मराज उवाच–

पूजयामास मां तत्र भक्तिभावेन धर्मराट्। ततश्च स्वभटान्सर्वानाहूयेदमुवाच ह॥ ७३॥
शृणुध्वं मद्वचो दूता हितं वक्ष्याम्यनुत्तमम्। धर्ममार्गरतान्मर्त्यान्मानयध्वं ममान्तिकम्॥ ७४॥

ये विष्णुपूजनरताः प्रयताः कृताश्चैकादशीव्रतपरा विजितेन्द्रियाश्च।
नारायणाच्युतहरे शरणं भवेति शान्ता वदन्ति सततं तरसा त्यजध्वम्॥ ७५॥
नारायणाच्युत जनार्दन कृष्ण विष्णो पद्मेश पद्मजपितः शिव शंकरेति।
नित्य वदंत्यखिललोकहिताः प्रशान्ता दूराद्भटास्त्यज तान्न ममैषु शिक्षा॥ ७६॥

धर्मराज बोले—दूतो! मेरी बातें सुनो, मैं तुम लोगों के हित की उत्तम बातें कह रहा हूँ। धर्म मार्ग में निरत रहने वाले मनुष्यों को मेरे समीप मत लाओ। सम्पूर्ण लोक का हित चाहने वाले उन शान्त महापुरुषों को जो प्रतिदिन नारायण! अच्युत! जनार्दन! कृष्ण! विष्णु! पद्मेश! शिव! शंकर! आदि कहा करते हैं उनको दूर से ही प्रणाम करो और उनको मेरे पास न ले आओ यही मेरी इन लोगों के विषय में शिक्षा है॥ ७३—७६॥

नारायणार्पितकृतान्हरिभक्तिभाजः स्वाचारमार्गनिरतान् गुरुसेवकांश्च।
सत्पात्रदाननिरतांश्च सुदीनपालान्दुतास्त्यजध्वमनिंश हरिनामसक्तान्॥ ७७॥
पाषंडसङ्गरहितान्द्विजभक्तिनिश्ठोन्सत्संगलोलुपतरांश्च तथातिथेयान्।
शंभौ हरौ च समबुद्धिमतस्तथैवदूतास्त्यजध्वमुपकारपराङ्गनानाम्॥ ७८॥
ये वर्जिता हरिकथामृतसेवनैश्च नारायणस्मृतिपरायणमानसैश्च।
विप्रेंद्रपादजलसेचनतोऽप्रहृष्टास्तान्पापिनो मम भटा गृहमानयध्व॥ ७९॥

नारायण को ही अपना सब कुछ अर्पित करने वाले, भगवद्भक्ति के प्रेमी, अपने कुलाचार को पालन करने वाले, गुरुसेवक, **सत्पात्र को दान देने वाले,** दीनों का पालन करने वाले और हरिनाम स्मरण करने वाले सज्जनों को सर्वदा छोड़ दो। दूतों! उसी प्रकार पाखण्डियों की संगति न करने वालों, ब्राह्मण-भक्तों, सत्संगति-प्रेमियों, अतिथि-सेवकों, **शम्भु और विष्णु में समान भाव रखने वालों** और उपकार-परायण जनों को भी छोड़ दिया करो। मेरे सेवकों! जो हरि रूपी अमृत के पान से अपने को दूर रखते हैं, नारायण के स्मरण में दिन रात लगे रहने वालों से दूर रहते हैं और जो विप्रेन्द्रों के चरणोदक के अभिषेक से प्रसन्न नहीं होते हैं, उन पापियों को ही मेरे यहाँ लाओ॥ ७७—७९॥

ये मातृतातपरिभर्त्सनशीलिनश्च लोकद्विषो हितजनाहितकमर्णश्च।
देवस्वलोभनिरताञ्जननाशकर्तॄनत्रानयध्वमपराधपरांश्च दूताः॥ ८०॥
एकादशीव्रतपराङ्मुखमुग्रशीलं लोकापवादनिरतं परनिंदकं च।
ग्रामस्य नाशकरमुत्तमवैरयुक्तं दूताः समानयत विप्रधनेषु लुब्धम्॥ ८१॥

दूतों! जो माता-पिता को झिड़कियाँ (निन्दा) देते हैं, जो लोकद्वेषी, शुभचिन्तकों का अहित करने वाले हैं, देव-धन का दुरूपयोग करने वाले, अपराधी और जनता की हत्या करने वाले पापी हैं, उनको यहाँ लाओ। हे दूतो! एकादशी व्रत न करने वाले, उग्र स्वभाव वाले, दूसरों का निन्दक, लोकापवाद-प्रेमी, ग्राम हित को हानि पहुँचाने वाले, ब्राह्मणों की सम्पत्ति हड़प जाने वाले और कट्टर शत्रुता करने वाले को यहाँ लाओ॥ ८०-८१॥

ये विष्णुभक्तिविमुखाः प्रणमंति नैष नारायणं हि शरणागतपालकं च।
विष्ण्वालयं च नहिं यांति नराः सुमूर्खास्तानानयध्वमतिपापरतान्प्रसह्य॥ ८२॥
एवं श्रुतं यदा तत्र यमेन परिभाषितम्। मयानुतापदग्धेन स्मृतं तत्कर्म निन्दितम्॥ ८३॥

जो विष्णुभक्ति से विमुख रहते और शरणागत-पालक नारायण को प्रणाम नहीं करते अथवा जो महामूर्ख हरि-मन्दिर में नहीं जाते उन घोर पापियों को हठ पूर्वक यहाँ लाओ। जिस समय वहाँ यम की कही हुई इन बातों को सुना मेरा ह्रदय पश्चाताप की ज्वाला में जल उठा, अपने किये हुये निन्दनीय कर्मों का स्मरण करके मैं दुःखी हो गया॥ ८२-८३॥

असत्कर्मानुतापेन सद्धर्मश्रवणेन च। तत्रैव सर्वपापानि निःशेषाणि गतानि मे॥ ८४॥
पापशेषाद्विनिर्मुक्तं हरिसारूप्यतां गतम्। सहस्रसूर्यसंकाशं प्रणनाम यमश्च तम्॥ ८५॥
एवं दृष्ट्वा विस्मितास्ते यमदूता भयोत्कटाः। विश्वासं परमं चक्रुर्यमेन परिभाषिते॥ ८६॥
तत संपूज्य मां कालो विमानशतसंकुलम्। सद्यः संप्रेषयामास तद्विष्णोः परमं पदम्॥ ८७॥

[वृहन्नारदीयपुराण, प्रथमभाग, अध्याय-२३]

असत्कर्मों के लिये पश्चात्ताप करने और धर्म की उत्तमोत्तम बातें सुनने से वहीं मेरे सम्पूर्ण पाप निःशेष हो गए। अशेष पापों के नष्ट हो जाने से मुझे हरि का सारूप्य प्राप्त हो गया। यमराज ने सहस्र सूर्य के समान तेजोमय उस रूप को देखकर प्रणाम किया। यह देखकर वे भयंकर यमदूत विस्मित हो गए। उनको यम की बातों पर पूर्णरूप से विश्वास हो गया। तदनन्तर यम ने मेरी पूजा की और तत्काल सैकड़ों देव विमानों के साथ **मुझे विष्णु के परम पद को भेज दिया**॥ ८४—८७॥

संदर्भ—बृहन्नारदीयपुराण, प्रथमभाग, एकादशीव्रतमहिमा, अध्याय-२३।

यमराज के दण्ड से बचाने वाले-आयु, धन, यश, राज्य एवं मोक्षदाता भगवान् चित्रगुप्त

एक चोर नित्य चोरी के कार्य में लिप्त था। चोरी का कार्य करने के लिये उसे एक दुस्तर (दलदल) को पार करके जाना पड़ता था। एक दिन उस चोर ने उस दुस्तर के मध्य मरे हुये गाय का सिर रखकर चोरी का कार्य करने लगा। दिन में उस रास्ते से अन्य लोग भी जाते रहे।

कुछ दिनों पश्चात् चोर का देहान्त हो गया, यमराज ने उसे देखकर यमदूतों से कहा कि इस महापापी को कभी नष्ट न होने वाले नरक में डाल दो। यह सुनकर वहाँ स्थित **भगवान् चित्रगुप्त ने यमराज से कहा कि इसने दुस्तर में मरे हुये गाय का सिर रखकर सेतुबन्ध का कार्य किया है, इसलिये यह क्षमा योग्य है।**

भगवान् चित्रगुप्त के आदेश को सुनकर यमराज ने अपने आदेश को परिवर्तित करते हुये उस चोर को राजा बना दिया तथा उसे पिछले जन्म का स्मरण रहे ये आशीष दिया। वह चोर पूर्व जन्म के पाप का फल अपने प्रारम्भिक जीवन में भोगा, कुछ दिनों बाद उस राज्य का राजा दिवगन्त हो गया, उस राज्य के मन्त्री राजा खोजने निकले और उस चोर को राजा बना दिया। राजा बनने के बाद उस चोर को अपने पिछले जन्म का वृतान्त याद आ गया। तत्पश्चात् उसने अनेक मन्दिरों, मार्गों, कूपों, सेतुबन्ध सहित अनेक पुण्य का कार्य किया। तत्पश्चात् निष्कंटक शासन करके वह दिवगंत हुआ।

भगवान् चित्रगुप्त ने उसे देखकर कहा यह कर्म से एवं मन से पवित्र हो चुका है, अतः यह विष्णुलोक को प्राप्त करे। भगवान् चित्रगुप्त की आज्ञा से पिछले जन्म का चोर अपनी शुद्धि करके विष्णुलोक को प्राप्त किया।

संदर्भित श्लोक—यमराज द्वारा चोर को कभी नष्ट न होने वाले नरक को भोगने का आदेश देना **[श्लोक १५]**, चित्रगुप्त द्वारा यमराज के आदेश के विरूद्ध चोर को क्षमा करना **[श्लोक १६-१७]**, यमराज द्वारा चित्रगुप्त के आदेश के बाद अपने आदेश को परिवर्तित करके राजा बनाना **[श्लोक १८—२०]**, भगवान् चित्रगुप्त द्वारा चोर को पवित्र होने के पश्चात् विष्णुलोक को भेजा जाना **[श्लोक ३३]**।

यह परमपवित्र पौराणिक-कथा मूल एवं हिन्दी अनुवाद के साथ इस प्रकार है—

[सेतुबन्धनफलवर्णनम्]

व्यास उवाच-

अतः परं प्रवक्ष्यामि कीर्तिधर्मं परं शुभम्। सेतुबंधफलं पुण्यं ब्रह्मणा भाषितं यथा॥ १ ॥
कान्तारे दुस्तरेपङ्के पुरुशंकुसमाकुले। आलिकृत्वा भवेत्पूतो देवत्वं यातिमानवः॥ २ ॥
वितस्तौ तु लभेत्स्वर्गं दिव्यं वर्षशतं समम्। एवं संख्याविधानेन नरः स्वर्गान्न हीयते॥ ३ ॥
कदाचित्पङ्कयोगाच्च स्वर्गाद्भुवि विजायते। तदाभट्टारकः श्रीमान्रोगशोक विवर्जितः॥ ४ ॥
पङ्कादौ सङ्क्रमांश्चैव कृत्वास्वर्गान्न हीयते। सर्वपापं क्षयंतस्य संप्रयाति दिने दिने॥ ५ ॥
तथालिसङ्क्रमाणां च फलं तुल्यं प्रकीर्तितम्। धनप्राणाव्ययेनैव धीमता क्रियते सदा॥ ६ ॥

व्यास बोले—उसके बाद मैं कीर्ति और धर्म युक्त शुभकर्म के विषय में बताऊँगा जिसे ब्रह्मा ने सेतुबन्ध रामेश्वर के दर्शन के समान पुण्यप्रद बताया है। दुस्तर जंगल में कीचड़ से भरे भूमि पर बड़े-बड़े खूँटों को गाड़कर आलि (मेड़) बनाकर कोई मानवमार्ग (लोगों को आने जाने के लिए) बना दे तो वह देवत्व को प्राप्त करता है, अर्थात् अत्यन्त पुण्य अर्जित करता है। ऐसे दुस्तर जंगल में एक बित्ता भी मार्ग बना दे

तो वह सौ-सौ दिव्य वर्ष तक स्वर्ग को प्राप्त करेगा। इसी संख्या के अनुसार मनुष्य (लम्बा मार्ग बनाने पर) स्वर्ग से कभी भी वंचित नहीं होगा। कदाचित् कीचड़ के सम्बन्ध होने से वह स्वर्ग से भूलोक में जन्म लेता है तो वह ऐश्वर्य सम्पन्न, रोग और शोक से रहित होकर राजकुमार बनता है। इसलिए कीचड़ युक्त दुस्तर स्थान में आने-जाने का रास्ता बनाने पर व्यक्ति स्वर्ग से पदवंचित कभी नहीं होता प्रतिदिन उसका पाप क्षय होता जाता है। उसी प्रकार आलि (मेड़) का मार्ग बनाने का भी फल बताया गया है। व्यक्ति सदैव धन और शक्ति को बिना खर्च किये पुण्यार्जन कर सकता है॥ १-६॥

श्रूयतां यत्पुरावृत्तमाख्यानं वृद्धसंमतं। कश्चिच्चोरो महाभीष्मः स्तेयकर्मणि चोद्यतः॥ ७॥
कान्तारे गोशिरः स्थाप्य क्रांत्वा स्तेयं गता ह्यसौ। धनापहरणं कृत्वा गृहस्थस्य च ते न हि॥ ८॥
गतः स्वमंदिरं तत्र जनागच्छंति वर्त्मनि। सर्वेषामेकपादस्य सुखंभवति निश्चितं॥ ९॥
एकपादेह्रदे दुर्गे तारकं गोशिरः परम्। चांद्रायणं च तत्तस्य कांतारे संस्थितं शिरः॥ १०॥
ततश्चोरस्य निधने चित्रगुप्त प्रणीतके।

मैं एक पुराना इतिहास जो वृद्धों के द्वारा आदर दिया गया है, बता रहा हूँ। कोई चोर भयंकर कष्टकारी चोरी के कार्य में तत्पर हो गया। एक दिन वह दुस्तर जंगल में दुर्गम कीचड़ युक्त मार्ग में मरे हुए गाय के सिर (कंकाल) को रखकर दूसरे पार जाकर चोरी का कार्य करने लगा और एक गृहस्थ के घर से धन को चुरा कर अपने घर चला गया। उसके द्वारा बनाये गये मार्ग से अब सभी लोग आने-जाने लगे। एक पैर रखने पर निश्चित ही सुख का अनुभव होता है क्योंकि उस कीचड़ भरे गड्ढे में जो दुस्तर था वह एक पैर के बराबर था जिसे पार करने के लिए गाय का सिर ही पर्याप्त होता है, वह चन्द्रायण व्रत के पुण्य के समान होता है। इस चोर के निधन होने के बाद शुभाऽशुभ कर्मों को चित्रगुप्त द्वारा देखा गया॥ ७-१०॥

चित्रगुप्त उवाच-

धर्मस्यफलमात्रं तु एतस्य च न विद्यते॥ ११॥
न दैवं पैतृकं कार्य तीर्थस्नानं द्विजार्चनं। दानं गुरुजने मानं ज्ञानं परहितं शुभम्॥ १२॥
मनसा न कृतं तेन क्रियया च कथं पुनः। कृतं साहसिकं स्तेयं परदाराभिमर्शनम्॥ १३॥
भूत मिथ्यापवादं च साधुनिंदापरं तथा। एवं शतसहस्त्रं तु तथा गोहरणं कृतम्॥ १४॥

चित्रगुप्त बोले—धर्म के नाम पर इस चोर ने पुण्य का एक भी कार्य नहीं किया है, इस चोर ने न तो देवता की पूजा, न पितृ सम्बन्धी कोई कार्य, न कोई तीर्थ, न कभी किसी तीर्थ में स्नान, न कभी ब्राह्मणों की पूजा, न कभी दान, न कभी गुरुजन का सम्मान किया है तथा कभी परहित का कार्य भी नहीं किया। कर्म से पुण्य करने की बात तो दूर, इसने कभी मन से भी पुण्य का स्मरण नहीं किया था। चोरी का कार्य, परस्त्रीगमन, लोगों के ऊपर अपवाद, साधुओं की निन्दा इत्यादि सैकड़ों, हजारों पाप तथा गायों का अपहरण किया था॥ ७-१४॥

व्यास उवाच-

तत्राह धर्मराजस्तु कालानलसमप्रभः।

व्यास बोले—कालाग्नि के समान यमराज ने उसे देखकर क्रोध से कहा! ॥ १४१/२॥

धर्मराज उवाच-

नयतैनं फलं शूरा दुर्गति चापुनर्भवम्॥ १५॥

धर्मराज बोले—हे दूतों इस दुष्ट को कभी नष्ट न होने वाले दुर्गति (नरक) को प्राप्त कराओ॥ १५॥

व्यास उवाच–

एतस्मिन्नंतरेऽवोचश्चित्रगुप्तोऽनुकंपकः ।

व्यास ने कहा—यह सुनकर इस पर दया करते हुए चित्रगुप्त ने चोर पर कृपा की-॥ १५१/२॥

चित्रगुप्त उवाच–

अस्त्यस्य गोशिरः पुण्यं किंचिन्नाथ क्षमाधुना॥ १६॥
अस्यपुनर्भवो नास्तिशर्मचात्रलवंनहि। चिन्तयित्वोच्यतां देव तत्पापस्य क्षपाय वै॥ १७॥

चित्रगुप्त बोले—इस पापी ने दुर्गम जंगल के मार्ग में मृत गाय का सिर रखकर सेतुबंध का पुण्य कार्य किया है। इसलिये **यह क्षमा योग्य है**॥ १६-१७॥

व्यास उवाच–

नृपो द्वादशवार्षिक्यं लभेत्पुण्योदयं क्षितौ। तथाह धर्मराजस्तं गच्छमर्त्य दुरात्मक॥ १८॥
अकंटकं च राज्यं च भुंक्ष्व द्वादशवत्सरम्। यद्धृतं गोशिरोमार्गेमुक्तस्तस्यैवकारणात्॥ १९॥
पुनरत्रसमागम्य संगंता चापुनर्भवम्। ततः कृतांजलिर्वेदवमुवाच दुःखपीडितः॥ २०॥

व्यास बोले—ऐसा सुनकर धर्मराज ने पापी से कहा—हे दुष्ट मनुष्य तुम पृथ्वी पर १२ वर्ष तक निष्कण्टक राजा बनकर भोग करो, क्योंकि तुमने गड्ढे में मृत गाय के सिर को रखकर आने-जाने के मार्ग को सुगम किया है। तुम यहाँ से मुक्त हो गये हो। पुनः यहाँ आकर वैकुण्ठ लोक को प्राप्त करोगे। इसके बाद दुःख से पीड़ित वह व्यक्ति हाथ जोड़कर बोला-॥ १८-२०॥

चोर उवाच–

धर्मराजानुकंपा च मय्येवं पापकारिणि। कुरुनाथ त्वनाथे च जानामि प्रीतिपूर्वकम्॥ २१॥

चोर बोला—हे धर्मराज आप मुझ पापी पर दया करें। आप अनाथों के नाथ हैं मुझ पर कृपा करें॥ २१॥

व्यास उवाच–

धर्मराजस्तु तं चाह बाढमेवमितो व्रज। स्मरिष्यसिस्ववृत्तांतं मत्प्रसादात्सुदुःखितः॥ २२॥
एतस्मिन्नंतर चैव मोचितः किंकरेण हि। तस्यजन्माभवत्कौ च द्विविधे चातिवाणिके॥ २३॥
आजन्मविविधं दुःखं भुक्तं पूर्व विकर्मतः। भुक्त्वाक्लेशंमहांतं च एकविंशतिहायनम्॥ २४॥
तस्मिन्राष्ट्रे मृतोभूपः स्वकर्मपरिपीडितः। एतस्मिन्नंतरेऽमात्यैः समालोक्य सुमंत्रिभिः॥ २५॥
अनेकपरिमर्शैस्तु पृथिव्यां भ्रमणं कृतम्। तमावृण्वंश्च ते सद्यः सर्वेषां पुरतो दृढम्॥ २६॥
ततो राज्याभिषेकश्च कृतस्तैस्तु विमत्सरैः। स च राज्यं च संश्रित्य धर्मराजवरण च॥ २७॥
अकरोदालिकं कर्म शलाबद्धं च मृण्मयम्। संक्रमं जलदुर्गे च तरणिं च तथापरे॥ २८॥
वापीकूपतटाकानि प्रपाराममहीरुहं। कृतवान्विविधं यज्ञं दानपुण्यमतःपरम्॥ २९॥
स्मरंश्च पूर्वकर्माणि सर्वपापक्षयाय वै। कृतं बहुविधं धर्मं व्रतानि विविधानि च॥ ३०॥
सुराणां ब्राह्मणानां च गुरूणां चैव तर्पणात्। पापात्पूतो ययौ गेहंधर्मराजस्य धीमतः॥ ३१॥
स यानस्थं ततो दृष्ट्वा क्रोधरक्तेक्षणोऽभवात्। स च तं प्रांजलिः प्राह भोधर्म कुरु तारणम्॥ ३२॥

व्यास बोले—धर्मराज ने उससे कहा तुम यहाँ से जाओ, जब भी तुम्हे कोई कष्ट हो तुम इस वृतान्त को स्मरण करना मेरे प्रसाद से तुम्हें सब कुछ स्मरण हो जायेगा। यमराज के वीर दूतों ने उसे छोड़ दिया और वह पृथ्वी

पर भीषण कोलाहल वाले स्थान पर जन्म लेकर अपने पाप कर्म के अनुसार अनेक कष्टों का भोग किया। इक्कीस वर्ष तक भीषण कष्ट भोगने के बाद एक समय उसी राज्य का राजा अपने कर्म के प्रभाव से मृत्यु को प्राप्त हो गया। उस समय उस राज्य के उत्तम मन्त्रियों ने राजा को खोजने के लिए पृथ्वी पर भ्रमण का कार्य किया। सामने बैठा उस दृढ पुरुष (पूर्व का चोर) को उन मन्त्रियों ने घेर लिया। उसके बाद रागद्वेष से रहित होकर उन मन्त्रियों ने उसका राज्याभिषेक किया। इस प्रकार वह राज्य को प्राप्त कर धर्मराज के वर से रास्ता बनाने का कार्य करने लगा। शिला बाँधकर अथवा मिट्टी रखकर गड्ढे युक्त मार्ग का निर्माण कराने लगा, वापी, कूप, तालाब, धर्मशाला और बगीचा का निर्माण किया। उसके बाद उसने अनेक यज्ञ-दान एवं पुण्यों का कार्य किया। समस्त पापों के विनाश के लिए पूर्व जन्म के कर्मों का स्मरण करता हुआ अनेक प्रकार के धार्मिक व्रत को करने लगा। उसने देवताओं, ब्राह्मणों और गुरुजनों की सेवा करके तथा पाप से निवृत्त होकर धर्मराज के घर (यमलोक) चला गया। लाल-लाल नेत्रवाले धर्मराज विमान में आरूढ़ उस पापी को देखकर क्रोधित हुए। इस प्रकार उस यमराज को देखकर वह पापी हाथ जोड़ता हुआ बोला! हे धर्मराज मेरा उद्धार कीजिए॥ २२-३२॥

चित्रगुप्तोऽब्रवीद्वाक्यं धर्मराजसमीपतः।

धर्मराज के समीप में बैठे चित्रगुप्त ने यमराज से कहा—

चित्रगुप्त उवाच-

कर्मणा मनसा पूतो विष्णुलोकं स गच्छतु॥ ३३॥

[पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, सेतुबन्धनफल]

चित्रगुप्त बोले—यह अब कर्म और मन से पवित्र हो गया है, **अतः यह विष्णुलोक को प्राप्त करे॥ ३३॥**

संदर्भ—पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, सेतुबन्धनफल।

भगवान् चित्रगुप्त का निवास स्वर्ग के दक्षिणद्वार [यमलोक] में है

भगवान् चित्रगुप्त स्वर्ग के दक्षिण द्वार पर रहते हैं। इसी दक्षिणी द्वार को **यमलोक** कहते हैं।

संदर्भित श्लोक—[श्लोक १७]

विष्णुर्ब्रह्मा महेन्द्रश्च विश्वेदेवा मरुद्गणाः। आदित्या वसवो दस्रौ शशांकश्च सतारकः॥ १५॥
एते विमानगतयो देवाश्च सह पार्षदैः। पूर्वद्वारं निषेवन्ते तस्य वै प्रीतिकारणात्॥ १६॥
यमो मृत्युः स्वयं साक्षाश्चित्रगुप्तश्च पावकः। पितृभिः सह रुद्रैश्च दक्षिणद्वारमाश्रितः॥ १७॥
वरुणः सरितां नाथो गंगादिसरितां गणैः। महाबलं च सेवन्ते पश्चिमद्वारमाश्रिताः॥ १८॥
तथा वायुः कुबेरश्च देवेशी भद्रकालिका। मातृभिश्चण्डिकाद्याभिरुत्तरद्वारमाश्रिताः ॥ १९॥

[कोटिरुद्रसंहिता अध्याय-१८]

ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, विश्वेदेव तथा मरुद्गण, आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार तथा तारागण सहित चन्द्रमा। विमान द्वारा यात्रा करने वाले ये देवता अपने पार्षदों के साथ शिवजी को प्रसन्न करने के लिये सदा **पूर्व द्वार** में रहते हैं। यम जो स्वयं मृत्यु हैं, **साक्षात् चित्रगुप्त जो पवित्र करने वाले हैं,** पितरों के साथ रुद्र (एकादश रुद्र) **दक्षिण द्वार** में रहते हैं। नदियों के स्वामी वरुण, गंगा आदि महानदियों के साथ **पश्चिम द्वार** में रहकर महाबल का सेवन करते हैं। वायु, कुबेर, देवेशी भद्रकाली, चण्डिका आदि मातृकाओं के साथ **उत्तर द्वार** में निवास करती हैं॥ १५—१९॥

संदर्भ—शिवपुराण, कोटिरुद्रसंहिता, अध्याय-१८।

× × ×

ऐसे कोई प्राणी नहीं हैं जो यमलोक नहीं जाते

सभी प्राणियों को अपने कर्मों का फल भोगने हेतु यमलोक जाना ही होता है।

न केचित्प्राणिनः सन्ति ये न यान्ति यमक्षयम्। अवश्यं हि कृतं कर्म भोक्तव्यं तद्विचार्य्यताम्॥ ४॥

[शिवपुराण उमासंहिता अध्याय-७]

ऐसे कोई प्राणी नहीं हैं जो यमलोक को नहीं जाते, क्योंकि किये कर्मों को अवश्य ही भोगना पड़ता है॥ ४॥

अनेन परिचारेण वृतं तं घोरदर्शनम्। यमं पश्यन्ति पापिष्ठाश्चित्रगुप्तं च भीषणम्॥ ५८॥
निर्भर्त्सयति चात्यन्तं यमस्तान्पापकर्मणः। चित्रगुप्तश्च भगवान्धर्मवाक्यैः प्रबोधयेत्॥ ५९॥

[शिवपुराण उमासंहिता अध्याय-७]

इस प्रकार अपने परिचारको से घिरे हुए उस भीषण यमराज तथा चित्रगुप्त को पापी लोग देखते हैं। वह यमराज उन पापियों को झिड़कते हैं और **भगवान् चित्रगुप्त** धर्मयुक्त वाक्यों से समझाते हैं॥ ५८-५९॥

संदर्भ—शिवपुराण, उमासंहिता।

× × ×

भगवान् चित्रगुप्त द्वारा राजाओं को दण्डित किया जाना

भगवान् चित्रगुप्त ने यमलोक में राजाओं को दण्डित किया है।

संदर्भित श्लोक-भगवान् चित्रगुप्त द्वारा राजाओं को दण्डित किया जाना [**श्लोक १—३, ५—९**], तत्पश्चात् यमराज द्वारा राजाओं को दण्ड देना [**श्लोक १२**]।

चित्रगुप्त उवाच–

भो भो दुष्कृतकर्माणः पर द्रव्यापहारकाः। गर्विता रूपवीर्य्येण परदारावमर्द्दकाः॥ १॥
यस्त्वयं क्रियते कर्म तदिदं भुज्यते पुनः। तत्किमात्मोपघातार्थं भवद्भिर्दुष्कृतं कृतम्॥ २॥
इदानीं किं प्रलप्यध्वे पीड्यमानास्स्वकर्म्मभिः। भुज्यन्तां स्वानि कर्म्माणि नास्ति दोषो हि कस्यचित्॥ ३॥

चित्रगुप्त बोले—हे! पापियों पराये द्रव्यों को चुराने वालों! अपने रूप और बल के घमंड से परायी स्त्रियों से रमण करने वालों जो तुमने ये दुष्कर्म किया है, अब उनका फल भोगो। क्यों अपना विनाश करने के लिये तुम लोगों ने पाप किया। अपने कर्मों से पीड़ित होने पर अब क्यों चिल्लाते हो। अब अपने कर्मों को भोगो, इसमें किसी का दोष नहीं है॥ १—३॥

सनत्कुमार उवाच–

एवं ते पृथिवीपालास्संप्राप्तास्तत्समीपतः। स्वकीयैः कर्म्मभिर्घोरैर्दुष्कर्म्मबलदर्पिणः॥ ४॥
तानपि क्रोधसंयुक्तश्चित्रगुप्तो महाप्रभुः। संशिक्षयति धर्म्मज्ञो यमराजानुशिक्षया॥ ५॥

सनत्कुमार बोले—वे राजा अपने भयंकर दुष्कर्म के बल के घमंड से उन्मत्त होकर **चित्रगुप्त** के पास पहुँचे। **धर्म के मर्मज्ञ, महाप्रभुः चित्रगुप्त** क्रोधित होकर यमराज के कहने पर उन पापी राजाओं को शिक्षा दी॥ ४-५॥

चित्रगुप्त उवाच–

भो भो नृपा दुराचाराः प्रजा विध्वंसकारिणः। अल्पकालस्य राज्यस्य कृते किं दुष्कृतं कृतम्॥ ६॥
राज्यभोगेन मोहेन बलादन्यायतः प्रजाः। यद्दण्डिताः फलं तस्य भुज्यतामधुना नृपाः॥ ७॥
क्व तद्राज्यं कलत्रं च यदर्थमशुभं कृतम्। तत्सर्वं संपरित्यज्य यूयमैकाकिनः स्थिताः॥ ८॥
पश्यामि तद्बलं नष्टं येन विध्वंसिताः प्रजाः। यमदूतैर्योज्यमाना अधुना कीदृशं भवेत्॥ ९॥

चित्रगुप्त बोले—अरे प्रजा का विनाश करने वाले दुराचारी राजाओं! थोड़े समय के राज्य के लिये तुमने पाप क्यों किया। हे राजाओं! राज्यभोग के मोह से जबरदस्ती अन्याय से जो तुमने प्रजा को दंडित किया, उसका फल अब भोगो। कहाँ वह राज्य है, कहाँ वे स्त्रियाँ हैं, जिनके लिये तुमने पापकर्म किया। क्यों उन सबको छोड़कर तुम आज यहाँ अकेले हो? मैं देखता हूँ, जिस बल से तुमने प्रजा का नाश किया वह नष्ट हो गया है। अब तो तुम यमदूतों से बंधे हो। अब क्या होगा?॥ ६—९॥

सनत्कुमार उवाच–

एवं बहुविधैर्वाक्यैरुपलब्धा यमेन ते। स्वानिकर्म्माणि शोचंति तूष्णीं तिष्ठति पार्थिवाः॥ १०॥
इति कर्म्म समुद्दिश्य नृपाणां धर्म्मराड्यमः। तत्पापपंकशुद्ध्यर्थमिदं दूतान्ब्रवीति च॥ ११॥

सनत्कुमार बोले—इस प्रकार यम (**धर्माधिकारी चित्रगुप्त**) के अनेक उपदेश जनक वचनों से उलाहना देने पर वे राजा अपने कर्मों को सोचकर चुप हो गये। इस प्रकार उन राजाओं के कर्मों को बतलाकर **धर्मराज** ने

उनके पापरूपी कीचड़ को शुद्ध करने के लिये दूतों से कहा— ॥ १०-११ ॥

यमराज उवाच–

भोभोश्चण्ड महाचंड गृहीत्वा नृपतीन्बलात्। नियमेन विशुद्धयध्वं क्रमेण नरकाग्निषु॥ १२॥

यमराज बोले—हे चंड! महाचंड! इन राजाओं को बलपूर्वक पकड़कर क्रम से नरक की अग्नियों में इन्हें शुद्ध करो॥ १२॥

सनत्कुमार उवाच–

ततः शीघ्रं समादाय नृपान्संगृह्य पादयोः। भ्रामयित्वा तु वेगेन निक्षिप्योर्ध्वं प्रगृह्य च॥ १३॥
सर्वप्रायेण महाताऽतीव तप्ते शिलातले। आस्फालयन्ति तरसा वज्रेणेव महाद्रुमान्॥ १४॥
ततः स रक्तं श्रोत्रेण स्त्रवते जर्जरीकृतः। निःसंज्ञः स तदा देही निश्चेष्टः सम्प्रजायते॥ १५॥
ततः स वायुना स्पृष्टः स तैरुज्जीवितः पुनः। ततः पापविशुद्ध्यर्थं क्षिपन्ति नरकार्णवे॥ १६॥
अष्टाविंशतिसङ्ख्याभिः क्षित्यधः सप्तकोटयः। सप्तमस्य तलस्यान्ते घोरे तमसि संस्थितः॥ १७॥

(शिवपुराण उमासंहिता अध्याय-८)

सनत्कुमार बोले—तब उसने शीघ्र ही राजाओं के पैर को पकड़कर घुमाकर ऊपर की ओर फेंककर पुनः पकड़ा। सबसे पहले तपे हुए पत्थर के ऊपर उसे पटका, जैसे वज्र के आघात से बहुत बड़ा पेड़ गिरता है। तब पत्थर पर पटकने के कारण उसके कान से रक्त बहने लगा, वह बेहोश तथा चेष्टा रहित हो गया। जब थोड़ी हवा लगने पर फिर होश में आया, तब उसके पापों को दूर करने के लिये उसे नरक में डाला। यह नरक पृथ्वी के नीचे सात करोड़ अट्ठाईस योजन पर सातवें तल के अन्त में घोर अन्धकार में है॥ १३—१७॥

संदर्भ—शिवपुराण, उमासंहिता, नरकलोकवर्णन।

× × ×

भगवान् चित्रगुप्त १४ यमों में एक हैं

भगवान् चित्रगुप्त १४ यमों में से एक हैं। चित्रगुप्त-**धर्माधिकारी** नामक **यम**, यमराज-**धर्मराज** नामक **यम** हैं। पितृ को मोक्ष हेतु श्राद्ध एवं पितृ तर्पण में उपर्युक्त मंत्रों को पढ़े बिना मोक्ष सम्भव नहीं है। ऐसी सनातन धर्म की मान्यता है।

संदर्भित श्लोक—भगवान् चित्रगुप्त-**यम** हैं [**श्लोक १३**]।

यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च। वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च॥ १२॥
औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने। वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः॥ १३॥

[पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, कार्तिकमाहात्म्य, अध्याय-१२२]

यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर, दध्न, नील, परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र तथा '**चित्रगुप्त**' को नमस्कार है।

संदर्भ—पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, कार्तिकमाहात्म्य, अध्याय-१२२।

× × ×

केतु ग्रह के अधिदेवता भगवान् चित्रगुप्त हैं

नवग्रहों में से एक केतु के अधिदेवता भगवान् चित्रगुप्त हैं।

संदर्भित श्लोक—भगवान् चित्रगुप्त—केतु ग्रह के अधिदेवता हैं। [**श्लोक १४ १/२**]।

भास्करस्येश्वरं विद्यादुमां च शशिनस्तथा। स्कन्दमङ्गारकस्यापि बुधस्य च तथा हरिम्॥ १३॥
ब्रह्माणं च गुरोर्विद्याच्छूक्रस्यापि शचीपतिम्। शनैश्चरस्य तु यमं राहोः कालं तथैव च॥ १४॥
केतोर्वै चित्रगुप्तं च सर्वेषामधिदेवता।

(मत्स्यपुराण, प्रथमखण्ड, अध्याय-९३)

सूर्य के अधिदेवता '**शिव**' को जानना चाहिए। इसी प्रकार चन्द्रमा के अधिदेवता '**उमा**', मंगल के '**स्कन्द**', बुध के '**विष्णु**', गुरु बृहस्पति के '**ब्रह्मा**', शुक्र के '**इन्द्र**', शनैश्चर के '**यमराज**', राहु के '**काल**' और केतु के '**चित्रगुप्त**' इन नव ग्रहों के अधिदेवता हैं॥ १३-१४१/२॥

संदर्भ—मत्स्यपुराण, प्रथमखण्ड, अध्याय-९३।

× × ×

विष्णुधर्मोत्तरपुराण में भगवान् चित्रगुप्त

भगवान् चित्रगुप्त यमराज से उच्चस्थ देव हैं, इसका वर्णन विष्णुधर्मोत्तरपुराण में भी दिया गया है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण में यमराज एवं भगवान् चित्रगुप्त की मूर्ति निर्माण एवं स्थापित करने का नियम दिया गया है। इसमें यमराज के दायीं ओर चित्रगुप्त की मूर्ति स्थापित करने को बताया गया है। **राजा के दायीं ओर राजा से उच्चस्थ माता-पिता तथा राजगुरु को ही बैठने का विधान है।**

इस पुराण में भगवान् चित्रगुप्त की लेखनी काल स्वरूप बतायी गयी है। **न्यायाधीश न्याय करते समय मृत्यु दण्ड लेखनी से ही देता है।**

संदर्भित श्लोक—भगवान् चित्रगुप्त को यमराज के दाहिने तरफ स्थापित करने का नियम है। **[श्लोक ५-६]** चित्रगुप्तजी की लेखनी काल स्वरूप है **[श्लोक १४]।**

मार्कण्डेय उवाच-

सजलाम्बुदसच्छायस्तप्तचामीकराम्बरः । महिषस्थश्च कर्तव्यः सर्वाभरणवान्यतः॥ १ ॥
नीलोत्पलाभा धूमोर्णा वामोत्सङ्गे च कारयेत्। धूमोर्णा द्विभुजा कार्या यमः कार्यश्चतुर्भुजः॥ २ ॥
दण्डखड्गावुभौ कार्यौ यमदक्षिणहस्तयोः। दण्डोपरि मुखं कार्यं ज्वालमालाविभूषणम्॥ ३ ॥
धूम्रोर्णापृष्ठगं वामं चर्मयुक्तं तथापरम्। धूमोर्णादक्षिणं हस्तं यमपृष्ठगतं भवेत्॥ ४ ॥

मार्कण्डेय ने कहा—जलयुक्त मेघ के समान श्याम छवि तपे हुये सोने के समान पीला वस्त्र धारण किये हुए, महिष (भैंसा) पर सवार सभी अलंकारों से परिपूर्ण यमराज की मूर्ति बनानी चाहिए। उनके बायें भाग में नील वर्ण के धूमोर्णा (पत्नी) की मूर्ति बनावें। धूमोर्णा की मूर्ति दो भुजा वाली और यमराज की चार भुजाओं वाली मूर्ति बनावें। यमराज के दाहिने दोनों हाथ में दण्ड और खड्ग बनावें उस दण्ड के ऊपर ज्वाला से विभूषित मुख बनावें। यमराज का बायां हाथ धूमोर्णा के पृष्ठ भाग में हो ऐसा बनाया जाय। धूमोर्णा का दाहिना हाथ यमराज के पृष्ठ पर विराजमान हो॥ १—४॥

वामे तस्याः करे कार्यं मात्लुङ्गं सुदर्शनम्। पार्श्वे तु दक्षिणे तस्य चित्रगुप्तं च कारयेत्॥ ५ ॥
उद्दिश्य वेशं स्वाकारं द्विभुजं सौम्यदर्शनम्। दक्षिणे लेखिनी तस्य वामे पत्रं तु कारयेत्॥ ६ ॥
वामे पाशधरः कार्यः कालो विकटदर्शनः। यमं सङ्कर्षणं विद्धि तामसीं तनुमाश्रितम्॥ ७ ॥
मर्यादापालनार्थाय लोकसंहारकारणम्। नीलोत्पलदलच्छायस्तामसत्वात्प्रकीर्तितः ॥ ८ ॥

धूमोर्णा के बायें हाथ में आराम से देखा जा सके ऐसा मात्लुङ्ग (फल) को बनाया जाय। **यमराज के दक्षिण भाग (दायें तरफ) में भगवान् चित्रगुप्त की मूर्ति बनायी जाय। भगवान् चित्रगुप्त का वेश उनके (यमराज के बराबर) आकार वाला दो बाहु एवं सौम्य दर्शन वाला हो। उनके दाहिने हाथ में लेखनी एवं बायें हाथ में पत्र हो।** उनके बायें भाग में विकराल दिखाई देने वाला पाश लिए हुए काल की मूर्ति बनावें। वहाँ तमोगुणी शरीर में आश्रित संकर्षण भगवान् के रूप में जानना चाहिए। **यमराज मर्यादा के पालन के लिए, लोक के संसार के कारण नीले कमल के समान कान्तिवाले तमोगुणी रूप में जाने जाते हैं॥** ५—८॥

वसनं तस्य विख्यातं वासुदेवेन शत्रुहन्। चतुर्भुजत्वं विख्यातं ब्रह्मणा परमात्मनः॥ ९ ॥
ब्रह्मणा तस्य निर्दिष्टं सर्वाभरणधारणम्। यो मोहो मरणं नृणां विज्ञेयो महिषस्तु सः॥ १० ॥
अमोघं तु करे दण्डं मृत्युं धारयते यमः। अनिरुद्धेन तस्योक्तं धारणं खड्गचर्मणोः॥ ११ ॥

कालरात्री तु विज्ञेया धूमोर्णा यदुनन्दन। तस्यास्तु शूलिना प्रोक्तं बीजपूरकधारणम्॥ १२॥
चित्रगुप्तो विनिर्दिष्टस्तथात्मा सर्वदेहगः। पत्रं धर्ममधर्मं च करस्था तस्य लेखिनी॥ १३॥
काल एव स्वरूपेण कालो यमसमीपगः। तस्य पाशं करे घोरो यममार्गः सुदुष्करः॥ १४॥

हे शत्रुओं को मारने वाले राजन् उनके वस्त्र वासुदेव के वस्त्र से मिलते हैं। चतुर्भुज परमात्मा ब्रह्मा ने बताया है। ब्रह्मा ने उनको सभी अलंकार धारण करने के लिए बताया है। जो मनुष्य को मारता है मोह रूप में जाना जाता है। भैंसें के रूप में उन्हें ही जाना जाता है। यमराज अपने हाथ में अमोघ दण्ड मृत्युरूप में धारण किये हैं। खड्ग और ढाल धारण करने के कारण उन्हें अनिरुद्ध के रूप में जाना जाता है। हे यदुनन्दन धूमोर्णाको कालरात्रि के रूप में जाने। उनका बीजपूरक (फल) धारण करना शंकर द्वारा बताया गया है। **भगवान् चित्रगुप्त सबके शरीर में विद्यमान आत्मा के रूप में निर्दिष्ट हैं। उनका पत्र धर्म स्वरूप है और लेखनी अधर्मस्वरूप है।** साक्षात् काल ही काल के स्वरूप में यमराज के समीप में रहते हैं, उनका पाश भयंकर यम मार्ग है॥ ९—१४॥

वज्र उवाच—

संहारहेतुकी मूर्तिर्विष्णोः सङ्कर्षणो मतः। स तु देवस्त्वया प्रोक्तश्चन्द्रशुक्लवपुर्महान्॥ १५॥
तल्पे संहारकर्तृत्वे कृष्णमूर्तिः कथं यमः। एतं मे संशयं छिन्धि भृगुवंशविवर्धन॥ १६॥

वज्र ने कहा— भगवान् संकर्षण (विष्णु) की मूर्ति संहार के लिए जानी जाती है। उनको आप ने चन्द्रमा के समान सफेद शरीर वाला बताया है। संहारकर्ता के रूप में काली मूर्ति वाले यमराज को ही माना गया है। हे भृगुवंश को बढ़ाने वाले इस संशय को दूर कीजिए॥ १५-१६॥

मार्कण्डेय उवाच—

मूर्ति साङ्कर्षिणी विष्णोरुद्रः संहारकारकः। कल्पक्षये तु संहारं करोति जगतां हि सा॥ १७॥
प्रकृतौ याति धर्मज्ञ संहृतं तु तदा जगत्। तेन प्रकृतिवर्णस्थः करोति जगतां क्षयम्॥ १८॥
कृत्वापि प्राणिसंहारं यमरूपी पुनः पुनः। प्राणिनां प्रकृतौ योगं न विधत्ते कदाचन॥ १९॥
विकारे योजयत्येय सुखदुःखात्मके तदा। विकाररूपवर्णं तु तेन संहरते जगत्॥ २०॥
रूपमिदं कथितं तव याम्यंपापविनाशकरं विबुधानाम्।

मार्कण्डेय ने कहा— भगवान् विष्णु की संकर्षिणी नाम की जो मूर्ति है वह संहारकारी रूद्र रूप है। उसी संकर्षण की मूर्ति से कल्प के प्रलय काल में संसार का प्रलय होता है। हे धर्मज्ञ राजन् उस समय सारा संसार प्रकृति में विलीन होता है। इस प्रकार प्रकृति में अवस्थित होकर संसार का विनाश होता है। यमराज के रूप में भगवान् बार-बार प्राणियों का संहार करते हुए भी, प्राणियों का प्रकृति के साथ सम्बन्ध विच्छेद नहीं करते, तब सुख दुःख रूपी भाव को प्रकृति के विकार से जोड़ देते हैं, उसी विकार रूप से संसार का संहार करते हैं। विद्वानों के पाप का विनाश करने वाला यमराज का यह रूप आपको बताया॥ १७—२०½॥

संदर्भ— विष्णुधर्मोत्तरपुराण, तृतीयखण्ड, अध्याय-५०।

× × ×

गरुडपुराण में भगवान् चित्रगुप्त

गरुडपुराण सनातन धर्म का अत्यन्त महत्वपूर्ण पुराण है। सनातनी मनुष्य (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इत्यादि) के दिवंगत होने पर उसके मोक्ष के लिये गरुडपुराण का पाठ सुनना श्राद्ध कर्ता के लिये अनिवार्य होता है। ऐसी मान्यता है कि गरुडपुराण का पाठ सुने बिना पितृ को मुक्ति नहीं मिलती है।

इसका कारण **'लोकशासक एवं यमलोक के धर्माधिकारी महाकालचित्रगुप्त'** की महिमा से अवगत होना तथा लोक-परलोक की सत्यता से अवगत होना है।

गरुडपुराण विष्णु तथा गरुड का संवाद है। गरुड की इच्छा विभिन्न लोकों को देखने को हुई। सम्पूर्ण लोक को देख कर गरुड बैकुण्ठ वापस आ गये, वहाँ आकर गरुड ने विष्णुजी से कहा कि हे नारायण मैंने समस्त लोक को साक्षात् देखा परन्तु यमलोक को नहीं देख सका। हे स्वामी यमलोक कैसा है? वहाँ कौन रहता है? प्राणी कैसे अपने कर्मों का भोग करता है? श्राद्ध में दक्षिण मुख होकर क्यों सभी कर्म किये जाते हैं? दशम दिन का पिण्ड आमिष (मांस) से क्यों किया जाता है? एकादश दिन का पिण्ड भी आमिष (मांस) से वृषोत्सर्गपूर्वक देने का विधान क्यों है?

ऐसे अनेक प्रश्न गरुड ने जगत्नारायण विष्णु से किया। गरुड के उत्सुकता को दूर करने एवं जगत् के कल्याण हेतु, जगत् हितकारी भगवान् विष्णु ने यमलोक का यथार्थ गरुड को बताया। जिसे गरुडपुराण का प्रेतखण्ड कहते हैं।

गरुडपुराण प्रेतखण्ड सम्पूर्ण ४९ अध्याय में है। इसी पुराण को श्राद्ध में श्रवण करने पर पितृ को मोक्ष की प्राप्ति होती है। बाजार में जो गरुडपुराण बिक रहे हैं, उनमें से अधिकांश मनगढ़न्त हैं। सनातन धर्म, ट्रस्ट के पदाधिकारियों द्वारा बाजार में बिक रहे गरुडपुराण, प्रेतखण्ड और **वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई का पुनर्मुद्रित नाग पब्लिकेशन्स, दिल्ली द्वारा प्रकाशित गरुडपुराण** को लेकर मिलाया गया। बाजार में बिक रहे गरुडपुराण-प्रेतखण्ड मनगढ़न्त पाया गया है।

सनातन धर्मियों के लिये जीवनकाल का ये सबसे बड़ा अधर्म है क्योंकि सभी सत्कर्मों को करके मनुष्य पितृ ऋण को पूर्ण करके सद्गति प्राप्त करना चाहता है। सम्पूर्ण सनातनियों के लिये ये अत्यन्त गम्भीर विषय है कि श्राद्धकर्ता अपने सम्पूर्ण पुण्यों का क्षय मात्र मनगढ़न्त गरुडपुराण का पाठ करके कर लेता है। ब्राह्मण द्वारा सभी कर्म सत्यता से करने के बाद भी असत्य गरुडपुराण के पाठ से पितृ को सद्गति नहीं दे पाता है। स्वयं मृत्योपरान्त प्रेतयोनि में भटकता रहता है। असत्य गरुडपुराण के पाठ को करने वाला ब्राह्मण भी दुर्गति को भोगता है।

यह एक अत्यन्त गम्भीर विषय है। यदि हम ऐसे मनगढ़न्त एवं झूठे गरुडपुराण के अंशों को श्रवण करेंगे तो असत्य ही जानेंगे, हमारे पितृ को मोक्ष नहीं मिल सकेगा फलस्वरूप पितृदोष विद्यमान् रहेगा। श्राद्धकर्ता पितृदोष के कारण रोग, व्याधि, दरिद्रता जैसे अनेक कारणों से निरन्तर कष्टों को भोगते हुये नरकगामी होगा।

व्यासकृत गरुडपुराण के ४९ अध्याय में से ज्ञान हेतु अध्याय-१० से अध्याय-४७ तक दिया जा रहा है। जिससे कि आप यमलोक की अनिवार्य भूमिका से अवगत हो सकें साथ ही आप चित्रगुप्तजी के

शक्ति एवं स्वरूपों से अवगत हो कर अपना जीवन उत्तम बना सकें।

गरूडपुराण के अध्याय २० श्लोक सं० ४२ के अनुसार अविधि पूर्वक श्राद्ध करने से मनुष्य प्रेतयोनि में ही भटकता रहता है, वह मुक्त नहीं होता है। व्यासकृत गरूडपुराण के अध्याय २१, २२, २३ एवं २७ के पाठ मात्र से प्राणी, प्रेतत्व से मुक्त होता है।

सनातन विधि को नकार कर ३ दिन तक मनगढ़न्त हवन करना भी अविधि है।

सनातन धर्म ट्रस्ट, गोरखपुर, गरुडपुराण प्रेतखण्ड के सम्पूर्ण ४९ अध्याय जनमानस के हितार्थ प्रकाशित करने की मंशा रखता है। इसपर कार्य चल रहा है। व्यासजी द्वारा रचित पूर्ण एवं शुद्ध गरूडपुराण प्रेतकल्प को ट्रस्ट द्वारा शीघ्र प्रकाशित किया जायेगा।

गरूडपुराण प्रेतखण्ड में जो प्राणियों का भोग दिया गया है, उसे स्वयं नारायण (विष्णु) ने गरुड को सुनाया है, इसमें जो लोक का नियम एवं भोग दिया गया है वह भगवान् चित्रगुप्त द्वारा ही बनाया गया है। जिसे आपने पूर्व में वराहपुराण के **नचिकेतः प्रयाणवर्णनम्** नामक अध्याय में पढ़ा है।

बाजार में विद्यमान मनगढ़न्त एवं झूठे गरुडपुराण का चित्र
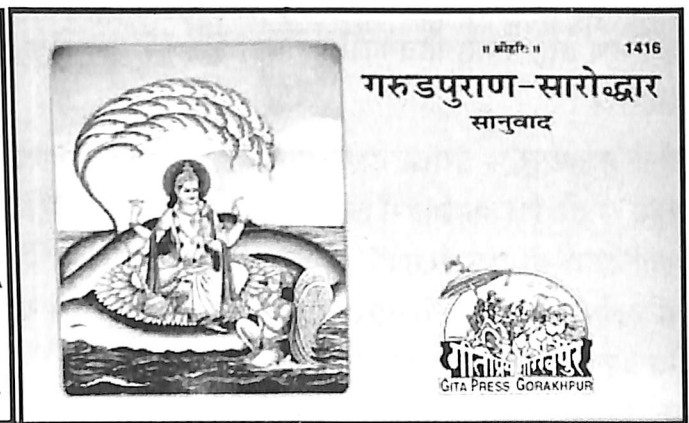
☞ बाजार में ऐसे ही गरुडपुराण उपलब्ध हैं, जिसका चित्र ऊपर दिया गया है। ये गरुडपुराण नारायण अंश व्यासजी द्वारा रचित गरुडपुराण का प्रेत खण्ड नहीं है। ये मनगढन्त और झूठा है, इस मनगढ़न्त १६ अध्यायी गरुडपुराणों का पाठ अपने पितृ की शांति के लिये कदापि न करें, यदि आपने ऐसा किया तो पितृदोषी होंगे।

☞ इस मनगढ़न्त गरुडपुराण का पाठ करने वाला ब्राह्मण भी दोषी होता है। ऐसे गरुडपुराण का पाठ कराने वाले ब्राह्मणों के घर में रोग, शोक जैसी अनेक व्याधियाँ विद्यमान रहती हैं। ऐसे ब्राह्मणों को कष्टों से घिरे हुये आप प्रत्यक्ष देख सकते हैं।

व्यासजी कृत गरुडपुराण, प्रेतखण्ड के अध्याय-१० से अध्याय-४७ को हिन्दी अनुवाद सहित आपके ज्ञान के लिये दिया जा रहा है। इसका वर्णन इस प्रकार है—

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-१०

गरुड उवाच–

सपिण्डीकरणे जाते आब्दिके च स्वकर्मभिः। देवत्वं वा मनुष्यत्वं पक्षित्वं वाऽऽप्नुयुर् नराः॥ १॥
तेषां विभिन्नाऽऽहाराणां श्राद्धं वै तृप्तिदं कथम्। यदप्यन्यैर् द्विजैर् भुक्तं हूयते यदि वाऽनले॥ २॥
शुभाषुभात्मकैः प्रेतैस् तद्दत्तं भुज्यते कथयम्। श्राद्धस्याऽऽवश्यकत्वं तु अमावास्यादिषु श्रुतम्॥ ३॥

गरुड ने कहा—सपिण्डीकरण और वार्षिक श्राद्ध होने पर मृत मनुष्य अपने कर्म से देवत्व में अथवा मनुष्यत्व में अथवा पक्षित्व में प्राप्त होंगे। विभिन्न प्रकार के आहार वाले उन देव-मनुष्य-पक्ष्यादियों के लिए श्राद्धकृत्य तृप्तिकारक कैसे हो सकता है? जो अन्य ब्राह्मणों से खाया गया है, अथवा आग में होम किया गया है वह भी देवादि का तृप्तिकारक कैसे हो सकता है? श्राद्ध में दिया गया वस्तु शुभ रूप में अथवा अशुभ रूप में प्राप्त परलोकगत जीवों से कैसे भोगा जाता है? अमावास्यादि कालों में श्राद्ध करने की आवश्यकता तो ब्राह्मणग्रन्थरूप श्रुतियों में और श्रुतितुल्य श्रौतसूत्र-गृह्यसूत्रादि में सुना गया है॥ १—३॥

श्रीभगवानुवाच–

प्रेतानां शृणु पक्षीन्द्र यथा श्राद्धं तु तृप्तिदम्। देवो यदपि जातोऽयं मनुष्य कर्मयोगतः॥ ४॥
तस्याऽन्नममृतं भूत्वा देवत्वेऽप्यनुयाति च। गान्धर्व्ये भोगरूपेण पशुत्वे च तृणं भवेत्॥ ५॥
श्राद्धं हि वायुरूपेण नागत्वेऽप्यनुगच्छति। फलं भवति पक्षित्वे राक्षसेषु तथाऽऽमिषम्॥ ६॥
दानवत्वे तथा मांसं प्रेतत्वे रुधिरं तथा। मनुष्यत्वेऽन्नपानादि बाल्ये भोगरसो भवेत्॥ ७॥

श्रीभगवान् ने कहा—हे पक्षियों में श्रेष्ठ गरुड, जिस प्रकार श्राद्ध परलोक में गए हुए जीवों के लिए तृप्तिदायक होता है, उस प्रकार को सुनो। यदि यह मनुष्य अपने कर्म से देवता हुआ है तो उस के लिए श्राद्ध में दिया हुआ अन्न अमृत होकर देवत्व में अनुगमन करता है, गन्धर्वत्व में भी भोगरूप से अनुगमन करता है, परलोकगत जीव को पशुत्व प्राप्त होने पर तृण (घास) हो जाता है। नागत्व प्राप्त होने पर भी श्राद्ध में दिया गया अन्न वायुरूप होकर अनुगमन करता है। पक्षित्व प्राप्त होने पर श्राद्ध का अन्न फल हो जाता है, यदि परलोक में गया हुआ मनुष्य अपने कर्म से राक्षसों के बीच में जन्मा है तो श्राद्ध का अन्न आमिष (अपक्व मांस) हो जाता है, दानवत्व प्राप्त होने पर मांस (पक्व मांस) हो जाता है, प्रेतत्व प्राप्त होने पर रुधिर हो जाता है। मनुष्यत्व में प्राप्त होने पर अन्नपानादि और बालकपन में भोगरस हो जाता है॥ ४—७॥

गरुड उवाच–

कथं कव्यानि दत्तानि हव्यानि च जनैरिह। गच्छन्ति पितृलोकं वा प्रापकः कोऽत्र गद्यते॥ ८॥
मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धमाप्यायनं यदि। निर्वाणस्य प्रदीपस्य तैलं संवर्द्धयेच् छिखाम्॥ ९॥
मृताश् च पुरुषाः स्वामिन् स्वकर्मजनितां गतिम्। गाहन्तस् ते कथं स्वस्य सुतस्य श्रेय आप्नुयुः॥ १०॥

गरुड ने कहा—इस लोक में मनुष्यों से पितरों के लिए दिए गए अन्न और होमे गए अन्न पितृलोक में कैसे जाते हैं? यहाँ पहुँचाने वाला कौन कहा जाता है? यदि मरे हुए जन्तुओं को भी श्राद्ध तृप्त करने वाला होगा तो बुझे गए दीप की ज्वाला को भी तैल बढाएगा, ऐसा तो ही नहीं सकता। हे स्वामिन्, अपने कर्म से प्राप्त गति में जाते हुए मनुष्य जो हैं, वे अपने पुत्र के पुण्य के फल को कैसे पा सकेंगे?॥ ८—१०॥

श्रीभगवानुवाच–

श्रुतेः प्रत्यक्षतस् तार्क्ष्यं प्रामाण्यं बलवत्तरम्। श्रुत्या तु बोधितार्थस्य पीयूषत्वादिरूपता॥ ११॥

नामगोत्रं पितृणां वै प्रापकं हव्यकव्ययोः। श्राद्धस्य मन्त्रास् तद्वत् तु प्रापकाश चैव भक्तितः॥ १२॥
अचेतनानि चैतानि प्रापयन्ति कथन्त्विति। सुपर्ण नाऽवगन्तव्यं प्रापकं वच्मि तेऽपरम्॥ १३॥

श्रीभगवान् ने कहा—हे गरुड, वेद की प्रामाणिकता प्रत्यक्षप्रमाण से भी अधिक बलवती है। वेद से बताए गए धर्म की अमृतादिरूपता है। पितरों के नाम और गोत्र का उच्चारण पितरों के उद्देश्य से होमे गए और दिए गए वस्तुओं को पहुँचाने वाला है। भक्तिपूर्वक उच्चरित श्राद्ध के मन्त्र भी उसी प्रकार पहुँचाने वाले हैं। अचेतन ये नाम और गोत्र तथा मन्त्र कैसे प्राप्त हो सकते हैं? ऐसा नहीं सोचना चाहिए, और भी पहुँचाने वाला तुम को बताता हूँ॥ ११—१३॥

अग्निष्वात्तादयस् तेषामाधिपत्ये व्यवस्थिताः। काले न्यायागतं पात्रे विधिना प्रतिपादितम्॥ १४॥
अन्नं नयन्ति तत्रैते जन्तुर् यत्रावतिष्ठते। नाम गोत्रं च मन्त्राश्च दत्तमन्नं नयन्ति ते॥ १५॥
अपि योनिशतं प्राप्तांस् तांस्तृप्तिरुपतिष्ठति। तेषां लोकान्तरस्थानां विविधैर् नामगोत्रकैः॥ १६॥
अपसव्यं क्षितौ दर्भे दत्ताः पिण्डास्त्रयस्तु वै। यान्ति तांस्तर्पयन्त्येवं प्रेतस्थानस्थितान् पितॄन्॥ १७॥

पितरों के अधिपति के रूप में रहने वाले अग्निष्वात्तादि जो हैं, वे न्यायपूर्वक आए हुए और शास्त्रविहित काल में सत्पात्र ब्राह्मण में दिए गए अन्न को, जहाँ परलोक गत प्राणी रहता है, वहाँ ले जाते हैं। श्राद्ध में प्रयुक्त पितरों के नाम और गोत्र तथा मन्त्र जो हैं, वे भी दिए गए अन्न को पितरों को ले जाते हैं। जो सैकड़ों योनियों में प्राप्त पितर लोग हैं, उनको भी श्राद्धदान से तृप्ति प्राप्त होती है। विविध नामों और गोत्रों से अपसव्य रीति से भूमि में बिछाए गए कुशों में दिए गए तीन पिण्ड तो दूसरे लोक में रहते हुए उन पितरों के पास जाते ही हैं और प्रेतस्थान में रहे हुए जो पितर लोग हैं, उनको इस प्रकार तृप्त करते हैं॥ १४—१७॥

अप्राप्तयातनास्थानाः श्रेष्ठा ये भुवि पञ्चधा। नानारूपास्तु जाता ये तिर्यग्योन्यादिजातिषु॥ १८॥
यदाहारा भवन्त्येते पितरो यत्र योनिषु। तासुतासु तदाहारः श्राद्धान्नमुपतिष्ठति॥ १९॥
यथा गोषु प्रष्टासु वत्सो विन्दति मातरम्। तथान्नं नयते विप्रो जन्तुर् यत्राऽवतिष्ठते॥ २०॥
पितरः श्राद्धभोक्तारो विश्वैर् देवैः सदा सह। एते श्राद्धं सदा भुक्त्वा पितॄन् सन्तर्पयन्त्यतः॥ २१॥

अपने कर्म के प्रभाव से दूसरे जन्म में नरक के यातनास्थानों में अप्राप्त तथा लोक में जन्मे हुए पाँच प्रकार के श्रेष्ठ प्राणी और जो भी तिर्यग्योन्यादि जातियों में जन्मे हुए नानारूप के अन्य प्राणी हैं, ये सब पितर लोग जिस योनि में जिस आहार वाले होते हैं, श्राद्ध में दिया गया अन्न उस उस आहार के रूप में उपस्थित होता है। जैसे गायों के झुण्ड के बीच में पड़ी हुई अपनी माता को बछड़ा खोजकर प्राप्त कर लेता है, वैसे ही श्राद्ध में भोजन करने वाला ब्राह्मण भी परलोक में गया हुआ प्राणी जहाँ रहता है, वहाँ श्राद्ध में दिए गए अन्न को पहुँचाता है। पितर लोग सदाकाल विश्वेदेवों के साथ में श्राद्ध का भोग करते हैं। अतएव ये विश्वेदेव ही श्राद्ध का भोग करके पितरों को तृप्त करते हैं॥ १८—२१॥

वसुरुद्रादितिसुताः पितरः श्राद्धदेवताः। प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितॄञ् श्राद्धेषु तर्पिताः॥ २२॥
आत्मानं गुर्विणी गर्भमपि प्रीणाति वै यथा। दोहदेन तथा देवाः श्राद्धैः स्वांश्च पितॄन् नृणाम्॥ २३॥
हृष्यन्ति पितरः श्रुत्वा श्राद्धकालमुपस्थितम्। अन्योन्यं मनसा ध्यात्वा सम्पतन्ति मनोजवम्॥ २४॥
ब्राह्मणैः सह चाऽश्नन्ति पितरो ह्यन्तरक्षिगाः। वायुभूताश्च तिष्ठन्ति भुक्त्वा यान्ति परां गतिम्॥ २५॥

श्राद्ध में सन्तृप्त किए गए श्राद्ध के देवता के रूप में रहने वाले वसु-रुद्र-आदित्यस्वरूप पितर लोग मनुष्य के पितरों को सन्तृप्त करते हैं। जैसे गर्भवती स्त्री दोहद (गर्भवती की अवस्था में हुई विशेष अभिलाषाओं) की

पूर्ति से अपने को और गर्भ को भी प्रसन्न करती है, वैसे ही देवता भी श्राद्धों से अपने को और मनुष्यों के पितरों को भी प्रसन्न करते हैं। श्राद्धकाल को उपस्थित सुनकर पितर लोग प्रसन्न होते हैं, वे एक दूसरे को मन में रखते हुए मन के वेग से तुल्य वेग से श्राद्ध में जुट जाते हैं। पितरलोग ब्राह्मणों के साथ में श्राद्ध में भोजन करते हैं, अन्तरिक्ष में चलने वाले वे वायुरूप में रहते हैं, श्राद्ध में भोजन करके परम गति को प्राप्त करते हैं॥ २२—२५॥

निमन्त्रितास्तु ये विप्राः श्राद्धपूर्वदिने खग। प्रविश्य पितरस् तेषु भुक्त्वा यान्ति स्वमालयम्॥ २६॥
श्राद्धकर्त्रा तु यद्येकः श्राद्धे विप्रो निमन्त्रितः। उदरस्थः पिता तस्य वामपार्श्वे पितामहः॥ २७॥
प्रपितामहो दक्षिणतः पृष्ठतः पिण्डभक्षकः। श्राद्धकाले यमः प्रेतान् पितॄंश् चापि यमालयात्॥ २८॥
विसर्जयति मानुष्ये निरयस्थांश् च काश्यप। क्षुधार्ताः कीर्तयन्तश् च दुष्कृतं च स्वयंकृतम्॥ २९॥
काङ्क्षन्ति पुत्रपौत्रेभ्यः पायसं मधुसंयुतम्। तस्मात् तांस् तत्र विधिना तर्पयेत् पायसेन तु॥ ३०॥

हे पक्षिन्, श्राद्ध से पूर्व के दिन में जो ब्राह्मण श्राद्ध में भाजन के लिए निमन्त्रित होते हैं, उन में प्रविष्ट होकर पितरलोग श्राद्ध में भोजन करके अपने स्थान को चले जाते हैं। यदि श्राद्धकर्ता ने श्राद्ध में एक ही ब्राह्मण को बुलाया है तो श्राद्धकर्ता का पिता उस ब्राह्मण के पेट में स्थित होंगे, वाम पार्श्व में पितामह (दादा) स्थित होंगे, दक्षिण पार्श्व में प्रपितामह (परदादा) स्थित होंगे और पिण्डभक्षक पितर पृष्ठभाग में स्थित होंगे। हे कश्यपसुत गरुड, श्राद्ध के समय में यमराज प्रेतों को, पितरों को नरकस्थ प्राणियों को भी यमलोक से मनुष्यलोक में जाने के लिए छोड़ देते हैं। भूख से पीड़ित वे अपने से किए गए पापों का कीर्तन करते हुए पुत्र-पौत्रों से शहद से युक्त खीर की अभिलाषा करते हैं। इसलिए श्राद्ध में उनको खीर से तृप्त करे॥ २६—३०॥

गरुड उवाच–

स्वामिन् केनापि ते दृष्टा आगताः पितरो द्विजे। लोकादमुष्मादागत्य भुञ्जन्तो भुवि मानद॥ ३१॥

गरुड ने कहा—हे मानद स्वामिन्, ब्राह्मण में आए हुए उस लोक से भूलोक में आकर श्राद्ध में भोजन करते हुए पितर लोग को किसी ने कभी देखा भी है क्या?॥ ३१॥

श्रीभगवानुवाच–

गरुत्मञ् छृणु वक्ष्यामि यथा दृष्टास् तु सीतया। पितरो विप्रदेहे वै श्वसुराद्यास् त्रयः क्वचित्॥ ३२॥
गृहीत्वा पितुराज्ञां वै रामो वनमुपागमत्। ततः पुष्करयात्रार्थं रामोऽयात् सीतया सह॥ ३३॥
तीर्थं चापि समागत्य श्राद्धं प्रारब्धवांस्तु सः। फलं पक्वन्तु जानक्या सिद्धं रामे निवेदितम्॥ ३४॥

श्रीभगवान् ने कहा—हे गरुड, सुनो, जिस प्रकार से श्वसुर इत्यादि तीन पितर लोगों को ब्राह्मण के देह में सीताजी ने कभी देखा था, उस बात को मैं बताऊँगा। पिताजी की आज्ञा को लेकर राम वन गए थे। **उस समय में राम सीता के साथ में पुष्करतीर्थ की यात्रा में गए थे। तीर्थ में पहुँचकर राम ने श्राद्ध का प्रारम्भ भी किया।** पक्व फल को लेकर सीता ने श्राद्धभोज्य अन्न सिद्ध होने की बात राम को निवेदित किया॥ ३२—३४॥

स्नातप्रियोक्तवाक्यात् तु सुस्नाता तमपालयत्। नभोमध्यगते सूर्ये काले कुतप आगते॥ ३५॥
आयाता ऋषयः सर्वे ये रामेण निमन्त्रिताः। तान् मुनीनागतान् दृष्ट्वा वैदेही जनकात्मका॥ ३६॥
रामाज्ञयाऽन्नमादाय परिवेष्टुमुपागता। अपासर्पत् ततो दूरे विप्रमध्ये तु संस्थिता॥ ३७॥
गुल्मैराच्छाद्य चात्मानं निगूढं सा स्थिता तदा। एकान्ते तु तदा सीतां ज्ञात्वा राघवनन्दनः॥ ३८॥
विमृश्य सुचिरं कालमिदं किमिति सत्वरम्। किञ्चित् क्वचिद् गता साध्वी त्रपायाः कारणेन हि॥ ३९॥
किं वा नभोजयन् विप्रान् सीतामन्वेषयाम्यहम्। विमृशन्नेवमेवं स स्वयं विप्रानभोजयत्॥ ४०॥

मध्याह्नस्नान किए हुए प्रिय राम के वाक्य से सम्यक् मध्याह्नस्नान करके सीताजी उस सिद्ध श्राद्धभोज्य अन्न की रक्षा करती हुई रही। सूर्य आकाश के मध्य में प्राप्त होने पर और कुतपसंज्ञक श्राद्धकाल आने पर, वे सब ऋषि जो राम से निमन्त्रित हुए थे, आ गए। आए हुए उन मुनियों को देखकर जनक की पुत्री विदेहदेश में उत्पन्न सीताजी राम की आज्ञा से अन्न लेकर ऋषियों को अन्न परोसने के लिए आईं। ब्राह्मणों के बीच में उपस्थित सीताजी एका एक वहाँ से हट गईं। उस समय में सीताजी अपने को झाड़ी से छिपाकर गुप्त होकर रह गईं। उस समय में सीता को एकान्त में रही हुई जानकर राम ने बहुत समयतक यह क्या है, ऐसा सोचकर फिर कुछ जल्द ही लज्जा के हेतु से साध्वी सीता कुछ काल के लिए कहीं गई है, क्या मैं ब्राह्मणों को भोजन कराना छोड़कर सीता का अन्वेषण करूँ, ऐसा सोचते हुए राम ने स्वयम् ब्राह्मणों को भोजन परोसा॥ ३५—४०॥

गतेषु द्विजमुख्येषु प्रियां रामोऽब्रवीदिदम्। कथं लतासु लीना त्वं मुनीन् दृष्ट्वा समागतान्॥ ४१॥
तत् सर्वं मम तन्वङ्गि कारणं वद मा चिरम्। एवमुक्ता तदा भर्त्रा सीता साऽधोमुखी स्थिता।
मुञ्चन्ती चाऽश्रुसङ्घातं राघवं वाक्यमब्रवीत्॥ ४२॥

ब्राह्मण लोग चले जाने पर राम ने प्रिया को यह कहा कि आए हुए मुनियों को देखकर तुम कैसे लताओं में छिप गई? हे तन्वङ्गि, वह सब मुझ को बताओ, देर न करो। पति से इस प्रकार कही गई सीता अधोमुख होकर रह गई और आँसू की झड़ी को छोड़ती हुई राम को बताने लगी।॥ ४१-४२॥

सीतोवाच–

शृणु त्वं नाथ यद् दृष्टमाश्चर्यमिह यादृशम्॥ ४३॥
पिता तव मया दृष्टो ब्राह्मणाग्रे तु राघवः। सर्वाभरणसंयुक्तो द्वौ चान्यौ च तथाविधो॥ ४४॥
दृष्ट्वा त्वत्पितरं चाऽहमपक्रान्ता तवाऽन्तिकात्। वल्कलाजिनसंवीता कथं राज्ञः पुरः प्रभो॥ ४५॥
भवामि रिपुवीरघ्न सत्यमेतदुदाहृतम्। स्वहस्तेन कथं देयं राज्ञे वा भोजनं मया॥ ४६॥
दासानामपि ये दासा नोपुभुञ्जन्ति कर्हिचित्। तृणपात्रे कथं तस्मै अन्नं दातुं हि शक्नुयाम्॥ ४७॥
याऽहं राज्ञा पुरा दृष्टा सर्वाभरणभूषिता। सा स्वेदमलदिग्धाङ्गो कथं यास्यामि भूपतिम्॥ ४८॥
अपकृष्टाऽस्मि तेनाऽहं त्रपया रघुनन्दन।

सीता ने कहा—हे नाथ, जैसा जो अनूठा यहाँ देखा गया, उस को आप सुनिये। ब्राह्मण के अग्रभाग में मुझ से आप के पिताजी, सभी आभूषणों से युक्त, रघुकुल दशरथ देखे गए। उसी प्रकार के अन्य दो पुरुष भी देखे गए। आप के पिताजी को देखकर मैं आप के समीप से दूर चली गई। हे वीरशत्रुओं को मारने वाले प्रभु! वल्कल और चर्म पहनने वाली मैं कैसे राजा के आगे हो जाऊँ, यह मैंने सत्य कहा, मुझसे अपने हाथों से राजा को भोजन कैसे दिया जाय। दासों के भी जो दास हैं, वे भी जो जैसा अन्न कभी भी खाते नहीं हैं, वैसा अन्न तृण के पात्र में उन को मैं कैसे दे सकूँगी। जो मैं पुराकाल में राजा से सम्पूर्ण आभूषणों से विभूषित रूप में देखी गई थी, वही मैं पसीने और मल से लिप्त अङ्ग वाली होकर राजा के समीप मैं कैसे जाऊँगी। हे रघुकुलपुत्र, उसी कारण मैं लज्जा से दूर हटी हूँ।॥ ४३—४८१/२॥

श्रीभगवानुवाच–

इति श्रुत्वा प्रियावाक्यं रामो विस्मितमानसः॥ ४९॥
आश्चर्यमिति तज् ज्ञात्वा तदा स्वस्थानमागमत्। सीतया पितरो दृष्टा यथा तत् ते निवेदितम्॥ ५०॥
अपरं श्राद्धमाहात्म्यं किञ्चिच् छृणु समासतः। अमावस्यादिने प्राप्ते गृहद्वारे समास्थिताः॥ ५१॥

वायुभूताः प्रवाञ्छन्ति श्राद्धं पितृगणा नृणाम्। यावदस्तमयं भानोः क्षुत्पिपासासमाकुलाः॥ ५२॥
ततश् चास्तं गते सूर्ये निराशा दुःखसंयुताः। निःश्वसन्तश् चिरं यान्ति गर्हयन्तस् तु वंशजम्॥ ५३॥

श्रीभगवान् ने कहा—प्रिया का ऐसा वाक्य सुनकर विस्मित चित्त वाले राम उस को आश्चर्य ही है, ऐसा जानकर उस समय में अपने स्थान में आ गए। जैसे सीता से पितर लोग देखे गए थे, वह तुम को विदित करा दिया गया। और भी कुछ श्राद्धमाहात्म्य सङ्क्षेपसे सुनो। अमावस के दिन आने पर मनुष्यों के पितर लोग वायु के रूप में भूख और प्यास से पीड़ित होते हुए सूर्य के अस्त होकर बहुत समयतक लम्बी-लम्बी साँस छोड़ते हुए और अपनी वंशज सन्तति की निन्दा करते हुए चले जाते हैं॥ ४९—५३॥

तस्माच् छ्राद्धं प्रयत्नेन अमायां कर्तुमर्हति। यदि श्राद्धं प्रकुर्वन्ति पुतत्राद्यास् तस्य बान्धवाः॥ ५४॥
उद्धृता ये गयाश्राद्धे ब्रह्मलोकं च तैः सह। भजन्ते क्षुत्पिपासा वा न तेषां जायते क्वचित्॥ ५५॥
तस्माच्छ्राछ्धं प्रयत्नेन सम्यक् कुर्याद् विचक्षणः। तस्माच्छ्राद्धं चरेद् भक्त्या शाकैरपि यथाविधि॥ ५६॥
कुर्वीत समये श्राद्धं कश्चिन् न सीदति। आयुः पुत्रान् यशः स्वर्गं कीर्तिं पुष्टिं बलं श्रियम्॥ ५७॥
पशून् सौख्यं धनं धान्यं प्राप्नुयात् पितृपूजनात्। देवकार्यादपि सदा पितृकार्यं विशिष्यते॥ ५८॥

अतएव मनुष्य को अमावस के दिन में प्रयत्नपूर्वक श्राद्ध करना चाहिए। यदि उनके पुत्र बान्धव श्राद्ध करते हैं तो पितर लोग जो गया श्राद्ध से उद्धृत पितर लोग हैं, उनके साथ में ब्रह्मलोक को जाते हैं, उन को कहीं भी भूख और प्यास नहीं लगती हैं। इसलिए विचारशील मनुष्य (अमावस) प्रयत्नपूर्वक अच्छी तरह उत्तम भोज्यपेयों से श्राद्ध करे। इसलिए (अमावस में) शास्त्र के विधान के अनुरूप अच्छा भोज्य-पेय न मिलने पर शाकों से भी भक्तिपूर्वक श्राद्ध करे। समय में श्राद्ध करे, श्राद्ध करने से कुल में कोई भी दुःखी नहीं रहता है। पितरों के पूजन से मनुष्य आयु, पुत्र, यश, स्वर्ग, कीर्ति, पुष्टि, बल, लक्ष्मी, पशु, सुख, धन, धान्य सब कुछ पा सकता है। सर्वदा ही देवकार्यों से पितृकार्य अधिक महत्वपूर्ण होता है॥ ५४—५८॥

देवताभ्यः पितृणां हि पूर्वमाप्यायनं शुभम्। ये यजन्ति पितृन् देवान् ब्राह्मणांश् च हुताशनम्॥ ५९॥
सर्वभूतान्तरात्मानं मामेव हि यजन्ति ते। स्मार्तेन विधिना श्राद्धं कृत्वा स्वविभवोचितम्॥ ६०॥
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत् प्रीणाति मानवः। अन्नप्रकिरणं यत् तु मनुष्यैः क्रियते भुवि॥ ६१॥
तेन तृप्तिमुपायान्ति ये पिशाचत्वमागताः। यच् चाम्बु स्नानवस्त्रेभ्यो भूमौ पतति खेचर॥ ६२॥
तेन ये तरुतां प्राप्तास् तेषां तृप्तिः प्रजायते। यानि गन्धाम्बूनि चैव पतन्ति धरणीतले॥ ६३॥
तेन चाऽऽप्यायनं तेषां ये देवत्वमुपागताः। ये चापि स्वकुलाद् बाह्याः क्रियाऽयोग्या ह्यसंस्कृताः॥ ६४॥
विपन्नास्ते तु विकिरसम्मार्जनजलाशिनः। भुक्त्वा चाऽऽचमनं यच्च जलं यच्चांह्रिसेवितम्॥ ६५॥
ब्राह्मणानां तथैवाऽन्यत् तेन तृप्तिं प्रयान्ति वै। पिशाचत्वमनुप्राप्ताः कृमिकीटत्वमेव ये॥ ६६॥

देवताओं से पूर्व पितरों का आप्यायन (तृप्तीकरण) शुभ होता है। जो मनुष्य पितरों का, देवताओं का, ब्राह्मणों का, और अग्नि का यजन-पूजन करते हैं, वे सब ही सभी प्राणियों के अन्तरात्मा के रूप में स्थित मेरा (विष्णु का) ही यजन-पूजन करते हैं। स्व-स्व गृह्यसूत्रादिरूप स्मृति में बताए गए विधि से अपनी सम्पत्ति के अनुरूप श्राद्धकर्म करके मनुष्य ब्रह्माजी से लेकर तृणगुच्छतक के जगत् को तृप्त करता है। श्राद्ध में मनुष्यों से जो अन्न भूमि में बिखेरा जाता है, उससे जो पिशाचत्व में प्राप्त पितर लोग हैं, वे तृप्त होते हैं। हे आकाशचारी पक्षिन्, श्राद्ध के लिए स्नान करते समय स्नान के वस्त्रों से जो जल भूमि में गिरता है, उससे जो वृक्ष के रूप में प्राप्त पितर लोग हैं, उनकी तृप्ति होती है। श्राद्ध के समय में जो गन्धवासित जल भूमि में गिरता है,

उससे जो देवत्व में प्राप्त पितर लोग हैं, उन का आप्यायन (तृप्तीकरण) होता है। जो पितरलोग अपने कुल से बहिष्कृत हुए हैं, क्रिया के अयोग्य हैं, संस्काररहित अवस्था में मृत हैं वे सब विकर के अन्न को और सम्मार्जन के जल को भोगने वाले होते हैं। श्राद्ध में भोजन करके ब्राह्मणों से आचमन में प्रयुक्त जो जल होता है, पादधावन का जो जल होता है, ब्राह्मणों से उपभुक्त जो अन्य द्रव्य होता है, उन से जो पितर लोग पिशाचत्व में और कृमिकीटत्व में प्राप्त हुए हैं, वे तृप्ति पाते हैं॥ ५९—६६॥

उद्धतेष्वन्नपिण्डेषु भुवि ये चाऽन्नकाङ्क्षिणः। तैरेवाऽऽप्यायनं तेषां ये मनुष्यत्वमागताः॥ ६७॥
एवं वै यजमानानां तेषां चैव द्विजन्मनाम्। कश्चिज् जलान्नविक्षेपः शुचिरुच्छिष्ट एव वा॥ ६८॥
तेनाऽन्नेन कुले तेषां ये वै जात्यन्तरं गताः। भवत्याप्यायनं तेषां सम्यक् श्राद्धे कृते सति॥ ६९॥
अन्यायोपार्जितैर् द्रव्यैर् यच्छ्राद्धं क्रियते नरैः। तृप्यन्ति तेन चण्डाल-पुक्कसाद्युपयोनिषु॥ ७०॥

अन्न के पिण्ड उत्थापित होने पर इस लोक में जो अन्न चाहने वाले लोग श्राद्धशेष अन्न खाते हैं, उन से उन पितरों का आप्यायन (तृप्तीकरण) होगा, जो मनुष्यत्व में आ गए हैं। अच्छी तरह से श्राद्ध करने पर श्राद्ध के कर्ताओं का और श्राद्धभोजी ब्राह्मणों का शुद्ध अथवा जूठा भी जो कोई भी जल का और अन्न का विक्षेप होता है उस जल से और अन्न से यजमानों के कुल में जो कोई भी दूसरे जन्म में प्राप्त पितर लोग होते हैं, उन सब का आप्यायन (तृप्तीकरण) होता है। मनुष्यों द्वारा अन्याय से उपार्जित पदार्थों से जो श्राद्ध किया जाता है, उस से चाण्डाल, पुक्कस इत्यादि उपयोनि में प्राप्त पितर लोग तृप्त होते हैं॥ ६७—७०॥

एवं सम्प्राप्यते पक्षिन् दत्तमिह बान्धवैः। श्राद्धं कुर्वद्भिरन्नाम्बुशाकैस् तृप्तिर् हि जायते॥ ७१॥
एतत् ते सर्वमाख्यातं यन् मां त्वं परिपृच्छसि। सद्यो देहान्तरप्राप्तिर् विलम्बेनाऽवनीतले॥ ७२॥
पृष्टवानसि तत् तेऽहं प्रवक्ष्यामि समासतः। सद्यो विलम्बितं चैवोभयथापि कलेवरम्॥ ७३॥
यतो हि मर्त्यः प्राप्नोति तद्विशेषं च मे शृणु। अधूमकज्योतिरिवाङ्गुष्ठमात्रः पुमांस्ततः॥ ७४॥
देहमेकं सद्य एव वायवीयं प्रपद्यते। यथा तृणजलौका हि पश्चात् पादं तदोद्धरेत्॥ ७५॥
स्थितिरग्न्यस्य पादस्य यदा जाता दृढा भवेत्। एवं देही पूर्वदेहं समुत्सृजति तं यदा॥ ७६॥

हे पक्षिन्, श्राद्ध करने वाले बान्धवों से जो दिया जाता है, इस प्रकार पितरों से प्राप्त किया जाता है, श्राद्ध में दिए गए अन्न, जल और शाक इत्यादि से पितरों की तृप्ति होती ही है, जो मुझ को तुम पूछते हो यह सब तुम को बता दिया। भूमितल में मरने के बाद तत्काल दूसरे देह की प्राप्ति होती है अथवा विलम्ब से? यह प्रश्न जो तुमने पूछा है, उस का उत्तर सङ्क्षेप से मैं तुम को बताऊँगा। चूँकि मरा हुआ मनुष्य तत्काल भी दूसरा देह पाता हे, विलम्ब से भी दूसरा देह पाता है, उस में जो विशेष बात है, उस को भी मुझसे सुनो। **मरने पर धूम से रहित ज्योति के सदृश ''अङ्गुष्ठपरिमाण'' का जीव एक वायवीय देह को तत्काल पाता है।** जैसे जोंक अगले पाँव की स्थिति जब दृढ़ होती है, तब ही पिछले पाँव को उठाती है, वैसे ही जीव भी भोग के लिए आगे दूसरा वायवीय देह जब उपस्थित होगा, तब ही उस पूर्वदेह को छोड़ देता है॥ ७१—७६॥

भोगार्थमग्रे स्याद् देहो वायवीय उपस्थितः। विषयग्राहकं यद्वन् म्रियमाणस्य चेन्द्रियम्॥ ७७॥
निर्व्यापारं तच् च देहे वायुनैव स गच्छति। शरीरं यदवाप्नोति तच् चाप्युत्क्राम्यति स्वयम्॥ ७८॥
गृहीत्वा स्वं विनिर्याति जीवो गर्भ इवाऽऽशयात्। उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम्॥ ७९॥
विमूढा नाऽनुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः। आतिवाहिकमित्येवं वायवीयं वदन्ति हि॥ ८०॥

मरते हुए मनुष्य का विषयग्राहक जो इन्द्रिय होता है, वह जैसे ही व्यापाररहित होकर देह में रहता है, तब ही जीव वायु के साथ में जाता है और जो आगे वायवीय शरीर पाता है, स्वयं उसी में सङ्क्रान्त हो जाता है। गर्भ जैसे गर्भाशय से अपने इन्द्रियों को लेकर निकलता है, वैसे ही जीव भी पूर्वशरीर से अपने इन्द्रियादि को लेकर निकलता है। निकलते हुए जीव को अथवा शरीर में स्थित जीव को अथवा भोग करते हुए जीव को अथवा गुणों से युक्त जीव को भी मूढ लोग नहीं देख सकते हैं, ज्ञानचक्षु से युक्त पुरुष तो देखते ही हैं। वायवीय देह को आतिवाहिक देह कहते हैं॥ ७७—८०॥

एवं तु यातुधानानां तमेव च वदन्ति हि। सुपर्ण ईदृशो देहो नृणां भवति पिण्डजः॥ ८१॥
पुत्रादिभिः कृताश् चेत् स्युः पिण्डो दश दशाहिकाः। पिण्डजेन तु देहेन वायुजश् चैकतां व्रजेत्॥ ८२॥
पिण्डजो यदि नैव स्याद वायुजोऽर्हति यातनाम्। देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा॥
तथा देहान्तरप्राप्तिः पक्षीन्द्रेत्यवधारय॥ ८३॥
वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥ ८४॥
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहतिपावकः। न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥ ८५॥
वायवीयां तनुं याति सद्य इत्युक्तमेवते। प्राप्तिर् विलम्बतो यस्य तं देहं खलु मे शृणु॥ ८६॥
क्वचिद् विलम्बतो देहं पिण्डजं स समाप्नुयात्। अथो गतो याम्यलोकं स्वीयकर्मानुसारतः॥ ८७॥
चित्रगुप्तस्य वाक्येन निरयाणि भुनक्ति सः। यातनाः समवाप्याऽथ पशुपक्ष्यादिकीं तनुम्॥ ८८॥
यां गृह्णाति नरः सा स्यान् मोहेन ममतास्पदम्। शुभाशुभं कर्मफलं भुक्त्वा मुच्येत मानवः॥ ८९॥

इसी प्रकार **भूत-प्रेत-पिशाचों का भी केवल वायवीय देह होने की बात विज्ञ लोग करते हैं। हे गरुड, मनुष्यों का पिण्डों से उत्पन्न देह भी ऐसा (वायवीयरूप) ही होता है।** यदि पुत्रादि से दश दिनों के दश पिण्ड किए जाते हैं, तो उन पिण्डों से उत्पन्न देह से वायवीय शरीर भी एकता में जाता है। यदि पिण्डों से होने वाला शरीर (पिण्डदानादि के अभाव से) उत्पन्न नहीं होगा तो वायवीय शरीर ही यातना को भोगता है, हे पक्षियों में श्रेष्ठ, जैसे जीव का इस देह में बालकपन से जवानी में जाना और जवानी से वृद्धत्व में जाना होता है, वैसे ही एक शरीर से दूसरे शरीर में जाना भी होता है, इस बात का तुम निश्चय करो। **जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोड़कर अन्य नवीन वस्त्र लेता है, वैसे ही जीव पुराने शरीरों को छोड़कर अन्य नवीन शरीर में जाता है। इस जीवात्मा को शस्त्र नहीं छेदते हैं, आग नहीं जलाती है, इसको जल भी गीला नहीं करता है और वायु भी नहीं सुखाता है।** मरा हुआ पुरुष तत्काल ही वायवीय शरीर में जाता है, यह बात तो तुम को बताई ही गई है। जिस देह की प्राप्ति विलम्ब से होती है उस देह को मुझसे सुनो। कहीं-कहीं मृत व्यक्ति पिण्डों से होने वाले शरीर को विलम्ब से प्राप्त करेगा। **"यमलोक में गया हुआ प्राणी अपने कर्म के अनुसार, चित्रगुप्तजी के वचनों से नरकों को भोगता है।"** नरक में यातना भोगने के बाद प्राणी मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि का जो शरीर लेता है, मोहवश वह शरीर भी ममता का स्थान हो जाता है। मनुष्य अपने कर्म के शुभ अथवा अशुभ फल का भोग करके उस कर्म के परिणाम से मुक्त होता है॥ ८१—८९॥

☞ देवकीनन्दन कृष्ण ने अर्जुन को यही बताया था। अर्जुन को रण में दिया गया संदेश जिसे गीता कहते हैं, कृष्ण का स्वयं नहीं रचा है, बल्कि लक्ष्मीपति विष्णु द्वारा गरुड को बताया गया संदेश है।

गरुड उवाच–

तीर्त्वा दुःखभवाम्भोधिं भवन्तं कथमाप्नुयात्। बहुपातकयुक्तोऽपि तद् वदस्व दयानिधे॥ ९०॥
भूयो दुःखस्य संसर्गो नरस्य न भवेद् यथा। ब्रूहि शुश्रूषमाणस्य पृच्छतो मे रमापते॥ ९१॥

गरुड ने कहा—हे दया के निधान, बहुत से पातकों से युक्त मनुष्य भी दुःखपूर्ण संसारसागर से पार होकर आप को कैसे पा सकेगा। इस बात को बताइए। हे रमापते (लक्ष्मी के पति), मनुष्य का फिर दुःख से सम्पर्क कैसे नहीं होगा, इस बात को पूछने वाले और सुनने की इच्छा रखने वाले मुझ को बताइए॥ ९०-९१॥

श्रीकृष्ण उवाच–

स्वेस्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः। स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु॥ ९२॥
कर्मविभ्रष्टकालुष्यो वासुदेवानुचिन्तया। बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्याऽऽत्मानं नियम्य च॥ ९३॥
शब्दादीन् विषयांस् त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च। विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः॥ ९४॥
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः। अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्॥ ९५॥
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते। अतः परं नृणां कृत्यं नास्ति कश्यपनन्दन॥ ९६॥

श्रीकृष्ण ने कहा—अपने-अपने शास्त्रव्यवस्थापित कर्म में रमने वाला मनुष्य मुक्ति को प्राप्त करता है। अपने कर्म में अत्यन्त रमने वाला मनुष्य जैसे मुक्ति को पाता है उस को सुनो-अपने शास्त्रोक्त कर्मों से शरीर-वचन-चितों की कलुषता को हटाने वाला मनुष्य वासुदेव (परमात्मा) के चिन्तन से विशुद्ध बुद्धि से युक्त होकर धैर्य से मन को वश में करके इन्द्रियों के शब्द स्पर्श इत्यादि विषयों का त्याग करके राग और द्वेष को हटाकर एकान्त में रहने वाला, लघुभोजन करने वाला; वाणी, शरीर और मन को संयत रखने वाला, ध्यान-योग में लगे रहनेवाला और नित्य वैराग्य का अच्छी तरह आश्रय करने वाला मनुष्य अहङ्कार, बल, गर्व, कामनाएँ, क्रोध और जनधनादिसङ्ग्रह को छोड़कर किसी भी वस्तु में ममता न रखकर शान्त होने पर ब्रह्मभाव में प्राप्त हो सकता है। हे कश्यपपुत्र, इस के बाद मनुष्यों का कोई कर्तव्य नहीं रहता है॥ ९२—९६॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-११

गरुड उवाच–

मानुषत्वं लभेत् कस्मान् मृत्युमाप्नोति तत् कथम्। म्रियते कः सुरश्रेष्ठ देहमाश्रित्य कुत्रचित्॥ १॥
इन्द्रियाणि कुतो यान्ति ह्यस्पृश्यः स कथं भवेत्। क्व कर्माणि कृतानीह कथं भुङ्क्ते प्रसर्पति॥ २॥
प्रसादं कुरु में मोहं छेत्तुमर्हस्यशेषतः। काश्यपोऽहं सुरश्रेष्ठ विनतागर्भसम्भ्वः॥
यमलोकं कथं यान्ति विष्णुलोकं च मानवाः॥ ३॥

गरुड ने कहा—हे देवताओं में श्रेष्ठ, जीव मनुष्यत्व को किस कारण से प्राप्त करता है? उस लोकप्रसिद्ध मृत्यु को कैसे प्राप्त करता है? देह में आश्रित होकर कहीं भी कौन मरता है? इन्द्रियाँ कहाँ जाती हैं? वह कैसे अस्पृश्य हो जाता है? इस गतिशील संसार में अपने किए गए कर्मों के फल को जीव कहाँ और कैसे भोगता है? कैसे चलता है? हे देवताओं में श्रेष्ठ, मैं विनता के गर्भ से उत्पन्न कश्यपपुत्र हूँ, मुझे अनुग्रह कीजिए, मेरे अज्ञान को निश्शेष करके दूर कीजिए। मनुष्य कैसे यमलोक में जाते हैं और कैसे विष्णुलोक में जाते हैं?॥ १—३॥

श्रीकृष्ण उवाच–

परस्य योषितं हत्वा ब्रह्मस्वमपहृत्य च॥ ४॥

अरण्ये निर्जने देशे जायते ब्रह्मराक्षसः। हीनजाती प्रजायेत रत्नानामपहारकः॥ ५॥
ययं काममभिध्यायेत् स तल्लिङ्गोऽभिजायते। नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः॥ ६॥
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः। वाक् चक्षुर् नासिका कर्णौ गुदं मूत्रस्य सञ्चरः॥ ७॥
अण्डजादिकजन्तूना छिद्राण्येतानि सर्वशः। आनाभेर् मूर्धपर्यन्तमूर्ध्वच्छिद्राणि चाऽष्ट वै॥ ८॥

श्रीकृष्ण ने कहा—दूसरे की स्त्री का हरण करके और दूसरे के धन का अपहरण करके भी मनुष्य दूसरे जन्म में वन में निर्जन स्थल में ब्रह्मराक्षस हो जाता है। रत्नों को चुराने वाला नीच जाति में जन्म पाता है। मरण के समय में मनुष्य जिस-जिस वस्तु का ध्यान करता है, दूसरे जन्म में उसी-उसी वस्तु के चिन्ह से युक्त होकर जन्म लेता है। इस जीवात्मा को शस्त्र नहीं छेदते हैं, अग्नि भी इस को नहीं जलाती है, इस को जल भी गीला नहीं करता है और वायु भी इस को नहीं सुखाता है मुख, आँखें, नाक, कान, गुदा, मूत्रमार्ग ये अण्डज जरायुज इत्यादि प्राणियों के शरीर में वर्तमान सब छिद्र हैं। नाभि से मूर्धातक आठ ऊर्ध्वछिद्र हैं॥ ३—८॥

सन्तः सुकृतिनो मर्त्या ऊर्ध्वच्छिद्रेण यान्ति वै। मृतामहे वार्षिकं यावद् यथोक्तविधिना खग॥ ९॥
कुर्यात सर्वाणि कर्माणि निर्धनोऽपि हि मानवः। देहे यत्र वसेत् जन्तुस् तत्र भुङ्क्ते शुभाशुभम्॥ १०॥
मनोवाक्कायजान् दोषांस् तथा भुङ्क्तेखगेश्वर। मृतः स सुखमाप्नोति मायापाशैर् न बध्यते।
पाशबद्धो नरो यस्तु विकर्मनिरतो भवेत्॥ ११॥

सन्त (परमात्मा को और उस को प्राप्त करने का वर्णाश्रमधर्मपालनादि वैदिक मार्ग के अस्तित्व को स्वीकार करने वाले) और सुकर्म करने वाले मरण के समय में ऊर्ध्वच्छिद्र से शरीर से निकलते हैं। हे पक्षिन्, निर्धन मनुष्य भी वार्षिकतक मृततिथि में शास्त्र में बताए गए विधि से सभी कर्म करे। जीव जिस देह में वास करेगा वहीं अपने कर्मों का शुभ अशुभ फल भोगेगा। हे पक्षियों के स्वामिन्, उसी प्रकार जीव उस शरीर में मन, वचन तथा शरीर में उत्पन्न दोषों का भोग करता है। जो मनुष्य मायापाशों से नहीं बँधता है, वह मरने पर सुख पाता है, जो मनुष्य मायापाशों से बँधा गया है, वह तो अशास्त्रीय कर्मों में रमता है (और उस से मरने पर दुःख पाता है)॥ ९—११॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-१२

श्रीकृष्ण उवाच-

एवं ते कथितस् ताक्ष्र्य जीवितस्य विनिर्णयः। मानुषाणां हितार्थाय प्रतत्वविनिवृत्तये॥ १॥
चतुरशीतिलक्षाणि चतुर्भेदाश् च जन्तवः। अण्डजाः स्वेदजाश् चैव उद्भिजाश् च जरायुजाः॥ २॥
एकविंशतिलक्षाणि अण्डजाः परिकीर्तिताः। स्वेदजाश् च तथा प्रोक्ता उद्भिज्जाश् च क्रमेण तु॥ ३॥
जरायुजास् तथा प्रोक्ता मनुष्याद्यास्तथा परे। सर्वेषामेव जन्तूना मानुषत्वं हि दुर्लभम्॥ ४॥

श्रीकृष्ण ने कहा—हे गरुड, मनुष्यों के हित के लिए और प्रेतत्व की निवृत्ति के लिए इस प्रकार से जीवन का निर्णय तुम को बताया गया। जन्तु चौरासी लाख प्रकार के और चार श्रेणी के हैं। जन्तु कोई अण्डों से निकलने वाले, कोई पसीने से उत्पन्न होने वाले, कोई भूमि को वेध कर निकलने वाले और जरायु (गर्भ की ऊपर की झिल्ली) से निकलने वाले हैं। अण्डों से निकलने वाले जन्तु इक्कीस लाख बताए गए हैं। क्रमशः पसीने से निकलने वाले और भूमि को वेध कर निकलने वाले भी उतने ही बताए गए हैं। मनुष्य इत्यादि जरायु से निकलने वाले अन्य प्राणी भी उतने ही बताए गए हैं। सभी जन्तुओं के लिए मनुष्यत्व दुर्लभ है॥ १—४॥

पञ्चेन्द्रियनिधानत्वं महापुण्यैरवाप्यते। ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रास् तत्परजातयः॥ ५॥

रजकश् चर्मकारश् च नटो वरुड एव च। कैवर्त-मेद-भिल्लाश् च सप्तैते ह्यन्त्यजाः स्मृताः ॥ ६ ॥
म्लेच्छ-डुम्ब-विभेदेन जातिभेदास्त्वनेकशः। जन्तूनामेव सर्वेषां जातिभेदाः सहस्रशः ॥ ७ ॥
जन्तूनामेव सर्वेषां भेदाश् चैव सहस्रशः। आहारो मैथुनं निद्रा भयं क्रोधस् तथैव च ॥ ८ ॥
सर्वेषामेव जन्तूना विवेको दुर्लभः परः। एकपादादि-रूपेण देहभेदास् त्वनेकशः ॥ ९ ॥

पाँच ज्ञानेन्द्रियों का आश्रयरूप मनुष्यशरीर बड़े पुण्यों से पाया जाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तत्तद्-गुणकर्मों में परायण जातियाँ हैं। रजक, चर्मकार, नट, वरुड, कैवर्त, मेद और झिल्लन ये सात अन्त्यज समझे गए हैं। म्लेच्छ, डुम्ब इत्यादि भेदों से मनुष्य जातिभेद अनेक हैं। सभी जन्तुओं के जाति भेद हजारों हैं। सभी जन्तुओं के व्यक्तिभेद भी हजारों हैं। आहार, मैथुन, निद्रा, भय और क्रोध सभी जन्तुओं में होता हैं, किन्तु विवेक परम दुर्लभ होता है। एक पैर वाले, दो पैर वाले इत्यादि प्रकार के देहों के भेद अनेक हैं ॥ ५—९ ॥

कृष्णसारो मृगो यत्र धर्मदेशः स उच्यते। ब्रह्माद्या देवताः सर्वास् तत्र तिष्ठन्ति सर्वशः ॥ १० ॥
भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां मतिजीविनः। मतिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥ ११ ॥
मानुष्यं यः समासाद्य स्वर्गमोक्षैकसाधकम्। तयोर् न साधयेदेकं तेनाऽऽत्मा वञ्चितो ध्रुवम् ॥ १२ ॥
इच्छति शती सहस्रं सहस्री लक्ष्मीहते कर्तुम्। लक्षाधिपती राज्यं राजापि सकलां धरां लब्धुम् ॥ १३ ॥

जिस देश में कृष्णसार मृग होता है, वह देश धर्मकृत्य के लिए योग्य देश कहा जाता है। उस देश में ब्रह्मादि सब देवता सर्वांश में वास करते हैं। पदार्थों में प्राणी श्रेष्ठ हैं, प्राणियों में बुद्धिजीवी प्राणी श्रेष्ठ हैं, बुद्धियुक्त प्राणियों में मनुष्य श्रेष्ठ हैं, मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ समझे गए हैं। जो प्राणी स्वर्ग का और मोक्ष का एकमात्र साधक मनुष्यत्व को पाकर भी स्वर्ग और मोक्ष में से एक को भी सिद्ध नहीं करेगा, उसने अवश्य ही अपने को वञ्चित किया। सौ निष्क (सोना) का स्वामी हजार निष्क (सोना), हजार निष्क का स्वामी लाख निष्क (सोना), लाख निष्क (सोना) का स्वामी राज्य पाना चाहता है, राजा भी सम्पूर्ण पृथ्वी को पाना चाहता है ॥ १०—१३ ॥

चक्रधरोऽपि सुरत्वं सुरभावे सकलसुरपतिर् भवितुम्। सुरपतिरूर्ध्वगतित्वं तथापि न निवर्तते तृष्णा ॥ १४ ॥
तृष्णया चाभिभूतम तु नरकं प्रतिपद्यते। तृष्णामुक्तास् तु ये केचित् स्वर्गवासं लभन्ति ते ॥ १५ ॥
आत्माधीनः पुमालूँ लोके सुखी भवतिनिश्चितम्। शब्दः स्पर्शश् च रूपं च रसो गन्धश् च तद्गुणाः ॥ १६ ॥
तथा च विषयाधीनो दुःखी भवति निश्चितम् ॥ १७ ॥

सम्पूर्ण पृथ्वी को स्वाधीन करने वाला चक्रवर्ती राजा देवत्व पाना चाहता है, देवत्व प्राप्त होने पर वह सम्पूर्ण देवों का स्वामी (इन्द्र) होना चाहता है, देवों का स्वामी होने पर भी ऊर्ध्वगतित्व में जाना चाहता है, तथापि तृष्णा नहीं निवृत्त होती है। तृष्णा से व्याप्त मनुष्य नरक में जाता है, जो कोई तृष्णा से मुक्त पुरुष हैं, वे स्वर्गवास को पाते हैं। स्वाधीन मनुष्य लोक में निश्चित रूप में सुखी होता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध तत्त्वों के गुण हैं, ये ही इन्द्रियों के विषय हैं। जैसे स्वाधीन मनुष्य सुखी होता है, वैसे ही विषय के अधीन मनुष्य निश्चित रूप में दुःखी होता है ॥ १४—१७ ॥

कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्गमीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च।
एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च ॥ १८ ॥

पितृमातृमयो बाल्ये यौवने दयितामयः। पुत्रपौत्रमयश् चान्ते मूढो नाऽऽत्ममयः क्वचित् ॥ १९ ॥
लोहदारुमयैः पाशैः पुमान् बद्धो विमुच्यते। पुत्रदारमयैः पाशैर् नैव बद्धो विमुच्यते ॥ २० ॥
एकः करोति पापानि फलं भुङ्क्ते महाजनः। भोक्तारो विप्रज्यन्ते कर्ता दोषेण लिप्यते ॥ २१ ॥

कोऽपि मृत्युं न जयति बालो वृद्धो युवापि वा। सुखदुःखाधिको वापि पुनरायाति याति च॥ २२॥

मृग, हाथी, पतङ्ग, भौंरा और मत्स्य ये पाँच शब्द स्पर्श इत्यादि पाँच विषयों से ही मारे जाते हैं। अपने स्वर्ग-मोक्षरूप लक्ष्य को भूलने वाला एक मनुष्य, जो पाँचों ही ज्ञानेन्द्रियों से शब्दादि पाँचों ही विषयों का सेवन करता है, वह कैसे नहीं मारा जाता है? (मारा ही जाता है) मनुष्य बालककाल में अपने माता-पिता का ही बार-बार स्मरण करता है, जवानी में बार-बार प्रेयसी का ही स्मरण करता है, वृद्धावस्था में बार-बार पुत्र-पौत्रों की चिन्ता में डूबा रहता है, अविवेकी मनुष्य कभी भी आत्मचिन्तन में डूबता नहीं। लोहे के और काठ के पाशों (बन्धनों) से बँधा हुआ मनुष्य समय आने पर मुक्त हो जाता है, किन्तु पुत्र-पत्नीरूप पाशों से बँधा हुआ मनुष्य कभी मुक्त नहीं होता हे। एक मनुष्य पाप करता है उस का फल बड़ा जनसमुदाय भोगता है। भोग करने वाले लोग पाप से मुक्त होते हैं, पाप करने वाला पापफलरूप दोष से लिप्त होता है। बालक अथवा वृद्ध अथवा युवक अथवा अधिक सुख वाला अथवा अधिक दुःख वाला कोई भी मृत्यु को नहीं जीतता है, बार-बार इस लोक में आता है और जाता है॥ १८—२२॥

सर्वेषां पश्यतामेव मृतः सर्वं परित्यजेत्। एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते॥ २३॥
एकोऽपि भुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम्। मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं क्षितौ॥ २४॥
बान्धवा विमुखा यान्ति धर्मस् तमनुगचछति। गृहेष्वर्था निवर्तन्ते श्मशानान् मित्रबान्धवा॥ २५॥
शरीरं वह्निरादत्ते सुकृतं दुष्कृतं व्रजेत्। शरीरं वह्निना दग्धं पुण्यं पापं सह स्थितम्॥ २६॥

मरने वाला मनुष्य सब के देखते-देखते ही सब कुछ छोड़ देता है। प्राणी अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मरता है। धर्म के फल को भी अकेला ही भोगता है, पाप के फल को भी अकेला ही भोगता है। मृत शरीर को लकड़ी और मिट्टी के ढेले की तरह भूमि को छोड़कर बान्धवलोग विमुख होकर जाते हैं, धर्म उस का अनुगमन करता है। धन घर में ही निवृत्त हो जाता हे, मित्र और बान्धव श्मशान से निवृत्त होते हैं। मृतशरीर को आग ले लेती है, धर्म और पाप साथ में जाते हैं, शरीर आग से जल गया होता है, पुण्य और पाप जीव के साथ में स्थित होते हैं॥ २३—२६॥

शुभं वा यदि वा पापं भुङ्क्ते सर्वत्र मानवः। यदनस्तमित्ते सूर्ये न दत्तं धनमर्थिनाम्॥ २७॥
न जाने तस्य तद् वित्तं प्रातः कस्य भविष्यति। रारटीति धनं तस्य को मे भर्ता भविष्यति॥ २८॥
न दत्तं द्विजमुख्येभ्यः परोपकृतये तथा। पूर्वजन्मकृतात् पुण्यात् यल्लब्धं चाऽल्पकम्॥ २९॥
तदीदृशं परिज्ञाय धर्मार्थे दीयते धनम्। धनेन धार्यते धर्मः श्रद्धापूतेन चेतसा॥ ३०॥

अपना शुभ अथवा पाप जो कर्म हैं, मनुष्य उसी का फल सर्वत्र भोगता है। सूर्य का अस्त न होनेतक ही जो धन अर्थापेक्षी जनों को नहीं दिया गया है, मैं नहीं जानता हूँ कि उस का वह धन कल किस का होगा। यदि पूर्वजन्म में किए गए पुण्य से प्राप्त थोड़ा या बहुत जो धन है वह श्रेष्ठ ब्राह्मणों को नहीं दिया गया और परोपकार के लिए भी नहीं लगाया गया तो उस का वह धन 'मेरा मालिक कौन होगा, मेरा मालिक कौन होगा' ऐसा बार-बार चिल्लाता है। ऐसी बात को जानकर धर्म के लिए धन दिया जाता है। श्रद्धा से शुद्ध धन से और श्रद्धा से शुद्ध मन से भी धर्म धारित होता है॥ २७—३०॥

श्रद्धाविरहितो धर्मो नेहाऽमुत्र च तत्फलम्। धर्माच् च जायते ह्यर्थो धर्मात् कामोऽपि जायते॥ ३१॥
धर्म एवाऽपवर्गाय तस्माद् धर्मं समाचरेत्। श्रद्धया साध्यते धर्मो बहुभिर् नार्थराशिभिः॥ ३२॥
अकिञ्चना हि मुनयः श्रद्धावन्तो दिवं गताः। अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस् तप्तं कृतं च यत्॥

असदित्युच्यते पक्षिन् प्रेत्य चेह न तत्फलम्॥ ३३॥

जो श्रद्धारहित धर्म है, उस का इस लोक में और परलोक में भी सुफल नहीं होता है। धर्म से अर्थ (धन) उत्पन्न होता है, धर्म से ही काम (सुख) भी उत्पन्न होता है, धर्म ही मोक्ष के लिए भी होता है, इसलिए मनुष्य धर्म करे। धर्म श्रद्धा से सिद्ध होता है, केवल बड़े धनराशियों से नहीं। धन से रहित होने पर भी उत्कृष्ट श्रद्धा से युक्त मुनि लोग स्वर्ग गए। अश्रद्धा से किए गए होम, दान, तप और अन्य जो कुछ भी कर्म होते हैं वे सब असत् कहे जाते हैं, हे पक्षिन्, उन का इस लोक में और परलोक में भी सुफल नहीं होता है॥ ३१—३३॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-१३

गरुड उवाच–

कर्मणा केन देवेश प्रेतत्वं नैव जायते। पृथिव्यां सर्वजन्तूनां तद् ब्रूहि परमेश्वर॥ १॥

गरुड ने कहा—देवताओं के स्वामिन्, हे परमेश्वर, पृथिवी में सभी प्राणियों का किस कर्म से प्रेतत्व नहीं होता है, वह बताइए॥ १॥

श्रीकृष्ण उवाच–

अथ वक्ष्यामि सङ्क्षेपात् क्षयाहादौर्ध्वदैहिकम्। स्वहस्तेनैव कर्तव्यं मोक्षकामैस्तु मानवैः॥ २॥
स्त्रीणामपि विशेषेण पञ्चवर्षाधिके शिशौ। वृषोत्सर्गादिकं कर्म प्रेतत्वविनिवृत्तये॥
वृषोत्सर्गादृते नाऽन्यत् किञ्चिदस्ति महीतले॥ ३॥
जीवन वापि मृतो वापि वृषोत्सर्गं करोति यः। प्रेतत्वं न भवेत् तस्य विना दानमखव्रतैः॥ ४॥

श्रीकृष्ण ने कहा—अब सङ्क्षेप में कहूँगा, **मोक्ष की कामना करने वाले मनुष्यों को मृत्यु के दिन से लेकर किए जाने वाला और्ध्वदेहिक (श्राद्ध) कृत्य अपने ही हाथों से कर लेना चाहिए।** स्त्रियों का भी, विशेष करके पाँच वर्ष से अधिक के शिशु का भी प्रेतत्व प्राप्ति के परिहार के लिए वृषोत्सर्गादि और्ध्वदेहिक कृत्य करना चाहिए। वृषोत्सर्ग को छोड़कर दूसरा पृथिवीतल में प्रेतत्व के परिहार के लिए समुचित कोई कर्म नहीं है। जो जीवित व्यक्ति स्वयम् अथवा मृत व्यक्ति प्रतिनिधि द्वारा वृषोत्सर्ग करता है, उस का अन्य दानयज्ञों के विना भी प्रेतत्व नहीं होगा॥ २—४॥

☞ साधु सन्यासियों द्वारा सन्यास लेने के पूर्व अपना श्राद्ध स्वयं किया जाता है।

गरुड उवाच–

कस्मिन् काले वृषोत्सर्गं जीवन् वापि मृतोऽपिवा। कुर्यात् सुरवरश्रेष्ठ ब्रूहि मे मधुसूदन॥ ५॥
किं फलं तु भवेदन्ते कृतैः श्राद्धैस्तु षोडशैः॥ ६॥

गरुड ने कहा—मधुदैत्य को मारने वाले उत्तम देवों में श्रेष्ठ, जीवित मनुष्य स्वयम् अथवा मृत व्यक्ति प्रतिनिधि द्वारा किस काल में वृषोत्सर्ग करे, इस बातको मुझ को बताइए। जीवित के अन्त में (मृत्यु होने पर) किए गए सोलह श्राद्धों से क्या फल मिलता है? ॥ ५—६॥

श्रीकृष्ण उवाच–

अकृत्वा तु वृषोत्सर्गं कुरुते पिण्डपातनम्। नोपतिष्ठति तच् छ्रेयो दातुः प्रेतस्य निष्फलम्॥ ७॥
एकादशाहे प्रेतस्य यस्य नोत्सृज्यते वृषः। प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि॥ ८॥

श्रीकृष्ण ने कहा—वृषोत्सर्ग किए बिना पिण्डदान करता है तो उस का शुभ फल प्राप्त नहीं होता है, दाता

के लिए और मृत व्यक्ति के लिए भी वह पिण्डदानकर्म निष्फल होता है। मृत्यु के ग्यारहवें दिन में जिस के लिए वृषोत्सर्ग नहीं किया जाता है, सैकड़ों श्राद्ध देने पर भी उस का प्रेतत्व स्थिर रहता है॥ ७-८॥

गरुड उवाच-

सर्पाद् धि प्राप्तमृत्यूनामग्निदाहादि न क्रिया। जलेन शृङ्गिणा वापि शस्त्राद्यैर् म्रियते यदि॥ ९॥
असन्मृत्युमृतानां च कथं शुद्धिर् भवेत्प्रभो। एतन् मे संशयं देव च्छेत्तुमर्हस्यशेषतः॥ १०॥

गरुड ने कहा—सर्प से जिन का मृत्यु हुआ है, उन का अग्नि से दाह इत्यादि ओर्ध्वदेहिक कृत्य नहीं होता है, जल से अथवा सींग वाले प्राणी से अथवा शस्त्रादि से यदि कोई मरता है तो प्रभो, उन दुर्मृत्युओंसे मरने वालों की शुद्धि होगी; हे देव, मेरे इस संशय को निःशेष करके हटाइए॥ ९-१०॥

श्रीकृष्ण उवाच-

षण्मासैर् ब्राह्मणः शुध्येद् युग्मे सार्धे तु बाहुजः। सार्धमासेन वैश्यस् तु शूद्रो मासेन शुध्यति॥ ११॥
दत्त्वा दानान्यशेषाणि सुतीर्थे म्रियते यदि। ब्रह्मचारी शुचिर् भूत्वा न स यातीह दुर्गतिम्॥ १२॥
वृषोत्सर्गादिकं कृत्वा यतिधर्मं समाचरेत्। यतित्वे मृत्युमाप्नोति स गच्छेद् ब्रह्म शाश्वतम्॥ १३॥
विकर्म कुरुते यस्तु शिष्टाचारविवर्जितः। वृषोत्सर्गादिकं कृत्वा न गच्छेद् यमशासनम्॥ १४॥
पुत्रो वा सोदरो वापि पौत्रो बन्धुजनस्तथा। गोत्रिणश् चार्थभागी च मृते कुर्याद् वृषोत्सवम्॥ १५॥
पुत्राभावे तु पत्नी स्याद् दौहित्रो दुहितापि वा। पुत्रेषु विद्यमानेषु वृषं नान्येन कारयेत्॥ १६॥

श्रीकृष्ण ने कहा—दुर्मरण से मरने वाला ब्राह्मण छः महीनों में, क्षत्रिय ढाई महीनों में, वैश्य डेढ़ महीने में, शूद्र १ महीने में शुद्ध होगा। सभी आवश्यक दान देकर यदि कोई ब्रह्मचर्य करता हुआ शुद्ध होकर पवित्र तीर्थ में मरता है तो वह इस लोक में दुर्गति में नहीं पड़ता है। **वर्णाश्रमधर्मी मनुष्य वृषोत्सर्गादि और्ध्वदेहिक कृत्य करके सन्यासी के धर्म का आचरण करेगा और सन्यासी की अवस्था में मृत्यु पाता है तो वह शाश्वत 'ब्रह्मलोक' में जाएगा।** जो व्यक्ति शास्त्र में उपदिष्ट अपने आचार से रहित होता है और वर्णाश्रमादिविरुद्ध कर्म करता है, वह भी वृषोत्सर्गादि और्ध्वदेहिक कृत्य करने पर यमराज के शासन में नहीं जाएगा। **मनुष्य के मरने पर उसका पुत्र अथवा सहोदर भाई अथवा पौत्र अथवा बन्धुजन अथवा सगोत्र लोग अथवा मृतव्यक्ति का धन लेने वाला व्यक्ति मृत व्यक्ति के लिए वृषोत्सर्ग करे। पुत्र के अभाव में वृषोत्सर्ग करने में पत्नी अधिकारिणी होगी, अथवा पुत्री का पुत्र अधिकारी होगा, अथवा पुत्री भी अधिकारिणी होगी। पुत्रों के रहने पर दूसरे द्वारा वृषोत्सर्ग नहीं कराना चाहिए**॥ ११—१६॥

गरुड उवाच-

पुत्रा यस्य न विद्यन्ते नरा नार्यः सुरेश्वर। एतन् मे संशयं देव च्छेत्तुमर्हस्यशेषतः॥ १७॥

गरुड ने कहा—हे सुरेश्वर जिन मनुष्यों के पुत्र नहीं हैं, उनके सम्बन्ध में मेरे संशय को नष्ट करें॥ १७॥

श्रीकृष्ण उवाच-

अपुतत्रस्य गतिर् नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च। तस्मात् केनाप्युपायेन पुत्रस्य जननं चरेत्॥ १८॥
यानि कानि च दानानि स्वयं दत्तानि मानवैः। तानितानि च सर्वाणि तूपतिष्ठन्ति चाग्रतः॥ १९॥
व्यञ्जनानि विचित्राणि भक्ष्यभोज्यानि यानि च। स्वहस्तेन प्रदत्तानि देहान्ते चाऽक्षयं फलम्॥ २०॥
गो-भू-हिरण्य-वासांसि भोजनानि पदानि च। यत्रयत्र वसेज् जन्तुस्तत्रतत्रोपतिष्ठति॥ २१॥
यावत् स्वस्थं शरीरं हि तावद् धर्मं समाचरेत्। अस्वस्थः प्रेरितश्चान्यैर् न किञ्चित् कर्तुमर्हति॥ २२॥

जीवतोऽपि मृतस्येह न भूतं चौर्ध्वदैहिकम्। वायुभूतः क्षुधाविष्टो भ्रमते च दिवानिशम्॥ २३॥
कृमिः कीटः पतङ्गो वा जायते म्रियते पुनः। असद्‌गर्भे भवेत् सोऽपि जातः सद्यो विनश्यति॥ २४॥
यावत् स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज् जरा दूरतो यावच् चेन्द्रियशक्तिप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान् सन्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमःकीदृशः॥ २५॥

श्रीकृष्ण ने कहा—अपुत्र की सुगति नहीं होती है, स्वर्ग तो नहीं ही होता है। इसलिए किसी भी उपाय से पुत्र का जन्म कराना ही चाहिए। मनुष्यों से स्वयम् जो कोई दान दिए गए होते हैं, वे सब परलोक में उन के आगे उपस्थित होते हैं। अपने हाथों से जो व्यञ्जन और नाना प्रकार के भक्ष्य और भोज्य दान में दिए जाते हैं, उन सब दानों से मृत्यु के बाद अक्षय फल प्राप्त होता है, गाय, भूमि, स्वर्ण, वस्त्र, भोज्यपदार्थ, पददान के पदार्थ इत्यादि दान में दिए गए पदार्थ दाता मनुष्य दूसरे जन्म में जहाँ-जहाँ वास करता है वहाँ-वहाँ उपस्थित होते हैं। जबतक शरीर स्वस्थ रहता है, उसी समय में मनुष्य धर्मकर्म करे, अस्वस्थ होने पर दूसरों की प्रेरणा से वह कुछ भी नहीं कर सकता है। जीवित काल में अथवा मरण होने पर जिस की इस लोक में और्ध्वदेहिक क्रिया नहीं हुई है, वह वायु के रूप में रहकर भूख से पीड़ित होता हुआ रात-दिन इधर-उधर घूमता रहता है। और्ध्वदेहिक क्रिया से रहित मनुष्य दूसरे जन्म में क्षुद्र कीड़ों के रूप में, बड़े कीड़ों के रूप में, पतङ्गों के रूप में बार-बार जन्म लेता है और मरता है, वह नीच योनि के गर्भ में जाता है, वहाँ भी वह जन्मने पर तत्काल मर जाता है। जबतक वह शरीर स्वस्थ और रोगरहित है, जबतक बूढ़ापा दूर ही है, जब तक इन्द्रियों की शक्ति कुण्ठित नहीं हुई है, जबतक आयु क्षीण नहीं हुआ, तब ही अपने मोक्ष के लिए विचारवान् जन को बड़ा प्रयास करना चाहिए, स्वास्थ्यरहित और अन्य प्रकार से असमर्थ होने पर प्रयास करने से क्या होगा? घर जल जाने पर आग बुझाने के हेतु पानी के लिए कुआँ खोदना कैसा प्रयास है?॥ १८—२५॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-१४

गरुड उवाच—

आर्तेन म्रियमाणेन यद् दत्तं तत्फलं वद। स्वस्थावस्थेन दत्तेन विधिहीनेन वा विभो॥ १॥

गरुड ने कहा—हे सर्वव्यापक भगवन्, रोगग्रस्त व्यक्ति से जो दान दिया जाता है उसका, मरते हुए व्यक्ति से जो दान दिया जाता है उसका, स्वस्थ अवस्था के व्यक्ति से जो दान दिया जाता है उसका और शास्त्रमें बताए गए विधि से हीन व्यक्ति से जो दान दिया जाता है उसका भी फल कैसा होता है, बताइए ॥ १॥

श्रीकृष्ण उवाच—

एका गौः स्वस्थचित्तस्य ह्यातुरस्य च गोशतम्। सहस्रं म्रियमाणस्य दततं चित्तविवर्जितम्॥ २॥
मृतस्यैव पुनर् लक्षं विधिपूतं च तत्समम्। तीर्थपात्रसमायोगादेका गौर् लक्षपुण्यदा॥ ३॥
पात्रे दत्ते खगश्रेष्ठ अहन्यहनि वर्धते। दातुर् दानमपापाय ज्ञानिनां च प्रतिग्रहः॥ ४॥
विषशीतापहौ मन्त्रवह्नी किं दोषभाजनम्। दातव्यं प्रत्यहं पात्रे निमित्तेषु विशेषतः॥ ५॥

श्रीकृष्ण ने कहा—स्वस्थ चित्तवाले व्यक्ति से दी गई एक गाय, रोगग्रस्त व्यक्ति से दी गई सौ गाय मरते हुए व्यक्ति से अचेतन अवस्था में दी गई हजार गाय, मरे हुए व्यक्ति से प्रतिनिधि द्वारा शास्त्रोक्त विधिपूर्वक दी गई लाख गाय सब बराबर होती हैं। पुण्य तीर्थ के और सत्पात्र ब्राह्मण के योग से एक ही गाय लाख गायों के पुण्य को देने वाली होती है। हे पक्षियों में श्रेष्ठ, सत्पात्र में दान देने पर दाता के लिए उस दान का फल प्रतिदिन बढ़ता

है, ज्ञानियों के लिए उस दान का स्वीकार करने में कोई पाप भी नहीं होता है। विष को हटाने वाला मन्त्र और शीत को हटाने वाला अग्नि क्या दोष के पात्र होते है? सत्पात्र को प्रतिदिन दान देना चाहिए, दान देने के प्रायश्चित्तादि विशेष निमित्त उत्पन्न होने पर विशेष दान भी देना चाहिए॥ २—५॥

नाऽपात्रे विदुषा किञ्चिदात्मनः श्रेय इच्छता। अपात्रे जातु गौर् दत्ता दातारं नरकं नयेत्॥ ६॥
कुलैकविंशतियुतं ग्रहीतारं च पातयेत्। देहान्तरं परिप्राप्य स्वहस्तेन कृतं च यत्॥ ७॥
धनं भूमिगतं यद्वत् स्वहस्तेन निवेशितम्। तद्वत् फलमवाप्नोति ह्यहं वच्मि खगेश्वर॥ ८॥
अपुत्रोऽपि विशेषेण क्रियां चैवोर्ध्वदैहिकीम्। प्रकुर्यान् मोक्षकामश् च निर्धनश् च विशेषतः॥ ९॥
स्वल्पेनाऽपि हि वित्तेन स्वयं हस्तेन यत् कृतम्। अक्षयं याति तत् सर्वं यथाऽऽज्यं च हुताशने॥ १०॥

अपना कल्याण चाहने वाले मनुष्य को अपात्र को कुछ भी देना नहीं चाहिए। कदाचित् अपात्र को दी गई गाय तो देने वाले को नरक में ले जायगी और अपात्र ग्रहीता को भी कुल के इक्कीस पीढ़ियों के साथ नरक में ढकेल देगी। हे पक्षियों के मालिक, मैं कहता हूँ कि अपने हाथ से किया गया जो दान होता है, उस के फल को अपने हाथ से रखे गए भूमिगत धन को मनुष्य जैसे प्राप्त करता है वैसे ही दूसरे जन्म में पहुँचकर प्राप्त करता है। **विशेष रूप में 'पुत्ररहित मनुष्य', मोक्ष चाहने वाला मनुष्य और विशेष रूप में अल्पधन मनुष्य भी अपनी और्ध्वदेहिक क्रिया स्वयम् करे।** थोड़े से धन से भी अपने ही हाथ से जो और्ध्वदेहिक कृत्य किया जाता है, वह सब जैसे आग में घी अग्विर्धक होता है, वैसे ही अक्षय फल को बढ़ाने वाला होता है ॥ ६—१०॥

☞ जिन मनुष्यों को पुत्र नहीं है, उन्हें अपना श्राद्ध संस्कार स्वयं कर लेना चाहिये, ऐसा नियम है।

एका चैकस्य दातव्या शय्या कन्या पयस्विनी। सा विक्रीता विभक्ता वा दहत्यासप्तमं कुलम्॥ ११॥
तस्मात् सर्वं प्रकुर्वीत चञ्चले जीविते सति। गृहीतदानपाथेयः सुखं याति महाध्वनि॥ १२॥
अन्यथा क्लिश्यते जन्तुः पाथेयरहितः पथि। एवं ज्ञात्वा खगश्रेष्ठ वृषयज्ञं समाचरेत्॥ १३॥
अकृत्वा म्रियते यस्तु अपुत्रो नैव मुक्तिभाक्। अपुत्रोऽपि हि यः कुर्यात् सुखं याति महापथे॥ १४॥
अग्निहोत्रादिभिर् यज्ञैर् दानैश् च विविधैरपि। न तां गतिमवाप्नोति वृषोत्सर्गेण या गतिः॥ १५॥
यज्ञानां चैव सर्वेषां वृषयज्ञस्तथोत्तम्। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वृषयज्ञं समाचरेत्॥ १६॥

एक शय्या, एक कन्या और एक गाय एक पुरुष को ही देनी चाहिए, वह शय्यादि बेचे जाने पर और विभाजित किए जाने पर सातवें पीढ़ीतक के कुल को जलाती है। इसलिए मनुष्य जीवन को चञ्चल जानकर सभी और्ध्वदेहिक कृत्य स्वयम् करे। दानरूपी सम्बल (मार्गभोज्य) को लेकर मनुष्य यममार्गरूप महापथ में सुख से जाता है, दानरूप मार्गभोज्य न होने पर जीव मार्ग में बहुत क्लेश पाता है। हे पक्षियों में श्रेष्ठ, इस प्रकार की बात को जानकर मनुष्य वृषयज्ञ (वृषोत्सर्ग) करे। जो पुत्ररहित व्यक्ति वृषोत्सर्ग किए बिना मरता है, वह मुक्तिभागी नहीं हो सकता है। पुत्ररहित व्यक्ति भी जो वृषोत्सर्ग करता है, वह यममार्ग में सुख से जाता है। वृषोत्सर्ग से जो गति प्राप्त है, वह गति अग्निहोत्रादि यज्ञों से और विभिन्न दानों से भी मनुष्य नहीं पा सकता है। सभी यज्ञों में वृषयज्ञ उत्तम यज्ञ है, इसलिए मनुष्य सम्पूर्ण प्रयत्न से वृषयज्ञ (वृषोत्सर्ग) करे॥ ११—१६॥

गरुड उवाच—

कथयस्व प्रसादेन क्षयाहं चौर्ध्वदैहिकम्। कस्मिन् काले तिथौ कस्यां विधिना केन तद् भवेत्॥ १७॥
कृत्वा किं फलामाप्नोति एतन् मे वद साम्प्रतम्। त्वत्प्रसादेन गोविन्द मुक्तो भवति मानवः॥ १८॥

गरुड ने कहा—अनुग्रह करके मृततिथि के कृत्य को और और्ध्वदेहिक कृत्य को बताइए। किस काल में

किस तिथि में किस विधि से वह कृत्य होगा? इन कृत्यों को सम्पन्न करके मनुष्य क्या फल पाता है इस समय में यह बात मुझ को बताइए। हे गोविन्द, आप के अनुग्रह से ही मनुष्य मुक्त होता है॥ १७-१८॥

श्रीकृष्ण उवाच-

कार्तिकादिषु मासेषु याम्यायनगते रवौ। शुक्लपक्षे तथा पक्षिन् द्वादश्यादितिथौ शुभे॥ १९॥
शुभे लग्ने मुहूर्ते वा शुचौ देशे समाहितः। ब्राह्मण तु समाहूय विधिज्ञं शुभलक्षणम्॥ २०॥
जपहोमैस्तथा दानैः कुर्याद देहस्य शोधनम्। पुण्येऽभिजित्सुनक्षत्रे ग्रहान् देवान् समर्चयेत्॥ २१॥
होमं कुर्याद् यथाशक्ति मन्त्रैश् च विविधैरपि। ग्रहाणां स्थापनं कुर्यात् पूर्वं चैव खगेश्वर॥ २२॥
मातृणां पूजनं कार्यं वसोर् धारां च पातयेत्। वह्निं संस्थाप्य तत्रैव पूर्णं होमं तु कारयेत्॥ २३॥

श्रीकृष्ण ने कहा—हे पक्षिन्, कार्तिकादि महीनों में सूर्य दक्षिणायन में रहने पर शुक्लपक्ष में और द्वादशीप्रभृति शुभ तिथि में शुभ लग्न में अथवा मुहूर्त में शुद्ध देश में एकाग्रचित्त होकर सदाचारादि शुभलक्षणों से युक्त और शास्त्रोक्त विधि को जानने वाले ब्राह्मण को बुलाकर जपों से, होमों से और दानों से भी अपने देह की शुद्धि करे। पुण्य अभिजित् नक्षत्र में ग्रहों का और देवताओं का पूजन करे। विविध मन्त्रों से अपने शक्ति के अनुसार होम करे। हे पक्षियों के मालिक, पहले ग्रहों का स्थापन करे। मातृका देवियों का पूजन करना चाहिए, वसोर्धारा (घृतधारा) का पातन भी करना चाहिए। वहीं अग्नि का स्थापन करके पूर्ण होम करवाए॥ १९—२३॥

शालग्रामं च संस्थाप्य वैष्णवं श्राद्धमाचरेत्। वृषं सम्पूज्य तत्रैव वस्त्रालङ्कारभूषणैः॥ २४॥
चतस्रो वत्सतर्यश् च पूर्वं समधिवासयेत्। प्रदक्षिणं ततः कुर्याद् धोमान्ते च विसर्जनम्॥ २५॥
इमं मन्त्रं समुच्चार्य उत्तराभिमुखः स्थितः। धर्म त्वं वृषरूपेण ब्रह्मणा निर्मितः पुरा॥ २६॥
तवोत्सर्गप्रभावान् मामुद्धरस्व भवार्णवात्। अभिषिच्य शुभैर् मन्त्रैः पावनैर् विधिपूर्वकम्॥ २७॥
तेनक्रीडन्तीमन्त्रेण वृषोत्सर्गं तु कारयेत्। अभिषिञ्चेत् ततो नीलं रुद्रकुमभोदकेन तु॥ २८॥
नाभिमूले समास्थाय तदम्बु मूर्धनि न्यसेत्। आत्मश्राद्धं ततः कुर्याद् दद्याद् दानं द्विजोत्तमे॥ २९॥

शालग्रामशिला का स्थापन करके वैष्णव श्राद्ध करे। वहीं वस्त्र और अलङ्कारों से विभूषित करके वृषभ को पूजित करे और पहले चार बछियों को अधिवासित करे। तब प्रदक्षिणा करके होम के अन्त में बछियों से सहित वृष का विसर्जन करे। उत्तरदिशा की ओर मुँह करके खड़े होकर '**धर्म त्वं वृषरूपेण.....**'' इस मन्त्र का उच्चारण करके पावन शुभ मन्त्रों से वृष का अभिषेक भी करके ''**तेन क्रीडन्ती.....**'' इस वाक्यांश से युक्त मन्त्र से वृषोत्सर्ग करवाए। ''**धर्म त्वं वृषरूपेण**'' इत्यादि मन्त्र का अर्थ—हे धर्म, आप पुराकाल में ब्रह्माजी से वृष के रूप में स्थापित किए गए हैं, आप के उत्सर्ग के प्रभाव से मुझ को संसाररूपी समुद्र से उद्धार कीजिए। तब रुद्रकुम्भ के जल से नीलवृष का अभिषेक करे, बछियों के मध्य में वृष को रखकर उस अभिषेकजल को वृष के शिर में छिडके। तब आत्मश्राद्ध करे और ब्राह्मण को दान दे॥ २४—२९॥

उदके चैव गन्तव्य जलं तत्र प्रदापयेत्। यदिष्टं जीवतस्त्वासीत् तच् च दद्यात् स्वशक्तितः॥ ३०॥
न्यूनं सम्पूर्णतां याति वृषोत्सर्गे कृते सति। सुतृप्तो दुस्तरे मार्गे मृतो याति न संशयः॥ ३१॥
यमलोकं न पश्यन्ति सदा दानरता नराः। यावन् न दीयते जन्तोः श्राद्धं चैकादशाहिकम्॥ ३२॥
स्वदत्तं परदत्तं वा नेहाऽमुत्रोपतिष्ठति। त्रयोदश तथा सप्त पञ्च त्रीणि क्रमेण तु॥ ३३।
पददानानि कुर्वीत श्रद्धाभक्तिसमन्वितः। तिलपात्राणि कुर्वीत सप्त पञ्च यथाक्रमम्॥ ३४॥
ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चादेकां गां च प्रदापयेत्। वृषं हि शन्नोदेवीति वेदोक्तविधिना ततः॥ ३५॥

चतसृभिर् वत्सतरीभिः परिणयनमाचरेत्। वामे चक्रं प्रदातव्यं त्रिशूलं दक्षिणे तथा॥ ३६॥

तब नदी वा जलाशय में जाना चाहिए और वहाँ अपने को (मृतक को) जल भी देना चाहिए। जीवित अवस्था में मृतक का जो प्रिय वस्तु था, वह भी अपनी शक्ति के अनुसार दान में दे। और्ध्वदेहिक कृत्य में जो कुछ न्यून हो गया होता है, वह सब वृषोत्सर्ग करने पर सम्पूर्ण हो जाता है। इससे मृतक अच्छी तरह तृप्त होकर दुर्गम यममार्ग में जाता है, इस में सन्देह नहीं। सदा दान में रमने वाले मनुष्य यमलोक को नहीं देखते हैं। जब तक मनुष्य का मृत्यु के ग्यारहवें दिन का श्राद्ध नहीं दिया जाता है, तब तक अपने से दिया गया दान अथवा दूसरे द्वारा दिया गया दान भी इस लोक में अथवा परलोक में भी उपस्थित (प्राप्त) नहीं होता है। श्रद्धा से और भक्ति से युक्त मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार क्रमशः तेरह, सात, पाँच या तीन पददान करे। क्रमानुसार सात अथवा पाँच तिलपात्रों का सम्पादन और दान करे। उसके बाद ब्राह्मणों का भोजन करवाए और एक गाय का दान भी करवाए। तब वेदोक्त विधि से **'शन्नो देवीः''** इत्यादि मन्त्र से स्नान कराके वृष का चार बछियों के साथ विवाह कर दे। वृष के वाम अङ्ग में चक्र का चिह्न और दक्षिण अङ्ग में त्रिशूल का चिह्न देना चाहिए॥ ३०—३६॥

मूल्यं दद्याद् वृषस्याऽपि तं वृषं च विसर्जयेत्। एकोद्दिष्टविधानेन स्वाहाकारेण बुद्धिमान्॥ ३७॥
कुर्यादेकादशाहं च द्वादशाहं च यत्नतः। सपिण्डीकरणादर्वाक् कुर्याच् छ्राद्धानि षोडश॥ ३८॥
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु पददानानि दापयेत्। कार्पासोपरि संस्थाप्य ताम्रपात्रे तथाऽच्युतम्॥ ३९॥
वस्त्रेणाऽऽच्छाद्य तत्रस्थमर्घं दद्याच् छुभैः फलैः। नावमिक्षुमयीं कृत्वा पट्टसूत्रेण वेष्टयेत्॥ ४०॥
कांस्यपात्रे घृतं स्थाप्य वैतरण्या निमित्ततः। नाव आरोहणं कुर्यात् पूजयेद् गरुडध्वजम्॥ ४१॥

वृष का (अङ्कन का) मूल्य (अयस्कार को) दे और उस वृष को विसर्जित करे। बुद्धिमान् मनुष्य एकोद्दिष्टश्राद्ध के विधान से और स्वाहाकार से भी यत्नपूर्वक एकादशाहकृत्य और द्वादशाकृत्य करे। सपिण्डीकरण से पहले सोलह श्राद्ध करे। ब्राह्मणों को भोजन कराकर पददान देवे। वैतरणी का दान करते समय ताँबे के पात्र में कार्पास (कपास) में विष्णु की प्रतिमा को रखकर उस प्रतिमा को वस्त्र से आच्छादित करके अच्छे फलों से युक्त अर्घ दे। इक्षुकाण्ड से नाव बनाकर उस को पट्टसूत्र से वेष्टित करे। वैतरणीदान के निमित्त से काँसे के पात्र में घी रखकर उक्त नौका में चढने का काम करे और विष्णु का पूजन करे॥ ३७—४१

आत्मवित्तानुसारेण तच्च दानमनन्तकम्। भवसागरमग्नानां शोकतापार्तिदुःखनाम्॥ ४२॥
धर्मप्लवविहीनानां तारको हि जनार्दनः। तिला लोहं हिरण्यं च कार्पासं लवणं तथा॥ ४३॥
सप्तधान्यं क्षितिर् गावो ह्येकैकं पावनं स्मृतम्। तिलपात्राणि कुर्वीत शय्यादानं च दापयेत्॥ ४४॥
दीनानाथविशिष्टेभ्यो दद्याच् छक्त्या च दक्षिणाम्। एवं यः कुरुते तार्क्ष्य पुत्रवानप्यपुत्रवान्॥ ४५॥
स सिद्धिं समवाप्नोति यथा ते ब्रह्मचारिणः। नित्यं नैमित्तिकं कुर्याद् यावज् जीवति मानवः॥ ४६॥

अपने धन के अनुसार दिया गया वह दान अनन्त फल देने वाला होता है। संसाररूपी समुद्र में मग्न ओर शोक, ताप और आर्तभाव से दुःखित तथा धर्मरूप नौका से रहित लोगों का जनार्दन (विष्णु) ही तारक (उद्धार करने वाले) हैं। तिल, लोहा, सोना, कार्पास, नमक, सप्तधान्य (जौ, धान, तिल, कँगनी, मूँग, चना, साँवा), भूमि तथा गाय इन में से एक-एक ही पाप से छुटकारा देने वाला है तिलपात्रों का दान करे, शय्यादान भी दे। दीन-दुःखी, अनाथ और अपने से उत्तम जनों को अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणा भी दे। हे गरुड, पुत्रयुक्त अथवा पुत्ररहित पुरुष जो कोई भी ऐसा करता है तो जैसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी लोग पुत्र से रहित होने पर भी परमलोक प्राप्तिरूप सिद्धि को प्राप्त करते हैं वैसे ही यह पुरुष भी सिद्धि को प्राप्त करता है। **आत्मश्राद्ध करने के बाद भी मनुष्य**

जब तक जीवित रहता है, तब तक नित्य और नैमित्तिक धर्म कार्य करता रहे ॥ ४२—४६ ॥

यः कश्चित् क्रियते धर्मस् तत्फलं चाक्षयंभवेत्। तीर्थयात्राव्रतादीनां श्राद्धं संवत्सरस्य हि ॥ ४७ ॥
देवतानां गुरूणां च मातापित्रोस्तथैव च। पुण्यं देयं प्रयत्नेन प्रत्यहं वर्धते खग ॥ ४८ ॥
अस्मिन् यज्ञे हि यः कश्चिद् भूरिदानं प्रयच्छति। तत् तस्य चाऽक्षयं सर्वं वेदिकायां यथा किल ॥
यथा पूज्यतमा लोके यतयो ब्रह्मचारिणः। तथैव प्रतिपूज्यन्ते लोके सर्वे च नित्यशः ॥ ५० ॥
वरदोऽहं सदा तस्य चतुर्वक्त्रस्तथा हरः। ते यान्ति परमाँल्लोकानिति सत्यं वचो मम ॥ ५१ ॥
उत्सृष्टो वृषभो यत्र पिबत्यपो जलाशये। शृङ्गेणाऽऽलिखते वाऽपि भूमिं नित्यं प्रहर्षितः ॥ ५२ ॥
पितृणामन्नपानं च प्रभूतमुपतिष्ठति। पौर्णमास्याममायां वा तिलपात्राणि दापयेत् ॥ ५३ ॥

आत्मश्राद्ध करने के बाद भी तीर्थयात्रा व्रत इत्यादि में से जो कोई भी धर्मकार्य तथा सांवत्सरिक श्राद्ध किया जाता है तो उस का फल अक्षय होता है। हे पक्षिन्, देवताओं को गुरूप्रभृति मान्यजनों को, माँ-बाप को भी प्रयत्नपूर्वक पुण्य समर्पित करना चाहिए, ऐसा करने से पुण्य प्रतिदिन बढ़ता रहता है। इस वृषयज्ञ में जो कोई मनुष्य बहुत सा दान देता है तो उसका वह सब दान, जैसे वैदिक यज्ञ की वेदी में दिया गया दान अक्षय होता है, वैसे ही अक्षय होता है। जैसे लोक में जितेन्द्रिय नैष्ठिक ब्रह्मचारी लोग सब से अधिकपूज्य होते हैं, वैसे ही अपुत्र होने पर भी वृषयज्ञ करने वाले सब नित्य ही प्रतिपूज्य होते हैं। उस वृषयज्ञ करने वाले का मैं सदा वर देने वाला होता हूं, ब्रह्मा और महेश्वर भी वर देने वाले होते हैं। वे वृषयज्ञ करने वाले लोग परमलोक में जाते हैं, यह मेरा सत्य वचन है। छोड़ा गया वृषभ जिस जलाशय में पानी पीता है, जहाँ नित्य प्रहर्षित होकर सींग से भूमि को खोदता है वहाँ पितरों को प्रभूत भोज्य और पेय पदार्थ प्राप्त होते हैं। पूर्णिमा में अथवा अमावस में तिल से पूर्ण पात्रों का दान करना चाहिए ॥ ४७—५३ ॥

सङ्क्रान्तीनां सहस्राणि सूर्यपर्वशतानि च। दत्त्वा यत् फलमाप्नोति तद् वै नीलविसर्जने ॥ ५४ ॥
वत्सतर्यः प्रदातव्या ब्राह्मणेभ्यः पदानि च। तिलपात्राणि देयानि शिवभक्तद्विजेषु च ॥ ५५ ॥
उमामहेश्वरं चैकं परिधाप्य प्रदापयेत्। अतसीपुष्पसङ्काशं पीतवाससमच्युतम् ॥ ५६ ॥
ये नमस्यन्ति गोविन्दं न तेषां विद्यते भयम्। प्रेतत्वान् मोक्षमिच्छन्तो ये करिष्यन्ति सत्क्रियाम् ॥ ५७ ॥
यास्यन्ति ते परालूँ लोकानिति सत्यं वचो मम। एतत् ते सर्वमाख्यातं मया चैवोर्ध्वदैहिकम् ॥ ५८ ॥
यच् छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नाऽत्र संशयः। श्रुत्वा माहात्म्यमतुलं गरुडो हर्षमागतः ॥
मानुषाणां हितार्थाय पुनः पप्रच्छ केशवम् ॥ ५९ ॥

हजारों सङ्क्रान्तियों में और सैकड़ों सूर्यग्रहणों में दान देने से मनुष्य जो फल पाता है, वह फल नीलवृषोत्सर्ग करने पर पाता है। बछियाँ ब्राह्मणों को देनी चाहिए, पददान भी ब्राह्मणों को देने चाहिए। तिलपात्र तो शिवजी के भक्त द्विजों में देना चाहिए। उमा-महेश्वर की प्रतिमा को भी वस्त्र का परिधान कराकर दान में देना चाहिए। तीसी के फूल के सदृश कान्तिवाले, पीले वस्त्र पहने हुए अपने स्वरूप से कभी भी च्युत न होने वाले गोविन्द को जो लोग नमस्कार करते हैं, उनके लिए कोई भय नहीं होता है। प्रेतत्व से मुक्ति चाहने वाले जो मनुष्य आत्मश्राद्ध-वृषोत्सर्गादि औध्वर्देहिक क्रियाएँ करते हैं वे परमलोक में जाएंगे, यह मेरा सत्य वचन है। मैंने यह सब औध्वर्देहिक कृत्य तुम को बता दिया, जिसको सुनकर मनुष्य सब पापों से छुटकारा पाता है, इसमें सन्देह नहीं है। वृषोत्सर्गादि औध्वर्देहिक कृत्य का अतुलनीय बडा माहातमय सुनकर गरुडजी हर्ष को प्राप्त हुए। मनुष्यों के हित के लिए गरुडजी ने फिर श्रीकृष्ण को पूछा ॥ ५४—५९ ॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-१५

गरुड उवाच–

भगवन् ब्रूहि मे सर्वं यमलोकस्य निर्णयम्। जन्तोः प्रयाणमारभ्य माहात्म्यं वर्त्मविस्तरम्॥ १॥

गरुड ने कहा—हे भगवन्, यमलोक का सब निर्णय और प्राणी के मरणसमय से लेकर (किए जाने वाले कृत्यों का) माहात्म्य तथा यमलोक पहुँचने तक के मार्ग का विस्तार भी मुझ को बताइए॥ १॥

श्रीभगवानुवाच–

शृणु ताक्ष्‍र्य प्रवक्ष्यामि यममार्गस्य निर्णयम्। प्रयाणकानि सर्वाणि नगराणि च षोडश॥ २॥
षडशीतिसहस्राणि योजनानां प्रमाणतः। यमलोकस्य चोर्ध्वं वै अन्तरा मानुषस्य च॥ ३॥
सुकृतं दुष्कृतं वाऽपि भुक्त्वा लोकेयथार्जितम्।कर्मयोगाद् यदा कश्चिद् व्याधिरुत्पद्यते खग॥ ४॥
निमित्तमात्रं सर्वेषां कृतकर्मानुसारतः। यस्य यो विहितो मृत्युः स तं ध्रुवमवाप्नुयात्॥ ५॥

श्रीभगवान ने कहा—गरुड, सुनो, मैं यममार्ग का निर्णय को, यमलोक जाने वालों के मासादिरूप समय-समय के सभी यात्रापरिमाण-विशेषों को और सोलह पुरों को भी बताऊँगा। यमलोक से ऊपर मनुष्यलोक के बीच में यममार्ग प्रमाण से छियासी हजार योजन है। हे पक्षिन्, मनुष्यलोक में अपने पूर्वजन्म के आर्जन के अनुसार धर्म का फल अथवा पाप का फल भोगकर कर्म के प्रभाव से जब कोई बीमार उत्पन्न होता हे, अपने से किए गए कर्म के अनुसार निमित्त मात्र के रूप में जिसका जिस प्रकार मृत्यु नियति से निश्चित किया गया है वह उसी प्रकार के मृत्यु को अवश्य पाएगा॥ २—५॥

कर्मयोगाद् यदा देही मुञ्चत्यत्र निजं वपुः। तदा भूमिगतं कुर्याद् गोमयेनोपलिप्य च॥ ६॥
तिलान् दर्भान् विकीर्याथ मुखे स्वर्णं विनिःक्षिपेत्। तुलसीं सन्निधौ कृत्वा शालग्रामशिलां तथा॥ ७॥
सेतुसामादिसूक्तैस् तु मरणं मुक्तिदायकम्। शलाकास्वर्णविक्षेपः प्रेतप्राणगृहेषु च॥ ८॥
एका वक्त्रे तु दातव्या घ्राणयुग्मे तथा पुनः। अक्ष्णोश् च कर्णयोश् चैव द्वेद्वे देये यथाक्रमम्॥ ९॥
अथ लिङ्गे तथा चैका त्वेकां ब्रह्माण्डके क्षिपेत्। करयुग्मे च कण्ठे च तुलसीं च प्रदापयेत्॥ १०॥

अपने कर्म के प्रभाव से जब मनुष्य इस लोक में अपने शरीर को छोड़ने को जा रहा होता है उस समय में भूमि को गोबर से लीपकर भूमि में तिलों का और कुशों का विकीरण करके उसको भूमिगत कर देना चाहिए। मरते हुए मनुष्य के मुख में स्वर्णखण्ड रख देना चाहिए। तुलसी को और शालग्रामशिला को समीप में रखकर सेतुसामादि सूक्तों को सुनते हुए मरना मुक्तिदायक होता है। प्रेत के इन्द्रियों के आयतनों में शलाकारूप स्वर्णखण्डों का स्थापन करना चाहिए। उसमें मुख में एक स्वर्णशलाका देनी चाहिए, नासिकापुटों में आँखों में, और कानों में भी क्रम से दोदो स्वर्णशलाकाएँ देनी चाहिए तब लिङ्गदेश में एक और ब्रह्मरन्ध्रदेश में एक स्वर्णशलाका रखे। हाथों में और गले में तुलसी देनी चाहिए॥ ६—१०॥

वस्त्रयुग्मं च दातव्यं कुङ्कुमैश् चाऽक्षतैर् यजेत्। पुष्पमालायुतं कुर्यादन्यद्वारेण सन्नयेत्॥ ११॥
पुत्रस् तु बान्धवैः सार्धं विप्रैस् तु पुरवासिभिः। पितुः प्रेतं स्वयं पुत्रः स्कन्धमारोप्य बान्धवैः॥ १२॥
गत्वा श्मशानदेशे तु प्राङ्मुखश् चोत्तरामुखम्। अदग्धपूर्वा या भूमिश् चितां तत्रैव कारयेत्॥ १३॥
श्रीखण्डतुलसीकाष्ठसमित्पालाशसम्भूताम् । विकलेन्द्रियसङ्घाते चैतन्ये जडतां गते॥ १४॥
प्रचलन्ति ततः प्राणा याम्यैर् निकटवर्तिभिः। एकीभूतं जगत् पश्येद् दैवी दृष्टिः प्रजायते॥ १५॥

मृतक को दो वस्त्र देने चाहिए, कुङ्कुम और अक्षतों से मृतक की पूजा करे। मृतक को फूल की माला से

युक्त करे, बन्धु-बान्धवों के और स्वपुरवासी (स्वग्रामवासी) ब्राह्मणों के सहयोग से पुत्र उस मृतक को मूल द्वार से भिन्न दूसरे से ले जाए। पिता के शव को स्वयम् पुत्र अपने कन्धे में रखकर बन्धु-बान्धवों से युक्त होकर श्मशानदेश में पहुँचकर पूर्वकी ओर मुख करके शवको उत्तर की ओर मुख करके रखे। जिस भूमि में पहले दाह नहीं हुआ है, उसी भूमि में श्रीखण्ड, तुलसी की लकड़ी, पलाश की समिधा इत्यादि से निष्पन्न चिता बनवाए। मरते समय में इन्द्रियसङ्घात विकल होने पर और चैतन्य भी विषयज्ञान से रहित होकर जडवत् हो जाने पर प्राण हिलने लगते हैं, वह जगत् को समीप में रहने वाले यमदूतों से एकीभूत देखेगा। उस समय में मरते हुए मनुष्य में परलोक को भी देखने वाली दैवी दृष्टि उत्पन्न होती है॥ ११—१५॥

बीभत्सं दारुणं रूपं प्राणैः कण्ठं समाश्रितैः। फेनमुद्गिरते कोऽपि मुखं लालाकुलं भवेत्॥ १६॥
दुरात्मानश् च ताड्यन्ते किङ्करै पाशबन्धनैः। सुखेन कृतिनस्तत्र नीयन्ते नाकनायकैः॥ १७॥
दुःखेन पापिनो यान्ति यममार्गे च दुर्गमे। यमश् चतुर्भुजो भूत्वा शङ्खचक्रगदादिभृत्॥ १८॥
पुण्यकर्मरतान् सम्यक् शुभान् मित्रवदाचरेत्। आहूय पापिनः सर्वान् यमो दण्डेन तर्जयेत्॥ १९॥

मरते हुए मनुष्य का रूप गले में अटके हुए प्राणों से घृणास्पद और भयङ्कर होता है। मरता हुआ कोई मनुष्य फेन उगलता है, किसी का मुख लार से पूर्ण हो जाता है। उस समय में यमराज के अनुचरों से पाश से बाँधने के साथ-साथ पापी लोग ताडित भी होते हैं। सुकर्म करने वाले लोग स्वर्ग को ले जाने वाले धर्मराज के दूतों से सुखपूर्वक वहाँ ले जाते हैं। पापी लोग दुर्गम यममार्ग में दुःख भोगते हुए जाते हैं। **यमराज शङ्ख चक्र, गदा इत्यादि** को धारण करने वाले और चार भुजाओं से युक्त होकर पुण्य कर्म करने वाले शुभ जीवों के प्रति अच्छी तरह मित्रतुल्य व्यवहार करेंगे। सब पापियों को बुलाकर यमराज दण्ड से धमकाने का काम करेंगे॥ १६—१९॥

प्रलयाम्बुदनिर्घोषस् त्वञ्जनाद्रिसमप्रभः। महिषस्थो दुराराध्यो विद्युत्तेजःमद्युतिः॥ २०॥
योजनत्रयविस्तारदेहो रौद्रोऽतिभीषणः। लोहदण्डधरो भीमः पाशपाणिर् दुराकृतिः॥ २१॥
वक्रनेत्रोऽतिभयदो दर्शनं याति पापिनाम्। अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो हाहा कुर्वन् कलेवरात्॥ २२॥
तदैव नीयते दूतैर् याम्यैर् वीक्षन् स्वकं गृहम्। निर्विचेष्टं शरीरं तु प्राणैर् मुक्तं जुगुप्सितम्॥ २३॥
अस्पृश्यं जायते तूर्णं दुर्गन्धं सर्वनिन्दितम्। त्रिधाऽवस्था हि देहस्य कृमिविड्भस्मसंज्ञिता॥ २४॥

पापियों के लिए यमराज प्रलयकाल के मेघ की तरह शब्द करने वाले, अञ्जन के पर्वत के तुल्य रूप वाले, महिष में आरूढ, आराधन में कष्टसाध्य, बिजली के तेज की तरह की कान्ति से युक्त, तीन योजन विस्तार से युक्त शरीर वाले, रौद्राकृति, अतिभयङ्कर, लोहेके दण्ड को लेने वाले, भयजनक, हाथ में पाश लेने वाले, दुष्ट आकृति वाले, वक्रनेत्रों से युक्त ओर अति भय देने वाले होकर दृष्टिपथ में आते हैं। इस अवस्था में **अँगूठे के तुल्य परिमाण वाला जीव** हाहाकार करता हुआ और अपने घर को देखता हुआ शरीर से खींचकर यमदूतों से ले जाया जाता है। प्राणों से युक्त और चेष्टारहित शरीर तुरन्त ही घृणा का विषय, अस्पृश्य, दुर्गन्धयुक्त और सबसे निन्दित हो जाता है। कीड़ों के रूप में विष्ठा के रूप में और राख के रूप में देह की तीन प्रकार की अवस्था परिणाम में होती ही है॥ २०—२४॥

को गर्वः क्रियते तार्क्ष्य क्षणविध्वंसिभिर् नरैः। दानं वित्तादृतं वाचः कीर्तिधर्मौ तथाऽऽयुषः॥ २५॥
परोपकरणं कायादसतः सारमुद्धृतम्। तस्यैवं नीयमानस्य दूताः सन्तर्जयन्ति हि॥ २६॥
दर्शयन्तो भयं तीव्रं नरकाय पुनःपुनः। शीघ्रं प्रचल दुष्टात्मन् गतोऽसि त्वं यमालये॥ २७॥
कुम्भीपाकादिनरकांस् त्वां नेष्यामश् च माचिरम्। एवं वाचस् तदा शृण्वन् बन्धूनां रुदितं तथा॥ २८॥

उच्चैर् हाहेति विलपन् नीयते यमकिङ्करैः। स्थाने श्राद्धं प्रकुर्वीत तथा चैकादशेऽहनि॥ २९॥

हे गरुड, क्षण भर में नष्ट होने वाले मनुष्यों से क्या गर्व किया जाता है? धन से दान, वचन से सत्य, आयु से कीर्ति तथा धर्म और शरीर से परोपकार सिद्ध करना असत् पदार्थों से सार खींचना है। उक्त प्रकार से नरक के लिए ले जाए जा रहे मृतक को यमदूत तीव्र भय दिखाते हुए बार-बार धमकाते रहते हैं। वे कहते हैं कि हे दुष्ट चित्तवाले जीव, तुम शीघ्रता से चलो, तुम यमराज के घर में जा रहेहो, तुम को हम कुम्भीपाकादि नरकों में ले जाएंगे, विलम्ब न करो, उस समय में ऐसे यमदूतों के वचनों को और बन्धुओं के रोदन को सुनाता हुआ और उच्च शब्द से हाहाकार करके विलाप करता हुआ जीव यम के अनुचरों से ले जाया जाता है। यथोक्त स्थल में और मृत्यु के ग्यारहवें दिन में भी श्राद्ध करे॥ २५—२९॥

मृतस्योत्क्रान्तिसमयात् षट् पिण्डान् क्रमशो ददेत्। मृतस्थाने तथा द्वारे चत्वरे तार्क्ष्य षट्पिण्डपरिकल्पने॥ ३१॥
मृतस्थाने शवो नाम तेन नाम्ना प्रदीयते। तेन दत्तेन तृप्यन्ति गृहवास्त्वधिदेवताः॥ ३२॥
तेन भूमिर् भवेत् तुष्टा तदधिष्ठातृदेवता। द्वारे तु पिण्डं देयं च पान्थमित्यभिधाय तु॥ ३३॥
दत्तेन तेन प्रीणन्ति द्वारस्था गृहदेवताः। चत्वरे खेचरो नाम तमुद्दिश्य प्रदापयेत्॥ ३४॥
न चोपघातं कुर्वन्ति भूताद्या देवयोनयः। विश्रामे भूतसंज्ञोऽयं तेन तत्र प्रदापयेत्॥ ३५॥

प्राण जाने के समय से मृतक के लिए क्रम से छः पिण्ड दे। हे गरुड, कारणविशेष से मृत्युस्थान में, गृहाङ्गन के द्वार में, चौराहे में, मार्ग के विश्रामस्थल में, चिताकाष्ठों के चयन करने की भूमि (चिताभूमि) में और चिता के ऊपर इन छः स्थानों में छः पिण्ड दे। हे गरुड, छः पिण्डों की कल्पना में शास्त्रज्ञसम्मत कारण जो है उस को सुनो। मृत्युस्थान में मृतक शव नाम का होता है, उसी नाम से पिण्ड दिया जाता हे। उस पिण्ड के दान से गृहवास्तु के अधिदेवता तृप्त होते हैं। उससे भूमि और उन की अधिष्ठात्री देव शक्तियाँ भी प्रसन्न होगीं। द्वारदेश में पान्थ कहकर पिण्ड देना चाहिए। दिए गए उस पिण्ड से द्वार में रहने वाली घर की देवियाँ प्रसन्न होती हैं। चत्वरदेश में वह मृतक खेचर नाम कहा जाता है, उसी को उद्देश्य करके पिण्ड दिलवाए। इससे भूत, पिशाच, यक्ष, गुह्यक इत्यादि देवयोनि मृतक का उपघात नहीं करते हैं। विश्रामस्थल में यह मृतक भूत नाम का होता है, उसी नाम से वह पिण्ड दिलवाएँ॥ ३०—३५॥

पिशाचा राक्षसा यक्षा ये चान्ये दिशि वासिनः। तस्य होतव्यदेहस्य नैवाऽयोग्यत्वकारकाः॥ ३६॥
चितापिण्डप्रभृतितः प्रेतत्वमुपजायते। चितायां साधकं नाम वदन्त्येके खगेश्वर॥ ३७॥
केचित् तं प्रेतमेवाहुर् यथा कल्पविदो बुधाः। तदादि तत्रतत्रापि प्रेतनाम्ना प्रदीयते॥ ३८॥
इत्येवं पञ्चभिः पिण्डैः शवस्याऽऽहुतियोग्यता। अन्यथा चोपघाताय पूर्वोक्तास् ते भवन्ति हि॥ ३९॥
उत्क्रामे प्रथमं पिण्डं तथा चाऽर्धपथेऽपि च। चितायां तु तृतीयं स्यात् त्रयः पिण्डाश्च कल्पिताः॥ ४०॥

इस पिशाच, राक्षस, यक्ष और अन्य जो भी दिशाओं से निवास करने वाले होते हैं, वे उस अग्नि में होतव्य शव को हवन में अयोग्य नहीं करते हैं। चितापिण्ड से आगे प्रेतत्व उत्पन्न हो जाता है। हे पक्षियों के मालिक, कोई विद्वान् चितापिण्ड में मृतक को साधक कहते हैं। जैसे कल्परूप वेदाङ्ग को जानने वाले विद्वान् कहते हैं, वैसे ही कोई विद्वान् चितापिण्ड में उस मृतक को प्रेत ही कहते हैं। वहाँसे लेकर जहाँ कहीं भी प्रेत के नाम से ही पिण्डादि दिए जाते हैं। इस प्रकार पाँच पिण्डों से शव की अग्नि में आहुति करने में योग्यता होती हैं। पाँच पिण्ड न देने पर वे पूर्वोक्त भूत-पिशाचादि विघ्न करने वाले होते हैं। प्राण जाने के स्थल में प्रथम पिण्ड होगा, तथा आधे मार्ग में दूसरा पिण्ड होगा, चिता में तीसरा पिण्ड होगा, इस प्रकार तीन पिण्ड ही देने का पक्ष भी कल्पशास्त्र में बताया गया है॥ ३६—४०॥

विधाता प्रथमे पिण्डे द्वितीये गरुडध्वजः। तृतीये यमदूताश्च प्रयोगः परिकीर्तितः॥ ४१॥
दत्ते तृतीये पिण्डेऽस्मिन् देहदोषैः प्रमुच्यते। आधारभूतजीवश्च ज्वलनैर् ज्वालयेच् चिताम्॥ ४२॥
सम्मृज्य चोपलिप्याऽथ उल्लिख्योद्धृत्यवेदिकाम्।अभ्युक्ष्योपसमाधाय वह्निं तत्र विधानतः॥ ४३॥
पुष्पाक्षतैश् च सम्पूज्य देवं क्रव्यादसंज्ञाकम्। त्वं भूतकृज् जगद्योने त्वं लोकपरिपालकः॥ ४४॥
उपसंहारकस् तस्मादेनं स्वर्गं मृतं नय। इति क्रव्यादमभ्यर्च्य शरीराहुतिमाचरेत्॥ ४५॥

उनमें पहले पिण्ड में ब्रह्मा, दूसरे पिण्ड मे विष्णु और तीसरे पिण्ड में यमदूत उद्देश्य होते हैं, इस प्रकार का प्रयोग इस पक्ष में बताया गया है। इस पक्ष में तीसरे पिण्ड दिए जाने पर आधारभूत जीव शरीर के दोषों से मुक्त होता है, तब अग्नियों से चिता को जलाए। उससे पहले चिताभूमि के एकदेश में वेदी को कुशों से बुहारकर गोमय से लीपकर स्रुवमूलादि से वेदी का उल्लेखन करके वहाँ से कुछ मिट्टी को लेकर उत्तर की ओर फेंककर वेदी का कुशजल से अभ्युक्षण करके वहाँ अपने गृह्यसूत्र में बताए गए विधान से अग्नि को जलाकर, क्रव्याद नाम के उन अग्निदेव का फूल और अक्षताओं सेपूजा करके **"त्वं भूतकृज् जगद्योने"** इत्यादि मन्त्र से क्रव्याद अग्नि की प्रार्थना भी करके शरीर की (शव की) आहुति करे। **"त्वं भूतकृज् जगद्योने"** इत्यादि मन्त्र का अर्थ है—जगत् के उत्पत्तिस्थान के रूप में रहे हुए हे अग्निदेव, आप आकाशादि की सृष्टि करने वाले (ब्रह्मा) हैं, आप ही सम्पूर्ण लोक के पालक (विष्णु) भी हैं, आप ही जगत् के उपसंहार (प्रलय) करने वाले (रुद्र) भी हैं, इसलिए आप मरे हुए इस मनुष्य को स्वर्ग पहुँचाएं॥ ४१—४५॥

अर्धदग्धे तथा देहे दद्यादाज्याहुतिं ततः। लोमभ्यः स्वेतिवाक्येन कुर्याद्द् धोमं यथाविधि॥ ४६॥
चितामारोप्य तं प्रेतं हु्नेदाज्याहुतिं ततः। यमाय चान्तकायेति मृत्यवे ब्रह्मणे तथा॥ ४७॥
जातवेदोमुखे देया एका प्रेतमुखे तथा। ऊर्ध्वं तु ज्वालयेद् वह्निं पूर्वभागे चितां पुनः॥ ४८॥
अस्मात् त्वमधिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः। असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ज्वलतु पावकः॥ ४९॥
एवमाज्याहुतिं दत्त्वा तिलमिश्रां समन्त्रकाम्। ततो दाहः प्रकर्तव्यः पुत्रेण किल निश्चितम्॥ ५०॥

शव आधा जल जाने पर घी की आहुति दे और उसके बाद **"लोमभ्यः स्वाहा"** इत्यादि मन्त्रों से शास्त्र के विधान के अनुसार होम करे। उस प्रेत को चिता में चढ़ाकर ही यम को, अन्तक को, मृत्यु को और ब्रह्मा को भी घी की आहुति होमे। घी की आहुति अग्नि के मुख में देनी चाहिए और एक आहुति प्रेत के मुख में भी देनी चाहिए। इसके बाद चिता के पूर्व भाग में अग्नि को प्रज्वलित करे। **'अस्मात् त्वमधिजातोऽसि"** इत्यादि मन्त्र से तिलमिश्रित घी की मन्त्रयुक्त आहुति देकर उसके बाद निश्चित रूप में पुत्र द्वारा शव का दाह किया जाना चाहिए॥ ४६—५०॥

रोदितव्यं ततो गाढमेवं तस्य सुखं भवेत्। दाहस्याऽनन्तरं तत्र कृत्वा सञ्चयनक्रियाम्॥ ५१॥
प्रेतपिण्डं प्रदद्याच्च दाहार्तिशमनं खग। तावद्द् भूताः प्रतीक्षन्ते तं प्रेतं बान्धवार्थिनम्॥ ५२॥
दाहास्याऽनन्तरं कार्यं पुत्रैः स्नानं सचैलकम्। तिलोदकं ततो दद्यान् नामगोत्रेण तिष्ठतु॥ ५३॥
ततो जनपदैः सर्वैर् दातव्या करतालिका। विष्णुर् विष्णुरिति ब्रूयाद् गुणैः प्रेतमुदीरयेत्॥ ५४॥
जनाः सर्वे समास् तस्य गृहमागत्य सर्वशः। द्वारस्य दक्षिणे भागे गोमयं गौरसर्षपान्॥ ५५॥
निधाय वरुणं देवमन्तर्द्धाय स्ववेश्मनि। भक्षयेन् निम्बपत्राणि घृतं प्राश्य गृहं व्रजेत्॥ ५६॥

उसके बाद उच्च शब्द से रोना चाहिए ऐसा करने से उस प्रेत को सुख होगा। हे पक्षिन् शवदाह के बाद वहाँ अस्थिसञ्चयन कृत्य करे दाह की आर्ति के शमन करने वाला प्रेतपिण्ड भी दे। बान्धवों को चाहने वालेउस

प्रेत को उस कालतक भूत प्रतीक्षा करते रहते हैं। शवदाह के बाद मृतक के पुत्रोंको वस्त्रों के साथ में स्नान करना चाहिए। तब प्रेत के नाम का और गोत्र का उच्चारण करके **"उपतिष्ठतु"** इत्यादि पद का प्रयोग भी करके प्रेत को तिलसहित उदक (जल) दे। तब शवदाह के स्थल में उपस्थित सभी लोगों से ताली बजाई जानी चाहिए। **तब कोई विष्णु-विष्णु बोले** और प्रेत के सद्गुणों के कथन से प्रेत की प्रशंसा करे। उदासीनता से समभाव रखने वाले प्रेतानुयायी सब लोग उस प्रेत के घर में आकर अङ्गनद्वार के दक्षिण भाग में गोबर और पीले सरसों रखकर, वरुणदेव को अन्त:करण में रखके अपने घर में नीम के पत्तों को दाँतों से काटें और घी खाकर घर में प्रवेश करें।॥ ५१—५६ ॥

केचिद् दुग्धेन सिञ्चन्ति चितास्थानं खगेश्वर। अश्रुपातं न कुर्वीत दद्यादस्मै जलाञ्जलीन्॥ ५७॥
श्लेष्माश्रु बान्धवैर् मुक्तं प्रेतो भुङ्क्तेयतोऽवशः। अतो न रोदितव्यं हि क्रियाः कार्याः स्वशक्तितः॥ ५८॥
दुग्धं च मृन्मये पात्रे तोयं दद्याद् दिनत्रयम्। सूर्ये चाऽस्तं गते तार्क्ष्य वलभ्यां चत्वरेऽपि वा॥ ५९॥
बद्धः सम्मूढहृदयो देहमिच्छन् कृतानुगः। श्मशानं चत्वरं गेहं वीक्षन् याम्यैः स नीयते॥ ६०॥
गर्ते पिण्डा दशाहं च दातव्याश्च दिनेदिने। जलाञ्जलीः प्रदातव्याः प्रेतमुद्दिश्य नित्यशः॥ ६१॥

हे पक्षियों के ईश्वर, कोई चितास्थान को दूध से सींचते हैं। आँसू नहीं छोड़ना चाहिए, प्रेत को जलकी अञ्जलियाँ दे। चूँकि विवश प्रेत बान्धवों से छोड़े गए खखार सिङ्घाण (नकटी) और आँसू को खाता है, इसलिए रोना नहीं चाहिए, अपनी शक्ति के अनुसार और्ध्वदेहिक क्रियाएँ करनी चाहिए। हे गरुड, तीन दिनतक सूर्य अस्तङ्गत होने पर घर की वलभी में अथवा चत्वर में मिट्टी के वर्तनमें दूध और जल दे। सम्मूढ हृदयवाला, अपने से किए गए धर्म-अधर्म के अनुसार चलता हुआ, देह की इच्छा करता हुआ और श्मशान, चत्वर और घर को देखता हुआ वह प्रेत यमदूतों से ले जाया जाता है। दश दिन तक प्रतिदिन गर्त(गड्ढे) में पिण्ड देने चाहिए। नित्य ही प्रेत को उद्दिष्ट करके जलाञ्जलि भी देने चाहिए॥ ५७—६१ ॥

तावद् वृद्धिश् च कर्तव्या यावत् पिण्डंदशाहिकम्। पुत्रेण हि क्रिया कार्या भार्यया तदभावतः॥ ६२॥
तदभावेः च शिष्येण तदभावे सहोदरः। श्मशाने चाऽन्यतीर्थे वा जलं पिण्डं च दापयेत्॥ ६३॥
ओदनामिषसक्तूनां शाकमूलफलादिना। प्रथमेऽहनि यद् दद्यात् तद् दद्यादुत्तरेऽहनि॥ ६४॥
दिनानि दश पिण्डांश् च कुर्वन्त्यत्र सुतादयः। प्रत्यहं ते विभज्यन्ते चतुर्भागाः खगेश्वर॥ ६५॥
भागद्वयं तु देहार्थं प्रीतिदं भूतपञ्चके। तृतीयं यमदूतानां चतुर्थं चोपजीव्यति॥ ६६॥

जब तक दशो पिण्ड दिया जाता है, तब तक जलाञ्जलि में वृद्धि भी करनी चाहिए। प्रेत की और्ध्वदेहिक क्रिया पुत्र से की जानी चाहिए, पुत्र के अभाव में पत्नी से वह क्रिया की जानी चाहिए। पत्नी के भी अभाव में शिष्य द्वारा वह क्रिया की जानी चाहिए। शिष्य के भी अभाव में सहोदर भाई उस क्रिया को करे। श्मशान में अथवा अन्य तीर्थ में जल और पिण्ड दिलवाए शाक मूल फल इत्यादि से सहित ओदन (चावल), माँस, सत्तू में से जो भी प्रथम दिन में दे अगले दिनों में भी वही वस्तु दे। हे पक्षियों के मालिक, पुत्रादि लोग दश दिन तक प्रतिदिन जो पिण्ड देते हें वे चार भागों में विभक्त होते हैं। उन चार भागों में दो भाग तो देहनिर्माण के लिए आवश्यक पाँच महाभूतों के प्रीतिदायक होते हैं, तीसरा भाग यमदूतों का प्रीतिदायक होता है, चौथे भाग को प्रेत उपभोग करता है॥ ६२—६६ ॥

अहरेरात्रैस्तु नवभिः प्रेतो निष्पतितमाप्नुयात्। जन्तोर् निष्पन्नदेहस्य दशमे बलवत्क्षुधा॥ ६७॥
न विधिर् नैव मन्त्रश्च न स्वधावाहनाशिषः। नाम गोत्रं समुच्चार्य यद् दततं तद् दशाहिकम्॥ ६८॥

दग्धे देहे पुनर् देहमेवमुत्पद्यते खग। प्रथमेऽहनि यः पिण्डस् तेन मूर्धा प्रजायते॥ ६९॥
ग्रीवा स्कन्धो द्वितीये च तृतीये हृदयं भवेत्। चतुर्थेन भवेत् पृष्ठं पञ्चमे नाभिरेव च॥ ७०॥
षट्-सप्तमे कटी गुह्यमूरू चाप्यष्टमे तथा। तालू पादौ च नवमे दशमेऽह्नि क्षुधा भवेत्॥ ७१॥
देहं प्राप्तः क्षुधाविष्टो गृहे द्वारे च तिष्ठति। दशमेऽहनि यः पिण्डस् तं दद्यादामिषेण तु॥ ७२॥
यतो देहे समुत्पन्ने प्रेतोऽतीव क्षुधान्वितः। अतस् त्वामिषबाह्येन क्षुधा तस्य न नश्यति॥ ७३॥
एकादशे द्वादशाहे प्रेतो भुङ्क्ते दिनद्वयम्। योषितः पुरुषस्याऽपि प्रेतशब्दं समुच्चरेत्॥ ७४॥
दीपमन्नं जलं वस्त्रं यत्किञ्चिद् वस्तु दीयते। प्रेतशब्देन तद् देयहं मृतस्याऽऽनन्ददायकम्॥ ७५॥
त्रयोदशेऽह्नि स प्रेतो नीयते च महापथे। पिण्डजं देहमाश्रित्य दिवानक्तं बुभुक्षितः॥ ७६॥
शीताष्णशङ्कुक्रव्यादवाह्निमार्गस्तु पापिनाम्। क्षुधातृष्णात्मिका चैव सर्वं सौम्यं कृतात्मनाम्॥ ७७॥

नौ अहोरात्रों में प्रेतशरीर निष्पन्न हो जाता है, देह बन जाने पर प्राणी को तीव्र भूख लगती है। कोई विधि विधान नहीं, मन्त्र भी नहीं, स्वधाशब्द, आवाहन और आशीःप्रार्थना भी नहीं, प्रेत के नाम का और गोत्र का उच्चारण करके जो पिण्ड दिया जाता है वही दश दिनों का कृत्य है। हे पक्षिन्, पूर्वदेह दग्ध हो जाने पर फिर इस प्रकार देह उत्पन्न होता है— **पहले दिन** में जो पिण्ड दिया जाता है उससे शिर बनता है। **दूसरे दिन** में दिए गए पिण्ड से ग्रीवा (गला) और दोनों स्कन्ध होंगे, **तीसरे दिन** में दिए गए पिण्ड से हृदय बनेगा, **चौथे दिन** पिण्ड से पीठ बनेगा, **पाँचवें दिन** में दिए गए पिण्ड से नाभि बनेगा, **छठे दिन में और सातवें दिन** में दिए गए पिण्डों से क्रमशः कटी और गुह्यप्रदेश बनेंगे, **आठवें दिन** में दिए गए पिण्ड से पैर के ऊपर वाले हिस्से बनेंगे, **नवें दिन** में दिए गए पिण्ड से तालु और पैर बनेंगे, दशम दिन में भूख उत्पन्न होगी। देह में प्रविष्ट और भूख से सताया गया वह प्रेत घर के द्वार पर उपस्थित होता है। **दसवें दिन** में जो पिण्ड दिया जाता है, **उस पिण्ड को मांस से देना चाहिए,** क्योंकि देह उत्पन्न होने पर प्रेत कडी भूख से युक्त होता है, इसलिए उसकी भूख मांस को छोड़कर दूसरे वस्तु से शान्त नहीं होती है। **ग्यारहवें दिन में और बारहवें दिन** में दो दिन प्रेत श्राद्ध में दिए गए अन्न-पानादि का भोग करता है। स्त्री के पुरुप के भी इन कृत्यों में प्रेतशब्द का ही उच्चारण करना चाहिये। दीप, अन्न, जल, वस्त्र इत्यादि जो भी वस्तु इन कृत्यों में दिया जाता है वह प्रेतशब्द से देना चाहिए, प्रेतशब्द से दिया गया वस्तु मृतक के लिए आनन्द देने वाला होता है। **तेरहवें दिन** में पिण्डों से उत्पन्न देह में आश्रित और रात-दिन भूख से पीड़ित वह प्रेत यममार्ग में ले जाया जाता है। पापियों का मार्ग ठण्डक, गर्मी, खूंटे, मांसभक्षी हिंस्रकजनतु और अग्नि से युक्त तथा भूख और प्यास से सताने वाला होता है, जिन्होंने अपने हृदय को धर्मभावना से सम्पन्न किया है, उनके लिए वहाँ सब कुछ सुखशान्तिदायक होता है॥ ६७—७५॥

☞ तेरहवें दिन प्रेत अपना घर छोड़ यममार्ग में ले जाया जाता है, अतः ब्रह्मभोज १३ वें दिन ही उचित है।

मार्गे चैतानिःखानि असिपत्रवनान्विते। क्षुत्पिपासार्दितो नित्यं यमदूतैः प्रपीडितः॥ ७८॥
अहन्यहनि वैप्रतो योजनानां शतद्वयम्। चत्वारिंशत् तथा सप्त अहोरात्रेण गच्छति॥ ७९॥
गृहीतो यमस्पाशैश्च हाहेति रुदिते तु सः। स्वगृहं तु परित्यज्य याम्यं पुरमनुव्रजेत्॥ ८०॥

असिपत्रवन से युक्त यममार्ग में ये दुःख होते हैं—प्रेत सदैव भूख और प्यास से आर्त और यमदूतों से अत्यन्त पीड़ित होता है, प्रत्येक दिन प्रेत एक अहोरात्र में दो सौ सैंतालिस योजन चलता है, यम के पाशों से बँधा हुआ वह प्रेत हाहा करके रोता रहता है, अपने घर को छोड़कर वह यमराज के पुर को चलता है॥ ७६—८०॥

क्रमेण याति स प्रेतः पुरं याम्यं शुभाशुभम्। अतीत्य तानितान्येव मार्गे पुरवराणि च॥ ८१॥

याम्यं सौरिपुरं नगेन्द्रभवनं गन्धर्वशैलागमौ क्रौञ्चं क्रूरपुरं विचित्रभवनं बह्वापदं दुःखदम्॥ ८२॥
नानाक्रन्दपुरं सुतप्तभवनं रौद्रं पयोवर्षणं घर्माढ्यं बहुशीतभीतिभवनं याम्यंपुरं जाग्रतः॥ ८३॥
त्रयोदशेऽह्नि स प्रेतो गृहीतो यमकिङ्करैः। तस्मिन् मार्गे व्रजत्येको गृहीत इव मर्कटः॥ ८४॥
तथैव स व्रजन् मार्गे पुत्रपुत्रेति च ब्रुवन्। हाहेति क्रनदते नित्यं कीदृशं तु मया कृतम्॥ ८५॥

मार्ग में उन-उन नगरों को क्रम से पार करता हुआ वह प्रेत शुभ अथवा अशुभ रूप के यमपुर को जाता है। मार्ग के वे नगर ये हैं—१. याम्यपुर, २. सौरिपुर, ३. नगेन्द्रभवन, ४. गन्धर्वपुर, ५. शैलागमपुर, ६. क्रौञ्चपुर, ७. क्रूरपुर, ८. विचित्रभवन, ९. ब्रह्वापदपुर, १०. दुःखदपुर, ११. नानाक्रन्दपुर, १२. सुतप्तभवन, १३. रौद्रपुर, १४. पयोवर्षणपुर, १५. घर्माढ्यपुर, १६. बहुशीतभीतिभवन। इनके आगे यमराज का मुख्य पुर है। तेरहवें दिन में यम के अनुचरों से पकड़ा हुआ वह प्रेत पकड़े हुए बन्दर की तरह उस मार्ग में अकेला चलता है। उसी प्रकार मार्ग में चलता हुआ, सहायता के लिए 'लड़के-लड़के' कहता हुआ नित्य हाहा करके चिल्लाता है और कहता है कि मैं ने कैसा कर्म किया था? ॥ ८१—८५॥

मानुष्यं लभ्यते कस्मादिति ब्रूते प्रसर्पति। महता पुण्ययोगेन मानुष्यं जन्मं लभ्यते॥ ८६॥
न तत् प्राप्य प्रदततं हि याचकेभ्यः स्वकं धनम्। पराधीनं तदभवदिति ब्रूते सगद्गदः॥ ८७॥
किङ्करैः पीड्यतेऽत्यर्थं स्मरेत पूर्वदैहिकम्॥ ८८॥

सुखस्य दुःखस्य न कोपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
पुरा कृतं कर्म सदैव भुज्यते देहिन् क्वचिन् निस्तर यत् त्वया कृतम्॥ ८९॥
मया न दत्तं न हुतं हुताशने तपो न तप्तं हिमशैलगह्वरे।
न सेवितं गाङ्गमहो महाजलं देहिन् क्वचिन् निस्तर यत् त्वया कृतम्॥ ९०॥

मनुष्यजन्म किस कर्म से पाया जाता है, ऐसा बोलता है और आगे बढ़ता है। बड़े पुण्य के योग से मनुष्यजन्म पाया जाता है। उसको पाकर मैं ने अपना धन मांगने वालों को नहीं दिया, अब वह धन दूसरे के अधीन में हुआ, लड़खड़ाती हुई वाणी वाला वह ऐसा बोलता है। वह यमराज के सेवकों से अत्यन्त पीड़ित किया जाता है और पूर्वदेह से किए गए कर्म का स्मरण करता है। सुख का और दुःख का दाता दूसरा कोई नहीं है, दूसरा मनुष्य सुख अथवा दुःख देता है ऐसा समझना कुबुद्धि है, पहले अपने से किए गए कर्म का फल ही सदाकाल भोगा जाता है, इसलिए हे जीव, तुमने जो किया था, उसका फल भोग कर पार हो जाओ। मैंने दान नहीं किया, अग्नि में हवन नहीं किया, हिमालय पर्वत की गुफा में तपस्या भी नहीं की, अहो! गङ्गाजी का महापवित्र जल की सेवा भी नहीं की; हेजीव, तुमने जो किया था उसका फलभोग करके पार हो जाओ॥ ८६—९०॥

न नित्यदानं न गवाह्निकं कृतं न वेददानं न च शास्त्रपुस्तकम्।
पुराणदृष्टो न च सेवितोऽध्या देहिन् क्वचिन् निस्तर यत् त्वया कृतम्॥ ९१॥
जलाशयो नैव कृतो हि निर्जले मनुष्यहेतोः पशुपक्षिहेतवे।
गोतृप्तिहेतोर् न कृतं हि गोचरं देहिन् क्वचिन् निस्तर यत्त्वया कृतम्॥ ९२॥
मया न भुक्तं पतिसङ्गसौख्यं वह्निप्रवेशो न कृतो मृते सति।
तस्मिन् मृते तद्व्रतपालनं वा देहिन् क्वचिन् निस्तर यत् त्वया कृतम्॥ ९३॥
मासोपवासैर् न विशोषितं वपुश् चान्द्रायणैर् वा नियमैश् च संहतैः।
नारीशरीरं बहुदुःखभाजनं लब्धं मया पूर्वकृतैर विकर्मभिः॥ ९४॥

उक्तानि वाच्यानि मया नराणामतः शृणुष्वाऽवहितोऽपि पक्षिन्।
स्त्रीणां शरीरं प्रतिलभ्य देही ब्रवीति कर्माणि कृतानि पूर्वम्॥ ९५॥

मैंने नित्यदान नहींकिया, गाय को एक दिन के लिए पर्याप्त घास का दान भी नहीं किया, वेद का अध्यापनरूप दान भी नहीं किया, शिक्षा-कल्प-व्याकरण-निरुक्त-छन्द-ज्योतिष इन छः वेदाङ्गशास्त्रों के पुस्तक का दान भी नहींकिया, पुराणशास्त्र से ज्ञात सन्मार्ग का सेवन भी नहीं किया; हे जीव, तुमने जो किया था उसका फलभोग करके पार हो जाओ। मैंनेजल से रहित देश में मनुष्यों के लिए अथवा पशु-पक्षियों के लिए भी जलाशय नहीं बनाया गायों की तृप्ति के लिए चरागाह (गायों के चरने का स्थान) भी नहीं बनाया; हेजीव, तुमने जो किया था उसका फलभोग करके पार हो जाओ। कोई स्त्री जीव यममार्ग मं चलती हुई कहती है कि—मैंने पति के सङ्ग में सुख का अनुभव करके पति को प्रसन्न नहीं किया, पति के मरने पर पति की चिता के अग्नि में प्रवेश भी नहीं किया पति मरने पर पति के व्रतों का पालन भी नहीं किया; हे जीव, तुमने जो किया था उसका ही फलभोग करके पार हो जाओ। मैंने महीनेतक किए जाने वाले उपवास से अथवा चान्द्रायणकृच्छ्र से अथवा अन्य संयुक्त व्रतों से शरीर को नहीं सुखाया, पूर्वजन्मों में किए गए शास्त्रविपरीत कर्मों से मैंने बहुत दुःखों को भोगने वाला स्त्रीशरीर पाया। हे पक्षिन्, यममार्ग में चलते हुए मनुष्यों से पश्चात्ताप से कहीं जाने वाली बातें मैंने बता दीं, तुम सावधान होकर सुनो। जीव स्त्रियों का शरीर पाकर पहले अपने से किए गये कर्मों को कहता है॥ ९१—९५॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-१६

श्रीभगवानुवाच

एवं विलपतस्तस्य प्रेतस्यैव खगेश्वर। क्रन्दमानस्य नितरां पीडितस्य च किङ्करैः॥ १॥
सप्तदश दिनान्येको वायुमार्गे विकृष्यते। अष्टादशे त्वहोरात्रे पूर्वं याम्यपुरं व्रजेत्॥ २॥
तस्मिन् पुरवरे रम्ये प्रेतानां च गणो महान्। पुष्पभद्रा नदी तत्र न्यग्रोधः प्रियदर्शनः॥ ३॥
पुरे स तत्र विश्रामं प्राप्यते यमकिङ्करैः। जायापुत्रादिकं सौख्यं स्मरेत् तत्र सुदुःखितः॥ ४॥
रुदते करुणैर् वाक्यैस् तृषार्तः श्रमपीडितः। स्वधनं स्वकलत्राणि गृहं पुत्राः सुखानि च॥ ५॥
भृत्यमित्राणि चाऽन्यच् च सर्वं शोचति वैतदा। क्षुधार्तस्य पुरे तस्मिन् किङ्करैस्तस्य चोच्यते॥ ६॥

श्रीभगवान् ने कहा—हे पक्षियों के मालिक, इस प्रकार विलाप करने वाले और यमराज के सेवकों से अत्यन्त पीड़ित और इस प्रकार क्रन्दन करने वाले उस प्रेत का कहना कुछ सुने बिना ही वह प्रेत अनादरपूर्वक सत्रह दिन तक अकेला ही वायुमार्ग में यमदूतों से खींचा जाता है। अठारहवें अहोरात्र में वह पहले याम्यपुर में पहुँचेगा। उस रमणीय श्रेष्ठ पुर में प्रेतों का बड़ा समूह रहता है, वहाँ पुष्पभद्रा नाम की नदी और आँखों को लुभाने वाला वटवृक्ष भी है। उस पुर में वह प्रेत यमराज के सेवकों द्वारा विश्राम कराया जाता है, वहाँ वह प्रेत बहुत दुःखी होकर पत्नी-पुत्रादिका और मनुष्यलोक के सुख का स्मरण करता है। प्यास से और थकान से पीड़ित वह प्रेत दीनतायुक्त वाक्यों के साथ रोता है। उस समय में अपने धन, अपनी पत्नियाँ, घर, पुत्र, मनुष्यलोक का सुख, सेवक, मित्र और अन्य सब बातों की चिन्ता करता है। उस पुर में भूख से सताए गए उसके लिए यमदूतों से ऐसा कहा जाता है॥ १—६॥

किङ्करा ऊचुः-

क्व धनं क्व सुता जाया क्व गृहं क्व त्वमीदृशः।

स्वकर्म्मोपार्जितं भुंक्ष्व चिरं गच्छ महापथे॥ ७॥
जानासि शम्बलवशं बलमध्वगानां नो शम्बलः प्रयत ते परलोकपान्थ।
गन्तव्यमस्ति तव निश्चितमेव तेन मार्गेण यत्र भवतः क्रयविक्रयौ न॥ ८॥
यमदूतोदितं वाक्यं पक्षिन् नैव त्वया श्रुतम्। एवमुक्तस् ततः सर्वेर् हन्यमानः स मुद्गरैः॥ ९ ॥
अत्र दत्तं सुतैः पात्रे स्नेहाद् वा कृपयाऽथवा। मासिकं पिण्डमश्नाति ततः सौरिपुरं व्रजेत्॥ १०॥
तत्र नाम्ना तु राजा वै जङ्गमः कालरूपधृक्। तं दृष्ट्वा भयभीतस्तु विश्रामे कुरुते मतिम्॥ ११॥
उदकं चाऽन्नसंयुक्तं भुङ्क्ते तस्मिन् पुरे गतः। त्रैपक्षिके तु यद् दत्तं तत् पुरं स व्यतिक्रमेत्॥ १२॥
नगेन्द्रनगरे रम्ये प्रेतो याति दिवानिशम्। गच्छन् वनानि रौद्राणि दृष्ट्वा क्रन्दति तत्र सः॥ १३॥

किङ्करा ने कहा—पत्नी कहाँ है ? घर कहाँ है ? इस प्रकार का तुम कहाँ हो ? अपने कर्मों से उपार्जित फल का बहुत समय तक भोग करो और यममार्ग से चलो। तुम जानते हो कि पथिकों का बल मार्ग में भोज्य पदार्थों में आधृत है, हे परलोक के राही, परलोक जाने वाले तुम्हारे मार्ग में भोज्य पदार्थ नहीं है। तुम को निश्चित रूप से उसी मार्ग से जाना है जहाँ क्रय और विक्रय नहीं होते हैं। हे पक्षिन्, यमदूतों से कहे गए ऐसे वाक्य को तुमने तो नहीं सुना है। सभी यमदूतों से ऐसी तरह भर्त्सित और मुद्गरों से ताडित होता हुआ वह प्रेत पुत्रों से प्रेत के प्रति स्नेह से अथवा दया से सत्पात्र में दिए गए मासिक श्राद्ध का पिण्ड खाता है और वहाँ से सौरिपुर के लिए चलता है। उस पुर में नाम से जङ्गम और काल का रूप धारण करने वाला राजा है। उसको देखकरभयभीत वह प्रेत विश्राम करना चाहता है। उस पुर में पहुँचा हुआ वह प्रेत त्रैपक्षिक श्राद्ध में जो दिया गया है उस अन्न सहित जलको खाता है और उस पुर को लाँघता है। रात-दिन चलता हुआ वह प्रेत सुहावने नगेन्द्रनगर को जाता है और वहाँ भयङ्कर वनों को देखकर वह चिल्लाता है॥ ७—१३॥

भीषणैः क्लिश्यमानस् तु रुदते च पुनःपुनः। मासद्वयावसाने तु तत् पुरं सोऽतिगच्छति॥ १४॥
भुक्त्वा चाऽन्नं जलं पीत्वा यद् दत्तं बान्धवैरिह। क्लिश्यमानस् ततः पाशैर् नीयते यमकिङ्करैः॥ १५॥
तृतीये मासि सम्प्राप्ते गन्धर्वनगरं शुभम्। तृतीयं मासिक भुक्त्वा तत्र गच्छत्यसौ पुरः॥ १६॥
शैलागमं चतुर्थे स मासे प्राप्नोति वै पुरम्। पाषाणास्तत्र वर्षन्ति प्रेतस्योपरि संस्थिताः॥ १७॥
चतुर्थमासिकं श्राद्धं भुङ्क्ते तत्र सुखी भवेत्। ततो याति पुरं प्रेतः क्रौञ्चं मासे तु पञ्चमे॥ १८॥
इह दत्तं सुतैर् भुङ्क्ते प्रेतो वै तत्पुरे स्थितः। षष्ठे मासि ततः प्रेतो याति क्रूराभिधं पुरम्॥ १९॥

भयङ्कर यमदूतों से क्लेशित होता हुआ वह बार-बार रोता है। दो मासों के अन्त में वह जो बान्धवों से दिया गया है उस अन्न को खाकर और जलको पीकर उस पुरको लाँघता है। तब यमदूतों से पाशों से क्लेशित होता हुआ वह प्रेत तीसरे मास प्राप्त होने पर सुहावने गन्धर्वनगर को ले जाया जाता है। वह वहाँ तीसरे मास के श्राद्ध में दिए गए अन्नपान का भोग करके आगे बढ़ता है। वह चौथे महीने में शैलागम पुर में पहुँचता है। वहाँ संस्थित पत्थर प्रेत के ऊपर बरसते हैं। वहाँ चौथे महीने के श्राद्ध में दिए गए अन्नपान का भोग करता है, और सुखी होता है। तब प्रेत क्रौञ्चपुर को जाता है, पाँचवे महीने में इस लोक में पुत्रों से दिए गए अन्नपान का उस पुर में रहकर प्रेत भोग करता है। छठे महीने में प्रेत वहाँ से क्रूरनामक पुर में जाता है॥ १४—१९॥

तत्र दत्तेन पिण्डेन श्राद्धेनाऽऽप्यापितः पुरे। मुहूर्तार्धं तु विश्रम्य कम्पमानः सुदुःखितः॥ २०॥
तत् पुरं स व्यतिक्रम्य तर्जितो यमकिङ्करैः। प्रयाति चित्रनगरं विचित्रो यत्र पार्थिवः॥ २१॥
यमस्यैवाऽनुजः सौरिर् यत्र राज्यं प्रशास्ति हि। मासैस् तु पञ्चभिः सार्धैरूनषाणमासिकं भवेत्॥ २२॥

ऊनषाण्मासिकं तत्र भुङ्क्ते याम्यसमाहतः। मार्गे पुनःपुनस्तस्य बुभुक्षा पीडयत्यलम्॥ २३॥
सन्तिष्ठते मृते कोऽपि मदीयः सुतबान्धवः। सौख्यं यो मे जनयति पततः शोक सागरे॥ २४॥

छठे महीने में दिए गए श्राद्ध से और पिण्ड से उस पुर में सन्तृप्त होकर आधा मुहूर्त विश्राम करके अत्यन्त दुःखित और काँपता हुआ वह प्रेत उस पुरको लाँघकर यमदूतों से तर्जित होता हुआ विचित्रनगर को जाता है, वहाँ विचित्र नाम का यमराज का ही छोटा भाई सूर्यपुत्र राजा राज्यशासन करता है। साढे पाँच महीनों में ऊनषाण्मासिक श्राद्ध होगा। उस पुरमें यमदूतों से ताडित होता हुआ प्रेत ऊनषाण्मासिक श्राद्ध में दिए गए अन्नपान का भोग करता है। यममार्ग में उस की भूख उसको बार-बार अत्यन्त पीड़ित करती है। मरने पर मेरा कोई पुत्र वा बान्धव खड़ा है क्या, जो शोक के सागर में पड़ते हुए मुझको सुख देता है॥ २०—२४॥

एवं मार्गे विलपति वार्यमाणश् च किङ्करैः। आयान्ति सम्मुखास् तत्र केवर्तास्तु सहस्रशः॥ २५॥
वयं ते ततुकामाय महावैतरणीं नदीम्। शतयोजनविस्तीर्णां पूयशोणितसङ्कुलाम्॥ २६॥
नानाझषसमाकीर्णां नानापक्षिगणैर् वृताम्। वयं त्वां तारयिष्यामः सुखेनेति वदन्ति ते॥ २७॥
अन्तरं देहि भोः पान्थ बहुला चेद् रुचिस् तव। येन तत्र प्रदत्ता गौस् तया नावा प्रसर्पति।
मनुजानां हितं दानमन्ते वैतरणी स्मृता॥ २८॥
परा पापं दहेत् सर्वं विष्णुलोकं च सा नयेत्। न दत्ता चेत् खगश्रेष्ठ तां समेत्य स मज्जति॥ २९॥

यमदूतों से रोका जाता हुआ भी वह प्रेत मार्ग में ऐसा विलाप करता है। वहाँ हजारों केवट उसके आगे आते हैं। वे कहते हैं कि महावैतरणी नदी को पार करने की इच्छा रखने वाले तुम्हारे लिए हम उपस्थित हैं; सौ योजन विस्तृत, पीब और लहू से पूर्ण, नाना प्रकार के ग्राहादि जलचरों से व्याप्त तथा विविध प्रकार के पक्षियों के झुण्डों से ढकी हुई उस नदी को तुम को हम सुखपूर्वक तारें, यदि तुम्हारी इसमें पर्याप्त रुचि है तो, हे पथिक, हमको काम करने का अवसर दो। उस लोक में जिस से गाय दान में दी गई है, उस नाव के साथ में वह गाय चलती है। मनुष्यों के अन्तकाल में दान में दी गई वैतरणी गौ परम हितकारिणी समझी गई है। वह सभी पापों को भस्म करेगी और दाता को विष्णुलोक में ले जाएगी। हे पक्षियों में श्रेष्ठ, यदि वैतरणी गौ नहीं दी गई है तो वह मनुष्य वैतरणी नदी में पहुँचकर डूब जाता है॥ २५—२९॥

स्वस्थावस्थे शरीरेऽत्र वैतरण्या व्रत चरेत्। देया च विदुषे धेनुस् तां नदीं तर्तुमिच्छता॥ ३०॥
अददन् मज्जमानस् तु निन्दत्यात्मानमात्मना। पाथेयार्थं मया किञ्चिन् न प्रदत्तं द्विजाय च॥ ३१॥
न दत्तं न हुतं जप्तं न स्नातं न कृतं स्तुतम्। यादृशं कर्म चरितं मूढ भुङ्क्ष्वेति तादृशम्॥ ३२॥
तदैव हृदि सम्मूढस् ताडितो भाषते भटैः। वैतरण्याः परतटे भुङ्क्ते दत्तं घटादिकम्॥ ३३॥
तत्र षाण्मासिकश्राद्धं भुक्त्वा गच्छति चाऽग्रतः। ताक्ष्र्य तत्र विशेषेण भोजयीत द्विजाज् छुभान्॥ ३४॥

शरीर स्वस्थावस्था में रहते ही इस लोक में वैतरणी का व्रत करना चाहिए। उस वैतरणी नदी को पार करना चाहने वाले को विद्वान ब्राह्मण को वैतरणी धेनु देनी चाहिए। वैतरणीदान न देने वाला मनुष्य वैतरणी नदी में डूबता हुआ स्वयम् अपनी निन्दा करता है। वह कहता है—मार्ग भोज्य के लिए मैं ने ब्राह्मण को कुछ भी नहीं दिया, और दान भी नहीं किया, होम भी नहीं किया, जप भी नहीं किया, तीर्थस्नानादि स्नान भी नहीं किया, अन्य लोक प्रशंसित सुकृतकर्म भी नहीं किया। हे मूर्ख, जैसा कर्म किया उसी प्रकार का यह फल भोगो। यमराज के पुरुषों से हृदयदेश में ताडित वह मूढ़ प्रेत उस समय में ऐसा बोलता है। वैतरणी नदी के दूसरे तट में जाकर इस लोक में पुत्रादि से दिए गए घटजल और अन्न को खाता है। वहाँ षाण्मासिक श्राद्ध में दिए गए अन्नपान का भोग करके वह आगे

बढ़ता है। हे गरुड, षाण्मासिक श्राद्ध में विशेष रूप से सत्पात्र ब्राह्मणों को भोजन कराए॥ ३०—३४॥

चत्वारिंशत् तथा सप्त योजनानि शतद्वयम्। प्रयाति प्रत्यहं तार्क्ष्य अहोरात्रेण कर्षितः॥ ३५॥
सप्तमे मासि सम्प्राप्ते पुरं ब्रह्मापदं व्रजेत्। तत्र भुक्त्वा प्रदत्तं यच् छ्राद्धं सप्तममासिकम्॥ ३६॥
अष्टमे मासि सम्प्राप्ते नानाक्रन्दपुरं व्रजेत्। नानाक्रन्दगणान् दृष्ट्वा क्रन्दमानान् सुदारुणम्॥ ३७॥
स्वयं च शून्यहृदयः समाक्रन्दति दुःखितः। तन्मासिकं च यच् छ्राद्धं भुक्त्वा तत्र सुखी भवेत्॥ ३८॥
विहाय तत् पुरं प्रेतो याति तप्तपुरं प्रति। सुतप्तनगरं प्राप्य नवमे मासि सोऽश्नुते।
द्विजभोज्यं पिण्डदानं कृतं श्राद्धं सुतेन यत्॥ ३९॥

हे गरुड, कृशीभूत वह प्रेत प्रतिदिन एक अहोरात्र में दो सौ सैंतालिस योजन चलता है। सातवाँ महीना प्राप्त होने पर वह बह्मापद नाम के पुर में पहुँचेगा। सप्तममासिक श्राद्ध जो दिया जाता है, उसका वहाँ भोग करके आठवाँ महीना प्राप्त होने पर वह नानाक्रन्दनपुर में पहुँचेगा। अत्यन्त दारुण रूप में क्रन्दन करते हुए नानाक्रन्दगणों को देखकर स्वयम् भी शून्यहृदय वाला और दुःखित होकर प्रेत बहुत जोर से क्रन्दन करता है। उस महीने में दिया गया जो श्राद्ध होता है उसका भोग करके वह वहाँ सुखी होता है। प्रेत उस पुरको छोड़कर तप्तपुर की ओर चलता है। सुतप्तपुर में पहुँचकर नवें मास में पुत्रादि ने ब्राह्मणभोजन और पिण्डदान करके जो श्राद्ध किया होता है उसका भोग करता है॥ ३५—३९॥

मासि वै दशमे प्राप्ते रौद्रं स्थानं स गच्छति। दशमे मासि यद् दत्तं तद् भुक्त्वा च प्रयाति सः॥ ४०॥
दर्शकमासिकं भुक्त्वा पयोवर्षणमृच्छति। मेघास्तत्र प्रवर्षन्ति प्रेतानां दुःखदायकाः॥ ४१॥
ततः प्रचलितो प्रेतो बहुघर्मे तृषार्दितः। द्वादशे मासि यच् छ्राद्धं तत्र भुङ्क्ते सुदुःखितः॥ ४२॥
किञ्चिन्न्यूने ततो वर्षे चैकादशेऽथवा। याति शीतपुरं तत्र शीतं यत्राऽतिदुःखदम्॥ ४३॥
शीतार्तः क्षुधितः सोऽथ वीक्षते हि दिशो दश। तिष्ठेत् तु बान्धवः कोऽपि यो मे दुःखं व्यपोहति॥ ४४॥
किङ्करास् तं वदन्त्येवं क्व ते पुण्यं हि तादृशम्। श्रुत्वा तेषां तु तद् वाक्यं हा दैव इति भाषते॥ ४५॥

दशवाँ महीना प्राप्त होने पर वह रौद्रपुर को जाता है। दशवें महीने में पुत्रादि से जो श्राद्ध दिया जाता है उसका भोग करके वह वहाँ से चलता है। ग्यारहवें मासिक में दिए गए श्राद्ध का भोग करके वह पयोवर्षणपुर को पहुँचता है। उस पुर में प्रेतों को दुःख देने वाले मेघ भारी वर्षा करते हैं। वहाँ से चला हुआ प्रेत **बहुघर्मपुर** में प्यास से पीडित होता हुआ बारहवें महीने में जो श्राद्ध दिया गया होता है उसका वहाँ भोग करता है। वर्षपूर्ति में थोड़ी न्यूनता रहने पर अथवा साढ़े ग्यारह महीने बीतने पर उस मार्ग में वह प्रेत **शीतपुर** में पहुँचता है, जहाँ ठण्डक अत्यन्त दुःख देने वाली होती है। ठण्डक से आर्त और भूख से पीड़ित वह प्रेत दशों दिशाओं को इस विचार से देखता है कि मेरा कोई बान्धव जो मेरे दुःख को हटा सकता है, यहाँ कहीं है क्या? यमराज के पुरुष तुम्हारा वैसा पुण्य कहाँ है, ऐसा कहते हैं। उनके इस वाक्य को सुनकर प्रेत 'हाय दैव' ऐसा बोलता है॥ ४०—४५॥

दैवं हि पूर्वसुकृतं तन् मया नैव सञ्चितम्। एवं सञ्चिन्त्य बहुशो धैर्यमालम्बते पुनः॥ ४६॥
चत्वारिंशद् योजनानि चतुर्युक्तानि वै ततः। धर्मराजपुरं रम्यं गन्धर्वाप्सरआकुलम्॥ ४७॥
चतुरशीतिलक्षैश् च मूर्तामूर्तैरधिष्ठितम्। त्रयोदश प्रतीहारा धर्मराजपुरे स्थिताः॥ ४८॥
शुभाऽशुभं तु यत् कर्म ते विचार्य पुनःपुनः। श्रवणा ब्राह्मणः पुत्रा मनुष्याणां च चेष्टितम्।
कथयन्ति तदा लोके पूजिताऽपूजिताः स्वयम्॥ ४९॥
नरैस् तुष्टैश् च पुष्टैश् च यत् प्रोक्तं च कृतं चयत्। सर्वमावेदयन्ति स्म चित्रगुप्ते यमे च तत्॥ ५०॥

दूराच्छ्रवणविज्ञाना दूराद्दर्शनगोचराः। एवंचेष्टास्तु ते ह्यष्टौ स्वर्-भू-पाताल-चारिणः ॥ ५१ ॥
तेषां पत्न्यस्तथैवोग्राः श्रवण्यः पृथगाह्वयाः। एवं तेषां शक्तिरस्ति मर्त्ये मर्त्याधिकारिणः ॥ ५२ ॥
व्रतैर् दानैः स्तवैर् यश् च पूजयेदिह मानवः। जायन्ते तस्य ते सौम्याः सुखमृत्युप्रदायिनः ॥ ५३ ॥

पहले किया गया सुकर्म ही दैव है, वह तो मैं ने सञ्चित नहीं किया है। बार-बार ऐसा विचार करके वह फिर धैर्य का अवलम्बन करता है। उस शीतपुर से चौवालीस योजन दूर में गन्धर्व और अप्सराओं से पूर्ण, सुहावना और मूर्त तथा अमूर्त चौरासी लाख तत्त्वों से अधिष्ठित धर्मराजपुर है। धर्मराज के पुर में तेरह द्वारपाल, मनुष्यों के जो शुभ और अशुभ कर्म होते हैं, उनका बार-बार विचार करके अवस्थित होते हैं। वे ब्राह्मण के पुत्र **श्रवण** हैं, लोक में पूजित अथवा अपूजित होने पर भी वे प्रेत के धर्मराजपुर में पहुँच जाने पर मनुष्यों के कर्मों को स्वयम् बताते हैं। मनुष्यलोक में तुष्ट और पुष्ट मनुष्यों से जो कहा गया अथवा किया गया होता है, वे **चित्रगुप्त-यम** को आवेदित (ज्ञापित) करते हैं। दूर से ही सुनने की और जानने की शक्ति से और दूर से ही देखने की शक्ति से युक्त तथा उसी अनुसार चेष्टा करने वाले और स्वर्गलोक मर्त्यलोक तथा पाताललोक में घूमने वाले वे आठ हैं। उन श्रवणों की पत्नियाँ भी उसी प्रकार की तीव्र शक्ति से युक्त तथा अलग-अलग नामवाली श्रवणियाँ हैं। उन श्रवणों की इस प्रकार की शक्ति है, वे मर्त्यलोक में मनुष्यों के चरित्र को देखने सुनने के लिए स्थापित हैं। इस लोक में जो मनुष्य व्रतों से, दानों से और स्तुतियों से उन श्रवणों की पूजा करेगा उसके लिए वे सौम्य और सुखमृत्यु देने वाले होते हैं ॥ ४६—५३ ॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-१७

गरुड उवाच—

एको मे संशयो देव हृदयं सम्प्रबाधते। श्रवणाः कस्य पुत्राश्च कथं यमपुरे स्थिताः ॥ १ ॥
मानुषैश् च कृतं कर्म कस्माज् जानन्ति ते प्रभो। कथं शृण्वन्ति ते सर्वे कस्माज् ज्ञानं समागतम् ॥ २ ॥
कुत्र भुञ्जजित देवेश कथयस्व प्रसादतः। पक्षिराजवचः श्रुत्वा भगवान् वाक्यमब्रवीत् ॥ ३ ॥

गरुड ने कहा—हे देव, एक सन्देह मेरे हृदय को अत्यन्त बाधित करता है, श्रवण किसके पुत्र हैं? कैसे यमपुर में रहे हैं? हे प्रभु, वे मनुष्यों से किए गए कर्मों को किस कारण से जान सकते हैं? वे सब कैसे सुनते हैं, कहाँ से उन का ज्ञान आया है? हे देवों के स्वामिन् वे कहाँ खाते हैं, कृपा करके बताइए। पक्षियों के राजा के वचन को सुनकर भगवान् ने अपने वाक्य को बोला ॥ १—३ ॥

श्रीकृष्ण उवाच—

शृणुष्व वचनं सत्यं सर्वेषां सौख्यदायकम्। तदहं कथयिष्यामि श्रवणानां विचेष्टितम् ॥ ४ ॥
एकीभूतं यदा सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्। क्षीरोदसागरे पूर्वं मयि सुप्ते जगत्पतौ ॥ ५ ॥
नाभिस्थोऽजस् तपस् तेपे वर्षाणि सुबहून्यपि। एकीभूतं जगत् सृष्टं भूतग्रामचतुर्विधम् ॥ ६ ॥
ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वं विष्णुना पालितं तदा। रुद्रः संहारमूर्तिश् च निर्मितो ब्रह्मणा ततः ॥ ७ ॥
वायुः सर्वगतः सृष्टः सूर्यस् तेजोभिवृद्धिमान्। धर्मराजस् ततः सृष्टश् चित्रगुप्तेन संयुतः ॥ ८ ॥
सृष्ट्वैतदादिकं सर्वं तपस् तेपे तु पद्मजः। गतानि बहुवर्षाणि ब्रह्मणो नाभिपङ्कजे ॥ ९ ॥
योयो हि निर्मितः पूर्वं तत्तत्कर्म समाचरेत्। कस्मिश्चित् समये तत्र ब्रह्मा लोकसमन्वितः ॥ १० ॥
रुद्रो विष्णुस्तथा धर्मः शासयन्ति वसुन्धराम्। न जानीमो वयं किञ्चिल्लोककृत्यमिहोच्यताम् ॥ ११ ॥

इति चिन्तापराः सर्वे देवा विममृशुस्तदा। सञ्चिन्त्य ब्रह्मणो मन्त्रं विबुधैः प्रेरितस्तदा॥ १२॥
गृहीत्वा पुष्पपत्राणि सोऽसृजद् द्वादशाऽऽत्मजान्। तेजोराशीन् विशालाक्षान् ब्राह्मणो वचनात्तु ते॥ १३॥
योऽयं वदति लोकेऽस्मिञ् छुभं वा यदिवाऽशुभम्। प्रापयन्ति ततः शीघ्रं ब्राह्मणः कर्णगोचरम्॥ १४॥

श्रीकृष्ण ने कहा—सभी लोगों को सुख देने वाले सत्य वचन को सुनो। मैं श्रवणों के उस चरित्र को बताऊँगा। जिस समय में स्थावर और जङ्गम सम्पूर्ण जगत् एकीभूत जगत् को चार प्रकार के प्राणियों से युक्त बनाकर उत्पन्न किया। जगत् को पहले ब्रह्माजी ने बनाया और विष्णु ने पालित किया, तब संहारमूर्ति रुद्र ब्रह्माजी से बनाए गए। ब्रह्माजी से सर्वगत् वायु और तेज की अभिवृद्धि वाले सूर्य उत्पन्न हुए तत्पश्चात् सूर्यपुत्र यमराज उत्पन्न हुए। **इन सभी का निर्माण करके पद्मज ब्रह्माजी-चित्रगुप्त के साथ तपस्या करने लगे।** इस प्रकार कमलनाभि ब्रह्माजी के बहुत वर्ष बीत गये। जो-जो पहले बनाया गया था, वह उस-उस कर्म को करेगा। किसी समय में वहाँ लोकों से युक्त ब्रह्माजी, रुद्र, विष्णु और धर्मराज पृथिवी में प्रशासन चलाते थे। लोक में क्या हो रहा है, यह हम जानते हैं, ऐसी चिन्ता में लगे हुए सब देवताओं ने विमर्श किया। उस समय देवताओं से प्रेरित ब्राह्मण ने पुष्प और पत्र लेकर ब्रह्माजी के मन्त्र का चिन्तन करते हुए तेज के राशि के रूप के और बड़े-बड़े नेत्रों से युक्त बारह पुत्रों की सृष्टि की। ब्राह्मण के वचन से वे ब्राह्मण पुत्र मर्त्यलोक में जो कोई शुभ अथवा अशुभ बोलता है उसको वहाँ से शीघ्र ही ब्राह्मण के कान में पहुँचाते हैं॥ १०—१४॥

☞ भगवान् ब्रह्मा ने चित्रगुप्त के साथ यज्ञ एवं तप उज्जैन के कायथा नामक स्थान पर किया था। चित्रगुप्त (ब्राह्मण) के १२ पत्नियों एवं १२ पुत्रों के उद्भव का भी वर्णन विद्यमान है। **ये १२ पुत्र सृष्टि विस्तार करने के पश्चात् चैतन्य रूप में १२ श्रवण कहे गये हैं।**

ऐसा ही ऋषियों के साथ भी है। **मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, दक्ष इत्यादि ऋषि भी सृष्टि में वंश उत्पन्न करके "चैतन्य रूप में विद्यमान् हैं। ये सभी ऋषि यमलोक में रह कर यमराज की सहायता में कार्यरत हैं,"** जिसका वर्णन आप वाराहपुराण में पढ़ चुके हैं। प्राचीन लोकोक्ति है कि चित्रगुप्त के दूत मनुष्यों के दोनों कन्धों में बैठकर मनुष्य के हर बात को सुनकर भगवान् चित्रगुप्त को बताते हैं।

दूराच् छ्रवणविज्ञानं दूराद् दर्शनगोचरम्। सर्वे शृण्वन्ति यत् पक्षिंस् तेनैव श्रवणा मताः॥ १५॥
स्थित्वा चैव तथाऽऽकाशे जन्तूनां चेष्टितं च यत्। तज् ज्ञात्वा धर्मराजाग्रे मृत्युकाले वदन्ति च॥ १६॥
धर्मं चार्थं च कामं च मोक्षं च कथयन्ति ते। एको हि धर्ममार्गश् च द्वितीयश् चाऽर्थमार्गकः॥ १७॥
अपरः काममार्गश् च मोक्षमार्गश् चतुर्थकः। उत्तमा धर्ममार्गेण वैनतेय प्रयान्ति हि॥ १८॥
अर्थदाता विमानैस्तु अश्वैः कामप्रदायकः। हंसयुक्तविमानैश्च मोक्षाकाङ्क्षी विसर्पति॥ १९॥
इतरः पादचारेण त्वसिपत्रवनानि च। पाषाणैः कण्टकैः क्लिष्टः पाशबद्धोऽथ याति वै॥ २०॥

हे पखिन्, ये सुनकर जानने के योग्य विषयों को दूर से ही जानते हैं, देखकर जानने के योग्य विषयों को दूर से ही देखते हैं। चूँकि सभी सुनते हैं इसीलिए वे श्रवण नाम के माने जाते हैं। प्राणियों की जो चेष्टाएँ होतीं हैं उनको आकाश में रहकर ही जानकर प्राणियों के मृत्यु के समय में धर्मराज के समक्ष बताते हैं। वे प्राणियों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के विषय में कहते हैं। प्रथम धर्ममार्ग ही है, द्वितीय अर्थमार्ग है, तृतीय काममार्ग है और चतुर्थ मोक्षमार्ग है। हे विनतापुत्र, उत्तम व्यक्ति धर्ममार्ग से जाते हैं, धन का दान करने वाला मनुष्य विमानों से जाता है, कामोपकरण का देने वाला मनुष्य घोड़े में सवार होकर जाता है, और मोक्ष की आकाङ्क्षा वाला मनुष्य हंसयुक्त विमान से आगे बढ़ता है। उक्त कृत्यों में से एक को भी सम्पन्न न करने वाला नीच मनुष्य असिपत्रवनों को पार

करता हुआ, पत्थर और काँटों से दु:खित होता हुआ और यमदूतों के पाशों से बँधा हुआ पैदल ही धर्मराज के यहाँ जाता है॥ १५—२०॥

यः कश्चिन् मानुषे लोके श्रवणान् पूजयेदिह। वर्धन्या जलपात्रेण पक्वान्नपरिपूर्णया॥ २१॥
श्रवणान् पूजयेत् तत्र मया सह खगेश्वर। तस्याऽहं तत् प्रदास्यामि यत् सुरैरपि दुर्लभम्॥ २२॥
सम्भोज्य ब्राह्मणान् भक्त्या त्वेकादश शुभाञ्छुचीन्।
द्वादशं सकलत्रं च मम प्रीत्यै प्रपूजयेत्॥ २३॥
देवैः सर्वैश् च सम्पूज्याः स्वर्गं यान्तिसुखेप्सया। तैः पूजितैरहं तुष्टश् चित्रगुप्तेन धर्मराट्॥ २४॥
तैस् तुष्टैर् मत्पुरं यान्ति लोका धर्मपरायणाः। श्रवणानां च माहात्म्यमुत्पत्तिं चेष्टितं शुभम्॥ २५॥
शृणोति पक्षिशार्दूल स च पापैर् न लिप्यते। इह लोके सुखं भुक्त्वा स्वर्गलोके महीयते॥ २६॥

यहाँ मनुष्यलोक में जो कोई मनुष्य जलपात्र से और परिपूर्ण पक्वान्न से श्रवणों की पूजा करेगा, हे पक्षिराज! वहाँ श्रवणों की पूजा करते समय जो मनुष्य मेरी भी पूजा करेगा, उस को मैं वह वस्तु दूँगा, जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। श्रवणों की पूजा में भक्तिपूर्वक शुद्ध सत्पात्र ग्यारह ब्राह्मणों को भोजन कराकर मेरी प्रीति के लिए पत्नी से सहित बारहवें ब्राह्मण का भी पूजा करे। मेरे साथ में श्रवणों की पूजा करने वाले मनुष्य सभी देवताओं के भी पूज्य होकर सुखभोग करनेके लिए स्वर्ग में जाते हैं। **श्रवण पूजित होने से मैं (विष्णु) और चित्रगुप्त से युक्त धर्मराज सब सन्तुष्ट होते हैं।** उन लोगों की सन्तुष्टि से धर्मपरायण लोग मेरे लोक (विष्णुलोक) को जाते हैं। **हे पक्षियों में श्रेष्ठ, जो मनुष्य श्रवणों के माहात्म्य को तथा उत्पत्ति और शुभ चेष्टाओं को सुनता है वह पाप से लिप्त नहीं होता है, वह इस लोक में सुखभोग करके स्वर्गलोक में भी सत्कृत होता है**॥ २१—२६॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-१८

श्रीकृष्ण उवाच—

श्रवणानां वचः श्रुत्वा क्षणं ध्यात्वा पुनस्ततः। यत् कृतं तु मनुष्यैश् च पुण्यं पापमहर्निशम्॥ १॥
तत् सर्वं च परिज्ञाय चित्रगुप्तो निवेदयेत्। चित्रगुप्तस् ततः सर्वं कर्म तस्मै वदत्यथ॥ २॥
वा चैव यत् कृतं कर्म कृतं चैव तुकायिकम्। मानसं च तथा कर्म कृतं भुङ्क्ते शुभाशुभम्॥ ३॥
एवं ते कथितस् तार्क्ष्य प्रेतमार्गस्य निर्णयः। विश्रान्तिदानि सर्वाणि स्थानानि कथितानि ते॥ ४॥
तमुद्दिश्य ददात्यन्नं सुखं याति महाऽध्वनि। दिवा रात्रौ तमुद्दिश्य स्थाने दीपप्रदो भवेत्॥ ५॥
अन्धकारे महाघोरे श्वपूर्णे लक्ष्यवर्जिते। दीप्तेऽध्वनि च ते यान्ति दीपो दत्तश्च यैर् नरैः॥ ६॥
कार्तिके च चतुर्दश्यां दीपदानं सुखाय वै। अथ वक्ष्यामि सङ्क्षेपाद् यममार्गस्य निकृतिम्॥ ७॥

श्रीकृष्ण ने कहा—श्रवणों के वचनों को सुनकर, फिर उसके बाद क्षणभर विचार भी करके मनुष्यों से रात-दिन जो पाप अथवा पुण्य किया गया होता है, **वह सब जानकर 'चित्रगुप्त' को निवेदित करते हैं। उसके बाद 'चित्रगुप्त' उसके सभी कर्म प्रेत को बताते हुये कहते हैं कि—वचन से जो कर्म किया गया है, शरीर से जो कर्म किया गया है तथा मन से जो कर्म किया गया है, मनुष्य उसी का शुभ अथवा अशुभ फल भोगता है।** हे गरुड, इस प्रकार तुम को प्रेतमार्ग का निर्णय बताया गया। विश्राम देनेवाले सभी स्थान भी तुम को बता दिए गए। उस प्रेत को उद्देश्य करके यदि पुत्रादि अन्नदान करता है तो प्रेत यममार्ग में सुखपूर्वक यात्रा करता

है। उस प्रेत को उद्देश्य करके दिन में और रात में भी मृतस्थान में दीपदान करे। जिन मनुष्यों ने दीपदान किया है वे महाघोर अन्धकार में कुत्तों से व्याप्त और लक्ष्यदर्शन से रहित मार्ग प्राप्त होने पर भी दीप से प्रकाशित मार्ग में चलने का अवसर पाते हैं। कार्तिक मास की (कृष्ण) चतुर्दशी में दीपदान करना भी सुखप्राप्ति के लिए होता है। अब मैं सङ्क्षेप से यममार्ग से पार होने का उपाय बताऊँगा॥ १—७॥

वृषोत्सर्गस्य पुण्येन पितृलोकं स गच्छति। एकादशाहपिण्डेन शुद्धदेहो भवेत् ततः॥ ८॥
उदकुम्भप्रदानेन किङ्करास् तृप्तिमाप्नुयुः॥ ९॥
शय्यादानाद् विमानस्थो याति स्वर्गेषु मानवः। तदह्नि दीयते सर्वं द्वादशाहे विशेषतः॥ १०॥
पदानि सर्ववस्तूनि वरिष्ठानि त्रयोदश। यो ददाति मृतस्येह जीवन्नप्यात्महेतवे॥ ११॥
तदाश्रितो महामार्गे वैनतेय स गच्छति। एक एवाऽस्ति सर्वत्र व्यवहारः खगाधिप॥ १२॥
उत्तमाधममध्यानां तत्तदावर्जनं भवेत्। यावद् भाग्यं भवेद् यस्य तावन् मार्गेऽतिरिच्यते॥ १३॥
स्वयं स्वस्थेन यद् दत्तं तत् तत्राधिकरोति तम्। मृते यद् बान्धवैर् दत्तं तदाश्रित्य सुखी भवेत्॥ १४॥

वृषोत्सर्ग के पुण्य से मनुष्य पितृलोक को जाता है। ग्यारहवें दिन के पिण्ड से प्रेत शुद्धदेह वाला बनेगा। जल के घटों के दान से यमराज के दूत तृप्त होंगे। शय्या के दान से मनुष्य विमान में बैठकर नाना प्रकार के स्वर्गों में जाता है। ग्यारहवें दिन में सब वस्तु दिए जाते हैं, विशेष करके बारहवें दिन में सब वस्तु दिए जाते हैं। हे विनता के पुत्र, पददान के श्रेष्ठ सभी तेरह वस्तु मृत पित्रादि के लिए और जीवित अवस्था में अपने ही लिए भी जो दान में देता है वह उस दान में आश्रित होकर यममार्ग में जाता है। हे पक्षियों के स्वामिन्, सभी स्थानों में व्यवहार एक प्रकार का ही है। उत्तम, अधम और मध्यम लोगों को उनके उचित साधनों का ही लाभ होगा। जिसका जितना पूर्वकर्म है, वह यममार्ग में उतना ही विशिष्ट होगा। स्वस्थ अवस्था में अपने से हीजो दिया गया होता है, वह वहाँ उसको प्राप्त होता है। मरने पर जो बान्धवों से दिया गया होता है उसका आश्रय लेकर प्रेत सुखी होगा॥ ८—१४॥

गरुड उवाच—

कस्मात् पदानि देयानि किंविधानि त्रयोदश। दीयते कस्य देवेश तद् वदस्व यथातथम्॥ १५॥

गरुड ने कहा—पददान के पदार्थ किस कारण से दिए जाने चाहिए? पददान किस को दिया जाता है? हे देवताओं के स्वामिन्, वह यथार्थरूप में बताइए॥ १५॥

श्रीभगवानुवाच—

छत्रोपानहवस्त्राणि मुद्रिका च कमण्डलुः। आसनं भाजनं चैव पदं सप्तविधं स्मृतम्॥ १६॥
आतपस् तत्र यौ रौद्रो दह्यते येन मानवः। छत्रदानेन सुच्छाया जायते प्रेततुष्टिदा॥ १७॥
असिपत्रवनं घोरं सोऽतिक्रामति वै ध्रुवम्। अश्वारूढाश् च गच्छन्ति ददते य उपानहौ॥ १८॥
आसने भाजने चैव दत्ते तस्मै द्विजातये। सुखेन भुङ्क्ते स प्रेतः पथि गच्छञ् छनैःशनैः॥ १९॥
बहुधर्मसमाकीर्णे निर्वाते तोयवर्जिते। कमण्डलुप्रदानेन सुखी भवति निश्चितम्॥ २०॥
मृतोद्देशेन यो दद्यादुदपात्रं तु ताम्रजम्। प्रपादानसहस्रस्य तत्फलं सोऽश्नुते ध्रुवम्॥ २१॥

श्रीभगवान् ने कहा—छत्र, जूते, वस्त्र, अंगूठी, कमण्डलु, आसन और पात्र ये सात प्रकार का पद है। यममार्ग में जो कड़ा धूप है, जिससे मनुष्य जलता है, छत्र के दान से वहाँ प्रेतको सन्तुष्टि देने वाली अच्छी छाया उत्पन्न होती है, और वह भयङ्कर असिपत्रवन को अवश्य सुख से ही लाँघता है। जो मनुष्य जूतों का दान करते हैं, वे यममार्ग को घोडे पर सवार होकर पार करते हैं। उस प्रेत के लिए आसन और

पात्र ब्राह्मण को दिए जाने पर वह प्रेत यममार्ग में धीरे-धीरे चलता हुआ सुख से भोजन करता है। कमण्डलु के दान से बड़े कड़े धूप से व्याप्त, शीतल वायु से रहित और जलहीन यममार्ग में निश्चित रूप में सुखी होता है। मृत व्यक्ति के उद्देश्य से जो ताँबे का जलपात्र देगा, वह हजारों पात्रों के दान का जो फल होता है, उस फलको अवश्य पाता है॥ १६—२१॥

यमदूता महारौद्राः करालाः कृष्णपिङ्गलाः। न पीडयन्ति दाक्षिण्याद् वस्त्राभरणदानतः॥ २२॥
सायुधा धावमानाश् च न मार्गे दृष्टिगोचराः। प्रयान्ति यमदूतास् ते मुद्रिकायाः प्रदानतः॥ २३॥
भाजनासनदानेन आमान्नभोजनेन च। आज्ययज्ञोपवीताभ्यां पदं सम्पूर्णतां व्रजेत्॥ २४॥
एवं मार्गे गच्छमानस् तृषार्तः श्रमपीडितः। महिषीदुग्धदानाच् च सुखी भवति निश्चितम्॥ २५॥

वस्त्रों के और आभूषण के दान से अत्यन्त क्रोधी, भयङ्कर और काले और भूरे वर्ण वाले यमदूत प्रेत के प्रति मिलनसार होने से प्रेत को पीड़ित नहीं करते हैं। अँगूठी के दान से यममार्ग में शस्त्राऽस्त्रों से युक्त और दौड़ते हुए यमदूत प्रेत के दृष्टि में नहीं आते हैं। पात्र के तथा आसन के दान से तथा कच्चा अन्न, भोजन (पक्व अन्न), घी और जनेऊ से पद सम्पूर्ण होता है। इस प्रकार से यममार्ग में जाता हुआ प्यास से आर्त और थकान से पीड़ित प्रेत भैंस के दूध के दान से निश्चित रूप से सुखी होता है।॥ २२—२५॥

गरुड उवाच—

मृतोद्देशेन यत् किञ्चिद् दीयते स्वगृहे विभो। स गच्छति महामार्गे तद् दत्तं केन गृह्यते॥ २६॥

गरुड ने कहा—हे सर्वव्यापक भगवन्, मृत व्यक्ति के उद्देश्य से अपने घर में कोई वस्तु जो दिया जाता है, प्रेत तो यममार्ग में जा रहा होता है, वह दिया गया वस्तु किससे लिया जाता है?॥ २६॥

श्रीभगवानुवाच—

गृह्णाति वरुणो दानं मम हस्ते प्रयच्छति। अहं च भास्करे भास्करात् सोऽश्नुते सुखम्॥ २७॥
विकर्मणः प्रभावेण वंशच्छेदे क्षिताविह। सर्वे ते नरकं यान्ति यावत् पापस्य सङ्क्षयः॥ २८॥
कस्मिंश्चित् समये पूर्णे महिषासनसंस्थितः। नरकान् वीक्ष्य धर्मात्मा नानाक्रन्दसमाकुलान्॥ २९॥
चतुरशीतिलक्षाणां नरकाणां स ईश्वरः। तेषां मध्ये श्रेष्ठतमा घोरा या एकविंशतिः॥ ३०॥
तामिस्रं लोहशङ्कुश् च महारौरव-शाल्मली। रौरवं कुड्मलं कालसूत्रकं पूतिमृत्तिका॥ ३१॥
सङ्घातं लोहतोदं च सविषं सम्प्रतापनम्। महानरक-कालोलः सजीवन-महापथः॥ ३२॥
अवीचिरन्धतामिस्रः कुम्भीपाकस्तथैव च। असिपत्रवनं चैव पतनश्चैकविंशतिः॥ ३३॥
येषां तु नरके घोरे बह्वब्दानि गतानि वै। सन्ततिर् नैव विद्येत दूतत्वं ते तु यान्ति हि॥ ३४॥

श्रीभगवान् ने कहा—वरुणदेव दानलेते हैं, वे मेरे हाथ में देते हैं, मैं सूर्यदेव में देता हूँ, सूर्यदेव से वह प्रेत सुख पाता है। शास्त्रविरूद्ध कर्म के प्रभाव से इस भूमि में वंश का उच्छेद होने पर जब तक पापों के फल का भोग से पापों का पूर्ण क्षय नहीं होता है, तब तक वे वंशोच्छेद वाले सब मनुष्य नरक में रहते हैं। कुछ समय पूर्ण होने पर भैंसे के वाहन में सवार धर्मात्मा यमराज नाना प्रकारके क्रन्दन से पूर्ण नरकों को देखकर (चिरकाल तक नरक में रहे हुए कुछ लोगों को अपने दूतों में मिलाते हैं)। वह धर्मराज चौरासी लाख नरकों के स्वामी हैं। उन चौरासी लाख नरकों में मुख्य और भयङ्कर जो इक्कीस नरक हैं वे ये हैं—१. तामिस्र, २. लोहशङ्कु, ३. महारौरव, ४. शाल्मली, ५. रौरव, ६. कुड्मल, ७. कालसूत्र, ८. पूतिमृत्तिका, ९. सङ्घात, १०. लोहतोद, ११. सविष, १२. सम्प्रतापन, १३. महानरक, १४. सजीवन, १६. महापथ, १७. अवीचि, १८. अन्धतामिस्र, १९. कुम्भीपाक,

२०. असिपत्रवन, २१. पतन ये इक्कीस हैं। **जिन प्रेतों के घोर नरक में बहुत वर्ष बीते हैं और मनुष्यलोक में नरक से उद्धार करने वाली सन्तति (पुत्र) नहीं है, वही प्रेत यमदूत होते हैं** ॥ २७—३४ ॥

☞ जिन मनुष्यों के पुत्र नहीं होते हैं, उनका अन्त्येष्टि एवं श्राद्ध संस्कार उनके पुत्र नहीं करते हैं। **भगवान् चित्रगुप्त द्वारा ऐसे मनुष्य यमदूत बनाये जाते हैं,** जब उनकी शुद्धि हो जाती है, तब वे मुक्त होते हैं। **भगवान् चित्रगुप्त द्वारा,** प्राणियों को **मनुष्य, पशु, पक्षी** इत्यादि बनाकर विभिन्न प्रकार का भोग दिया जाता है।

यमेन प्रेषितास् ते वै मनुष्यस्य मृतस्य तु। दिनेदिने प्रगृह्णन्ति दत्तमन्नघटादिकम्॥ ३५ ॥
प्रेतस्यैव विलुण्ठन्ति मध्ये मार्गे बुभुक्षिताः। मासान्ते भोजनं पिण्डमेके यच्छन्ति तत्र वै॥ ३६ ॥
तृप्तिं प्रयान्ति ते सर्वे प्रत्यहं चैव वत्सरम्। एवमादिकृतैः पुण्यैः क्रमात् सौरिपुरं व्रजेत्॥ ३७ ॥
ततः संवत्सरस्याऽन्ते प्रत्यासन्ने यमालये। बहुभीतिकरे प्रेतो हस्तमात्रं समुत्सृजेत्॥ ३८ ॥
दिवसैर् दशभिर् जातं तं देहं दशपिण्डजम्। जामदग्न्यस्येव रामं दृष्ट्वा तेजः प्रसर्पति॥ ३९ ॥
कर्मजं देहमाश्रित्य पूर्वदेहं समुत्सृजेत्। अङ्गुष्ठमात्रो वायुश् च शमीपत्रं समारुहेत्॥ ४० ॥
व्रजंस् तिष्ठन् पदैकेन यथैवैकेन गच्छति। यथा तृणजलौकेव देही कर्मानुगोऽवशः॥ ४१ ॥
वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥ ४२ ॥

यमराज से प्रेषित वे दूत मनुष्य के लिए दिए गए अन्न और जलघट को छीन लेते हैं। यममार्ग के बीच में भूख से युक्त ये यमदूत प्रेत के भाग को ही लूट लेते हैं। कोई महीने के अन्त में भोजन और पिण्ड देते हैं, इससे यममार्ग में वे प्रेत तथा यमदूत सब ही वर्षपर्यन्त प्रतिदिन तृप्ति प्राप्त करते हैं। इस प्रकार से किए गए पुण्यों से प्रेत क्रम से यमराज के पुर में जाता है। तब वर्ष के अन्त में अत्यन्त भयकारक यमराज का नगर समीप में प्राप्त होने पर प्रेत दश दिनों में दश पिण्ड से उत्पन्न एक हाथ परिमाण के उस देह को छोडेगा। राम को देखने पर परशुराम का तेज जैसे परशुराम से राम में सङ्क्रमित हुआ था उसी प्रकार से एक हाथ परिमाण के देह से प्रेतजीव कर्मज देह में सङ्क्रमित होता है। कर्म से उत्पन्न देह में आश्रित होकर जीव पूर्व देह को छोडेगा। **अँगूठे के परिमाण का वायवीय शरीर** शमीपत्रतुल्य कर्मज देह में चढेगा। जैसे चलता हुआ मनुष्य एक पैर से ठहरता हुआ एक पैर से आगे बढ़ता है, जैसे तृणों में चलने वाली जोंक एक छोर से स्थिर होकर दूसरे छोर से आगे बढ़ती है, वैसे ही जीव भी अपने कर्म का अनुसरण करता हुआ और स्वाधीन न होकर कर्म के अधीन में रहता हुआ एक देह से दूसरे देह में जाता है। जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को छोड़कर अन्य नए वस्त्रों का ग्रहण करता है, वैसे ही जीव भी पुराने शरीरों को छोड़कर अन्य नए शरीरों में जाता है॥ ३५—४२ ॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-१९

श्रीभगवानुवाच–

वायुभूतः क्षुधाऽऽविष्टः कर्मजं देहमाश्रितः। तं देहं स समासाद्य यमेन सह गच्छति॥ १ ॥
चित्रगुप्तपुरं तत्र योजनानां तु विंशतिः। कायस्थाः तत्र पश्यन्ति पापपुण्यानि सर्वशः॥ २ ॥
महादानेषु दत्तेषु गतस्तत्र सुखी भवेत्। योजनानां चतुर्विंशत् पुरं वैवस्वतं शुभम्॥ ३ ॥
लोहं लवण–कार्पासं तिलपात्रं च यैर् नरैः। दत्तं तेनैव तृप्यन्ति यमस्य पुरचारिणः॥ ४ ॥
गत्वा च तत्र ते सर्वे प्रतीहारं वदन्ति हि। धर्मध्वजप्रतीहारस् तत्र तिष्ठति सर्वदा॥ ५ ॥

श्रीभगवान् ने कहा—वायुरूप में प्राप्त, भूख से सताया गया और कर्म से उत्पन्न देह में आश्रित वह प्रेत उस देह को पाकर यमराज के पास में जाता है। **वहाँ चित्रगुप्त का पुर बीस योजन विस्तृत है, वहाँ 'कायस्थ लोग' सबके पापों और पुण्यों को देखते हैं।** महादान दिए जाने पर यमपुरी में गया हुआ मनुष्य सुखी होगा। यमराज का सुहावना नगर चौबीस योजन विस्तीर्ण है। जिन मनुष्यों ने लोहा, नमक, कपास, और तिलपात्र का दान दिया है उससे यमराज के पुर में विचरण करने वाले यमदूत तृप्त होते हैं। **वहाँ जाकर वे सब प्रतीहार (द्वारपाल) को कहते हैं। वहाँ पर धर्मध्वज नाम का प्रतीहार सदा खड़ा रहता है॥ १—५॥**

☞ पिछले अध्याय-१८ के ३४ वें श्लोक में कहा गया है कि **पुत्रहीन मनुष्य यमदूत बनाये जाते हैं।** इसी प्रकार इस अध्याय-१९ के श्लोक २ में कहा गया है कि, यमलोक में स्थित **चित्रगुप्तपुरी में चित्रगुप्तवंशीय कायस्थलोग वहाँ (कायस्थाः तत्र) सभी प्राणियों के पाप-पुण्यों को देखते है।** यथा—

चित्रगुप्तपुरं..................कायस्थाः तत्र पश्यन्ति पापपुण्यानि सर्वशः। इसका अभिप्राय ये है कि, **धर्मपरायण चित्रगुप्तवंशीय कायस्थ देह त्याग कर, चैतन्य रूप धारण करके, चित्रगुप्तपुरी में जाकर, अपने पिता चित्रगुप्तजी का कार्य किया करते हैं।** अन्य प्राणियों के विभिन्न भोगों की भाँति **'चित्रगुप्तवंशीय कायस्थों का यही भोग है।'**

सप्तधान्यस्य दानेन प्रीतो धर्मध्वजो भवेत्। तत्र गत्वा प्रतीहारो ब्रूते तस्य शुभाऽशुभम्॥ ६ ॥
धर्मराजस्य यद् रूपं सन्तः सकुकृतिनो जनाः। पश्यन्ति च दुरात्मानो यमरूपं सुभीषणम्॥ ७ ॥
तं दृष्ट्वा भयभीतस्तु हाहेति वदते जनः। कृतं दानं च यैर् मर्त्यैस् तेषां नास्ति भयं क्वचित्॥ ८ ॥
प्राप्तं सुकृतिनं दृष्ट्वा स्थानाच् चलति सूर्यजः। एष मे मण्डलं भित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति॥ ९ ॥
दानेन सुलभो धर्मो यममार्गः सुखावहः। एष मार्गो विशालोऽत्र न केनाप्यनुगम्यते॥
दानपुण्यं विना वत्स न गच्छेद धर्ममन्दिरम्॥ १०॥

सप्तधान्य (जौ, धान, तिल, कँगनी, मूँग, चना तथा साँवा) के दान से धर्मध्वज प्रसन्न होता है। वहाँ जाकर प्रतीहार प्रेत का शुभ अथवा अशुभ कर्म को बताता है। सुकर्म करने वाले लोग धर्मराज का जो मुख्य सौम्य रूप है उसको देखते हैं, दुष्ट हृदय वाले पापी लोग अत्यन्त भयङ्कर यमरूप को देखते हैं। उन भयङ्कर रूप वाले यमराज को देखकर भयभीत पापी मनुष्य हाय-हाय कहता है। जिन मनुष्यों ने दान किया है, उनको कहीं भी भय नहीं होता। वहाँ पहुँचे हुए धर्मात्मा पुरुष को देखकर सूर्यपुत्र धर्मराज अपने आसन से उठकर उसकी ओर चलते हैं। वे कहते हैं कि यह धर्मात्मा पुरुष मेरे मण्डल को भेदन करके ब्रह्मलोक को जाएगा। दानद्वारा धर्म सुख से प्राप्त किया जा सकता है। उससे यममार्ग भी सुखदायक होता है। यह यममार्ग बहुत बड़ा है। यहाँ मनुष्य का किसी द्वारा भी अनुगमन (सहयोग) नहीं किया जाता है। हे वत्स, दान-पुण्य के बिना धर्मराज के घर को नहीं जाना चाहिए। ॥ ६—१०॥

तस्मिन् मार्गे तु रौद्रे वै भीषणा यमकिङ्कराः। एकैकस्य पुरस्याऽग्रे तिष्ठत्येकसहस्त्रकम्॥ ११॥
पचन्ति पापिनं प्राप्य उदके यातनाकराः। गृह्णन्ति मासमासान्ते पादशेषं तु तद् भवेत्॥ १२॥
और्ध्वदैहिकदानानि यैर् न दत्तानि काश्यप। महाकष्टकेन ते यान्ति तस्माद् देयानि शक्तितः॥
अदत्त्वा पशुवद् यान्ति गृहीता वधबन्धनैः॥ १३॥
एवं कृतेन सम्पयश्येत् स नरो भूतकर्मणा। दैविकीं पैतृकीं योनिं मानुषीं वाऽथ नारकीम्॥ १४॥
धर्मराजस्य वचनान् मुक्तिर् भवति वा ततः। मानुष्यं तत्त्वतः प्राप्य सपुत्र-पुत्रतां व्रजेत्॥ १५॥

उस भयङ्कर यममार्ग में डरावने यमदूत होते हैं। याम्यपुर सौरिपुर इत्यादि एक-एक पुरके आगे एक-एक हजार यमदूत रहते हैं। वे पापियों को पाकर उनको पकाते हैं, यातना देनेवाले वे पापियों को पकड़ते हैं और पानी में रखते हैं। इस प्रकार मास-मास के अन्त में पापी का शरीर घटकर चौथाई शेष रहता है। हे कश्यपपुत्र, जिन्होंने से और्ध्वदेहिक दान नहीं दिए गए हैं, वे यममार्ग में महाकष्ट से यात्रा करते हैं, इसलिए अपनी शक्ति के अनुसार और्ध्वदेहिक दान दिए जाने चाहिए। न देने पर यममार्ग में यमदूतों से पकड़े गए वे लोग पिटाई से और बन्धन से कष्ट भोगते हुए पशु की तरह यात्रा करते हैं। इस प्रकार अपने से किए गए पूर्व कर्म से मनुष्य यममार्ग को देखेगा। धर्मराज के वचन से मनुष्य देवतायोनि को अथवा पितृयोनि को अथवा मनुष्ययोनि को अथवा नरकनिवासी प्रेतयोनि को पाएगा अथवा नरक से छुटकारा होगा। वास्तव में मनुष्यत्व पाकर वह सत्पुत्रता जिसके भाग्य में है उसका पुत्र होगा॥ ११—१५॥

यथायथा कृतं कर्म तांतां योनिं व्रजेन् नरः। तत् तथैव च भुञ्जानो विचरेत् सर्वलोकगः॥ १६॥
अशाश्वतं परिज्ञाय सर्वलोकोत्तरं सुखम्। यदा भवति मानुष्यं तदा धर्मं समाचरेत्॥ १७॥
कृमयो भस्म विष्ठा वा देहानां प्रकृतिः सदा। अन्धकूपे महारौद्रे दीपहस्तः पतेत् तु वै॥ १८॥
महापुण्यप्रभावेण मानुष्यं जन्म लभ्यते। यस् तत् प्राप्य चरेद् धर्मं स गच्छेत् परमां गतिम्॥ १९॥
अविजानन् वृथा धर्मं दुःखमायाति याति च॥ २०॥

जातीशतेन लभते किल मानुषत्वं तत्रापि दुर्लभतरं खग भो द्विजत्वम्।
यस् तत्र पालयति लालयति व्रतानि तस्याऽमृतं भवति हस्तगतं प्रसादात्॥ २१॥

मनुष्य ने जैसा-जैसा कर्म किया है, वैसी-वैसी ही योनि में जाएगा और उस-उस कर्मके फलों को उसी-उसी कर्म के अनुसार भोग करता हुआ मनुष्य सभी लोक में जाने वाला होगा। सभी प्रकार के लोकों में मिलने वाले उत्तम सुखों को भी अनित्य ही जानकर प्राणी को जब मनुष्य जन्म मिलता है, तब प्राणी धर्म का आचरण करे। कीड़ों के रूप में परिणत होना अथवा भस्म के रूप में परिणत होना अथवा विष्टा के रूप में परिणत होना यही देहों का स्वभाव है। मनुष्य जन्म पाकर भी धर्म न करना हाथ में दीपक रहने पर भी असावधानी से महाभयङ्कर अन्धकारमय कूप में गिरना जैसा ही है। **बड़े पुण्य के प्रभाव से मनुष्य जन्म पाया जाता है, जो मनुष्य जन्म पाकर धर्म करेगा, वह परम गति में जाएगा। धर्मको न जानता हुआ मनुष्य यदि मनुष्य जन्म को धर्माचरण के विना व्यर्थ गँवाता है तो वह संसार में दुःखपूर्ण रूप से आता और जाता ही रहता है।** हे पक्षिन्, प्राणी सैकड़ों जन्मों में मनुष्य जन्म पाता है, **उस में भी द्विजन्म (ब्राह्मणजन्म) तो अत्यन्त दुर्लभ है।** जो द्विजन्म (ब्राह्मणजन्म) में व्रतों का पालन और श्रद्धापूर्वक बार-बार सेवन करता है, उसको चित्त की प्रसन्नता (निर्मलता) से अमृतत्व (मोक्ष) हस्तगत (प्राप्त) होता है॥ १६—२१॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-२०

गरुड उवाच–

ये केचित् प्रेतरूपेण कुत्र वासं लभन्ति ते। प्रेतलोकाद् विनिर्मुक्ताः कथं कुत्र व्रजन्ति ते॥ १॥
चतुर्युक्ताशीतिलक्षैर् नरकैः पर्युपासिताः। यमेन रक्षितास् तत्र भूतैश् चैव सहस्त्रशः॥ २॥
विचरन्ति कथं लोके नरकाच्च विनिर्गताः। गरुडोदीरितं श्रुत्वा लक्ष्मीनाथोऽब्रवीदिदम्॥ ३॥

गरुड ने कहा—जो कोई जीव प्रेत के रूप में रहते हैं वे कहाँ वास पाते हैं? प्रेतलोक से छुटकारा पाने पर वे कैसे कहाँ जाते हैं? चौरासी लाख नरकों से सेवित यमराज से और हजारों भूतों से भी रक्षित वे प्रेत नरक से निकलकर लोक में कैसे विचरण करते हैं? गरुड का कहना सुनकर लक्ष्मी के नाथ कृष्ण ने यह कहा॥ १—३॥

श्रीकृष्ण उवाच–

पक्षिराज शृणुष्व त्वं यत्र प्रेताश् चरन्ति वै। परार्थदारग्रहणाच् छलाद् द्रोहान् निशाचर॥ ४॥
तथैव सर्वपापिष्ठाः स्वात्मजान्वेषणे रता। विचरन्त्यशरीरास् ते क्षुत्पिपासार्दिता भृशम्॥ ५॥
बन्दीगृहविनिर्मुक्ता यैर्यो नश्यन्ति जन्तवः। ते व्यवस्यन्ति च प्रेता वधोपायं च बन्धुषु॥ ६॥
पितृद्वाराणि रुन्धन्ति तन्मार्गोचदेदकास् तथा। पितृभागान् विगृह्णन्ति पान्थेभ्यस् तस्करा इव॥ ७॥
स्वं वेश्म पुनरागत्य मित्रस्थाने विशन्ति ते। तत्र स्थिता निरीक्षन्ते रोगशोकादिबन्धनाः॥ ८॥
पीडयन्ति ज्वरीभूय एकान्तरमिषेण तु। तृतीयकज्वरा भूत्वा शीतवातादिपीडया॥ ९॥

श्रीकृष्ण ने कहा—हे पक्षियों के राजन्, प्रेत जहाँ विचरण करते हैं उसको तुम सुनो। दूसरों के धन का और पत्नी का ग्रहण करने से, छल करने से, और प्राणियों का द्रोह करने से निशाचर (प्रेत) रूप में प्राप्त प्राणी उसी प्रकार अत्यन्त पापिष्ठ होकर अपने पुत्रों के अन्वेषण में रमते हैं। दृश्य ग्राह्य शरीर से रहित बन्धनगृह से मुक्त वे प्रेत भूख और प्यास से अत्यन्त पीड़ित होकर इधर-उधर घूमते रहते हैं, जिससे प्राणियों का नाश होता है। वे प्रेत अपने बन्धुओं में पीड़ा पहुँचाने के उपाय का निश्चय करते रहते हैं। पितरों के द्वारों का निरोध करते हैं, पितरों के मार्गों का उच्छेद करने वाले वे प्रेतलोग राहगीरों से लुटेरे की तरह पितरों से उनके भागों को छीनते हैं। फिर अपने घर में आकर वे मित्र के स्थान में प्रविष्ट होते हैं, वहाँ बैठकर रोग और शोक इत्यादि बन्धनों से लोगों को बाँधने वाले वे प्रेतलोग देखते रहते हैं। वे बीच में एक-एक दिन छोड़कर आने वाले एकान्तरज्वर के छल से ज्वर का रूप लेकर अपने पुत्रादि को पीडित करते हैं, तीसरे दिन में आने वाला ज्वर होकर ठण्डक और वात इत्यादि की पीड़ा से भी पुत्रादि को पीडित करते हैं॥ ४—९॥

अन्यांश्च विविधान् रोगाञ्छिरोऽर्तिं च विषूचिकाम्। चिन्तयन्ति सदा तेषामुच्छिष्टादिस्थलस्थिताः॥ १०॥
आत्मजानां छलाल्लोका भूतसङ्घैश् च रक्षिताः। पिबन्ति ते च पानीयं भोजनोच्छिष्टयोजितम्॥ ११॥
एवं प्रेताः प्रवर्तनते नानादोषैर् विकर्मिणः॥ १२॥

जूठन के स्थान इत्यादि अपवित्र स्थानों में रहते हुए और भूतों के झुण्डों से रक्षित वे प्रेत लोग सदाकाल ही शिर की पीड़ा, हैजा इत्यादि अन्य विविध रोगों से छलपूर्वक अपने पुत्रादि को पीडित करने की सोच में रहते हैं। वे भोजन के उच्छिष्ट से युक्त पानी पीते हैं। विकर्मी प्रेत लोग इस प्रकार नाना प्रकार के दोषों से युक्त होकर व्यवहार करते हैं॥ १०—१२॥

गरुड उवाच–

कथं कुर्वन्ति ते प्रेताः केन रूपेण कस्य किम्। ज्ञायते केन विधिना जल्पन्ति न वदन्ति वा॥ १३॥

एनं छिन्धि मनोमोहं मम चेदिच्छसि प्रियम्। कलिकाले हृषीकेश प्रेतत्वं जायते बहु॥ १४॥

गरुड ने कहा—वे प्रेत किस रूप में किसका क्या कैसे करते हैं? किस विधि से प्रेत का काम जाना जाता है? प्रेत बोलते हैं अथवा नहीं बोलते हैं? आप यदि मेरा प्रिय कार्य करना चाहते हैं तो, हे इन्द्रियों के स्वामिन्, मेरे मन के इस मोह को दूर करें, क्योंकि **कलिकाल में प्रेतत्व बहुत उत्पन्न होता है**॥ १३-१४॥

श्रीविष्णुरुवाच–

स्वकुलं पीडयेत् प्रेतः परच्छिद्रेण पीडयेत्। जीवन् स दृष्यते स्नेही भृतो दुष्टत्वमाप्नुयात्॥ १५॥
रुद्रजापी धर्मरतो देवतातिथिपूजकः। सत्यवाक् प्रियवादी च न प्रेतैः स हि पीड्यते॥ १६॥
सर्वक्रियापरिभ्रष्टो नास्तिको धर्मनिन्दकः। असत्यवादनिरतो नरः प्रेतैः स पीड्यते।
कलौ प्रेतत्वमाप्नोति तार्क्ष्याऽशुद्धक्रियापरः॥ १७॥
कृतादौ द्वाररान्ते च न प्रेतो नैव पीडनम्। बहूनामेकजातानामेकः सौख्यं समश्नुते॥ १८॥
एको दुष्कृतकर्मा च एकः सन्ततिमाज् जनः। एकः सम्पीड्यते प्रेतैरेकः सुतधनान्वितः॥ १९॥
एकस्य पुत्रनाशः स्यादेको दुहितृमान् भवेत्। विरोधो बन्धुभिः सार्धं प्रेतदोषेण काश्यप॥ २०॥

श्रीविष्णु ने कहा—प्रेत अपने कुल को पीडित करता है, किन्तु वह छिद्र पाकर ही पीडित करता है। जीवनकाल में वह स्नेहयुक्त होता है, किन्तु मरने पर वह दुष्ट हो जाता है। जो रुद्राध्याय का पाठ या रुद्र मन्त्र [ॐ नमः शिवाय] का जप करने वाला है, धर्म में रमने वाला है, देवता की और अतिथि की पूजा करने वाला है, सत्य बोलने वाला है, प्रिय बोलने वाला है वह प्रेतों से पीड़ित नहीं किया जाता है। जो नित्य नैमित्तिकादि श्रौत-स्मार्त-पौराण सभी धर्मक्रियाओं में विश्वास न करने वाला नास्तिक है, धर्म की निन्दा करने वाला है और असत्य बोलने में रमने वाला है वह प्रेतों से पीड़ित होता है। हे गरुड, कलिकाल में शास्त्रविधि से हीन अशुद्ध कर्मों में लगने से मनुष्य प्रेतयोनि में प्राप्त होता है। सत्ययुग से लेकर द्वापरयुग के अन्त तक न तो प्रेत होता है न तो प्रेतों से लोगों का पीड़ित होता है। एक ही माता-पिताओं से जन्मे हुए मनुष्यों में एक सुख भोग करता है, एक पापकर्म करने से दुःखभोग करने वाला है, एक सन्ततियों से युक्त है, एक प्रेतों से पीड़ित होता हे, एक पुत्र और धन से युक्त है, एक का पुत्र का नाश हो जाता हे, एक केवल पुत्रियों से ही युक्त होता है। हे कश्यपपुत्र, प्रेत के दोष से मनुष्य का अपने बन्धुओं से विरोध हो जाता है॥ १५—२०॥

सन्ततिर् दृश्यते नैव समुत्पन्ना विनश्यति। पशुद्रव्यविनाशश् च सा पीडा प्रेतसम्भवा॥ २१॥
प्रकृतेः परिवर्तः स्याद् विद्वेषः सह बन्धुभिः। अकस्माद् व्यसनप्राप्तिः सा पीडा प्रेतसम्भवा॥ २२॥
नास्तिक्यं वृत्तिलोपश् च महालोभस् तथैवच। स्याद् धन्त कलहो नित्यं सा पीडा प्रेतसम्भवा॥ २३॥
पितृमातृनिहन्ता च देहब्राह्मणनिन्दकः। हत्यादोषमवाप्नोति सा पीडा प्रेतसम्भवा॥ २४॥
नित्यकर्मविनिर्मुक्तो जपहोमविवर्जितः। परद्रव्याणां च हर्ता सा पीडा प्रेतसम्भवा॥ २५॥
सुवृष्टौ कृषिनाशश् च व्यवहारो विनश्यति। लोके कलहकारी च सा पीडा प्रेतसम्भवा॥ २६॥

सन्तान का दर्शन नहीं होता है, उत्पन्न सन्तान भी नष्ट हो जाता है, पशुओं का और धन का विनाश भी होता है, वह पीड़ा प्रेतों से उत्पन्न पीड़ा है। स्वभाव में एकाएक परिवर्तन होगा, बन्धुओं से विद्वेष होगा, एकाएक विपत्ति आएगी, वह पीड़ा प्रेतों से उत्पन्न पीड़ा है। नास्तिकभाव आएगा, जीवनवृत्ति का लोप होगा, महान् लोभ उत्पन्न होगा, बेचारे के यहाँ नित्य कलह होगा, वह पीड़ा प्रेतों से उत्पन्न पीड़ा है। पिता-माता को मारने वाला हो जाता हे, देवताओं का और ब्राह्मणों का निन्दक हो जाता है, मनुष्यहत्या का दोष लग जाता है, वह पीड़ा प्रेतों से उत्पन्न

पीड़ा है। स्नान-सन्ध्योपासनादि नित्य कर्मों से रहित होता हे, वेदाध्ययन, मन्त्रजप और होम से वर्जित होता हे, दूसरे के द्रव्यों को चुराने वाला होता है, वह पीड़ा प्रेतों से उत्पन्न पीड़ा है। अच्छी वर्षा होने पर भी खेतीबारी का काम नष्ट हो जाता है, रुपये पैसे का लेन-देन का काम बिगड़ जाता हे, लोक में कलहकारी हो जाता हे, वह पीड़ा प्रेतों से उत्पन्न पीड़ा है॥ २१—२६॥

मार्गे जङ्गम्यमानं तं पीडयेद् वातमण्डली। प्रेतपीडा तु सा ज्ञेया सत्यंसत्यं खगेश्वर॥ २७॥
हीनजात्या च सम्बन्धो हीनकर्म करोति यः। अधर्मे रमते नित्यं सा पीडा प्रेतसम्भवा॥ २८॥
व्यसनैर् द्रव्यनाशः स्यादुपक्रान्तं विनश्यति। चौराग्निराजभिर् हानिः सा पीडा प्रेतसम्भवा॥ २९॥
महारोगोपलब्धिश् च बालकानां च पीडनम्। जाया सम्पीड्यते यच्च सा पीडा प्रेतसम्भवा॥ ३०॥
श्रुति-स्मृति-पुराणेषु धर्मशास्त्र-समुद्भवे। अभावो जायते धर्मे सा पीडा प्रेतसम्भवा॥ ३१॥

हे पक्षियों के ईश्वर, मार्ग में बारम्बार चलते हुए मनुष्य को बवण्डर पीड़ित करेगा तो वह पीड़ा प्रेतों से की गई पीड़ा है यह बात सत्य है, सत्य है। नीच जाति से विवाहादि-सम्बन्ध हो जाता है, जो नीच जाति का कर्म करता है, सदाकाल पाप में रमता है, वह पीड़ा प्रेतों से उत्पन्न पीड़ा है। विपत्तियों से धन का नाश होगा, आरम्भ किया गया कार्य बिगड़ जाता हे, चोर, अग्नि और राजा से धनादि की हानि हो जाती है, वह पीड़ा प्रेतों से उत्पन्न पीड़ा है। शरीर में महारोग लग जाता हे, बालकों का कष्ट होता है, जो पत्नी पीड़ित हो जाती है, वह पीड़ा प्रेतों से उत्पन्न पीड़ा है। वेद में स्मृतिशास्त्र में पुराण में और धर्मशास्त्रमूलक अन्य ग्रन्थों में बताए गए धर्म में कल्याणकारित्व के सर्वथा अभाव की बुद्धि जो उत्पन्न होती है, वह पीड़ा प्रेतों से उत्पन्न पीड़ा है॥२७—३१॥

देव-तीर्थ-द्विजानां तु निन्दां यः कुरुते नरः। प्रत्यक्षं वा परोक्षं वा सा पीडा प्रेतसम्भवा॥ ३२॥
स्ववृत्तिहरणं यच् च स्वप्रतिष्ठाहतिस् तथा। वंशच्छेदो न दृश्येत प्रेतदोषाद् विनाऽन्यथा॥ ३३॥
स्त्रीणां गर्भविनाशः स्यान् न पुष्पं दृष्यते तथा। बालानां मरणं यत्र सा पीडा प्रेतसम्भवा॥ ३४॥
भावशुद्ध्या न कुरुते श्राद्धं सांवत्सरादिकम्। स्वयमेव न कुर्वीत सा पीडा प्रेतसम्भवा॥ ३५॥
तीर्थे गत्वा पराऽऽसक्तः स्वकृत्यं च परित्यजेत्। धर्मकार्ये न सम्पत्तिः सा पीडा प्रेतसम्भवा॥ ३६॥
दम्पत्योः कलहश् चैव भोजने कोपसंयुतः। परद्रोहे मतिश् चैव सा पीडा प्रेतसम्भवा॥ ३७॥
पुष्पं यत्र न दृश्येत न दृश्येत फलं तथा। विरहो भार्यया यत्र सा पीडा प्रेतसम्भवा॥ ३८॥

जो प्रत्यक्ष रूप में और परोक्ष रूप में देवताओं की, तीर्थों की और ब्राह्मणों की निन्दा करता है, वह पीड़ा प्रेतों से उत्पन्न पीड़ा है। जो अपनी जीवनवृत्ति का हरण होता हे, जो अपनी प्रतिष्ठा की हानि होती है, तथा जो वंश का उच्छेद होता है वह प्रेतों के दोष के बिना नहीं देखा जा सकता है। स्त्रियों के गर्भ का विनाश होगा, युवती स्त्रियों में भी पुष्प (रज) नहीं देखा जाता है, बालकों का मरण होता है, वह पीड़ा प्रेतों से उत्पन्न पीड़ा है। सांवत्सरिकश्राद्ध (क्षयाहश्राद्ध) इत्यादि श्राद्धों को शुद्ध भाव से सम्पन्न नहीं करता है अथवा श्राद्ध दूसरे द्वारा करता है स्वयम् नहीं करता है वह पीड़ा प्रेतों से उत्पन्न पीड़ा है। भोजन के समय में हँसी मजाक के रूप में नहीं, क्रोध से युक्त रूप में ही पति-पत्नियों का जो कलह होता है, दूसरे लोगों के प्रति द्रोह में जो बुद्धि लगती है, वह पीड़ा प्रेतों से उत्पन्न पीड़ा है। जहाँ स्त्रियों में फूल और फल (रज और सन्तान) भी नहीं देखा जाएगा, पत्नी से वियोग होगा, वह पीड़ा प्रेतों से उत्पन्न पीड़ा है॥ ३२—३८॥

येषां वै जायते चिह्नं सदोच्चाटपरं नृणाम्। स्वक्षेत्रे निष्फलं तेजः सा पीडा प्रेतसम्भवा॥ ३९॥
स्वगोत्रघातकश् चैव हन्ति शत्रुमिवात्मजम्। न प्रीतिर् नापि सौख्यं च सा पीडा प्रेतसम्भवा॥ ४०॥

पितृवाक्यं न कुरुते स्वपत्नीं च न सेवते। सदा क्रूरमतिर् व्यग्रः सा पीडा प्रेतसम्भवा॥ ४१॥
विकर्मा जायते प्रेतो ह्यविधिक्रियया तथा। तत्कालदुष्टसंसर्गाद् वृषोत्सर्गादृते तथा॥ ४२॥
दुष्टमृत्युवशाद् वापि अदग्धवपुषस्तथा। प्रेतत्वं जायते तार्क्ष्य पीड्यनते येन जन्तवः॥ ४३॥

जिन मनुष्यों का सदाकाल उच्चाटनपरक चिह्न उत्पन्न होता है, अपने क्षेत्र में तेज निष्फल हो जाता है, वह पीड़ा प्रेतों से उत्पन्न पीड़ा है। अपने ही गोत्र का घातक हो जाता है, अपने पुत्र को शत्रु की तरह मार डालता है, कहीं प्रीति भी नहीं होती है सुख भी नहीं मिलता है, वह पीड़ा प्रेतों से उत्पन्न पीड़ा है। पिता की आज्ञा का पालन नहीं करता है, अपनी पत्नी के साथ सहवास भी नहीं करता है, सदाकाल क्रूरबुद्धि होता है, घबड़ाया हुआ रहता है, वह पीड़ा प्रेतों से उत्पन्न पीड़ा है। **शास्त्रविरुद्ध कर्म करने वाला मनुष्य प्रेत होता है, शास्त्रविधानविरुद्ध और्ध्वदेहिक क्रिया करने पर भी मनुष्य प्रेत होता है,** तत्काल में पतित पापियों से संसर्ग होने पर भी वृषोत्सर्ग न किए जाने से भी मनुष्य प्रेत होता है। हे गरुड, दुर्मृत्य के कारण से अथवा शव का विधिपूर्वक दाह न होने से भी प्रेतत्व प्राप्त होता है, जिससे प्राणी पीडित होते हैं॥ ३९—४३॥

☞ सनातन धर्म में रहकर जो मनुष्य सनातनी विधि से श्राद्ध नहीं करते हैं, उनके पितर प्रेत योनि में पड़कर भटकते रहते है। उसकी मुक्ति नहीं होती है, यही उपर्युक्त श्लोक में कहा गया है। श्राद्ध कर्म में पीपल के वृक्ष पर घट बाँधकर जलान्जली किये बिना, ३ दिन में हवन करके समाप्त करना, और १३ दिन पर भोज कराना, श्राद्धकर्म नहीं है। इस तरह का कृत्य, प्रेत के निमित्त कुछ भी नहीं है।

एवं ज्ञात्वा खगश्रेष्ठ प्रेतमुक्तिं समाचरेत्। यो वै न मन्यते प्रेतान् मृतः प्रेतत्वमाप्नुयात्॥ ४४॥
प्रेतदोषः कुले यस्य सुखं तस्य न विद्यते। मतिः प्रीती रतिर् बुद्धिर् लक्ष्मीः पञ्चविनाशनम्॥ ४५॥
तृतीये पञ्चमे पुंसि वंशच्छेदो हि जायते। दरिद्रो निर्धनश् चैव पापकर्मा भवेभवे॥ ४६॥

ये केचित् प्रेतरूपा विकृतमुखदृशो रौद्ररूपाः कराला,
मन्यनते नैव गोत्रं सुतदुहितृपितृन् भ्रातृजायां वधूं वा।
कृत्वा काम्यं च रूपं सुखगतिर्हिता भाषमाणा यथेष्टं,
हा कष्टं भोक्तुकामा विधिवशपतिताः संस्मरन्ति स्वपापम्॥ ४७॥

हे पक्षियों में श्रेष्ठ, ऐसी बात को जानकर मनुष्य को प्रेत के प्रेतभाव से मुक्ति के लिए कर्म करना चाहिए। जो मनुष्य प्रेतों को नहीं मानता है (और प्रेतमुक्ति के लिए आवश्यक कर्म नही करता है) वह मरकर प्रेतभाव में प्राप्त होता है। जिसके कुल में प्रेतदोष होता है, उसको सुख नहीं मिलता है; मनन करने की शक्ति, प्रीति, रति, समझ सकने की शक्ति और लक्ष्मी इन पाँचों का विनाश होता है; तीसरी अथवा पाँचवीं पीढी में वंश का उच्छेद हो जाता है; जन्म-जन्म में दुर्गतियुक्त, निर्धन और पापकर्म करने वाला भी होता है। विकृत मुख और नेत्रों से युक्त, क्रूर रूपवाले, भयङ्कर प्रेत के रूप में वर्तमान होकर जो कोई भी अपना गोत्र, पुत्र, पुत्री, पिता, भौजाई अथवा वधू को नहीं मानते हैं, इन सबको पीड़ित करते हैं, सुखगति से रहित होकर अपनी इच्छानुसार विविध रूपको धारण करते हुए इच्छानुसार बोलते हुए भोग करने में इच्छुक होते हैं, किन्तु विधि के विधान में पड़े हुए ये प्रेत अपने पापका स्मरण करते रहते हैं, हाय! यह कष्टकर बात है॥ ४४—४७॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-२१

गरुड उवाच–

मुक्तिं यान्ति कथं प्रेतास् तदहं प्रष्टुमुत्सुकः। यन्मुक्तौ च मनुष्याणां न पीडा जायते पुनः॥ १॥
एतैश् च लक्षणैर् देव पीडोक्ता प्रेतजा त्वया। तेषां कदा भवेन मुक्तिः प्रेतत्वं न कथं भवेत्॥ २॥
प्रेतत्वे हि प्रमाणं च कति वर्षाणि सङ्ख्यया। चिरं प्रेतत्वमापन्नः कथं मुक्तिमवाप्नुयात्॥ ३॥

गरुड ने कहा—प्रेत कैसे प्रेतभाव से मुक्ति पाते हैं? वह मैं पूछना चाहता हूँ। जिनकी मुक्ति होने पर फिर मनुष्यों की पीड़ा नहीं उत्पन्न होती है। हे देव, आपने इन लक्षणों से प्रेत से उत्पन्न पीड़ा को बताया। उन प्रेतों की मुक्ति कब होगी? कैसे प्रेतत्व नहीं होगा? गिनने पर कितने वर्षों का प्रेतत्व के काल का परिमाण होगा? लम्बे समयतक प्रेतत्व में प्राप्त जीव कैसे प्रेतत्व से छुटकारा पाएगा?॥ १—३॥

श्रीकृष्ण उवाच–

मुक्तिं प्रयान्ति ते प्रेतास् तदहं कथयामि ते। यदैव मनुजोऽवैति मम पीडा कृता त्वियम्॥ ४॥
पृच्छार्थं हितमन्विच्छन् दैवज्ञे विनिवेदयेत्। स्वप्ने दृष्टः शुभो वृक्षः फलितश् चूतचम्पकः॥ ५॥
विप्रो वा वृषभो देवो भ्रमते तीर्थगो यदि। एवं दृष्टो यदा स्वप्नो मृतः कोऽपि स्वगोत्रजः॥ ६॥
स्वप्ने सत्यं परिज्ञाय दृष्टं प्रेतप्रभावतः। अद्भुतानि प्रदृश्यन्ते प्रेतदोषाद् विनिश्चितम्॥ ७॥
तीर्थस्नाने मतिर् यावच् चित्तं धर्मपरायणम्। धर्मोपायं प्रकुरुते प्रेतपीडा तदा व्रजेत्॥ ८॥
तदा तत्र विनाशय चित्तभङ्गं करोति सा। श्रेयांसि बहुविघ्नानि सम्भवन्ति पदेपदे॥ ९॥
अश्रेयसि प्रवृत्तिं च प्रेरयन्ति पुनःपुनः। उच्चाटनं च क्रूरत्वं सर्वं प्रेतकृतं खग॥ १०॥

श्रीकृष्ण ने कहा—जैसे वे प्रेत प्रेतत्व से छुटकारा पाते हैं, उस बात को मैं बताता हूँ। जिस समय में मनुष्य मेरी यह पीड़ा किसी से की गई है, ऐसा जानता है, तब अपना हित करना चाहता हुआ वह मनुष्य पूछने के लिए ज्योतिषी को अपनी बात ज्ञापित करे। स्वप्न में फलों से युक्त कोई आम, चम्पक इत्यादि शुभ वृक्ष देखा गया; ब्राह्मण अथवा वृषभ अथवा कोई देवतीर्थ में भ्रमण करता हुआ देखा गया, इसी प्रकार से अपने गोत्र में जन्मा हुआ कोई मृत व्यक्ति मृत व्यक्ति स्वप्न में देखा गया तो वह स्वप्न प्रेत के प्रभाव से देखा गया जानकर, और अद्भुत दृश्य निश्चित रूप में प्रेतदोष से देखे जाते हैं, ऐसा भी जानकर जब तीर्थस्नान करने में बुद्धि होती है और चित्त धर्माचरण में प्रविष्ट होता है तथा प्रेतत्व के नाश के लिए धर्माचरणरूप उपाय करता है, तब प्रेतपीड़ा जाती है। किन्तु धर्माचरणरूप उपाय करने के समय में प्रेतपीड़ा चित्तभङ्ग कर देती है। कल्याणकारी कार्य पग-पग में बहुत विघ्नों से युक्त होती हैं। अकल्याणकारी कार्य में होने वाली प्रवृत्ति को प्रेत बार-बार प्रेरणा देते हैं। हे पक्षिन्, उच्चाटनकार्य और क्रूरत्व सब ही प्रेतों से किया गया होता है॥ ४—१०॥

सर्वविघ्नानि सन्त्यज्य मुक्त्युपायं करोति यः। तस्य कर्मफलं साधु प्रेततृप्तिश् च शाश्वती॥ ११॥
स भवेत् तेन मुक्तस्तु दत्तं श्रेयस्करं परम्। स्वयं तृप्यति भोः यस्योद्देशेन दीयते॥ १२॥
शृणु सत्यमिदं तार्क्ष्य यद् ददाति भुनक्ति सः। आत्मानं श्रेयसा युञ्ज्यात् प्रेतस्तृप्तिं चिरं व्रजेत्॥ १३॥
ते तृप्ताः शुभमिच्छन्ति निजबन्धुषु सर्वदा। अज्ञातयस्तु ये दुष्टाः पीडयन्ति स्ववंशजान्॥ १४॥
निवारयन्ति तृप्तास्ते जायमानानुकम्पकाः। पश्चात् ते मुक्तिमायान्ति काले प्राप्ते स्वपुत्रतः॥
सदा बन्धुषु यच्छन्ति वृद्धिमृद्धिं खगाधिप॥ १५॥
दर्शनाद् भाषणाद् यस्तु चेष्टातः पीडनाद् गतिम्। न प्रापयति मूढात्मा प्रेतशापैः स लिप्यते॥ १६॥

अपुत्रकोऽपशुश् चैव दरिद्रो व्याधितस् तथा। वृत्तिहीनश् च हीनश् च भवेज् जन्मनिजन्मनि॥ १७॥
एवं ब्रुवन्ति ते प्रेता पुनर् याम्यं समाश्रिताः। तत्रस्थानां भवेन् मुक्तिः स्वकाले कर्मसङ्क्षये॥ १८॥

सब विघ्नों को हटाकर जो प्रेतमुक्ति का उपाय करता है, उसको अच्छी तरह से अपने कर्म का फल प्राप्त होता है और प्रेत की शाश्वत तृप्ति भी होती है। वह प्रेत उस कार्य से प्रेतत्व से मुक्त होगा। प्रेत के लिए दिया गया दान देनेवाले के लिए भी परम कल्याणकारी होता है। हे पक्षिन्, जिसको उद्देश्य करके दिया जाता है वह भी स्वयम् तृप्त होता है। हे गरुड, इस सत्य बातको सुनो, मनुष्य जो देता है उसका वही भोग करता है, देने वाला अपने को भी कल्याण से युक्त करेगा, प्रेत भी चिरकालतक तृप्त होगा। तृप्त प्रेत सदाकाल अपने बन्धुओं का शुभ चाहते हैं। असम्बन्धी जो दुष्ट प्रेत अपने वंशजों को पीड़ित करते हैं, तृप्त प्रेत अपने वंश में जायमान पुत्र-पौत्रादि में दया करते हुए उनका निवारण करते हैं। पीछे समय आने पर वे तृप्त अपने पुत्रों से मुक्ति पाते हैं। हे पक्षियों के स्वामिन्, तृप्त प्रेत सदाकाल अपने बन्धुओं में वृद्धि और ऐश्वर्य देते हैं। जो मूढ-बुद्धि वाला मनुष्य स्वप्नादि में प्रेतचिह्न देखने से, ब्राह्मण-दैवज्ञादि के कथन से प्रेतों की चेष्टाओं से और पीड़ाओं से भी प्रेतों को जानकर उनको सुगति में प्राप्त नहीं कराता है वह प्रेत के शापों से लिप्त होता है। वह मनुष्य जन्म-जन्म में पुत्रहीन, पशुहीन, दरिद्र, रोगी, जीवनवृत्तिहीन और नीच भी होगा। अपने वंशजों से मुक्ति का उपाय न किए जाने पर फिर यमपुरी का ही आश्रय लेनेवाले वे प्रेत ऐसा कहते हैं। यमपुरी में रहने वाले प्रेतों की मुक्ति अपने समय में पापकर्म का फलभोग से क्षय होने पर होगी॥ ११—१८॥

गरुड उवाच—

नाम गोत्रं न दृश्येत प्रतीतिर् नैव जायते। केचिद् वदन्ति दैवज्ञाः पीडां प्रेतसमुद्भवाम्॥ १९॥
न स्वप्नचेष्टितं नैव दर्शनं न कदाचन। किं कर्तव्यं सुरश्रेष्ठ तत्र मे ब्रूहि निश्चितम्॥ २०॥
सत्यं वाऽप्यनृतं वाऽपि वदन्ति क्षितिदेवताः। तदा सञ्चिन्त्य हृदये सत्यमेतद् द्विजेरितम्॥ २१॥
भावभक्तिं पुरस्कृत्य पितृभक्तिपरायणः। कुर्यात् कृष्णबलिं चैव पुरश्चरणपूर्वकम्॥ २२॥

गरुड ने कहा—किसी प्रेत का नाम और गोत्र कुछ नहीं ज्ञात होता है, उसके विषय में विश्वास भी नहीं होता है, कोई दैवज्ञ अनुभूयमान पीड़ा को प्रेत से उत्पन्न बताते हैं, किन्तु स्वप्न में कोई चेष्टा भी नहीं, दर्शन भी कदापि नहीं; ऐसी स्थिति में, हे देवताओं में श्रेष्ठ, क्या करना चाहिए? निश्चित रूप में मुझको बताइए।॥ १९—२०॥ **श्रीभगवान् ने कहा**—भूमिदेव ब्राह्मण सत्य अथवा असत्य जो कुछ भी बताते हैं तब भी ब्राह्मण से बताई गई यह बात सत्य है ऐसा हृदय में रख रखकर भावभक्ति को आगे रखकर पितृभक्ति से पूर्ण होकर पुरश्चरण करके कृष्णबलि (नारायणबलि) करें॥ १९-२२॥

जपहोमैस् तथा दानैः प्रकुर्याद् देहशोधनम्। कृतेन तेन विघ्नानि विनश्यन्ति खगेश्वर॥ २३॥
भूतप्रेतपिशाचैर् वा स चेदन्यैः प्रपीड्यते। पित्रुद्देशेन वै कुर्यान् नारायणबलिं तदा॥ २४॥
विमुक्तः सर्वपीडाभ्य इति सत्यं वचो मम। पितृपीडा भवेद् यत्र कृत्यैरन्यैर् न मुच्यते॥ २५॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पितृभक्तिपरो भवेत्। नवमे दशमे वर्षे पित्रुद्देशेन वै पुमान्॥ २६॥
गायत्रीमयुतं जप्त्वा दशांशेन च होमयेत्। कृत्वा कृष्णबलिं पूर्वं वृषोत्सर्गादिकाः क्रियाः॥ २७॥
सर्वोपद्रवहीनस् तु सर्वसौख्यमवाप्नुयात्। उत्तम लोकमाप्नोति ज्ञातिप्राधान्यमेव च॥ २८॥
पितृमातृसमं लोके नास्त्यन्यद् दैवतं परम्। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पूजयेत् पितरो सदा॥ २९॥

जपों से होमों से तथा दानों से देहशुद्धि करे। हे पक्षियों के मालिक, उस देहशुद्धिकार्य से विघ्न नष्ट होते हैं।

वह मनुष्य भूत, प्रेत और पिशाचों से अथवा अन्य तत्त्वों से पीड़ित होता है तो उस समय में पितरों के उद्देश्य से नारायणबलि करें। इससे मनुष्य सभी पीड़ाओं से मुक्त होता है, यह मेरा वचन सत्य है, जहाँ पितरों से पीड़ा होगा वहाँ अन्य कृत्यों से मुक्त नहीं होता है। इस हेतु से मनुष्य सभी प्रयत्न से पितृभक्तिपरायण होवे। नौवें अथवा दशवें वर्ष में मनुष्य पितरों के उद्देश्य से दश हजार गायत्रीजप करके उसका दशमांश हवन करे। पहले नारायणबलि करके वृषोत्सर्ग इत्यादि क्रिया करे। तब सभी उपद्रवसे रहित होकर मनुष्य सभी प्रकार का सुख प्राप्त करेगा और दूसरे जन्म में उत्तम लोक पाता है, इस लोक में बन्धुओं में प्रधानता भी पाता है। **लोक में पिता-माता के तुल्य परम् देवता और नहीं है। इसलिए सदाकाल सम्पूर्ण प्रयत्नों से पिता-माता की सेवा करें**॥ २३-२९ ॥

हितानामुपदेष्टा हि प्रत्यक्षं दैवतं पिता। अन्या या देवता लोके न देहप्रभवा हि ताः॥ ३०॥
शरीरमेव जन्तूनां स्वर्गमोक्षैकसाधनम्। देहो दत्तो हि येनैवं कोऽन्यः पूज्यतमस्ततः॥ ३१॥
इति सञ्चिन्त्य हृदये पक्षिन् यद्यत् प्रयच्छति। तत् सर्वमात्मना भुङ्क्ते दानं वेदविदो विदुः॥ ३२॥
पुन्नामनरकाद् यस्मात् पितरं त्रायते सुतः। तस्मात् पुत्र इति प्रोक्त इह चाऽपि परत्र च॥ ३३॥
अपमृत्युमृतौ स्यातां पितरौ कस्यचित् खग। व्रततीर्थविवाहादिश्राद्धं संवत्सरं त्यजेत्॥ ३४॥
स्वप्नाध्यायमिमं यस्तु प्रेतलिङ्गनिदर्शकम्। यः पठेच् छृणुयाद् वापि प्रेतचिह्नं न पश्यति॥ ३५॥

हितों का उपदेश करने वाला पिता प्रत्यक्ष देवता है। **लोक में जो अन्य देवता हैं वे देह की उत्पत्ति के मूल नहीं हैं, पिता ही देह की उत्पत्ति का मूल हैं।** प्राणियों का शरीर ही स्वर्ग का और मोक्ष का एक मात्र साधन है। इस स्थिति में जिसने देह ही दिया उससे अधिक पूज्य और कौन हो सकता है?। हे पक्षिन्, इस प्रकार हृदय में विचार करके जो-जो दान देता है, उस सब दानका फल दाता स्वयम् ही भोग करता हे, ऐसा वेद जानने वाले विद्वान् जानते हैं। **चूँकि बेटा अपने बाप को 'पुत्' नाम के नरक में पड़ने से बचाता है,** इसलिए इस लोक में परलोक में भी बेटा पुत्र (पुत्-त्र) कहा गया है। हे पक्षिन्, यदि किसी के पिता-माता दुर्मरण से मरे हैं तो मृत्यु से लेकर एक तिथिबद्ध चान्द्रवर्षतक व्रत के अङ्ग के रूप में, तीर्थ के अङ्ग के रूप में और विवाहादि संस्कार के अङ्ग के रूप में भी श्राद्ध (आभ्युदयिकश्राद्ध) नहीं करे। **प्रेत के चिह्नों का वर्णन करने वाले इस स्वप्नाध्याय को जो मनुष्य पढ़ेगा अथवा सुनेगा वह प्रेतचिह्न देखने से आने वाले कष्ट से मुक्त होगा**॥ ३०-३५ ॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-२२

गरुड उवाच-

सम्भवन्ति कथं प्रेताः केन तेषां गतिर् भवेत्। कीदृक् तेषां भवेद् रूपं भोजनं किं भवेत् प्रभो॥ १॥
सुप्रीतास् ते कथं प्रेताः क्व तिष्ठन्ति सुरेश्वर। प्रसन्नः कृपया देव प्रश्नमेनं वदस्व मे॥ २॥

गरुड ने कहा—हे प्रभो, प्रेत कैसे उत्पन्न होते हैं? किस कर्म से उन की सुगति होती है? उनका रूप कैसा होगा? उनका भोजन क्या होगा? वे प्रेत कैसे प्रसन्न होते हैं? हे देवों के ईश्वर, प्रेत कहाँ रहते हैं? हे देव, प्रसन्न होकर मेरे इस प्रश्नका उत्तर बताइए।॥ १-२ ॥

श्रीभगवानुवाच-

पापकर्मरता ये वै पूर्वकर्मवशानुगाः। जायन्ते ते मृताः प्रेतास् ताञ् छृणुष्व वदाम्यहम्॥ ३॥
वापीकूपतडागांश् च आरामं सुरमन्दिरम्। प्रपां सद्म सुवृक्षांश् च तथा भोजनशालिकाः॥ ४॥
पितृपैतामहं धर्मं विक्रीणाति स पापभाक्। मृतः प्रेतत्वमाप्नोति यावदाभूतसम्प्लवम्॥ ५॥

गोचरं ग्रामसीमां च तडागारामगह्वरम्। कर्षयन्ति च ये लोभात् प्रेतास्ते वै भवन्ति हि॥ ६॥
चण्डालादुदकात् सर्पाद् ब्राह्मणाद् वैद्युताग्नितः। दंष्ट्रिभ्यश् च पशुभ्यश् च मरणं पापकर्मिणाम्॥ ७॥

भगवान् ने कहा—पूर्व कर्मों के वश में पड़े हुए मनुष्य जिनजिन पापकर्मों में रत होकर मरने पर प्रेत होते हैं उनको मैं बताता हूँ, सुनो। जो मनुष्य बाबली, कुआँ, तालाब, देवालय, पौसल, घर, उत्तम वृक्ष और ब्राह्मण-दरिद्रादि-भोजनगृह इत्यादि बाप-दादों के धर्मकार्य का विक्रय करता है, वह पापभागी होता है और मरने पर महाप्रलय (महाकल्पान्त) न होनेतक प्रेतयोनि में पड़ा रहता है। जो मनुष्य लोभ से गायों के चरागाह, गाँव की सीमा के रूप में रही भूमि, तालाब, उपवन और गुफा को जोत लेते हैं, वे अवश्य प्रेत होते हैं। पापकर्म करने वालों का चण्डाल से, जल से, साँप से, ब्राह्मण से, बिजली गिरने से जले अग्नि से, दाढ वाले हिंस्रक जन्तु से और पशुओं से भी मरण होता है॥ ३—७॥

उद्बन्धनमृता ये च विषशस्त्रहताश् च ये। आत्मोपघातिनी ये च विषूच्यादिहतास्तथा॥ ८॥
महारोगैर् मृता ये च पापरोगैश् च दस्युभिः। असंस्कृतप्रमीता ये विहिताऽऽचारवर्जिताः॥ ९॥
वृषोत्सर्गादिलुप्ताश्च लुप्तमासिकपिण्डकाः। यस्याऽऽनयति शूद्रोऽग्निं तृणकाष्ठहवींषि सः॥ १०॥
पतनात् पर्वतानां च भित्तिपातेन ये मृताः। रजस्वलादिदोषैश्च न च भूमौ मृताश् च ये॥ ११॥
अन्तरिक्षे मृता ये च विष्णुस्मरणवर्जिताः। सूतकैः श्वादिसम्पर्कैः प्रेतभावा इह क्षितौ॥ १२॥
एवमादिभिरन्यैश् च कुमृत्युवशगाश् च ये। ते सर्वे प्रेतयोनिस्था विचरन्ति मरुस्थले॥ १३॥
मातरं भगिनीं भार्यां स्नुषां दुहितरं तथा। अदृष्टदोषां त्यजति स प्रेतो जायते ध्रुवम्॥ १४॥

फाँसी लगाने से जो मरे हैं, जो विष से और शस्त्र से मरे हैं, जो आत्महत्या करने वाले हैं, जो विषूचिकादि रोगों से मरे हैं, जो यक्ष्मा, कुष्ठ इत्यादि महारोग से और पापजन्य रोग से मरे हैं, जो डाकुओं से मरे हैं, जो असंस्कृत अवस्था में मरे हैं, जो शास्त्रविहित अपने अपने वर्ण आश्रम इत्यादि के आचार से रहित होकर मरे हैं, जिनका वृषोत्सर्गादि कृत्य लुप्त हुए हैं, जिनका मासिक पिण्ड लुप्त हुए हैं, **जिसके शव के दाह में शूद्र अग्नि, तृण, काष्ठ और घी लाता है,** जो पर्वत के भागों के पतन से, दिवाल के ढहने से मरे हैं, जो रजस्वलादिदोष से मरे हैं, जो भूमिस्पर्श न होने की अवस्था में मरे हैं, जो अन्तरिक्ष में (घर के ऊपर के भाग में अथवा पलङ में) मरे हैं, जो विष्णु के स्मरण से रहित होकर मरे हैं, इस भूमि में सूतकी मनुष्यों के अथवा कुक्कुर इत्यादि अस्पृश्य प्राणी के सम्पर्क में आने के समय में जिसका प्रेतभाव (मरण) हुआ है, इसी प्रकार के अन्य कारणों से भी जो दुर्मरण के वश में पड़े हैं, वे सब प्रेतयोनि में रहकर मरुभूमि में इधर-उधर घूमते रहते हैं। जो मनुष्य जिनका कोई दोष नहीं देखा गया है वैसी माँ को, बहन को, पत्नी को, पुत्रवधु को और पुत्री को त्याग देता है, वह अवश्य प्रेत हो जाता है॥ ८-१४॥

☞ शूद्र [डोम आदि] से अग्नि एवं काष्ठ नहीं लेना चाहिये, यह कार्य स्वयं मृतक के घर वाले करें।

भ्रातृध्रुग् ब्रह्महा गोघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः। हेमक्षौमहरस् तार्क्ष्य स वै प्रेतत्वमाप्नुयात्॥ १५॥
न्यासापहर्ता मित्रध्रुक् परदाररतस् तथा। विश्वासघाती क्रूरस् तु स प्रेतो जायते ध्रुवम्॥ १६॥
कुलमार्गांश् च सन्त्यज्य परधर्मरतस् तथा। विद्यावृत्तिविहीनश् च स प्रेतो जायते ध्रुवम्॥ १७॥
अत्रै वो दाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। युधिष्ठिरस्य संवादं भीष्मेण सह सुव्रत।
तदहं कथयिष्यामि यच् छ्रुत्वा सौख्यमाप्नुयात्॥ १८॥

भाई का द्रोही, ब्रह्मघाती, गोघाती, द्विजाति होकर सुरा पीने वाला, गुरुपत्नी से सहवास करने वाला, सोनेका और क्षौमवस्त्र का चुराने वाला जो है, हे गरुड, वह प्रेतयोनि में प्राप्त होता है। जो न्यास (धरोहर) को हडपने वाला,

मित्र का द्रोही, दूसरे को पत्नी से सहवास करने वाला, विश्वासघात करने वाला और क्रूर है, वह अवश्य प्रेत होता है। जो अपने कुल से अवलम्बित आचारमार्गों को छोड़कर अन्य वर्णाश्रमादि के धर्म में रमने वाला है, नीचविद्यासेवी है और नीचवृत्तिसेवी है, वह मनुष्य प्रेत हो जाता है। हे सुव्रत, इसी विषय में युधिष्ठिर का भीष्म के साथ हुए संवाद के रूप में रहे हुए इस पुराने इतिहास को मुनिलोग कहते हैं। उस इतिहास को मैं बताऊँगा जिसको सुनकर सुनने वाला सुख पाएगा॥ १५-१८॥

युधिष्ठिर उवाच–

केन कर्मविपाकेन प्रेतत्वमुपजायते। केन वा मुच्यते तस्मात् तन् मे ब्रूहि पितामह।
यच् छ्रुत्वा न पुनर् मोहमेवं यास्यामि सुव्रत॥ १९॥

युधिष्ठिर ने कहा—हे सुव्रत पितामह, किस कर्म के परिणाम से प्रेतत्व होता है, किस उपाय से उससे जीव मुक्त होता है, वह मुझको बताइए, जिसको सुनकर मैं फिर ऐसे अज्ञान से नहीं पड़ूँगा॥ १९॥

भीष्म उवाच–

येनैव जायते प्रेतो येनैव स विमुच्यते। प्राप्नोति नरकं घोरं दुस्तरं दैवतैरपि॥ २०॥
सततं श्रवणाद् यस्य पुण्यश्रवणकीर्तनात्। मानवा विप्रमुच्यन्ते आपन्नाः प्रेतयोनिषु॥ २१॥
श्रूयते हि पुरा वत्स ब्राह्मणः शंसितव्रतः। नाम्ना सन्तप्तकः ख्यातस् तपोऽर्थे वनमाश्रितः॥ २२॥
स्वाध्याययुक्तो होमेन यागयुक्तो दयान्वितः। यजन् स क्रतुकलान् यज्ञान् युक्त्या कालञ्च विक्षिपन्॥ २३॥
ब्रह्मचर्यसमायुक्तो युक्तस् तपसि मार्दवे। परलोकभयोपेतः सत्यशौचैश् च निर्मलः॥ २४॥
युक्तो हि गुरुवाक्येन युक्तश् चाऽतिथिपूजने। आत्मयोगे सदोद्युक्तः सर्वद्वन्द्वविवर्जितः॥ २५॥
योगाभ्यासे सदा युक्तः संसारविजिगीषया। एवंवृत्तः सदाचारो मोक्षकाङ्क्षी जितेन्द्रियः॥ २६॥
बहून्यब्दानि विजने वने तस्य गतानि वै। तस्य बुद्धिस्ततो जाता तीर्थानुगमनं प्रति॥ २७॥
पुण्यैस् तीर्थजलैरेव शोषयिष्ये कलेवरम्। स तीर्थे त्वरितं स्नात्वा तपस्वी भास्करोदये॥
कृतजाप्यनमस्कारो ह्यध्वानं प्रत्यपद्यत॥ २८॥

भीष्म ने कहा—जिस कर्म से मुनष्य प्रेत होता है, जिस कर्म से प्रेतयोनि से मुक्त होता है, जिस कर्म से देवताओं से भी दुःख से ही पार किए जा सकने वाले घोर नरक में जाता है, **जिसके निरन्तर सुनने से, जिस पुण्यश्रवण के कीर्तन से प्रेतयोनि में पड़े हुए मानव प्रेतयोनि से मुक्त होते हैं, उन कर्म को और उस आख्यान को मैं बताऊँगा।** हे वत्स, यह आख्यान सुना जाता है कि—पुराकाल में प्रकाशित सङ्कल्पित व्रत वाले और प्रसिद्ध, सन्तप्तक नाम के कोई ब्राह्मण तपस्या के लिए वन में आश्रित थे। वे अपने शाखा के वेद के अध्ययन से युक्त, होमरूप यज्ञसे युक्त, दया से पूर्ण थे। वे सभी यज्ञों को करते रहने वाले और युक्ति से काल का यापन करते रहने वाले, ब्रह्मचर्य से युक्त, तपस्या में और कोमलभाव में रहने वाले, परलोक के भय से युक्त, सत्यरूपी शौचों से निर्मल, गुरुवाक्य से युक्त, अतिथियों के पूजन में संलग्न, जीवात्मा को परमात्मा से मिलाने में सदाकाल उद्योग करने वाले सभी प्रकार के द्वन्द्वों से रहित, संसार के चक्कर को जीतने की इच्छा से सदाकाल योगाभ्यास में संलग्न, इस प्रकार के चरित्र से युक्त, सदाचारी, मोक्ष को चाहने वाले और जितेन्द्रिय थे। मनुष्यों से रहित वन में उनके बहुत वर्ष बीत गए। तब उनकी तीर्थभ्रमण करने की बुद्धि हुई। उन्होंने विचार किया कि पवित्र तीर्थों के जलों से शरीर को सुखाऊँगा। वे तपस्वी तीर्थ में शीघ्रता से स्नान करके सूर्य का उदय होने पर जप और नमस्कार करके मार्ग में चलने लगे॥ २०-२८॥

एकस्मिन् दिवसे विप्रो मार्गभ्रष्टो महातपाः। ददर्शाध्वनि गच्छन् स पञ्च प्रेतान् सुदारुणान्॥ २९॥
अरण्ये निर्जने देशे सङ्कटे वृक्षवर्जिते। पञ्चैतान् विकृताकारान् दृष्ट्वा वै घोरदर्शनान्॥
ईषत्सन्त्रस्तहृदयोऽतिष्ठदुन्मील्य लोचने॥ ३०॥
अवलम्ब्य ततो धैर्यं भयुमत्सृज्य दूरतः। पप्रच्छ मधुराभाषी के यूयं विकृताननाः॥ ३१॥
किञ्चाऽशुभं कृतं कर्म येन प्राप्ताः स्थ वैकृतम्। कथं वा चैकतः कर्म प्रस्थिताः कुत्र निश्चितम्॥ ३२॥

एक दिन महातपस्वी वे विप्रवर मार्ग से भटक गए। मार्ग में जाते हुए उन्होंने वनमें मनुष्यों से रहित और वृक्षों से भी रहित संकरे स्थल में भयङ्कर पाँच प्रेतों को देखा। विकृत आकार वाले और डरावने दृश्य वाले इन पाँच प्रेतों को देखकर कुछ सन्त्रस्तहृदय वाले वे ब्राह्मण आँखों को खोलकर खड़े रह गए। तब धैर्यधारण करके भयको छोड़कर उन्होंने दूर से ही मधुर वाणी से पूछा कि विकृतमुख वाले आपलोग कौन हैं? क्या अशुभ कर्म किया था? जिससे इस प्रकार के विकृत रूपको प्राप्त हुए हैं, कैसे एक सा कर्म हुआ? निश्चित रूप से कहाँ जाने के लिए चले हैं?॥ २९-३२॥

प्रेतराज उवाच-

स्वैःस्वैस्तु कर्मभिः प्राप्तं प्रेतत्वं हि द्विजोत्तम। परद्रोहरताः सर्वे पापमृत्युवशं गताः॥ ३३॥
क्षुत्पिपासार्दिता नित्यं प्रेतत्वं समुपागताः। हतवाक्या हतश्रीका हतसंज्ञा विचेतसः॥ ३४॥
न जानीमो दिशं तात विदिशं चाऽतिदुःखिता। क्व नु गच्छामहे मूढाः पिशाचाः कर्मजा वयम्॥ ३५॥
न माता न पिताऽस्माकं प्रेतत्वं कर्मभिः स्वकैः। प्राप्ताः स्म सहसा जातदुःखोद्वेगसमाकुलम्॥ ३६॥
दर्शनेन च ते ब्रह्मन् मुदिताः प्यायिता वयम्। मुहूर्तं तिष्ठ वक्ष्यामि वृत्तान्तं सर्वमादितः॥ ३७॥
अहं पर्युषितो नाम एष सूचीमुखस्तथा। शीघ्रगो रोधकश्चैव पञ्चमो लेखकः स्मृतः॥ ३८॥
एवं नाम्ना च सर्वे वै सम्प्राप्ताः प्रेततां वयम्।

प्रेतराज ने कहा—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ, हम लोगों ने अपने-अपने कर्मों से प्रेतत्व प्राप्त किया है। हम सब परद्रोह में रत थे और दुर्मरण में पड़े हुए थे। नित्य भूख से और पिपासा से आर्त हमलोग प्रेतत्व में प्राप्त हुए हैं; हम वाक्यहीन, कान्तिहीन, चेतनाहीन और मनोहीन हैं, अतिदुःखित हम लोग कौन दिशा हैं, कौन विदिशा है, नहीं जानते हैं, अपने कर्मों से हुए हम पिशाच मूढ़ हैं, हम कहाँ जाएंगे। हमलोगों की माता नहीं है पिता भी नहीं है, उत्पन्न दुःखों से हुए उद्वेग से आकुल इस प्रेतत्व में हम अपने ही कर्मों से एकाएक प्राप्त हुए हैं। हे ब्राह्मणदेव, आपके दर्शन से हम प्रसन्न और तृप्त हुए हैं। आप मुहूर्तभर रुकें, प्रारम्भ से सभी वृतान्त बताऊँगा। मैं पर्युषित नाम से परिचित हूँ, यह सूचीमुख है, यह शीघ्रग है, यह रोधक है और यह पाँचवाँ लेखक समझा गया है, प्रेतत्व में प्राप्त हम सब ऐसे नामों से परिचित हैं॥ ३३-३८$^{१}/_{२}$॥

ब्राह्मण उवाच-

प्रेतानां कर्मजातानां कथं वै नामसम्भवः। किञ्चित् कारणमुद्दिश्य येन ब्रूयाः स्वनामकान्॥ ३९॥

ब्राह्मण ने कहा—कर्म से हुए प्रेतों के नामों की उत्पत्ति कैसे हुई? यह नामों की उत्पत्ति किसी कारण को लेकर हुई होगी? जिस कारण को लेकर इन नामों की उत्पत्ति हुई, उसको लेकर अपने नामों का प्रतिपादन करो॥ ३९॥

प्रेतराज उवाच-

मया स्वादु सदा भुक्तं दततं पर्युषितं द्विजे॥ ४०॥

एतत्कारणमुद्दिश्य नाम पर्युषितं मम॥ ४१॥
शीघ्रं गच्छति विप्रेण याचितः क्षुधितेन वै। एतत्कारणमुद्दिश्य शीघ्रगोयं द्विजोत्तम॥ ४२॥
सूचिता बहवोऽनेन विप्रा अन्नादिकाङ्क्षया। एतत्कारणमुद्दिश्य एष सूचीमुखः स्मृतः॥ ४३॥
एकाकी मिष्टमश्नाति पोष्यवर्गमृते सदा। ब्राह्मणानामभावेन रोधकस्तेन चोच्यते॥ ४४॥
पुराऽयं मौनमास्थाय याचितो विलिखेद् भुवम्। तेन कर्मविपाकेन लेखको नाम चोच्यते॥ ४५॥
प्रेतत्वं कर्मभावेन प्राप्तं नामानि च द्विज। मेषाननो लेखकोऽयं रोधकः पर्वताननः॥ ४६॥
शीघ्रगः पशुवक्त्रश्च सूचकः सूचिवक्त्रवान्। दुःखिता नितरां स्वामिन् पश्य रूपविपर्ययम्॥ ४७॥
कृत्वा मायामयं रूपं विचरामो महीतले। सर्वे च विकृताकारा लम्बोष्ठा विकृताननाः॥ ४८॥
बृहच्छरीरिणो रौद्रा जाताः स्वेनैव कर्मणा। एतत् ते सर्वमाख्यातं प्रेतत्वे कारणं मया॥ ४९॥
ज्ञानिनोऽपि वयं सर्वे जाताः स्म तव दर्शनात्। यत्र ते श्रवणे श्रद्धा तत् पृच्छ कथयामि ते॥ ५०॥

प्रेतराज ने कहा—मैंने सदाकाल स्वादिष्ट भोजन किया और ब्राह्मण को पर्युषित (बासी) भोजन दिया। इसी कारण को लेकर मेरा नाम पर्युषित हुआ। हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ, भूखे ब्राह्मण से मांगे जाने पर ब्राह्मण को पीछे छोड़कर यह शीघ्रता से आगे बढ़ता था, इसी कारण को लेकर यह शीघ्रग नाम का हआ। शासक से अन्नादि की प्राप्ति की इच्छा से इसने बहुत से ब्राह्मणों के विरूद्ध शासक में सूचना दी, इसी कारण को लेकर यह सूचीमुख नामका समझा गया है। द्वार के अवरोध से अतिथि ब्राह्मणों का अभाव बनाकर पोष्य बाल-वृद्धादि को भी छोड़कर अकेला ही सदाकाल स्वादिष्ट भोजन करता था, उसी कर्म से यह रोधक कहा जाता है। पुराकाल में माँगे जाने पर यह मौनधारण करके भूमि को कुरेदने लगता था, उसी कर्म के परिणाम से यह लेखक नाम से पुकारा जाता है। हे ब्राह्मण, कर्म के प्रभाव से हमलोगों ने प्रेतत्व पाया और नाम भी पाए। यह लेखक भेडे के मुख की तरह के मुख वाला है, रोधक पर्वत जैसे मुख वाला है, शीघ्रग पशु के मुख की तरह के मुख वाला है और सूचक सुई जैसे मुखवाला है। हे स्वामिन्! हम अत्यन्त दुःखित हैं, हमारे रूपों का उलटफेर देखिए। हमलोग मायामय रूप बनाकर पृथ्वीतल में इधर-उधर घूमते हैं। हम सभी अपने ही कर्मों से विकृत आकार वाले, लम्बे होंठवाले, विकृत मुखवाले, बड़े शरीर वाले और भयानक हुए हैं। मैंने यह सब प्रेतत्व के कारण आपको बताया। आप के दर्शन से हम सब ज्ञानी भी हो गए हैं। जिस विषय के श्रवण में आप की श्रद्धा है उस विषय को पूछिए, मैं आप को बताता हूँ॥ ४०-५०॥

ब्राह्मण उवाच–

ये जीवा भुवि जीवन्ति सर्वेऽप्यहारमूलकाः। युष्माकमपि चाऽऽहारं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥ ५१॥

ब्राह्मण ने कहा—जो भी जीव पृथिवीतल में जीवित हैं, वे सब आहारमूलक हैं। आप लोगों का भी जो आहार है उसको मैं यथार्थ रूप में सुनना चाहता हूँ॥ ५१॥

प्रेता ऊचुः–

यदि ते श्रवणे श्रद्धा आहाराणां द्विजोत्तम। अस्माकं तु महाभाग शृणु त्वं सुसमाहितः॥ ५२॥

प्रेतों ने कहा—हे महान् प्रभाव वाले ब्राह्मणश्रेष्ठ, यदि आप की हमारे आहारों को सुनने में श्रद्धा है तो आप सावधान होकर सुनिए॥ ५२॥

ब्राह्मण उवाच–

कथयन्तु महाप्रेता आहारं च पृथक्पृथक्। इत्युक्ता ब्राह्मणेनेममूचुः प्रेताः पृथक्पृथक्॥ ५३॥

ब्राह्मण ने कहा—हे महाप्रेत लोग, आप लोग अलग-अलग आहार को बताएँ। ब्राह्मण से ऐसा कहे गए प्रेत लोग अलग-अलग उन ब्राह्मण से कहने लगे॥ ५३॥

प्रेता ऊचुः-

शृणु चाऽऽहारमस्माकं सर्वसत्त्वविगर्हितम्। यच् छ्रुत्वा गर्हसे ब्रह्मन् भूयोभूयश् च गर्हितम्॥ ५४॥
श्लेष्ममूत्रपुरीषोत्थं शरीराणां मलैः सह। उच्छिष्टैश् चैव चान्यैश् च प्रेतानां भोजनं भवेत्॥ ५५॥
गृहाणि चाऽप्यशौचानि प्रकीर्णोपस्कराणि च। मलिनानि प्रसूतानि प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै॥ ५६॥
नास्ति सत्यं गृहे यत्र न शौचं न च संयमः। पतितैर् दस्युभिः सङ्गः प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै॥ ५७॥
बलिमन्त्रविहीनानि होमहीनानि यानि च। स्वाध्यायव्रतहीनानि प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै॥ ५८॥
न लज्जा न च मर्यादा यदाऽत्र स्त्रीजितोगृही। गुरवो यत्र पूज्या न प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै॥ ५९॥
यत्र लोभस्तथा क्रोधो निद्रा शोको भयंमदः। आलस्यं कलहो नित्यं प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै॥ ६०॥

प्रेतों ने कहा—हमारे सभी प्राणियों से निन्दित आहार को सुनिये; हे ब्राह्मण जिस गर्हित आहार को सुनकर आप भी बार-बार निन्दा करेंगे। खखार, शिङ्घाण, मूत्र और विष्ठा से और अन्य शरीरमलों से तथा अन्य जूठे पदार्थों से बना हुआ वस्तु ही प्रेतों का भोजन होगा। **जो घर अशुद्ध हैं, जिन घरों में घरेलू उपकरण इधर-उधर बिखरे रहते हैं, जो घर मलयुक्त हैं, प्रसव के मल से दूषित हैं, वहाँ प्रेत भोजन करते हैं।** जिस घर में सत्य नहीं, शौच नहीं, संयम नहीं, पतितों से और डाकुओं से सङ्गत है, उस घर में प्रेत भोजन करते हैं। जो घर भूतबलि (भूतयज्ञ) से और मन्त्रप्रयोग से रहित हैं, होम (देवयज्ञ) से रहित हैं, स्वाध्यायव्रत (नित्य ब्रह्मयज्ञ) से भी रहित हैं, उन घरों में प्रेत भोजन करते हैं। जिस घर में लोकलज्जा नहीं है, कर्तव्य-अकर्तव्यों की सीमा नहीं है, गृहपति स्त्रीजित (स्त्री के वशीभूत, जोरू का गुलाम) है, जिस घर में ब्राह्मण, गुरु, पुरोहित, पिता, माता, बड़े भाई इत्यादि मान्यजन पूज्य नहीं माने जाते हैं, उस घर में प्रेत भोजन करते हैं। जिस घर में नित्य ही लोभ, क्रोध, निद्रा, शोक, भय, मद, आलस्य और कलह प्रभावी (हावी) रहते हैं, उस घर में प्रेत भोजन करते हैं॥ ५४-६०॥

☛ सभी सनातनियों को अपना घर साफ-सुथरा रखना चाहिये क्योंकि मलिन घर में प्रेत का वास होता है।

भर्तृहीना च या नारी परवीर्यं निषेवते। बीजं मूत्रसमायुक्तं प्रेता भुञ्जन्ति तत् तु वै॥ ६१॥
लज्जा मे जायते तात वदतो भोजनं स्वकम्। यत् स्त्रीरजो योनिगतं प्रेता भुञ्जन्ति तत् तु वै॥ ६२॥
निर्विण्णः प्रेतभावेन पृच्छामि त्वां दृढव्रत। यथा न भविता प्रेतस् तन् मे वद तपोधन।
नित्यं मृत्युर् वरं जन्तोः प्रेतत्वं मा भवेत् क्वचित्॥ ६३॥

जिस घर में पति से रहित (विधवा) स्त्री परपुरुष के वीर्य का ग्रहण करती है वहाँ प्रेत उस मूत्रमिश्रित वीर्य को खाते हैं। हे पूज्यवर, अपने भोजन को बताते हुए मुझको लज्जा होती है, स्त्री के जननेन्द्रिय में रहे हुए रज को प्रेत लोग खाते हैं। हे व्रत में दृढ़ रहने वाले विप्रवर, प्रेतभाव से खिन्न मैं आप को पूछता हूँ; हे तपोधन, जिस काम से मनुष्य प्रेतयोनि में प्राप्त होने से बचता है, उस काम को बताइए। प्राणी का प्रतिदिन मृत्यु होना भी कुछ अच्छी बात मानी जा सकती है, किन्तु कहीं भी प्राणी का प्रेतत्व न हो।॥ ६१-६३॥

ब्राह्मण उवाच-

उपवासपरो नित्यं कृच्छ्रचान्द्रायणे रतः। व्रतैश् च विविधैः पूतो न प्रेतो जायते नरः॥ ६४॥
एकादश्यां व्रतं कुर्वञ् जागरेण समन्वितम्। अपरैः सुकृतैः पूतो न प्रेतो जायते नरः॥ ६५॥
इष्ट्वा चैवाऽश्वमेधादीन् दद्याद् दानानि योनरः। आरामोद्यानवाप्यादेः प्रपायाश् चैव कारकः॥ ६६॥
कुमारीं ब्राह्मणानां तु विवाहयति शक्तितः। विद्यादोऽभयदश् चैव न प्रेतो जायते नरः॥ ६७॥
शूद्रान्नेन तु भुक्तेन जठरस्थेन यो मृतः। दुर्मृत्युना मृतो यश् च स प्रेतो जायते नरः॥ ६८॥

ब्राह्मण ने कहा—उपवास के लिए विहित दिनों में उपवास करने वाला, चान्द्रायण कृच्छ्र करने में रमने वाला, विभिन्न प्राजापत्य कृच्छ्रादि व्रतों से शुद्ध हुआ मनुष्य प्रेत नहीं होता है। एकादशी में रात्री में किए गए जागरण से भी युक्त व्रत करने वाला और अन्य सुकर्मों से भी शुद्ध हुआ मनुष्य प्रेत नहीं होता है। जो मनुष्य अश्वमेधादि यज्ञ करके विविध दान देता है, वह विश्राम-क्रीडादिस्थल उपवन, बाबली, प्याऊ इत्यादि परोपकारी कार्यों का करने वाला, अपनी धनशक्ति के अनुसार निर्धन ब्राह्मणों की कुमारियों का विवाह कराने वाला, सत्पात्र में विद्यादान करने वाला, सभी प्राणियों का अभयदान देने वाला मनुष्य भी प्रेत नहीं होता है। खाया गया शूद्रान्न पेट में रहने पर ही जो द्विजाति मरा है और दुर्मरण से जो मनुष्य मरा है, वह प्रेत होता॥ ६४-६८॥

अयाज्ययाचकश्चैव याज्यानां च विवर्जकः। कत्सितैश् च रतो नित्यं स प्रेतो जायते नरः॥ ६९॥
कृत्वा मद्यपसम्पर्कं मद्यपस्त्रीनिषेवणम्। अज्ञानाद् भक्षयन् मांसं स प्रेतो जायते नरः॥ ७०॥
देवद्रव्यं च ब्रह्मस्वं गुरुद्रव्यं हरेत् तु यः। कन्यां ददाति शुल्केन स प्रेतो जायते नरः॥ ७१॥
मातरं भगिनीं भार्यां स्नुषां दुहितरं तथा। अदृष्टदोषास् त्यजति स प्रेतो जायते नरः॥ ७२॥
न्यासापहर्ता मित्रधुक् परदाररतः सदा। विश्वासघाती कूटश्च स प्रेतो जायते नरः॥ ७३॥
भ्रातृध्रुग् ब्रह्महा गोघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः। कुलमार्गं परित्यज्य ह्यनृतोक्तौ सदा रतः।
हर्ता हेम्नश्च भूमेश्च स प्रेतो जायते नरः॥ ७४॥

याजन करने में अयोग्य व्यक्ति का याजन करने वाला, याजन करने में योग्य व्यक्ति का वर्जन करने वाला, सदाकाल निन्दित जनों के साथ में रमने वाला मनुष्य प्रेत हो जाता है। मदिरा पीने वाले से सम्पर्क करने से और मदिरा पीने वाली स्त्री के साथ सहवास करने से तथा **मांस भक्षण के विधि निषेध के ज्ञान से रहित होकर मांस खाने वाला जो (द्विजोत्तम) मनुष्य है, वह प्रेत हो जाएगा।** जो मनुष्य देवता के धन का, ब्राह्मण के धन का और गुरु के धन का हरण करता है, शुल्क लेकर कन्या देता है, वह मनुष्य प्रेत हो जाता है। जिनका कोई दोष नहीं देखा गया है, वैसी माँ का, बहन का, पत्नी का, पुत्रवधु का और पुत्री का जो त्याग करता है वह प्रेत हो जाता है। जो मनुष्य अपने घर में रखे गए धरोहर को हड़पने वाला, मित्र का द्रोह करने वाला, सदा दूसरे की पत्नी में रमने वाला, विश्वासघात करने वाला और कपटपूर्ण व्यवहार करने वाला है, वह प्रेत हो जाता है। भाई का द्रोह करने वाला, ब्रह्महत्या करने वाला, गोहत्या करने वाला, द्विजाति होकर सुरापान करने वाला, गुरूपत्नी में गमन करने वाला, अपने कुल के मार्ग को छोड़कर सदाकाल झूठ बोलने में रमने वाला, सोना चुराने वाला और दूसरे की भूमि को हड़पने वाला मनुष्य प्रेत हो जाता है॥ ६९-७४॥

☞ मनुस्मृति के अध्याय पञ्चम श्लोक ३२ में मांस भक्षण का विधान बताया गया है। उसमें लिखा गया है "खरीदकर या स्वयं कहीं से लाकर या सौगात की तरह किसी का दिया हुआ मांस देवता तथा पितरों को अर्पित कर खाय तो खाने वाला दोषी नहीं होता।"

भीष्म उवाच-

एवं ब्रुवति वै विप्रे आकाशे दुन्दुभिस्वनः। पुष्पवर्षं च देवैर् मुक्तं द्विजोपरि॥ ७५॥
पञ्च देवविमानानि प्रेतानामागतानि वै। स्वर्गं गता विमानैस्ते दिव्यैः सम्पृच्छ्य तं मुनिम्॥ ७६॥
ज्ञानं विप्रस्य सम्भाषात् पुण्यसङ्कीर्तनेन च। नरः पापविनिर्मुक्तः परं पदमवाप्नुयात्॥ ७७॥

भीष्म ने कहा—जिस समय में ब्राह्मण ऐसा बोल रहे थे उसी समय में आकाश में नगाड़े का शब्द उत्पन्न हुआ और ब्राह्मण के ऊपर देवताओं से छोड़ी गई पुष्पवृष्टि पड़ गई। प्रेतों के लिए पाँच दिव्य विमान आ गए, वे प्रेत उन

मुनि से बिदा लेकर दिव्य विमानों से स्वर्ग गए। **वेदपाठी ब्राह्मण के साथ सम्भाषण करने से ज्ञान पाकर और पुण्य चरित्र का सङ्कीर्तन करके भी मनुष्य पापों से मुक्त होकर परमपद पा सकता है**॥ ७५-७७॥

☛ **मनुष्य ज्ञान से परमपद को प्राप्त करता है।**

सूत उवाच—

इदमाख्यानकं श्रुत्वा कम्पितोऽश्वत्थपत्रवत्। मानुषाणां हितार्थाय गरुडः पृष्टवान् पुनः॥ ७८॥

सूत ने कहा—इस आख्यान को सुनकर पवन से हिलाए गए पीपल के पात की तरह कम्पित गरुड ने मनुष्यों के हित के लिए फिर पूछा॥ ७८॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-२३

गरुड उवाच—

किंकिं कुर्वन्ति वै प्रेताः पिशाचत्वे व्यवस्थिताः। वदन्ति वा कदाचित् किं तद् वदस्व सुरेश्वर॥ १॥

गरुड ने कहा—हे देवताओं के भी ईश्वर, पिशाचत्व में पहुँचे हुए प्रेत क्या क्या करते हैं, किसी समय में क्या कुछ बोलते भी हैं? इस बात को बताइए॥ १॥

श्रीभगवानुवाच—

तेषां स्वरूपं वक्ष्यामि चिह्नं स्वप्नं यथातथम्। क्षुत्पिपासार्दितास्ते वै प्रविशेयुः स्ववेश्मनि॥ २॥
प्रतिष्ठा वायुदेहेषु शयानाँस् तु स्ववंशजान्। तत्र यच्छन्ति लिङ्गानि दर्शयन्ति खगेश्वर॥ ३॥
स्वपुत्रस्वकलत्राणि स्वबन्धुं तत्र गच्छति। हयो गजो वृषो मर्त्यो दृश्यते विकृताननः॥ ४॥
शयानं विपरीतं तु आत्मानं च विपर्ययम्। उत्थितः पश्यति यस्तु तद् विद्यात् प्रेतनिर्मितम्॥ ५॥

श्रीभगवान् ने कहा—उनका स्वरूप, चिह्न और स्वप्न को जैसे का तैसा बताऊँगा। भूख और प्यास से पीड़ित वे पिशाच अपने घर में घुस जाएंगे। उनकी स्थिति वायवीय शरीर में होती है। हे खगेश्वर, वहाँ सो रहे अपने वंशजों को चिह्न देते हैं और स्वप्न दिखाते हैं। वहाँ अपने पुत्र, पत्नी और बन्धु के पास में जाता है। स्वप्न में विकृत मुख वाला घोडा अथवा हाथी अथवा बैल अथवा मनुष्य दिखाई देता है। स्वप्न में अपने को विपरीत रूप में और जागा होने पर उसके उलटे रूप में जो देखता उसको प्रेतकृत जाने॥ २—५॥

स्वप्ने नरो हि निगडैर् बध्यते बहुधा यदि। अन्नं च याचते स्वप्ने कुवेषः पूर्वजो मृतः॥ ६॥
स्वप्ने यो भुज्यमानस्य गृहीत्वाऽन्नं पलायते। आत्मनस्तु परो वाऽपि तृषार्तस्तु जलं पिबेत्॥ ७॥
वृषभारोहणं स्वप्ने वृषभैः सह गच्छति। उत्पत्य गगनं याति तीर्थे याति क्षुधाऽऽतुरः॥ ८॥
स्ववाचा वदते यस्तु गोवृषद्विजवाजिषु। लिङ्गे गजे तथा देवे भूते प्रेते निशाचरे॥ ९॥
स्वप्नमध्ये तु पक्षीन्द्र प्रेतलिङ्गान्यनेकधा। स्वकलत्रं स्वबन्धुं वा स्वसुतं स्वपतिं विभुम्।
विद्यमानं मृतं पश्येत् प्रेतदोषेण निश्चितम्॥ १०॥

यदि मनुष्य स्वप्न में अनेक प्रकार से कड़ियों [जंजीर] से बाँधा जाता है, यदि स्वप्न में बुरे पहनावा से युक्त मरा हुआ कोई पूर्वज अन्न माँगता है, यदि स्वप्न में भोजन करते हुए मनुष्य के अन्न को लेकर कोई भागता है, यदि स्वप्न में अपना अथवा पराया कोई प्यास से आर्त होकर पानी पीता है, यदि कोई स्वप्न में बैल पर सवार होता है अथवा बैलों के साथ में चलता है, अथवा उछलकर आकाश में जाता है अथवा भूख से पीड़ित होकर तीर्थ में जाता है, यदि कोई स्वप्न में गाय, बैल, पक्षी, घोड़ा, शिवलिङ्ग, हाथी, देवता, भूत, प्रेत और निशाचर इनसे

अपनी बोली में बोलता है तो इन सबको प्रेतलिङ्ग जाने। हे पक्षियों में श्रेष्ठ, स्वप्न में विविध प्रकार से प्रेत के चिह्न देखे जाते हैं। मनुष्य प्रेत के दोष से ही जीवित अपनी पत्नी को, अपने बन्धु को अथवा अपने पुत्रको, अपने पति को भी मरा हुआ देखेगा॥ ६—१०॥

याचते यः परं स्वप्ने क्षुत्तृड्भ्य च परिप्लुतः। तीर्थे गत्वा ददेत् पिण्डान् प्रेतदोषैर् न संशयः॥ ११॥
निर्गच्छेद् वा गृहाद् वाऽपि स्वप्ने पुत्रस् तथा पशुः। पिता भ्राता कलत्रं च प्रेतदोषैस् तु पश्यति॥ १२॥
चिह्नान्येतानि पक्षीन्द्र प्रायश्चित्तं निवेदयेत्। कृत्वा स्नानं गृहे तीर्थे श्रीवृक्षे तर्पण जलैः॥ १३॥
कृष्णधान्यानि पूजां च प्रदद्याद् वेदपारगे। होमं कुर्याद् यथाशक्ति सम्पूर्ण वाचयेत् सुधीः॥ १४॥
एतद् धि श्रद्धया यस् तु प्रेतलिङ्गनिदर्शनम्। पठते श्रृणते वाऽपि प्रेतचिह्नं विनश्यति॥ १५॥

स्वप्न में यदि कोई भूख और प्यास से पीड़ित होकर दूसरे माँगता है अथवा तीर्थ में जाकर पिण्ड देता है तो इसको भी प्रेतदोष से ही हुआ जाने, इसमें सन्देह नहीं। स्वप्न में घर से पुत्र अथवा पशु अथवा पिता अथवा भाई अथवा पत्नी कोई निकलेगा, ऐसा स्वप्न भी मनुष्य प्रेत के दोषों से ही देखता है। हे पक्षियों के स्वामिन्, इन प्रेतदोष के चिह्नों को देखकर मनुष्य प्रायश्चित्त के लिए विद्वान् ब्राह्मण को निवेदित करे। ब्राह्मण के उपदेश से घर में अथवा तीर्थ में स्नान करके बेल के वृक्ष में जल से तर्पण करे। वेद में पारङ्गत ब्राह्मण को तिलप्रभृति काले धान्यों का दान दे और पूजा सत्कार भी दे। अपनी शक्ति के अनुसार होम करे और विचारशील मनुष्य ब्राह्मणों में "**कृतं कर्म परिपूर्णमस्तु**" इत्यादि रूप में अपने कर्म की सम्पूर्णता का वाचन कराए। **जो मनुष्य श्रद्धा से इस प्रेतचिह्न का वर्णन करने वाले अध्याय को पढ़ता है अथवा सुनता है उसका प्रेतचिह्नों से सूचित प्रेतदोष नष्ट हो जाता है**॥ ११—१५॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-२४

गरुड उवाच–

नाऽकाले म्रियते कश्चिदिति वेदानुशासनम्। कस्मान् मृत्युमवाप्नोति राजा वा श्रोत्रियोऽपि वा॥ १॥
यदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वमनृतं तद् धि दृश्यते। वेदैरुक्तं तु यद् वाक्यं शतं जीवति मानुषः॥ २॥
जीवन्ति मानुषे लोके सर्वे वर्णा द्विजातयः। अन्त्यजा म्लेच्छजाश् चैव खण्डे भारतसञ्ज्ञके॥ ३॥
न दृश्यते कलौ तच् च कस्माद् देव समादिश। आधानान् मृत्युमाप्नोति बालो वा स्थविरो युवा॥ ४॥
सधनो निर्धनो वाऽपि सुकुमारः कुरूपवान्। अविद्वांश् चैव विद्वांश् च ब्राह्मणस्त्वितरो जनः॥ ५॥
तपोरतो योगशीलो महाज्ञानी च यो नरः। सर्वदानरतः श्रीमान् धर्मात्माऽतुलविक्रमः॥ ६॥
सर्वमेतदशेषेण जायते वसुधातले। कस्मान् मृत्युमवाप्नोति राजा वा श्रोतियोऽपि वा॥ ७॥

गरुड ने कहा—कोई भी अकाल में नहीं मरता है, यह वेद का वस्तुतत्त्वप्रकाशन है। राजा अथवा वेद पढने वाला ब्राह्मण किस कारण से (अकाल में) मृत्यु में प्राप्त होते हैं? पहले ब्रह्माजी ने जो कहा था, वह तो झूठा दिखाई देता है। वेदों से यह वाक्य कहा गया है कि मनुष्य सौ वर्ष तक जीवित रहता है। मनुष्यलोक में भारतनाम के खण्ड में ब्राह्मण और अन्य सभी वर्ण, अन्त्यज (प्रतिलोमज सङ्कर) और म्लेच्छज मनुष्य भी जीवनयात्रा चलाते हैं। हे देव, कलियुग में सौ वर्ष तक मनुष्य जीवित रहने की बात क्यों नहीं दिखाई देती है? बताइए। गर्भाधान के काल से ही बालक अथवा वृद्ध अथवा युवक, धनवान् अथवा निर्धन, सुकुमार सुरूप व्यक्ति, कुरूप व्यक्ति, अविद्वान्, विद्वान्, ब्राह्मण, चाण्डाल, तपस्वी, योगाभ्यासी, जो महाज्ञानी मनुष्य है वह, सभी दानों में रमने वाला धनी, धर्मात्मा,

अद्वितीय पराक्रम वाला इत्यादि जो कोई भी मृत्यु की ओर जाता ही है। यह सब पृथिवीतल में होता रहता है। राजा अथवा वेद पढने वाला ब्राह्मण भी किस कारण से मृत्यु को प्राप्त होते हैं?॥ १—७॥

श्रीभगवानुवाच-

साधुसाधु महाप्रज्ञ यस् त्वं भक्तोऽसि मे प्रियः। श्रूयतां वचनं गुह्यं नानादेशविनाशनम्॥ ८॥
विधातृविहितो मृत्युः शीघ्रमादाय गच्छति। ततो वक्ष्यामि पक्षीन्द्र काश्यपेय महाद्युते॥ ९॥
मानुषः शतजीवीति पुरा वेदेन भाषितम्। विकर्मणः प्रभावेण शीघ्रं चाऽपि विनश्यति॥ १०॥
वेदानभ्यसते नैव कुलाचारं न सेवते। आलस्यात् कर्मणां त्यागो निषिद्धेऽप्यादरः सदा॥ ११॥
यत्र तत्र गृहेऽश्नाति परक्षेत्ररतस्तथा। एतैरन्यैर् महादोषैर् जायते चायुषः क्षयः॥ १२॥
अश्रद्दधानमशुचिं नास्तिकं त्यक्तमङ्गलम्। परद्रोहाऽनृतकरं ब्राह्मणं यममन्दिरम्॥ १३॥

श्रीभगवान् ने कहा—धन्य, धन्य! महाप्रज्ञायुक्त गरुड, क्योंकि तुम मेरे प्रिय भक्त हो, इसलिए तुमसे कथनों की शङ्काओं का विनाश करने वाला मेरा गुह्य वचन सुना जाय। ब्रह्माजी से विहित मृत्यु प्राणियों को शीघ्र ही ले जाता है। इसलिए हे कश्यपपुत्र महातेजस्वी पक्षिश्रेष्ठ, मैं इस विषय में बताऊँगा। पुराकाल में ही वेद ने मनुष्य सौ वर्षतक जीने वाला है ऐसा कहा है, किन्तु किए गए शास्त्रविरूद्ध कर्म के प्रभाव से मनुष्य सौ वर्ष से पहले भी मर जाता है। वेदों का अभ्यास नहीं करता है, अपने कुल के आचार का सेवन नहीं करता है, आलस्य से कर्मों का त्याग किया जाता है, जिस किसी घर में भोजन करता है, दूसरे की पत्नी में रमता है, इन महादोषों से और अन्य इसी प्रकार के महादोषों से भी ब्राह्मण का आयु का क्षय होता है। वेद के प्रति विश्वास से रहित, पवित्रता से विहीन, वेदोक्त पुनर्जन्मादि में आस्था न रखने वाले नास्तिक, मङ्गलाचार से रहित, दूसरे का द्रोह और असत्य बोली-व्यवहार करने वाले ब्राह्मण को यमदूत शीघ्र ही यममन्दिर में पहुँचाते हैं॥ ८—१३॥

अरक्षितारं राजानं नित्यं धर्मविवर्जितम्। क्रूरं व्यसनिनं मूर्खं वेदवादबहिष्कृतम्।
प्रजापीडनकर्तारं राजानं यमशासनम्॥ १४॥
प्रापयन्ति वशं मृत्योस् ततो याति च यातनाम्। स्वकर्माणि परित्यज्य मुख्यवृत्तानि यानि च॥ १५॥
परकर्मरतो नित्यं यमलोकं स गच्छति। शूद्रः करोति यत्किञ्चिद् द्विजशुश्रूषणं विना॥ १६॥
उत्तमाधममध्ये वा यमलोके स पच्यते। स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम्॥ १७॥
यस्मिन् दिने न सेव्यन्ते स वृथा दिवसो नृणाम्। अनित्यमध्रुवं देहमनाधारं रसोद्भवम्॥ १८॥
अन्नोदकमये देहे गुणानेतान् वदाम्यहम्। यत् प्रातः संस्कृतं सायं नूनमन्नं विनश्यति॥ १९॥
तदीयरससम्पुष्टकाये का बत नित्यता। गतं ज्ञात्वा तु पक्षीन्द्र वपुरर्धं स्वकर्मभिः॥ २०॥
नरः पापविनाशाय कुर्वीत परमौषधम्। देहः किमन्नदातुः स्विन् निषेक्तुर् मातुरेव वा॥ २१॥
उभयोर् वा प्रभोर् वापि बलिनोऽग्नेःशुनोऽपि वा। कस्तत्र परमो यज्ञः कृमिविड्भस्मसञ्ज्ञके॥ २२॥

प्रजा के शरीर, धन, धर्म, विद्या, कला इत्यादि की और राष्ट्र की रक्षा न करने वाले, सदा धर्मकार्य से वर्जित, क्रूर, द्यूत-स्त्रीप्रसङ्ग-मद्यपानादि दुष्कार्य में आसक्त, मूर्ख और वेद में प्रतिपादित वर्णाश्रमधर्म और धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-विचार से बहिर्भूत तथा प्रजाओं को करभार, वृत्ति-रोध-विनाश और निष्ठुर वध-बन्धनादि से पीडा देने वाले राजा को भी यमदूत शीघ्र ही यमराज के शासन में पहुँचाते हैं, तब वह मृत्यु के वश में प्राप्त होता है और यातना पाता है। जो मनुष्य अपने-अपने वर्ण-आश्रमादि के कर्मों को और अपने-अपने मुख्य कार्यो को भी छोड़कर सदाकाल दूसरे वर्ण और आश्रमादि के कर्मों में रमता है, वह यमलोक (नरक) में जाता है। ब्राह्मण की सेवा से

सर्वथा विमुख होकर शूद्र जो कुछ भी करता है, उससे वह अपने कर्मों के अनुसार उत्तम, मध्यम और अधम नरकाग्नियों में पकाया जाता है। जिस दिन में स्नान, दान, जप, होम, स्वशाखावेदादि-वेदाध्ययन, देवताओं का पूजन नहीं किए जाते हैं, मनुष्यों का वह दिन व्यर्थ ही बीता हुआ माना जाता है। रस-रक्तादि से उत्पन्न यह मनुष्य का देह अनित्य अस्थिर और निराधार है। अन्न और उदक से बने इस देह में इन गुणों को मैं बताता हूँ। जो सुबह पकाया गया अन्न सायंकाल को अवश्य विकृत होता है तो उसी अन्न के रससे पुष्ट देहमें क्या नित्यता होगी, हे पक्षियों में श्रेष्ठ अपने कर्मों से आधा शरीर गलित जानकर मनुष्य पापों के नाश के लिए आगे औषध करे। देह क्या अन्नदाता का है, अथवा वीर्य देने वाले पिता का है अथवा माँ का है अथवा दोनों का है अथवा स्वामी का है अथवा बलवान् का है अथवा अग्नि का है अथवा कुत्ते का है। कीड़ों के रूप में अथवा विष्ठा के रूप में अथवा भस्म के रूप में संज्ञा पाने को जा रहे शरीर में परम यज्ञ क्या है?॥ १४—२२॥

कर्तव्यः परमो यत्नः पातकस्य विनाशने। अनेकभवसम्भूतं पातकं तु त्रिधा कृतम्॥ २३॥
यदा प्राप्नोति मानुष्यं तदा सर्वं तरत्यपि। सर्वजन्मानि संस्कृत्य विषादी कृतचेतनः॥ २४॥
अवेक्ष्य गर्भवासांश्च कर्मजा गतयस् तथा। मानुषोदरवासी चेत् तदा भवति पातकी॥ २५॥
अण्डजादिषु भूतेषु यत्रयत्र प्रसर्पति। आधयो व्याधयः क्लेशा जरा रूपविपर्ययः॥ २६॥
गर्भवासाद् विनिर्मुक्तस् त्वज्ञानतिमिरावृतः। न जानाति खगश्रेष्ठ बालभावं समाश्रितः॥ २७॥
यौवने तिमिरान्धश्च यः पश्यति स मुक्तिभाक्। आधानान् मृत्युमाप्नोति बालो वा स्थविरो युवा॥ २८॥
सधनो निर्धनश् चैव सुकुमारः कुरूपवान्। अविद्वांश् चैव विद्वांश् च ब्राह्मणस्त्वितरो जनः॥ २९॥
तपोरता योगशीलो महाज्ञानी च यो नरः। महादानरतः श्रीमान् धर्मात्माऽतुलविक्रमः।
विना मानुषदेहं तु सुखं दुःखं न विन्दति॥ ३०॥
प्राकृतैः कर्मपाशैस्तु मृत्युमाप्नोति मानवः। आधानात् पञ्च वर्षाणि स्वल्पपापैर् विपच्यते॥ ३१॥
पञ्चवर्षाधिको भूत्वा महापापैर् विपच्यते। योनिं पूरयते यस्मान् मृतोऽप्यायाति याति च॥ ३२॥
मृतो दानप्रभावेण जीवन् मर्त्यश् चिरं भुवि।

पाप के विनाश के लिए मनुष्य को महान् प्रयास करना चाहिये। अनेक जन्मों से सञ्चित और मन-वचन-शरीर से तीन प्रकार से किया गया है जो पाप है, जब प्राणी मनुष्यजन्म पाता है, तब उसको पार कर सकता है। सब जन्मों का स्मरण करके चेतना पाकर विषादी होकर गर्भवासों को तथा प्राणियों के कर्मों से होने वाली गतियों को देखकर भी मनुष्य मुक्त होने की चेष्टा न करके फिर मनुष्य के गर्भ में बैठने वाला होता है तो वह पातकी है। अण्डजादि प्राणियों में जीव जहाँ जहाँ जाता है वहाँ वहाँ मानसिक शोक-विषादि रोग, ज्वरादि शरीर रोग, अनेक दुःख, वार्धक्य, रोग-वार्धक्यादिकृत रूपपरिवर्तन से सब होते ही हैं। हे पक्षियों में श्रेष्ठ, गर्भवास से निकला और बालकपन में रहा हुआ मनुष्य अज्ञानरूपी अन्धकार से ढके जाने से कुछ भी नहीं जानता है। यौवन में भी मनुष्य तिमिर से अन्ध होता है। ऐसे मनुष्यजीवन में जो मनुष्य वस्तुतत्त्व को देख सकता है, वही मुक्तिभागी हो सकता है। गर्भाधान के काल से ही बालक अथवा वृद्ध अथवा युवक,धनवान् अथवा निर्धन, सुकुमार सुन्दर व्यक्ति, कुरूप व्यक्ति, अविद्वान्, विद्वान्, ब्राह्मण, चाण्डाल, तपस्वी, योगाभ्यासी, जो महाज्ञानी मनुष्य है वह, महादानों को देने में रमने वाला धनी मनुष्य, धर्मात्मा मनुष्य, अद्वितीय पराक्रम से युक्त इत्यादि जो कोई भी मृत्यु की ओर जाता ही है। मनुष्यदेह पाए विना प्राणी सुख का और दुःख का स्पष्ट अनुभव नहीं करता है। मनुष्य प्रकृति से प्राप्त कर्म के पाशों से मृत्यु में प्राप्त होता है। गर्भवास से लेकर पाँच वर्षतक मनुष्य पापकर्म करने पर भी पापों से स्वल्प मात्रा में ही पीड़ित होता है। पाँच वर्षों से अधिक अवस्था का होने पर मनुष्य पापकर्म करने पर किए गए महापापादि

सभी पापों से पीड़ित होता है। क्योंकि अज्ञ मनुष्य बार-बार योनिपूरण करता है इसलिए मृत मनुष्य फिर इस लोकमें आता है और जाता रहता भी है। मृत मनुष्य भी दानों के प्रभाव से इस पृथ्वीलोक में चिरकाल तक जीवित रहता है॥ २३—३२॥

सूत उवाच–

इति कृष्णवचः श्रुत्वा गरुडो वाक्यमब्रवीत्॥ ३३॥

सूत ने कहा—कृष्ण के इस प्रकार के वचन को सुनकर गरुड ने वाक्य बोला॥ ३३॥

गरुड उवाच–

मृते बाले कथं कुर्यात् पिण्डदानादिकाः क्रियाः। गर्भेषु च विपन्नानामाचूडाकरणच् छिशो॥ ३४॥
कथं किं केन दातव्यं मृतान्ते को विधिः स्मृतः। गरुडोक्तमिति श्रुत्वा विष्णुर् वाक्यमथाऽब्रवीत्॥ ३५॥

गरुड ने कहा—बालक मरने पर पिण्डदानादि क्रिया कैसे करें। गर्भ में ही मरने वालों का और चूडाकर्म संस्कार से पहले मरने वाले शिशु का कैसे किससे क्या दिया जाना चाहिए? मृत्यु के बाद में कौन विधि कर्तव्य समझा गया है? गरुड से किए गए ऐसे प्रश्नों को सुनकर तब विष्णु ने वाक्य कहा॥ ३४-३५॥

श्रीविष्णुरुवाच–

यदि गर्भो विपद्येत स्त्रवते वाऽपि योषितः। यावन्मासं स्थितो गर्भस्तावद्दिनमशौचकम्॥ ३६॥
तस्य किञ्चिन् न कर्तव्यमात्मनः श्रेय इच्छता। ततो जाते विपन्ने तु आ चूडाकरणाच् छिशोः॥ ३७॥
दुग्धं भोज्यं यथाशक्ति बालानां च प्रदीयते। आ चूडात् पञ्चवर्षे तु देहदाहो विधीयते॥ ३८॥
दुग्धं तस्य प्रदेयं स्याद् बालानां भोजनं शुभम्। पञ्चवर्षाधिके प्रेते स्वजातिविहितानि च॥ ३९॥
कुर्यात् कर्माणि सर्वाणि चोदकुम्भादिपायसम्। दातव्यं तु खगश्रेष्ठ ऋणसम्बन्धकस्तु सः॥ ४०॥

श्रीविष्णु ने कहा—यदि स्त्रीका गर्भ गिर जाता है अथवा बहता है तो जितने मास तक गर्भ स्त्री में रहा उतने दिन तक अशौच रहता है। उस गिरे और बहे गर्भ के लिए अपने श्रेय चाहने वाले मनुष्य को कुछ भी नहीं करना चाहिए। तब जन्मे हुए शिशु का चूडाकरण होने से पहले मरण होने पर तो अपनी शक्ति के अनुसार दूध और भोज्य पदार्थ बालकों को दिया जाता है। चूडाकर्म से ऊपर पाँच वर्ष तक का बालक मरने पर तो शरीर का दाह (शवदाह) किया जाता है। उस मृतक के लिए बालकों को दूध और मीठा भोजन दिया जाना चाहिए। पाँच वर्ष से अधिक अवस्था का बालक मरने पर अपनी जाति के लिए शास्त्र में विहित सभी और्ध्वदेहिक कर्म करे। हे पक्षियों में श्रेष्ठ उसके लिए जलकुम्भादि और खीर भी देना चाहिए। वह ऋण से सम्बन्ध रखने वाला है, वह पूर्वजन्म का ऋणदाता (उधार देने वाला) है॥ ३६—४०॥

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर् ध्रुवं जन्म मृतस्य च। कर्तव्यं पक्षिशार्दूलं पुनर् देहक्षयाय वै॥ ४१॥
तस्मै यद् रोचते देयमदत्त्वा निर्धने कुले। स्वल्पायुर् निर्धनो भूत्वा रतिभक्तिविवर्जितः॥ ४२॥
पुनर्जन्माऽऽप्नुयान् मर्त्यस् तस्माद् देयं मृते शिशोः। पुराणे गीयते गाथा सर्वथा प्रतिभाति मे॥ ४३॥
मिष्टान्नं भोजनं देयहं दाने शक्तिस्तु दुर्लभा। भोज्ये भोजनशक्तिश् च रतिशक्तिर् वरस्त्रियः॥ ४४॥
विभवे दानशक्तिश् च नाऽल्पस्य तपसः फलम्। दानाद् भोगानवाप्नोति सौख्यं तीर्थस्य सेवनात्।
सुभाषणान् मृतो यस् तु स विद्वान् धर्मवित्तमः॥ ४५॥

अदत्तदानाच्च भवेद् दरिद्रो दरिद्रभावाच्च करोति पापम्।
पापप्रभावान् नरकं प्रयाति पुनर् दरिद्रः पुनरेव पापी॥ ४६॥

जन्मे हुए प्राणी का मृत्यु निश्चित है, मरे हुए प्राणी का पुनर्जन्म भी निश्चित है। हे पक्षियों में श्रेष्ठ, मनुष्य

को फिर देह प्राप्त कराने वाले कर्म के क्षय के लिए प्रयत्न करना चाहिए। मृत व्यक्ति को जो प्रिय वस्तु था उस वस्तु का दान देना चाहिए; न देनेसे मनुष्य धनरहित कुल में छोटा आयु लेकर निर्धन होकर प्रीति और भक्ति से वर्जित बनकर फिर जन्म पाएगा, इसलिए मरने पर शिशु के लिए दान देना चाहिए। पुराण में एक गाथा गाई जाती है, वह मुझे सर्वथा सत्य प्रतीत होती है। मिष्टान्न भोजन का दान देना चाहिए, दान देने की शक्ति दुर्लभ है। भोज्य पदार्थ पदार्थ होने पर भोजन की शक्ति, उत्तम स्त्री वाले के लिए स्त्री सहवास में शक्ति और धन होने पर दान देने की शक्ति भी थोड़ी तपस्या का फल नहीं है, अर्थात् ये तीन शक्तियाँ बड़ी तपस्या से ही मिलती हैं। दान देने से मनुष्य उत्तम भोज्य पदार्थ श्रेष्ठ स्त्री इत्यादि उत्तम भोग्य पदार्थों को पाता है, तीर्थ के सेवन से सुख पाता है, सुभाषण करने वाला होकर जो मरता है, वह दूसरे जन्म में धर्म को अच्छी तरह जानने वाला विद्वान होता है। दान न देने से दरिद्र होता है, दरिद्र भाव प्राप्त होने पर पाप करता है, पाप के प्रभाव से नरक को जाता है, पुनः दरिद्र होता है और पुनः पापी होता है अर्थात् दरिद्रता और पाप के दुश्चक्र में फँसा रहता है॥ ४१—४६ ॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-२५

श्रीविष्णुरुवाच—

अतः परं प्रवक्ष्यामि पुरुषस्त्रीविनिर्णयम्। जीवन् वाऽपि मृतो वाऽपि पञ्चवर्षाऽधिकोऽपि वा॥ १॥
पूर्णे तु पञ्चमे वर्षे पुमांश् चैव प्रतिष्ठितः। सर्वेन्द्रियाणि जानाति रूपाऽरूपविपर्ययौ॥ २॥
पूर्वकर्मविपाकेन प्राणिनां वधबन्धनम्। विप्रादीनन्त्यजान् सर्वान् पापं मारयति ध्रुवम्॥ ३॥
गर्भे नष्टे क्रिया नास्ति दुग्धं देयं मृते शिशौ। परं च पायसं क्षीरं दद्याद् बालविपत्तितः॥ ४॥
एकादश-द्वादशाहं वृषोत्सर्गविधिं विना। महादानविहीनं च कुमारे कृत्यमादिशेत्॥ ५॥

श्रीविष्णु ने कहा—इससे ऊपर मैं पुरुष और स्त्रीका निर्णय बताऊँगा। जीवित अथवा मरा हुआ जो भी हो पाँच वर्षों से अधिक अवस्था वाला जीव पुरुष अथवा स्त्री की चेतना से युक्त होता है। पाँचवा वर्ष पूर्ण होने पर पुरुष अपने रूप में प्रतिष्ठित होता है और सभी इन्द्रियों का ज्ञान से युक्त होता हे; रूप, अरूप और उनका विपर्यय सब जानता है। पूर्वजन्म के कर्म के परिणाम से प्राणियों का वध और बन्धन होता है। ब्राह्मण से लेकर अन्त्यज तक सभी को अवश्य पाप ही मार डालता है। गर्भ नष्ट होने पर कोई और्ध्वदेहिक क्रिया नहीं होती है, अन्नप्राशन से पहले शिशु मरने पर दूध का दान करना चाहिए, उसके बाद चूडाकर्म से रहित बालक के मरण होने पर खीर और दूधका दान करे। चूडाकर्म से युक्त किन्तु उपनयन से रहित कुमार मरने पर व्यवस्थादायक विद्वान् ग्यारहवें दिन के कृत्य, बारहवें दिन के कृत्य और वृषोत्सर्गविधि को छोड़कर महादानविधि से रहित अन्य और्ध्वदेहिक कृत्य करने का आदेश दे॥ १—५ ॥

कुमाराणां च बालानां भोजनं वस्त्रवेष्टनम्। बाले वा तरुणे वृद्धे घटो भवति वै मृते॥ ६॥
भूमौ विनिःक्षिपेद् बालं द्विमासोनंद्विवार्षिकम्। ततः परं खगश्रेष्ठ देहदाहो विधीयते॥ ७॥
शिशुरा दन्तजननाद् बालः स्याद् यावदाशिखम्। कथ्यते सर्वशास्त्रेषु कुमारो मौञ्जिबन्धनात्॥ ८॥
शूद्रादीनां कथं कुर्यात् संशयो मौञ्जिवर्जनात्। गर्भाच् च नवमं हित्वा शिशुरामासषोडशम्॥ ९॥
बालश् चाऽतः परं ज्ञेयं आमासससविंशति। आ पञ्चवर्षात् कौमारः पौगण्डो नवहायनः॥ १०॥
किशोरः षोडशाब्दः स्यात् ततो यौवनमादिशेत्। मृतोऽपि पञ्चमे वर्षे अव्रतः सव्रतोऽपि वा॥ ११॥
पूर्वोक्तमेव कर्तव्यमीहते दशपिण्डकम्। स्वल्पकर्मप्रसङ्गाच्च स्वल्पाद् विषयबन्धनात्॥ १२॥

स्वल्पे वपुषि वासाच् च क्रियांस्वल्पामपीच्छति। यावदुपचयो जन्तुर् यावद्विषयवेष्टितः॥ १३॥
यद्यद् यस्योपजीव्यं स्यात् तत्तद्देयमिहेच्छति। ब्रह्मबीजोद्भवाः पुत्रा देवर्षीणां च वल्लभाः॥ १४॥
यमेन यमदूतैश् च मन्यन्ते निश्चितं खग। बालो वृद्धो युवा वाऽपि घटमिच्छन्ति देहिनः॥ १५॥

मृत कुमारों और बालों के लिए भोज्य पदार्थ और वस्त्रवेष्टन का दान दिया जाता है। बालक अथवा तरुण अथवा वृद्ध मरने पर जलघट का दान होता है। दो महीनों से न्यून दो वर्ष के बालक को मरने पर भूमि में गड्ढा खोदकर रख दे और मिट्टी और पत्थर से ढक दे। हे पक्षियों में श्रेष्ठ, उसके बाद (अधिक अवस्था वाले बालक का) शवदाह किया जाता है। जब तक दाँत नहीं निकलते हैं तब तक जातक शिशु कहा जाता है, उसके बाद जबतक शिखा (चोटी) नहीं रखी जाती है तब तक बाल कहा जाता है, उसके बाद उपनयन (जनेऊ) न होने तक सभी शास्त्रों में कुमार कहा जाता है। शूद्रादि की कैसी व्यवस्था करनी चाहिए। क्योंकि शूद्रादि में जनेऊ न होने से सन्देह होता है। शूद्रादि में गर्भाधान से नौ महीनों को छोड़कर अर्थात् जन्म से सोलह महीनों तक जातक शिशु कहा जाता है, उसके बाद सत्ताईस महीनों तक बाल जानना चाहिए, पाँच वर्ष तक कुमार जानना चाहिए, उसके बाद नौ वर्ष तक पौगण्ड जानना चाहिए, उसके बाद सोलह वर्ष तक किशोर जानना चाहिए, उसके बाद यौवन (युवक) बता देना चाहिए। **पञ्चम वर्ष में मरने पर व्रतबन्ध वाला हो अथवा अव्रतबन्ध वाला हो उसके लिए पूर्वोक्त और्ध्वदेहिक कर्म ही करना चाहिए, वह दश पिण्ड ही चाहता है।** स्वल्प कर्मों के प्रसङ्ग से, स्वल्प विषयबन्धन होने से और स्वल्पप्रमाणक शरीर में वास करने से भी क्रिया को भी स्वल्प रूप में ही इच्छा करता है। जितना उसका उपचय होता है, जितने विषयों से वह वेष्टित होता हे, जो जो वस्तु जिस जिसका उपजीव्य होता है उसी उसीका दान वह इस लोक में चाहता है। ब्राह्मण के बीज से उत्पन्न पुत्र देवर्षियों के भी प्रिय होते हैं। हे पक्षिन्, वे यम से और यमदूतों से भी अवश्य ही सम्मानित होते हैं। बालक हों अथवा वृद्ध हों अथवा युवक हों, परलोक में सभी जीव जलघटकी इच्छा करते हैं॥ ६—१५॥

सुखं दुःखं सदा वेत्ति देही वै सर्वगस्त्विह। परित्यज्य तदात्मानं जीर्णां त्वचमिवोरगः॥ १६॥
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो वायुभूतः क्षुधान्वितः। तस्माद् देयानि दानानि मृते बाले सुनिश्चितम्॥ १७॥
जन्मतः पञ्च वर्षाणि भुङ्क्ते दत्तमसंस्कृतम्। पञ्चवर्षाधिके बाले विपत्तिर् यदि जायते॥ १८॥
वृषोत्सर्गादिकं कर्म सपिण्डीकरणं विना। द्वादशेऽहनि सम्प्राप्ते कुर्याच् छ्राद्धानि षोडश॥ १९॥
पायसेन गुडेनाऽपि पिण्डान् दद्याद् यथाक्रमम्। उदकुम्भप्रदानं च पददानानि यानि च॥ २०॥

इस लोक में सर्वत्र जानेवाला जीव जिस, प्रकार साँप अपनी पुरानी केचुल का परित्याग करता है, उसी प्रकार अपने शरीर का परित्याग करके अँगूठे के तुल्य परिमाण वाला और वायुरूप होकर भूख से पीड़ित होता हुआ सुख-दुःखों का सदाकाल अनुभव करता रहता हे। इस लिए बालक मरने पर भी दान अवश्य देने चाहिए। जन्म से पाँच वर्ष तक की अवस्था में मरा हुआ प्राणी असंस्कृत रूप में दिए गए अन्नका भोग करता है। पाँच वर्ष से अधिक अवस्था वाले बालक का यदि मरण हो जाता है तो सपिण्डीकरण को छोड़कर वृषोत्सर्ग इत्यादि सभी कर्म करने चाहिए। बारहवें दिन प्राप्त होने पर सोलह श्राद्ध करने चाहिए। खीर से अथवा गुड़ से प्रथम मासिक श्राद्ध ऊनमासिक श्राद्ध इत्यादि यथोक्त क्रम से पिण्ड दे। जलघट का दान और जो पददान है, उनका दान भी करे॥ १६—२०॥

भोजनानि द्विजे दद्यान् महादानानि शक्तितः। दीपदानादि यत् किञ्चित् पञ्चवर्षाधिके सदा॥ २१॥
कर्तव्यं च खगश्रेष्ठ व्रतात् प्राक् प्रेततृप्तये। यदा न क्रियते सर्वं मुद्गलत्वं स गच्छति॥ २२॥
व्रतात् प्रागेव देयं तु ततः पितृगणस्य च। स्वाहाकारेण वै कुर्यादेकोद्दिष्टानि षोडश॥ २३॥
ऋजुदर्भैस् तिलैः शुक्लैः प्राचीनावीतिनिश्चितम्। अपसव्यं च कर्तव्यं कृते याति परां गतिम्॥ २४॥

पुनश् चिरायुवो भूत्वा जायते स्वकुले ध्रुवम्। सर्वसौख्यप्रदः पुत्रः पित्रोः प्रीतिविवर्धनः॥ २५॥

ब्राह्मणको भोजन दे, अपनी शक्ति के अनुसार महादान भी दे। हे पक्षियों में श्रेष्ठ, दीपदान इत्यादि जो कुछ भी प्रेतकृत्य हैं, वे सब पाँच वर्ष से अधिक अवस्था में और व्रतबन्ध से पहले मरे हुए प्रेत की तृप्ति के लिए करने चाहिये, यदि वह सब प्रेतकृत्य नहीं किया जाता है तो वह जीव पिशाच हो जाता है। व्रतबन्ध से पहले ही मरने वाले जीव को भी श्राद्ध देना ही चाहिए उसके बाद ही अन्य पितृगण का श्राद्ध हो सकता है। स्वाहाकार मन्त्र से युक्त सोलह एकोद्दिष्ट श्राद्ध, ऋजुकुशों से, धौले तिलों से प्राचीनावीती ही होकर पिण्डादि दाई ओर गिराते हुए करने चाहिए। इस प्रकार सोलह श्राद्ध करने पर प्रेत परमगति में प्राप्त होता है। इस प्रकार और्ध्वदेहिक कृत्य करने से बालक काल में मरे हुए जीव लम्बे आयु लेकर अपने कुल में फिर अवश्य जन्म लेते हैं। पुत्र पिता-माताओं को सभी सौख्य देने वाला और सन्तुष्टि को बढाने वाला होता है॥ २१—२५॥

आकाशमेकं हि यथा चन्द्रादित्यौ यथेकतः। घटादिषु पृथक् सर्वं पश्य रूपं च तत्समम्॥ २६॥
आत्मा तथैव सर्वेषु पुत्रेषु विचरेत् सदा। या यस्य प्रकृतिः पूर्वं शुक्रशोणितसङ्गमे॥ २७॥
तेन ते भावयोगेन पुत्रास् तत्कर्मकारिणः। पितृरूपं समादाय कस्यचिज् जायते सुतः॥ २८॥
पितृतः कोऽपि रूपाढ्यो गुणज्ञो दानतत्परः। सदृशः कोऽपि लोकेऽस्मिन् न भूतो न भविष्यति॥ २९॥
अन्धादन्धो न भवति मूकान् मूको न जायते। बधिराद् बधिरो नैव विद्यावान् विदुषो न हि।
अनुरूपा न दृश्यन्ते मदीयं वचनं शृणु॥ ३०॥

जैसे आकाश एक ही है और जैसे चन्द्र और सूर्य भी एक-एक ही हैं, तथापि घटादियों में आकाश पृथक्-पृथक प्रतीत होता है और जलादि प्रतिबिम्बस्थलों में चन्द्र सूर्य भी बिम्ब से तुल्य रूप में पृथक-पृथक देखे जाते हैं। उसी प्रकार से आत्मा भी सदाकाल सभी पुत्रों में विचरण करेगा। पहले पुरूष के वीर्य और स्त्री के शोणित (डिम्ब) के सङ्गम के अवसर में, जिसकी जो प्रकृति (भाव) होती है, उसी भाव का जन्मने वाला पुत्रों में योग होने से पुत्र उसी भाव के अनुकूल काम करने वाले होते हैं। किसी का पुत्र पिता के रूप को लेकर उत्पन्न होता है। कोई पुत्र पिता से अधिक रूपवान्, गुणज्ञ और दान करने में तत्पर होता है। पूर्णतया पिता से तुल्य तो इस लोक में न कोई हुआ है, न कोई होगा। अन्ध पिता से अन्ध पुत्र नहीं होता है, गूँगे पिता से गूँगा पुत्र नहीं होता है, बहरे पिता से बहरा पुत्र नहीं होता है और विद्वान् पिता से विद्यावान् ही पुत्र भी नहीं होता है। पुत्र पिता के अनुरूप नहीं होते हैं, मेरे वचन को सुनो॥ २६—३०॥

गरुड उवाच—

औरसक्षेत्रजाद्याश्च पुत्रा दशविधाः स्मृताः। सङ्गृहीतासुतो यस् तु दासीपुत्रश्च तेन किम्॥ ३१॥
कांकां गतिमवाप्नोति जातो मृत्युवशं गतः। भवेन न दुहिता यस्य न दौहित्रो न वा सुतः॥ ३२॥
श्राद्धं तस्य कथं कार्यं विधिना केन तद् भवेत्।

गरुड ने कहा— औरस और क्षेत्रज्ञ इत्यादि पुत्र दश प्रकार के समझे गए हैं। विवाहविधि के विना सङ्गृहीता स्त्री में जन्मा हुआ पुत्र, दासी के रूप में रही स्त्री में जन्मा हुआ पुत्र जो होता है, उससे क्या होगा? जन्मा हुआ व्यक्ति मरने पर किस किस गति को प्राप्त करता है, जिसकी पुत्री भी नहीं, पुत्री का पुत्र भी नहीं है और पुत्र भी नहीं है, उसका श्राद्ध कैसे करना चाहिए, वह श्राद्ध किस विधि से होगा॥ ३१-३२१/२॥

श्रीभगवानुवाच—

मुखं दृष्ट्वा तु पुत्रस्य मुच्यते पैतृकादृणात्॥ ३३॥

पौत्रस्य दर्शनाज् जन्तुर् मुच्यते च ऋणत्रयात्। लोकानन्त्यं दिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः॥ ३४॥
अये क्षेत्रोद्भवाद्या ये भुक्तिमात्रप्रदाः सुताः। कुर्वीत पार्वणं श्राद्धमौरसो विधिवत् सुतः॥ ३५॥
कुर्वन्त्यन्ये सुताः श्राद्धमेकोदिष्टं न पार्वणम्। ब्राह्मोढाजस्तून्नयति सङ्गृहीतम् त्वधो नयेत्।
श्राद्धं सांवत्सरं कुर्वञ् जायते नरकाय वै॥ ३६॥

श्रीभगवान् ने कहा—पुत्र का मुँह देखकर पितृऋण से मुक्त हो जाता है। पुत्र के पुत्र को देखकर प्राणी ऋषिऋण-देवऋण-पितृऋण तीनों ऋणों से मुक्त होता है। पुत्र, पुत्र के पुत्र, पुत्र के पुत्र के पुत्र इत्यादि को देखने से मनुष्य को अनन्त शुभ लोकों को प्राप्ति और स्वर्ग की प्राप्ति होती है। अपनी पत्नी में दूसरे द्वारा उत्पादित पुत्र इत्यादि अन्य पुत्र केवल भोग मात्र देने वाले होते हैं। औरस (विधिवत् विवाहित पत्नी में विधिवत् अपने से उत्पादित) पुत्र शास्त्रोक्त विधि से पार्वणश्राद्ध (पितृ-पितामह-प्रतितामहों को पिण्ड दिए जाने वाला श्राद्ध) करे। अन्य प्रकार के पुत्र एकोद्दिष्टश्राद्ध करते हैं, पार्वणश्राद्ध नहीं करते हैं। ब्राह्म-विवाह से विवाहिता पत्नी में उत्पन्न पुत्र पितरों को ऊपर उठाता हे, सङ्गृहीता स्त्री में जन्मा हुआ पुत्र नीचे गिराता है। सांवत्सरिकश्राद्ध करने वाला सङ्गृहीता स्त्री में जन्मा हुआ पुत्र नरक लेजाने के लिए होता है।॥ ३३—३६॥

सर्वदानानि देयानि ह्यन्नदानादृते खग। सङ्गृहीतासुतः कुर्यादेकोद्दिष्टं न पार्वणम्॥ ३७॥
प्रत्यब्दं पितृमातृभ्यां श्राद्धं दत्त्वा न लिप्यते। एकोद्दिष्टं परित्यज्य पार्वणं कुरुते यदि॥ ३८॥
आत्मानं च पितॄंश् चैव स नयेद् यममन्दिरम्। सङ्गृहीतासु ये केचिद् दासीपुत्रादयश् च ये॥ ३९॥
तीर्थे कुर्युः पितृश्राद्धं दानं दद्युर् द्विजन्मने। सङ्गृहीतासुतो भूत्वा पाकं वा यः प्रयच्छति॥ ४०॥
वृथा श्राद्धं विजानीयाच् छूद्रान्नेन यथा द्विजः। न प्रीणयति तच् छ्राद्धं पितामहमुखान् पितॄन्।
एवं ज्ञात्वा खगश्रेष्ठ हीनजातीन् सुतांस् त्यजेत॥ ४१॥
ब्राह्मण्यां ब्राह्मणाज् जातश् चाण्डालादधमः स्मृतः। यस्तु प्रव्रजिताज् जातो ब्राह्मण्यां शूद्रतश्च यः॥ ४३॥
द्वावेतौ विद्धि चाण्डालौ सगोत्राद् यस् तु जायते। स्वर् याति विहितान् पुत्रान् समुत्पाद्य खगेश्वर॥ ४३॥
तैः सुवृत्तेः सुखं प्राप्य कुवृत्तैर् नरकं व्रजेत्। हीनजातिसमुद्भूतैः सुवृत्तैः सुखमेधते॥ ४४॥
कलिकलुषविमुक्तः पूजितः सिद्धसङ्घैरमरचमरमालावीज्यमानोऽप्सरोभिः।
पितृशतमपि बन्धून् पुत्रपौत्रप्रपौत्रानपि नरकनिमग्नानुद्धरेदेक एव॥ ४५॥

सङ्गृहीता स्त्री में जन्मे हुए पुत्र को पितरों के लिए ओदनादि पक्वान्न को छोडकर अन्य दान ब्राह्मणों को देना चाहिए। सङ्गृहीता स्त्री में जन्मा हुआ पुत्र एकोद्दिष्टश्राद्ध करे, पार्वणश्राद्ध न करे। सङ्गृहीता स्त्री में उत्पन्न पुत्र प्रतिवर्ष पिता-माता को श्राद्ध देने से पाप से लिप्त नहीं होता है। वह यदि एकोद्दिष्टश्राद्ध को छोड़कर पार्वणश्राद्ध करता हैतो अपने को और पितरों को भी यमराज के घर में पहुँचाता है। सङ्गृहीता स्त्री में जन्मा हुआ पुत्र होकर भी जो मनुष्य श्राद्ध में ब्राह्मण को ओदनादि पक्वान्न देता है वह श्राद्ध शूद्र के पक्वान्न खाने से ब्राह्मण जैसे व्यर्थ (ब्राह्मणकार्य में अयोग्य) हो जाता है, वैसे ही व्यर्थ हो जाता है। वह श्राद्ध पितामहादि पितरों को तृप्त नहीं करता है। हे पक्षियों में श्रेष्ठ, ऐसी वस्तुस्थिति को जानकर **मनुष्य अपनी जाति से नीच जात के पुत्रों का उत्पादन न करे।** ब्राह्मण से सङ्गृहीता ब्राह्मणी में जन्मा हुआ मनुष्य चाण्डाल से भी नीच समझा गया है। जो मनुष्य सन्यासी से जन्मा है और **शूद्र से ब्राह्मणी में जन्मा है, इन दोनों को चाण्डाल जानो।** स्त्री के पिता के सगोत्र पुरुष से उस स्त्री में जो मनुष्य जन्मा है वह भी चाण्डाल ही होता है। **हे पक्षिराज, शास्त्र में विहित पुत्रों का उत्पादन करके मनुष्य स्वर्ग जाता है। अच्छे चरित्र से युक्त शास्त्रविहित पुत्रों से सुख पाता है, किन्तु दुश्चरित्र उन**

पुत्रों से नरक में जायगा। हीनजाति की स्त्री में उत्पन्न होने पर भी अच्छे चरित्र से युक्त पुत्रों से तो पिता सुखपूर्वक समृद्धि को पाता है। कलि के दोषों से सर्वथा मुक्त एक ही पुरुष भी सिद्धों के समूह से पूजित और अप्सराओं से डुलाए गए देवभोग्य चमरों की पङ्क्ति से वीजित होता हुआ नरक में पड़े हुए सौ पीढ़ियों के पूर्वज पितरों का और पुत्र पौत्र और प्रपौत्र इत्यादि बन्धुओं का भी उद्धार कर सकता है॥ ३७—४५ ॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-२६

गरुड उवाच—

सत्यं ब्रूहि सुरश्रेष्ठ कृपां कृत्वा मयि प्रभो। मृतानां चैव जन्तूनां कदा कुर्यात् सपिण्डनम्॥ १ ॥
सपिण्डत्वे कुतो यान्ति असपिण्डे कुतो गतिः। केनैव सहपिण्डत्वं स्त्रीपुंसोर् वक्तुमर्हसि॥ २ ॥
स्त्रीपुमांसौ सहैकत्वं प्राप्नुतः कथमुत्तमम्। जीवद्भर्तरि नारीणां सपिण्डीकरणं कुतः॥ ३ ॥
भर्तृलोक कथं यान्ति स्वर्गलोकं सुरेश्वर। अग्न्यारोहे कथं श्राद्धं वृषोत्सर्गः कथं भवेत्॥ ४॥
घटदानं कथं कार्यं सपिण्डीकरणे कृते। कथयस्व प्रसादेन हिताय जगतां प्रभो॥ ५ ॥

गरुड ने कहा—हे देवताओं में श्रेष्ठ प्रभो, मुझ में कृपा करके सत्य बताइए, मरे हुए प्राणियों का सपिण्डीकरण कब करे?। सपिण्डीकरण होने पर मरे हुए प्राणी कहाँ जाते हैं और सपिण्डीकरण न होने पर किधर गति होती है? स्त्रीका और पुरुष का किसके साथ सपिण्डीकरण करना चाहिए, यह बताने में आप ही योग्य हैं। स्त्री और पुरुष किस प्रकार साथ में उत्तम एकत्व प्राप्त करते हैं? पति जीवित रहने पर स्त्रियों का सपिण्डीकरण किसके साथ होगा? हे देवताओं के मालिक, स्त्रियाँ पति से प्राप्त लोक को कैसे जाती हैं? कैसे स्वर्गलोक को जाती हैं? स्त्रियों से चिता के अग्नि में आरोहण करने पर श्राद्ध कैसे होगा? वृषोत्सर्ग कैसे होगा? सपिण्डीकरण होनेपर जलघटों का दान कैसे करना चाहिए? हे प्रभो, मुझ से प्रसन्न होकर जगत् के हित के लिए बताइए॥ १—५ ॥

भगवानुवाच—

यथावत् कथयिष्यामि सपिण्डीकरणं खग। वर्षं यावत् खगश्रेष्ठ यदाचरति मानवः॥ ६ ॥
सपिण्डने ततो वृत्ते पितृलोकं स गच्छति। तस्मात् पुत्रेण सपिण्डीकरणं पितुः॥ ७॥
संवत्सरे तु सम्पूर्णे कुर्यात् पिण्डप्रवेशनम्। पिण्डप्रवेशविधिना तस्य नित्यं मृताह्निकम्॥ ८॥
निश्चितं पक्षिशार्दूल वर्षान्ते पिण्डमेलनम्। सहपिण्डे कृते प्रेतस् ततो याति परां गतिम्॥
तन्नाम सम्परित्यज्य ततः पितृगणो भवेत्॥ ९॥
त्रिपक्षे वाऽपि षण्मासे मेलयेत् प्रपितामहैः। ज्ञात्वा वृद्धिविवाहादिस्वगोत्रविहितानि च॥ १०॥

हे पक्षिन्, सपिण्डीकरण को यथार्थ रूप में बताऊँगा। हे पक्षियों में श्रेष्ठ, वर्षपर्यन्त मनुष्य जो और्ध्वदेहिक कर्म करता है, उसके बाद सपिण्डीकरण होने पर वह मृत जीव पितृलोक में जाता है। इसलिए पिता का सपिण्डीकरण पुत्र को करना चाहिए। वैदिक तिथिबद्ध चान्द्रसंवत्सर पूर्ण होने पर प्रेतपिण्ड का पितृपिण्डों में प्रवेशन (सपिण्डन) करे। जिसका पिण्ड प्रवेशन हुआ है उसका मृताहश्राद्ध (क्ष्यातिथिश्राद्ध) सदाकाल पिण्डप्रवेशन के विधि से (पार्वणश्राद्धविधि) से करे। हे पक्षियों में श्रेष्ठ, वर्ष के अन्त में निश्चित रूप में पिण्ड का मेलन (सपिण्डीकरण) करे। सपिण्डीकरण करने पर प्रेत परम गति में जाता है। उस प्रेत नामको छोडकर उसके बाद पितृगण हो जाता है। अपने कुल में विहित कर्तव्य वृद्धिकार्य विवाहादि को जानकर तीन पक्षों में अथवा छः महीनों में भी पितामहादि से प्रेत का सपिण्डकरण करे।॥ ६—१० ॥

विवाहं नैव कुर्वीत मृते च गृहमेधिनि। भिक्षुर् भिक्षां न गृह्णाति यावत् कुर्यात् सपिण्डनम्॥ ११॥
स्वगोत्रेऽप्यशुचितस् तावद् यावत् पिण्डं नमेलयेत्। मेलनात् प्रेतशब्दस्तु निवर्तेत खगेश्वर॥ १२॥
आनन्त्यात् कुलधर्माणां पुंसां चैवाऽऽयुषः क्षयात्। अस्थिरत्वाच् छरीरस्य द्वादशाहः प्रशस्यते॥ १३॥
निरग्निकः साग्निको वा द्वादशाहे सपिण्डयेत्॥ १४॥
द्वादशाहे त्रिपक्षे वा षण्मासे वत्सरेऽपि वा। सपिण्डीकरणं प्रोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥ १५॥

गृहपति मरने पर (उस घर में) (सपिण्डीकरण न होने तक) विवाह न करे। जब तक सपिण्डीकरण नहीं करेगा तब तक (उस घर में) सन्यासी भिक्षा भी नहीं लेता है। जब तक पिण्ड नहीं मिलाएगा, तब तक अपने कुल में भी अशुद्ध ही रहता है। पक्षियों के मालिक, पिण्ड के मेलन से प्रेतशब्द हट जाएगा। कुलधर्मों के प्रकार अनन्त होने से (कलियुग में) मनुष्यों के आयु घट जाने से और सदा ही मनुष्य का शरीर जलबुदबुदवत् अस्थिर (क्षणभङ्गुर) होने से सपिण्डीकरण के लिए बारहवाँ दिन विज्ञों से प्रशंसित है। कर्ता श्रौत अथवा गृह्य अग्नि से रहित हो अथवा सहित हो बारहवें दिन में सपिण्डीकरण करे। तत्त्वदर्शी ऋषियों ने बारहवें दिन में अथवा तीन पक्षों में अथवा छः महीनों में सपिण्डीकरण बताया है॥ ११—१५॥

सपुत्रस्य न कर्तव्यमेकोद्दिष्टं कदाचन। सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यत्रयत्र प्रदीयते॥ १६॥
तत्रतत्र त्रयं कार्यम् [वर्जयित्वा क्षयेऽहनि। पिता पितामहश् चैव तथैव प्रपितामहः॥
एकोद्दिष्टं त्रयाणां स्याद्] अन्यथा पितृघातकः। त्रिभिः कुर्यादशक्तश् च पार्वणं मुनिनोदितम्॥ १७॥
तद्दिनेतद्दिने कुर्यात् पितामहमुखान्यतः। अज्ञानाद् दिनमासानां तस्मात् पार्वणमिष्यते॥ १८॥
अनुत्पन्नशरीरस्य न दानं पितृभिः सह। एतैः षोडशभिः श्राद्धैः प्रेतो मुक्तस् तु जायते॥ १९॥
अपुत्रस्य सपिण्डत्वं नैव कुर्यात् स्त्रियोऽपि वा। यावज्जीवं च सद्भर्त्रा न कुर्यात् सहपिण्डताम्॥ २०॥

पुत्र से युक्त मनुष्य का एकोद्दिष्टश्राद्ध कभी भी नहीं करना चाहिए। सपिण्डीकरण के बाद (क्षयाह को छोड़कर) अन्यत्र जहाँ-जहाँ श्राद्ध दिया जाता है वहाँ-वहाँ तीन पिण्ड ही करने चाहिए, (पिता, पितामह और प्रपितामह इन तीनों के क्षयाहों में एकोद्दिष्टश्राद्ध करना चाहिए), इनके क्षयाहों में एकोद्दिष्टश्राद्ध न करने से कर्ता पितृघातक हो जाएगा। पिता, पितामह और प्रपितामह का क्षयातिथियों में पृथक्-पृथक् एकोद्दिश्राद्ध करने में अशक्त मनुष्य मुनियों से बताए गए पार्वणश्राद्ध को तीन पिण्डों से सम्पन्न करे। इसलिए सम्भव होने पर पितामहादि का श्राद्ध भी उन उनके क्षयाह में करे। पितामहादि के मृत्यु की तिथि का और मास का अज्ञान होने से पिता के ही क्षयाह में उनको भी पिण्ड देने के लिए पिता के क्षयाह में पार्वणश्राद्ध इष्ट होता है। जिसका पितृशरीर उत्पन्न नहीं हुआ है, उसको पितरों के साथ में पिण्ड नहीं दिया जा सकता है। उक्त सोलह श्राद्धों से प्रेत प्रेतत्व से मुक्त होता है (और पितरों से मिलने के लिए योग्य होता है)। पुत्ररहित पुरुष का और स्त्री का भी सपिण्डीकरण नहीं करे। पतियुक्त स्त्री का भी पति जीवित रहने तक सपिण्डीकरण न करे॥ १६—२०॥

ब्राह्मादिषु विवाहेषु या वधूरिह संस्कृता। भर्तृगोत्रेण कर्तव्यास् तस्याः पिण्डोदकक्रियाः॥ २१॥
आसुरादिविवाहेषु या व्यूढा कन्यका भवेत्। तस्यास् तु पितृगोत्रेण कुर्यात् पिण्डोदकक्रियाः॥ २२॥
पितुः पुत्रेण कर्तव्यं सपिण्डीकरणं सदा। पुत्राभावे तु पत्नी स्यात् पत्न्यभावे सहोदरः॥ २३॥
भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा सपिण्डः शिष्य एव वा। सपिण्डनक्रियां कृत्वा कुर्यान् नान्दीमुखं ततः॥ २४॥
ज्येष्ठस्यैव कनिष्ठेन भ्रातृपुत्रेण भार्यया। सपिण्डीकरणं कार्यं पुत्रहीने नरे खग॥ २५॥

जो पत्नी ब्राह्मविवाहादि विवाहों से विवाहित है, उसका पिण्ड-पानी का काम पति के गोत्र से करना चाहिए।

जो कन्या आसुरविवाहादि विवाहों से विवाहित है, उसका पिण्ड–पानी का काम तो उसके पिता के गोत्र से ही करे। पिता का सपिण्डीकरण सदा ही पुत्र को करना चाहिए। पुत्र बालक तथा असंस्कृत होने से सपिण्डन कार्य में अधिकारी पुत्र न होने पर सपिण्डन करने वाली पत्नी होगी, पत्नी भी न होने पर सहोदर भाई सपिण्डन करने वाला होगा। भाई अथवा भाई का पुत्र अथवा कोई सपिण्ड अथवा शिष्य सपिण्डीकरणक्रिया करके नान्दीमुखश्राद्ध करे। हे पक्षिन्, सपिण्डीकरण करने योग्य पुत्र से रहित मनुष्य मरने पर सपिण्डीकरण ज्येष्ठ भाई का कनिष्ठ भाई से अथवा भाई के पुत्र से अथवा पत्नी से किया जाना चाहिए॥ २१—२५ ॥

भ्रातृणामेकजातानामेकश् चेत् पुत्रवान् भवेत्। सर्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत्॥ २६ ॥
सर्वेषां पुत्रहीनानां पत्नी कुर्यात् सपिण्डनम्। ऋत्विजा कारयेद् वाऽपि पुरोहितमथापि वा॥ २७॥
कृतचूडोऽनुपेतश् च पितुः श्राद्धं समाचरेत्। उच्चारयेत् स्वधाकारं न तु वेदाक्षराण्यसौ॥ २८॥
भर्त्रादिभिस् त्रिभिः कार्यं सपिण्डीकरणं स्त्रियः। पितृव्यभ्रातृपुत्रेण सोदरेण कनीयसा॥ २९॥
अर्वाक् संवत्सरात् सन्धौ पूर्णे संवत्सरेऽपि वा। ये सपिण्डीकृताः प्रेतास्तेषां न स्यात् पृथक् क्रिया॥ ३०॥

एक पिता से जन्मे हुए भाइयों में यदि एक पुत्रयुक्त होगा तो उस पुत्र से वे सब पुत्र युक्त होते हैं। यह बात मनु ने कही है। सपिण्डीकरण में समर्थ अधिकारी पुत्र से रहित सभी मनुष्यों का सपिण्डीकरण पत्नी करे, अथवा पत्नी स्वयम् न करके ऋत्विक् से करवाए अथवा पुरोहित को कराए। जिसका चूडाकरण हुआ है, ऐसा पुत्र उपनयन से रहित होने पर भी पिता का श्राद्ध करे, किन्तु वह स्वधाशब्द का ही उच्चारण करे, वेद के अक्षरों का (मन्त्र का) उच्चारण न करे। पितृव्यपुत्र से अथवा भ्रातृपुत्र से अथवा कनिष्ठ सहोदर भाई से स्त्री का सपिण्डीकरण पतिप्रभृति तीन पितरों से किया जाना चाहिए। संवत्सर पूर्ण होने से पहले अथवा प्रथम और द्वितीय संवत्सर के सन्धि में अथवा संवत्सर पूर्ण होने पर भी जो सपिण्डीकृत प्रेत हैं, उनका सपिण्डीकरण के बाद पृथक् क्रिया नहीं होगी॥ २६—३०॥

सपिण्डने कृते वत्स पृथक्त्वं तु विगर्हितम्। यस्तु कुर्यात् पृथक् पिण्डं पितृहा सोऽभिजायते॥ ३१॥
सपिण्डीकरणे वृत्ते पृथक्त्वं नोपपद्यते। पृथक् पिण्डे कृते पश्चात् पुनः कुर्यात् सपिण्डनम्॥ ३२॥
सपिण्डीकरणं कृत्वा एकोद्दिष्टं करोति यः। आत्मानं च तथा प्रेतं स नयेद् यमशासनम्॥ ३३॥
वर्षं यावत् क्रिया कार्या नामगोत्रेण धीमता। घटादि भोजनं नित्यं दीपदानानि यानि च।
सपिण्डीकरणे वृत्ते एकस्यैव तु दापयेत्॥ ३४॥
अन्नं पानीयसहितं सङ्ख्यां कृत्वाऽऽब्दिकस्य च। दातव्यं ब्राह्मणे पक्षिञ् जलपूर्णघटादिकम्॥ ३५॥
पिण्डान्ते तस्य सकला वर्षवृत्तिः स्वशक्तितः। दिव्यदेहो विमानस्थः सुखं याति यमालयम्॥ ३६॥

सपिण्डीकरण हो जाने पर जो फिर पृथक् पिण्ड करेगा वह पितृघाती हो जाता है। सपिण्डीकरण हो चुकने पर फिर पृथक्त्व उपपन्न नहीं होता है। फिर पृथक् पिण्ड दिए जाने पर पुनः सपिण्डीकरण करे। जो मनुष्य सपिण्डीकरण करके फिर एकोद्दिष्ट करता है वह अपने को और प्रेत को भी यम से शासनीय बनाता है। वर्षपर्यन्त ही बुद्धिमान् मनुष्य को नाम और गोत्र से ही क्रिया करनी चाहिए। संवत्सर से पहले सपिण्डीकरण होने पर भी वर्षपर्यन्त जो जलघट और भोज्य अन्न तथा दीपदान दिए जाते हैं, वे तो अकेले प्रेत को ही दिए जाने चाहिए। हे पक्षिन्, वैदिक तिथिबद्ध चान्द्र संवत्सर के दिनों के सङ्ख्या के अनुसार गिनकर पानी से युक्त अन्न और जल से भरे हुए घडे इत्यादि अपनी शक्ति के अनुसार वर्षपर्यन्त के भोज्यादि सम्पूर्ण पदार्थ प्रेतपिण्डों के प्रदान के बाद में (ग्यारहवें अथवा बारहवें दिन में) उस प्रेत के उद्देश्य से ब्राह्मण को देना चाहिए। इससे प्रेत दिव्य देहवाला होकर विमान में बैठकर सुखपूर्वक यमराज के घर में जाता है॥ ३१—३६॥

जीवमाने च पितरि न हि पुत्रे सपिण्डता। स्त्रीणां सपिण्डनं नास्ति तथा भर्तरि जीवति॥ ३७॥
हुताशं या समारूढा चतुर्थेऽह्नि पतिव्रता। तस्या भर्तृदिने कार्यं वृषोत्सर्गादिकं च यत्॥ ३८॥
पुत्रिका पतिगोत्रा स्यादधस्तात् पुत्रजन्मनः। पुत्रोत्पत्तेः परस्तात् सा पितृगोत्रं व्रजेत् पुनः॥ ३९॥
पतिपत्न्योः सदैकत्वं हुताशं याऽधिरोहति। पुत्रेणैव पृथक् श्राद्धं क्षयाख्ये तस्य वासरे॥ ४०॥
अपुत्रो चेन् मृतो स्यातामेकचित्यां समेऽहनि। पृथक् श्राद्धानि कुर्वीत सापिण्ड्य पतिना सह॥ ४१॥
पृथकपृथक् च पिण्डेन वम्पती पतिना सह। न लिप्यते महादोषैरेतत् सत्यं वचो मम॥ ४२॥

पिता जीवित रहने पर यदि पुत्र मरता है तो उस पुत्र का सपिण्डीकरण नहीं होता है, उसी प्रकार पति जीवित रहने पर मरी हुई स्त्रियों का सपिण्डीकरण नहीं होता है। पति के मरण के चौथे दिन में भी जो पतिव्रता स्त्री चिता के अग्नि में चढी है, उसका वृषोत्सर्गादि जो कर्म है, उसको पति के वृषोत्सर्गादि के दिन में ही करना चाहिए। इस कन्या से उत्पन्न प्रथम पुत्र मातामह का पुत्र होगा, ऐसा मानकर जिस कन्या का विवाह होता है, वह कन्या विवाह होने पर पुत्र का जन्म होने से पहले पति के गोत्र से युक्त होती है, पुत्र का जन्म होने के बाद में वह कन्या फिर पितृगोत्र वाली हो जाती है। यदि स्त्री पति मरने पर पति के चिता के अग्नि में चढ़ती है, तो वहाँ पति और पत्नी का सदाकाल एकत्व होता है, [साथ-साथ में और्ध्वदेहिक क्रियाएं होती हैं] उनके क्षयाह में [मृत्यु की एक ही तिथि में] पुत्र से दोनों के लिए अलग-अलग श्राद्ध किया जाना चाहिए। यदि पति और पत्नी पुत्ररहित अवस्था में एक ही दिन में मरे हैं और एक ही चिता में जलाए जाते हैं तो उनका श्राद्ध अलग-अलग करे और स्त्रीका सपिण्डीकरण पति के साथ में करे। पति और पत्नी को अलग-अलग पिण्डदान देकर पत्नी को पति के साथ सपिण्डीकरण करने से कर्ता महादोषों से लिप्त नहीं होता है, यह मेरा सत्य वचन है॥ ३७—४२॥

एकचित्यां समारूढौ दम्पती निधनं गतौ। एकपाकं प्रकुर्वीत पिण्डान दद्यात् पृथक्पृथक्॥ ४३॥
एकादशे वृषोत्सर्गं प्रेतश्राद्धानि षोडश। घटादिपददानानि महादानानि यानि च।
वर्षं यावत् पृथक् कुर्यात् प्रेतस् तृप्तिं व्रजेच् चिरम्॥ ४४॥
एकगोत्रे मृतानां तु स्त्रियाँ वा पुरुषस्य वा। स्थण्डिलं चैकतः कुर्याद् धोमं कुर्यात् पृथक्पृथक्॥ ४५॥
एकादशेऽह्नि यच् छ्राद्धं पृथक् पिण्डाश्च भोजनम्। पाकैकेन पतिस्त्रीणामन्येषां च विगर्हितम्॥ ४६॥
एकेनैव तु पाकेन श्राद्धानि कुरुते सुतः। एकं तु विकिरं कुर्यात् पिण्डान् दद्याद् बहूनपि।
तीर्थे चाऽपरपक्षे वा चन्द्रसूर्यग्रहेऽपि वा॥ ४७॥

मरे हुए पति और पत्नी यदि एक ही चिता में चढे हैं तो पिण्डद्रव्य का पाक एक ही करे और अलग-अलग पिण्ड दे। ग्यारहवें दिन में वृषोत्सर्ग, सोलह मासिकादि प्रेतश्राद्ध, घटादिदान, पददान और महादान भी वर्षदिन पर्यन्त अलग ही करे, ऐसा करने से चिरकाल तक प्रेत तृप्ति प्राप्त करेगा। साथ-साथ मरे हुए एक ही गोत्र के स्त्रियों के अथवा पुरुषों के कृत्य में स्थण्डिल एक ही ओर बनाए और होम अलग अलग करे। ग्यारहवें दिन में जो श्राद्ध होता है, उसमें पति और पत्नी के लिए एक ही पाक से पृथक्-पृथक पिण्डदान और ब्राह्मणभोजन कराना उचित है, अन्य लोग के लिए तो ऐसा एकपाक निन्दित है। यदि पुत्र एक ही पाक से अनेक श्राद्ध करता है तो विकर एक ही करे पिण्ड तो अनेक भी दे; तीर्थ में अथवा अपरपक्ष में अथवा चन्द्रग्रहण में अथवा सूर्यग्रहण में भी ऐसा करे। स्त्री मृत पतिको प्राप्त करके अपने शव (शरीर) को जब जलाती है, तब अग्नि केवल अङ्गों को जलाता है, आत्मा को पीड़ित नहीं करता है॥ ४३—४८॥

नारी भर्तारमासाद्य कुणपं दहते यदा। अग्निर् दहति गात्राणि आत्मानं नैव पीडयेत्॥ ४८॥

दह्यते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा लम्। तथा नारी दहेद् देहं हुताशे ह्यमृतोपमे॥ ४९॥
दिव्यादौ दिव्यदेहस् तु शुद्धो भवति पूरुषः। तप्ततैलेन लोहेन वह्निना नैव दह्यते॥ ५०॥
तथा सा पतिसंयुक्ता दह्यते न कदाचन। अन्तरात्मा मृते तस्मिन् मृतोऽप्येकत्वमागतः॥ ५१॥
भर्तृसङ्गं परित्यज्य अन्यत्र म्रियते यदि। भर्तृलोकं न सा याति यावदाभूतसम्प्लवम्॥ ५२॥

जिस प्रकार अग्नि में जलाए जा रहे धातुओं का केवल मल ही जलता है धातु नहीं, उसी प्रकार स्त्री भी अमृततुल्य पति-चिताग्नि में अपने शरीर को ही जलाती है। दिव्यपरीक्षा के आदि में दोषरहित शुद्ध पुरुष दिव्यदेह से युक्त हो जाता है, अतएव गरम तेल से गरम लोहे से और आग से भी वह नहीं जलाया जाता है। पति से संयुक्त वह स्त्री तो कभी भी नहीं जलती है। मृत होने पर भी स्त्री का अन्तरात्मा मृत पतिके आत्मा में एकत्व में प्राप्त होता है। यदि स्त्री पति का साथ छोड़कर अन्यत्र मरती है तो वह स्त्री महाप्रलयपर्यन्त भर्तृलोक में नहीं जाती है॥ ४९—५२॥

लक्ष्मीयुतान् परित्यज्य मातरं पितरं तथा। मृतं पतिमनुव्रज्य सा चिरं सुखमेधते॥ ५३॥
दिव्यवर्षप्रमाणेन तिस्रः कोट्योऽर्धकोटयः। तावत्कालं वसेत् स्वर्गे नक्षत्रैः सह सर्वदा॥ ५४॥
तदन्ते चरते लोके कुले भवति भोगिनाम्। सा हि लब्धमहाप्रीतिर् भर्त्रा सह पतिव्रता॥ ५५॥
एवं न कुरुते नारी धर्मोढा पतिसङ्गम्। जन्मजन्मनि दुःखार्ता दुःशीलाऽप्रियवादिनी॥ ५६॥
वल्गुली गृहगोधा वा गोधा वा द्विमुखी भवेत्। स्वभर्तारं परित्यज्य परपुंसोऽनुवर्तिनी॥ ५७॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन स्वपतिं स्त्री निषेवते। मनसा कर्मणा वाचा मृतं जीवन्तमेव वा॥ ५८॥
जीवमाने मृते वाऽपि किल्बिषं करुते तु या। सा च वैधव्यमाप्नोति जन्मजन्मनि दुर्भगा॥ ५९॥

धन से युक्त माताको तथा पिता को छोड़कर पति का अनुगमन करके स्त्री चिरकाल तक सुख में बढ़ती है। दिव्य वर्षों के प्रमाण से तीन कोटि और आधा कोटी (साढ़े तीन कोटि) वर्षों का जितना काल होता है उतने काल तक स्वर्ग में नक्षत्रों के साथ सदा रहती है। उस काल के अन्त में फिर मनुष्यलोक में आती है और भोगियों के कुल में जन्म लेती है, और पतिव्रता वह स्त्री पति के साथ महाप्रीति पाकर रहती है। यदि धर्मविवाह में विवाहित स्त्री इस प्रकार पतिसङ्गम नहीं करती है तो वह जन्म-जन्मान्तरों में दुःख से आर्त व्यभिचारिणी और अप्रियवादिनी होती है। अपने पति को छोड़कर परपुरुष की अनुगामिनी होने वाली स्त्री जन्मान्तरों में गीदडी, छिपकली, गोहनी और द्विमुखी सर्पिणी होगी। इसलिए स्त्री जीवित अथवा मृत अपने पतिका मन-वचन कर्म से सभी प्रयत्नों से सेवन करती है। पति जीवित रहने पर अथवा मरने पर भी जो स्त्री पति के प्रति पाप करती है, वह जन्म-जन्मान्तर पर्यन्त पति की अप्रिय होती है और विधवा होती है॥ ५३—५९॥

यद् देवेभ्यो यत् पितृभ्यः श्रद्धयैव प्रदीयते। तत्फलं भर्तृपूजातः कुर्याद् भर्त्रर्चनं ततः॥ ६०॥
एवं कृते खगश्रेष्ठ भर्तृलोके चिरं वसेत्। यावदादित्यचन्द्रौ च तावद् देवसमा दिवि॥ ६१॥
पुनश् चिरायुषौ भूत्वा जायेते विपुले कुले। पतिव्रता तु सा नारी भर्तृदुःख न विन्दति॥ ६२॥
सर्वमेतद् धि कथितं मया तव खगेश्वर। विशेषं कथयिष्यामि मृतस्यैव सुखप्रदम्॥ ६३॥
द्वादशाहे कृतं सर्वं वर्षं यावत् सपिण्डनम्। पुनः कुर्यात् सदा नित्यं घटान्नं प्रतिमासिकम्॥ ६४॥
कृतस्य करणं नास्ति प्रेतकार्यादृते खग। यः करोति नरः कश्चित् कृतं पूर्वं विनश्यति॥ ६५॥
मृतस्यैव पुनः कुर्यात् प्रेतोऽक्षय्यमवाप्नुयात्। प्रतिमासं घटा देया सोढना जलपूरिताः॥ ६६॥
अर्वाक् च वृद्धेः करणाच् च तार्क्ष्य सपिण्डनं यः कुरुते हि पुत्रः।

तथापि मासं प्रति पिण्डमेकमन्नं च कुम्भं सजलं च दद्यात्॥ ६७॥

जो देवताओं को श्रद्धापूर्वक दिया जाता है और जो पितरों को श्रद्धापूर्वक दिया जाता है, उसका जैसा जितना फल होता है वैसा और उतना फल स्त्री को पति की सेवा से ही प्राप्त होता है, इसलिए स्त्री पतिकी सेवा करे। हे पक्षियों में श्रेष्ठ, ऐसा करने पर स्त्री चिरकाल तक पतिलोक में रहेगी और जबतक सूर्य और चन्द्र रहते हैं, तब तक देवतातुल्य होकर स्वर्ग में रहेगी। फिर पति-पत्नी दोनों ही चिरायु होकर महान् कुल में जन्म लेते हैं, पतिव्रता वह स्त्री कभी भी पतिवियोग नहीं पाती है। हे पक्षियों के मालिक, यह सब मैं ने तुम को बताया, मृत व्यक्ति के लिए सुखदायी विशेष कार्य बताऊँगा बारहवें दिन में ही वर्षपर्यन्त कर्तव्य सभी कर्म करके सपिण्डीकरण किए जाने पर भी प्रतिदिन और प्रतिमास जलघटदान और अन्नदान सदा करे। हे पक्षिन्, प्रेतकार्य को छोड़कर अन्य कार्य एक वार किए जाने पर फिर नहीं किए जाते हैं, जो कोई एक बार किए गए कार्य को फिर करता है तो उसका पहले किया गया वह कार्य नष्ट होता है। मृतक के लिए तो एक बार किया गया कार्य भी फिर करे, उससे प्रेत अक्षय फल पाता है। इसलिए प्रतिमास ओदन से युक्त जलपूर्ण घट फिर भी देने ही चाहिए। हे गरुड, विवाहादि वृद्धि कार्य के कारण से संवत्सर पूर्ण होने से पहले ही जो पुत्र सपिण्डन करता है, उस अवस्था में भी वह प्रत्येक मास में एक पिण्ड और अन्न तथा जलसहित घट भी दे॥ ६०—६७॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-२७

तार्क्ष्य उवाच-

कथं प्रेता वसन्त्यत्र कीदृग्रूपा भवति ते। महाप्रेताः पिशाचाश् च कैःकैः कर्मफलैर् विभो।
सर्वेषामनुकम्पार्थं ब्रूहि मे मधुसूदन॥ १॥
प्रतत्वान् मुच्यते येन दानेन च शुभेन च। तन् मे कथय देवेश मम चेदिच्छसि प्रियम्॥ २॥

गरुड ने कहा— इस लोक में प्रेत कैसे वास करते हैं? वे कैसे रूप वाले होते हैं? हे व्यापक भगवन्, कैसे-कैसे कर्मों के फल से महाप्रेत और पिशाच होते हैं? हे मधुदैत्य को नाश करने वाले, सभी प्राणियों के प्रति अनुकम्पा करके यह बात मुझको बताइए। हे देवों के मालिक, आप यदि मेरा प्रिय चाहते हैं तो जिस दानसे अथवा शुभ कर्म से प्रेतत्व से प्राणी मुक्त होता है उसको मुझे बताइए॥ १-२॥

श्रीकृष्ण उवाच-

साधु पृष्टं त्वया तार्क्ष्य मानुषाणां हिताय वै। शृणु चाऽवहितो भूत्वा यद् वच्मि प्रेतलक्षणम्॥ ३॥
गुह्याद् गुह्यतरं ह्येतन् नाऽऽख्येयं यस्यकस्यचित्। भक्तस् त्वं हि महाबाहो तेन ते कथयाम्यहम्॥ ४॥
पुरा त्रेतायुगे तात राजाऽऽसीद् बभ्रुवाहनः। महोदयपुरे रम्ये धर्मनिष्ठो महाबलः॥ ५॥
यज्वा दानपतिः श्रीमान् ब्रह्मण्यः साधुसम्मतः। शीलाचारगुणोपेतो दयादाक्षिण्यसंयुतः॥ ६॥
प्रजाः पालयते नित्यं पुत्रानिव महाबलः। क्षत्रधर्मरतो नित्यं स दण्ड्यान् दण्डयन् नृपः॥ ७॥
स कदाचित् महाबाहुः ससैन्यो मृगयां गतः। वनं विवेश गहनं नानावृक्षसमन्वितम्॥ ८॥
शार्दूलशतसङ्घुष्टं नानापक्षिनिनादितम्। वनमध्ये तदा राजा मृगं दूरादपश्यत॥ ९॥

श्रीकृष्ण ने कहा—हे गरुड, तुमने मनुष्यों के हित के लिए ठीक पूछा है, मैं जो प्रेतलक्षण बताता हूँ उसको तुम सावधान होकर सुनो। यह गोप्य वस्तु से भी अधिक गोप्य है, यह जिस किसी को सुनाने में योग्य नहीं है, हे महाबाहु वाले गरुड, तुम मेरे भक्त हो, इसलिए में तुमको बताता हूँ। हे वत्स, पुराकाल में त्रेतायुग में रमणीय

महोदयपुर में धर्मपरायण और अत्यन्त बलवान्, यज्ञ करने वाला, दानों का कर्ता, धनवान्, वेदका और ब्राह्मणका हितकारी, साधु पुरुषों का सम्मत; शील, आचार तथा अन्य गुणों से युक्त; दया और मिलनसारपन से सहित बभ्रुवाहन नामका राजा था। बड़ी सेना से युक्त, क्षत्रिय के धर्मका पालन करने में नित्य रमने वाला वह राजा दण्ड देने योग्य जनको दण्ड देता हुआ सदाकाल प्रजाका पुत्रों की तरह पालन करता था। बड़े बड़े भुजाओं से युक्त वह राजा किसी समय में सेना से युक्त होकर शिकार करने के लिए गया था। उस समय में वह अनेक वृक्षों से युक्त, सैकड़ों बाघों से सेवित, अनेक पक्षियों के शब्दों से पूर्ण गहन वन में प्रविष्ट हुआ। तब राजा ने वन में एक मृग को दूर से देखा। ॥ ३—९ ॥

तेन विद्धो मृगोऽतीव बाणेन सुदृढेन च। बाणमादाय तं तस्य स वनेऽदर्शनं ययौ॥ १०॥
कक्षे तच्छोणितस्त्रावात् स राजाऽनुजगाम तम्। ततो मृगप्रसङ्गेन वनमन्यद् विवेश सः॥ ११॥
क्षुत्क्षामकण्ठो नृपतिः श्रमसन्तापमूर्च्छितः। जलस्थानं समासाद्य साऽश्व एवाऽवगाहत॥ १२॥
पीत्वा तदुदकं शीतं पद्मगन्धाधिवासितम्। तत उत्तीर्य सलिलाद् विमलाद् बभ्रुवाहनः॥ १३॥
न्यग्रोधवृक्षमासाद्य शीतच्छायं मनोहरम्। महाविटपिनं हृद्यं पक्षिसङ्घातनादितम्॥ १४॥
वनस्य तस्य सर्वस्य केतुभूतमिवोच्छ्रितम्। तं महातरुमासाद्य निषसाद महीपतिः॥ १५॥

उसने अत्यन्त दृढ बाण से उस मृग को विद्ध किया। उसके बाण को लेकर ही वह मृग वन में भागकर अदृश्य हो गया। उस राजा ने झाडी में बहे हुए उस मृग के रक्त के चिह्न से उस मृग का अनुगमन किया। तब वह राजा मृग का अनुसरण करता हुआ दूसरे वन में घुसा। भूख से क्षीण हुए कण्ठ से युक्त और थकान तथा सन्ताप में मूर्छित वह राजा वहाँ एक जलाशय में पहुँचकर घोडे के साथ ही जल में प्रविष्ट हुआ कमल के सुगन्ध से वासित उस जलाशय का जल पीकर उस विमल जल से निकलकर राजा बभ्रुवाहन एक शीतल छाया से युक्त रमणीय वटवृक्ष की ओर जाकर उस बड़ी बड़ी शाखाओं से युक्त, हृदयप्रिय पक्षियों के शब्दों से पूर्ण, उस सम्पूर्ण वन के ध्वज जैसे खड़े उस महावृक्ष के मूल में पहुँचकर बैठा॥ १०—१५॥

अथ प्रेतं ददर्शाऽसौ क्षुत्तृषाव्याकुलेन्द्रियम्। उत्कचं मलिनं रूक्षं निर्मांसं भीमदर्शनम्॥ १६॥
स्नायुबद्धास्थिचरणं धावमानमितस्ततः। अन्यैश् च बहुभिः प्रेतैः समन्तात् परिवारितम्॥ १७॥
तं दृष्ट्वा विकृतं घोरं विस्मितो बभ्रुवाहनः। प्रेतोऽपि दृष्ट्वा तां घोरामटवीमागतं नृपम्॥ १८॥
तदा हृष्टमना भूत्वा तस्याऽन्तिकमुपागतः। अब्रवीत् स तदा तार्क्ष्य प्रेतराजो नृपं वचः॥ १९॥
प्रेतभावो मया त्यक्तः प्राप्तोऽस्मि परमां गतिम्। त्वत्संयोगान् महाबाहो नास्ति धन्यतरो मम॥ २०॥

तब उस राजा ने भूख और प्यास से व्याकुल इन्द्रियों से युक्त, खड़े केशों से सहित, मलिन, रूखे, मांसपेशियों से रहित, डरावने दृश्य वाले, स्नायुओं से बंधे हुए हड्डियों के पैरों से युक्त, इधर-उधर दौड रहे और अन्य अनेक प्रेतों से सभी ओर से घिरे हुए प्रेतको देखा। उस विकृत भयङ्कर प्रेत को देखकर बभ्रुवाहन चकित हो गया। प्रेत भी उस भयङ्कर वन में आए हुए राजा को देखकर प्रसन्नमना, होकर उस राजा के समीप में आया। हे गरुड, उस समय में उस प्रेतों के राजा ने बभ्रुवाहन को यह वचन कहा। हे बड़ी-बड़ी भुजाओं से युक्त महाराज, आप के साथ हुए इस संयोग से मैंने प्रेतभाव छोड दिया, मैं परमगति में प्राप्त हुआ, मुझसे अधिक धन्य कोई नहीं है॥ १६—२०॥

नृपतिरुवाच—

कृष्णवर्णः करालास्यस् त्वं प्रेत इव लक्ष्यसे। कथयस्व मम प्रीत्या यथैवं चाऽसि तत्त्वतः॥ २१॥
तथा पृष्टः स वै राज्ञा प्रोवाच सकलं स्वकम्॥ २२॥

राजा ने कहा—काले वर्ण से युक्त, ऊँचे-ऊँचे दाँतों से युक्त मुख वाला तुम प्रेत जैसा लगते हो। मेरे प्रेम से वस्तुतः तुम जैसे हो वैसा कहो। राजा ने वैसा पूछे गए उस प्रेत ने अपना सभी वृतान्त बताया॥ २१-२२ ॥

प्रेत उवाच—

कथयामि नृपश्रेष्ठ सर्वमेवाऽऽदितस्तव। प्रेतत्वे कारणं श्रुत्वा दया कर्तुं ममाऽर्हसि॥ २३ ॥
वैदिशं नाम नगरं सर्वसम्पत्समन्वितम्। नानाजनपदाकीर्णं नानारत्नसमाकुलम्।
नानापुण्यसमायुक्तं नानावृक्षसमाकुलम्॥ २४ ॥
तत्राऽहं न्यवसं भूयो देवार्चनरतः सदा। वैश्यो जात्या सुदेवोऽहं नाम्ना विदितमस्तु ते॥ २५ ॥
हव्येन तर्पिता देवाः कव्येन पितरस् तथा। विविधैर् दानयोगैश् च विप्राः सन्तर्पिता मया॥ २६ ॥
आवाहाश् च विवाहाश् च मया वै सुनिवेशिताः। दीनानाथविशिष्टेभ्यो मया दत्तमनेकधा॥ २७ ॥
तत् सर्वं विफलं तात मम दैवादुपागतम्। यथा मे निष्फलं जातं सुकृतं तद् वदामि ते॥ २८ ॥
न मेऽस्ति सन्ततिस् तात न सुहृन् न च बान्धवः। न च मित्रं हि मे तादृग् यः कुर्यादौर्ध्वदेहिकम्॥ २९ ॥

प्रेत ने कहा—हे राजाओं में श्रेष्ठ, प्रारम्भ से सभी बातें आप को बताता हूँ। प्रेतत्व के प्राप्ति में कारण को सुनकर मेरे ऊपर आप दया करने में योग्य हैं। सभी सम्पत्तियों से युक्त, अनेक पुण्य कर्मों से युक्त तथा अनेक वृक्षों से परिपूर्ण वैदिश नाम से प्रसिद्ध नगर है। मैं उस नगर में सदाकाल बार-बार देवताओं की पूजा में रमता हुआ निवास करता था। मैं जाति का वैश्य और नाम से सुदेव हूँ, यह आप को विदित हो। मुझसे हवियों से देवता, पिण्डादि से पितर तथा विभिन्न प्रकार के दानों के संयोजनों से ब्राह्मण तृप्त किए गए थे। मुझसे पाणिग्रहण और विवाह कराकर घरद्वार जमा दिया गया था। मुझसे दीन, अनाथ और विद्यागुणशीलों से विशिष्ट जनों को अनेक प्रकार के दान भी दिए गए थे। हे मान्यवर, मेरा वह सब धर्मकार्य दैवगति से विफल हुआ। मेरा वह सब धर्म जैसे निष्फल हुआ वह सब मैं आप को बताता हूँ। हे मान्यवर, मेरी सन्तति नहीं है, हितैषी भी नहीं है, कोई बान्धव भी नहीं है। मेरा वैसा कोई मित्र भी नहीं है, जो मेरे लिए और्ध्वदेहिक कर्म करे॥ २३—२९ ॥

प्रेतत्वं सुस्थिरं तेन मम जातं नृपोत्तम। एकादशं त्रिपक्षं च षाण्मासिकमथाब्दिकम्॥
प्रतिमास्यानि चाऽन्यानि एवं श्राद्धानि षोडश॥ ३० ॥
यस्यैतानि न दीयन्ते प्रेतश्राद्धानि भूपते। प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि॥ ३१ ॥
एवं ज्ञात्वा महाराज प्रेतत्वादुद्धरस्व माम्। वर्णानां चाऽपि सर्वेषां राजा बन्धुरिहोच्यते॥ ३२ ॥
तन् मां तारय राजेन्द्र मणिरत्नं ददामि ते। यथा मम शुभावाप्तिर् भवेन् नृपवरोत्तम॥ ३३ ॥
तथा कार्यं महाबाहो कृपा यदि ममोपरि। आत्मनश् च कुरु क्षिप्रं सर्वमेवौर्ध्वदैहिकम्॥ ३४॥

हे राजाओं में उत्तम, उस कारण से मेरा प्रेतत्व सुस्थिर हुआ। एकादशाहश्राद्ध, त्रिपक्षश्राद्ध, ऊनषाण्मासिकश्राद्ध, ऊनाब्दिकश्राद्ध और अन्य बारह महीनों के मासिकश्राद्ध, इस प्रकार सोलह श्राद्ध होते हैं। हे राजन्, जिसके लिए ये प्रेतश्राद्ध नहीं दिए जाते हैं, अन्य सैकड़ों श्राद्ध देने पर भी उसका प्रेतत्व स्थिर होता है। हे महाराज, ऐसी बात को जानकर आप मुझको प्रेतत्व से उद्धृत करें। राजा इस लोक में सभी वर्णों का बन्धु कहा जाता है। हे राजाओं में श्रेष्ठ, इस कारण से आप मुझको तारिए, मैं आपको उत्तम मणि देता हूँ। हे बड़ी-बड़ी भुजाओं से युक्त श्रेष्ठ राजाओं से भी श्रेष्ठ, यदि मेरे ऊपर कृपा करना है तो जैसे मुझको शुभफल प्राप्त होता है वैसा कार्य आपको करना चाहिए। आप अपना भी सम्पूर्ण और्ध्वदेहिक कृत्य (प्रेतकृत्य) शीघ्र ही कीजिए॥ ३०—३४ ॥

नृपतिरुवाच—

कथं प्रेता भवन्तीह कृतैरप्यौर्ध्वदैहिकैः। पिशाचाश् च भवन्तीह कर्मभिः कैश् च तद् वद॥ ३५॥

राजा ने कहा—और्ध्वदेहिक कर्म करने पर भी इस लोक में प्राणी कैसे प्रेत होते हैं? किन कर्मों से प्राणी इस लोक में पिशाच होते हैं? उस बातको बताओ॥ ३५॥

प्रेत उवाच—

देवद्रव्यं च ब्रह्मस्वं स्त्रीबालधनसञ्चयम्। ये हरन्ति नृपश्रेष्ठ प्रेतयोनिं व्रजन्ति ते॥ ३६॥
तपसीं च सगोत्रां च अगम्यां ये भजन्ति हि। भवन्ति ते महाप्रेता अम्बुजानि हरन्ति ये॥ ३७॥
प्रवालवज्रहर्तारो ये च वस्त्राऽपहारकाः। तथा हिरण्यहर्तारः संयुगेऽसन्मुखागताः॥ ३८॥
कृतघ्ना नास्तिका रौद्रास् तथा साहसिका नराः। पञ्चयज्ञविनिर्मुक्ता महादानरताश्च ये॥ ३९॥
स्वामिद्रोहकरा मित्रब्रह्मद्रोहकराश् च ये। तीर्थपापकरा राजञ् जायन्ते प्रेतयोनयः।
एवमाद्या महाराज जायन्ते प्रेतयोनयः॥ ४०॥

प्रेत ने कहा—हे राजाओं में श्रेष्ठ, देवता के द्रव्य का, ब्राह्मण के द्रव्य का, स्त्रियों के और अनाथ बालकों के धन के सञ्चय का जो लोग हरण करते हैं, वे लोग प्रेतयोनि में जाते हैं। वानप्रस्थाश्रम में स्थित तपस्विनी स्त्री में, सगोत्रा स्त्री में और अन्य अगम्या स्त्री में जो गमन करते हैं वे महाप्रेत होते हैं; हे राजन्, जो शङ्खों का हरण करते हैं, जो मूँगे का और हीरे का हरण करते हैं, जो वस्त्रों का अपहरण करने वाले और सोने का हरण करने वाले हैं, जो युद्ध में पराङ्मुख होकर भाग जाते हैं, जो किए गए उपकार को भूलकर उसका विरुद्ध व्यवहार करने वाले, वेद को और वेदोक्त पारलौकिक फल को न मानने वाले, क्रोधी, दुष्कार्य में साहस करने वाले मनुष्य हैं, जो ब्रह्मयज्ञ-देवयज्ञ-भूतयज्ञ-पितृयज्ञ-मनुष्ययज्ञों से रहित, सुवर्णतुलादानादि महादानों के द्रव्यों का प्रतिग्रह करने में रमने वाले हैं, जो स्वामी का द्रोह करने वाले हैं, जो मित्र और ब्राह्मण का द्रोह करने वाले हैं, जो तीर्थों में पाप करने वाले हैं, वे प्रेतयोनि में जाने वाले होते हैं। हे महाराज, ऐसे ही प्रकार के लोग प्रेतयोनि में जाने वाले होते हैं॥ ३६—४०॥

राजोवाच—

कथं मुक्ता भवन्तीह प्रेतत्वात् त्वं च तेऽपि च। कथं चाऽपि मया कार्यमौर्ध्वदैहिकमात्मनः।
विधिना केन तत् कार्यं सर्वमेतद् वदस्व मे॥ ४१॥

राजा ने कहा—तुम और उक्त प्रकार के अन्य प्रेत भी प्रेतयोनि से कैसे मुक्त होते हैं? मुझको अपना और्ध्वदेहिक कार्य कैसे करना चाहिए? उस कार्य को कैसे सम्पन्न करना चाहिए? यह सब मुझको बताओ॥ ४१॥

प्रेत उवाच—

शृणु राजेन्द्र सङ्क्षेपाद् विधिं नारायणात्मकम्। सच्छास्त्रश्रवणं विष्णोः पूजा सज्जनसङ्गतिः॥ ४२॥
प्रेतयोनिविनाशाय भवन्तीति मया श्रुतम्। अतो वक्ष्यामि ते विष्णुपूजां प्रेतत्वनाशिनीम्॥ ४३॥
सुवर्णद्वयमाहृत्य मूर्तिं भूप प्रकल्पयेत्। नारायणस्य देवस्य सर्वाभरणभूषिताम्॥ ४४॥
पीतवस्त्रयुगाच्छन्नां चन्दनागुरुचर्चिताम्। स्नापयेद् विविधैस् तोयैरधिवास्य यजेत् ततः॥ ४५॥
पूर्वे तु श्रीधरं देवं दक्षिणे मधुसूदनम्। पश्चिमे वामनं देवमुत्तरे च गदाधरम्॥ ४६॥
मध्ये पितामहं पूज्य तथा देवं महेश्वरम्। पूजयेत् च विधानेन गन्धपुष्पादिभिः पृथक्॥ ४७॥
ततः प्रदक्षिणीकृत्य अग्नौ सन्तर्प्य देवताः। घृतेन दध्ना क्षीरेण विश्वान् देवांस् तथा नृप॥ ४८॥

प्रेत ने कहा—हे राजाओं में श्रेष्ठ, सङ्क्षेप से नारायणबलि के विधि को सुनिए। वेदादि उत्तम शास्त्रों के ग्रन्थों का श्रवण, विष्णु की पूजा, सज्जनों का सङ्गत, ये कार्य प्रेतयोनि के निराकरण के लिए समर्थ होते हैं, यह बात मैं ने मुनियों से सुनी है। इस लिए मैं आप को प्रेतत्व का नाश करने वाली **विष्णुपूजा** का विधि बताऊँगा। हे राजन् दो सुवर्णों को लेकर नारायणदेव की सम्पूर्ण आभूषणों से भूषित मूर्ति बनाए। उस मूर्ति को दो पीले वस्त्रों को पहनाकर श्रीखण्डचन्दन और अगरु से अनुलिप्त करके विभिन्न प्रकार के जलों से स्नान कराकर अधिवास कराके उसके बाद यजन करे। पूर्व दिशा में श्रीधर देव की, दक्षिण दिशा में मधुसूदन की, पश्चिम दिशा में वामन देव की, उत्तर दिशा में गदाधर की और मध्य में **ब्रह्माजी की पूजा** करके **महेश्वर देव** का भी शास्त्रविधान के अनुसार चन्दन और फूल इत्यादि से अलग-अलग पूजा करे। हे राजन्, तब प्रदक्षिणा करके अग्नि में देवताओं को तृप्त भी करके घी, दही और दूध से विश्वेदेवों को भी सन्तृप्त करे॥ ४२—४८॥

ततः स्नातो विनीतात्मा यजमानः समाहितः। नारायणाग्रे विधिवत् स्वक्रियामौर्ध्वदैहिकीम्॥ ४९॥
आभेत विनीतात्मा क्रोधलोभविवर्जितः। श्राद्धानि कुर्यात् सर्वाणि वृषस्योत्सर्जनं तथा॥ ५०॥
त्रयोदशानां विप्राणां वस्त्रच्छत्राण्युपानहौ। अङ्गुलीयकयुक्तानि भाजनासनभोजनैः॥ ५१॥
सान्नाश् च सोदका देया घटाः प्रेतहिताय वै। शय्यादानमथो दत्त्वा घटं प्रेतस्य निर्वपेत्॥ ५२॥
नारायणेति सन्नाम सम्पुटस्थं समर्चयेत्। एवं कृत्वाऽथ विधिवत् सदा शुभफलं लभेत्॥ ५३॥

उसके बाद नहाया हुआ, दान्त इन्द्रियों से युक्त तथा एकाग्रचित्त वाला यजमान नारायण के आगे शास्त्रोक्त विधि से अपनी और्ध्वदेविक क्रिया का आरम्भ करे। शान्त मन से युक्त और क्रोध से तथा लोभ से रहित होकर सभी श्राद्धों को और वृषोत्सर्गकर्म को सम्पन्न करे। तेरह ब्राह्मणों को अँगूठी से युक्त तथा भाजन, आसन और भोजन से सहित वस्त्र, छत्र और जूता दे। प्रेत के हित के लिए अन्न से युक्त जलपूर्ण घड़े भी देने चाहिए। उसके बाद शय्यादान देकर प्रेतघट का दान भी दे। नारायण इस सत् नाम का सम्पुट में रखकर अच्छी तरह पूजा करे। शास्त्रोक्त विधि से इस प्रकार पूजा करके सदैव शुभ फल प्राप्त होगा॥ ४९—५३॥

राजोवाच—

कथं प्रेतघटं कुर्याद् दद्यात् केन विधानतः। ब्रूहि सर्वानुकम्पार्थं घटं प्रेतविमुक्तिदम्॥ ५४॥

राजा ने कहा—प्रेतघटकैसे बनाए? और विधान से किस प्रकार से दे? सभी लोगों के प्रति करुणा से प्रेत को प्रेतयोनि से मुक्ति देने वाले प्रेतघट को बताओ॥ ५४॥

प्रेत उवाच—

साधु पृष्टं महाराज कथयामि निबोध ते। प्रेतत्वं न भवेद् येन दानेन सुदृढेन च॥ ५५॥
दानं प्रेतघटं नाम सर्वाऽशुभविनाशनम्। दुर्लभं सर्वलोकानां दुर्गतिक्षयकारकम्॥ ५६॥
सन्तप्तहाटकमयं तु घटं विधाय ब्रह्मेशकेशवयुतं सह लोकपालैः।
क्षीराज्यपूर्णविवरं प्रणिपत्य भक्त्या विप्राप्य देहि तव दानशतैः किमन्यैः॥ ५७॥
ब्रह्मा मध्ये तथा विष्णुः शङ्करः शङ्करोऽव्ययः। प्राच्यादिषु च तत्कण्ठे लोकपालान् क्रमेण तु॥ ५८॥
सम्पूज्य विधिवद् राजन् धूपैः कुसुमचन्दनैः। ततो दुग्धाज्यसहितं घटं देयं हिरण्मयम्॥ ५९॥
सर्वदानाधिकं चैतन् महापातकनाशनम्। कर्तव्यं श्रद्धया राजन् प्रेतत्वविनिवृत्तये॥ ६०॥

प्रेत ने कहा—हे महाराज, आप ने ठीक पूछा, आप को बताता हूँ, समझिए; जिस सुदृढ़ दान से प्रेतत्व नहीं

होगा, वह प्रेतघटदान नाम का दान सम्पूर्ण अशुभों को नाश करने वाला है। बारम्बार तपाने से निर्मल और शुद्ध हुए चमकने वाले सोने से घड़ा बनाकर उसमें लोकपालों के साथ ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर को आवाहित करके दूध और घी से भरकर भक्तिपूर्वक दण्डवत् प्रणाम करके ब्राह्मणको दीजिए, तब आपको अन्य सैकड़ों दान देने का कोई प्रयोजन नहीं रहेगा। बीचमें ब्रह्माजी, विष्णु और कल्याणकारी अव्यय शङ्कर पूजे जाने चाहिए। हे राजन्, उस घट के कण्ठ देश में पूर्वादि दिशा में क्रम से लोकपालों का शास्त्रोक्त विधि से धूप, फूल और चन्दन से पूजा करके दूध और घी से युक्त स्वर्णघट देना चाहिए। हे राजन्, सब दानों से श्रेष्ठ और ब्रह्महत्यादि महापातकों को भी नष्ट करने वाला यह दान प्रेतत्व के निवारण के लिए श्रद्धा से करना चाहिए॥ ५५—६०॥

श्रीभगवानुवाच—

एवं सञ्जल्पतस् तस्य प्रेतेन नियतात्मनः। सेनाऽऽजगामाऽनुपदं हस्त्यश्वरथसङ्कुला॥ ६१॥
ततो बले समायाते दत्त्वा राज्ञे महामणिम्। नमस्कृत्य पुनः प्रार्थ्य प्रेतोऽदर्शनमीयिवान्॥ ६२॥
तस्माद् वनाद् विनिष्क्रम्य राजाऽपि स्वपुरं ययौ। स्वपुरं स समासाद्य सर्वं तत् प्रेतभाषितम्॥ ६३॥
चकार विधिवत् पक्षिन्नौर्ध्वदेहादिकं विधिम्। तस्य पुण्यप्रदानेन प्रेतो मुक्तो दिवं ययौ॥ ६४॥
श्राद्धेन परदत्तेन गतः प्रेतोऽपि सद्गतिम्। किं पुनः पुत्रदत्तेन पिता यातीति चाऽद्भुतम्॥ ६५॥
इतिहासमिमं पुण्यं शृणोति श्रावयेच् च यः। न तौ प्रेतत्वमायातः पापाचारयुतावपि॥ ६६॥

श्रीभगवान् ने कहा—जिस समय में प्रेत के साथ इस प्रकार बात कर रहा था उसी समय में जितेन्द्रिय उस राजा की हाथी, घोड़े और रथों से पूर्ण सेना पीछे पीछे चलती हुई आ गई। तब सेना आने पर राजा को महामणि देकर नमस्कार करके फिर भी अपने तारण के लिए काम कर देने की प्रार्थना करके प्रेत अदृश्य हो गया। हे पक्षिन्, उस वन से निकलकर राजा भी अपने नगर में गया। उसने अपने नगर में पहुँचकर प्रेत से बताए गए उस सम्पूर्ण ओर्ध्वदेहिक कर्मादि के विधि को शास्त्रोक्त पद्धति से सम्पन्न किया। उस राजा से उक्त कर्मों के पुण्य को प्रेत को दिए जाने से प्रेतयोनि से मुक्त वह प्रेत स्वर्गलोक को गया। दूसरे पुरुष से दिए गए श्राद्ध से प्रेत भी सद्गति में गया, पुत्र से दिए गए श्राद्ध से पिता का सद्गति में जाने में आश्चर्य की कौन सी बात है? **जो भी पुरुष इस इतिहास को सुनेगा और जो भी सुनाएगा, वे दोनों पुरुष पापाचार से युक्त होने पर भी प्रेतयोनि में नहीं जाते हैं**॥ ६१—६६॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-२८

गरुड उवाच—

सर्वेषामनुकम्पार्थं ब्रूहि मे मधुसूदन। प्रेतत्वान् मुच्यते येन दानेन सुकृतेन वा॥ १॥

गरुड ने कहा—हे मधुदैत्य के विनाशक, जिस दान से अथवा सुकर्म से प्राणी प्रेतभाव से मुक्त होता है उस दान को अथवा सुकर्म को सभी प्राणियों के प्रति दया करके मुझको बताइए॥ १॥

श्रीकृष्ण उवाच—

शृणु दानं प्रवक्ष्यामि सर्वाऽशुभविनाशम्।
सन्तप्तहाटकमयं घटकं विधाय ब्रह्मेशकेशवयुतं सह लोकपालैः।
क्षीराज्यपूर्णविवरं प्रणिपत्य भक्त्या विप्राय देहि तव दानशतैः किमन्यैः॥ २॥

श्रीकृष्ण ने कहा—सभी पापों का विनाश करने वाले दान को बताऊँगा सुनो, बारम्बार तपाने से निर्मल और शुद्ध हुए चमकने वाले सोने से घडा बनाकर, उसमें लोकपालों के साथ **ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर** को आवाहित करके

दूध और घी से भरकर भक्तिपूर्वक दण्डवत् प्रणाम करके ब्राह्मण को दे दो, तब तुमको अन्य सैकड़ों दान देने का कोई प्रयोजन नहीं रहेगा॥ २॥

गरुड उवाच—

किमेतत् कथितं देव विस्तरेण वदस्व मे। आमुष्मिकीं क्रियां देव उत्क्रान्तिसमयादनु॥ ३॥
संसारे साधु मे नाथ ब्रूहि कृत्यं जनार्दन। यथा कार्या नरैः सम्यक् क्रिया चैवोर्ध्वदेहिकी॥ ४॥
कथं प्रेता महाकाया रौद्ररूपा भयानकाः। सम्भवन्ति सुरश्रेष्ठ कर्मभिः कैः शुभाऽशुभैः॥ ५॥
पिशाचाः सम्भवन्तीह कस्येदं कर्मणः फलम्। तन् मे कथय देवेश अहमिच्छामि वेदितुम्॥ ६॥
भूम्यां प्रक्षिप्यते कस्मात् पञ्चरत्नं कुतो मुखे। अधस्ताच्च तिला दर्भाः पादौ याम्यां व्यवस्थितौ॥ ७॥
किमर्थं मण्डलं भूमौ गोमयेनोपलिप्यते। किमर्थं स्मर्यते विष्णुः विष्णुसूक्तं च पठ्यते॥ ८॥
किमर्थं पुत्रपौत्राश् च तस्य तिष्ठन्ति चाऽग्रतः। किमर्थं दीपदानं च किमर्थं विष्णुपूजनम्॥ ९॥
किमर्थमातुरा दानं ददाति द्विजपुङ्गवे। बन्धून् मित्राण्यमित्रांश् च क्षमापयति तत् कथम्॥ १०॥

गरुड ने कहा—हे देव, आपने यह क्या कहा, प्राण जाने के समय से लेकर किए जाने वाले पारलौकिक कर्म को आप मुझको विस्तार से बताइए। हे नाथ, हे जनार्दन, संसार में करने योग्य कर्मको मुझको अच्छी तरह बताइए, मनुष्यों को और्ध्वदेहिक क्रिया अच्छी तरह जैसे करनी चाहिए, वह भी बताइए। हे देवताओं में श्रेष्ठ, बड़े शरीर वाले क्रूररूप वाले और भयङ्कर प्रेत कैसे और शुभ अथवा अशुभ किन कर्मों से हो जाते हैं। इस संसार में पिशाच भी होते हैं। यह किस कर्म का फल है? हे देवों के मालिक, वह मुझको बताइए, मैं जानना चाहता हूँ। अनतकाल में मनुष्य भूमि में क्यों रखा जाता है? मुख में पञ्चरत्न (सोना, चाँदी, मोती, सजावर्त [लाजवर्द] और मूँगा) क्यों रखे जाते हैं? नीचे तिल और कुश क्यों रखे जाते हैं? पैर क्यों दक्षिण दिशा में किए जाते हैं? मण्डल क्यों बनाया जाता है? भूमि गोबर से उपलेपन क्यों किया जाता है? विष्णु का स्मरण क्यों किया जाता है? विष्णुसूक्त का पाठ क्यों किया जाता है? मरते हुए मनुष्य के आगे पुत्र और पौत्र क्यों बैठते हैं? दीपदान किसलिए किया जाता है? विष्णु की पूजा किसलिए की जाती है? मरता हुआ रोगी श्रेष्ठ ब्राह्मण को दान क्यों देता है? बन्धुओं को मित्रों को और शत्रुओं को भी क्षमा करने के लिए प्रार्थना करता है, वह कैसे?॥ ३—१०॥

तिला लोहं हिरण्यं च कार्पासं लवणं तथा। सप्तधान्यं क्षितिर् गावो दीयन्ते केन हेतुना॥ ११॥
कथं च म्रियते जन्तुर् मृतस्य च कुतो गतिः। अतिवाहशरीरं च कथं हि श्रयते तदा॥ १२॥
शवं स्कन्धे वहेत् पुत्रो वह्निदाता च पौत्रकः। किमर्थं देवदेवेश आज्येनाऽभ्यञ्जनं कुतः॥ १३॥
यमसूक्तं किमर्थं च उदीचीं दिशमाहरेत्। पानीयमेकवस्त्रेण सूर्यबिम्बनिरीक्षणम्॥ १४॥
यवसर्षपदूर्वाश् च पाषाणे निम्बचर्वणम्। वस्त्रं नरश्च नारी च विदध्यादधरोत्तरम्॥ १५॥

तिल, लोहा, सोना, कार्पास (रुई), नमक, सप्तधान्य (जौ, धान, तिल, कँगनी, मूँग, चना और साँवा), भूमि, गाय किस कारण से दिए जाते हैं? प्राणी कैसे मरता है? मरने वाले की गति किधर होती है? उस समय में अतिवाह शरीर में कैसे आश्रय लेता है? शव को पुत्र ही कन्धे में क्यों ढोए? शवदाह के लिए अग्नि निष्पन्न करके देने वाला पौत्र ही क्यों हो? हे देवताओं के मालिक, शव का घी से लेपन किसलिए और कैसे करे? यमसूक्त का जप क्यों किया जाता है? शव को उत्तर दिशा की ओर ले जाना क्यों? जलाञ्जलिदान एकवस्त्र होकर क्यों दिया जाता है? सूर्यबिम्ब का निरीक्षण क्यों किया जाता है? जौ, सरसों और दूव का स्पर्श क्यों? पत्थर पर पग क्यों?

नीम की पत्ती को दाँतों से काटना क्यों? जलाञ्जलिदान के समय में स्त्री और पुरुष दोनों एक अधोवस्त्र को ही उत्तरवस्त्र के रूप में भी क्यों प्रयुक्त करते हैं? ॥ ११—१५ ॥

अन्नाद्यं गृहमागत्य भोक्तव्यं गोत्रिभिः सह। नवकानि च पिण्डानि किमर्थं वितरेत् सुतः ॥ १६ ॥
किमर्थं चत्वरे दुग्धं पात्रेऽपक्वे च मृन्मये। काष्ठत्रयं गुणे वद्ध्वा कृत्वा रात्रौ चतुष्पथे ॥ १७ ॥
निशायां दीयते दीपो यावदब्दं दिनेदिने। दाहोदकं किमर्थं च संवादः स्वजनैः सह ॥ १८ ॥
भगवन्नतिवाहस्य नवपिण्डैस् तु किं भवेत्। कथं देयं पितृभ्यश् च वाहस्याऽऽवाहनं कथम्।
इदं च क्रियते देव कस्मात् पिण्डं प्रदापयेत् ॥ १९ ॥
किं तत् प्रदीयते तस्य पिण्डदानादनन्तरम्। अस्थिसञ्चयनं चैव शय्यादानं किमर्थकम् ॥ २० ॥

घर में आकर गोत्रियों के साथ में ही भोजन करना क्यों? पुत्र नव पिण्डों को क्यों दे? चत्वर में मिट्टी के कच्चे पात्र में दूध क्यों दिया जाता है। रस्सी से तीन काष्ठों को बाँधकर उनको खड़ा करके उनके ऊपर रखकर रात में चौराहे पर प्रतिदिन वर्षपर्यन्त दीपक क्यों दिया जाता है? दाहोदक क्यों और बन्धुजनों के साथ में संवाद क्यों? हे भगवन्, नवपिण्डों से अतिवाह शरीर को क्या होगा? पितरों को कैसे देना चाहिए? पितरों को वहन करके लाने वालों का आवाहन कैसे करना चाहिए? हे देव, यह नव पिण्डदान किया जाता है तो फिर और पिण्ड भी क्यों दिए जायँ? पिण्डदानादि देने के बाद प्रेत को दिए जाने वाले पदार्थ क्या हैं? अस्थिसञ्चयन कृत्य और शय्यादान किसलिए किया जाता है? ॥ १६—२० ॥

द्वितीयेऽह्नि कुतः स्नानं चतुर्थे साग्निके द्विजे। दशमे किं मलस्नानं कार्यं सर्वजनैः सह ॥ २१ ॥
कस्मात् तैलोद्वर्तनं च स्कन्धवाहान् गृहं नयेत्। तैलमुद्वर्तनं चाऽपि दद्युः स्थूलजलाश्रये ॥ २२ ॥
दशमेऽहनि यः पिण्डस् तं दद्यादामिषेण तु। पिण्डं चैकादशे कस्माद् वृषोत्सर्गः कथं भवेत् ॥ २३ ॥
श्राद्धानि षोडशैतानि अब्दं यावत् कुतो वद। अन्नादि चोदकेनैव षष्ट्यधिकशतत्रयम् ॥ २४ ॥
दिनेदिने च दातव्यं घटान्नं प्रेततृप्तये। प्राप्ते कालेच म्रियते अनित्यो मानवः प्रभो ॥ २५ ॥
छिद्रं तु नैव पश्यामि कुतो जीवः स निर्गतः। कुतो गच्छन्ति भूतानि पृथिव्यापो मनस् तथा ॥ २६ ॥
तेजो वदस्व मे नाथ वायुराकाशमेव च। वायवश् चैव पञ्चैते कथं गच्छन्ति चात्ययम् ॥ २७ ॥

द्वितीय दिन में स्नान क्यों? श्रौताग्नि से युक्त द्विज के मृत्यु में चतुर्थ दिन में स्नान क्यों? दशम दिन में सभी बन्धुओं के साथ मलप्रक्षालन के लिए स्नान क्यों किया जाता है? कन्धे पर शव को ले जाने वालों के घर में दशम दिन में तेल और उबटन क्यों पहुँचाया जाता है? स्थलों में और जलाशयों में भी तैल और उबटन क्यों दे? दशम दिन में जो पिण्ड होता है वह और एकादशाह में दिए जाने वाले पिण्ड भी आमिष (माँस) से क्यों दिया जाता है? वृषोत्सर्ग कैसे होगा? वर्षपर्यन्त ये सोलह श्राद्ध किस कारण से किए जाते हैं? बताइए। जलके साथ अन्नादि भी तीन सौ साठ गिनकर क्यों दिए जाते हैं? प्रेत की तृप्ति के लिए प्रतिदिन जलघटन और अन्न कैसे दिया जाना चाहिए? हे प्रभो, समय आने पर अनित्य मनुष्य मरता है, किन्तु मैं कोई छिद्र नहीं देखता हूँ, वह जीव कहाँ से निकल गया? मनुष्यशरीर के आकाशादि महाभूत कहाँ जाते हैं? पृथिवी, जल, मन, तेज, वायु और आकाश किधर जाते हैं? हे नाथ, मुझको बताइए। प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान ये पाँच वायु कैसे विनाश को प्राप्त होते हैं? ॥ २१—२७ ॥

लोभमोहादयः पञ्च शरीरे चैव तस्कराः। तृष्णा कामोऽप्यहङ्कारः कुतो यान्ति जनार्दन ॥ २८ ॥
पुण्यं वाऽप्यथ वाऽपुण्यं यत्किञ्चित् सुकृतं तथा। नष्टे देहे कुतो यान्ति दानानि विविधानि च ॥ २९ ॥

सपिण्डनं किमर्थं च पूर्णे संवत्सरेऽपि वा। प्रेतस्य मेलनं सार्धं कैः समं तत्र को विधिः॥ ३०॥
ये दग्धा ये त्वदग्धाश्च पतिता ये नरा भुवि। यानि चान्यानि भूतानि तेषामन्ते भवेच्च किम्॥ ३१॥
पापिनो ये दुराचारा मुद्गलत्वं च ये गताः। आत्मघाती ब्रह्महा च स्तेयी विश्वासघातकः॥ ३२॥
कपिलां यः पिबेच् छूद्रो यः पठेद् वैदिकाक्षरम्। धारयेद् वा ब्रह्मसूत्रं का गतिस् तस्य माधव॥ ३३॥
विप्रस्य ब्राह्मणी भार्या सङ्गृहीता यदा भवेत्। तस्मात् पापाच् च भीतोऽहं तन् मे वद जगत्पते।
सर्वमेतन् मया पृष्टो वद लोकहिताय वै॥ ३४॥

हे जनार्दन, शरीर में रहने वाले चोर लोभ, मोह, तृष्णा, काम और अहंकार ये पाँच किधर जाते हैं? पुण्य अथवा पाप तथा जो कोई सुकर्म तथा नाना प्रकार के दान भी शरीर नष्ट होने पर किधर जाते हैं? वर्ष पूर्ण होने पर सपिण्डीकरण किसलिए किया जाता है? प्रेतका मेलन किन-किन के साथ होता है? उसमें पद्धति क्या है? जो पतित मनुष्य इस लोक में मर जाता है और कोई दाह संस्कार पाता है और कोई नहीं, उनका अन्त में परिणाम क्या होगा? जो दुराचारी पापी हैं और जो पिशाचत्व में प्राप्त हुए हैं वे, आत्महत्या करने वाले, ब्रह्महत्या करने वाले, चोरीरूपी महापाप करने वाले, विश्वासघाती, जो शूद्र कपिला गाय का दूध पिए, जो शूद्र वेद का अक्षर पढे और जो शूद्र ब्रह्मसूत्र (जनेऊ) पहने वह, हे माधव, इन सब लोगों की क्या गति होगी? जिस समय में अपने गृह्यसूत्र में बताए गए विधि से किए गए विवाह के बिना विप्र कर सङ्गृहीता ब्राह्मणी पत्नी होगी, उस पाप से मैं डरा हुआ हूँ, उस पापका फल क्या होगा? हे जगत् के पालक, उस बातको मुझे बताए। मुझसे पूछे गए इन सब बातों को लोक के हित के लिए बताइए॥ २८—३४॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-२९

श्रीकृष्ण उवाच–

साधु पृष्टं त्वया भद्र मानुषाणां हिताय वै। शृणुष्वाऽवहितो भूत्वा सर्वमेवौर्ध्वदैहिकम्॥ १॥
सम्यग् विभेदरहितं श्रुति-स्मृति-समुद्धृतम्। यन् न दृष्टं सुरैः योगिभिर् योगचिन्तकैः॥ २॥
गुह्याद् गुह्यतरं वत्स नाऽऽख्यातं कस्यचित् क्वचित्। भक्तस् त्वं हि महाभाग सर्वं ते कथयाम्यहम्॥ ३॥
अपुत्रस्य गतिर् नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च। येन केनाऽप्युपायेन कार्यं जन्म सुतस्य च॥ ४॥
तारयेन् नरकात् पुत्रो यदि मोक्षो न विद्यते। दाहः पुत्रेण कर्तव्यो देयः पौत्रेण पावकः॥ ५॥

श्रीकृष्ण ने कहा—हे कल्याणकामिन्, तुमने मनुष्यों के हित के लिए अच्छा पूछा, सावधान होकर सभी और्ध्वदेहिक कृत्यों को सुनो। हे वत्स, हे महाभाग्ययुक्त विनतापुत्र, तुम मेरे भक्त हो, इसलिए विभेद से रहित, वेद और स्मृतियों से समुद्धृत, जिसको इन्द्रसहित योगियों ने और योगचिन्तकों ने भी नहीं देखा, जिसको अन्य किसी को भी नहीं बताया गया है ऐसा गुह्य से भी गुह्य उस सम्पूर्ण और्ध्वदेहिक विधि को मैं तुमको अच्छी तरह बताता हूँ। पुत्रहीन मनुष्य की सद्गति नहीं, स्वर्ग भी नहीं, इस हेतु जिस किसी भी उपाय से पुत्र का जन्म कराना चाहिए। यदि पुत्र से मोक्ष न भी हो सकता है तो भी पुत्र नरक से उत्तारण तो करेगा, मृत व्यक्ति का दाह पुत्र से किया जाना चाहिए, और **शवदाह के लिए आवश्यक अग्नि को निष्पन्न करके दाह करने वाले को देने का काम पौत्र से होना चाहिए**॥ १—५॥

तिलैर् दर्भैश् च भूम्यां वै कुटी ऋतुमती भवेत्। पञ्च रत्नानि वक्त्रे तु येन जीवः प्ररोहति॥ ६॥
लिप्यात् तु गोमयैर् भूमिं तिलान् दर्भांश् च निःक्षिपेत्। तस्यामेवातुरो मुक्तः सर्वं दहति पातकम्॥ ७॥

दर्भतूली नयेत् स्वर्गं संस्थितं नाऽत्र संशयः। दर्भांस् तत्र क्षिपेद् भूम्यां तिलयुक्तान् न संशयः॥ ८॥
सर्वत्र वसुधा पूता यत्र लेपो न विद्यते। यत्र लेपः स्थितस् तत्र पुनर्लेपेन शुध्यति॥ ९॥
यातुधानाः पिशाचाश् च राक्षसाः क्रूरकर्मिणः। अलिप्ते आतुरं मुक्तं विशन्त्येते न संशयः॥ १०॥

मरते हुए मनुष्य की शयनभूमि में तिल और कुश बिछाने से भूमि मृतपुरुष के अतिवाहशरीरके उत्पादन के लिए ऋतुमती होगी। मरते हुए मनुष्य के मुख में पञ्चरत्न रखे जाते हैं, जिसे जीवका प्ररोहण होता है। भूमि गोबर से लिपनी चाहिए, उस भूमि में तिल और कुश रखना चाहिए, उस भूमि में रखा गया आतुर सब पाप को जला देता है। कुशका बिछौना उसमें रहे हुए आतुर को स्वर्ग ले जाएगा, इसमें सन्देह नहीं है। इसलिए वहाँ तिलों से युक्त कुशों को रखना ही चाहिए, इसमें सन्देह नहीं। जहाँ लेप नहीं है वहाँ सर्वत्र भूमि शुद्ध होती है, जहाँ लेप है वहाँ फिर लेप करने से भूमि शुद्ध हो जाती है। लेप से रहित भूमि में छोड़े गए आतुर में यातुधान (यक्ष), पिशाच और राक्षस इत्यादि क्रूर कर्म करने वाले भूत घुस जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं॥ ६—१०॥

नित्यहोमं तथा श्राद्धं विप्राणां पादशोधनम्। मण्डलेन विना भूम्यां कुर्वन्त्येतच् च निष्फलम्॥ ११॥
आतुरो मुच्यते नैव मण्डलेन विना भुवि। ब्रह्मा रुद्रश् च विष्णुश् च श्रीर् हुताशन एव च।
मण्डले चोपतिष्ठन्ति तस्मात् कुर्वीत मण्डलम्॥ १२॥
अन्यथा म्रियते यस्तु बालो वृद्धो युवाऽपि वा। योन्यन्तरं न वै गच्छेत् क्रीडेत वायुना सह॥ १३॥
मिश्रितं लोहताम्रं तु तथैव जन्म जायते। तस्यैव वायुभूतस्य न श्राद्धं नोदकक्रिया॥ १४॥
मम स्वेदसमुद्भूतास् तिलास् तार्क्ष्य पवित्रकाः। असुरा दानवा दैत्या नश्यन्ति तिलदानतः॥ १५॥

मण्डल (जल-भस्मादि से बनाए गए घेरे) के बिना भूमि में नित्य होम, श्राद्ध, ब्राह्मणों का पादप्रक्षालन करते हैं तो यह सब निष्फल हो जाता है। आतुर भी मण्डल के बिना भूमि में नहीं छोड़ा जाता है। ब्रह्माजी, महेश्वर, विष्णु, श्री और अग्नि भी मण्डल में उपस्थित होते हैं, इसलिए मण्डल बनाए। यदि कोई बालक अथवा वृद्ध अथवा युवक भी इस रीति को छोड़कर मरता है तो वह दूसरी योनि में नहीं जाएगा, वायु के साथ में ही भटकता रहेगा। जैसा मिश्रित लोहा और तांवा होता है वैसा ही जन्म होता है, इस प्रकार वायु रूप में प्राप्त उस मृतक की न तो श्राद्ध सफल होगा, न तो उदकदानादि क्रिया ही सफल होगी। हे गरुड, मेरे पसीने से उत्पन्न तिल पवित्र हैं, इसलिए असुर, दानव और दैत्य तिल देनेसे भागते हैं॥ ११—१५॥

तिलाः श्वेतास् तिलाः कृष्णास् तिला गोमूत्रसन्निभाः। ते मे दहन्तु पापानि शरीरेण कृतानि च॥ १६॥
एक एव तिलद्रोणो हेमद्रोणतिलैः समः। तर्पणे दानहोमे च दत्तो भवति चाक्षय॥ १७॥
दर्भा मल्लोमसम्भूतास् तिलाः स्वेदसमुद्भवाः। तृप्ताः स्युर् देवता दानैः श्राद्धेन पितरस्तथा।
प्रयोगविधिना ब्रह्मा विश्वं चाऽप्युपजीवनात्॥ १८॥
सव्ययज्ञोपवीतेन ब्रह्मद्यास् तृप्तिमाप्नुयुः। अपसव्येन तृप्यन्ति पितरो देव-देवताः॥ १९॥
दर्भस्य त्वादितो ब्रह्मा दर्भमध्ये तु केशवः। दर्भाग्रे शङ्करं विद्यात् त्रयो देवाः कुशे स्थिताः॥ २०॥

तिल सफेद भी होते हैं, तिल काले भी होते हैं, तिल गोमूत्रवर्ण के भी होते हैं, वे तिल मेरे शरीर से किए गए पापों का दहन करें। तिल का एक ही द्रोण (बत्तीस सेर) सोने के कणों के अनेक द्रोणों से तुल्य है। तर्पण में, दानों में और होम में भी लगाया गया तिल अक्षय होता है। कुश मेरे (विष्णु के) रोमों से उत्पन्न हुए हैं और तिल मेरे पसीने से उत्पन्न हुए हैं। उनके दानों से देवता और श्राद्ध से पितर लोग तृप्त होते हैं। और्ध्वदेहिकादिकृत्यों के शुद्ध प्रयोगविधि से ब्रह्माजी तृप्त होते हैं, इन कृत्यों का विविध रूप से उपजीवन करने से सम्पूर्ण विश्व ही

तृप्त होता है। सव्य यज्ञोपवीतादि से ब्रह्मादि देवता तृप्ति पाएंगे, अपसव्य से देवताओं के भी देवता पितर लोग तृप्त होते हैं। दर्भ के आदि (मूल) में ब्रह्माजी, दर्भ के मध्य में विष्णु रहते हैं, दर्भ के अग्रभाग में तो शङ्कर को रहने वाला माने, ये तीन देव कुश में रहे हुए हैं॥ १६—२०॥

विप्रा मन्त्रा कुशो वह्निस्तुलसी च खगेश्वर। नैते निर्माल्यतां यान्ति क्रियमाणाः पुनःपुनः॥ २१॥
कुशाः पिण्डेषु निर्माल्या ब्राह्मणाः प्रेतभोजने। मन्त्राः शूद्रेषु पतिताश् चितायाश् च हुताशनः॥ २२॥
तुलसीं ब्राह्मणा गावो विष्णुरेकादशी खग। पञ्च प्रवहणान्येव भवाब्धौ मज्जतां सताम्॥ २३॥
विष्णुरेकादशी गीता तुलसीविप्रधेनवः। अपारे दुर्गसंसारे षट्पदी मुक्तिदायिनी॥ २४॥
तिलाः पवित्रास् त्रिविधा दर्भाश्च तुलीदलम्। निवारयन्ति चैतानि दुर्गतिं यान्तमातुरम्॥ २५॥

हे पक्षियों के मालिक, ब्राह्मण, मन्त्र, कुश, अग्नि और तुलसी ये बारम्बार प्रयोग में लाने पर भी बासी नहीं होते हैं। पिण्ड में प्रयुक्त होने पर कुश बासी हो जाते हैं, प्रेतश्राद्ध में भोजन करने से ब्राह्मण बासी हो जाते हैं, शूद्रों में पड़े हुए मन्त्र बासी हो जाते हैं और चिता का अग्नि बासी हो जाता है। हे पक्षिन् तुलसी, ब्राह्मण, गाय, विष्णु और एकादशी ये पाँच संसारसागर में डूबते हुए लोगों के लिए नौकाएँ हैं। इस असार दुष्पार संसार में विष्णु, एकादशी, गीता, तुलसी, ब्राह्मण और गाय इन छः वस्तुओं का समुदाय मुक्तिदायक है। तीन प्रकार के तिल पवित्र हैं कुश और तुलसीपत्र भी पवित्र हैं, ये दुर्गति में जा रहे आतुर को दुर्गति में जाने से रोकते हैं॥ २१—२५॥

हस्ताभ्यामुद्धृतैर् दर्भैस् तोयेन प्रोक्षयेद् भुवम्। मृत्युकाले क्षिपेद दर्भानातुरस्य करद्वये॥ २६॥
दर्भेषु क्षिप्यते योसौ दर्भैस् तु परिवेष्टितः। विष्णुलोकं स वै याति मन्त्रहीनोऽपि मानवः॥ २७॥
दर्भतूलीगतो भूमौ दर्भपाणिस्तु यो मृतः। प्रायश्चित्तविशुद्धौऽसौ संसारेऽपारसागरे॥ २८॥
गोमयेनोपलिप्ते तु दर्भस्याऽऽस्तरणे स्थितः। तत्र दत्तेन दानेन सर्वं पापं व्यपोहति॥ २९॥
लवणं तद् रसं दिव्यं सर्वकामप्रदं नृणाम्। यस्मादन्नरसाः सर्वे नोत्कटा लवणं विना॥ ३०॥
पितृणां च प्रियं भव्यं तस्मात् स्वर्गप्रदं भवेत्। विष्णुदेहसमुद्भूतो यतोऽयं लवणो रसः॥ ३१॥
विशेषाल् लवणं दानं तेन शंसन्ति योगिनः। ब्राह्मणक्षत्रियविशां स्त्रीणां शूद्रजनस्य च॥ ३२॥

हाथों से लिए गए कुशों के द्वारा जल से भूमि का प्रोक्षण करे, मृत्यु के समय में आतुर के दोनों हाथों में कुश रख दे। जो कुशों में रखा जाता है और जो कुशों से घिरा जाता है, वह मनुष्य मन्त्रहीन होने पर भी विष्णुलोक को जाता है। भूमि में कुश के बिछौने में रहकर और हाथों में कुशों को लेकर जो मरा है, वह इस असार संसार में प्रायश्चित्तों से शुद्ध हो गया होता है। गोबर से लिपे गए स्थल में कुश के बिछौने में अवस्थित मनुष्य वहाँ दिए गए दान से सभी पापों को दूर करता है। क्योंकि लवण (नमक) के अभाव में अन्न के सभी रस स्वादिष्ट रूप में अभिव्यक्त नहीं हो सकते हैं, इसलिए वह दिव्य लवणरस दान में देने से मनुष्यों को सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाला होता है। क्योंकि यह लवणरस विष्णु के देह से उत्पन्न हुआ है और पितरों का भी प्रिय और हितकारी है, इसलिए यह दान में देने से स्वर्ग देने वाला होता है। इसलिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, द्विजातिसङ्गृहीत स्त्री और शूद्र जनों के लिए भी लवणरसयुक्त दान की प्रशंसा तत्त्वदर्शी लोग करते हैं। जिस समय में इस भूतल में मरते हुए आतुरों के प्राण सुख से नहीं निकलते हैं, उस समय में स्वर्ग के द्वार को खोलने वाले लवण का दान देना चाहिए॥ २६—३०॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-३०

श्रीकृष्ण उवाच–

शृणु ताक्ष्र्य पर गुह्यं दानानां दानमुत्तमम्। परमं सर्वदानानां परं गोप्यं दिवौकसाम्॥ १॥
देयमेकं महादानं कार्पासं चोत्तमोत्तमम्। येन दत्तेन प्रीयन्ते भूर् भुवः स्वरिति क्रमात्॥ २॥
ब्रह्माद्या देवताः सर्वाः कार्याच् च प्रीतिमाप्नुयुः। देयमेतन् महादानं प्रेतोद्धरणहेतवे॥ ३॥
चिरं वसेद् रुद्रलोके ततो राजा भवेदिह। रूपवान् सुभगो वाग्मी श्रीमानतुलविक्रमः।
यमलोकं विनिर्जित्य स्वर्गं ताक्ष्र्य स गच्छति॥ ४॥
गां तिलांश् च क्षितिं हेम यो ददाति द्विजन्मने। तस्य जन्मार्जितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥ ५॥

श्रीकृष्ण ने कहा—हे गरुड, अत्यन्त गुह्य, दानों में उत्तम दान, देवताओं के लिए भी परम गोप्य, सभी दानों से परम श्रेष्ठ दान को सुनो। कार्पास (रुई) का एक उत्तम से भी उत्तम महादान देना चाहिए, जिस दान के देने से भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक (में रहने वाले सभी देवगण) तृप्त होते हैं। इस दानकार्य से ब्रह्मादि सभी देवता भी प्रसन्न होंगे। यह महादान प्रेत के उद्धार के लिए दिया जाना चाहिए। इस दान से मनुष्य रुद्रलोक में चिरकाल तक वास करेगा और उसके बाद इस लोक में रूप से युक्त, अच्छा बोलने वाला, धनी और दूसरों से तुलना करने में अयोग्य महापराक्रम से युक्त राजा होगा। हे गरुड, वह यमलोक को जीतकर स्वर्ग जाता है। जो मनुष्य ब्राह्मण को गाय, तिल भूमि और सुवर्ण देता है, उसका जन्मों से अर्जित पाप तत्काल नष्ट हो जाता॥ १—५॥

तिला गावो महादानं महापातकनाशनम्। तद्द्वयं दीयते विप्रे नाऽन्यवर्णे कदाचन॥ ६॥
कल्पितं दीयते दानं तिला गावश् च मेदिनी। अन्येषु नैव वर्णेषु पोष्यवर्गे कदाचन॥ ७॥
पोष्यवर्गे तथा स्त्रीषु दानं देयमकल्पितम्। आतुरे चोपरागे च द्वयं दानं विशिष्यते।
आतुरे दीयते दानं तत्काले चोपतिष्ठति॥ ८॥
जीवतस् तु पुनर् दततमुपतिष्ठत्यसंस्कृतम्। सत्यंसत्यं पुनः सत्यं यद् दत्तं विकलेन्द्रिये॥ ९॥
यच् चाऽनुमोदते पुत्रस् तत्र दानमनन्तकम्। अतो दद्यात् स पुत्रो वा यावज् जीवत्यसौ चिरम्।
अतिवाहस्तथा प्रेतो भोगांश च लभते यतः॥ १०॥

तिलदान और गोदान महादान है और ब्रह्महत्यादि महापापों का भी नाश करने वाला है। ये दोनों दान ब्राह्मण को दिए जाते हैं। तिलदान गोदान और भूमिदान सङ्कल्प करके दिए जाते हैं, ये दान क्षत्रियादि अन्य वर्णों को और अपने से अवश्य पोषणीय जनों को नहीं दिए जाते हैं। अपने पोष्यजनों को और स्त्रियों को भी असङ्कल्पित दान देने चाहिए। आतुर अवस्था में दिया गया दान ओर चन्द्र-सूर्य-ग्रहण के समय में दिया गया दान ये दो दान अतिविशिष्ट होते हैं। आतुर अवस्था में जो दान दिया जाता है वह दान यमपुरी के मार्ग में आवश्यक होने पर तत्काल भोग्य रूप में उपस्थित होता है। जीवनकाल में स्वस्थावस्था में दिया गया दान असंस्कृत रूप में कालान्तर में भोग्य रूप में उपस्थित होता है। यह बात सत्य-सत्य और अत्यन्त सत्य है जो दान आतुर होकर चक्षुरादि इन्द्रिय दुर्बल होने पर दिया जाता है और जिस दानका पुत्र अनुमोदन करता है वहाँ वह दान अनन्त फल देने वाला होता है। क्योंकि अतिवाहशरीरमें रहता हुआ प्रेत भोगों को पाता है, इसलिए जितने समय तक यह मरता हुआ मनुष्य जीवित रहता है तब तक चिरकाल तक पुत्र दान दे, क्योंकि अतिवाहरूप में स्थित और प्रेतरूप में प्राप्त भी मृतक व्यक्ति उस दान से भोगों को प्राप्त करता है॥ ६—१०॥

अस्वस्थातुरकाले तु देहपाते क्षितिस्थिते। देहे तथाऽतिवाहस्य परतः प्रीणनं भवेत्॥ ११॥

पङ्गावन्धे च काणे च ह्यर्धोन्मीलितलोचने। तिलेषु दर्भान् संस्तीर्य दानमुक्तं तदक्षयम्॥ १२॥
तिला लौहं हिरण्यं च कार्पासं लवणं तथा। सप्तधान्यं क्षितिर् गाव एकैकं पावनं स्मृतम्॥ १३॥
लोहदानाद् यमस् तुष्येद् धर्मराजस् तिलार्पणात्। लवणे दीयमाने तु न भयं विद्यते यमात्॥ १४॥
कार्पासस्य तु दानेन न भूतेभ्यो भयं भवेत्। तारयन्ति नरं गावस् त्रिविधाच् चैव पातकात्॥ १५॥

अस्वस्थ होकर मरने के समय में देह गिरने पर भूमितल में देह स्थित होने के समय में और पीछे अतिवाहशरीर में रहे हुए जीव का भी दान से सन्तृप्ति होगी। रोग से पङ्गु होने पर, अन्धा होने पर, काना होने पर और मरण अति निकट में आने से अर्धोन्मीलितलोचन होने पर भी तिलों में कुश बिछाकर उसके ऊपर रहकर जो दान दिया जाता है वह अक्षय फल देने वाला होता है। तिल, लोहा, सोना, कार्पास (रुई), नमक, सप्तधान्य (जौ, धान, तिल, कँगनी, मूँग, चना, साँवा), भूमि और गाय ये एक-एक भी दान देने पर दाता को शुद्ध करने वाले समझे गए हैं। लोहा के दान से यमराज प्रसन्न होंगे, तिलदान से धर्मराज प्रसन्न होंगे। नमक देने से यमराज से डर नहीं होता है। रुई के दान से भूतों से डर नहीं होगा। दान में दी गई गायें मनुष्य को मानसिक वाचिक और कायिक तीनों प्रकार के पापों से पार कराती हैं॥ ११—१५॥

हेमदानात् सुखं स्वर्गे भूमिदानान् नृपो भवेत्। हेमभूमिप्रदानाच् च न पीडा नरके भवेत्॥ १६॥
सर्वेऽपि यमदूताश्च यमरूपा विभीषणाः। सर्वे ते वरदा यान्ति सप्तधान्येन प्रीणिताः॥ १७॥
विष्णोः स्मरणमात्रेण प्राप्यते परमा गतिः। एतत् ते सर्वमाख्यातं मर्त्यैर् या गतिराप्यते॥ १८॥
तस्मात् पुत्रं प्रशंसन्ति ददाति पितुराज्ञया। भूमिष्ठं पितरं दृष्ट्वा ह्यर्धोन्मीलितलोचनम्॥ १९॥
तस्मिन् काले सुतो यस्तु सर्वदानानि दापयेत्। गयाश्राद्धाद् विशिष्येत स पुत्रः कुलनन्दनः॥ २०॥

सोने के दान से स्वर्ग में सुख मिलेगा, भूमि के दान से दूसरे जन्म में राजा होगा; सोने का और भूमि का दान देने से नरक में कोई पीडा भी नहीं होगी। सभी यमदूत यम के जैसे रूप वाले और भयङ्कर होते हैं; किन्तु सप्तधान्य के दान से सन्तुष्ट किए जाने पर वे सब वर देने वाले हो जाते हैं। **अन्त्यकाल में विष्णु का स्मरण मात्र करने से परमगति पाई जाती है।** मनुष्यों से दानादि से जो गति पाई जाती है, यह सब तुम को बता दिया। इसलिए लोग पुत्र की प्रशंसा करते हैं, क्योंकि वह भूमि पर पड़े हुए आधी आँखें ही खोल रहे पिता को देखकर पिता की (पहले ही दी गई) आज्ञा से दान देता है। उस समय में जो पुत्र सभी दान पिता से दिलवाएगा, वह दान गया में किए गए श्राद्ध से भी बढ़कर होगा, वैसा करने वाला पुत्र सम्पूर्ण कुल का ही उद्धार करके आनन्द देने वाला होता है॥ १६—२०॥

स्वस्थानाच् चलिते श्वासे विकलस्य पितुस्तदा। पुत्रैर् यत्नेन कर्तव्या पितरं तारयन्ति ते॥ २१॥
किं दत्तैर् बहुभिर् दानैः पितुरन्त्येष्टिमाचरेत्। अश्वमेधो महायज्ञः कलां नाऽर्हति षोडशीम्॥ २२॥
धर्मात्मा स तु पुत्रो वै देवैरपि सुपूज्यते। दापयेद् यस्तु दानानि ह्यातुरं पितरं भुवि॥ २३॥
लोहदानं च दातव्यं भूमियुक्तेन पाणिना। यमं भीमं च नाऽऽप्नोति न गच्छेत् तस्य वैश्मनि॥ २४॥
कुठारो मुसलो दण्डः खड्गश् च च्छुरिका तथा। एतानि यमहस्तेषु दृश्यानि पापकर्मिणाम्॥ २५॥

मरते हुए पिता के श्वास अपने स्थान को छोड़कर चलने लगने पर पुत्रों से यह दानादि क्रिया करनी चाहिए, ऐसा करने वाले जो पुत्र है, वे पिता को नरक से पार कराते हैं। अनेक दान देने से ही क्या होगा, पुत्र पिता की अन्त्येष्टि करे। श्रद्धा से की गई अन्त्येष्टि क्रिया है, उसकी सोलहवीं कला से भी अश्वमेध यज्ञ भी तुल्य नहीं होता है। जो भूमि में पड़े मरते हुए पिता से दानों को दिलवाता है, वह धर्मातमा पुत्र देवताओं से भी बहुत पूजित होता

है। भूमियुक्त हाथ से लोहदान देना चाहिए। लोहदान देने से मनुष्य डरावने यमराज को नहीं देखता है और डरावने यमराज के घर में जाता भी नहीं है। कुल्हाड़ी, मुसल, डण्डा, तलवार और छुरी ये शस्त्र पापी लोगों से यमराज के हाथों में देखे जाने वाले हैं॥ २१—२५ ॥

तस्माल् लोहस्य दानं तु ब्राह्मणायाऽऽतुरो ददेत्। यमायुधानां सन्तुष्ट्यै दानमेतदुदाहृतम्॥ २६॥
गर्भस्थाः शिशवो ये च युवान् स्थविरास् तथा। एभिर् दानविशेषैस् तु निर्दहेयुः स्वपातकम्॥ २७॥
छुरिणः श्यामशबलाः षण्डामर्का उदुम्बराः। शबलाः श्यामदूता ये लोहदानेन प्रीणिताः॥ २८॥
पुत्राः पौत्रास्तथा बन्धुः सगोत्राः सुहृदस्तथा। ददते नाऽऽतुरे दानं ब्रह्मघ्नैस्तु समा हि ते॥ २९॥
पञ्चत्वे भूमियुक्तस्य शृणु तस्य च या गतिः। अतिवाहः पुनः प्रेतो वर्षोर्ध्वं सुकृतं लभेत्॥ ३०॥

इसलिए मरता हुआ मनुष्य लोहे का दान ब्राह्मणको दे। यह दान यमराज के आयुधों की सन्तुष्टि के लिए बताया गया है। गर्भ में रहे हुए प्राणी, बालक, युवक और वृद्ध सभी इन विशेष दानों से अपने पाप को जला सकते हैं। छुरीधारी, श्याम, शबल, षण्डामर्क, उदुम्बर, शबल इत्यादि यम के दूत लोहदान से प्रसन्न होते हैं। पुत्र, पौत्र, बन्धु, सगोत्र और मित्र जो कोई भी मरते हुए स्वजन के लिए दान नहीं देते हैं तो वे ब्रह्महत्या करने वाले के तुल्य पातकी होते हैं। मरण के समय में भूमि से वियुक्त (अन्तरिक्ष में मरने वाले) की जो गति होती है, उसको सुनो। वह आतिवाहिकशरीर वाला प्रेत होकर एक वर्ष बीतने पर ही पुण्यका फल प्राप्त कर सकता है॥ २६—३०॥

अग्नित्रयं त्रयो लोकास् त्रयो वेदास् त्रयोऽमराः। कालत्रयं त्रिसन्ध्यंच त्रयो वर्णास् त्रिशक्तयः॥ ३१॥
पादादूर्ध्वं कटिं यावत् तावद् ब्रह्माऽधितिष्ठति। ग्रीवां यावद् धरिर् नाभेः शरीरे मनुजस्य च॥ ३२॥
मस्तके तिष्ठतीशानो व्यक्ताऽव्यक्तो महेश्वरः। एकमूर्तेस्त्रयो भागा ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः॥ ३३॥
अहं प्राणः शरीरस्थे भूतग्रामचतुष्टये। धर्माऽधर्मे मतिं दद्यां सुखदुःखे कृताऽकृते॥ ३४॥
जन्तोर् बुद्धिं समास्थाय पूर्वकर्माधिवासिताम्। अहमेव तथा जीवान् प्रेरयामि च कर्मसु।
स्वर्गं च नरकं मोक्षं प्रयान्ति प्राणिनो ध्रुवम्॥ ३५॥

इस लोक में तीन अग्नि (गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि), तीन लोक (भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक), तीन वेद (ऋक्, यजुः, साम), तीन देवता (ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर), तीन काल (भूत, भविष्यत्, वर्तमान), तीन सन्ध्या (प्रातःसन्ध्या, मध्याह्नसन्ध्या, सायंसन्ध्या), तीन द्विज वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य), तीन शक्तियाँ (ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर की शक्तियाँ; सृष्टिशक्ति, पालनशक्ति और संहारशक्ति) हैं। मनुष्य के शरीर में पैर से कटितक का जो भाग है उस भागको ब्रह्माजी अपने अधीन में रखते हैं; कटि से गले तक के भाग को विष्णु अपने अधीन में रखते हैं। व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप वाले और जगत् को अपने अधीन में रखने वाले महेश्वर शिर में रहते हैं। **ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर एक-स्वरूप परमेश्वर [परब्रह्म] के तीन भाग हैं।** उद्भिज्ज, संस्वेदज, अण्डज और जरायुज इन चार प्रकार के प्राणियों के शरीर में प्राण के रूप में रहकर मैं ही धर्म में और अधर्म में, सुखपूर्ण काम में और दुःखपूर्ण काम में, अपने से पहले किए गए कार्य में और नहीं किए गए नवीन कार्य में भी बुद्धि देता हूँ। प्राणियों के पूर्व कर्मों से आधिवासित बुद्धि में रहकर मैं ही प्राणियों को विविध कामों में प्रेरित करता हूँ। प्राणी अपने कर्म के अनुसार स्वर्ग अथवा नरक अथवा मोक्ष में जाते हैं॥ ३१—३५॥

स्वर्गस्थं नरकस्थं वा श्राद्धेनाऽऽप्यायनं भवेत्। तस्माच् छ्राद्धानि कुर्वीत त्रिविधानि विचक्षणः॥ ३६॥
मत्स्यं कूर्मं च वाराहं नारसिंहं च वामनम्। रामं रामं च कृष्णं च बुद्धं चैव सकल्किनम्।

एतानि दश नामानि स्मर्तव्यानि सदा बुधैः॥ ३७॥

स्वर्गं जीवाः सुखं यान्ति च्युताः स्वर्गाच् च मानवाः। लब्ध्वा सुखं च वित्तं च दयादाक्षिण्यसंयुता।
पुत्रपौत्रैर् धनैराढ्या शरदां शतम्॥ ३८॥
आतुरे च ददेद् दानं विष्णुपूजां च कारयेत्। अष्टाक्षरं तथा मन्त्रं जपेद् वा द्वादशाक्षरम्॥ ३९॥
पूजयेच् छुक्लपुष्पैश्च नैवेद्यैर् घृतपाचितैः। तथा गन्धैश्च धूपैश्च श्रुति-स्मृतिमनूदितैः॥ ४०॥

स्वर्ग में रहने वाले का और नरक में रहने वाले का भी श्राद्ध से आप्यायन होगा। इसलिए विचार चतुर मनुष्य तीनों प्रकार का श्राद्ध करे। विज्ञजनों को मत्स्यावतार, कूर्मावतार, वराहावतार, नरसिंहावतार, वामनावतार, परशुरामावतार, रामावतार, कृष्णावतार, बुद्धावतार और कल्क्यवतार इन दश अवतारों के नामों का स्मरण करना चाहिए। इनके स्मरण से मनुष्य सुख से ही स्वर्ग जाते हैं, स्वर्ग से यहाँ लौटे हुए मनुष्य भी सुख और धन को पाकर दया और मिलनसारपन से युक्त और पुत्र-पौत्रों से तथा धन से सम्पन्न होकर सौ वर्षतक जीवित रहेंगे। मरण आसन्न होने पर दान दे, विष्णु की पूजा कराए, अष्टाक्षर मन्त्र **(ॐ नमो नारायणाय)** अथवा द्वादशाक्षर मन्त्र **(ॐ नमो भगवते वासुदेवाय)** को जपे। श्रुति-स्मृति के मन्त्रों में कथित श्वेत पुष्पों से, घी में पकाए हुए नैवेद्यों से तथा चन्दनों से तथा धूपों से विष्णु की पूजा करे ३६—४०॥

विष्णुर् माता पिता विष्णुर् विष्णुःस्वजनबान्धवाः। यत्र विष्णुं न पश्यामि तेन वासेन किं मम॥ ४१॥
जले विष्णुः स्थले विष्णुर् विष्णुः पर्वतमस्तके। ज्वालामालाकुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत्॥ ४२॥
वयमापो वयं पृथ्वी वयं दर्भा वयं तिला। वयं गावो वयं राजा वयं वायुर् वयं प्रजाः॥ ४३॥
वयं हेम वयं धान्यं वयं मधु वयं घृतम्। वयं विप्रा वयं देवा वयं शम्भुश् च भूर् भुवः॥ ४४॥
अहं दाता अहं ग्राही अहं यज्वा अहं क्रतुः। अहं हर्ता अहं धर्मो अहं पृथ्वी ह्याहं जलम्॥ ४५॥

माता विष्णु हैं, पिता भी विष्णु ही हैं, अपने सभी जन और बान्धव जन भी विष्णु ही हैं, जहाँ विष्णु को नहीं देखता हूँ उस वास से मेरा क्या होगा। जल में विष्णु हैं, स्थल में विष्णु हैं, पर्वत की चोटी में विष्णु हैं, अग्नि की ज्वालाओं के समूह से युक्त विकट स्थल में भी विष्णु हैं, सभी जगत् विष्णुमय है। जल हम हैं, पृथ्वी हम हैं, कुश हम हैं, तिल हम हैं, गाय हम हैं, राजा हम हैं, वायु हम हैं, प्रजा हम हैं, सोना हम हैं, धान्य हम हैं, मधु हम हैं, हम घी हैं, ब्राह्मण हम हैं, देवता हम हैं, शम्भु और भूर्लोक तथा भुवर्लोक भी हम हैं। देने वाला मैं हूँ, प्रतिग्रह करने वाला मैं हूँ, यज्ञ करने वाला मैं हूँ, यज्ञ मैं हूँ, हरण करने वाला मैं हूँ, धर्म मैं हूँ, पृथ्वी मैं हूँ, जल मैं हूँ॥ ४१—४५॥

धर्माधर्मे मतिं दद्यां कर्मभिस्तु शुभाऽशुभैः। यत् कर्म क्रियते क्वाऽपि पूर्वजन्मार्जितं खग॥ ४६॥
धर्मे मतिमहं दद्यामधर्मेऽप्यहमेव च। यतनं कुरुते सोऽपि धर्मे मुक्तिं ददाम्यहम्॥ ४७॥
मनुजानां हिता तार्क्ष्यं अन्ते वैतरणी स्मृता। तयाऽवमत्य पापौघं विष्णुलोकं स गच्छति॥ ४८॥
बालत्वे यच्च कौमारे यच् च परिणतौ च यत्। सर्वावस्थाकृतं पापं यच् च जन्मान्तरेष्वपि॥ ४९॥
यन् निशायां तथा प्रातर् यन् मध्याह्नपराह्णयोः। सन्ध्ययोर् यत् कृतं कर्म कर्मणा मनसा गिरा।
दत्त्वा वरां सकृदति कपिलां सर्वकामिकाम्। उद्धरेदन्तकाले स आत्मानं पापसञ्चयात्॥ ५१॥
गावो ममाऽग्रतः सनतु पृष्ठतः पार्श्वतस् तथा। गावो मे हृदये सन्तु सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥ ५२॥
या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवे व्यवस्थिता। धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु॥ ५३॥

मैं मनुष्यों को उनके शुभ अथवा अशुभ कर्मों के विचार से धर्म में अथवा अधर्म में बुद्धि देता हूँ। हे पक्षिन्, पूर्वजन्म से अर्जित रूप में कहीं भी जो कर्म किया जाता है, उसमें भी मैं ही धर्मकर्म में अथवा अधर्मकर्म में बुद्धि

देता हूँ। मनुष्य धर्मकार्य में यत्न करता है और मैं उसको पाप से मुक्ति देता हूँ। हे गरुड, अन्तकाल में मनुष्यों के लिए वैतरणी गाय का दान हितकारी है। उस दान से मनुष्य पापों के ढेर का तिरस्कार करके विष्णुलोक में जाता है। जो बालककाल में, जो कुमारावस्था में, जो वृद्धावस्था में और सभी अवस्थाओं में किया गया पाप है, जो पूर्वजन्मों में भी किया गया पाप है, जो रात में और प्रातःकाल में, जो मध्याह्न में और अपराह्न में तथा प्रातःसन्ध्याकाल में और सायंसन्ध्याकाल में किया गया पाप है, और जो कर्म से, मन से और वाणी से किया गया पापकर्म है, उन सब पापों के सञ्चय से मनुष्य अन्तकाल में एक बार भी सम्पूर्ण कामनाओं से पूर्ण करने वाली अच्छी भूरे रङ्ग की गाय को (वैतरणी गाय के रूप में) दान में देकर अपने को उद्धार करता हूँ (गाय का दान देते हुए इस प्रकार से गाय की प्रार्थना करे) मेरे आगे गायें हों, मेरे पीछे और दाहिनी ओर और बायीं ओर भी गायें हों, मेरे हृदय में गायें हो, मैं गायों के बीच में बास करता हूँ। सभी प्राणियों की जो लक्ष्मी हैं, जो लक्ष्मी देवों में भी सुस्थिर है, धेनु के रूप में रही हुई वह देवी मेरे पापों को दूर करे॥ ४६—५३॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-३१

श्रीविष्णुरुवाच—

ये नराः पापसंयुक्तास्ते गच्छन्ति यमालयम्। नृणां मत्साक्षिकं दततमनन्तफलदं भवेत्॥ १॥
यावद्रजःप्रमाणाब्दं स्वर्गे तिष्ठति भूमिदः। अश्वारूढाश्च ते यान्ति ददते ये ह्युपानहौ॥ २॥
आतपे श्रमयोगेण न दह्यन्ते च कुत्रचित्। छत्रदानेन वै प्रेता विचरन्ति सुखं पथि॥ ३॥
यमुद्दिश्य ददात्यन्नं तेन चाऽऽप्यायितो भवेत्॥ ४॥
अन्धकारे महाघोरे अमूर्ते लक्ष्यवर्जिते। उद्योतेनैव ते यान्ति दीपदानेन मानवाः॥ ५॥

श्रीविष्णु ने कहा—जो मनुष्य पाप से युक्त होते हैं, वे यमराज के घर में जाते हैं। मेरे समक्ष में दिया गया दान मनुष्यों के लिए अनन्त फल देने वाला होता है। भूमिदान देने वाला मनुष्य दी गई भूमि को धूलि के रूप में ले जाने पर जितने धूलिकण हो सकेंगे, उतने वर्षों तक स्वर्ग में रहता है। जो मनुष्य जूते का दान देते हैं, वे घोड़े पर सवार होकर यमलोक में जाते हैं। छाते के दान से प्रेत धूप में भी थकान से नहीं जलते हैं, यममार्ग में सुखपूर्वक ही चलते हैं। जिसको उद्देश्य करके अन्न देता है, उससे वह आप्यापित (तृप्त) होगा। दीप के दान से मनुष्य यममार्ग के लक्ष्यदर्शन से रहित, अमूर्त और महाभयङ्कर गाढ अन्धकार में भी प्रकाश के सहारे चलते हैं॥ १—५॥

आश्विने कार्तिके वाऽपि माघे मृततिथावपि। चतुर्दश्यां च दीयेत दीपदानं सुखाय वै॥ ६॥
प्रत्यहं च प्रदातव्यं मार्गे सुविषमे नरैः। यावत् संवत्सरं वाऽपि प्रेतस्य सुखलिप्सया॥ ७॥
कुले द्योतति शुद्धात्मा प्रकाशत्वं स गच्छति। ज्योतिर्मयोऽसौ पूज्योऽसौ दीपदानप्रदो नरः॥ ८॥
प्राङ्मुखोदङ्मुखं दीपं देवागारे द्विजालये। कुर्याद् याम्यमुखं पित्रे अद्भिः सङ्कल्प्य सुस्थिरम्॥ ९॥
सर्वोपहारयुक्तानि पदान्यत्र त्रयोदश। यो ददाति मृतस्येह जीवन्नप्यात्महेतवे॥ १०॥
स गच्छति महामार्गे महाकष्टविवर्जितः। आसनं भाजनं भोज्यं दीयते यद् द्विजातये॥ ११॥
सुखेन भुञ्जमानस्तु ते गच्छत्यलं पथि। कमण्डलुप्रदानेन तृषितः पिबते जलम्॥ १२॥

यममार्ग में सुखके लिए आश्विन मास में अथवा कार्तिक मास में अथवा माघमास में मृततिथियों (क्षयाहों) में और (कृष्ण) चतुर्दशियों में भी दीपदान किया जा सकता है। अथवा प्रेत की अत्यन्त विषम यममार्ग में सुखप्राप्ति की इच्छा से मृत्यु के दिन से वर्षपर्यन्त प्रतिदिन मनुष्यों से दीपदान किया जाना चाहिए। जो दीपदान करने वाला

मनुष्य है वह कुल में प्रकाशित होता है, उस का चित्त शुद्ध होता है, वह प्रकाशरूप में प्राप्त होता है, वह ज्योतिर्मय और पूज्य भी होता है। पानी लेकर सङ्कल्प करके देवता के मन्दिर में और ब्राह्मण के घर में दीप पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख करके स्थिर करना चाहिए। पितरों के लिए दक्षिणाभिमुख करके स्थिर करना चाहिए। जो मनुष्य मरे हुए मनुष्य के लिए अथवा अपनी जीवितावस्था में अपने ही लिए भी सभी उपहारों से युक्त तेरह पद (पदार्थ) दान में देता है वह यममार्ग में महाकष्टों से रहित होकर जाता है। जो ब्राह्मण को आसन, बर्तन और भोज्यपदार्थ दिया जाता है उससे मनुष्य यममार्ग में सुख से भोजनादि करता हुआ अच्छी तरह चलता है। कमण्डलु के दान से यममार्ग में प्यास लगने पर जल पीने को मिलता है॥ ६—१२॥

भाजनं वस्त्रदानं च कुसुमं चाऽङ्गुलीयकम्। एकादशाहे दातव्यं प्रेतोद्धरणहेतवे॥ १३॥
त्रयोदश पदानीत्थं प्रेतस्य शुभमिच्छता। दातव्यानि यथाशक्त्या प्रेतोऽसौ प्रीणितो भवेत्॥ १४॥
भोजनानि तिलांश् चैव उदकुम्भांस् त्रयोदश। मुद्रिकां वस्त्रयुग्मं च तया याति परां गतिम्॥ १५॥
योऽश्वं नावं गजं वाऽपि ब्राह्मणे प्रतिपादयेत्। स महिम्नोऽनुसारेण तत्तत् सुखमुपाश्नुते॥ १६॥
नानालोकान् विचरति महिषीं च ददाति यः। यमपत्रस्य या माता महिषी सुगतिप्रदा॥ १७॥
ताम्बूलं कुसुमं देयं याम्यानां हर्षवर्धनम्। तेन सम्प्रीण्तिाः सर्वे तस्मिन् क्लेशं न कुर्वते॥ १८॥
गो-भू-तिल-हिरण्यानि दानान्याहुः स्वशक्तितः॥ १९॥
मृतोद्देशेन यो दद्याज् जलपात्रं च मृन्मयम्। उदपात्रसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः॥ २०॥

प्रेत के उद्धार के लिए ग्यारहवें दिन में बर्तन, वस्त्र, फूल और अँगूठी देने चाहिए। इस प्रकार से तेरह पद (पदार्थ) प्रेत के कल्याण चाहने वालों को अपनी शक्ति के अनुसार देने चाहिए। इससे प्रेत तृप्त और प्रसन्न होगा। विविध भोज्य पदार्थ, तिल और तेरह जलघट, अँगूठी और वस्त्राद्वय भी दान में देना चाहिए। उस दानक्रिया से प्रेत परमगति को प्राप्त करता है। जो मनुष्य घोड़ा, नौका अथवा हाथी ब्राह्मण को देगा, वह उस उस पदार्थ के दान के माहात्म्य के अनुसार उस उस सुख को प्राप्त करता है। जो भैंस का दान करता है, वह नाना प्रकार के स्वर्ग लोकों में विचरण करता है। जो यम के वाहन की माता है, वह भैंस दान में देने से सुगति देने वाली होती है। यम के अनुचरों के हर्ष को देने वाले पान का और फूल का दान करना चाहिए। उससे अच्छी तरह तृप्त और प्रसन्न होके वे सभी यमानुचर लोग उस प्रेत को क्लेश नहीं देते हैं। अपनी शक्ति के अनुसार ही गाय, भूमि, तिल और स्वर्ण के दान देने की बात मुनि लोग बताते हैं। मृत मनुष्य के लिए मनुष्य मिट्टी का जलपात्र देगा तो हजारों जलपात्र देने का फल पाता है॥ १३—२०॥

यमदूता महारौद्राः करालाः कृष्णपिङ्गलाः। न भीषयन्ति तं याम्या वस्त्रदाने कृते सति॥ २१॥
मार्गे हि गच्छमानस् तु तृष्णार्तः श्रममीडितः। घटान्नदानयोगेन सुखी भवति निश्चितम्॥ २२॥
शय्या दक्षिणया युक्ता आयुधाम्बरसंयुता। हैमश्रीपतिना युक्ता देया विप्राय शर्मणे।
तथा प्रेतत्वमुक्तोऽसौ मोदते सह दैवतैः॥ २३॥
एतत् ते कथितं तार्क्ष्य दानमन्त्येष्टिकर्मजम्। अधुना कथयिष्येऽहमन्यदेहप्रवेशनम्॥ २४॥
जातस्य मृत्युलोके वै प्राणिनो मरणं ध्रुवम्। मृत्यौ कुर्यात् स्वधर्मेण यास्यतश्च परन्तप॥ २५॥
पूर्वकाले मृतानां च प्राणिनां च खगेश्वर। सूक्ष्मो भूत्वा त्वसौ वायुर् निर्गच्छत्यास्यमण्डलात्॥ २६॥
नवद्वारै रोमभिश् च जनानां तालुरन्ध्रकात्। पापिष्ठानामपानेन जीवो निष्क्रामति ध्रुवम्॥ २७॥

वस्त्र के दान दिए जाने पर प्रेत को यमलोकवासी अत्यन्त क्रोधी भयङ्कर और काले तथा भूरे यमदूत डराते

नहीं हैं। जलघट और अन्न का दान देने से यममार्ग में जाता हुआ, प्यास से आर्त और थकान से पीड़ित प्रेत निश्चित रूप में सुखी होता है। दक्षिणा से युक्त तथा शस्त्रास्त्र और वस्त्रों से सहित विष्णु की स्वर्णप्रतिमा से भी युक्त शय्या कल्याणरूप ब्राह्मण को देना चाहिए। उससे मृत व्यक्ति प्रेतत्व से मुक्त होकर देवताओं के साथ में सुखभोग करता है। हे गरुड, अन्त्येष्टि कर्म के अङ्ग के रूप का दान यह तुम को बता दिया। अब मैं प्राणी के दूसरे देह में प्रवेश को बताऊँगा। **मृत्युलोक में जन्मे हुए प्राणी का मरण अवश्य होता है।** हे परन्तप खगेश्वर, मृत्यु प्राप्त होने पर जा रहे व्यक्ति के लिए और **पूर्वकाल में मृत व्यक्तियों के लिए भी मनुष्य अपने धर्म के अनुसार कृत्य करे।** मरते हुए मनुष्यों का प्राणवायु सूक्ष्म होकर मुखमण्डल से और शरीर के नौ द्वारों से और रोमकूपों से और तालरन्ध्र से निकलता है। मरते हुए पापिष्ठ मनुष्यों के जीव अवश्य ही अपानमार्ग से निकलता है॥ २१—२७ ॥

शरीरं च पतत् पश्चान् निर्गते मरुतीश्वरे। वाताहतः पतत्येव निराधारो यथा द्रुमः॥ २८॥
पृथिव्यां लीयते पृथ्वी आपश् चैव तथाप्सु च। तेजस् तेजसि लीयेत समीरणः समीरणे।
आकाशे च तथाऽऽकाशः सर्वव्यापी च शङ्करे॥ २९॥
तत्र कामस् तथा क्रोधः काये पञ्चेन्द्रियाणि च। एते तार्क्ष्य समाख्याता देहे तिष्ठन्ति तस्कराः॥ ३०॥
कामः क्रोधो ह्यहङ्कारो मनस् तत्रैव नायकः। संहारकश् च कालोऽयं पुण्यपापसमन्वितः॥ ३१॥
जगतश् च स्वरूपं तु निर्मितं स्वेन कर्मणा। पुनर् देहान्तरं याति सुकृतैर् दुष्कृतैर् नरः॥ ३२॥
पञ्चेन्द्रियसमायुक्तं सकलैर् विषयैः सह। प्रविशेत् स नवं देहं गृहे दग्धे यथा गृही॥ ३३॥
शरीरे ये समासीनाः सम्भवे सर्वधातवः। षाट्कौशिको ह्ययं कायो मातापित्रोश्च धातवः॥ ३४॥
सम्भवेयुस् तथा तार्क्ष्य सर्वे वाताश् च देहिनाम्। मूत्रं पुरीषं तद्योगा ये चाऽन्ये व्याधयस्तथा॥ ३५॥
अस्थि शुक्रं तथा स्नायुर् देहेन सह दह्यते। एष ते कथितस् तार्क्ष्य विनाशः सर्वदेहिनाम्॥ ३६॥

गिरता हुआ शरीर का धारक प्राणेश्वर निकलने पर आधाररहित होकर वायु से आहत पेड की तरह गिरता ही है। शरीर का पृथिवीभाग पृथिवीमें ही लीन होता है, जलभाग जल में, तेजोभाग तेज में ही लीन होगा, वायवीय भाग वायु में आकाशीय भाग आकाश में और सर्वेन्द्रियव्यापी मन शरीर का कल्याण करने वाले प्राण में लीन होगा, उसमें शरीर में काम, क्रोध और पाँच इन्द्रिय हैं। हे गरुड, तस्कर कहे जाने वाले ये देह में रहते हैं। उस शरीर में काम, क्रोध तथा अहङ्कार और इनका नायक मन तथा पुण्य और पापोंसे सहित संहारक काल भी रहते हैं। जगत् का स्वरूप अपने कर्म से निर्मित है। मनुष्य धर्म से और अधर्म से दूसरे देह में जाता है। एक घर जल जानेपर गृहस्थ जिस प्रकार दूसरे घर में प्रवेश करता है, उसी प्रकार जीव पाँच इन्द्रियों से समायुक्त और सभी विषयों से सहित नए शरीर में प्रवेश करेगा। जन्म के समय में शरीर में जो सभी धातु रहते हैं उनसे यह षाट्कौशिक शरीर बनता है, शरीर में रहने वाले रस-रक्त-मांस-मेद-अस्थि-मज्जा-शुक्र ये धातु माता-पिता के हैं। प्राणियों के प्राण अपान इत्यादि सभी वायु भी जन्म के समय में ही उत्पन्न होते हैं, मूत्र और विष्ठा भी शरीर के साथ ही उत्पन्न होते हैं, उन धातुओं के और मलों के योग से उत्पन्न होने वाले व्याधि (रोग) भी उत्पन्न होते हैं। ये सब और अस्थि (हड्डी) शुक्र (वीर्य) तथा स्नायु भी शरीर के साथ में जल जाते हैं। हे गरुड, सभी प्राणियों का यह मृत्यु तुम को बताया गया॥ २८—३६ ॥

कथयामि पुनस्तेषां शरीरं च यथा भवेत्। एकस्तम्भं स्नायुबद्धं स्थूणाद्वयसमुद्धृतम्॥ ३७॥
इन्द्रियैश् च समायुक्तं नवद्वारं शरीरकम्। विषयैश् च समाक्रान्तं काम-क्रोधसमाकुलम्॥ ३८॥
राग-द्वेष-समाकीर्णं तृष्णादुर्गं सुदुस्तरम्। लोभजाल-समायुक्तं पुरं पुरुषसञ्ज्ञितम्॥ ३९॥
एतद्गुणसमायुक्तं शरीरां सर्वदेहिनाम्। तिष्ठन्ति देवताः सर्वा भुवनाति चतुर्दश॥ ४०॥

आत्मानं ये न जानन्ति ते नराः पशवः स्मृताः। एवमेतन् मयाऽऽख्यातं शरीरं ते चतुर्विधम्॥ ४१॥
चतुरशीतिलक्षाणि निर्मिता योनयः पूरा। उद्भिजाः स्वदेजाश् चैव अण्डजाश् च जरायुजाः॥ ४२॥
एतत् ते सर्वमाख्यातं यत् पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ॥ ४३॥

उन प्राणियों का शरीर जैसा होता है, उसको मैं फिर बताता हूँ। मुख्य प्राणरूपी एक ही खम्भे से युक्त, स्नायुओं से बद्ध, दो खूंटों से उठाया गया, इन्द्रियों से सहित और नौ द्वारों से युक्त प्राणियों का शरीर है। वह रूप-रसादि विषयों से आक्रान्त, काम-क्रोध इत्यादि से व्याप्त, राग-द्वेषों से पूर्ण, तृष्णारूपी दुर्ग से युक्त, अत्यन्त दुष्पार, लोभ के जाल से युक्त पुरुष नाम से व्यवहार किया जाने वाला पुर है। सभी प्राणियों का शरीर ऐसे ही गुणों से युक्त होता है। उसमें सभी देवता और चौदह भुवन रहते हैं। आत्मा को जो मनुष्य नहीं जानते हैं, वे पशु समझे गए हैं। इस प्रकार मैं ने तुमको चार प्रकारके शरीरको बताया। पुराकाल में चौरासी लाख योनियाँ बनाई गइ हैं। वे योनियाँ उद्भिज्-ज, स्वेद-ज, अण्ड-ज और जरायु-ज हैं। हे पाप से रहित गरुड, तुमने मुझको जो पूछा यह सब मैंने बता दिया॥ ३७—४३॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-३२

तार्क्ष्य उवाच-

कथमुत्पद्यते जन्तुर् भूतग्रामे चतुर्विधे। त्वचा रक्तं तथा मासं मेदो मज्जाऽस्थि जीवितम्॥ १॥
पादौ पाणी तथा गुह्य जिह्वा-केश-नखाः शिरः। सन्धिमार्गाश् च बहुशो रेखा नैकविधास् तथा॥ २॥
कामः क्रोधो भयं लज्जा मानो हर्षःसुखाऽसुखम्। चित्रितं छिद्रितं चाऽपि नानाजालेन वेष्टितम्॥ ३॥
इन्द्रजालमिदं मन्ये संसारेऽसारसागरे। कर्ता कोऽत्र हृषीकेश संसारे दुःखसङ्कुले॥ ४॥

गरुड ने कहा—चार प्रकार के उद्भिज्जादि प्राणियों के समुदाय में प्राणी कैसे उत्पन्न होता है? त्वचा, रक्त, मांस, मेदा, मज्जा, अस्थि, प्राण, दो पैर, दो हाथ, गुह्य भाग, जीभ, केश, नाखून, शिर, बहुत से सन्धिभाग, अनेक प्रकार की रेखाएं, काम, क्रोध, भय, लज्जा, अभिमान, हर्ष, सुख, दुःख, चित्रों से संयोजन, और छिद्रों से संयोजन तथा अनेक जालों से वेष्टन यह सब इस साररहित संसाररूपी सागर में आश्चर्यदायक निर्माण मानता हूँ। हे इन्द्रियों के स्वामिन्, दुःखों से पूर्ण संसार में इन निर्माणों में कर्ता कौन है?॥१—४॥

श्रीविष्णुरुवाच-

कथयामि परं गोप्यं कोशस्याऽस्य विनिर्णयम्। यस्य विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रजायते॥ ५॥
साधु पृष्टं त्वया लोके सदयं जीवकारणम्। वैनतेय शृणुष्व त्वमेकाग्रकृतमानसः॥ ६॥
ऋतुकाले च नारीणां वर्ज्यं दिनचतुष्टयम्। यतस् तस्मिन् ब्रह्महत्या पुरा वृत्रसमुत्थिताम्॥ ७॥
ब्रह्मा शक्रात् समुत्तार्य चतुर्थांशेन दत्तवान्। तावन् नाऽऽलोक्यते वक्त्रं पापं यावद् वपुःस्थितम्॥ ८॥
प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी। तृतीये रजकी ज्ञेया चतुर्थेऽहनि शुध्यति॥ ९॥
सप्ताहात् पितृदेवानां भवेद् योग्या कृतार्चने। सप्ताहमध्ये यो गर्भस् तत्सम्भूतिर् मलिम्लुचा॥ १०॥

श्रीविष्णु ने कहा—इस शरीरकोश का विवरणात्मक निर्णय मैं करता हूँ, जिसके विशिष्ट ज्ञान ही से सर्वज्ञत्व उत्पन्न हो जाता है। हे विनता के पुत्र, तुमने दयापूर्वक लोक में जीव के कारण के विषय में अच्छा प्रश्न किया, तुम मन को एकाग्र करके सुनो। ऋतुकाल में स्त्रियों के चार दिन त्याज्य होते हैं। क्योंकि उस समय की स्त्रियों को पुराकाल में वृत्र के हत्या से उत्पन्न और इन्द्र में लगी हुई ब्रह्महत्या को चतुर्थांशरूप में ब्रह्माजी ने दिया था।

जब तक स्त्रियों के शरीर में ब्रह्महत्या का अंशरूप पाप रहता है, तब तक उनका मुख नहीं देखा जाता है। रजोदर्शन के पहले दिन में स्त्री चाण्डालीतुल्य होती है, दूसरे दिन में स्त्री ब्रह्मघातिनीतुल्य होती है, तीसरे दिन में स्त्री रजकीतुल्य होती है, और चतुर्थ दिन में शुद्ध होती है। रजोदर्शन के सप्ताह बीतने पर स्त्री पितरों के और देवताओं के पूजन में योग्य हो गई होती है। स्त्रियों में रजोदर्शन के प्रारम्भ से सप्ताहमध्य में जो गर्भ स्थापित होता है, उस की उत्पत्ति मलिम्लुच (मलिन) होती है॥ ५—१०॥

निषेकसमये पित्रोर् यादृक् चित्तविकल्पना। तादृग्गर्भसमुत्पत्तिर् जायते नाऽत्र संशयः॥ ११॥
युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिसु। पूर्वसप्तकमुत्सृज्य तस्माद् युग्मासु संविशेत्॥ १२॥
षोडशर्तुर् निशाः स्त्रीणां सामान्यात् समुदाहृतः। या चतुर्दशमी गर्भस् तिष्ठति तत्र चेत्॥ १३॥
गुणभाग्यनिधिः पुत्रस्तत्र जायेत धार्मिकः। सा निशा तत्र सामान्यैर् न लभ्येत खगाधिप॥ १४॥
प्रायशः सम्भवत्यत्र गर्भस्त्वष्टाहमध्यतः। पञ्चमेऽहनि नारीणां कार्यं माधुर्यभोजनम्॥ १५॥

माता के गर्भाशय में पिता के वीर्य के सेचन के समय में माता-पिताओं के चित्तों में जैसा विचारतरङ्ग उठता है उसके अनुरूप ही गर्भ की उत्पत्ति होती हे, इसमें सन्देह नहीं है। **रजोदर्शन के सम रात्रियों में निषेचन (वीर्याधान) करने से पुत्र जन्मते हैं, विषम रात्रियों में निषेचन करने से स्त्रियाँ जन्मती हैं।** इसलिए (पुत्र चाहने वाला पुरुष) प्रथम सात रात्रियों को छोड़कर सम रात्रियों में (आठवीं, दसवीं, बारहवीं और सोलहवीं रात्रियों में) ऋतुमती पत्नी के साथ सोए। सामान्यतया रजोदर्शन से सोलह रात्रियाँ स्त्रियों का ऋतुकाल (गर्भ रहनेका समय) बताया गया है। उसमें जो चौदहवीं रात्रि है, उसमें स्त्री में गर्भ रहता है तो उस गर्भ से गुणों का और भाग्य का धनी और धार्मिक पुत्र जन्मेगा, हे पक्षियों के स्वामिन्, वह रात्रि सामान्य जनों से नहीं पाई जा सकती है। इस ऋतुकाल में प्रायः आठ दिनों के मध्य में गर्भ रहता है। रजोदर्शन के पाँचवें दिन में स्त्रियों को माधुर्यप्रधान भोजन कराना चाहिए॥ ११—१५॥

कटु क्षारं च तीक्ष्णं च त्याज्यमुष्णं च दूरतः। तत्क्षेत्रमोषधीपात्रं बीजं चाऽप्यमृतायितम्॥ १६॥
तस्मिन्नुप्त्वा नरः स्वामी सम्यक् फलमवाप्नुयात्। तस्याश्चैवाऽऽतपो वर्ज्यः शीतलं केवलं चरेत्॥ १७॥
ताम्बुलपुष्पश्रीखण्डेः संयुक्तः शुचिवस्त्रभृत्। धर्ममादाय मनसि सुतल्पं संविशेत् पुमान्॥ १८॥
निषेकसमये यादृङ् नरचित्तविकल्पना। तादृक्स्वभावसम्भूतिर् जन्तुर् विशति कुक्षिगः॥ १९॥
शुक्रशोणितसंयोगे पिण्डोत्पत्तिः प्रजायते। वर्धते जठरे जन्तुस् तारापतिरिवाऽम्बरे॥ २०॥

उस समय के कड़ुवा, ज्यादा नमकीन, चरपरे स्वाद का, ज्यादा गरम भोजन दूर से ही त्याग देना चाहिए। उस प्रकार का क्षेत्र (उस प्रकार के नियम में रही हुई स्त्री का गर्भाशय) औषधि का पात्र होता है, बीज (वीर्य) अमृत (जीवन्त) रूप का होता है, उस औषधिपात्र में बीज बोकर स्वामी मनुष्य अच्छी तरह फल पाएगा। ऋतुमती स्त्री के लिए आतप (कड़ा धूप) त्याज्य है, केवल शीतल उपचार की सेवा करनी चाहिए। पान, फूल और श्रीखण्डचन्दन से सुवासित होकर और शुद्ध वस्त्रों को पहनकर मन में धर्म को लेकर पुरुष सुखदायी शय्या में ऋतुमती पत्नी के साथ सोए। वीर्य के सेचन के समय में मनुष्य के चित्त में जैसा विचारतरङ्ग उठता है उसी के अनुरूप स्वभाव वाले जन्म को पाने के लिए प्राणी गर्भ में प्रवेश करता है। पुरुष के वीर्य के और स्त्री के डिम्ब के संयोग से गर्भपिण्ड की उत्पत्ति होती है और वह पिण्ड प्राणी के रूप में गर्भाशय में आकाश में चन्द्र की तरह बढता है॥ १६—२०॥

चैतन्यं बीजरूपं हि शुक्रे नित्यं व्यवस्थितम्। चित्तं च शुक्रं च यदा ह्येकत्वमाप्नुयुः॥ २१॥

तदा द्रवमवाप्नोति योषागर्भाऽऽशये नरः। रक्ताधिक्ये भवेन् नारी शुक्राधिक्ये भवेत् पुमान्॥ २२॥
शुक्रशोणितयोः साम्ये गर्भाः षण्ढत्वमाप्नुयुः। अहोरात्रेण कललं बुद्बुदं पञ्चभिर् दिनैः॥ २३॥
चतुर्दशे भवेन् मांसं मिश्रधातुसमन्वितम्। घनं मांसं च विंशाहे गर्भस्थे वर्धते क्रमात्॥ २४॥
पञ्चविंशतिमे चाह्नि बलं बुष्टिश् च जायते। तथा मासे तु सम्पूर्णे पञ्च तत्त्वानि धारयेत्॥ २५॥

बीजरूप चैतन्य पुरुष के वीर्य में सदा ही उपस्थित रहता है। जब काम, चित्त और वीर्य एकत्व में पहुँचेंगे तभी स्त्री के गर्भाशय में मनुष्य द्रवित (द्रव के रूप में प्रविष्ट) हो जाता है। स्त्री के शोणित की प्रबलता होने पर वह द्रव स्त्रीरूप में परिणत होगा पुरुष के वीर्य की प्रबलता होने पर पुरुषरूप में परिणत होगा। वीर्य के और शोणित के साम्य होने पर वे द्रवरूप गर्भ नपुंसकत्व में पहुँच जाएंगे। गर्भाशय में प्रविष्ट वह द्रव एक अहोरात्र में कलल होगा, पाँच दिनों में बुदबुद होगा। चौदहवें दिन में मांसरूप होगा, बीसवें दिन में रस-रक्त-मांस-मेद इत्यादि धातुओं के सूक्ष्मांशो से युक्त ठोस मांस होगा ओर वह ठोस मांस-पिण्ड गर्भाशय में रहकर बढ़ता जाता है। पचीसवें दिन में बल और पुष्टि उत्पन्न होते हैं और महीना पूरा होने पर पञ्च तत्त्वों का (पञ्च तत्त्वों के गुणों का ग्रहण करने वाले इन्द्रियों के सूक्ष्म रूपों का) धारण करेगा॥ २१—२५॥

मासद्वये तु सञ्जाते त्वचा मेदश् च जायते। तथा मासे तु सम्पूर्णे पञ्च तत्त्वानि धारयेत्॥ २६॥
कर्णौ च नासिके वक्षो जायेरन् मासि पञ्चमे। कण्ठरन्ध्रोदरं षष्ठे गुह्यादिर् मासि सप्तमे॥ २७॥
अङ्गप्रत्यङ्गसम्पूर्णो गर्भो मासैरथाऽष्टभिः। अष्टमे चलते जीवो धात्रीगर्भे पुनःपुनः।
नवमे मासि सम्प्राप्ते गर्भस्थौजो दृढं भवेत्॥ २८॥
इच्छा सञ्जायते तस्य गर्भवासपरिक्षये। नारी वाऽथ नरो वाऽथ नपुंस्त्वं वाऽभिजायते॥ २९॥
शक्तित्रयं विशालाक्षं षाट्कौशिकासमायुतम्। पञ्चेन्द्रियसमोपेतं दशनाडीविभूषितम्॥ ३०॥
दशप्राणगुणोपेतं यो जानाति स योगवित्। मज्जाऽस्थिशुक्रमांसानि रसो रक्तबलं तथा॥ ३१॥
षाट्कौशिकमिदं पिण्डं स्याज् जन्तोः पाञ्चभौतिकम्। नवमे दशमे मासि जायते पाञ्चभौतिकः॥ ३२॥
सूतिवातैः समाकृष्टः पीडया विह्वलीकृतः। पुष्टो नाड्याः सुषुम्णाया योषिद्गर्भस्थितस्त्वरन्॥ ३३॥

दो महीने पूर्ण होने पर त्वचा और मेद स्पष्ट हो जाते हैं, तीन महीनों में मज्जा और हड्डी स्पष्ट होते हैं, चौथा महीना पूर्ण होने पर कण्ठरन्ध्र (गलबिल) और उदर स्पष्ट हाते हैं, सातवाँ महीना पूर्ण होने पर गुह्य अङ्ग इत्यादि स्पष्ट होते हैं। आठ महीनों से गर्भ सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गों से पूर्ण हो जाता है। आठवें महीने में गर्भस्थ प्राणी गर्भधारण करने वाली स्त्री के गर्भ में वारवार चलता है। नवाँ महीना पूर्ण होने पर गर्भस्थ प्राणी का ओजोधातु दृढ होगा। तब उस प्राणी का गर्भवास समाप्त करने की (गर्भ से निकलने की) इच्छा होती है। स्त्री अथवा पुरुष अथवा नपुंसक रूप में वह प्राणी जन्म लेता है। तीन शक्तियों से (सर्जन-पालन-संहरण-शक्तियों से) युक्त, मनरूपी विशाल इन्द्रिय से सहित, छः कोशों से वेष्टित शरीर से युक्त, पाँच ज्ञानेन्द्रियों से सहित, इडा-पिङ्गलादि दश नाडियों से विभूषित, प्राणाऽपानादि दश प्राणों के गुणों से सहित आत्मतत्त्व को जो यथार्थ रूप में जानता है, वही जीवात्मा और परमात्मा के ऐक्यरूप योग को जानने वाला है। मज्जा, अस्थित (हड्डी), शुक्र (वीर्य), मांस, रस और रक्तबल इन छः कोशों से युक्त, पञ्च महाभूतों से बना हुआ यह शरीरपिण्ड प्राणी का होगा। गर्भवास के नौवें अथवा दसवें महीने में पाञ्चभौतिक शरीर से युक्त, जन्म कराने वाले वायु से आकृष्ट पीडा से विह्वल बनाया गया और स्त्री के गर्भ में रहते समय माँ की सुषुम्णा नाडी के प्रभाव से पुष्ट प्राणी बाहर निकलने के लिए शीघ्रता करता हुआ जन्म लेता है॥ २६—३३॥

क्षितिर् वारि हविर्भोक्ता पवनाकाशमेव च। एभिर् भूतैः पीडितस् तु निबद्धः स्नायुबन्धनैः॥ ३४॥
मूलभूता इमे प्रोक्ताः सप्त नाड्यन्तरे स्थिताः। त्वचाऽस्थिनाड्यो रोमाणि मांसं चैवाऽत्र पञ्चमम्॥ ३५॥
एते पञ्च गुणाः प्रोक्ता मया भूमेः खगेश्वर। यथा पञ्चगुणाश् चाऽऽपस्तााि तच् छृणु काश्यप॥ ३६॥
लाला मूत्रं तथा शुक्रं मज्जा रक्तं च पञ्चमम्। आपः पञ्चगुणाः प्रोक्ता ज्ञातव्यास्ते प्रयत्नतः॥ ३७॥
क्षुधा तृषा तथा निद्रा आलस्यं कान्तिरेव च। तेजः पञ्चगुणं प्रोक्तं तार्क्ष्य सर्वत्र योगिभिः॥ ३८॥
रागद्वेषौ तथा लज्जा भयं मोहस् तथैव च। इत्येतत् कथितं तार्क्ष्यं वायुजं गुणपञ्चकम्॥ ३९॥
आकुञ्चनं धावनं च लङ्घनं च प्रसारणम्। निरोधः पञ्चमः प्रोक्तो वायोः पञ्च गुणाः स्मृताः॥ ४०॥

जन्मे हुए प्राणी का देह पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन महाभूतों से पिण्डीभूत और स्नायुरूप बन्धनों से युक्त होगा। शरीर में ये सात ही नाडिंयों के बीच में मूलभूत तत्त्व बताए गए हैं। हे पक्षियों के स्वामिन्, त्वचा, अस्थि (हड्डी), नाडियाँ, रोवें और पाँचवाँ माँस ये पाँच गुण मुझसे शरीर में रही हुई भूमि के बताए गए हैं, हे कश्यपपुत्र, जिस प्रकार से जल भी पाँच गुण वाला है उस प्रकार के विवरण से युक्त उस बात को सुनो। लार, मूत्र, शुक्र, मज्जा और पाँचवाँ रक्त इन पाँच को लेकर शरीर में रहा हुआ जल पाँच गुण वाला बताया गया है, वे गुण यत्नपूर्वक जानने योग्य हैं। हे गरुड, भूख, प्यास, निद्रा, आलस्य और कान्ति इन पाँच को लेकर शरीर में रहा हुआ तेज भी योगियों से पाँच गुण वाला बताया गया है। हे गरुड, राग, द्वेष, लज्जा, भय और मोह इन पाँच गुणों का समुदाय शरीर में रहे हुए वायु से उत्पन्न बताया गया है। सिकुडना, दौडना, लाँघना, फैलाना और पाँचवें रूप में बताया गया रोकना ये वायु के पाँच गुण समझे गए हैं॥ ३४—४०॥

घोषश् छिद्राणि गाम्भीर्यं श्रवणं सर्वसंश्रयः। आकाशस्य गुणाः पञ्च ज्ञातव्यास् तार्क्ष्य यत्नतः॥ ४१॥
श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासा बुद्धीन्द्रियाणि च। पाणी पादौ गुदं वाक् च गुह्यं कर्मेन्द्रियाणि च॥ ४२॥
इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्णा च तृतीयका। गान्धारी गजजिह्वा च पूषा चैव यशा तथा॥ ४३॥
आलम्बुषा कुहूश् चैव शङ्खिनी दशमी स्मृता। पिण्डमध्ये स्थिता ह्येताः प्रधाना दश नाडयः॥ ४४॥

हे गरुड, शब्द, छिद्र, गाम्भीर्य, श्रवण और सर्वाधारत्व ये पाँच आकाश के गुण यत्नपूर्वक ज्ञातव्य हैं। श्रवणेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय, दर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय (ये पाँच) ज्ञानेन्द्रिय हैं। दो हाथ, दो पैर, गुदा, जिह्वा (वाक्) और गुह्य (जननेन्द्रिय) ये (ये पाँच) कर्मेन्द्रिय हैं। इडा, पिङ्गला, तीसरी सुषुम्णा, गान्धारी, गजजिह्वा, पूषा, यशा, अलम्बुषा, कुहू और दसवीं शङ्खिनी समझी गयी हैं। ये शरीरपिण्ड में रही हुई प्रधान दश नाड़ियाँ हैं॥ ४१—४४॥

प्राणापानौ समानश् च उदानो व्यान एव च। नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः॥ ४५॥
इत्येते वायवः प्रोक्ता दश देहेषु सुस्थिताः। केवलं भुक्तमन्नं च पुष्टिदं सर्वदेहिनाम्॥ ४६॥
नयते प्राणदो वायुः शरीरे सर्वसन्धिषु। आहारो भुक्तमात्रस् तु वायुना क्रियते द्विधा॥ ४७॥
स प्रविश्य गूदे सम्यक् पृथगन्नं पृथग् जलम्। ऊर्ध्वमग्नेर् जलं कृत्वा तदन्नं च जलोपरि॥ ४८॥
अग्नेश् चाधः स्वयं प्राणस्तमग्निं च धमेच् छनैः। वायुना धम्यमानोऽग्निः पृथक् किट्टं पृथग् रसम्॥ ४९॥
मलैर् द्वादशाभिः किट्टं भिन्नं देहात् पृथग् भवेत्। कर्णाक्षि नासिका जिह्वा दन्तनाभिवपुर्गुदम्॥ ५०॥
नखा मलाश्रया ह्येते विण्मूत्रं चेत्यनन्तकम्। शुक्रशोणितसंयोगादेतत् षाट्कौशिकं स्मृतम्॥ ५१॥

प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय ये देहों में अच्छी तरह रहे हुए दश वायु बताए गए हैं। सभी प्राणियों से खाए गए पुष्टिदायक अन्न को प्राण वायु शरीर में सभी सन्धियों में ले

जाता है; खाने के बाद तुरंत ही आहार वायु से दो भागों में बाँटा जाता है। वह वायु गुदा में प्रविष्ट होकर अच्छी तरह अन्न को पृथक् और जल को पृथक करके अग्नि के ऊपर जल को और जल के ऊपर अन्नको रखकर अग्नि के नीचे स्वयम् रहकर प्राणरूप से उस अग्नि को धीरे-धीरे फूँकेगा। वायु से फूँका गया अग्नि किट्ट (मल) को अलग और रस को अलग करता है। अलग किया गया किट्ट (मल) बारह प्रकार के मलों के रूप से देह से अलग होता है। कान, आँख, नाक, जीभ, दाँत, नाभि, सम्पूर्ण शरीर अथवा उस में व्याप्त चर्म के रोमकूपादि, गुदा, नाखून ये मल के आश्रय हैं; विष्ठा, मूत्र, पसीना इत्यादि रूप से ये मल देह से निरन्तर निकलने वाले हैं। शुक्र (वीर्य) और शोणित (स्त्रीडिम्ब) का संयोग से यह छः कोशों से युक्त शरीर बनने वाला समझा गया है॥ ४५—५१॥

रोम्णां कोट्यस्तथा तिस्रोऽप्यर्धकोटिसमन्विताः। द्वात्रिंशद् दशनाः प्रोक्ता सामान्याद् विनतासुत॥ ५२॥
सप्त लक्षाणि केशाः स्युर् नखाः प्रोक्तास्तु विंशतिः। मांसं पलसहस्रैकं सामान्याद् देहसंस्थितम्॥ ५३॥
रक्तं पलशतं ताक्ष्र्य बुद्धमेव पुरातनैः। पलानि दश मेदश्च त्वचा चैव तु तत्समा॥ ५४॥
पलद्वादशकं मज्जा महारक्तं पलत्रयम्। शुक्रं द्विकुडवं ज्ञेयं शोणितं कुडवं स्मृतम्॥ ५५॥

हे विनता के पुत्र, शरीर में रोवों की आधी कोटि से युक्त तीन कोटियाँ हैं, सामान्यतया बत्तीस दाँत बताए गए हैं। केश सात लाख हैं, नख बीस बताए गए हैं। सामान्यतया एक हजार पल (चार तोलों का एक पल होता है) मांस देह में रहा हुआ माना जाता है। हे गरुड, मानवशरीर में रक्त एक सौ पल रहने की बात प्राचीन विद्वानों ने समझी है। मेदा दश पल और त्वचा भी उसी के तुल्य समझी गई है। मज्जा बारह पल और महारक्त (ओजोधातु) तीन पल, पुरुष में शुक्र दो कुडव (आठ पल) और स्त्री में शोणित (डिम्भ) एक कुडव (चार पल) समझा गया है। [सभी ओर चार अङ्गुल प्रमाण के चतुष्कोण पात्र को भी शास्त्रों में कुडव कहा जाता है] ॥ ५२—५५॥

श्लेष्मणश्‌ च षडर्धं च विण्‌ मूत्रं तत्प्रमाणतः। अस्थ्ना हि ह्यधिकं प्रोक्तं षष्ट्युत्तरशतत्रयात्॥ ५६॥
एवं पिण्डः समाख्यातो वैभवं सम्प्रचक्ष्महे। सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैव हि प्राप्यते॥ ५७॥
अधोमुखं चोर्ध्वपादं गर्भाद् वायुः प्रकर्षति। तले तु करयोर् न्यस्य वर्धते जानुपार्श्वयोः॥ ५८॥
अङ्गुष्ठौ चोपरि न्यस्तौ जान्वोरथ कराङ्गुली। जानुपृष्ठे तथा नेत्रे जानुमध्ये च नासिका॥ ५९॥
एवं वृद्धिं क्रमाद् याति जनतुः स्त्रीगर्भसंस्थितः। काठिन्यमस्थीन्यायान्ति भुक्तपीतेन जीवति॥ ६०॥

श्लेष्म का भी एक कुडव ही समझा गया है। विष्ठा छः पल और आधा पल तथा मूत्र भी उसी परिमाण का समझा गया है। शरीर में हड्डियों की सङ्ख्या तीन सौ साठ से अधिक बताई गई है। इस प्रकार से शरीररूप पिण्ड बताया गया। इस का महत्त्व बताते हैं। सुख, दुःख, भय और कल्याण भी इसी शरीर से किए गए कर्म से पाया जाता है। गर्भ में अधोमुख और ऊर्ध्वपाद होकर रहे हुए प्राणी को प्रसूतिवायु गर्भ से बाहर खींचता है। गर्भ में रहते समय मनुष्य घुटनों के आस-पास में हथेलियों को रखकर बढ़ता रहता है। उस समय में अँगूठे और हाथ की अङ्गुलियाँ घुटनों के ऊपर रखी गई होती हैं। आँखे घुटनों के पीछे भाग में छिपी रहती हैं तो नाक दो घुटनों के बीच में रहता है। स्त्री के गर्भाशय में रहा हुआ प्राणी इस प्रकार से धीरे-धीरे बढ़ता है। धीरे-धीरे हड्डियाँ ठोस हो जाती हैं। माँ से खाए और पिए गए अन्नपानों से गर्भ जीवित रहता है॥ ५६—६०॥

नाडी वाऽऽप्यायनी नाम नाभ्यां तत्र निबन्ध्यते। स्त्रीणां तथाऽन्त्रसुषिरे स निबद्धः प्रजायते॥ ६१॥
क्रामन्ति भुक्तपीतानि स्त्रीणां गर्भोदरे तथा। तैराप्यायितदेहोऽसौ जन्तुर् वृद्धिमुपैति च॥ ६२॥
स्मृत्यस्तत्र प्रयान्त्यस्य बह्व्यः संसारभूतयः। ततो निर्वेदमायाति पीड्यमान इतस्ततः॥ ६३॥
पुनर् नैवं करिष्यामि मुक्तमात्र इहोदरात्। तथातथा यतिष्यामि गर्भं नाप्नोम्यहं यथा॥ ६४॥

इति सञ्चिन्तयञ् जीवो स्मृत्वा जन्मशतानि वै। यानि पूर्वानुभूतानि देवभूतात्मजानि वै॥ ६५॥
ततः कालक्रमाज् जन्तुः परिवर्त्य त्वधोमुखः। नवमे दशमे वाऽपि मासि सञ्जायते ततः॥ ६६॥

आप्यायनी (नाल) नाम की नली गर्भ के नाभि में और स्त्री की अन्न (धमनी) के छिद्र में भी जोडी जाती है। गर्भ इसी प्रकार उस नली से बँधा हुआ ही जन्म लेता है। स्त्री से खाए-पिए गए अन्न-पान स्त्रियों के गर्भ के भीतर भी सरकते हैं। उन्हीं खाए-पिए गए अन्नपानों से गर्भस्थ प्राणी का देह पोषित होता है और प्राणी बढ़ता भी है। संसार में पूर्वजन्म में अनुभूत अनेक विषयों की स्मृतियाँ उसको होती हैं, उससे वह वैराग्य पाता है, इधर-उधर से पीडित होता हुआ वह पहले जो कुछ किया गया, अब ऐसा नहीं करूँगा, इस गर्भवास से मुक्त होते ही वैसा प्रयत्न करूँगा, जिससे फिर गर्भवास में बैठना न पड़े, ऐसा चिन्तन करता हुआ जीव पूर्वकाल में अनुभूत देवयोनि भूतयोनि इत्यादि स्वकर्म से संजात सैकड़ों जन्मों का स्मरण करके कालक्रम से वह प्राणी शरीरको परिवर्तित करके अधोमुख होकर नवम अथवा दशम महीने में गर्भाशय से बाहर निकलता है॥ ६१—६६॥

निष्क्रम्यमाणो वातेन प्राजापत्येन पीड्यते। निष्क्रमते च विलपंस् तदा दुःखनिपीडितः॥ ६७॥
निष्क्रामंश् चोदरान् मूर्च्छामसह्यां प्रतिपद्यते। प्राप्नोति चेतनां चासौ वायुस्पर्शसुखान्वितः॥ ६८॥
ततस् तं वैष्णवी माया समास्कन्दति मोहिनी। तया विमोहितात्माऽसौ ज्ञानभ्रंशमवाप्नुत॥ ६९॥
भ्रष्टज्ञानो बालभावं ततो जन्तुः प्रपद्यते। ततः कौमारकावस्थां यौवनं वृद्धतामपि॥ ७०॥
पुनश्च तद्वन् मरणं जन्म प्राप्नोति मानवः। ततः संसारचक्रेऽस्मिन् भ्राम्यते घटयन्त्रवत्॥ ७१॥
कदाचित् स्वर्गमाप्नोति कदाचिन् निरयं नरः। स्वर्गं च निरयं चैव स्कर्मफलमश्नुते॥ ७२॥
कदाचिद् भुक्तकर्मा च भुवं स्वल्पेन गच्छति। स्वलोके नरके चैव भुक्तप्राये द्विजोत्तम॥ ७३॥
नरकेषु महद् दुःखमेतद् यत् स्वर्गवासिनः। दृश्यते नाऽत्र मोदन्ते पात्यमानास् तु नारकैः॥ ७४॥
स्वर्गेऽपि दुःखमतुलं यदारोहणकालतः। प्रभृत्यहं पतिष्यामीत्येतन् मनसि वर्तते॥ ७५॥
नारदकांश् चैव सम्प्रेक्ष्य महद् दुःखमवाप्यते। एवं गतिमहं गन्तेत्यहर्निशमनिर्वृतः॥ ७६॥

निकलता हुआ वह प्राणी प्राजापत्य वायु से पीड़ित होता है। उस समय में दुःख से पीड़ित होकर विलाप करता हुआ निकलता है। माँ के पेट से निकलता हुआ प्राणी असह्य पीडा से मूर्छा में पड़ता है। बाहर निकलने पर बाहर के वायु के स्पर्श से उत्पन्न सुख से युक्त होकर वह प्राणी चेतना को प्राप्त करता है। तब संसार को मोहित करने वाली विष्णु की माया उस प्राणी को आक्रान्त करती है। उस माया से मोहित बुद्धिवाला वह प्राणी गर्भ में जो वैराग्ययुक्त ज्ञान हुआ था, उससे च्युत हो जाता है। ज्ञान के भ्रंश से युक्त वह प्राणी बालभाव को प्राप्त करता है, तब फिर कुमार की अवस्था को जवानी को और वृद्धावस्था को भी प्राप्त करता है। फिर भी मनुष्य पूर्वोक्त रूप में मरण को और जन्म को पाता है। तब इस संसारचक्र में कुआँ से पानी निकालने के लिए घुमाए गए घटयन्त्र की तरह ऊपर-नीचे घूमता रहता है। मनुष्य कभी स्वर्ग को पाता है, कभी नरक को पाता है। वह अपने कर्म के फल के रूप में ही स्वर्ग का अथवा नरक का भोग करता है। हे पक्षियों में उत्तम, स्वर्गलोक का अथवा नरक का भोग समाप्तप्राय होने पर अपने कर्म के फल के भोग को प्राप्त करने वाला वह कर्मफल अल्पमात्र अवशिष्ट रहने पर इस भूमि में आता है। नरकों में बड़ा दुःख है, स्वर्गवासी का जो सुख देखा जाता है, उसमें नरकदायी कर्मों से नरक में पतित किए जाने वाले लोग नहीं रम सकते हैं। स्वर्ग में अतुलनीय दुःख है, क्योंकि स्वर्ग में पहुंचने के समय में ही 'मैं फिर गिर जाऊँगा' यह चिन्ता मन में रहती है, नरक में पड़े हुए लोगों को देखकर बड़ा दुःख पाया जाता है, मैं भी ऐसी ही गति में जाने वाला हूँ, रातदिन ऐसी चिन्ता से स्वर्ग में रहने

वाला भी असन्तुष्ट रहता है॥ ६७—७६॥

गर्भवासे महद् दुःखं जायमानस्य योनिजम्। जातस्य बालभावेऽपि वृद्धत्वे दुःखमेव च॥ ७७॥
कामेर्ष्याक्रोधसम्बन्धाद् यौवनेऽपि च दुःसहम्। दुःस्वप्नं या वृद्धता च मरणे दुःखमुत्कटम्॥ ७८॥
कृष्यमाणश्च याम्यैः स नरकेऽपि च यात्यधः। पुनश्च गर्भाज् जन्म स्यान् मरणं दुस्तरं तथा॥ ७९॥
एवं संसारचक्रेऽस्मिन् जन्तवो घटयन्त्रवत्। भ्राम्यन्ते प्राक्तनैर् बन्धैर् बद्ध विध्यन्ति चाऽसकृत्॥ ८०॥
नास्ति पक्षिन् सुखं किञ्चित् क्षेत्रे दुःखशताकुले। विनतासुत मोक्षाय यतितव्यं ततो नरैः॥ ८१॥
एतत् ते सर्वमाख्यातं यथा गर्भस्य संस्थितिः। कथयामि क्रमप्रश्नं प्रष्टुं वा वर्तते स्पृहा॥ ८२॥

गर्भ में रहने में भी बड़ा दुःख है, जन्मते हुए प्राणी को माता की संकरी योनि से पीड़ित होकर बड़ा दुःख होता है, जन्मे हुए प्राणी को बालभाव में और वृद्धावस्था में भी दुःख होता है। यौवन में भी काम, ईर्ष्या और क्रोध के सम्बन्ध से दुःसह दुःख होता है। दुस्वप्न और जो वृद्धावस्था है, वह भी दुःख ही है। मरण में तीव्र दुःख है। यमराज के अनुचरों से खींचा जाता हुआ प्राणी नरक में भी नीचे जाता है। फिर भी गर्भ से जन्म होगा, फिर भी दुस्तर मरण होगा। इस प्रकार संसारचक्र में प्राणी घटीयन्त्र की तरह घूमाए जाते हैं, पुराने बन्धनों से बंधे हुए प्राणी बारम्बार संसारदुःख से विद्ध हो जाते हैं। हे पक्षिन्, सैकड़ों दुःख से व्याप्त इस संसार में कुछ भी सुख नहीं है। हे विनता के पुत्र, इसलिए मनुष्यों को मोक्ष प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। जैसी गर्भ की स्थिति होती है यह सब मैंने बता दिया, पूछे गए क्रम प्राप्त प्रश्न का उत्तर बताता हूँ, अथवा तुम्हारी और कोई प्रश्न करने की इच्छा है क्या?॥ ७७—८२॥

गरुड उवाच—

मध्ये कृतमहाप्रश्नद्वयस्याऽऽप्तं मयोत्तरम्। प्रश्नस्याऽपि तृतीयस्य उत्तरं च विधीयताम्॥ ८३॥

गरुड ने कहा—बीच में किए गए दो महान् प्रश्नों के उत्तर मैंने पाए। तीसरे प्रश्न का उत्तर भी दिया जाय॥ ८३॥

श्रीकृष्ण उवाच—

म्रियमाणस्य किं कृत्यमिति त्वं पृष्टवानसि। शृणु तत्रोत्तरं तूक्तं कथयामि समासतः॥ ८४॥
आसन्नमरणं ज्ञात्वा पुरुषं स्नापयेत् ततः। गोमूत्र-गोमय-सुमृत्-तीर्थोदक-कुशोदकैः॥ ८५॥
वाससी परिधार्य्याऽथ धौते तु शुचिनी शुभे। दर्भाण्यादौ समास्तीर्य दक्षिणाग्रान् विकीर्य च॥ ८६॥
तिलान् गोमयलिप्तायां भूमौ तत्र निवेशयेत्॥ ८७॥
प्रागुदक्शिरसं वाऽपि मुखे स्वर्णं विनिःक्षिपेत्। शालग्रामशिला तत्र तुलसी च खगेश्वर॥ ८८॥
विधेया सन्निधौ सर्पिर्दीपं प्रज्वालयेत् पुनः। नमो भगवते वासुदेवायेति जपस्तथा॥ ८९॥
आदौ तु प्रणवं कृत्वा पूजादाने ततः स्मृते। समभ्यर्च्य हृषीकेशं पुष्पधूपादिभिस्ततः॥ ९०॥
प्रणिपातैः स्तवैः पुण्यैर् ध्यानयोगेन पूजयेत्। दत्त्वा दानं च विपेभ्यो दीनानाथेभ्य एव च॥ ९१॥
पुत्रे मित्रे कलत्रे च क्षेत्रधान्यधनादिषु। निवर्तयेन् ममत्वं च विष्णोः पादौ हृदि स्मरन्॥ ९२॥

श्रीकृष्ण ने कहा—मरते हुए मनुष्य का क्या कृत्य है, ऐसा प्रश्न तुमने किया है, उसमें उत्तर तो कहा गया ही है, फिर भी सङ्क्षेप से कहता हूँ, सुनो। समीप में आए हुए मरण को जानकर मनुष्य को गोमूत्र, गोबर, शुद्ध मिट्टी, तीर्थ का जल और कुशजल से स्नान कराए। धोए गए शुद्ध और शोभन धोती और उपरना पहनाकर गोबर से लिपी गई भूमि में पहले दक्षिणाग्र कुशों को बिछाकर उसपर तिलों को बिखेरकर उस पर मरते हुए मनुष्य को

पूर्व की ओर अथवा उत्तर की ओर शिर करके सुलाए। मुख में सोने का टुकड़ा रखे। हे पक्षियों के ईश्वर, उस स्थल में शालग्रामशिला और तुलसी भी समीप में रखी जानी चाहिए। फिर घी का दीपक जलाए। वहाँ **'नमो भगवते वासुदेवाय'** इस मन्त्र का जप भी आदि में प्रणव (ओङ्कार) जोडकर किया जाना चाहिए। तब पूजा और दान करने योग्य समझे गए हैं। उसके बाद फूल, धूप इत्यादि से हृषीकेश विष्णु की पूजा करके दण्डवत् प्रणामों से, पवित्र स्तुतियों से और ध्यानयोग से भी विष्णु की पूजा करे। ब्राह्मणों को दीन-दुःखियों को अनाथों को भी दान देकर हृदय में विष्णु के चरणों का स्मरण करते हुए पुत्र में, पत्नी में, क्षेत्र, धान्य और धन इत्यादि में ममता छोड़ दे॥ ८४—९२॥

उच्चैः पुरुषसूक्तं च यदि श्रेष्ठाऽऽपदस् तदा। पुत्राद्याः प्रपठेयुस् ते म्रियमाणे निजे जने॥ ९३॥
एतत् ते सर्वमाख्यातं कृत्यं मृत्यावुपस्थिते। फलमप्यस्य कृत्स्नस्य समासात् ते वदाम्यहम्॥ ९४॥
स्नानेन शुचिताप्राप्तिरपावत्र्यहृतिस्ततः। ततो विष्णोः स्मृतिस् तस्य ज्ञानात् सर्वफलप्रदा॥ ९५॥
दर्भतूली नयेत् स्वर्गमातुरं तु न संशयः। तिलैर् दर्भैश् च निःक्षिप्तैः स्नानं क्रतुमयं भवेत्॥ ९६॥
ब्रह्मा विष्णुश् च रुद्रश् च श्रीर् हुताशस् तथैवच। मण्डले चोपतिष्ठन्ति तस्मात् कुर्वीत मण्डलम्॥ ९७॥
प्रागुदग् वा कृतेनेह शिरसा लोकमुत्तमम्। व्रजते यदि पापस्याऽल्पत्वं पुंसो भवेत् खग॥ ९८॥
पञ्चरत्ने मुखे मुक्ते जीवे ज्ञानं प्ररोहति। तुलसी ब्राह्मणा गावो विष्णुरेकादशी खग॥ ९९॥
पञ्च प्रवहणान्येव भवाब्धौ मज्जतां नृणाम्। विष्णुरेकादशी गीता तुलसी विप्रधेनवः॥ १००॥
असारे दुर्गसंसारे षट्पदी मुक्तिदायिनी। नमो भगवते वासुदेवायेति जपन् नरः॥ १०१॥
ओङ्कारपूर्वं सायुज्यं प्राप्नुयान् नाऽत्र संशयः। पूजयाऽपि च मल्लोकप्राप्तिराराद् दिवं व्रजेत्॥ १०२॥

यदि मरणासन्न व्यक्ति की आतुरता अधिक है, **वह स्वयम् नहीं पढ़ सकता है तो मरते हुए अपने मनुष्य के लिए पुत्रादि लोग उच्च स्वर से पुरुषसूक्त का अच्छी तरह पाठ करें।** मृत्यु समीप में आने पर कर्तव्य कर्म यह सब तुम को बताया गया, इन सब कर्मों के फलों को भी मैं तुम को बताता हूँ। स्नान से शुद्धता की प्राप्ति होगी, तब अशुद्धता का हरण होगा; तब विष्णु की स्मृति विष्णु के ज्ञान के जरिए सभी फलों को देने वाली होती है। कुश का बिस्तरा आतुर को स्वर्ग ले जाएगा, इसमें कोई संशय नहीं है। स्नान-जल में मिलाए गए तिल और कुश से स्नान यज्ञमय होगा। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, श्री और अग्नि भी मण्डल में उपस्थित होते हैं, इसलिए मण्डल बनाए। हे पक्षिन्, यदि पाप थोडा ही है तो आतुर का शिर पूर्व की ओर अथवा उत्तर की ओर करने से वह उत्तम लोकको जाता है। आतुर के मुख में पञ्चरत्न (सोना, चाँदी, मोती, [लाजवर्द] और मूँगा) रख देने से जीव में ज्ञान उत्पन्न होता है। हे पक्षिन्, तुलसी, ब्राह्मण, गाय, विष्णु, एकादशी ये पाँच संसारसमुद्र में डूबते हुए मनुष्यों के लिए नौकाएँ हैं। विष्णु, एकादशी,गीता, तुलसी, ब्राह्मण और गौ ये छः पदार्थ इस दुर्गम संसार में मुक्ति देने वाले हैं। ओङ्कार को पहले रखकर **'नमो भगवते वासुदेवाय'** इस मन्त्र को जपता हुआ मनुष्य सायुज्य-मुक्ति पाएगा, इसमें सन्देह नहीं है। पूजा से भी मेरे लोक की (विष्णुलोक की) प्राप्ति होगी, समीप में ही वर्तमान स्वर्ग में भी जाएगा॥ ९३—१०२॥

बन्धाभावेऽममत्वे तु ज्ञानं पुरुषसूक्ततः। यस्ययस्याऽधिकत्वं तु साधनेष्वेषु काश्यप॥ १०३॥
तत्तत्फलस्याऽप्याधिक्यं भवतीत्यवधारय। दातव्यानि यथाशक्त्या प्रीतोऽसौ सर्वदा भवेत्॥ १०४॥
एतत् ते सर्वमाख्यातं स्नानादिषु फलं मया। ब्रह्माण्डे ये गुणाः सन्ति शरीरे ते व्यवस्थिताः॥ १०५॥
पातालभूधरा लोकास् तथाऽन्ये द्वीपसागराः। आदित्यादिग्रहाः सर्वे पिण्डमध्ये व्यवस्थिताः॥ १०६॥
पादाधस्तु तलं ज्ञेयं पादोर्ध्वं वितलं तथा। जानुभ्यां सुतलं विद्धि सक्थिदेशे महातलम्॥ १०७॥

तथा तलातलं चोरौ गुह्यदेशे रसातलम्। पातालं कटिसंस्थं तु पादादौ लक्षयेद् बुधः॥ १०८॥
भूर्लोकं नाभिमध्ये तु भुवर्लोकं तदूर्ध्वतः। स्वर्लोकं हृदये विद्यात् कण्ठदेशे महस्तथा॥ १०९॥
जनलोकं वक्त्रदेशे तपोलोकं ललाटके। सत्यलोकं महारन्ध्रे भुवनानि चतुर्दश॥ ११०॥

ममता के अभाव से संसार का बन्धन शिथिल होने पर पुरुषसूक्त के पाठ से परमात्मज्ञान होता है। हे कश्यपपुत्र, इन साधनों में जिस साधन की अधिकता होगी, उस उस साधन के फल की भी अधिकता होगी यह निश्चय करो। अपनी शक्ति के अनुसार दान देने चाहिए, इससे सदा परमेश्वर प्रसन्न होंगे। यह सब स्नानादि कृत्यों के फल मैंने तुम को बता दिया। ब्रह्माण्ड में जो गुण हैं, वे सब शरीर में भी रहे हुए हैं। पाताल, पर्वत, लोक और द्वीप और समुद्र तथा आदित्यादि ग्रह ये सब ही शरीर में ही रहे हुए हैं। पाताल, पर्वत, लोक और द्वीप और समुद्र तथा आदित्यादि ग्रह ये सब ही शरीर में ही रहे हुए हैं। पैर के नीचे तललोक हैं, पैर के ऊपर वितललोक है, घुटनों में सुतललोक है, घुटनों से ऊपर के भाग में महातल लोक है। उसके ऊपर ऊरूदेश में ही तलातललोक है, गुह्यस्थल में रसातललोक है, पाताललोक कटिदेश में है, इस प्रकार पदादि स्थलों में लोकों की स्थिति जाने। नाभिवेश में भूर्लोक, उसके ऊपर भुवर्लोक, हृदय में स्वर्लोक और कण्ठदेश में महर्लोक जाने। मुखदेश में जनलोक, ललाट में तपोलोक और ब्रह्मरन्ध्रदेश में सत्यलोक जाने; ये शरीर में रहे हुए चौदह भुवन हैं॥ १०३—११०॥

त्रिकोणे संस्थितो मेरुरधःकोणे च मन्दरः। दक्षिणे चैव कैलासो वामभागे हिमाचलः॥ १११॥
निषधश् चोर्ध्वभागे च दक्षिणे गन्धमादनः। मलयो वामरेखायां सप्तैते कुलपर्वताः॥ ११२॥
अस्थिस्थाने स्थितो जम्बूः शाको मज्जासु संस्थितः। कुशद्वीपः स्थितो मांसे क्रौञ्चद्वीपः शिरास्थितः॥ ११३॥
त्वचायां शाल्मलिद्वीपो प्लक्षो रोम्णां च सञ्चये। नखस्थः पुष्करद्वीपः सागरास्तदनन्तरम्॥ ११४॥
क्षारोदश् च तथा मूत्रे क्षीरे क्षीरोदसागरः। सुरोदधिश् च श्लेष्मस्थः मज्जायां घृतसागरः॥ ११५॥
रसोदधिं रसे विद्याच् छोणिते दधिसागरम्। स्वादूदकं च विट्स्थाने गर्भोदं शुक्रसंस्थितम्॥ ११६॥
नादचक्रे स्थितः सूर्यो बिन्दुचक्रे च चन्द्रमाः। लोचनस्थः कुजो ज्ञेयो हृदये च बुधः स्मृतः॥ ११७॥
विष्णुस्थाने गुरुं विद्याच् छुक्रे शुक्रो व्यवस्थितः। नाभिस्थाने स्थितो मन्दो मुखे राहुः स्थितः सदा॥ ११८॥
पायुस्थाने स्थितः केतुः शरीरे ग्रहमण्डलम्। विभक्तं च समाख्यातमापादतलमस्तकम्॥ ११९॥
उत्पन्ना ये हि संसारे म्रियते ते न संशयः। बुभुक्षा च तृषा रौद्रा दाहोद्भूता च मूर्छना॥ १२०॥
यत्र पीडास् त्विमा रौद्रास् ता वै वृश्चिकदंशजाः। विनाशः पूर्णकाले च जायते सर्वदेहिनाम्॥ १२१॥

त्रिकोणस्थल में (जघनस्थल में) मेरु पर्वत रहा है, अधःकोण में मन्दर पर्वत रहा है, उसके दक्षिण भाग में कैलास पर्वत रहा है, वामभाग में हिमालयपर्वत रहा है, ऊपर के भाग में निषधपर्वत रहा है, दक्षिणभाग में गन्धमादनपर्वत रहा है, वामरेखा में मलयपर्वत रहा है, ये सात शरीर में स्थित कुलपर्वत हैं। शरीर के अस्थिस्थान में जम्बूद्वीप रहा है, मज्जास्थान में शाकद्वीप स्थित है, मांसस्थान में कुशद्वीप स्थित है, शिरास्थान में क्रौञ्चद्वीप स्थित है। त्वचास्थान में शाल्मलिद्वीप स्थित है, रोवों के समूह मूं प्लक्षद्वीप स्थित है, पुष्करद्वीप नाखूनों में स्थित है, उसके बाद शरीर में समुद्र स्थित है। मूत्र में क्षारोद समुद्र है, क्षीर (दुग्धतत्त्व) में क्षीरोद समुद्र है, श्लेष्मा में सुरोद समुद्र है, मज्जा में घृतोद समुद्र है। रस में इक्षुरसोद समुद्र को जानें, रक्त में दध्युद सागरको जानें, विष्ठा के स्थान में स्वादूद समुद्र को जानें, गर्भोद समुद्र (पृथिवी के गर्भ में स्थित जलके रूप मे रहे हुए गर्भोद समुद्र) को शुक्र में रहा हुआ जानें। शरीर में नादचक्र में **सूर्य** स्थित है, बिन्दुचक्र में **चन्द्रमा** स्थित है, आँखों में **मङ्गल** को

स्थित जानना चाहिए, हृदय में **बुध** को स्थित समझा गया है, विष्णुस्थान (पाद) में **बृहस्पति** स्थित है, शुक्र-(वीर्य)- स्थान में **शुक्र** रहा हुआ नाभिस्थान में **शनैश्चर** रहा है, मुख में सदाकाल **राहु** स्थित है, गुदस्थान में **केतु** स्थित है, शरीर में ग्रहमण्डल इस प्रकार पादतल से लेकर माथा तक विभक्त होकर रहा हुआ बताया गया है। जो भी संसार में जन्म लेते हैं वे सब मरते ही हैं, इसमें सन्देह नहीं है; भूख प्यास और दाह से उत्पन्न भयङ्कर मूर्छा ये तीव्र पीड़ाएँ जहाँ हैं, वे पीडाएँ बिच्छू के डंक से उत्पन्न पीडा की तरह होती हैं। आयु पूर्ण होने पर सभी प्राणियों का मरण होता है॥ १११—१२१॥

अग्रे अग्रे हि धावन्ति यमलोकगतस्य वै। तप्तवालुकमध्येन प्रज्वलद्वाह्निमध्यतः॥ १२२॥
केशग्राहैः समाक्रान्ता नीयन्ते यमकिङ्करैः। पापिष्ठास् त्वधमास् ताक्ष्र्य दयाधर्मविवर्जिताः॥ १२३॥
यमलोके वसन्त्येते कुत्या जन्म न विद्यते। एवं सञ्जायते ताक्ष्र्य मर्त्ये जन्तुः स्वकर्मभिः॥ १२४॥
उत्पन्ना ये हि संसारे म्रियन्ते ते न संशयः। आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च॥ १२५॥
पञ्चैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः। कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते॥ १२६॥
सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाऽभिपद्यते। अधोमुखं चोर्ध्वपादं गर्भाद् वायुः प्रकर्षति॥ १२७॥
जन्मतो वैष्णवी माया सम्मोहयति सत्वरम्। स्वकर्मकृतसम्बन्धी जन्तुर् जन्म प्रपद्यते॥ १२८॥
सुकृतादुत्तमो भोगी भाग्यवान् सुकुले भवेत्। यथायथा दुष्कृतं तत् कुले हीने प्रजायते॥ १२९॥
दरिद्रो व्याधितो मूर्खः पापकृद् दुःखभाजनम्। अतः परं कमर्थं ते कथयानि खगेश्वर॥ १३०॥

यमलोक में जाने वाले के आगे-आगे यमदूत दौड़ते हैं। हे गरुड, पापिष्ठ अधम और दया-धर्म से रहित मनुष्य यम के अनुचरों से बाल पकड़के घसीटकर गरम बालू के मध्य से और दहकते अग्नि के मध्य से भी ले जाए जाते हैं। ये पापिष्ठ लोग (प्रलय काल तक) यमलोक में वास करते हैं, मनुष्य शरीर में जन्म नहीं होता है। हे गरुड, प्राणी इस प्रकार अपने कर्मों से मर्त्यलोक में जन्म लेता है। जो संसार में उत्पन्न हुए हैं, वे मरते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। प्राणियों के आयु, जीविकाकर्म, धन, विद्या और मरण ये पाँच गर्भ में रहने के समय में ही (विधाता से) निश्चित किए जाते हैं। प्राणी अपने ही कर्म से उत्पन्न होता है, अपने ही कर्म से मरता है। प्राणी सुख अथवा दुःख, भय अथवा कल्याण भी अपने ही कर्म से पाता है। प्राणी को अधोमुख और ऊर्ध्वपाद करके वायु गर्भाशय से बाहर खींचता है। जन्मकाल से ही तुरन्त विष्णु की माया प्राणियों को सम्मोहित करती है। अपने कर्म से सम्बन्ध स्थापित करके ही प्राणी जन्म लेता है। सुकर्म (धर्म) से उत्तम होकर भोगवान् होने का भाग्य लेकर उत्तम कुल में जन्मलेता है। किन्तु जैसे जैसे कुकर्म करता है वैसे वैसे नीच और नीचतर कुल में दरिद्र, रोगी, मूर्ख, पाप करने वाला और दुःख भोगने वाला होकर जन्म लेता है। हे पक्षियों के ईश्वर, अब इसके आगे तुम को मैं कौन सी बात बताऊँ॥ १२२—१३०॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-३३

गरुड उवाच–

उत्पत्तिलक्षणं जन्तोः कथितं मयि पुत्रके। यमलोक कियन्मात्रस् त्रैलोक्ये सचराचरे।
विस्तारं तस्य मे ब्रूहि अध्वा चैव कियान् स्मृतः॥ १॥
कैश्च पापैः कृतैर् देव केन वा शुभकर्मणा। गच्छन्ति मानवास् तत्र कथयस्व विशेषतः॥ २॥

गरुड ने कहा—प्राणी की उत्पत्ति का लक्षण पुत्रतुल्य मुझको बताया गया। इस चराचरसहित त्रिलोक में यमलोक कितने परिमाण वाला है? उस के विस्तार को मुझे बताइए, मर्त्यलोक से यमलोक तक के मार्गका परिमाण कितना समझा गया है? हे देव, कौन कौन पाप करने से और कौन शुभ कर्म करने से मनुष्य वहाँ जाते हैं, इस बात को विशेष रूप से कहिए॥ १-२॥

भगवानुवाच–

षडशीतिसहस्राणि योजनानां प्रमाणतः। यमलोकस्य चाऽध्वानमन्तरा मानुषस्य च॥ ३॥
ध्माततास्रमिवाऽऽतप्तो ज्वलन् दुर्गो महापथः। तत्र गच्छन्ति पापिष्ठा मानवा मूढचेतसः॥ ४॥
कण्टकाश् च सुतीक्ष्णा वै विविधा घोरदर्शनाः। तैस् तु वालुक्षितिर् व्याप्ता हुताशश् च तथोल्बणः॥ ५॥
वृक्षच्छाया न तत्राऽस्ति यत्र विश्रमते नरः। गृहीतः कालपाशैश् च कृतैः कर्मभिरुल्बणै॥ ६॥
तस्मिन् मार्गे न चाऽन्नाद्यं येन प्राणान् प्रपोषयेत्। न जलं दृश्यते तत्र येन विलीयते॥ ७॥
क्षुधया पीडितो याति तृष्णया च महापथे। शीतेन कम्पते क्वाऽपि यममार्गेऽतिदुर्गमे॥ ८॥
यद् यस्य यादृशं पापं स पन्थास्तस्य तादृशः। सुदीनाः कृपणा मूढा दुःखैर् व्याप्तास् तरन्ति तम्॥ ९॥
रुदन्ति दारुणं केचित् केचिद् द्रोहं वदन्ति च। आत्मकर्मकृतैर् दोषैः पच्यमाना मुहुर्मुहुः॥ १०॥

श्रीभगवान् ने कहा—यमलोक के और मानुषलोक के बीच के मार्ग को परिमाण से छियासीहजार योजन बताते हैं। वह महापथ धौकनी से दहकाए गए तांवे की तरह दहकता हुआ और दुर्गम है। मूढ चित्त वाले पापिष्ठ मनुष्य उस मार्ग में चलते है। उस मार्ग में अत्यन्त तेज और देखने में भयङ्कर विविध कौवें हैं। उस मार्ग की वालुकामयी भूमि उन्हीं काँटों से व्याप्त है, फिर वहाँ प्रचण्ड अग्नि भी है। उस मार्ग में कोई वृक्ष की छाया भी नहीं है, जहाँ अपने से किए गए उत्कट दुष्कर्मो के हेतु काल के पाशों से बँधा हुआ मनुष्य विश्राम करे। उस मार्ग में आदि भोज्य पदार्थ भी नहीं हैं, जिससे उस मार्ग का राही प्राणों को पुष्ट करे। वहाँ पानी तो देखा भी नहीं जाता है, जिससे प्यास बुझाई जा सकती है। उस महापथ में राही भूख से और प्यास से पीडित होता हुआ चलता है। अत्यन्त दुर्गम उस यममार्ग में राही कहीं पर ठण्डक से काँपता है। जिस का जैसा जो पाप है, उसके लिए वह यममार्ग उसी पापका अनुरूप कष्टमय होता है। कृपण मूढ लोग अत्यन्त दीन होकर दुःख से व्याप्त होके उस मार्ग को पार करते हैं। अपने से किए गए कर्मों के दोष से बारम्बार नरकाग्नि में पकते हुए कुछ लोग उस मार्ग में दारुण रूप में रोते हैं, कोई भाग्य को कोसते हैं॥ ३—१०॥

ईदृग्विधः स वै पन्था विज्ञेयो दारुणः खग। वितृष्णा ये नरा लोके सुखं तस्मिन् व्रजन्ति ते॥ ११॥
यानियानि च दानानि दत्तानि भुवि मानवैः। तानितान्युपतिष्ठन्ति यमलोके पुरः पथि॥ १२॥
पापिनां नोपतिष्ठन्ति दाहश्राद्धजलाञ्जलिः। भ्रमन्ति वायुभूतास् ते ये क्षुद्राः पापकर्मिणः॥ १३॥
ईदृशं वर्त्म तद् रौद्रं कथितं तव सुव्रत। पुनश्च कथयिष्यामि यममार्गस्य या स्थितिः॥ १४॥
याम्यनैर्ऋतयोर् मध्ये पुरं वैवस्वतस्य तु। सर्वं वज्रमयं दिव्यमभेद्यं तत् सुरासुरैः॥ १५॥

हे पक्षिन्, वह मार्ग को इस प्रकार का भयङ्कर जानना चाहिए। लोक में तृष्णा से रहित जो लोग हैं, वे उस मार्ग में सुखपूर्वक ही चलते हैं। इस पृथ्वीलोक में मनुष्यों से जो जो वस्तु दान में दिए गए हैं वे-वे वस्तु यमलोक के मार्ग में राही के आगे उपस्थित होते हैं। पापियों को दाह, श्राद्ध और जलाञ्जलिदान का फल प्राप्त नहीं होता है। जो क्षुद्र और पाप कर्म करने वाले हैं, वे वायुरूप लेकर घूमते रहते हैं। हे सुव्रत, ऐसा भयङ्कर वह मार्ग तुम को बताया गया। यममार्ग की जो वस्तुस्थिति है उसको मैं तुमको फिर भी कहूँगा। "दक्षिण दिशा और नैऋत्यदिशा के बीच में **यमपुरी** अवस्थित है। **वह सम्पूर्ण ही हीरकमय दिव्य और देवों से और दानवों से भी अभेद्य है"**॥ ११—१५॥

☞ यमलोक—धर्माधिकारी चित्रगुप्त नामक **यम** के अधीन है। यमलोक के धर्माधिकारी चित्रगुप्त—विष्णु, ब्रह्मा, शिव के समान शक्ति के तथा ऋषि, इन्द्रादिदेवता एवं दानवों से १० गुने अधिक शक्ति के हैं, इसीलिये यमलोक देव तथा दानवों से भी अभेद्य है और इसी कारण लोकशासक भगवान् चित्रगुप्त—ऋषि, देवता और दानवों के स्वामी हैं। इनके विषय में आप पीछे पढ़ चुके हैं।

चतुरश्रं चतुर्द्वारं सप्तप्राकारतोरणम्। स्वयं तिष्ठति वै यस्यां यमो दूतैः समन्वितः॥ १६॥
योजनानां सहस्रं वै प्रमाणेन तदुच्यते। सर्वरत्नमयं दिव्यं विद्युज्ज्वालार्कतैजम्॥ १७॥
तद् गृहं धर्मराजस्य विस्तीर्णं काञ्चनप्रभम्। योजनानां पञ्चविंशप्रमाणेन समुच्छ्रितम्॥ १८॥
वृतं स्तम्भसहस्रैस्तु वैदूर्यमणिमण्डितम्। मुक्ताजालगवाक्षं च पताकाशतभूषितम्॥ १९॥
घण्टाशतनिनादाढ्यं तोरणानां शतैर् वृतम्। एवमादिभिरन्यैश्च भूषणैर् भूषितं सदा॥ २०॥

वह पुर चौकोर, चार द्वारों से युक्त और प्राकार के सात तोरणद्वारों से युक्त है। जिस पुरी में दूतों से युक्त यमराज स्वयम् विराजमान होते हैं। उस पुरको परिमाण से एक हजार योजन का कहा जाता है। वह पुर सभी रत्नों से बना हुआ, दिव्य, बिजली तथा अग्नि की ज्वाला और सूर्य के तेज की तरह चमकने वाला है। **धर्मराज का वह घर** विस्तीर्ण और सोने की प्रभा से तुल्य प्रभा से युक्त तथा **पच्चीस योजन** ऊँचा, हजारों स्तम्भों से युक्त, वैदूर्य मणियों से विभूषित, मोतियों के समूह से विभूषित गवाक्षों से युक्त, सैकड़ों पताकाओं से अलङ्कृत, सैकड़ों घण्टाओं के निनाद से पूर्ण, सैकड़ों तोरणों से घिरा हआ, इसी प्रकार के अन्य आभूषणों से सदाकाल विभूषित रहता है॥ १६—२०॥

तत्रस्थो भगवान् धर्म आसने तु समे शुभे। दशयोजनविस्तीर्णे नीलजीमूतसन्निभे॥ २१॥
धर्मज्ञो धर्मशीलश् च धर्मयुक्तो हितो यमः। भयदः पापयुक्तानां धार्मिकाणां सुखप्रदः॥ २२॥
मन्दमारुतसंयोगैरुत्सवैर् विविधैस् तथा। व्याख्यानैर विविधैर् युक्तः शङ्खवादित्रनिःस्वनैः॥ २३॥
पुरमध्यप्रदेशे तु चित्रगुप्तस्य वै गृहम्। पञ्चविंशतिसङ्ख्यानां योजनानां सुविस्तरम्॥ २४॥
दशोच्छ्रितं महादिव्य लोहप्राकारवेष्टितम्। प्रतोलीशीतसञ्चारं पताकाशतशोभितम्॥ २५॥
दीपिकाशतसङ्कीर्णं गीतध्वनिसमाकुलम्। चित्रितं चित्रगुप्तलैश् चित्रगुप्तस्य वै गृहम्॥ २६॥

उस भवन में दश योजन विस्तार वाले, काले मेघ जैसे, सम और शुभ आसन में भगवान् धर्मराज बैठने वाले हैं। वस्तुतः यमराज धर्म के पूर्ण जानकार, धर्म को स्वभावतः पालन करने वाले, धर्म से युक्त और प्राणियों के लिए हितकारी हैं। वे पाप से युक्त लोगों के लिए भयदायी और धार्मिक लोगों के लिए सुखदायी हैं। यमराज मन्द-मन्द वायु के संयोगों से, अनेक प्रकार के उत्सवों से, विविध व्याख्यानों से और शंख तथा अन्य वाद्यों के शब्दों से भी युक्त रहते हैं। **यमपुर के बीच में चित्रगुप्त का पचीस योजन के विस्तार से युक्त घर है। चित्रगुप्त** का

घर दश योजन ऊँचा, महादिव्य, लोहे के चहारदीवारी से वेष्टित, सैकड़ों उपद्वारों से आना-जाना किया जाने वाला, सैकड़ों पताकाओं से शोभित, सैकड़ों दीपिकाओं से युक्त, गीतों के ध्वनि से व्याप्त और चित्रलेखन में कुशल शिल्पियों से चित्रों से सजाया गया है॥ २१—२६॥

मणिमुक्तामये दिव्ये आसने परमाद्भुते। तत्रस्थो गणयत्यायुर् मानुषेष्वितरेषु च। २७।
न मुह्यति कदाचित् स सुकृते दुष्कृतेऽपि वा। यद् येनोपार्जितं यावत् तावद्वैवेत्तितस्य तत्। २८।
दशाष्टदोषरहितं कृतकर्म लिखत्यसौ। चित्रगुप्तालयात् प्राच्यां ज्वरस्याऽस्ति महागृहम्। २९।
दक्षिणे चाऽपि शूलस्य लूताविस्फोटकस्य च। पश्चिमे कालपाशस्य अजीर्णस्यारुचेस् तथा॥ ३०॥
मध्यपीठोत्तरे ज्ञेया तथा चाऽन्या विषूचिका। ऐशान्यां वै शिरोऽर्तिश् च आग्नेय्यां चैव मूकता॥ ३१॥
अतिसारश्च नैर्ऋत्यां वायव्यां दाहसञ्ज्ञकः। एभिः परिवृतो नित्यं चित्रगुप्तः स तिष्ठति॥ ३२॥
यत् कर्म कुरुते कश्चित् तत् सर्वं विलिखत्यसौ। धर्मराजगृहद्वारि दूतास् तार्क्ष्यं तथा दिशि।
तिष्ठन्ति पापकर्म्माणः पीडयन्तो नराधमान्॥ ३३॥
यमदूतैर् महापाशैर् हन्यमानाश् च मुद्गरैः। बध्यन्ते विविधैः पापैः पूर्वकर्मकृतैर् नराः॥ ३४॥

मणियों से और मोतियों से बने हुए, अत्यन्त अद्भुत, दिव्य आसन में उस घर में बैठते हुए चित्रगुप्त मनुष्यों के और अन्य प्राणियों के आयु को गिनते रहते हैं। प्राणियों के सुकर्म के और कुकर्म के विषय में कभी भी वे मोह (अज्ञान, संशय अथवा विपरीत ज्ञान) में नहीं पड़ते हैं। जिसने जितना जो पुण्य वा पाप उपार्जित किया है उसके उतने उस पुण्य अथवा पापको वे जानते हैं। वे जीवों से किए गए कर्मों को अठारह वाक्यदोषों से रहित रूप में लिखते हैं। **चित्रगुप्त** के घर से पूर्वदिशा की ओर ज्वर का बड़ा घर है। दक्षिण दिशा की ओर शूल का, लूता का और विस्फोटक का भी घर है। पश्चिमदिशा की ओर कालपाश का, अजीर्ण का और अरुचि का भी घर है। चित्रगुप्त के घर के मध्यपीठ से उत्तरदिशा की ओर अन्य रोग विषूचिका (हैजा) रहती है। ऐशानी दिशा की ओर शिरोऽर्ति (शिरःपीड़ा) रोग है, और आग्नेयी दिशा में मूकता है। नैर्ऋती दिशा की ओर अतिसार (दस्त) है और वायवी दिशा में दाह का रोग है। **वह "चित्रगुप्त" सदैव इन रोगों के बीच में रहते हैं।** जो कोई भी प्राणी जो कर्म करता है उस सब कर्म को वे लिखते हैं। हे गरुड, धर्मराज के घर के द्वार में तथा सभी दिशाओं में भी क्रूर कर्म करने वाले यमदूत पापिष्ठ लोगों को पीड़ा देते रहते हैं। अपने से पहले किए गए विविध पापों के कारण से मनुष्य यमदूतों से मुद्गरों से मारे जाते हुए महापाशों से बाँधे जाते हैं॥ २७—३४॥

☞ सभी रोग व्याधियाँ देव रूप में भगवान् चित्रगुप्त के अधीन हैं, भगवान् चित्रगुप्त की आराधना करने वाला मनुष्य उनकी कृपा से रोग-व्याधियों से मुक्त होकर सुखमय जीवन बिताता है।

नानाप्रहरणाग्रैश् च नानायन्त्रैस् तथा परे। छिद्यन्ते पापकर्माणः क्रकचैः काष्ठवद् द्विधा॥ ३५॥
अन्ये ज्वलद्भिरङ्गारैर् वेष्टिताः परितो भृशम्। पूर्वकर्मविपाकेन ध्मायन्ते लोहपिण्डवत्॥ ३६॥
क्षिप्त्वाऽन्ये च धरापृष्ठे कुठारेणाऽवकर्तिताः। क्रन्दमानाश्च दृश्यन्ते पूर्वकर्मविपाकतः॥ ३७॥
केचिद् गुडमयैः पाकैस् तैलपाकैस् तथा परे। पीड्यन्ते यमदूतैश्च पापिष्ठाः सुभृशं नराः॥ ३८॥
ऋणानि प्रार्थयन्त्यन्ये देहिदेहीति कोटिशः। यमलोके मया दृष्टो मम स्वं भक्षितं त्वया॥ ३९॥
इत्येवं बहुशस् तार्क्ष्य नरकाः पापिनां स्मृताः। कर्मभिर् बहुभिः प्रोक्तैः सर्वशास्त्रेषु भाषितैः।
दानोपकारं वक्ष्यामि यथा तत्र सुखं भवेत्॥ ४०॥

अन्य पापकर्म वाले लोग अनेक प्रकार के हथियारों के अग्रभागों से और नाना प्रकार के यन्त्रों से भी आरे

से काठ की तरह काटकर दो भागों में बाँटे जाते हैं। अन्य पापी लोग पहले किए गए कर्म के फल के रूप में सभी ओर दहकते हुए अङ्गारों से वेष्टित करके लोहे के गोले की तरह फूँके जाते हैं। फिर अन्य पापी लोग पहले किए गए कर्म के परिणाम के रूप में पृथिवीतल में फेंककर कुल्हाड़े से काटे गए और चिल्ला रहे दिखाई देते हैं। यमदूतों के द्वारा कोई पापिष्ठ लोग गुड़ के साथ में किए गए पाकों से और अन्य कोई पापिष्ठ लोग तेल के साथ में किए गए पाकों से अत्यन्त तीव्र रूप में पीडित किए जाते हैं। अन्य करोड़ों लोग तुम मुझसे यमलोक में देखे गए हो, तुमने मेरा धन खाया था, दे दो दे दो' कहकर ऋण चुकाने के लिए माँग करते हैं। हे गरुड, धर्मशास्त्रों में बताए गए और मुझसे भी पहले ही कहे गए अनेक पापकर्मों से पापियों के इस प्रकार के बहुत से नरक होने वाले समझे गए हैं। अब मैं दान से होने वाले प्रेत के उपकार को बताऊँगा, जिस प्रकार दान देने से उस यमलोक में सुख मिलेगा॥ ३५—४०॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-३४

श्रीकृष्ण उवाच–

शृणु ताक्ष्र्य यथान्यायं धर्माऽधर्मस्य लक्षणम्। सुकृतं दुष्कृतं नृणामग्रे धावति धावताम्॥ १॥
कृते तपः प्रशंसन्ति त्रेतायां ज्ञानसाधनम्। द्वापरे यज्ञदाने च दानमेकं कलौ युगे॥ २॥
गृहस्थानां स्मृतो धर्म उत्तमानां विचक्षणैः। इष्टापूर्ते स्वशक्त्या हि कुर्वतां नास्ति पातकम्॥ ३॥
वृक्षास् तु रोपिता येन खनिकूपजलाशयाः। कृता मार्गे सुखं तस्य व्रजतो नितरां भवेत्॥ ४॥
अग्नितापप्रदातारो ये शीतपीडिते द्विजे। तप्यमानाः सुखं यान्ति सर्वकामैः प्रपूरिताः॥ ५॥

श्रीकृष्ण ने कहा—हे गरुड, न्याय के अनुसार धर्म का और अधर्म का लक्षण सुनो। संसारचक्र में दौड़ते हुए मनुष्यों के आगे-आगेउनसे किए गए धर्म और अधर्म दौड़ते हैं। मुनि लोग सत्ययुग के लिए तपस्या की प्रशंसा करते हैं, त्रेतायुग के लिए ज्ञान की साधना की प्रशंसा करते हैं, द्वापरयुग के लिए यज्ञ और दान की प्रशंसा करते हैं और कलियुग के लिए केवल दान की ही प्रशंसा करते हैं। विवेचनशील पण्डितों ने गृहस्थों के लिए यह धर्म समझा है कि अपनी शक्ति के अनुसार इष्टापूर्त कर्म करने वाले गृहस्थों का पाप से सम्पर्क नहीं होता है। जिसने वृक्ष रोपा है, और जिसने गुफा, कुआँ और जलाशय बनाया है, यमपुरी के मार्ग में चलते हुए उसको अत्यन्त सुख होगा। ठण्डक से पीड़ित ब्राह्मण को अग्नि के तापका दान करने वाले लोग ठण्डक से पीड़ित करने वाले यममार्ग में आग का ताप लेते हुए और कामनाओं के सम्पूर्ण विषयों को भोगते हुए सुख से यात्रा करते हैं॥ १—५॥

सुवर्णमणिमुक्तादि वस्त्राण्याभरणानि च। तेन सर्वमिदं दत्तं येन दत्ता वसुन्धरा॥ ६॥
यानियानि च भूतानि दत्तानि भुवि मानवैः। यमलोकपथे तानि तिष्ठन्त्येषां समीपतः॥ ७॥
व्यञ्जनानि विचित्राणि भक्ष्यभोज्यानि यानि च। ददाति विधिना पुत्रः प्रेते तदुपतिष्ठति॥ ८॥
आत्मा वै पुत्रनामाऽस्ति पुत्रस् त्राता यमालये। तारयेत् पितरं घोरात् तेन पुत्रः प्रचक्ष्यते॥ ९॥
अतो देयं च पुत्रेण श्राद्धमाजीवितावधि। अतिवाहस्तदा प्रेतो भोगान् वै लभते हि सः॥ १०॥

जिसने भूमि दी उसने सोना, मणि, मोती इत्यादि और वस्त्र, आभूषण ये सब पदार्थ दिए। इस मर्त्यलोक में मनुष्यों ने जो जो पदार्थ दिए वे पदार्थ यमलोक के मार्ग में उनके समीप में उपस्थित होते हैं। यदि पुत्र मृत पिता के लिए नाना प्रकार के व्यञ्जन, भक्ष्य पदार्थ तथा भोज्य पदार्थ शास्त्रोक्त विधि से ब्राह्मणों को देता है तो वह सब प्रेत के आगे उपस्थित होता है। पुत्र नाम का व्यक्ति अपना एक स्वरूप है, यमराज के घर में पुत्र रक्षक होता है,

पिता को घोर नरक से उतारता है, इसलिए पुत्र कहा जाता है। इसलिए पुत्र से अपने जीवनकाल तक मृत पिता को श्राद्ध दिया जाना चाहिए। जिस समय में प्रेत अतिवाह शरीर में रहता है, उस समय में वह भोगों को पाता है॥ ६—१०॥

दह्यमानस्य प्रेतस्य स्वजनैर् यो जलाञ्जलिः। दीयते प्रेतरूपोऽसौ प्रीतो याति यमालये॥ ११॥
अपक्वे मृन्मये पात्रे दुग्धं दत्तं दिनत्रयम्। काष्ठत्रयं गुणैर् बद्ध्वा प्रीत्यै रात्रौ चतुष्पथे॥ १२॥
प्रथमेऽह्नि द्वितीये च तृतीये च तथा खग। आकाशस्थं पिबेद् दुग्धं प्रेतो वायुवपुर्धरः॥ १३॥
चतुर्थे सञ्चयः कार्यः चतुर्थे वाऽपि साऽग्निके। अस्थिसञ्चयनं कार्यं दद्यादाप्याऽञ्जलिं ततः॥ १४॥
न पूर्वाह्णे न मध्याह्ने नाऽपराह्णे न सन्धिषु। याते प्रथमयामे तु दद्यादाद्यजलाञ्जलीन्॥ १५॥

जलाए जा रहे प्रेत को अपने लोगों से जो जलाञ्जलि दिया जाता है, उससे प्रेत रूप वह तृप्त होकर यमपुरी में जाता है। तीन काष्ठों को रस्सी से बाँधकर बनाई गई तिगोडिये के ऊपर रखे गए कच्ची मिट्टी के पात्र में रात में चौराहे पर तीन दिन तक दिया गया दूध प्रेत की तृप्ति के लिए होता है। हे पक्षिन्, पहले दिन में, दूसरे दिन में, और तीसरे दिन में भी वायवीय शरीर लेने वाला प्रेत आकाश में स्थित दूध का पान करेगा। (साधारणतया) चौथे दिन में अस्थिसञ्चयन किया जाना चाहिए, प्रेत श्रौताग्नियुक्त था तो चतुर्थ दिन में (ही) अस्थिसञ्चयन किया जाना चाहिए, उसके बाद जलका अञ्जलि दें। पूर्वाह्ण में भी नहीं, मध्याह्न में भी नहीं, अपराह्ण में भी नहीं, सन्धिकालों में भी नहीं, किन्तु दिन का प्रथम प्रहर बीतने पर द्वितीय प्रहर लगते ही जलाञ्जलि दे॥ ११—१५॥

पुत्रेण दत्ते ते सर्वे गोत्रिणो हितबान्धवाः। स्वजात्यैः परजात्यैश्च देयो नद्यां जलाञ्जलिः॥ १६॥
गन्तव्यं नैव विप्रेण दातुं शूद्रे जलाञ्जलिम्। निवृतताश् च यदा तीराल् लोकाचारस् ततो भवेत्॥ १७॥
पञ्चत्वं च गते शूद्रे यः काष्ठं नयते चिताम्। अनुव्रजेत् तथा विप्रस् त्रिरात्रमशुचिर् भवेत्॥ १८॥
त्रिरात्रे च तः पूर्णे नदीं गच्छेत् समुद्रगाम्। प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति॥ १९॥
शूद्रो गच्छति सर्वत्र वैश्यस् त्रिषु द्वयोः परः। गच्छति स्वीयवर्णेषु विप्रो दातुं जलाञ्जलिम्॥ २०॥

पुत्रसे जलाञ्जलि दिए जाने पर वे सब गोत्री, हितैषी बन्धु-बान्धव जलाञ्जनि दें। प्रेत के स्वजातिके और परजातिके भी बन्धु-बान्धवों से नदी में जलाञ्जलि दिया जाना चाहिए। ब्राह्मण को शूद्र के लिए जलाञ्जलि देने के लिए नहीं जाना चाहिए। जलाञ्जलि देने वाले नदी-तटादि के तीर से जब लौटते हैं, उस समय में लोकाचार होगा। शूद्र के मरण होने पर जो ब्राह्मण चिता के लिए लकड़ी ले जाता है अथवा शूद्र के शव का अनुगमन करता है वह तीन अहोरात्र तक आशौच से युक्त होगा। तब तीन अहोरात्र पूर्ण होने पर वह ब्राह्मण समुद्र तक जाने वाली नदी में जाए (और स्नान करे) तब सौ बार प्राणायाम करके घृत-प्राशन करने पर वह शुद्ध होता है। **शूद्र जलाञ्जलि देने के लिए सभी वर्णों की शवयात्रा में जाता है, वैश्य तीन वर्णों की शवयात्रा में जाता है, क्षत्रिय दो वर्णों की शवयात्रा में जाता है और ब्राह्मण अपने वर्ण की शवयात्रा में ही जाता है**॥ १६—२०॥

दत्ते जलाञ्जलौ पश्चाद् विदध्याद् दन्तधावनम्। त्यजन्ति गोत्रिणः सर्वे दिनानि नव काश्यप॥ २१॥
जलाञ्जलिं तथा दातुं गचछन्ति द्विजसत्तमाः। यत्र स्थाने मिलेद् यस्तु अध्वन्यपि गृहेऽपि वा।
विश्लेषस्तु ततः स्थानादादाहाद् विहितो बुधैः॥ २२॥
स्त्रीजनश् चाऽग्रतो गच्छेत पृष्ठतो नरसञ्चयः। आचमनं विधातव्यं पाषाणोपरि संस्थितैः॥ २३॥
यवांश्च सर्षपान् दूर्वाः पूर्णपात्रे विलोकयेत्। प्राशयेन् निम्बपत्राणि स्नेहस्नानं समाचरेत्॥ २४॥
गोत्रिभिर् न च कर्तव्यं गृहान्नं च न भोजयेत्। भुञ्जीत मृन्मये पात्रे उत्तानं च विवर्जयेत्॥ २५॥

जलाञ्जलि देनेके बाद दन्तधावन करे। हे कश्यपपुत्र, नौ दिनों तक सभी सगोत्री लोग दन्तधावन छोड़ देते हैं। ब्राह्मण लोग जलाञ्जलि देने के लिए जाते हैं। शव का अनुगमन करने वालों में से जो व्यक्ति दाहस्थल तक मार्ग में अथवा घर में जिस स्थान में अन्य शवयात्रियों से मिलता है, शवदाह के बाद उसका विश्लेष भी उसी स्थान से करनेका विधान विद्वान् लोगों ने किया है। **जलाञ्जलिदान के बाद घर को लौटते समय स्त्रियों का समूह आगे-आगे चले और पुरुषों का समूह पीछे-पीछे चले।** घर में पहुँचने पर द्वारदेश में पत्थर में बैठे हुए शवानुयायियों से आचमन किया जाना चाहिए। वहाँ शवानुयायी जौ, सरसों, दुर्वा और दो जलपूर्ण पात्रों को देखे। नीम के पतितयों का प्राशन करे। तेल लगाकर स्नान करे। सगोत्रियों को तो स्नेहस्नान नहीं करना चाहिए। (अपने) घर का अन्न नहीं खाना चाहिए। मिट्टी के बर्तन में भोजन करे। खाने के बाद उस पात्र को ऊपर मुख करके नहीं छोड़ना चाहिए (नीचे मुख करके रख देना चाहिए) ॥ २१—२५ ॥

☞ सनातन धर्म के अनुसार श्मशान में दाह संस्कार करने के लिये महिलाओं का जाना अनिवार्य है।

मृतकस्य गुणा ग्राह्या यमगाथां समुद्गिरेत्। शुभाऽशुभे च ध्यातव्ये पूर्वकर्मोपसञ्चिते॥ २६ ॥
अलब्धेन च देहेन भुङ्क्ते सुकृतदुष्कृते। वायुरूपो भ्रमत्येव वायुः कुट्यां स गच्छति॥ २७ ॥
दशाहकर्मक्रियया कुटी निष्पाद्यते ध्रुवम्। नवकैः षोडशश्राद्धैः प्रयाति हि कुटीं नरः॥ २८ ॥
तिलैर् दर्भैश्च भूम्यां वै कुटी ऋतुमती भवेत्। पञ्च रत्नानि वक्त्रे तु येन जीवः प्ररोहति॥ २९ ॥
यदा पुष्पं प्रनष्टं हि तदा गर्भं न धारयेत्। आदराच् च ततो भूमौ तिलदर्भान् विनिःक्षिपेत्॥ ३० ॥

मृतक के गुणों की चर्चा करनी चाहिए, "अहरहर् नयमानः" इत्यादि यमगाथा का उच्चारण करे। पूर्वजन्म के कर्मों से सञ्चित पुण्य और पाप का भी चिन्तन करना चाहिए। देह प्राप्त न होने पर भी प्राणी धर्म का और पाप का फल भोगता ही है। देह प्राप्त न होने पर प्राणी वायुरूप होकर घूमता रहता है, वह वायुरूप प्रेत कुटी प्राप्त होने पर वहां जाता है। दश दिनों तक की जाने वाली क्रिया से कुटी (शरीर) अवश्य बनाई जाती है। नवश्राद्धों से और सोलह श्राद्धों से मनुष्य उस कुटी में जाता है। तिलों से और कुशों से भूमि में कुटी स्वपूर्ववर्ती ऋतु से युक्त होगी। मुख में जो पञ्चरत्न (सोना, चाँदी, मोती, राजावर्त [लाजवर्द] तथा मूँगा) रखे जाते हैं, उनसे जीव उद्भूत (विकसित) होता है। जब स्त्री का पुष्प (रज) सर्वथा लुप्त हो जाता है, तब वह गर्भधारण नहीं करेगी। इसलिए आदरपूर्वक भूमि में तिल और कुशों को बिखरे॥ २६—३० ॥

पशुत्वे स्थावरत्वे च यत्र क्वाऽपि स जायते। यत्रैव जन्तुरुत्पन्नः श्राद्धं तत्रोपतिष्ठति॥ ३१ ॥
धन्विना लक्ष्यमुद्दिश्य मुक्तो बाणस् तदाप्नुयात्। यथा श्राद्धं यमुद्दिश्य कृतं तत्सेपतिष्ठति॥ ३२ ॥
यावन् नोत्पादितो देहस् तावच् छ्राद्धैर् नप्रीणनम्। क्षुधाविभ्रममापन्नो दशाहे न च तर्पितः॥ ३३ ॥
पिण्डदानं न यस्याऽभूदाकाशे भ्रमते तु सः। दिनत्रयं वसेत् तोये अग्नावपि दिनत्रयम्।
आकाशे वसते त्रीणि दिनमेकं तु वासके॥ ३४॥
दग्धे देहे च वह्नौ च जलेनैव तु तर्पितः। स्नेहस्नानं जलेनैव पूपकैः कृशरैर् गृहे॥ ३५ ॥
प्रथमेऽह्नि तृतीये च पञ्चमे सप्तमेऽपि वा। नवमैकादशे चैव श्राद्धं नवकमुच्यते॥ ३६ ॥

मरा हुआ मनुष्य पशुरूप में और स्थावररूप में जहाँ कहीं भी जन्म ले सकता है। वह प्राणी जहाँ उत्पन्न होता है, वहीं पुत्रादि से दिए गए श्राद्ध का फल उसको प्राप्त होता है। जैसे धनुर्धर से जिस लक्ष्य को वेधने के लिए बाण छोड़ा जाता है, बाण उसी लक्ष्य में पहुँचता है, वैसे ही श्राद्ध भी जिसको उद्दिष्ट करके किया जाता है, उसी के लिए उपस्थित होता है। जब तक पिण्डदेह उत्पादित नहीं किया जाता है, तब तक श्राद्ध से सन्तृप्ति नहीं

होती है। दश दिनों तक जो जलाञ्जलि से सन्तृप्त नहीं किया गया है और जिसका पिण्डदान नहीं हुआ है, वह मृत प्राणी भूख से चक्कर में पड़कर आकाश में घूमता रहता है। तीन दिन तक जल में निवास करेगा, तीन दिन तक आग में निवास करेगा, तीन दिन तक आकाश में निवास करेगा और एक दिन अपनी आवासभूमि में निवास करता है। देह आग में जलाए जाने पर, जल देने से ही प्रेत लुप्त होता है; उसका स्नेहस्नान भी जल से ही सम्पन्न होता है, घर में पूआ और खिचड़ी से पहले, तीसरे पाँचवें, सातवें, नौवें और ग्यारहवें दिन में जो श्राद्ध होता है उसको नवश्राद्ध अथवा नवकश्राद्ध कहा जाता है॥ ३१—३६॥

गृहद्वारे श्मशाने वा तीर्थे देवालयेऽपि वा। यत्राऽऽद्यौ दीयते पिण्डस् तत्र सर्वान् समापयेत्॥ ३७॥
एकादशाहे यच् छ्राद्धं तत् सामान्यमुदाहृतम्। चतुर्णामेव वर्णानां शुद्ध्यर्थं स्नानमुच्यते॥ ३८॥
कृत्वा चैकादशाहं च पुनः स्नात्वा शुचिर् भवेत्। दद्याद् विप्राय शय्यां च यथोक्तां प्रेतमोक्षदाम्॥ ३९॥
न भवेच् च यदा गोत्री परोऽपि विधिमाचरेत्। स्त्री वाऽपि पुरुषः कश्चित् तुष्टये कुरुते क्रियाम्॥ ४०॥
प्रथमेऽहनि यः पिण्डो दीयते विधिपूर्वकम्। अन्नाद्येन च तेनैव सर्वश्राद्धानि कारयेत्॥ ४१॥

घर के द्वार में, श्मशान में अथवा तीर्थ में अथवा देवालय में जहाँ पर पहला पिण्ड दिया जाता है, वहीं सभी पिण्डों का दान देने का कार्य समाप्त करे। ग्यारहवें दिन में जो श्राद्ध किया जाता है, वह चारों वर्णों के लिए समान कहा गया है। शुद्धि के लिए स्नान विहित किया जाता है। एकादशाह के श्राद्ध को सम्पन्न करके स्नान करने से कर्ता शुद्ध होगा। ग्यारहवें दिन में ब्राह्मण को प्रेत को प्रेतयोनि से मोक्ष देने वाली शास्त्रोक्त प्रकार की शय्या भी दे। जब प्रेत के गोत्र का कर्ता न हो, तब दूसरे गोत्र का मनुष्य भी उसका और्ध्वदेहिक कर्म करे। प्रेत की तृष्टि के लिए कोई स्त्री अथवा पुरुष क्रिया करता है। पहले दिन में जिस प्रकार के अन्नादि भोज्य पदार्थ से शास्त्रोक्त विधि से पिण्ड दिया जाता है, उसी अन्नादि भोज्य पदार्थ से सभी श्राद्धों को सम्पन्न करवाए॥ ३७—४१॥

अमन्त्रं कारयेच् छ्राद्धंदशाहं नामगोत्रतः। श्राद्धं कृतं तु यैर् वस्त्रैस् तानि त्यक्त्वा गृहं विशेत्॥ ४२॥
असगोत्रः सगोत्रो वा यदि स्त्री यदि वा पुमान्। प्रथमेऽहनि यः कुर्यात् स दशाहं समापयेत्॥ ४३॥
जीवस्य दशभिःपिण्डैर् देहो निष्पाद्यते ध्रुवम्। वृद्धिश् च दशभिर् मासैर् गर्भस्थस्य यथा भवेत्॥ ४४॥
आशौचं यावदेतस्य तावत् पिण्डोदकक्रिया। चतुर्णामपि वर्णानामेष एव विधिः स्मृतः॥ ४५॥

दश दिन तक मन्त्रों के प्रयोग के बिना ही प्रेत के नामका और गोत्र का प्रयोग करके श्राद्ध करवाए। जिन वस्त्रों को पहनकर दश दिनों के प्रेतश्राद्ध किए गए उन वस्त्रों को फेंककर घर में प्रवेश करे। असगोत्र अथवा सगोत्र, स्त्री अथवा पुरुष जो मनुष्य प्रथम दिन में दाहपिण्डदानादि कार्य करता है, वही दश दिनों के कृत्यों को सम्पन्न करे। जैसे गर्भ में रहे हुए प्राणी की दश महीनों से वृद्धि होती है, उसी प्रकार मृत प्राणी का भी अवश्य दश पिण्डों से देह निष्पन्न किया जाता है। जितने दिन तक इस मरे हुए व्यक्ति का अशौच रहता है उतने दिन तक पिण्ड और जल देने की क्रिया होती रहती है। चारों वर्णों का यही विधि समझा गया है॥ ४२—४५॥

यत्र त्रिरात्रमाशौचं तत्रादौ त्रीन् प्रदापयेत्। चतुरस् तु द्वितीयेऽह्नि तृतीये त्रींस् तथैव च॥ ४६॥
पृथक् शरावयोर् दद्योदेकाहं क्षीरमम्बु च। एकोद्दिष्टं तु वै श्राद्धं चतुर्थेऽहनि कारयेत्॥ ४७॥
प्रथमेऽहनि यः पिण्डस्तेन मूर्धा प्रजायते। चक्षुः श्रोत्रं च नासा च द्वितीयेऽह्नि प्रजायते॥ ४८॥
गण्डौ वक्त्रं तथा ग्रीवा तृतीयेऽहनि जायते। हृदयं कुक्षिरुदरं चतुर्थे तद्वदेव हि॥ ४९॥
कटिपृष्ठं गुदं चाऽपि पञ्चमेऽहनि जायते। षष्ठे ऊरू च विज्ञेये सप्तमे गुल्फसम्भवः॥ ५०॥

जहाँ तीन अहोरात्र तक अशौच रहेगा वहाँ पहले दिन तीन पिण्ड दिलवाए दूसरे दिन चार और तीसरे दिन

तीन पिण्ड दिलवाए। एक दिन दो मिट्टी के कटोरों में अलग-अलग दूध और पानी दे। एकोद्दिष्टश्राद्ध तो चौथे दिन में करवाए। पहले दिन में जो पिण्ड दिया जाता है उससे शिर बनता है, दूसरे दिन के पिण्ड से आँखें कान और नाक बनते हैं। तीसरे दिन के पिण्ड से कनपटियों से युक्त दो गाल, मुख और गले का भाग बनते हैं। चौथे दिन के पिण्ड से हृदय, पेट के पार्श्वभाग और पेट बनते हैं। पाँचवें दिन के पिण्ड से कटि और पीठ तथा गुदा बनते हैं, छठे दिन के पिण्ड से घुटने से ऊपर का भाग बनने वाला जानना चाहिए। सातवें दिन के पिण्ड से टखनों का निर्माण होता है॥ ४६—५०॥

अष्टमे दिवसे प्राप्ते जङ्घे च भवतोऽण्डज। पादौ च नवमे ज्ञेयौ दशमे बलवत्क्षुधा॥ ५१॥
एकादशाहे यः पिण्डस् तं दद्यादामिषेण तु। सिद्धान्नं तस्य दातव्यं कृशराः पूपकाः पयः।
प्रक्षाल्य विप्रचरणावर्घ्यं धूपं च दीपकम्॥ ५२॥
द्वादश प्रतिमास्यानि श्राद्धान्येकादशे तथा। त्रिपक्षं चाऽपि षण्मासे द्वे श्राद्धानि च षोडश॥ ५३॥
प्रतिमासं प्रदातव्यं मृताहे या तिथिर् भवेत्। स मासः प्रथमो ज्ञेयः अहरेकादशं तु यत्॥ ५४॥
शवहस्ते तु यच् छ्राद्धं मृतिस्थाने द्विजाऽऽसने। तदेव प्रथमं श्राद्धं तत् स्यादेकादशेऽहनि॥ ५५॥

आठवें दिन प्राप्त होने पर दिए गए पिण्ड से दो जङ्घाएँ बनती हैं, नवम दिन में दिए गए पिण्ड से दो पैर बनते हैं, दसवें दिन में दिए गए पिण्ड से कडी भूख उत्पन्न होती है। **ग्यारहवें दिन में जो पिण्ड दिया जाता है उस पिण्ड को आमिष (माँस) से बनाकर दे,** उस दिन में पका हुआ अन्न, खिचड़ियाँ, पूआ और दूध भी देने चाहिए। उस दिन में ब्राह्मण के चरणों को धोकर अर्घ्य धूप और दीप भी देने चाहिए। प्रतिमास दिए जाने वाले बारह श्राद्ध, एकादशाहका श्राद्ध, त्रैपक्षिक श्राद्ध, षण्मासादि से सम्बद्ध दो श्राद्ध (ऊनषाण्मासिक, ऊनाब्दिक), ये सोलह श्राद्ध हैं। मृत्यु के दिन में जो तिथि है उस तिथि में वर्षपर्यन्त प्रत्येक महीने में पिण्ड दिया जाना चाहिए। जो ग्यारहवाँ दिन है, उसको प्रथम मास का पिण्ड देने का दिन जानना चाहिए। हे पक्षिन्, द्विजासन रखने पर मरणस्थल में शवहस्त में जो श्राद्ध (पिण्ड) दिया जाता है वही प्रथम श्राद्ध है, तथापि मासिकश्राद्धों में प्रथम श्राद्ध तो ग्यारहवें दिन में किया जाने वाला मासिक श्राद्ध ही है॥ ५१—५५॥

सा तिथिर् मासिके श्राद्धे मृतो यस्मिन् दिने नरः। रिक्तयोश्च त्रिपक्षे च सा तिथिर् नाञ्जद्रियेत वै॥ ५६॥
पौर्णमास्यां मृतो योऽसौ चतुर्थी तस्य चोनका। चतुर्थ्यां तु मृतो यस्तु नवमी तस्य चोनका॥ ५७॥
नवम्याञ्च मृतो यश्च रिक्ता तस्य चतुर्दशी। एता रिक्ताश्च विज्ञेया अन्त्येष्टौ कुशलेन च॥ ५८॥
एकादशाहे चय् छ्राद्धं नवकं तत् प्रकीर्तितम्। चतुष्पथे त्यजेदन्नं पुनः स्नानं समाचरेत्॥ ५९॥
एकादशाहादारभ्य घटस्याऽन्नं जलान्वितम्। दिनेदिने च दातव्यमब्दं यावद् द्विजोत्तमे॥ ६०॥

ग्यारहवें दिन में होने वाले प्रथम मासिक श्राद्ध को छोड़कर अन्य मासिक श्राद्धों में तो वही तिथि ली जाती है, जिस तिथि में मनुष्य मरा है। रिक्ताओं में (ऊनषाण्मासिकश्राद्ध में और ऊनाब्दिक श्राद्ध में) तथा त्रैपक्षिकश्राद्ध में भी वह तिथि आदृत नहीं होगी, अन्य तिथि में ही श्राद्ध होगा। पूर्णिमा में जो मरा है, उसके ऊनमासिकादि ऊनश्राद्ध के लिए चौथ ग्राह्य होगी, चौथ में जो मरा है उसके ऊनमासिकादि ऊनश्राद्ध के लिए नवमी ग्राह्य होगी। जो नवमी में मरा है उसके ऊनमासिकादि ऊनश्राद्ध के लिए चतुर्दशी ग्राह्य होगी। अन्त्येष्टि में कुशल मनुष्य को इन रिक्ता तिथियों को जानना चाहिए। ग्यारहवें दिन में जो श्राद्ध है उसको नवकश्राद्ध कहा गया है। (उस श्राद्ध के लिए पाचित और श्राद्ध से अवशिष्ट) अन्न को चौराहे पर छोड दे और पुनः स्नान करे। ग्यारहवें दिन से प्रारम्भ करके वर्षपर्यन्त प्रतिदिन ब्राह्मण को जल से युक्त घट और अन्न देना चाहिए॥ ५६—६०॥

मानुषस्य शरीरे तु विद्यते ह्यस्थिसञ्चयः। तत्सङ्ख्या सर्वदेहेषु षष्ट्यधिकशतत्रयम्॥ ६१॥
उदकुम्भेन पुष्टानि तान्यस्थीनि भवन्ति हि। एतस्माद् दीयते कुम्भः प्रीतिः प्रेतस्य जायते॥ ६२॥
यस्मिन् दिने मृतो जनतुरटव्यां विषमेऽपि वा। यदा तदा भवेद् दाहः सूतकं मृतवासरात्॥ ६३॥
तिलपात्रं तथाऽन्नाद्यं गन्धधूपादिकं च यत्। एकादशाहे दातव्यं तेन शुद्धो द्विजो भवेत्॥ ६४॥
क्षत्रियो द्वादशाहे तु वैश्यः पञ्चदशे तथा। शुद्धिः शूद्रस्य मासेन मृतके जातसूतके॥ ६५॥

मनुष्य के शरीर में हड्डियों का समूह है। उसकी सङ्ख्या सभी देहों में तीन सौ साठ है। जलघट के दान से वे हड्डियाँ पुष्ट होती हैं, इस कारण से जलघट दिया जाता है; उससे प्रेत की प्रसन्नता होती है। प्राणी वन में अथवा विषमस्थल में भी जिस दिन में मरा है, जब कभी उसका दाह हो, अशौच तो मृत्यु के दिन से ही होता है। तिलपात्र अन्नादि भोज्यवस्तु और चन्दन-धूपादि जो सत्कारद्रव्य है वह सब ग्यारहवें दिन में देना चाहिए, उससे ब्राह्मण शुद्ध होगा। क्षत्रिय बारहवें दिन में शुद्ध होता है और वैश्य पन्द्रहवें दिन में शुद्ध होता है। शूद्र की तो मृताशौच में और जननशौच में भी एक महीना बीतने पर शुद्धि होती है॥ ६१—६५॥

मासत्रये त्रिरात्रं स्यात् षण्मासेन तु पक्षिणी। अहः संवत्सरादर्वाक् पूर्णे दत्त्वोदकं शुचिः।
अनेनैवाऽनुसारेण शुद्धिः स्यात् सार्ववर्णिकी॥ ६६॥
एकादशाहप्रभृति पुरतः प्रतिवत्सरम्। विश्वेदेवांस् तु सम्पूज्य पिण्डमेकं च निर्वपेत्॥ ६७॥
यथा तारागणाः सर्वे च्छाद्यन्ते रविरश्मिभिः। एवं प्रच्छाद्यते सर्वं न प्रेतो भवति क्वचित्॥ ६८॥
शय्यादानं प्रशंसन्ति सर्वदैव द्विजोत्तमाः। अनित्यं जीवनं यस्मात् पश्चात् को नु प्रदास्यति॥ ६९॥
तावद् बन्धुः पिता तावद् यावज् जीवति मानवः। मृते मृत इति ज्ञात्वा क्षणात् स्नेहो निवर्तते॥ ७०॥

बीते हुए पूर्णकालिक मरणाशौच में तीन महीनों के अन्दर तीन अहोरात्र आशौच होगा, छः महीनों के अन्दर पक्षिणी (दिन+रात+दिन अथवा रात+दिन) आशौच होगा, वर्षदिन के अन्दर एक दिन आशौच होगा वर्षदिन के अन्दर एक दिन आशौच होगा, पूर्णवर्ष बीत जाने पर स्नान करके जलाञ्जलि देकर तत्काल शुद्ध होगा। सभी वर्णों में अतिक्रान्ताशौच में इसी रीति से शुद्धि होगी। ग्यारहवें दिन से आगे प्रतिवर्ष विश्वेदेवों कीपूजा करके एक पिण्ड दे। जैसे सूर्य के किरणों से सभी तारागण ढके जाते हैं, वैसे ही और्ध्वदेहिक कृत्यों से सभी प्रेतत्वकारी दोष ढके जाते हैं, मनुष्य कहीं भी प्रेत नहीं होता है। ब्राह्मण किसी भी काल में किए जाने वाले शय्यादान की प्रशंसा करते हैं, क्योंकि जीवन अनित्य है, जीवन समाप्त होने पर कौन मृत व्यक्ति के लिए शय्यादान देगा। जबतक मनुष्य जीवित रहता है, तब तक वह बन्धु होता है, पिता होता है, मरने पर मर गया ऐसा जानकर तत्काल स्नेह हट जाता है॥ ६६—७०॥

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरेवं ज्ञात्वा मुहुर्मुहुः। जीवन्नपीति सञ्चिन्त्य स्वीयं हितमनुस्मरेत्॥ ७१॥
मृतानां कः सुतो दद्याद् द्विजे शय्यां सतूलिकाम्। एवं जानन्निदं सर्वं स्वहस्तेनैव दापयेत्॥ ७२॥
तस्माच् छय्यां समासाद्य सारदारुमयीं दृढाम्। दन्तादिरुचिरां रम्यां हेमपट्टैरलङ्कृताम्।
तस्या संस्थाप्य हैमं च हरिं लक्ष्म्या समन्वितम्॥ ७३॥
घृतपूर्णं च कलशं तत्रैव परिकल्पयेत्। विज्ञेयो गरुडप्रीत्यै स निद्राकलशो बुधैः॥ ७४॥
ताम्बूल-कुङ्कुमक्षोद-कर्पूराऽगुरु-चन्दनम्। दीपिकोपानह-च्छत्र-चामराऽऽसन-भाजनम्॥ ७५॥
पार्श्वेषु स्थापयेच् छक्त्या सप्तधान्यानि चैव हि। शयनस्थस्य भवति यच् चाऽन्यदुपकारकम्॥ ७६॥
भृङ्गारककादर्शं पञ्चवर्णं वितानकम्। शय्यामेवंविधां कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥ ७७॥

सपत्नीकाय सम्पूज्य स्वर्लोकसुखदायिनीम्। वस्त्रैः सुशोभनैः पूज्य चैलकं परिधापयेत्॥ ७८॥

स्वयम् ही अपना बन्धु है, ऐसा जानकर जीते हुए भी बारंबार ऐसा चिन्तन करके अपने हित का विचार करे। मरे हुए पुरुषों के लिए कौन सा पुत्र ब्राह्मण को विस्तरे से युक्त शय्या देगा, ऐसा जानकर यह सब अपने ही हाथ से दे। इस कारण से अच्छी लकडी की दृढ हाथी के दाँत से शोभित, सोने की पट्टिकाओं से विभूषित, रमणीय शय्या को प्राप्त करके उसमें लक्ष्मी से युक्त विष्णु की सोने की प्रतिमा को रखकर, वहीं पर शिरःस्थान के समीप में घी से पूर्ण घट भी रखे, वह निद्राकलश गरुड की तुष्टि के लिए रखा गया है, यह बात विज्ञों को जानना चाहिए। पान, कुङ्कुमचूर्ण, कपूर, अगुरु, श्रीखण्डचन्दन, दीपिका, जूता, छाता, चामर, आसन, वर्तन, सप्तधान्य (जौ, तिल, कँगनी, मूँग, चना, साँवा) ये सब चीजें अपनी शक्ति के अनुसार शय्या के पार्श्वभाग में रखे; अन्य भी जो कोई चीज शयन का उपकारक होता है, झारी, कमण्डलु, दर्पण और पञ्चरङ्गी चाँदनी इत्यादि उनको भी शय्या के बगल में रखे। इस प्रकार की स्वर्गलोक के सुख को देने वाली शय्या को निष्पन्न करके पत्नी सहित ब्राह्मण को पूजापूर्वक निवेदित (समर्पित) करे। अत्यन्त उत्तम वस्त्रों से सपत्नीक ब्राह्मण की पूजा करके एक कोई वस्त्र पहनावे॥ ७१—७८॥

कर्णकण्ठाङ्गुलीबाहुभूषणैश् चित्रभूषणैः। गृहोपकरणैर् युक्तं गृहं धेन्वा समन्वितम्॥ ७९॥
ततोऽर्घः सम्प्रदातव्यः पञ्चरत्नफलाऽक्षतैः॥ ८०॥
यथा न कृष्णशयनं शून्यं सागरकन्यया। शय्या ममाऽप्यशून्याऽस्तु तथा जनमनिजन्मनि॥ ८१॥
दत्त्वैवं तल्पममलं क्षमाप्य च विसर्जयेत्। तथा चैकादशाहे तु विधिरेष प्रकीर्तितः॥ ८२॥

ददाति यो हि धर्मार्थे बान्धवो बान्धवे मृते। विशेषमत्र पक्षे तु कथ्यमानं मया शृणु॥ ८३॥
उपयुक्तं च तस्याऽऽसीत् यत् किञ्चित् स्वगृहेपुरा। तस्य यद् गात्रसंलग्नं वस्त्रं भाजनवाहनम्।
यदभीष्टं च तस्याऽऽसीत् तत् सर्वं परिकल्पयेत्॥ ८४॥
स्थापयेत् पुरुषं हैमं शय्योपरि शुभं बुधः। पूजयित्वा प्रदातव्या मृतशय्या यथोदिता॥ ८५॥

कान, गला, अँगुली, बाहु के आभूषणों से अन्य विचित्र भूषणों से घरेलू उपकरणों से युक्त और दूध देने वाली गाय से सहित घर भी उस सपत्नीक ब्राह्मण को दे। तब सपत्नीक ब्राह्मण को पञ्चरत्न (सोना, चाँदी, मोती, राजावर्त [लाजवर्द], मूँगा), फल और अक्षतों से युक्त अर्घ देना चाहिए। तब "यथा न कृष्णशयनं" इत्यादि मन्त्र से प्रार्थना करनी चाहिए। मन्त्र का अर्थ-जिस प्रकार विष्णु की शय्या समुद्र की कन्या (लक्ष्मी) से शून्य नहीं होती है उसी प्रकार से मेरी शय्या भी जन्म-जन्मातरों में कभी भी पत्नी से शून्य न हो। इस प्रकार से निर्मल शय्या का दान देकर क्षमापन करके ब्राह्मण को विसर्जित करे। ग्यारहवें दिन में भी यह विधि बताया गया। बान्धव मरने पर जो बान्धव धर्मार्थ शय्यादान देता है इस पक्ष में मुझसे बताए जा रहे विशेष कार्य को सुनो। पहले जीवितावस्था में अपने घर में उस मृत व्यक्ति से उपयोग में लाया गया जो भी वस्तु था, उसके शरीर से सम्बन्ध वस्त्र, बर्तन, यान वह सब शय्या के साथ में देना चाहिए, मृतक के अभीष्ट सभी वस्तओं को रखे। विज्ञ कर्ता शय्या के ऊपर मृतपुरुष की सोने की प्रतिमा रखे। पूजा करके पूर्वोक्त प्रकार की शय्या मृतशय्या के रूप में देनी चाहिए॥ ७९—८५॥

पुरन्दरगृहे सर्वं सूर्यपुत्राऽऽलये तथा। उपतिष्ठेत् सुखं जन्तोः शय्यादानप्रभावत्ः॥ ८६॥
पीडयन्ति न तं याम्याः पुरुषा भीषणाऽऽननाः। न घर्मेण न शीतेन बाध्यते स नरः क्वचित्॥ ८७॥
शय्यादानप्रभावेण प्रेतो मुच्येत बन्धनात्। अपि पापसमायुक्तः स्वर्गलोकं स गच्छति॥ ८८॥
विमानवरमारूढः सेव्यमानोऽप्सरोगणैः। आभूतसंप्लवं यावत् तिष्ठेत् पातकवर्जितः॥ ८९॥

नवकं षोडशश्राद्धं शय्यां सांवत्सरं तथा। भर्तुर् या कुरुते नारी तस्याः श्रेयो ह्यनन्तकम्॥ ९०॥

शय्यादान के प्रभाव से प्राणी के लिए इन्द्र के घर में (स्वर्ग में) और यमराज के घर में भी सम्पूर्ण सुख उपस्थित होगा। डरावने मुँह वाले यमराज के पुरुष उस शय्यादान वाले मनुष्य को पीड़ा नहीं देते हैं, वह मनुष्य धूप से अथवा ठण्डक से कहीं भी पीड़ित नहीं होता है। शय्यादान के प्रभाव से प्रेत बन्धन से मुक्त होगा। पापों से युक्त मनुष्य भी शय्यादान के प्रभाव से स्वर्ग जाता है। पातकरहित मनुष्य तो श्रेष्ठ विमान में चढ़कर अप्सराओं के गणों से सेवित होता हुआ प्रलयकाल तक स्वर्ग में निवास करेगा॥ ८६—९०॥

उपकाराय सा भर्तुर् जीवन्तो न मृता तथा। उद्धरेज् जीवमाना सा सती सत्यवती प्रियम्॥ ९१॥
स्त्रियो दद्याच् च शयने हेमकुङ्कुममञ्जनम्। वस्त्रं भूषां तथा शय्यामेवं कृत्वा च दापयेत्॥ ९२॥
उपकारकरं स्त्रीणां यद् भवेदिह किञ्चन। भूषणं गात्रलग्नं च वस्तु भोग्यादिकं च यत्॥ ९३॥
तत् सर्वं मेलयित्वा तु स्वेस्वे स्थाने नियोजयेत्। पूजयेल् लोकपालांश् च ग्रहान् देवीं विनायकम्॥ ९४॥
ततः शुक्लाम्बरधरो गृहीतकुसुमाञ्जलिः। इममुच्चारयेन् मन्त्रं विप्रस्य पुरतो बुधः॥ ९५॥

पति के उपकार के लिए जीवित रहती हुई पति के चिता में चढ़कर न मरने वाली वह स्त्री भी उस प्रकार कर्म करती हुई जीवित रहकर पति का उद्धार करेगी। स्त्री के लिए दिए जाने वाले शय्यादान में सोने के आभूषण, कुङ्कुम, अञ्जन (कज्जल), वस्त्र, अलङ्कार भी रखे, इस प्रकार शय्या बनाकर दान करे। स्त्रियों के लिए इस लोक में उपयोगी वस्तु जो कुछ हो वह सब मिलाकर शय्या में अपने अपने स्थान में रखे। लोकपालों की, ग्रहों की, देवी गौरी की और विनायक की भी पूजा करे। तब श्वेतवस्त्र पहनके पुष्पाञ्जलि लेकर विज्ञ कर्ता ब्राह्मण के आगे खड़ा होकर 'प्रेतस्य प्रतिमा ह्येषा' इत्यादि मन्त्र का उच्चारण करे॥ ९१—९५॥

प्रेतस्य प्रतिमा ह्येषा सर्वोपकरणैर् युता। सर्वरत्नसमायुक्ता तव विप्र निवेदिता॥ ९६॥
आत्मा शम्भुः शिवा गौरी शक्रः सुरगणैः सह। तस्माच् छय्याप्रदानेन सैष आत्मा प्रसीदतु॥ ९७॥
आचार्याय प्रदातव्या ब्राह्मणाय कुटुम्बिने। गृहीते ब्राह्मणस् तत्र कोऽदादिति च कीर्तयेत्॥ ९८॥
ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य विसर्जयेत्। विधिनाऽनेन वै पक्षिन् दानमेकस्य दापयेत्॥ ९९॥
बहुभ्यो न प्रदेयानि गौर् गृहं शयनं स्त्रियः। विभक्तदक्षिणा ह्येते दातारं पातयन्ति हि॥ १००॥

हे ब्राह्मणदेव, सभी उपकरणों से युक्त तथा सभी रत्नों से सहित यह प्रेत की प्रतिमा आप को समर्पित की गई है। आत्मा ही शम्भु है, शिवा गौरी और देवता के गणों से युक्त इन्द्र भी है। इस लिए शय्यादान से सर्वदेवमय यह आत्मा प्रसन्न (निष्कल्मष) हो। शय्यादान पत्नीपुत्रादि से युक्त और वेद-वेदाङ्गों के अध्यापक ब्राह्मण को देना चाहिए। तब ब्राह्मण की प्रदक्षिणा करके और दण्डवत् प्रणाम भी करके ब्राह्मण को विदा करें। हे पक्षिन्, इसी विधि से शय्यादान एक ही ब्राह्मण को दे। एक गाय, एक घर, एक शय्या और एक स्त्री अनेक ब्राह्मणों को नहीं देना चाहिए। दक्षिणा विभक्त होने पर ये दान देने वाले को नरक में डाल देते हैं॥ ९६—१००॥

एवं यो वितरेत् तार्क्ष्य शृणु तस्य च यत् फलम्। साग्रं वर्षशतं दिव्यं स्वर्गलोके महीयते॥ १०१॥
यत् पुण्यं तु व्यतीपाते कार्तिक्यामयनद्वये। द्वारकायां तु यत् पुण्यं चन्द्रसूर्यग्रहे तथा॥ १०२॥
प्रयागे नैमिषे यच् च कुरुक्षेत्रे तथाऽर्बुदे। गङ्गायां यमुनायां च सिन्धुसागरसङ्गमे॥ १०३॥
तेषु यद् दीयते दानं तस्मादप्यधिकं त्विदम्। एतच्छय्याप्रदानस्य नाऽऽप्नोति षोडशीं कलाम्॥ १०४॥
यत्राऽसौ जायते प्राणी भुङ्क्ते तत्रैव तत् फलम्। कर्मक्षये क्षितौ याति मानुषः शुभदर्शनः॥ १०५॥
महाधनी च धर्मज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः। पुनः स याति वैकुण्ठं मृतोऽसौ नरपुङ्गवः॥ १०६॥

दिव्यं विमानमारुह्य अप्सरोभिः समावृतः। अर्होऽसौ हव्यकव्येषु पितृभिः सह मोदते॥ १०७॥

हे गरुड, इस प्रकार जो मनुष्य दान देगा, उसका जो फल होता है उसको सुनो। वह दाता कुछ अधिक दिव्य एक सौ वर्ष तक स्वर्गलोक में सत्कृत होता हैं। जो पुण्य व्यतीपात में, कार्तिक पूर्णिमा में, उत्तरायणप्रतिपदा में और दक्षिणायनप्रतिपदा में दान देने से मिलता है, जो पुण्य द्वारका में चन्द्रग्रहण में, सूर्यग्रहण में, जो पुण्य प्रयाग में, नैमिषारण्य में, कुरूक्षेत्र में, अर्बुदपर्वत में, गङ्गा में, यमुना में, सिन्धुनद और समुद्र के सङ्गम में दान देने से जो पुण्य मिलता है, उससे भी अधिक पुण्य इस शय्या दान से मिलता है। व्यतीपातादि में दिया गया दान शय्यादान के सोलहवें अंश का भी तुल्य नहीं होता। यह शय्यादान देने वाला प्राणी जहाँ जन्म लेता है, वहीं उसके फल का भोग करता है। शय्यादान कर्म के फल का क्षय होने पर शय्यादान देने वाला मनुष्य सुन्दर रूपवाला, महाधनी, धर्म का विज्ञ, वेद, वेदाङ्ग, वेदोपाङ्ग, स्मृति, पुराण इत्यादि सभी शास्त्रों में निपुण रूप में प्रकट होने के लिए पृथ्वीलोक में आता है और वह श्रेष्ठ मनुष्य मरने पर अप्सराओं से घिरा हुआ होकर दिव्य विमान में चढ़कर फिर वैकुण्ठ में जाता है। वह मनुष्य हव्यकर्म और कव्यकर्म के फल भोगने में योग्य होकर पितरों के साथ में सुखभोग करता है॥ १०१—१०७॥

अष्टकासु कृत श्राद्धममावास्योदिने तथा। मघासु पितृपर्वाणि यानियानि च तेषु च॥ १०८॥
शृणु तार्क्ष्य यथान्यायं प्रेतत्वे पितरो यदि। नोपतिष्ठन्ति श्राद्धानि सपिण्डीकरणं विना॥ १०९॥
सपिण्डीकरणं कार्यं पूर्णे वर्षे न संशयः। आद्यं तु शवशुद्ध्यर्थं कृत्वा चैव त्रिषोडशीम्॥ ११०॥
पितृपङ्क्तिविशुद्ध्यर्थं शतार्धेन तु योजयेत्। वृद्धिं प्राप्याऽग्रतःकुर्याच् छूद्रस्य स्वेच्छयैव हि॥ १११॥
साम्प्रतं साऽग्निके कार्यं द्वादशाहे सपिण्डनम्। न चाऽसौ कुरुते यावत् प्रेत एव स वह्निमान्॥
द्वादशाहे ततः कार्यं साग्निकेन सपिण्डनम्॥ ११२॥
अस्थिक्षेपो गयाश्राद्धं श्राद्धं चाऽऽपरपक्षिकम्। अब्दमध्ये न कुर्वीत सपिण्डीकरणं विना॥ ११३॥
सपत्न्यो यदि बह्वयः स्युरेका पुत्रवती भवेत्। सर्वास्ता पुत्रवत्यः स्युस् तेनैकेनाऽऽत्मजेन हि॥ ११४॥
नाऽसपिण्ड्याग्निमान् पुत्रः पितृयज्ञं समाचरेत्। समाचाराद् भवेत् पापी पितृहा चापि जायते॥ ११५॥

हे गरुड, सुनो, अष्टकाओं में किया गया श्राद्ध अमावास्या के दिन में, मघा नक्षत्र में और अन्य जो कोई पितृपर्व हैं, उनमें किया गया श्राद्ध इत्यादि शास्त्रानुसार किए गए श्राद्ध भी यदि पितर लोग प्रेतभाव में रहे हैं तो सपिण्डीकरण न होने तक पितरों को प्राप्त नहीं होते हैं। वर्ष पूर्ण होने पर सपिण्डीकरण करना चाहिए, इसमें सन्देह नहीं है। शवशुद्धि के लिए (एकादशाह में) आद्यश्राद्ध और यथाकाल मासिक ऊनमासिकादि त्रिगुणित सोलह श्राद्ध करके पितृपङ्क्ति के शुद्धि के लिए किए गए पचासवें श्राद्ध (पिण्ड) से प्रेत को पितरों के साथ में मिलाए। अवश्य कर्तव्य वृद्धिश्राद्ध आने पर वर्ष पूर्ण होने से पहले भी सपिण्डीकरण करे। शूद्र का तो स्वेच्छा से ही वर्ष पूर्ण होने से पहले भी सपिण्डीकरण करे। कर्ता अग्नि से युक्त होने पर बारहवें दिन में सपिण्डीकरण करना चाहिए। जब तक प्रेत ही अग्नियुक्त है (कर्ता अग्नियुक्त नहीं है) तो कर्ता बारहवें दिन में सपिण्डीकरण नहीं करता है। इसलिए अग्नियुक्त कर्ता से बारहवें दिन में सपिण्डीकरण किया जाना चाहिए। सपिण्डीकरण के बिना मृत्यु से एक वर्ष तक अस्थिक्षेप, गयाश्राद्ध और अपरपक्षश्राद्ध (कृष्णपक्ष का श्राद्ध) भी न करे। यदि एक पुरुष की बहुत सी पत्नियाँ हैं तो उनमेंसे कोई एक पत्नी पुत्रवती होने पर उसी एक पुत्र से सभी पत्नियाँ मानी जाती हैं। पिता का सपिण्डीकरण किए बिना अग्नियुक्त पुत्र पितृयज्ञ न करे, करने से वह पापी और पितृघाती भी हो जाता है॥ १०८—११५॥

मृते भर्तरि या नारी प्राणांश् चैव परित्यजेत्। भर्त्रैव हि समं तस्याः प्रकुर्वीत सपिण्डनम्॥ ११६॥

अस्थानिकापि या व्यूढा वैश्या वा क्षत्रियापि वा। याः पत्न्यो वै पितुः काश्चित् कुर्यात् पुत्रः सपिण्डनम्॥
विप्रेणैव यदा शूद्रा परिणीता प्रमादतः। एकोद्दिष्टं तु तच्छ्राद्धं सा तु तेनैव युज्यते॥ ११८॥
अन्ये तु दश ये पुत्रा जाता वर्णचतुष्टये। ते तासुतासु योक्तव्याः सपिण्डीकरणे सदा॥ ११९॥
अन्वष्टकासु यच् छ्राद्धं वृद्धिहेतुकम्। पितुः पृथक् प्रदातव्यं स्त्रियाः पिण्डं सपिण्डने॥ १२०॥

पति मरने पर जो स्त्री प्राणों को त्याग देती है, उसका सपिण्डीकरण पति के साथ में ही करे। पिता की शास्त्रोक्त क्रम को छोड़कर भी विवाहिता जो कोई वैश्य जाति की अथवा क्षत्रिय जाति की पत्नियाँ हैं, उनका भी (ब्राह्मण भी) पुत्र सपिण्डीकरण करे। ब्राह्मण से ही जब प्रमाद से शूद्रकन्या विवाहिता होती है, उसका श्राद्ध तो एकोद्दिष्ट ही होता है, उसी से वह सम्बद्ध होती है (उसका ब्राह्मणी श्वश्वादि से वा पति से सपिण्डन नहीं होता है)। चारों वर्णों की पत्नियों में अन्य दश प्रकार के जो पुत्र उत्पन्न होते हैं वे तो सदाकाल उस-उस वर्ण की पत्नी के सपिण्डीकरण में लगाए जाने के योग्य होते हैं। अन्वष्टकाओं में (अष्टका के बाद की नवमियों में) जो श्राद्ध होता है, वृद्धि के निमित्त से जो नान्दीश्राद्ध होता है उन श्राद्धों में और सपिण्डीकरण श्राद्ध में भी स्त्री को (माँ को) पिता के पिण्ड से अलग ही पिण्ड देना चाहिए॥ ११६—१२०॥

पितामह्या समं मातुः पितुः सह पितामहैः। सपिण्डीकरणं कार्यमिति ताक्ष्र्य मतं मम॥ १२१॥
अपुत्रायां मृतायां तु पतिः कुर्यात् सपिण्डनम्। मात्रादितिसृभिः सार्धमेवं धर्मेण योजयेत्॥ १२२॥
पुत्रो नास्ति न भर्ता च स्त्रीणां ताक्ष्र्य सपिण्डनम्। कारयेद् वृद्धिसमये भ्रातृदायाददेवरैः॥ १२३॥
पतिपुत्रविहीनानां गोत्री नास्ति न देवरः। एकोद्दिष्टेन दातव्यं परेण सह भ्रातृभिः॥ १२४॥
अज्ञानाद् विघ्नतो वाऽपि न कृतं चेत्सपिण्डनम्। नवकं षोडशश्राद्धमाब्दिकं कारयेत् ततः॥ १२५॥

हे गरुड, माँ का पितामहियों के साथ में और पिता का पितामहों के साथ में सपिण्डीकरण करना चाहिए, यह मेरा मत है। पत्नी पुत्ररहित रहकर ही मरती है तो पति अपनी माता इत्यादि तीन स्त्रियों के साथ उसका सपिण्डीकरण करे, इस प्रकर उसको पितृधर्म से युक्त करे। हे गरुड, यदि स्त्रियों का पुत्र नहीं है और पति है तो वृद्धिकार्य के समय में स्त्री के भाई से अथवा स्त्री का दायभाग खाने वाले किसी उत्तराधिकारी से अथवा देवर से उसका सपिण्डीकरण कुलवृद्ध करवाए। पति से और पुत्र से भी रहित स्त्रियों का यदि कोई गोत्री भी नहीं है, देवर भी नहीं है तो स्त्री के भाइयों को साथ में लेकर किसी दूसरे से एकोद्दिष्ट विधि से ही उसको श्राद्ध देना चाहिए। अज्ञान से अथवा किसी विघ्न से भी किसी का सपिण्डीकरण नहीं हुआ है तो कुलवृद्ध एकादशाहिक श्राद्ध, प्रथम-मासिक श्राद्धादि सोलह श्राद्ध और आब्दिक श्राद्ध कराकर उसके बाद सपिण्डीकरण करवाए॥ १२१—१२५॥

अदाहे न च कर्तव्यं सदाहे कारयेद् बुधः। दर्भपुत्तलकं कृत्वा वह्निना दाहयेच् छवम्॥ १२६॥
पितुः पुत्रेण कर्तव्यं न कुर्वीत पिता सुते। अतिस्नेहान् न कर्तव्यं सपिण्डीकरणं सुते॥ १२७॥
बहवोऽपि यदा पुत्रा विधिमेकः समाचरेत्। नवश्राद्धं सपिण्डत्वं श्राद्धान्यन्यानि षोडश॥ १२८॥
एकेनैव तु कार्याणि संविभक्तधनेष्वपि। अन्त्येष्टिं कुरुते ह्येको मुनिभिः समुदाहृतम्॥ १२९॥
विभक्तैश्च पृथक् कार्या क्रिया सांवत्सरादिका। एकैकेन च कर्तव्या पुत्रेण च स्वयंस्वयम्॥ १३०॥

जिसका किसी कारण से दाहसंस्कार नहीं हुआ है उसका नवकश्राद्धादि नहीं करना चाहिए, दाहसंस्कार होने पर ही विज्ञ जन नवक श्राद्धादि करवाए। किसी कारण से साक्षात् शव का दाहसंस्कार नष्ट हो सकने पर कुश का पुत्तलक बनाकर उसीका शव के रूप में दाह करवाए। पिता का सपिण्डीकरण पुत्र को करना चाहिए, पुत्र का सपिण्डीकरण पिता न करे। अति स्नेह से अभिभूत होकर पिता को पुत्र का सपिण्डीकरण नहीं करना चाहिए।

यदि मृत मनुष्य के बहुत से पुत्र हैं तो भी और्ध्वदेहिक कृत्य की विधि को एक ही पुत्र सम्पन्न करे। पैतृक धन के बटवारा करके अलग-अलग पाक करके रहने वाले पुत्रों में से और पैतृक धन को बंटवारा न करके एक ही पाक करके रहने वाले पुत्रों में से भी एक पुत्र ही नवश्राद्ध, सपिण्डीकरणश्राद्ध और प्रथममासिकश्राद्धादि सोलह श्राद्ध करता है। अन्त्येष्टि एक ही पुत्र करता है, यह बात मुनियों से बताई गई है। जो पैतृक धन का बँटवारा करके अलग-अलग पाक करके रहने वाले पुत्र हैं, उनको प्रत्येक को ही पिता का सांवत्सरिकश्राद्धादि श्राद्ध (अपने अपने अलगरूप में घर में) स्वयम् करना चाहिए॥ १२६—१३०॥

यस्यैतानि न दत्तानि प्रेतश्राद्धानि षोडश। पिशाचत्वं स्थिरं तस्य कृतैः श्राद्धशतैरपि॥ १३१॥
भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा सपिण्डः शिष्य एव वा। सपिण्डीकरणं कुर्यात् पुत्रहीने खगेश्वर॥ १३२॥
सर्वेषां पुत्रहीनानां पत्नी कुर्यात् सपिण्डनम्। ऋत्विजं कारयेद् वाऽथ पुरोहितमथापि वा॥ १३३॥
मृते पितर्यब्दमध्ये ह्युपरागो यदा भवेत्। पार्वणं न सुतैः कार्यं श्राद्धं नान्दीमुखं न च॥ १३४॥
तीर्थश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धमन्यच् च पैतृकम्। अब्दमध्ये न कुर्वीत महागुरुविपत्तिषु॥ १३५॥

जिसके लिए ये सोलह श्राद्ध प्रेतश्राद्ध नहीं दिए गए हैं, उसका प्रेतत्व अन्य सैकड़ों श्राद्ध करने पर भी स्थिर ही रहता है, जाता नहीं। हे पक्षियों के मालिक, पुत्ररहित व्यक्ति मरने पर भार्या अथवा भाई का पुत्र अथवा अन्य कोई सपिण्ड अथवा शिष्य ही उसका सपिण्डीकरण करे। पुत्र से रहित पुरुषों का सपिण्डन पत्नी स्वयम् करे अथवा ऋत्विक् से करवाए अथवा पुरोहित से करवाए। पिता का मरण होने पर वर्ष के मध्य में यदि चन्द्रग्रहण अथवा सूर्यग्रहण होता है तो उसमें पुत्र को (ग्रहणानिमित्तक) पार्वणश्राद्ध नहीं करना चाहिए; वर्षमध्य में नान्दीमुखश्राद्ध भी नहीं करना चाहिए। **महागुरुओं का (पिता, माता और पति का) मरण होने पर वर्षमध्य में तीर्थश्राद्ध, गयाश्राद्ध और अन्य पैतृक श्राद्ध भी न करें**॥ १३१—१३५॥

यमकके च गजचछायामन्वादिषु युगादिषु। पितृपिण्डो न दातव्यः सपिण्डीकरणं विना॥ १३६॥
यज्ञपुरुषस्य यद् दानं देवादीनां च यत् तथा। अपूर्णेऽप्यब्दमध्येऽपि कर्तव्यमिति के चन॥ १३७॥
पितृभ्योऽपि हि यद् दत्तमर्घपिण्डविवर्जितम्। कर्तव्यं तच् च वै सर्वमेष एव विधिः स्मृतः॥ १३८॥
देवानां पितरो देवा पितृणामृषयस् तथा। ऋणीणां पितरो देवाः पिता जयति तेन वै॥ १३९॥
पितृदेवमनुष्याणां यज्ञनाथो विभुर् भवेत्। यज्ञनाथस्य यद् दत्तं तद् दत्तं सर्वदेहिनाम्॥ १४०॥

सपिण्डीकरण न होने पर वर्षपर्यन्त अयनमुखों में, गजच्छायायोग में, मन्वादि तिथियों में और युगादि तिथियों में भी पितृपिण्ड नहीं देना चाहिए। यज्ञपुरुष का जो दान है वह और देवादि का जो दान है वह भी भी वर्ष पूर्ण न होने पर भी और वर्ष के बीच में भी करना योग्य है, ऐसा कोई कहते हैं। पितरों को भी जो अर्घ से और पिण्ड से रहित रूप में दान दिया जाता है वह सब भी करना चाहिए, यही शास्त्र का विधान समझा गया है। देवताओं के लिए पितर देवता हैं, पितरों के लिए ऋषि लोग देवता हैं, ऋषियों के लिए पितर लोग देवता हैं, इसलिए पितर लोग सर्वश्रेष्ठ हैं। पितर, देवता और मनुष्यों के प्रभु यज्ञनाथ (विष्णु) है, यज्ञनाथ को जो दिया गया होता है वह सभी प्राणियों को दिया गया होता है॥ १३६—१४०॥

मृते पितर्यब्दमध्ये यः श्राद्धं कारयेत् सुतः। सप्तजन्मकृताद् धर्मात् हीयते नाऽत्र संशयः॥ १४१॥
प्रेतीभूतास् तु पितरो लुप्तपिण्डोदकक्रियाः। भ्रमन्ति वायुना सर्वे क्षुत्तृड्भ्यां परिपीडिताः॥ १४२॥
पितरि प्रेततापन्ने लुप्यन्ते मातृकाः क्रियाः। अथ मातुर् विपत्तिः स्यात् पितृकार्यं न लुप्यते॥ १४३॥
मृता माता पिता तिष्ठेज् जीवन्ती च पितामही। सपिण्डनं तु कर्तव्यं पितामह्या सहैव तु॥ १४४॥

सत्यंसत्यं पुनः सत्यं श्रूयतां वचनं मम। न पिण्डो मिलितो येषां मृतानां तु नृणां भुवि॥ १४५॥
उपतिष्ठेन् न वै तेषां पुत्रैर् दत्तमनेकधा। हन्तकारस् तदुद्देशे श्राद्धं नैव जलाञ्जलिः॥ १४६॥

पिता मरने पर वर्ष के भीतर जो पुत्र अन्य पैतृक श्राद्ध करता है वह सात जन्मों में किए गए धर्म से च्युत हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है जो पितर लोग पिण्डदान और जलदान न होने से प्रेतयोनि में पड़े हैं, वे भूख प्यास से अत्यन्त पीड़ित होकर वायु के साथ में घूमते रहते हैं। पिता प्रेतत्व में रहने पर माता का कार्य लुप्त होता है, यदि माता का मरण होता है तो पिता का कार्य लुप्त नहीं होता है माता मरी है, पिता जीवित है और पितामही भी जीवित है तो प्रपितामही के साथ सपिण्डन करना चाहिए। सत्य सत्य और भी सत्य मेरा वचन सुना जाय। इस भूलोक में मरे हुए जिन मनुष्यों का पिण्ड पितरों के पिण्डों से नहीं मिलाया गया है, उनके उद्देश्य से पुत्रों से अनेक प्रकार से दिए गए हन्तकार (ब्राह्मणभोजन), श्राद्ध और जलाञ्जलि (तर्पण) भी उनको प्राप्त नहीं होंगे॥ १४१—१४६॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-३५

तार्क्ष्य उवाच—

अपरं मम सन्देहं कथयस्व जनार्दन। पुरुषस्य च कस्याऽपि माता पञ्चत्वमागता॥ १॥
पितामही जीवति च तथा च प्रपितामही। वृद्धप्रपितामही तद्वन् मातृसक्तः पिता तथा॥ २॥
प्रमातामहश् च तथा वृदथप्रमातामहस् तथा। केन सा मेल्यते माता एतत् कथय मे प्रभो॥ ३॥

गरुड ने कहा—हे जनार्दन, मेरे दूसरे सन्देह के विषय को भी बताइए। किसी मनुष्य की माँ मर गई है, किन्तु पितामही, प्रपितामही और वृद्धपितामही भी जीवित है, माता से सम्बन्ध पिता (मातामह) जीवित है, प्रमातामह भी जीवित हैं, वृद्धप्रमातामह भी जीवित है तो वह माँ किससे (सपिण्डीकरण करके) पितरों की पङ्क्ति में मिलाई जाती है? हे प्रभो, मुझको यह बताइए॥१—३॥

श्रीकृष्ण उवाच—

पुनरुक्तं प्रवक्ष्यामि सपिण्डीकरणं खग। उमा लक्ष्मीश्च सावित्रीत्येताभिर् मेलयेद् ध्रुवम्॥ ४॥
त्रयः पिण्डभुजो ज्ञेयास् त्याजकाश् च त्रयः स्मृताः। त्रयः पिण्डानुलेपाश् च दशमः पङ्क्तिसन्निधः॥ ५॥
इत्येते पुरुषाः ख्याताः पितृमातृकुलेषु च। तारयेद् यजमानस् तु दश पूर्वान् दशाऽवरान्॥ ६॥
सपिण्डः स भवेदादौ सपिण्डीकरणे कृते। अन्त्यस् तु त्याजको ज्ञेयो यो वृद्धप्रपितामहः॥ ७॥
अश्रितमस् त्याजको ज्ञेयो लेपकः प्रथमो भवेत्। लेपकस् त्वन्तिमो यस्तु स भवेत् पङ्क्तिसन्निधः॥ ८॥
यजमानो भवेदेको दश पूर्वे दशाऽवरे। इत्येते पितरो ज्ञेया एकविंशतिसङ्ख्यकाः॥ ९॥
विधिना कुरुते यस् तु संसारे श्राद्धमुत्तमम्। जायतेऽत्र न सन्देहः शृणु तस्याऽपि यत् फलम्॥ १०॥

श्रीकृष्ण ने कहा—हे पक्षिन्, बताए गए सपिण्डीकरण को फिर बताऊँगा। वैसी माँ को उमा लक्ष्मी और सावित्री (महेश्वर, विष्णु और ब्रह्मा की पत्नियाँ) इन से ही अवश्य मिलाए। लोक में (यजमान से पूर्व के) तीन पुरुष पिण्डभोग करने वाले हैं, (पिण्डभोग करने वालों से पूर्वके) तीन पुरुष त्याज्य समझे गए हैं, (त्याजकों से पूर्व के) तीन पुरुष पिण्डानुलेप हैं और (उन से पूर्व का) दशम पुरुष पङ्क्तिसन्निध है। पितृकुल में और मातृकुल में भी ये पुरुष प्रसिद्ध हैं। यजमान सुकर्म करके अपने पूर्वज दश पुरुषों का और अपने से बाद के दश पुरुषों का उद्धार कर सकता है। सपिण्डीकरण करने पर पहले आने वाला पिण्डभुक् होता है, जो सपिण्डीकरण होने पर

निवृत्त होता है, पिण्डभुक् नहीं रहता है वह वृद्धप्रपितामह त्याजक रूप में ज्ञेय है, जो पहले तीन त्याजकों में अन्तिम (पूर्वतम) त्याजक था इस वार सपिण्डीकरण होने पर वह प्रथम पिण्डनुलेपक होगा, पहले तीन पिण्डानुलेपकों में जो अन्तिम (पूर्वतम) पिण्डानुलेपक था इस वार सपिण्डीकरण होने पर वह पिण्डानुलेपक न रहकर पङ्क्तिसन्निध होगा। यजमान एक होगा, उससे पूर्व के दश और पीछे आने वाले दश मिलाकर, ये इक्कीस सङ्ख्या वाले पितर लोग जानने चाहिए। जो व्यक्ति इस संसार में शास्त्रोक्त विधि से उत्तम प्रकार का श्राद्ध करता है, उसका जो निस्सन्देह फल होता है, उसको सुनो॥४—१०॥

पिता ददाति पुत्रान् वै गोधनं च पितामहः। हेमदाता भवेत् सोऽपि यस्तस्य प्रपितामहः॥११॥
कृते श्राद्धे गुणा ह्येते पितॄणां तर्पणे स्मृताः। दद्याद् विपुलमन्नाद्यं वृद्धस् तु प्रपितामहः॥१२॥
यस्य पुंसश् च मर्त्ये वै विच्छिन्ना सन्ततिः खग। स वसेन् नरके घोरे पङ्के मग्नः करी यथा॥१३॥
योन्यन्तरेषु जायेत यत्र वृक्षसरीसृपाः। न सन्ततिं विना सोऽत्र मुच्यते नरकाद् ध्रुवम्॥१४॥
आचार्यस् तस्य शिष्यो वा यो दूरेऽपि हि गोत्रजः। नारायणबलिं कुर्यात् तस्योद्देशेन भक्तितः॥१५॥
विशुद्धः सर्वपापेभ्यो मुक्तः स नरकाद् ध्रुवम्। निवसेन् नाकलोके च नाऽत्र कार्या विचारणा॥१६॥
आदौ कृत्वा धनिष्ठां च एतन् नक्षत्रपञ्चकम्। रेवत्यन्तं सदा दूष्यमशुभं सर्वदा भवेत्॥१७॥
दाहस् तत्र न कर्तव्यो विप्रादिसर्वजातिषु। दीयते न जलं तत्र अशुभं जायते ध्रुवम्।
लोकयात्रा न कर्तव्या दुःखार्तः स्वजनो यदि॥१८॥
पञ्चकानन्तरं तस्य कर्तव्यं सर्वमन्यथा। पुत्राणां गोत्रिणां तस्य सनतापोऽप्युपजायते॥१९॥
गृहे हानिर् भवेत् तस्य ऋक्षेष्वेषु मृतश्च यः। अथवा ऋक्षमध्येऽपि दाहस्तस्य विधीयते॥२०॥
मानुषाणां हितार्थाय सद्य आहुतिकारणात्। सद्याहुतिकरं पुण्यं तीर्थे तद्दाह उत्तमः॥२१॥
विप्रैर् नियमतः कार्यः समन्त्रो विधिपूर्वकः। शवस्य च समीपे तु क्षिप्यन्ते पुत्तलास्ततः॥२२॥
दर्भमयाश् च चत्वार ऋक्षमन्त्राऽभिमन्त्रिताः। ततो दाहः प्रकर्तव्यस् तैश् च पूत्तलकैः सह॥२३॥

पिता पुत्रों का (सन्तति का) दान करता है, पितामह गोधन (पशुधन) देता है, श्राद्धकर्ता का जो प्रपितामह है वह हिरण्यदाता (धनदाता) होता है श्राद्ध करने पर पितरों की तृप्ति से ये गुण (फल) होने वाले समझे गए हैं। श्राद्ध करने से वृद्धप्रपितामहादि भी प्रभूत अन्नपानादि भोज्यपदार्थ देंगे। हे पक्षिन् इस मर्त्यलोक में जिसकी सन्तति विच्छिन्न होती है, वह कीचड में फंसे हुए हाथी की तरह घोर नरक में निवास करेगा। वह मनुष्यभिन्न योनियों में जन्म लेगा, जिसमें वृक्ष और सरीसृप (रेंगने वाले जन्तु) इत्यादि योनियाँ आती है। इस मर्त्यलोक में सन्तति के बिना वह नरक से छुटकारा नहीं ही पाएगा। जिसकी सन्तति विच्छिन्न हुई है, उसका आचार्य (गुरू) अथवा शिष्य अथवा जो उसका दूरका भी सगोत्र बन्धु है, वह भी इस सन्तति विच्छेद वाले व्यक्ति के उद्देश्य से भक्तिपूर्वक नारायणबलि करे॥ वह भी सभी पापों से अत्यन्त शुद्ध होकर अवश्य ही नरक से भी मुक्त होकर स्वर्गलोक में निवास करेगा, इस विषय में ऊहापोह करने की आवश्यकता नहीं है। धनिष्ठा नक्षत्र को आदि में रखकर रेवती तक का जो पाँच नक्षत्रों का समुदाय (पञ्चक) है, उस में मरण दोषकारी और सर्वदा ही अशुभ होगा। उन नक्षत्रों में मरने वालों का ब्राह्मणादि सभी जातियों में किसी का भी दाह नहीं किया जाना चाहिए। वहाँ जल भी नहीं दिया जाता है, देने से अवश्य अशुभ होता है। यदि स्वजन दुःख से आर्त है तो उस समय में लोकयात्रा कार्य भी नहीं करना चाहिए। पञ्चक के बाद उसका दाहादि सभी कर्म किया जाना चाहिए, अन्यथा उसके पुत्रों का और गोत्रियों का भी सन्ताप उत्पन्न हो जाता है। जो इन नक्षत्रों में मरा है, उसके घर में हानि होगी। अथवा पञ्चक में मरने वाले

का भी उन पाँच नक्षत्रों के बीच में भी मनुष्यों के हित के लिए तत्काल शरीरका आहुति करने के लिए दाह किया जाता है। तत्काल मृत शरीर की आहुति करने के पुण्य को प्राप्त करने के लिए पञ्चक में मरने वाले का तीर्थ में दाह करना उत्तम होता हे, वह दाह मन्त्रयुक्त रूप में और शास्त्रोक्त विधि से नियमपूर्वक ब्राह्मणों से किया जाना चाहिए। इस लिए शव के समीप में नक्षत्रों के मन्त्रों से अभिमन्त्रित कुश के चार पुत्तलक रखे जाते हैं। तब उन पुत्तलकों के साथ में शव का दाह किया जाना चाहिए॥ ११—२३ ॥

सूतकान्ते ततः पुत्रः कुर्याच् छान्तिकमुत्तमम्॥ २४॥
पञ्चकेषु मृतो योऽसौ न गतिं लभते नरः। तिलान् गाश् च सुवर्णं च तमुद्दिश्य घृतं ददेत्॥ २५॥
विप्राणं दीयते दानं सर्वोपद्रवनाशनम्। सूतकान्ते च सत्पुत्रैः स प्रेतो लभते गतिम्॥ २६॥
भाजनोपाहनौ च्छत्रं हेम मुद्रा च वाससी। दक्षिणा दीयते विप्रे सर्वपातकमोचनी॥ २७॥
बालवृद्धाऽऽतुराणां च मृतानां पञ्चकेषु हि। विधानं यो न कुर्वीत विघ्नस्तस्य प्रजायते॥ २८॥
अष्टादशैव वस्तूनि प्रेतश्राद्धे विवर्जयेत्। आशिषो द्विगुणान् दर्भान् प्रणवान् नैकपिण्डताम्॥ २९॥
अग्नौकरणमुच्छिष्टं श्राद्धं वै वैश्वदेविकम्। विकिरं च स्वधाकारं पितृशब्दं न चोच्चरेत्॥ ३०॥
अनुशब्दं न कुर्वीत नाऽऽवाहनमथोल्मुकम्। आसीमान्तं न कुर्वीत प्रदक्षिणविसर्जनम्॥ ३१॥
न कुर्यात् तिलहोमं च द्विजः पूर्णाहुतिं तथा। न कुर्याद् वैश्वदेवं च कर्ता गच्छत्यधोगतिम्॥ ३२॥
मनिलश्राद्धसञ्ज्ञानं पूर्वषोडशकं तथा। स्थाने द्वारे चाऽर्धमार्गे चितायां शवहस्तके॥ ३३॥
श्मशानवासिभूतेभ्यः पञ्चमं प्रातिवेश्यकम्। षष्ठं सञ्चयने प्रोक्तं दश पिण्डा दशाहिकाः।
श्राद्धषोडशकं चैतत् प्रथमं परिकीर्तितम्॥ ३४॥

तब अशौच के अन्त में पुत्र उत्तम प्रकार से शान्तिकृत्य करे। **जो मनुष्य पञ्चक में मरा है, वह सुगति नहीं पाता है।** उसके उद्देश्य से तिल, गाय, सोना और घी का दान करे। अशौच के अन्त में उत्तम पुत्रों से सभी उपद्रवों का नाश करने वाला दान ब्राह्मणों को दिया जाता है, तब वह प्रेत सुगति प्राप्त करता है। बर्तन, जूता, छाता, सोना, अँगूठी, धोती-उपरना और सभी पातकों से छुटकारा देने वाली दक्षिणा भी ब्राह्मण को दी जाती है। धनिष्ठादि पाँच नक्षत्रों में मरे हुए बाल, वृद्ध और आतुर इत्यादि के लिए जो उक्त विधान नहीं करेगा, उसका विघ्न उत्पन्न हो जाता है। प्रेतश्राद्ध में अठारह वस्तु वर्जित करे। आशीर्वाद माँगने का कृत्य, द्विगुणदर्भ (मोटक), मन्त्रों के आदि में ओङ्कार का उच्चारण, अनेक पिण्डदान अग्नौकरण (होम), श्राद्धशेषान्नभोजन, वैश्वदेवश्राद्ध, विकरकरण, स्वधाशब्द का उच्चारण, पितृशब्द का उच्चारण, **'ये च त्वाम् अनु'** इत्यादि रूप में अनुशब्द का प्रयोग न करे, पितरों का आवाहन न करे, उल्मुक (जलती लकडी) का प्रयोग और विधान न करे, गृह की सीमा के अन्त तक श्राद्धभोजी ब्राह्मणका अनुगमन न करे, ब्राह्मण की प्रदक्षिणापूर्वक विसर्जन भी न करे, तिलहोम न करे, द्विज पूर्णाहुति भी न करे, श्राद्धशेष अन्न से वैश्वदेव कर्म (पञ्चमहायज्ञान्तर्गत कर्म) भी न करे, करने वाला अधोगति में जाता है। पहले सोलह श्राद्धों का समुदाय मलिनश्राद्ध शब्द से जाना जाता है। उस मलिनश्राद्ध में मरणस्थान में, द्वार में, आधे मार्ग में, चिता में शव के हाथ में, प्रेत के पडोसियों के रूप में रहे हुए श्मशान में रहने वाले भूतों के लिए पञ्चम पिण्ड और सञ्चयन में छठा पिण्ड, दश दिनों के दश पिण्ड होते हैं। सोलह श्राद्धों का यह पहला समुदाय कहा गया है॥ २४—३४ ॥

अन्यच् च षोडशं मध्ये द्वितीयं तार्क्ष्यं मे शृणु। कर्तव्यानीह विधिना श्राद्धान्येकादशैव तु॥ ३५॥
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यं च तथाऽन्यच् छ्राद्धपञ्चकम्। मध्यं षोडशकं प्राहुरेतत् तत्त्वविदो जनाः॥ ३६॥
द्वादश प्रतिमास्यानि श्राद्धमेकादशे तथा। त्रिपक्षसम्भवं चैव द्वे रिक्ते खग षोडश॥ ३७॥

आद्यं शवविशुद्ध्यर्थं कृत्वाऽन्यच् च त्रिषोडशम्। पितृपङ्क्तिविशुद्ध्यर्थं शतार्धेन तु योजयेत्॥ ३८॥
शतार्धेन विहीनो यो मिलितः पङ्क्तिभाङ् न हि। चात्वारिंशत् तथैवाऽष्टश्राद्धं प्रेतत्वनाशनम्॥ ३९॥
सकृदूनशतार्धेन सम्भवेत् पङ्क्तिसन्निधिः। मेलनीयः शतार्धेन सन्धिः श्राद्धेन तत्त्वतः॥ ४०॥

(अथ शवविधिः)

शवस्य शिबिकायां करचरणबन्धनं तत्र कर्तव्यम्। एवं चेन्न विधानं विधीयते तत्पिशाचपरिभवनम्॥ ४१॥
सञ्जायते रजन्यां च शवनिर्गमने राष्ट्रं भयशून्यम्। शवं न मुञ्चेन् मुञ्चैच् चेत् दुःस्वर्शाद् दुर्गतिर्भवेत्॥ ४२॥
ग्राममध्ये स्थिते प्रेते श्रुते भुङ्क्ते यदृच्छया। तदन्नं मांसवज् ज्ञेयं तत् तोयं रुधिरोपमम्॥ ४३॥
ताम्बूलं दन्तकाष्ठं च भोजनमृतुसेवनम्। ग्राममध्ये स्थिते प्रेते वर्जयेत् पिण्डपातनम्॥ ४४॥
स्नानं दानं जपो होमस्तर्पणं सुरपूजनम्। ग्राममध्ये स्थिते तद् वयर्थं ज्ञातिधर्मतः॥ ४५॥
ज्ञातिसमबन्धिनामेवं व्यवहारः खगेश्वर। विलुप्य ज्ञातिधर्मं च प्रेतपापेन लिप्यते॥ ४६॥

हे गरुड, बीच में होने वाले सोलह श्राद्धों का और दूसरे समूह को सुनो। इस में विधि से ग्यारह श्राद्ध (विष्णु, शिव, याम्यपरिवार, सोमराज, हव्यवाह, कव्यवाह, काल, रुद्र, पुरुष, प्रेत, विष्णु के श्राद्ध तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव इत्यादि के (यम और तत्पुरुष के साथ) पाँचश्राद्धों का और एक समूह रहता है, इस प्रकार सोलह श्राद्धों के इस दूसरे समूह को मध्यमश्राद्धषोडशक के तत्त्व को जानने वाले लोग मध्यमषोडशक बताते हैं। प्रत्येक महीनेके बारहश्राद्ध ग्यारहवें दिन का श्राद्ध, त्रिपक्ष का श्राद्ध, दो ऊनश्राद्ध इस प्रकार और सोलह श्राद्ध होते हैं। शव की शुद्धि के लिए आद्य श्राद्ध करके अन्य तीन श्राद्धषोडशक भी करके सपिण्डीकरण में प्रेत को दिए जाने वाले पचासवें पिण्ड से प्रेत को पितरो के साथ में मिलाए। सौ के आधे पिण्डो सेविहीन जो प्रेत पितरों से मिलाया जाता है, वह पितृपङ्क्ति का भागी नहींहोगा। चालीस और आठ श्राद्धों का समुदाय प्रेतत्व का नाश करने वाला होता है। एक वार न्यून आधे शतक से पितरों के पङ्क्ति की समीपता होगी, पचासवें श्राद्ध से पितरों के पंक्ति में मिलाया जाना चाहिए। तत्त्वतः श्राद्ध से ही प्रेत का पितरों से सन्धि (मेलन) होता है। अब शवविधि बताया जाता है। शवनिर्हरण के लिए बनाई गई पालकी में शव के हाथ पैर बांध देना चाहिए। यदि ऐसा विधान नहींकिया जाता है उसका पिशाचों से धर्षण होगा। रात में शवनिर्हरण करने पर राष्ट्र भय के कारण से शून्य हो जाता है, शव को अकेला न छोड़े, यदि छोड़ा जाता है तो अपवित्र प्राणियों के शव के स्पर्श से मरने वाले की दुर्गति होगी, ग्राम के अन्दर शव रहने की बात सुनने पर भी यदि कथञ्चित् भोजन करता है तो वह अन्न मांस के समान और वह जल लहू के समान होता है। गाँव के अन्दर शव रहने पर पान खाना, दतवन करना, भोजन करना और ऋतुकाल में स्त्रीसमागम करना और श्राद्ध करना वर्जित करदे। गाँव के अन्दर शव रहने पर स्नान, दान, जप होम, तर्पण, देवपूजन जो किया जाता है, वह ज्ञातिधर्म के कारण व्यर्थ हो जाता है। हे पक्षियों के मालिक, किसी के मरण होने पर ज्ञाति और सम्बन्धियों का ऐसा व्यवहार होनाचाहिए। जो मनुष्य इस प्रकार के ज्ञातिधर्म को छोड़ देता है, वह प्रेतके पास से लिप्त हो जाता है॥ ३५—४६॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-३६

तार्क्ष्य उवाच–

कस्मादनशनं पुण्यमक्षय्यगतिदायकम्। स्वगृहं तु परित्यज्य तीर्थे वै म्रियते यदि॥ १॥
अप्राप्य तीर्थं म्रियते गृहे वा मृत्युमागतः। भूत्वा कुटीचरो यस् तु स कां गतिमवाप्नुयात्॥ २॥
सन्नयासं कुरुते य् तु तीर्थे वाऽपि गृहेऽपि वा। कथं तस्य प्रकर्तव्यमप्राप्तनिधनेऽपि वा॥ ३॥
नियमे चेत् कृते देव चितभङ्गो हि जायते। केन तस्य भवेत् सिद्धिः कृतेनाऽप्यकृतेन वा॥ ४॥

गरुड ने कहा—किस कारण से अनशन पुण्य और अक्षय गति देने वाला होता है? अपने घर को छोड़कर यदि कोई तीर्थ में मरता है अथवा तीर्थ को जाता हुआ तीर्थ में पहुँचे बिना मार्ग में ही यदि कोई मरता है अथवा कोई कुटीचर होकर घर में ही मृत्यु को प्राप्त हुआ है तो वह कैसी गति को प्राप्त करेगा? तीर्थ में अथवा घर में जो सन्न्यास करता है, उसका और्ध्वदेहिक कृत्य कैसे करना चाहिए? मरण समीप में प्राप्त न होने पर भी नियम (व्रत) किए जाने पर किसी का चित्त विचलित होने से नियमभङ्ग (व्रतभङ्ग) हो जाता है तो उसकी सिद्धि क्या करने से अथवा न करने से होगी?॥ १—४॥

श्रीकृष्ण उवाच –

कृत्वा निरशनं यो वै मृत्युपाप्नोति कोऽपि चेत्। मानुषीं तनुमुत्सृज्य मम तुल्यो विराजते॥ ५॥
यावन्त्यहानि जीवेत व्रते निरशने कृते। क्रतुभिस् तानि तुल्यानि समग्रवरदक्षिणैः॥ ६॥
तीर्थे गृहे वा सन्न्यास नीत्वा चेन् म्रियते यदि। प्रत्यहं लभते सोऽपि पूर्वोक्त द्विगुणं फलम्॥ ७॥
महारोगोपपत्तौ च गृहीतेऽनशने कृते। पुनर् न जायते रोगो देववद् धि विराजते॥ ८॥
य आतुरः सन् सन्न्यासं गृह्णाति यदि मानवः। पुनर् न जायते भूमौ संसारे दुःखसागरे॥ ९॥
अहन्यहनि दातव्यं ब्राह्मणानां च भोजनम्। तिलपात्रं यथाशक्ति दीपदानं सुरार्चनम्॥ १०॥

श्रीकृष्ण ने कहा—कोई मनुष्य अनशन करके मरता है तो वह मनुष्यशरीरको छोड़कर मेरे तुल्य होकर विराजित होता है। अनशनव्रत करने पर वह जितने दिन तक जीवित रहेगा, वे दिन समग्र और उत्तम दक्षिणा से युक्त यज्ञों से तुल्य होते हैं। तीर्थ में अथवा घर में भी सन्न्यास करके यदि मरता है तो वह प्रतिदिन पूर्वोक्त फल से दुगुना फल पाता है। असाध्य महान् रोग उत्पन्न होने पर लिए गए अनशनव्रत का धारण करने पर फिर रोग उत्पन्न नहीं होता है, वह देवता की तरह स्वर्ग में विराजित होता है। जो मनुष्य रोग से मरणासन्न होने पर सन्न्यास लेता है, वह इस भूलोक में दुःख के समुद्ररूपी संसार में फिर जन्म नहींलेता है। किसी व्रत को लेने वाले को प्रतिदिन ब्राह्मणों को भोजन और तिलपात्र यथाशक्ति देना चाहिए, दीपदान करना चाहिए और देवता का पूजन भी करना चाहिए॥ ५—१०॥

एवं वृत्तस्य दह्यन्ते पापान्युच्चावचानि च। मृतो मुक्तिमवाप्नोति यथा सर्वे महर्षयः॥ ११॥
तस्मादनशनं नृणां वैकुण्ठपददायकम्। तस्मात् स्वस्थे चोत्तरे वा साधयेन् मोक्षलक्षणम्॥ १२॥
पुत्रद्रव्यादि सन्त्यज्य तीर्थं व्रजति यो नरः। ब्रह्माद्या देवतास् तस्य भवेयुस् तुष्टिपष्टिदाः॥ १३॥
यस् तीर्थ सम्मुखो भूत्वा व्रते ह्यनशने कृते। चेन् म्रियताऽन्तरालेऽपि ऋषीणां मण्डले वसेत्॥ १४॥
व्रतं निरशनं कृत्वा स्वगृहेऽपि मृतो यदि। स्वकुलानि परित्यज्य एकाकी विचरेद् दिवि॥ १५॥
अन्नं चैव तथा तोयं परित्यज्य नरो यदि। पीतमत्पादतोयश्च न पुनर् जायते क्षितौ॥ १६॥
त्यक्ताशनं तीर्थगतं रक्षन्ति वनदेवताः। यमदूता विशेषेण न याम्यास् तस्य पार्श्वगाः॥ १७॥

तीर्थसेवी नरो यस् तु सर्वकिल्बिषवर्जितः। तत्र म्रियेत दह्येत स तीर्थफलभाग् भवेत्॥ १८॥
सेवितेऽपि सदा तीर्थे ह्यन्यत्र म्रियते यदि। शुभे देशे कुले धीमान् स भवेद् वेदविद् द्विजः॥ १९॥
कृत्वा निरशनं तार्क्ष्य पुनर् जीवति मानवः। ब्राह्मणान् स समाहूय सर्वस्वं च परित्यजेत्॥ २०॥

इस प्रकार का आचरण करने वाले के विभिन्न प्रकार के सभी पाप जल जाते हैं, मरने पर वह महर्षियों की तरह मुक्ति पाता है। इस लिए अनशन व्रत मनुष्यों को स्वर्ग का स्थान देने वाला है। इसलिए स्वस्थावस्था में अथवा आतुर अवस्था में भी मोक्ष का लक्षण सिद्ध करे। जो मनुष्य पुत्र और द्रव्यादि में ममता को छोड़कर तीर्थ में जाता है, उसके लिए ब्रह्मादि देवता तुष्टि और पुष्टि देने वाले होते हैं। जो मनुष्य अनशन व्रत करने पर तीर्थ को जानेके लिए चलकर मार्ग के बीच में ही मर भी जाएगा, वह मनुष्य भी ऋषियों के मण्डल में निवास करेगा। यदि अनशनव्रत करके अपने ही घर में मरा है, वह अपने कुल को छोड़कर अकेला ही स्वर्ग में विचरण करेगा। यदि मनुष्य अन्न को और जल को छोड़कर केवल मेरे चरण का जल ही पीकर मरता है तो वह फिर भूलोक में जन्म नहीं लेता है। भोजन त्याग करके रहे हुए और तीर्थ में स्थित मनुष्य की रक्षा वनदेवता करते हैं। विशेष रूप से यम के दूत उसके समीप में नहीं आते हैं। तीर्थ का सदाकाल सेवा करने वाला मनुष्य जो है, वह सभी पापों से रहित होता है और उसी तीर्थ में यदि मरता है और जलाया जाता है तो उस तीर्थ के फल का भोगी होगा। तीर्थ का सदाकाल सेवा करनेपर भी यदि कथञ्चित् तीर्थ के बाहर अन्यत्र मरता है तो वह उत्तम देश में उत्तम कुल में बुद्धिमान् वेदज्ञ ब्राह्मण के रूप में जन्म लेगा। हे गरुड, मरने के लिए अनशन करके भी यदि मनुष्य फिर चित्तभङ्ग होने से जीने की इच्छा करता है और जीता है तो वह ब्राह्मणों को बुलाकर जो उसका सर्वस्व है उसका दान करे॥ ११—२०॥

चान्द्रायणं चरेत् कृत्स्नमनुज्ञातश् च तैर् द्विजैः। अनृतं न वदेत् पश्चाद् धर्ममेव समाचरेत्॥ २१॥
तीर्थे गत्वा च यः कोऽपि पुनरायाति वै गृहम्। अनुज्ञातः स वै विप्रैः प्रायश्चित्तमथाऽऽचरेत्॥ २२॥
दत्त्वा वा स्वर्णदानानि गो-मही-गज-वाजिनः। तीर्थं यदि लभेद् यस्तु मृत्युकाले स भाग्यवान्॥ २३॥
गृहात् प्रचलितस् तीर्थं मरणे समुपस्थिते। पदेपदे तु गोदानं यदि हिंसा न जायते॥ २४॥
गृहे तु यत् कृतं पापं तीर्थस्नानेन शुध्यति। कुरुते तत्र पापं चेद् वज्रलेपसमं हि तत्॥ २५॥
क्लिश्येत् स नात्र सन्देहो यावच्चन्द्रार्कतारकम्। तत्र दत्तानि दानानि जायन्ते चाऽक्षयाणि वै॥ २६॥
आतुरे सति दातव्यं निर्धनैरपि मानवैः। गावस् तिला हिरण्यं च सप्तधान्यं विशेषतः॥ २७॥
दानवन्तं नरं दृष्ट्वा हृष्टाः सर्वे दिवौकसः। ऋषिभिः सह धर्मेण चित्रगुप्तेन सर्वदा॥ २८॥
आत्मायत्तं धनं यावत् तावद् विप्रे समर्पयेत्। पराधीनं मृते सर्वं कृपया कः प्रदास्यति॥ २९॥
पित्रुद्देशेन यैः पुत्रैर् धनं विप्रकरेऽर्पितम्। आत्मानं सधनं तेन चक्रे पुत्त्रप्रपौत्त्रकैः॥ ३०॥

उन ब्राह्मणों की अनुमति से वह चान्द्रायणव्रत करे। उसके बाद वह झूठ न बोले, धर्म ही करे। मरने के लिए तीर्थ में जाकर जो कोई यदि फिर घर में आता है तो वह ब्राह्मणोंकी अनुमति लेकर प्रायश्चित करे। स्वर्णदान देकर अथवा गाय, भूमि, हाथी और घोडा दान में देकर यदि कोई मृत्युकाल में तीर्थको पाता है तो वह भाग्यवान् है। मरण समीप आने पर तीर्थ जाने के लिए घर से चला है और वहाँ कोई हिंसा नहीं होती है तो उसको पग-पग में गोदान का फल मिलता है। **घर में जो पाप हो जाता है वह पाप तीर्थमें स्नान करने से छूट जाता है, तीर्थ में पाप करता है तो वह वज्रलेपतुल्य होता है।** उस पाप से वह जब तक आकाश में चन्द्र और तारा रहते है तब तक कष्ट झेलता है, इसमें सन्देह नहींहै। तीर्थ में दिए गए दान अक्षय होते हैं। मरणासन्न होने पर निर्धन मनुष्यों

से भी दान दिया जाना चाहिए। विशेष करके गौ, तिल, सोना और सप्तधान्य (जौ, धान, तिल, कँगनी, मूँग, चना तथा साँवा) देना चाहिए। **दान देने वाले मनुष्य को देखकर सभी देवता एवं ऋषि और धर्मराज के साथ चित्रगुप्त सदैव प्रसन्न होते हैं।** जब तक धन अपने वश में है, तब तक ब्राह्मण को समर्पित करे। मरने पर सब पराधीन हो जाता है, तब मरने वाले के प्रति कृपा करके कौन देगा? जिन पुत्रों से पिता के उद्देश्य से ब्राह्मण के हाथ में धन अर्पित किया गया उन पुत्र-पौत्र-प्रपौत्रों से अपना ही धर्मफलसाधन किया गया॥ २१—३०॥

पितुः शतगुणं दत्तं सहस्त्रं मातुरुच्यते। भगिन्या शतसाहस्त्रं सोदर्ये दत्तमक्षयम्॥ ३१॥
यदि लोभान् न यच्छन्ति प्रमादान मोहतोऽपि वा। मृताः शोचन्ति ते सर्वे कदर्याः पपापिनस्त्विति॥ ३२॥
अतिक्लेशेन लब्धस्य प्रकृत्या चञ्चलस्य च। गतिरेकैव वित्तस्य दानमन्या विपत्तयः॥ ३३॥
मृत्युः शरीरगोप्तारं वसुरक्षं वसुन्धरा। दुश्चारिणीय हसति स्वपतिं पुत्रवत्सलम्॥ ३४॥
उदारो धार्मिकः सौम्यः प्राप्याऽपि विपुलं धनम्। तृणवन् मन्यते तार्क्ष्य आत्मानं वित्तमप्यथ॥ ३५॥
न चैवोपद्रवास् तस्य मोहजालो न चैव हि। मृत्युकाले न च भ्यं यमदूतसमुद्भवम्॥ ३६॥
समाः सहस्त्राणि च सप्त वै जले दशैकमग्नौ पतने च षोडश।
महाहवे षष्टिशीतिर् गोग्रहे अनाशके काश्यप चाऽक्षया गतिः॥ ३७॥

पिता के उद्देश्य से दिया गया दान सौ गुना फल देगा, माता के उद्देश्य से दिया गया दान हजार गुना फल देगा, बहन के लिए दिया गया दान लाख गुना फल देगा और सहोदर भाई के उद्देश्य से दिया गया दान अक्षय फल देगा। यदि लोभ से भूल से अथवा अज्ञान से भी मृत पिता आदि के उद्देश से दान नहीं देते हैं तो पुत्र-भ्रात्रादि सभी कदर्य पापी हैं, ऐसा जानकर वे मृत पिता इत्यादि लोग शोक में पड़ते हैं। अत्यन्त कष्ट से पाए गए और स्वभाव से ही चञ्चल वित्त का दान ही एक मात्र सुगति है और सब विपत्तियाँ ही हैं। दूसरे के ही वीर्य से अपनी स्त्री में उत्पन्न बच्चे को अपने वीर्य से उत्पन्न अपना पुत्र समझकर पुत्र में अत्यन्त स्नेह करने वाले पति का गुप्त व्यभिचार करने वाले स्त्री मन से जैसे उपहास करती है, वैसे ही अपने शरीर की रक्षा में व्यग्र होने वाले मनुष्य का मृत्यु उपहास करता है, धन की रक्षा में व्यग्र होने वाले मनुष्य का वसुन्धरा (पृथिवी) उपहास करती है। हे गरुड, महामना दानी, धार्मिक और सौम्य मनुष्य बडे दौलत को पाकर भी अपने शरीर को और धन को भी तृणतुल्य ही मानता है। उस व्यक्ति के लिए कोई भी उपद्रव नहींहोते हैं, अज्ञान का जाल भी नहीं होता है, मृत्यु के समय में यमदूतों से होने वाला भय नहीं होता है। हे कश्यपपुत्र गरुड, रोग-वार्धक्य इत्यादि से पीडित होने पर शरीर में ममता छोडके प्रयागादितीर्थ में अथवा गङ्गादि नदी में कूदकर शरीरत्याग करने पर सात हजार दिव्य वर्ष तक, आग में कूदकर शरीरत्याग करने पर ग्यारह हजार दिव्य वर्षतक और भृगुपतन से (अमरकण्टकादि पवित्र पर्वतों की चोटी से कूँदकर) शरीर त्याग करने पर सोलह हजार दिव्य वर्ष तक स्वर्ग में निवास करता है। राष्ट्र की रक्षा, अथवा धार्मिक वेदशास्त्रानुसारी राजा की रक्षा इत्यादि के लिए हुए बड़े धर्मयुद्ध में शरीरत्याग करने पर साठ हजार दिव्य वर्ष तक ओर गायों को अपहरणादि से बचाने के लिए हुए युद्ध में शरीरत्याग करने पर अस्सी हजार दिव्य वर्षतक स्वर्ग में निवास करता है, अनशन व्रत में शरीरत्याग करने पर तो अक्षय गति मिलती है॥ ३१—३७॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-३७

तार्क्ष्य उवाच–

उद्कुम्भप्रदानं मे कथयस्व यथातथम्। विधिना केन कर्तव्या कृतिरेषा जनार्दन॥ १॥
किलक्षणाः केन पूर्णाः कस्य देया जनार्दन। कस्मिन् काले प्रदातव्या प्रेततृप्तिप्रसाधकाः॥ २॥

गरुड ने कहा—हे जनार्दन, जलकुम्भ के दान के विषय में मुझको यथार्थरूप में बताइए। यह कार्य किस पद्धति से किया जाना चाहिए? हे जनार्दन, प्रेत की तृप्ति को सिद्ध करने वाले उदकुम्भ किस लक्षण से युक्त और किस वस्तु से पूर्ण होने चाहिए और किस काल में किसको दिए जाने चाहिए॥ १-२॥

श्रीकृष्ण उवाच–

सत्यं पुन प्रवक्ष्यामि उदकुम्भप्रदानकम्। प्रेतोद्देशेन दातव्या अन्नपानीयसंयुताः।
विशेषेण महापक्षिन् प्रेतमुक्तिप्रदायकाः॥ ३॥
द्वादशाहे च षण्मासे त्रिपक्षे वाऽपि वत्सरे। उदकुम्भाः प्रदातव्या मार्गे तस्य सुखाय वै॥ ४॥
अहन्यहनि दातव्या उदकुम्भास् तिलैर् युताः। सुलिप्ते भूमिभागे तु पक्वान्नजलपूरिताः॥ ५॥
प्रेतस्य तत्र दातव्यं भाजनं च यदृच्छया। सुप्रीतस् तेन दत्तेन प्रेतो याम्यैः स गच्छति॥ ६॥
द्वादशाहे विशेषण उदकुम्भान् प्रदापयेत्। विधिना तत्र सङ्कल्य घटान् द्वादश सङ्ख्यकान्॥ ७॥
एकाऽपि वर्धनी तत्र पक्वान्नफलपूरिता। विष्णुमुद्दिश्य दातव्या सङ्कल्प्य ब्राह्मणे शुभे॥ ८॥
एका वै धर्मराजाय तेन तुष्टेन मुक्तिभाक्। चित्रगुप्ताय चैका तु गतस् तत्र सुखी भवेत्॥ ९॥
षोडशाऽऽद्याः प्रदातव्या माषाऽन्नजलपूरिताः॥ १०॥
उत्क्रान्तिश्राद्धमारभ्य श्राद्धषोडशकस्य तु। षोडशब्राह्मणानां तु एकैकं विनिवेदयेत्॥ ११॥

श्रीकृष्ण ने कहा—जलघट के दान के विषय में फिर कहूँगा। हे महापक्षिन्, विशेषरूप में प्रेत को प्रेतभाव से मुक्ति देने वाले अन्न और पानी से युक्त कुम्भ प्रेत के उद्देश्य से देने चाहिए। बारहवें दिन में, छः महीने पूर्ण होने पर अथवा तीन पक्ष पूर्ण होने पर अथवा वर्ष पूर्ण होनेपर भी यममार्ग में मृत व्यक्ति के सुख के लिए जलकुभों का दान देना चाहिए। अच्छी तरह लिपी हुई भूमि में रखकर पक्वान्न से युक्त, जल से पूर्ण और तिलों से सहित जलघट प्रत्येक दिन (मृत्यु से वर्षपर्यन्त) देना चाहिए। इच्छा होने पर उस में प्रेत के लिए वर्तन भी देना चाहिए। उस बर्तन के दान से प्रेत प्रसन्न होकर यमदूतों के साथ में जाता है। विशेष रूप में बारहवें दिन में जलकुम्भ दिलवाए। बारहवें दिन में शास्त्रोक्त विधि से सङ्कल्प करके बारह जलघटों का दान करे। बारहवें दिन में पक्व अन्न और फलों से पूर्ण एक तस्तरी भी विष्णु का उद्देश्य करके सङ्कल्पपूर्वक उत्तम ब्राह्मण को देनी चाहिए। और एक वैसी ही तस्तरी धर्मराज का उद्देश्य करके दान में देनी चाहिए, इससे होने वाली धर्मराज की तुष्टि से प्रेतभाव से मुक्ति पाता है। **चित्रगुप्त का उद्देश्य करके अन्य एक वैसी ही तस्तरी भी दान में देनी चाहिए, इससे चित्रगुप्त के यहाँ पहुँचा हुआ प्रेत सुखी होगा।** उत्क्रान्तिश्राद्ध से लेकर सोलह श्राद्धों के लिए माषान्नयुक्त और जल से पूर्ण सोलह आद्य घट देने चाहिए। उन सोलह घटों को एक-एक करके सोलह ब्राह्मणों को अर्पित करे॥ ३—११॥

एकादशाहात् प्रभृति देयो नित्यं दृढाह्वयः। पक्वान्नजलपूर्णो हि यावत् संवत्सरं दिनम्॥ १२॥
अन्नपात्राणि वृद्धानि दत्तानि घटकानि च। एकां च वर्धनीं तत्र वंशपात्रोपरिस्थिताम्॥ १३॥
वस्त्रेणाऽऽच्छादयेत् तां तु संयुक्ता च सुगन्धिभिः। ब्राह्मणाय विशेषेण जलपूर्णां प्रदापयेत्॥ १४।
अहन्यहनि सङ्कल्प्य विधिपूर्वं खगेश्वर। ब्राह्मणाय कुलीनाय वेदवृत्तयुताय च॥ १५॥

विद्यावृत्तवते देयं मूर्खे तन् न कदाचन। समर्थो वेदवृत्ताढ्यस् तारणे तरणेऽपि च॥ १६॥

ग्यारहवें दिन से लेकर संवत्सर पूर्ण होने के दिन तक नित्य पक्वान्न से युक्त और जलपूर्ण दृढनामक घट प्रतिदिन देना चाहिए। परोसे गए अन्न से युक्त पात्र और जलघट भी वर्ष दिन तक प्रतिदिन दिए जाने पर अन्त में बाँस से निर्मित एक पात्र के ऊपर एक तस्तरी को रखकर उसको जल से पूर्ण करके उसके साथ में नाना प्रकार के सुगन्धि द्रव्यों को भी रखकर वस्त्र से ढके और ब्राह्मण को विशेष रूप से दें। हे पक्षियों के मालिक, प्रतिदिन जो दान दिया जाता है, वह दान शास्त्रोक्त विधि से सङ्कल्प करके शुद्ध कुल के और वेदाध्ययन तथा सद्वृत्त से भी युक्त ब्राह्मण को देना चाहिए। **दान वेदविद्या से और सच्चरित्र से युक्त ब्राह्मण को देना चाहिए, मूर्ख को कभी भी नहीं देना चाहिए। वेदाध्ययन से और सच्चरित्र से सम्पन्न ब्राह्मण ही स्वयम् संसार सागर से उतरने में और दूसरों को उतारने में भी समर्थ होता है**॥ १२—१६॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-३८

तार्क्ष्य उवाच–

दानतीर्थाश्रितं मोक्षं स्वर्गं च वद मे प्रभो। केन मोक्षमवाप्नोति केन स्वर्गे बसेच् चिरम्॥ १॥
केन गच्छति तेजस्तु स्वर्लोकात् सत्यलोकतः। मानुष्यं केन लभते नरकेषु निमज्जति॥ २॥
एतन् मे वद निश्चित्य भक्तानां मोक्षदायक। ब्रूहि कस्मिन् गते स्वर्गे पुनर् जन्म न विद्यते॥ ३॥

गरुड ने कहा—हे प्रभो, दान और तीर्थसेवन में आश्रित मोक्ष के और स्वर्ग के विषय में मुझको बताइए। मनुष्य किस कर्म से मोक्ष पाता है? किस कर्मसे चिरकालतक स्वर्गमें निवास करता है? किस कर्म से तेज स्वर्गलोक से सत्यलोक की ओर जाता है? किस कर्म से मनुष्ययोनि में जन्म पाता है? किस कर्म से नरक में डूबता है? हे भक्तों को मोक्ष देने वाले, यह बात निश्चित करके मुझे बताइए। कौन स्वर्ग में जाने पर फिर जन्म नहीं होता है यह भी बताइए॥ १—३॥

श्रीविष्णुरुवाच–

मानुष्यं भारते वर्षे त्रयोदशसु जातिषु॥ ४॥
तत् प्राप्य म्रियते क्षेत्रे पुनर् जन्म न विद्यते। अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका॥ ५॥
पुरी द्वारवती ज्ञेयाः सप्तैता मोक्षदायिकाः। सन्न्यस्तमिति यो ब्रूयात् प्राणैः कण्ठगतैरपि॥ ६॥
मृतो विष्णुपुरं याति न पुनर् जायते क्षितौ। सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम्॥ ७॥
बद्धः परिकरस् तेन मोक्षाय गमनं प्रति। कृष्णकृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः॥ ८॥
जलं भित्त्वा यथा पद्मं नरकादुद्धराम्यहम्। शालग्रामशिला यत्र यत्र द्वारवतीशिला॥ ९॥
उभयोः सङ्गमो यत्र मुक्तिस्तत्र न संशयः। शालग्रामशिला यत्र पापदोषक्षयावहा॥ १०॥
तत्सन्निधानमरणान् मुक्तिर् जन्तोः सुनिश्चिता। रोपणात् पालनात् सेकाद् ध्यानस्पर्शनकीर्तनात्।
तुलसी दहते पापं नृणां जन्मार्जितं खग॥ ११॥

श्रीकृष्ण ने कहा—भारतवर्ष में तेरह जातियों में किसी भी जाति में मनुष्यजन्म पाकर पुण्यक्षेत्र में मरता है तो फिर जन्म नहीं होता है। अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी (वाराणसी), काञ्ची, अवन्ती, द्वारवती (द्वारका) ये सात पुरियाँ मोक्ष देने वाली जाननी चाहिए। प्राण निकलते हुए गले में पहुँचने पर भी जो मनुष्य सन्न्यस्तम् (सम्पूर्ण लोकको छोड दिया) ऐसा कहेगा, मरने पर वह वैकुण्ठ में जाता है, फिर भूलोक में जन्म नहीं

लेता है, जिस ने एक बार भी '**हरिः**' ये दो अक्षर उच्चरित किए वह मोक्ष के लिए चलने हेतु कटिबद्ध हो गया। जो मनुष्य कृष्ण, कृष्ण ऐसा पुकारकर मुझको नित्य स्मृति में लाता है, मैं उसको जैसे जल को भेदकर कमल बाहर आता है वैसे ही नरक से बाहर निकालता हूँ। जहाँ शालग्रामशिला है जहाँ द्वारवतीशिला है, जहाँ उन दोनों शिलाओं का संगम है वहाँ (मरने पर) मुक्ति होती है, सन्देह नहीं। जहाँ पापदोषोंका क्षय करने वाली शालग्रामशिला है, उसके समीप में मरने से प्राणी की मुक्ति निश्चित रूप में होती है। हे पक्षिन्, रोपने से, पालन करनेसे, जलसेचन करने से, ध्यान करने से, छूनेसे और नाम लेने से भी तुलसी मनुष्यों के जन्मों में सञ्चित पाप को जलाती है॥ ४—११॥

ज्ञानह्रदे सत्यजले रागद्वेषमलापहे। यः स्नातो मानसे तीर्थे न स लिप्येत पातकैः॥ १२॥
न काष्ठे विद्यते दे‍ो न शिलायां कदाचन। भावे हि विद्यते देवस् तस्माद् भावं समाचरेत्॥ १३॥
प्रातःप्रातः प्रपश्यन्ति नर्मदां मत्स्यघातिनः। न ते शिवपुरीं यान्ति चित्तवृत्तिर् गरीयसी॥ १४॥
यादृक् चित्तप्रीतिः स्यात् तादृक् कर्मफलं नृणाम्। परलोक गतिस् तादृक् सूचीसूत्रविचारवत्॥ १५॥
ब्राह्मणार्थे गावर्थे वा स्त्रीणां बालवधेषु च। प्राणत्यागपरो यस्तु स वै मोक्षमवाप्नुयात्॥ १६॥
अनाशके मृतो यस् तु वै मोक्षमवाप्नुयात्। अनाशके मृतो यस् तु स मुक्तः सर्वबन्धनैः॥ १७॥
दत्त्वा दानानि विप्रेभ्यस् ततो मोक्षमवाप्नुयात्। एते वै मोक्षमार्गाश् च स्वर्गमार्गास् तथैव च॥ १८॥
गोग्रहे देशविध्वंसे देव-तीर्थ-विपत्सु च। उत्तमा-ऽधम-मध्यस्य बाधमानस्य देहिनः।
आत्मानं तत्र सन्त्यज्य स्वर्गवासं लभेच् चिरम्॥ १९॥
जीवितं मरणं चैव द्वयं शिक्षेत पण्डितः। जीवितं दानभोगाभ्यां मरणं रणतीर्थयोः॥ २०॥

जलसे युक्त और राग-द्वेषरूपी मलको हटाने वाले ज्ञानरूपी जलाशय से युक्त मानसरूपी तीर्थ में जिस ने स्नान किया है वह पातकों से संयुक्त नहीं हाता है। काठ में देवता नहीं रहती है, पत्थर में भी देवता कभी भी नहीं रहती है, देवता भावना में रहती है, इसलिए देवता की अच्छी भावना करे। मछुवारे प्रतिदिन सबेरे-सबेरे अनेक नर्मदेश्वर शिला से युक्त नर्मदा नदी का दर्शन करते हैं, तथापि वे मरने पर शिवपुरी को नहीं जाते हैं, इसलिए चित्त की देवताविषयक वृत्ति फल देने वाली होने से बड़ी है (समुचित चित्तवृत्ति के बिना मूर्तिदर्शनादि फल देने वाला न होने से बड़ा [महत्त्वपूर्ण] नहीं है। जैसे वस्त्र सिलाने की सूई जिधर जिधर जाती है उसमें पिरोया गया सूत्र उधर उधर ही विचरण करता हुआ सूई का अनुगामी होता है, वैसे ही चित्त की प्रतीति जैसी होती है, वैसा ही कर्म का फल मिलता है और परलोक में मिलने वाली गति भी वैसी ही होती है (कर्मफल और परलोकगति चित्तवृत्तिके अनुगामी होते हैं) **ब्राह्मण की रक्षा के लिए, गाय की रक्षा के लिए, स्त्रियों की रक्षा के लिए और बालकों का वध होने की सम्भावना होने पर उनकी रक्षा के लिए भी जो व्यक्ति अपने प्राणों का त्याग करने में भी तत्पर होकर प्रयत्न करता है वह मोक्ष पा सकता है।** अनशनव्रत में रहकर जो मरा है वह मोक्ष पा सकता है। अनशनव्रत में रहकर जो मरा है वह सभी बन्धनों से मुक्त होता हे। ब्राह्मणों को अनेक दान देकर मनुष्य पापों से छुटकारा पाएगा। ये मोक्ष के मार्ग और स्वर्ग के मार्ग भी हैं। **गायों के अपहरणादि होने पर, स्वदेश का ध्वंस उपस्थित होने पर और देवालयों का और तीर्थों का दूषण उपस्थित होने पर और स्वपक्ष के उत्तम मध्यम तथा अधम मनुष्य विपक्षियों से बाधित होने पर भी उस अवस्था में उक्त आपत्ति के निवारण के लिए अपने शरीर का त्याग करके मनुष्य चिरकाल तक स्वर्गमें रहने का अवसर प्राप्त करता है। सदसद्विवेक करने वाली बुद्धि से युक्त मनुष्य जीने की कला को और मरने की कला को भी सीखे, दान और भोग करते हुए जीना सीखे और धर्मयुद्ध में अथवा तीर्थ में मरकर मरना सीखे**॥ १२—२०॥

हरिक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे भृगुक्षेत्रे तथैव च। प्रभासे श्रीस्थले चैव अर्बुदे च त्रिपुष्करे॥ २१॥
भूतेश्वरे मृतो यस्तु स्वर्गे वसति मानवः। ब्रह्मणो दिवसं यावत् ततः पतति भूतले॥ २२॥
वर्षवृत्तिं तु यो द्याद् ब्राह्मणे दोषवर्जिते। सर्वं कुलं समुद्धृत्य स्वर्गलोके महीयते॥ २३॥
कन्या विवाहयेद् यस्तु ब्राह्मणं वेदपारगम्। इन्द्रलोके वसेत् सोऽपि स्वकुलैः परिवेष्ठितः॥ २४॥
महादानानि दत्त्वा च नरस् तत् फलमाप्नुयात्। वापी-कूप-ताडागानामारामसुरसद्मनाम् ॥ २५॥
जीर्णोद्धारं प्रकुर्वाणः पूर्वकर्तुः फलं लभेत्। जीर्णोद्धारेण वा तेषां ततपुण्यं द्विगुणं भवेत्॥ २६॥

हरिक्षेत्रमें, कुरूक्षेत्र में, भृगुक्षेत्र में, उसी प्रकार प्रभास में, श्रीस्थल (श्रीपर्वत) में अर्बुदपर्वत में और त्रिपुष्कर में (पुष्करक्षेत्र में) तथा भूतेश्वरक्षेत्र में जो मनुष्य मरा है, वह ब्रह्मा के दिन तक (एक कल्प तक) स्वर्ग में निवास करता है, और उसके बाद भूलोक में जन्म लेता है। जो व्यक्ति महापातक, उपपातक, संस्कारत्याग, शिखासूत्रत्याग, स्नान-सन्ध्योपासन-ब्रह्मयज्ञ-तर्पणादिनित्यकृत्यत्याग इत्यादि दोषों से रहित ब्राह्मण को एक वर्ष के लिए पर्याप्त भोजन-वस्त्रादि जीविका-साधन का दान देता हे, वह अपने सम्पूर्ण कुल का नरक से उद्धार करता है और स्वर्गलोक में सत्कृत होता है। जो यथाविधि वेद पढके वेद में पारङ्गत हुए अकिञ्चन ब्राह्मण को आवश्यक गृहक्षेत्रादि धन देकर कन्या-विवाह करने में योग्य बनाकर विवाह कराता है, वह अपने कुलों से सहित होकर इन्द्रलोक में निवास करेगा। महादान देने वाला मनुष्य भी उसी फल को प्राप्त करता है। बाबली, कूआँ, तालाब, उद्यान, देवालय इनका जीर्णोद्धार (नवीकरण) करने वाला मनुष्य इनका नवीन निर्माण करने वाले को जो जैसा फल मिलता है, वैसा ही फल पाएगा; अथवा जीर्णोद्धार करने से उनका नवीन निर्माण करने पर मिलने वाले पुण्य से दुगुना पुण्य होगा॥ २१—२६॥

शीतावातातपहरमपि पर्णकुटीरकम्। कृत्वा विप्राय विदुषे प्रददाति कुटुम्बिने॥ २७॥
तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च नरः स्वर्गे महीयते॥ २८॥
या स्त्री सवर्णा संशुद्धा मृतं पतिमनुव्रजेत्। सा मृता स्वर्गमाप्नोति वर्षाणां रोमसङ्ख्या॥ २९॥
पुत्रपौत्रादिकं त्यक्त्वा स्वपतिं याऽनुगच्छति। स्वर्गं लभेतां तौ चोभौ दिव्यस्त्रीभिरलङ्कृतौ॥ ३०॥
कृत्वा पापान्यनेकानि भर्तृद्रोहमतिः सदा। प्रक्षालयति सर्वाणि या स्वं पतिमनुव्रजेत्॥ ३१॥
महापापसमाचारो भर्ता चेद् दुष्कृती भवेत्। तस्याऽप्यनुव्रता नारी नाशयेत् सर्वकिल्बिषम्॥ ३२॥
ग्रासमात्रं नियमतो नित्यदानं करोति यः। चतुश्चामरसंयुक्तविमानेनाऽधिगच्छति॥ ३३॥

जो मनुष्य पत्नी-पुत्रादि से युक्त वेद-वेदाङ्गवित् विद्वान ब्राह्मण को शीत, वायु और धूप का परिहार करने वाली घास, फूस और पत्तों से बनी झोपडी भी देता है वह साढे तीन करोड वर्ष तक स्वर्गलोक में सत्कृत होता है। जो पतिव्रत धर्म पालनादि से शुद्ध और पति की सवर्णा स्त्री है, वह मरे हुए पति का अनुगमन करती है तो मरने पर अपने शरीर में जितने रोवें हैं, उतने वर्ष तक स्वर्गलोकवास प्राप्त करती है। जो स्त्री पुत्र-पौत्रादि को छोड़कर अपने पति का अनुगमन करती है, वे दोनों पति-पत्नी दिव्य स्त्रियों से (अप्सराओं से) शोभित होकर स्वर्गवास पाएंगे। जो सदाकाल पति का द्रोह करने वाली स्त्री अनेक पाप करके भी अपने मृत पति का अनुगमन करती है तो सभी पापों का प्रक्षालन करती है। जो मनुष्य ग्रासमात्र अन्न का भी नित्यदान करता है, वह चार चामरों से युक्त दिव्य विमान से स्वर्ग जाता है॥ २७—३३॥

यत् कृतं हि मनुष्येण पापमामरणान्तिकम्। तत् सर्वं नाशमायाति वर्षवृत्तिप्रदानतः॥ ३४॥
भूतं भव्यं भविष्यं च पापं जन्मत्रयार्जितम्। प्रक्षालयति तत् सर्वं विप्रकन्योपनायनात्॥ ३५॥

दशकूपसमा वापी दशवापीसमं सरः। सरोभिर् दशभिस् तुल्या या प्रपा निर्जले वने॥ ३६॥
यद्वापी निर्जले देशे यद्दानं निर्धने द्विजे। प्राणिनां यो दयां धत्ते स भवेन् नाकनायकः॥ ३७॥
एवमादिभिरन्यैश्च सुकृतैः स्वर्गभाग् भवेत्। स तत् सर्वं फलं प्राप्य प्रतिष्ठां परमां लभेत्॥ ३८॥
फल्गु कार्यं परित्यज्य सततं धर्मवान् भवेत्। दानं दमो दया चेति सारमेतत् त्रयं भुवि॥ ३९॥
दानं साधेर् दरिद्रस्य शून्यलिङ्गस्य पूजनम्। अनाथप्रेतसंस्कारः कोटियज्ञफलप्रदः॥ ४०॥

मनुष्य से मरणपर्यन्त भी जो पाप किया जाता है, वह सब पाप वर्षवृत्ति (वर्षपर्यन्त जीविका के लिए पर्याप्त अन्नवस्त्रादि) देने से नष्ट होता है। इस जन्म के भूत काल से, वर्तमान काल से और भविष्य काल से सम्बद्ध जो पाप है और पूर्व तीन जन्मों में कमाया गया जो पाप है, उन सब पापों को मनुष्य **ब्राह्मणकन्या का उपनयन** करवाने से धोता है। एक बावली दश इनारों की समान होती है, एक सरोवर (तलाब) दश बावलियों का तुल्य होता है, जो जल से रहित वन में रखी गई प्रपा (पौसरा) है वह दश सरोवर के तुल्य होती है। जल से रहित देश में जिस की बनाई गई बावली है, जिस से दिया गया दान निर्धन ब्राह्मण में जाता है और जो हृदय में प्राणियों के प्रति सदा दयाभाव का धारण करता है वह स्वर्ग का नायक (इन्द्र) होगा। इस प्रकार के और अन्य सुकर्मों से मनुष्य स्वर्गसुख का भोगने वाला होगा, वह उस सब फल को पाकर इस लोक में और परलोक में भी उच्च प्रतिष्ठा को भी प्राप्त करेगा। निस्सार काम को छोडकर मनुष्य निरन्तर धर्मयुक्त हो, दान, दम (इन्द्रियनिग्रह) और दया इन तीनों का यह समुदाय इस भूलोक में सारतत्त्व है। ब्रह्मचर्याश्रम-गृहाश्रमादि आश्रमों के धर्म की साधना में संलग्न दरिद्र को दिया जाने वाला दान, शून्यरूप लिङ्ग में परमात्मा का आराधन और अनाथ प्रेत का दाहादि संस्कार करोडों यज्ञ का फल देने वाले होते है॥ ३४—४०॥

☞ सनातन धर्म के धार्मिक कर्म में स्त्री-पुरुष का भेद नहीं है। यहाँ पर कन्या का उपनयन तथा गरुडपुराण के अनेक अध्यायों में पत्नी द्वारा और्ध्वदेहिक कर्म के उल्लेख से स्पष्ट है कि सनातन धर्म— धर्म, संस्कार एवं शिक्षा में स्त्री-पुरुष का भेद नहीं रखता है।

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-३९

तार्क्ष्य उवाच-

सूतकानां विधिं ब्रूहि दयां कृत्या मयि प्रभो। विवेकाय हि चित्तस्य मानवानां हिताय च॥ १॥

गरुड ने कहा—हे प्रभो, मुझ पर कृपा करके चित्त के सन्देह को हटाकर निर्णय करने में समर्थ बनाने के लिए और मानवों के हित के लिए अशौचों के विधि को बताइए॥ १॥

श्रीकृष्ण उवाच-

मृते जन्मनि पक्षीन्द्र सूतकं स्याच् चतुर्विधम्। चतुर्णामपि वर्णानां सामान्येन विवर्जितम्॥ २॥
उभयत्र दशाहानि कुलस्याऽन्नं विवर्जयेत्। दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायश्च निर्वतते॥ ३॥
देशं कालं तथाऽऽत्मानं द्रव्यं द्रव्यप्रयोजनम्। उपपत्तिमवस्थां च ज्ञात्वा कर्म समाचरेत्॥ ४॥
गुहावह्निप्रवेशे च देशान्तरमृतेषु च। स्नानं सचैलं कर्तव्यं सद्यः शौचं विधीयते॥ ५॥
आमगर्भाश् च ये जीवा ये च गर्भाद् विनिःसृताः। न तेषामग्निसंस्कारो नाऽऽशौचं नोदकक्रिया॥ ६॥
शिल्पिनः कारवो वैद्या दासीदासास्तथैव च। राजानः श्रोत्रियाश् चैव सद्यःशौचाः प्रकीर्तिताः॥ ७॥
सत्री च मन्त्रपूतश्च आहिताग्निर् नृपस् तथा। एतेषां सूतकं नास्ति यस्य चेच्छन्ति वाडवाः॥ ८॥

प्रसवे च सपिण्डानां न कुर्यात् सङ्करं द्विजः। दशाहाच् छुध्यते माता अवगाह्य पिता शुचिः॥ ९॥
विवाहोत्सवयज्ञेषु अन्तरा मृतसूतके। पूर्वसङ्कल्पितं द्रव्यं भोज्यं तन् मनुरब्रवीत्॥ १०॥

श्रीकृष्ण ने कहा—हे पक्षियों में श्रेष्ठ, मृत्यु में और जन्म में चारों वर्णों का सामान्य से रहित चार प्रकार का अशौच होगा। दोनों प्रकार के (जन्म-मृत्यु के) अशौचों में दश दिन तक उस कुल (घर) के अन्न को वर्जित करे। अशौच में दान, प्रतिग्रह, होम और स्वाध्यायाध्ययन (ब्रह्मयज्ञ) भी निवृत्त होते हैं। देश, काल, अपनी धन-जन-शरीरबल की स्थिति, द्रव्य, द्रव्य का प्रयोजन, उपपत्ति, अवस्था इन सब को जानकर कर्म करे। अपने बन्धु का गुहाप्रवेश करके और अग्निप्रवेश करके मरण होने पर और देशान्तर में (दूर देश में) मरण होने पर भी सचैल (प्रक्षालित वस्त्र के साथ) स्नान करना चाहिए, तत्काल शुद्धि की जाती है। अपरिपक्व गर्भ के रूप में गर्भस्राव अथवा गर्भपात से मरे हुए जो जीव हैं और गर्भाशय से निकलते ही मरे हुए भी जो जीव हैं, उनका अग्निसंस्कार (शवदाहकर्म) भी नहीं होता है, अशौच भी नहीं होता है और स्नान-उदकदानादिक्रिया भी नहीं होती है। शिल्पीलोग, कारीगर, चिकित्सक, दासियाँ और दास लोग, राजा लोग ओर नित्यवेदाध्ययन करने वाले ब्राह्मण लोग ये सब अशौच का निमित्त उपस्थित होने पर यथोचित रूप में स्नान करके तत्काल शुद्ध होने वाले बताए गए हैं। अनेक मनुष्यों को नित्य ही भोजन वितरण करने वाला, वेदमन्त्रों के नित्यअध्ययन से पवित्र ब्राह्मण, श्रौत अग्नि का आधान करने वाला व्यक्ति और राजा इन लोगों को अशौच नहीं होता है, ब्राह्मण लोग जिसको अशौच न लगे ऐसी इच्छा करते हैं, उस को भी अशौच नहीं होता नहीं होता है। जननाशौच में भी द्विजाति सपिण्डों से सम्पर्क न करे। सूतिका माँ दश दिनों में शुद्ध हो जाती है, जातक का पिता तो स्नान करके तत्काल शुद्ध हो जाता है। विवाह में, उत्सव में और यज्ञ में बीच में मरणाशौच अथवा जननाशौच हो जाता है तो भी पूर्व काल में (अशौचरहित काल में) सङ्कल्प करके उत्सृष्ट द्रव्य असपिण्डों के लिए भी भोज्य होता है, यह बात मनु ने बताई है॥ २—१०॥

सर्वेषा शावमाशौचं मातापित्रोस् तु सूतकम्। सूतकं मातृरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः॥ ११॥
अन्तर्दशाहे स्यातां चेत् पुनर्मरणजन्मनी। तावत् स्यादशुचिर् विप्रो यावत् तत् स्यादनिर्दशम्॥ १२॥
उदिते नियमाऽऽदाने आर्ते विप्रे निवेदयेत्। तथैव ऋषिभिः प्रोक्तं यथाकालं न दुष्यति॥ १३॥
मृन्मयेन तु पात्रेण तिलैर् मिश्रजलैः सह। मृत्तिकया तथाऽन्ते च नरः स्नात्वा शुचिर् भवेत्॥ १४॥
दानं परिषदे दद्यात् सुवर्णं गां वृषं द्विजः। क्षत्रियो द्विगुणं चैव वैश्यस्तु त्रिगुणं तथा॥ १५॥
चतुर्गुणं तु शूद्रेण दातव्यं ब्राह्मणे धनम्। एवं चाऽनुक्रमेणैव चातुर्वर्ण्यं विशुध्यति॥ १६॥

शवसम्बन्धी अशौच सभी सपिण्डों के लिए होता है, सूतिकासम्बन्धी अशौच केवल मातापिताओं के लिए ही होता है, पिता तो स्नान करके तत्काल शुद्ध हो जाता है। एक मरणाशौच के अथवा जननाशौच के दश दिनों के भीतर ही यदि फिर दूसरा मरण अथवा जन्म होता है तो ब्राह्मण उसी काल तक अशुद्ध रहता है जबतक पहले मरण के अथवा जन्म के दश दिन नहीं बीतते हैं। व्रतग्रह का सङ्कल्प उच्चरित हो चुकने पर भी व्रती आर्त (अशक्त) हो जाने पर ब्राह्मण को निवेदन करके ब्राह्मण की अनुमति से व्रतसङ्कोच करके अत्यावश्यक भोजन-पानादि करे, यह बात ऋषियों ने बताई है, तत्काल की अवस्था के अनुसार काम करने से दोषी नहीं होता है। तिल से मिश्रित जल से मिट्टी के बर्तन से स्नान करके अन्त में फिर मिट्टी के साथ स्नान करके मनुष्य शुद्ध होगा। ब्राह्मणों से प्रायश्चित्तादि के लिए अनुमति माँगने के लिए परिषद को ब्राह्मण एक कर्ष सोना, गाय और बैल दे, क्षत्रिय दुगुना दे, वैश्य तिगुना दे शूद्र से तो ब्राह्मण को चौगुना धन दिया जाना चाहिए, इस प्रकार क्रमानुसार ही चार वर्ण शुद्ध होते हैं॥ ११—१६॥

सप्ताष्टमान्तैरः शीर्णे गृह्यसंस्कारवर्जिते। अहस्तु सूतकं तस्य त्वब्दानां सङ्ख्यया स्मृतम्॥ १७॥
ब्राह्मणार्थे विपन्ना ये नारीणां गोग्रहेषु च। आहवेषु विपन्नानामेकरात्रमशौचकम्॥ १८॥
न तेषामशुभं किञ्चिद् विप्राणां शुभकर्मणि। अनाथप्रेतसंस्कारं ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः॥ १९॥
न तेषामशुभं किञ्चिद् विप्रेण सहकारिणा। जलावगाहनात् तेषां सद्यः शुद्धिरुदाहृता॥ २०॥
विनिवृत्ता यदा शूद्रा उदकान्तमुपस्थिताः। तदा विप्रेण द्रष्टव्या इति वेदविदो विदुः॥ २१॥

अपनी वेदशाखा के गृह्यसूत्र में बताए गए संस्कार (उपनयनसंस्कार) से रहित अवस्था में सात-आठ वर्षो की अवस्था में मरने पर उसका अशौच उसके वर्षकी सङ्ख्या जो है, उतनी संख्या के दिनों तक रहने वाला समझा गया है। ब्राह्मण के रक्षा के लिए, स्त्रियों के रक्षा के लिए और गायों के अपहरणादि से बचाने के लिए प्रयत्न करते हुए जो लोग मरते हैं उनका और धर्मयुद्धों में मरे हुए लोगों का भी अशौच एक अहोरात्र ही रहता है। जो मनुष्यों में श्रेष्ठ विप्र लोग अनाथ प्रेत का दाहादिसंस्कार करते हैं, उन ब्राह्मण लोगों को शुभ कार्य में कुछ भी अशुभ नहीं होता है। सहकारी ब्राह्मण के साथ अनाथप्रेत के संस्कार में संलग्न अन्य जनों का भी कुछ भी अशुभ नहीं होता है। उन लोगों की शुद्धि जल में अवगाहन (स्नान) करने से तत्काल ही हो जाने की बात मुनियों से बताई गई है। शूद्र लोग जब शवदाह के बाद स्नान और अञ्जलिदान करके जलाशयादि के तट में उपस्थिति होते हैं उसी समय में आश्वासन देने वाले ब्राह्मण से देखे जाने चाहिए (शूद्रशवानुगमनादि ब्राह्मण को नहीं करना चाहिए) ऐसा वेदविज्ञ मुनि लोग समझते हैं॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-४०

तार्क्ष्य उवाच–

भगवन् ब्राह्मणाः केचिदपमृत्युवशं गताः। कथं तेषां भवेन् मार्गः किं स्थानं का गतिर् भवेत्॥ १॥
किं च युक्तं भवेत् तेषां विधानं वाऽपि कीदृशम्। तदहं श्रोतुमिच्छामि ब्रूहि मे मधुसूदन॥ २॥

गरुड ने कहा—हे भगवन्, कोई ब्राह्मण दुर्मरण में पड जाते हैं तो उनका मार्ग कैसा होगा, कैसा स्थान होगा और कैसी गति होगी? हे मधुसूदन, उनके लिये क्या समुचित होगा? कैसा विधान होगा? वह सब मैं सुनना चाहता हूँ, मुझको बताइए॥ १-२॥

श्रीकृष्ण उवाच–

प्रेतीभूतद्विजातीनां सम्भूते मृत्युवकृते। तेषां मार्गगतिस्थानं विधानं कथयाम्यहम्॥ ३॥
शृणु तार्क्ष्य परं गोप्यं जाते दुर्मरणे सति। लङ्घनैर् ये मृता विप्रा दंष्ट्रिभिश् चाऽभिघातिताः॥ ४॥
कण्ठग्राहविमग्नानां क्षीणानां तुण्डघातिनाम्। विषाग्निवृषविप्रेभ्यो विषूच्या चाऽऽत्मघातकाः॥ ५॥
पतनोद्बन्धनजलैर् मृतानां शृणु संस्थितिम्। यान्ति ते नरके घोरे ये च म्लेच्छादिभिर् हताः॥ ६॥
श्वशृगालादिसंस्पृष्ठा अदग्धाः कृमिसङ्कुलाः। उल्लङ्घिता मृता ये च महारोगैश्च पीडिताः॥ ७॥
अभिशस्तास् तथा व्यङ्गा ये च पापान्नपोषिताः। चण्डालादुदकात् सर्पाद् ब्राह्मणाद् वैद्युताग्नितः॥ ८॥
दंष्ट्रिभ्यश् च पशुभ्यश् च वृक्षादिपतनान् मृताः। उदक्या-सूतकी-शूद्री-रजकी-सङ्गदूषिताः॥ ९॥
तेन पापेन नरकान् मुक्ताः प्रेतत्वभागिनः। न तेषां कारयेद् दाहं सूतकं नोदकक्रियाम्॥ १०॥

श्रीकृष्ण ने कहा—मृत्युकृत विगुणता हो जाने पर प्रेतयोनि में प्राप्त द्विजातियों का मार्ग, गति, स्थान और विधान मै कहता हूँ। हे गरुड, दुर्मरण हो जानेपर कर्तव्य परम गोपनीय कृत्य को सुनो। जो ब्राह्मण खाई से गले

में पकड़े जाने से मरने वालों का; विष, अग्नि, बैल, ब्राह्मण और हैजे से मरने वालों का जो आत्महत्या करने वाले हैं उनका, ऊँचे जगह से गिरना, फाँसी लगाना, गहरे जल में कूदना इत्यादि से मरने वालों का भी परिणाम को तुम सुनो। वे सब भयङ्कर नरक में पड़ जाते हैं। जो म्लेच्छादि नीच जातियों से मारे गए हैं, जो मरने पर कुत्ता सियार इत्यादि से छुए गये हैं, जिनका दाहसंस्कार नहीं हुआ है, जो घावों में कीड़े पड़ने से मरे हैं अथवा मरने पर कीड़ों से व्याप्त हो गए हैं, जो तिरस्कारपूर्ण व्यवहार में पड़कर मरे हैं, जो कुष्ठादि महारोगों से पीड़ित होकर मरे हैं, जो महापातकादि से आरोपित होकर मरे हैं, जो छिन्नभिन्नाङ्ग होकर मरे हैं, जो पापियों के अन्न से पोषित होकर मरे हैं, जो चण्डाल से अथवा जल से अथवा सर्प से अथवा ब्राह्मण से अथवा बिजली गिरने से लगे अग्नि से अथवा दाढ़ों वाले प्राणियों से अथवा पशुओं से अथवा वृक्षादि सेगिरने से मरे हैं, जो रजस्वला के अथवा सूतिका के अथवा शूद्री के अथवा रजकी के सङ्ग से दूषित होकर मरे हैं, वे सब उन उन पापों से नरक का भोग करके वहाँ से मुक्त होने पर प्रेतभाव में प्राप्त होने वाले हैं। उनका दाहसंस्कार भी न करे, अशौच भी न करे, स्नान-जलाञ्जलिदानादि भी न करे॥ ३—१०॥

न विधानं मृताद्यं च न कुर्यादौर्ध्वदैहिकम्। तेषां तार्क्ष्य प्रकुर्वीत नारायणबलिक्रियाम्॥ ११॥
सर्वलोकहितार्थाय शृणु पापभयापहाम्। षण्मासे ब्राह्मणे दाहस् त्रिमासे क्षत्रिये मतः॥ १२॥
सार्धमासे तु वैश्यस्य सद्यः शूद्रे विधीयते। गङ्गायां यमुनायां च नैमिषे पुष्करेऽथ च॥ १३॥
तडागे जलपूर्णे वा ह्रदे वा विमलोदके। वाप्यां कूपे गवा गोष्ठे गृहे वा प्रतिमालये॥ १४॥
कृष्णाग्रे कारयेद् विप्रैः नारायणाह्वयम्। प्रेताय तर्पणं कार्यं मन्त्रैः पौराणवैदिकैः॥ १५॥

उन लोगों का मृतक के लिए किए किये जाने वाले कोई विधान भी न करे, और्ध्वदेहिक कृत्य भी न करे। हे गरुड, उनके लिए नारायणबलि की क्रिया करें, हे गरुड सभी लोगों के हित के लिए पाप के भय को हटाने वाली नारायणबलि की क्रिया को सुनो। उक्त प्रकार का दुर्मरण होने पर ब्राह्मण का छः महीनों में दाहसंस्कार किया जाता है, क्षत्रिय का तीन महीनों में, वैश्य का डेढ महीने में और शूद्र का तत्काल ही दाहसंस्कार किया जाता है। गङ्गा में अथवा यमुना नैमिषारण्यमें अथवा पुष्करतीर्थ में अथवा जल से पूर्ण तालाब में अथवा निर्मल जल से युक्त ह्रद में, अथवा बाबली में अथवा इनारे में अथवा गायों के गोष्ठ में अथवा घर में, प्रतिमा के घर में (देवालय में) कृष्णकी मूर्ति समक्ष में ब्राह्मणों के द्वारा नारायण नाम का बलि करवाए। पुराण में और वेद में पठित मन्त्रों से प्रेत के लिए तर्पण करना चाहिए॥ ११-१५॥

सर्वौषध्यक्षतैर् मिश्रैर् विष्णुमुद्दिश्य तर्पयेत्। कार्यं पुरुषसूक्तेन मन्त्रैर् वा वैष्णवैरपि॥ १६॥
दक्षिणाभिमुखो भूत्वा प्रेतं विष्णुरिति स्मरेत्। अनादिनिधनो देवः शङ्खचक्रगदाधरः॥ १७॥
अव्ययः पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदो भवेत्। तर्पणस्याऽवसाने च वीतरागो विमत्सरः॥ १८॥
जितेन्द्रयमना भूत्वा शुचिमान् धर्मतत्परः। दानधर्मरतः शान्तः प्रणम्य वाग्यतः शुचि॥ १९॥
यजमानो भवेत् तत्र शुचिर् बन्धुसमन्वितः। भक्त्या तत्र प्रकुर्वीत श्राद्धान्येकादशैव तु॥ २०॥

सर्वौषधिगण [मुरा (कृष्णजटामांसी), जटामांसी, वचा, कुष्ठ शैलये, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, शटी, चम्पक, मुस्ता] से और जौ से मिश्रित जल से विष्णु का उद्देश्य करके तर्पण करे। यह तर्पण '**सहस्त्रशीर्षा पुरुषः**' इत्यादि से अथवा अन्य विष्णुदेवता वाले मन्त्रों से करना चाहिए। दक्षिणदिशा की ओर मुँह करके प्रेत का विष्णुरूप में स्मरण करे। ऐसा करने से आदि और अन्त से रहित, शङ्ख-चक्र-गदा को धारण करने वाले, अपचय से रहित पुण्डरीकाक्ष भगवान् विष्णु प्रेत को प्रेतयोनि से मुक्त देने वाले होंगे। तर्पण अन्तमें रागरहित, मत्सर से शून्य इन्द्रिय और मनको

वश में रखने वाला होकर शुद्ध सहायकों से युक्त, धर्म में तत्पर, दानरूप धर्म में रमने वाला और मानस विक्षेपों से रहित होकर वाणी पर संयम रखता हुआ और मन से और इन्द्रियों से भी निर्मल होकर विष्णु को प्रणाम करके वहाँ बन्धुओं से रहित यजमान शुद्ध होवे। वहाँ भक्तिपूर्वक ग्यारह श्राद्ध करें॥ १६—२०॥

सर्वकर्मविधानेन एकैकाग्रे समाहितः। तोयव्रीहियवान् षष्ठ्या गोधूमांश् च प्रियङ्गुकान्॥ २१॥
हविष्यान्नं शुभं मुद्रां छत्रोष्णीषे च चेलकम्। दापयेत् सर्वसस्यानि क्षीरक्षौद्रयतानि च॥ २२॥
वस्त्रोपानहसंयुक्तं दद्यादष्टविधं पदम्। दापयेत् सर्वविप्रेभ्यो न कुर्यात् पङ्क्तिबन्धनम्॥ २३॥
भूकौ स्थितेषु पिण्डेषु गन्धपुष्पाक्षताऽन्वितम्। शङ्खपात्रे तथा ताम्रे तर्पणं च पृथक्पृथक्॥ २४॥
ध्यान-धारण-संयुक्तो जानुभ्यामवनिं गतः। दातव्यं सर्वविप्रेभ्यो वेदशास्त्र-विधानतः॥ २५॥

एक-एक पिण्ड के आगे समाहित चित्त वाला होकर सभी कर्मों के विधान से जल, भदैया धान, जौ, साठी धान से युक्त गेहूँ, कँगनी, अन्य शुभ हविष्यान्न, अँगूठी, छाता, पगडी, वस्त्र, दूध और मधु से युक्त सभी प्रकार के धान्य भी दे। वस्त्र और जूता सहित आठ वस्तुओं ये युक्त पद ब्राह्मणों को दे। उक्त ग्यारह श्राद्धों के सभी ब्राह्मणों को पददान दे, पङ्क्तिभेद न करे। पिण्ड भूमि में रहते ही चदन, फूल, अक्षता से युक्त जल शङ्खपात्र में अथवा ताँबे के पात्र में लेकर प्रत्येक पिण्ड में पृथक्-पृथक तर्पण करे। विष्णु के ध्यान और धारणा से युक्त होकर और घुटनों के बल पृथिवी पर टिकता हुआ वेदों के और वेदाङ्गशास्त्रों के विधान से (ग्यारह श्राद्ध के) सभी ब्राह्मणों को अर्घ्य देना चाहिए॥ २१—२५॥

ऋचा वै दापयेदर्घ्यमेकोद्दिषे पृथक्पृथक्। अपोदेवीर् मधुमतीरादिपिण्डे प्रकल्पितम्॥ २६॥
उपयामगृहीतोऽसि द्वितीयेऽर्घं निवेदयेत्। येनापावकचक्षषा तृतीये च सुकल्पितम्॥ २७॥
ये देवासश् चतुर्थे तु समुद्रङ् गच्छ पञ्चमे। अग्निर्ज्योतिस् तथा षष्ठे हिरणगर्भः सप्तमे॥ २८॥
यमाय त्वाऽष्टमे ज्ञेयं यज्जाग्रन् नवमे तथा। दशमे याः फलिनीति पिण्डे चैकादशे ततः॥ २९॥
भद्रं कर्णेभिरिति च कुर्यात पिण्डविसर्जनम्। कृत्वैकादशदेवत्यं श्राद्धं कुर्यात् परेऽहनि॥ ३०॥

एकोद्दिष्ट श्राद्ध में ऋचा (मन्त्र) से अलग अलग अर्घ देना चाहिए। वहाँ पहले पिण्ड (श्राद्ध) में '**अपो देवी मधुमतीः**' इत्यादि मन्त्र से अर्घदान कल्पशास्त्र में विहित है। द्वितीय श्राद्ध में 'उपयामगृहीतोऽसि' इत्यादि मन्त्र से अर्घ निवेदित करे। तृतीय श्राद्ध में 'येना पावक चक्षसा' इत्यादि मन्त्र से अर्घदान कल्पशास्त्र में सुविहित हैं। चतुर्थ श्राद्ध में' ये देवासः' इत्यादि मन्त्र से, पञ्चम श्राद्ध में 'समुद्रङ् गच्छ' इत्यादि मन्त्र से, छठे श्राद्ध में 'अग्निर्ज्योतिः' इत्यादि मन्त्र से, सातवें श्राद्ध में 'हिरणगर्भः' इत्यादि मन्त्र से, आठवें श्राद्ध में 'यमाय त्वा' इत्यादि मन्त्र से, नौवें श्राद्ध में 'यज्जाग्रतः' इत्यादि मन्त्र से, दसवें श्राद्ध में 'याः फलिनी' इत्यादि मन्त्र से और ग्यारहवें श्राद्ध में 'भद्रङ्कर्णेभिः' इत्यादि मन्त्र से अर्घ निवेदित करे; पिण्डविसर्जन करे। इस पकार ग्यारह देवता वाले श्राद्ध को सम्पन्न करके दूसरे दिन अन्य श्राद्ध करे॥ २६—३०॥

विप्रानावाहयेत् पञ्च चतुर्वेदविशारदान्। विद्याशीलगुणोपेतान् स्वकीयान् कुलसत्तमान्।
अव्यङ्गान सुप्रशस्तांश् च न तु वर्ज्यान् कदाचन॥ ३१॥
विष्णुः स्वर्णमयः कार्यो रुद्रस् ताम्रमयस्तथा। ब्रह्मा रूप्यमयस् तद्वद् यमो लोहमयो भवेत्॥ ३२॥
सीसकं तु भवेत् प्रेतं त्वथ वा दर्भकं तथा। शन्नोदेवीति मन्त्रेण गोविन्दं पश्चिमे न्यसेत्॥ ३३॥
अग्न आयाहीति रुद्रमुत्तरत्रैव विन्यसेत्। अग्निमीडेति मन्त्रेण पूर्वेणैव प्रजापतिम्॥ ३४॥
इषेत्वोर्जेति मन्त्रेण दक्षिणे स्थापयेद् यमम्। मध्ये मण्डलकं कृत्वा स्थाप्यो दर्भमयो नरः॥ ३५॥

चार वेदों में विशारद, विद्या और शील दोनों गुणों से युक्त, कुल से भी उत्तम, अङ्गभङ्ग से रहित, अत्यन्त प्रशंसनीय अपने पाँच ब्राह्मणों को निमन्त्रित करे, **वर्जनीय ब्राह्मणों को तो कभी भी निमन्त्रित न करे। विष्णु की प्रतिमा सोने की** बनानी चाहिए, **रुद्र की प्रतिमा ताँवे** की बनानी चाहिए, वैसे ही **ब्रह्मा की प्रतिमा चाँदी** की बनानी चाहिए, यम की प्रतिमा लोहे की हो। प्रेत की प्रतिमा सीसे की अथवा कुश की हो। **'शन्नो देवीः'** इत्यादि मन्त्र से पश्चिम दिशा में गोविन्द को रखे। **'अग्न आयाहि'** इत्यादि मन्त्र से उत्तर दिशा में रुद्र को रखे, **'अग्निमीडे'** इत्यादि मन्त्र से पूर्व दिशा में ब्रह्मा को रखे। **'इषे त्त्वोर्ज्जे'** इत्यादि मन्त्र से दक्षिण दिशा में यम को स्थापित करे। बीच में मण्डल बनाकर उसमें कुश का मनुष्य (प्रेत) रखा जाना चाहिए॥ ३१—३५ ॥

ब्रह्मा विष्णुस् तथा रुद्रो यमः प्रेतश् च पञ्चमः। पृथक् कुम्भे ततः स्थाप्याः पञ्चरत्नसमविताः ॥ ३६ ॥
वस्त्रयज्ञोपवीतानि पृथङ् मुद्रायुतानि च। जपं कुर्यात् पृथक् तत्र ब्रह्मादौ देवतासु च ॥ ३७ ॥
पञ्च श्राद्धानि कुर्वीत देवतानां यथाविधि। जलधारां ततो दद्यात् पिण्डेपिण्डे पृथक्पृथक् ॥ ३८ ॥
शङ्खे वा ताम्रपात्रे वा अलाभे मृन्मयेऽपि वा। तिलोदकं समादाय सर्वौषधिसमन्वितम् ॥ ३९ ॥
आसनोपानहौच्छत्रं मुद्रिका च कमण्डलुः। भाजनं भोज्यधान्यं च वस्त्राण्यष्टविधं पदम् ॥ ४० ॥
ताम्रपात्रं तिलैः पूर्णं सहिरण्यं सदक्षिणम्। दद्याद् ब्राह्मणमुख्याय विधियुक्तं खगेश्वर ॥ ४१ ॥

वहाँ पाँच रत्नों (सोना, चाँदी, मोती, राजावर्त [लाजवर्द], मूँगा) से युक्त ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, यम और पाँचवाँ प्रेत घटों में पृथक्-पृथक रखे जाने चाहिए। वहाँ घटों में मुद्रिका से युक्त वस्त्र और यज्ञोपवीत भी पृथक्-पृथक् रखने चाहिए। वहाँ ब्रह्मादि देवताओं में पृथक् पृथक् मन्त्रजप करे। शास्त्र में बताए गए विधि से देवताओं के पाँच श्राद्ध करे। शङ्ख में अथवा तांबे के बर्तन में अथवा उनके अभाव में मिट्टी के बर्तन में भी सर्वोषधिगण (मुरा [कृष्णजटामांसी], जटामांसी, वचा, कुष्ठ, शैलेय, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, शटी, चम्पक, मुस्ता) से युक्त तिलमिश्रित जलको लेकर पिण्ड-पिण्ड में अलग-अलग जलधारा दे। हे पक्षियों के मालिक, आसन, जूता, छाता, अँगूठी, कमण्डलु, बर्तन, भोज्यधान्य और वस्त्र इन आठ प्रकार के वस्तुओं का पद और तिलों से पूर्ण सुवर्णखण्ड से युक्त तथा दक्षिणा से सहित एक तांबे का पात्र भी ब्राह्मणों में मुख्य व्यक्ति को विधिपूर्वक दे॥ ३६—४१ ॥

ऋग्वेदपारगे दद्याज् जातसस्यां वसुन्धराम्। यजुर्वेदमये विप्रे गां च दद्यात् पयस्विनीम् ॥ ४२ ॥
सामगाय शिवोद्देशात् प्रदद्यात् कलधौतकम्। यमोद्देशात् तिलाँल् लोहं ततो दद्याच्च दक्षिणाम् ॥ ४३ ॥
पश्चात् पुत्तलकं कार्यं सर्वौषधिसमन्वितम्। पलाशस्य च वृन्तानां विभागं शृणु काश्यप ॥ ४४ ॥
कृष्णाजिनं समास्तीर्य कुशैश्च पुरुषाकृतिम्। शतत्रयेण षष्ट्या च वृन्तैः प्रोक्तौऽस्थिसञ्चयः ॥ ४५ ॥
विन्यस्य तानि वृन्तानि अङ्गेष्वेषु पृथक्पृथक्। चत्वारिंशच् छिरोदेशे ग्रीवायां दश विन्यसेत् ॥ ४६ ॥
विंशत्युरःस्थले दद्याद् विंशत्जिठरेऽपि च। बाहुयुग्मे शतं दद्यात् कटिदेशे च विंशतिम् ॥ ४७ ॥
ऊरुद्वये शतं चाऽपि त्रिंशज् जङ्घाद्वये न्यसेत्। दद्याच् चतुष्टयं शिश्ने षड् दद्याद् वृषणद्वये।
दश पादाङ्गुलीभागे एवमस्थीनि विन्यसेत् ॥ ४८ ॥
नारिकेलं शिरःस्थाने तुम्बं दद्याच् च तालुके। पञ्चरत्नं मुखे दद्याज् जिह्वायां कदलीफलम् ॥ ४९ ॥
अन्त्रेषु नालकं दद्याद् बालकं घ्राण एव च। वसायां मृत्तिकां दद्याद् गोमूत्रं मूत्रके तथा ॥ ५० ॥

ऋग्वेद में पारङ्गत ब्राह्मण को हरीभरी फसल से युक्त भूमि दे, यजुर्वेदपूर्ण ब्राह्मण को दूध देने वाली गाय दे। सामवेदी ब्राह्मण को रुद्र के उद्देश्य से सुवर्णदान दे। यम के उद्देश्य से तिल और लोहा का दान दे और दक्षिणा भी दे। इतने कर्मों के बाद में सर्वौषधियों से युक्त पुत्तलक (कुश का मनुष्य) बनाना चाहिए। हे कश्यपपुत्र, उस

पुत्तलक में रखे जाने वाले पलाश के पत्रवृत्तों के विभाग को सुनो। कृष्णसार मृग के चर्म को बिछाकर उस में कुशों से मनुष्य की आकृति बनाए। उसमें तीन सौ साठ पलाशपत्रवृत्तों से हड्डियों का समूह बनाने का कृत्य बताया गया है। उन पलाशपत्रवृन्तों को इन अङ्गों मे पृथक्-पृथक् रखकर हड्डियों का समूह बनाए, शिर के भाग में चालीस वृन्त और ग्रीवाभाग में दश वृन्त रखे। छाती में बीस वृन्त दे, पेट में भी बीस ही वृन्त दे। दोनों बाहुओं में सौ वृन्त दे और कटिदेश में बीस वृन्त दे। दो ऊरुओं में सौ वृन्त और दो जङ्घाओं में तीस वृन्त रखे। मेढ़ के स्थान में चार वृन्त दे और अण्डकोष के स्थान में छः वृन्त दे। पैर की अङ्गुलियों के भागों में दश वृन्त रखे, इस प्रकार पुत्तलक में पलाशवृन्तरूपी हड्डियाँ रखे। उस पुत्तलक के शिर के भाग में नारियल दे, तालु के स्थान में तुम्बा दे, मुख के स्थान में पञ्चरत्न दे, जीभके स्थान में केले का फल दे। अँतडियों के स्थान में कमलनाल दे, घ्राणेन्द्रिय के स्थान में सुगन्धबाल दे, वसा के स्थान में मिट्टी दे, मूत्र के स्थान में गोमूत्र दे॥ ४२—५०॥

गन्धकं धातवे देयं हरितालं मनःशिला। रेतःस्थाने पारदं च पुरीषे पित्तलं तथा॥ ५१॥
मनःशिलां तथा गात्रे तिलकल्कं चसन्धिषु। यवपिष्टं तथा मांसे मधु वै शोणिते च हि॥ ५२॥
केशेषु वै वटजटास् त्वचि दद्यान् मगृत्वचम्। कर्णयोस् तालपत्रं च स्तनयोश् चैव गुञ्जिकाः॥ ५३॥
नासायां शतपत्रं च कमलं नाभिमण्डले। वृन्ताकं वृषणद्वन्द्वे लिङ्गे स्याद् गृञ्जनं शुभम्॥ ५४॥
घृतं नाभ्यां प्रदेयं स्यात् कौपीने च त्रपु स्मृतम्। मौक्तिकं स्तनयोर् मूर्ध्नि कुङ्कुमेन विलेपनम्॥ ५५॥

धातुओं के स्थान में गन्धक, हरिताल और मैनसिल दे; वीर्य के स्थान में पारद दे, पुरीष (विष्ठा) के स्थान में पित्तल दे। शरीर में (मध्यकाय में) मैनसिल दे, सन्धिस्थलो में तिल की पीठी दे, मांस के स्थान में जौ का आँटा दे, लहू के स्थान में मधु (शहद) दे। केशों के स्थान में बरगद की बरोह दे, त्वचा के स्थान में मृगचर्म दे, कानों के स्थान में तालपत्र दे, स्तनों के स्थान में रत्तियाँ (घुमचियाँ) दे। नाक में कमलपुष्प दे, नाभिमण्डल के स्थान में कमल दे, अण्डकोशों के युगल के स्थान में बैगन दे, लिङ्ग के स्थान में अच्छा गाजर दे। नाभि के स्थान में घी देना चाहिए, गुह्य अङ्ग के स्थान में त्रपु (राँगा) देने योग्य समझा गया है, स्तनों में मोती दे, शिर में कुङ्कुम से लेपन करे॥ ५१—५५॥

कर्पूराऽगुरुधूपैश् च शुभैर् माल्यैः सुगन्धिभिः। परिधानं पट्टसूत्रं हृदये रुक्मकं न्यसेत्॥ ५६॥
ऋद्धिवृद्धी भुजौ द्वौ च चक्षुषोष् च कपर्दकौ। सिन्दूरं नेत्रकोणे च ताम्बूलाद्युपहारकैः॥ ५७॥
सर्वौवधियुतं प्रेतं कृत्वा पूजा यथोदिता। साग्निके चापि विधिना यज्ञपात्रं न्यसेत् क्रमात्॥ ५८॥
शिरो मे श्रीरिति ऋचाा पुनन्तु वरुणेति च। प्रेतस्य पावनं कृत्वा शालग्रामशिलोदकैः॥ ५९॥
विष्णुमुद्दिश्य दातव्या सुशीला गौः पयस्विनी॥ ६०॥

कपूर, अगरु और धूपों से और सुगन्धि मालाओं से पत्तलक को सुगन्धित करे। पट्टसूत्र का परिधान दे, हृदय के देश में परिमण्डल (गोल) सुवर्णपत्र रखे। भुजाओं के स्थल में ऋद्धि और वृद्धि नाम की औषधियाँ रखे, आँखों के स्थल में दो कौड़ियाँ रखे, नेत्र के कोणों के स्थल में सिन्दूर दे, पुत्तलक को पान इत्यादि उपहारों से भी युक्त करे। इस प्रकार के प्रेत के पुत्तलक को सर्वौषधियों से युक्त बनाकर शास्त्र में जैसी पूजा बतायी गई है, वैसी ही पूजा करनी चाहिए। यदि प्रेत अग्निमान् था तो उस के पुत्तलक के अङ्गों में श्रौतसूत्र-पितृमेधसूत्रादि-विधि में बताए गए क्रम से यज्ञपात्रों को रखे। शालग्रामशिला धोने के जल से 'शिरो मे श्रीः' इत्यादि मन्त्र से, 'पुनन्तु' इत्यादि मन्त्र से 'वरुण' इत्यादि मन्त्र से भी प्रेत के पुत्तलक की शुद्धि करके विष्णु के उद्देश्य से दूध देने वाली एक सुशील गाय दान में ब्राह्मण को देनी चाहिए॥ ५६—६०॥

तिला लोहं हिरण्यं च कार्पासं लवणं तथा। सप्तधान्यं क्षितिर् गाव एकैकं पावनं स्मृतम्॥ ६१॥
तिलपात्रं ततो दत्त्वा पददानं तथैव च। महादानानि देयानि तिलपात्रं तथेति च।
ततो वैतरणी देया सर्वाभरणभूषिता॥ ६२॥
कर्तव्यं वैष्णवं श्राद्धं प्रेतमुक्त्यर्थमात्मवान्। प्रेतमोक्षं ततः कुर्याद् हृदि विष्णु प्रकल्प्य च॥ ६३॥
ओं विष्णुरिति संस्मृत्य प्रेतं तन्मृत्युमेव च। अग्निदाहं ततः कुर्यात् सूतकं तु दिनत्रयम्॥ ६४॥
दशाहकर्त्रा पिण्डाश्च कर्तव्याः प्रेतमुक्तये। सर्वं वर्षविधिं कुर्यादेवं प्रेतश्च मुक्तिभाक्॥ ६५॥

तिल, लोहा, सोना, कर्पास (रुई), नमक, सप्तधान्य, भूमि, गाय इन में से एक एक का दान भी शुद्ध करने वाला समझा गया है। उसके बाद तिलपात्र और पददान देकर महादान देने चाहिए, उसी प्रकार तिलपात्र भी देना चाहिए। उसके बाद सभी आभरणों से भूषित वैतरणी गाय देनी चाहिए। तब प्रेत की प्रेतभाव से मुक्ति के लिए वैष्णव श्राद्ध करना चाहिए, तब अन्तःकरणसंयम से युक्त मनुष्य हृदय में विष्णु की कल्पना करके प्रेत का मोक्ष करे। ओं विष्णुः इस प्रकार उच्चारण करके प्रेत का और उसके मरण का भी स्मरण करके उस पुत्तलकरूप प्रेत का अग्नि से दाह करे, और तीन दिनों तक सपिण्ड लोग अशौच रखें। दश दिन तक प्रेतकृत्य करने वाले से प्रेत की प्रेतभाव से मुक्ति के लिए पिण्ड भी दिए जाने चाहिए। तब वर्षपर्यन्त शास्त्रविहित सभी विधान को सम्पन्न करे। ऐसा करने से प्रेत भी प्रेतभाव से मुक्तिभागी होता है॥ ६१—६५॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-४१

श्रीविष्णुरुवाच—

वृषोत्सर्गं प्रकुर्वीत विधिपूर्वं खगेश्वर। कार्तिकादिषु मासेषु पौर्णमास्यां शुभे दिने॥ १॥
विवाहोत्सर्जनं श्राद्धं नान्दीमुखमुपक्रमेत्। कुर्याद् भुवश् च संस्कारानग्निस्थापनमेव च॥ २॥
वाप्यां कूपे गवां गोष्ठे स्थाप्याऽग्निं विधिवत्ततः। विवाहविधिना सर्वं कुर्याद् ब्राह्मणवाचनम्॥ ३॥
पात्रासादनं श्रपणमुपयमनकुशादिकम्। पर्युक्षणान्ते होमं च कुर्याद् वै ब्राह्मणेन तु॥ ४॥
आघारावाज्यभागौ च चक्षुषी च प्रदापयेत्। प्रथमेहरतिमन्त्रेण होतव्याश् च षडाहुतीः॥ ५॥

श्रीविष्णुने कहा—हे पक्षियों के मालिक,कार्तिकादि महीनों में पूर्णिमा तिथि में शुभ दिन में गृह्यसूत्रादि शास्त्र में बताए गए विधि से वृषोत्सर्गकृत्य करे। वृष का वत्सरियों से विवाह और उत्सर्जन के अङ्ग के रूप में किए जाने वाले नान्दीमुखश्राद्ध से उस वृषोत्सर्गकृत्यका प्रारम्भ करे। भूमि के (पाँच) संस्कारों को सम्पन्न करे, अग्नि, अग्नि का स्थापन भी करे। बाबली के तट में अथवा इनारेके समीप में अथवा गायों के गोठ में अपने गृह्यसूत्रादिरूप शास्त्र में बताए गए विधि से अग्नि को स्थापित करके उसके बाद सभी कृत्य वृषविवाह (वृषोत्सर्ग) के विधि से करे, ब्राह्मणवाचन (पुण्याहवाचन) भी करे। पात्रासादन, पायसचरु-पिष्टचरुपाचन, उपयमनकुशग्रहण इत्यादि करके अग्नि के पर्युक्षण के अन्त में ब्राह्मण द्वारा हवन करे। दो आघारों का दो आज्यभागों का यज्ञ के चक्षु के रूप में अग्नि में प्रदान करे। उसके बाद पहली आहुति 'इह रतिः' इत्यादि मन्त्र से देनी चाहिए, और (अन्य पाँच मन्त्रों से पाँच आज्याहुति देकर) कुल छः आज्याहुतियाँ देनी चाहिए॥ १—५॥

आघारावाजयभागौ तु पायसेनाऽङ्गदेवताः। अग्नये रुद्राय शर्वाय पशुपतये उग्राय शिवाय।
भवाय महादेवाय ईशानाय यमाय च॥ ६॥
पिष्टकेन सकृद् धोमं पूषा गा इति मन्त्रतः। उभयोः स्विष्टिकृद्धोमश् चरुणा पायसेन च॥ ७॥

प्रथमं व्याहृतिहोमः प्रायश्चिततं प्रजापतिः। संस्त्रवप्राशनं कुर्यात् प्रणीतापरिमोक्षणम्॥ ८॥
पवित्रप्रतिपत्तिश्च ब्रह्मणे दक्षिणा ततः। षडङ्गरुद्रजाप्येन प्रेतो मोक्षमवाप्नुयात्॥ ९॥
एकवर्णं वृषं चैव सकृद् वत्सतरीं खग। स्नापयित्वा ततः कुर्यात् सर्वालङ्कारभूषितम्॥ १०॥
प्रतिश्ठाप्य च तद्युग्मं प्रेतो मोक्षमवाप्नुयात्। पूच्छे च तर्पणं कार्यमुच्छिते मन्त्रपूर्वकम्।
ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चाद् दक्षिणाभिश् च तोषयेत्॥ ११॥
ततः श्राद्धं समुद्दिष्टमेकोद्दिष्टं यथाविधि। जलमन्नं तथा देयं प्रेतोद्धरणहेतवे॥ १२॥
द्वादशाहे ततः कुर्यान् मासेमासे पृथक्पृथक्। एवं विधिः समायुक्तः प्रेतमोक्षं करोति हि॥ १३॥

आघारादि होम आज्यभागी (आज्य से [केवल घी से '' किए जाने वाले) हैं, अग्निप्रभृति अङ्गदेवताएँ तो पायस से यष्टव्य हैं। अग्नि, रुद्र, शर्व, पशुपति, उग्र, शिव, भव, महादेव, ईशान, यम इनको पायस से आहुति दे 'पूषा गाः' इत्यादि मन्त्र से एक बार पौष्णपिष्टकचरु का हवन करे। पिष्टकचरु से और पायस से लेकर दोनों को मिलाकर स्विष्टकृद्-होम होता है। उसके बाद उत्तराङ्ग होम में पहले महाव्याहृतिहोम, प्रायश्चित्ताख्य आहुतियोंका होम और प्रजापति की आहुति का होम होता है। तब जो आहुतियों का अवशेष एक पात्र में संस्रुत करके एकत्रित किया गया होता है उसका यजमान प्राशन करे, तब प्रणीतामोक्षण करे। तब पवित्रप्रतिपत्ति होती है और ब्रह्मा को दक्षिणा दी जाती है। छः अङ्गों से युक्त रुद्राध्याय के जप से प्रेत प्रेतभाव से मुक्ति पाएगा। एक रङ्ग के वृष (बैल) को और बछिया को भी एक साथ नहलाकर उस जोडेको सभी अलङ्कारों से भूषित करे। उस जोडेका प्रतिष्ठापन (उत्सर्जन) करने से प्रेत प्रेतभाव से मुक्ति पाएगा। वृष के पूँछको उठाकर (हाथ में लेकर उस पूँछ में छोडे गए जल से) मन्त्रोचारणपूर्वक तर्पण करना चाहिए। उसके बाद ब्राह्मणों को भोजन कराए और दक्षिणाओं से उनको सन्तुष्ट करे। उसके बाद शास्त्रोक्त विधि से एकोद्दिष्टश्राद्ध करनेका विधान है। प्रेतके उद्धार के हेतु जल और अन्न देना चाहिए। उसके बाद बारहवें दिन में एकोद्दिष्टश्राद्ध करे और महीने महीने में अलग-अलग एकोद्दिष्टश्राद्ध करे। इस प्रकार से समायोजित विधान प्रेत को प्रेतभाव से मोक्ष देता ही है॥ ६—१३॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-४२

श्रीविष्णुरुवाच—

यथा धेनुसहस्त्रेषु वत्सो विदति मातरम्। तथा पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति॥ १॥
आदित्यो वरुणो विष्णुर् ब्रह्मा सोमो हुताशनः। शूलपाणिश्च भगवानभिनन्दति भूमिदम्॥ २॥
नास्ति भूमिसमं दानं नास्ति भूमिसमो निधिः। नास्ति सत्यसमो धर्मो नाऽनृतात् पातकं परम्॥ ३॥
अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं भूर् वैष्णवी सूर्यसुताश् च गावः।
लोकत्रयं तेन भवेत् प्रदत्तं यः काञ्चनं गां च महीं च दद्यात्॥ ४॥
त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती। नरकादुद्धरन्त्ये ते जपपूजनहोमतः॥ ५॥

श्रीविष्णु ने कहा—जैसे हजारों गायों में कहीं छिपी हुई माँको भी बछडा ढूँढ लेता है, वैसे ही पूर्वजन्म में किया गया कर्म कर्ताको कहीं भी जाए उसके पीछे पीछे चलता ही है। भूमि का दान करने वाले मनुष्य का सूर्य, वरुण, विष्णु, ब्रह्मा, चन्द्रमा, अग्नि और भगवान् महादेव भी अभिनन्दन करते हैं। भूमिदान के समान दान नहीं है, भूमितुल्य भण्डारगृह (खजाना) नहीं है, सत्य के समान धर्म और नहीं है, झूठ के समान पातक दूसरा नहीं है। सुवर्ण अग्नि का प्रथम सन्तान है, भूमि विष्णु की है, गाय सूर्य की पुत्रियाँ हैं। जो मनुष्य सुवर्ण,

गाय और भूमि का दान करता है उससे तीनों लोकों का दान दिया गया होता है। गाय, भूमि और विद्या इन तीन चीजों के दान को अतिदान (बडा दान) कहते हैं। ये दान जप, पूजा और होम से युक्त होने पर प्राणी का नरक से उद्धार करते हैं॥ १—५॥

कृत्वा बहूनि पापानि रौद्राणि विपुलानि च। अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन शुध्यति॥ ६॥
हरन्तमपि लोभेन निरुध्यैनं निवारयेत्। स याति नरके घोरे यस् तं न परिरक्षति॥ ७॥
अकर्तव्यं न कर्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि। कर्तव्यमेव कर्तव्यमिति धर्मविदो विदुः॥ ८॥
आकरप्रवर्तने पापं गोसहस्रवधैस् समम्। वृत्तिच्छेदे तथा वृत्तेः करणं लक्षधेनुकम्॥ ९॥
वरमेकाऽनपहृता न तु दत्तं गवां शतम्। एकां हृत्वा शतं दत्त्वा न तेन समता भवेत्॥ १०॥

भयङ्कर और बड़े-बड़े बहुत से पाप करने पर भी मनुष्य गोचर्ममात्र भूमि के दान से शुद्ध (पापमुक्त) होता है। लोभ से दूसरेकी भूमि को अपहरण करते हुए मनुष्य को जबरन रोक करके उस को भूमिग्रहण से निवृत्त करे। जो मनुष्य समर्थ होने पर उसको नहीं रोकता है, वह भयङ्कर नरक में जाता है। धर्मतत्त्व जानने वाले ऐसा समझ रखते हैं कि प्राण गले से बाहर निकल जाने की ही अवस्था आने पर भी शास्त्रानिषिद्ध कर्म नहीं करना चाहिए, शास्त्र में विहित कर्म ही करना चाहिए। सोना, लोहा इत्यादि का खान चालू करने में जो पाप होता है, वह हजार गायों को मारने के पाप से तुल्य होता है, किसी की वृत्ति (आजीविका) को छीनने में भी उतना ही पाप होता है, किसी की वृत्ति (आजीविका) की व्यवस्था कर देने का पुण्य लाखों दुधारू गायों के दान के पुण्य से तुल्य होता है। दूसरे की गाय का अपहरण किए बिना अपनी ही एक गाय का दान करना अच्छा है, दूसरे की एक गाय का भी हरण करके सौ गायों का दान करना अच्छा नहीं, सौ गायों के दान से भी एक गाय के हरण का पाप नहीं मिटाया जा सकता है, सौ गायों के दान के पुण्य से भी एक गाय के हरण के पाप की समता नहीं होती है, पाप ही अधिक होता है॥ ६—१०॥

स्वयमेव तु यो दत्त्वा स्वयमेव प्रबाधते। स पापी नरकं याति यावदाभूतसम्प्लवम्॥ ११॥
न चाऽश्वमेधेन तथा विधिवद्दक्षिणावता। अवृत्तिकर्शिते दीने ब्राह्मणे रक्षिते यथा॥ १२॥
न तद् भवति वेदेषु यज्ञे सुबहुदक्षिणे। यत् पुण्यं दुर्बलं त्रस्ते ब्राह्मणे परिरक्षिते॥ १३॥
ब्रह्मस्वैश्च सुपुष्टानि वाहनानि बलानि च। युद्धकाले विशीर्यन्ते सैकताः सेतवो यथा॥ १४॥
स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेच् च वसुन्धराम्। षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः॥ १५॥

जो मनुष्य स्वयम् दान देकर स्वयम् ही उस दत्त वस्तु के भोग में दानपात्रको बाधा पहुँचाता है वह पापी प्रलय काल तक निवास करने के लिए नरक में जाता है। वृत्ति (आजीविकासाधन) के अभाव से क्षीण हुए ब्राह्मण की रक्षा से जैसा पुण्य होता है, वैसा पुण्य वेदशास्त्रके विधान के अनुसार दी गई दक्षिणा से युक्त अश्वमेध यज्ञ करने से भी नहीं होता है। जो पुण्य दुर्बल और भयभीत ब्राह्मण की सभी ओर से रक्षा करने से होता है, वह पुण्य दी गई अत्यन्त बहुत दक्षिणा से युक्त वेदों में बताए गए यज्ञ करने पर भी नहीं होता है। ब्राह्मण के धन से बहुत पोसे गए घोडे हाथी इत्यादि वाहन और सैनिक जो हैं, वे युद्ध का समय आने पर बालू के बाँध की तरह बिखर जाते हैं। अपने से दी गई अथवा दूसरे से दी गई (ब्राह्मण की) भूमि का जो हरण करेगा, वह साठ हजार वर्षों तक विष्ठा में कीड़े का जन्म लेता रहेगा॥ ११—१५॥

ब्रह्मस्वं प्रणयाद् भुक्तं दहत्यासप्तमं कुलम्। तदेव चौर्यरूपेण दहत्याचन्द्रतारकम्॥ १६॥
लोहचूर्णाऽश्मचूर्णानि कदाचिज् जरयेत् पुमान्। ब्रह्मस्वं त्रिषु लाकेषु कः पुमाञ् जरयिष्यति॥ १७॥

देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च। कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणाऽतिक्रमेण च॥ १८॥
ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे विद्याविवर्जिते। ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते॥ १९॥
सङ्क्रान्तो यानि दानानि हव्यकव्यानि यानि च। सप्तकल्पक्षयं यावद् ददात्यर्कः पुनःपुनः॥ २०॥
प्रतिग्रहा्ऽध्यापनयाजनेषु प्रतिग्रहं स्वेष्टतमं वदन्ति।
प्रतिग्रहाच् छुध्यति जाप्यहोमैर् न याजनं कर्म पुनन्ति वेदाः॥ २१॥
सदा जापी सदा होमी परपाकविवर्जितः। रत्नपूर्णामपि महीं प्रतिगृह्णन् न लिप्यते॥ २२॥

प्रेम से ही प्राप्त करके खाया गया ब्राह्मण का धन सातवीं पीढ़ी तक कुल को जलाता है, डकैती चोरी से प्राप्त करके उपभोग किया गया ब्राह्मण का धन जहाँ तक आकाश में चन्द्रमा और ताराएँ रहती हैं, तबतक कुल को जलाता रहता है। पुरुष कदाचित् लोहे के चूर्ण को और पत्थर के चूर्ण को भी खाकर पचा सकेगा, किन्तु तीनों लोकों में वर्तमान पुरुषों में से कोई भी पुरुष ब्राह्मण के धनको खाकर पचा सकेगा क्या? देवता के द्रव्य का नाश करने से, ब्राह्मण के धन का हरण करने से और सन्निहित ब्राह्मण को छोडकर दूर के ब्राह्मण का सत्कार करने से उत्तम कुल भी दुष्कुल हो जाते हैं। विद्या से रहित ब्राह्मण के विषय में ब्राह्मण के अतिक्रमण का दोष नहीं होता है, जलते हुए अग्नि को छोडकर राख में तो हवन नहीं किया जाता है। सूर्यके सङ्क्रमण होने के पुण्यकाल में जो दान दिए जाते हैं, जो देवकार्य और पितृकार्य किए जाते हैं, सूर्य उनका फल सात कल्प तक बारम्बार देते रहते हैं। वृत्ति के लिए प्रतिग्रह लेना, अध्यापन करना और वैदिक यज्ञ कराना इन कामों में मुनि लोग प्रतिग्रह लेने के काम को लेने वाले के लिए अभीष्टतम बताते हैं; क्योंकि प्रतिग्रह से जो दोष उत्पन्न होता है उससे वेदपाठ, होम इत्यादि द्वारा प्रतिग्रह लेने वाला शुद्ध हो जाता है, जिस किसीका याजन करने वालेको तो वेद भी शुद्ध नहीं कर सकते हैं। सदा वेदपाठ करने वाला, सदा होम (देवयज्ञ) करे वाला और स्वाऽसम्बद्ध दूसरे के वैश्वदेवपाक से भोजन न करने वाला (अपने से ही किये गए वैश्वदेव कर्म से संस्कृत पाक का ही भोजन करने वाला) ब्राह्मण रत्नों से भरी हुई सम्पूर्ण पृथिवी का प्रतिग्रह करता हुआ भी प्रतिग्रहदोष से लिप्त नहीं होता है॥ १६—२२॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-४३

श्रीविष्णुरुवाच–

जलाग्निबन्धनभ्रष्टा प्रव्रज्याऽनाशकच्युताः। ऐन्दवाभ्यां विशुध्यन्ति दत्त्वा धेनुं तथा वृषम्॥ १॥
ऊनद्वादशवर्षस्य चतुर्वर्षाधिकस्य च। प्रायश्चित्तं चरेन् माता पिता वाऽन्योऽपि बान्धवः॥ २॥
अतो बालतरस्याऽपि नाऽपराधे न पातकम्। राजदण्डो न तस्याऽस्ति प्रायश्चित्तं न विद्यते॥ ३॥
रक्तस्य दर्शने जाते आतुरा स्त्री भवेद् यदि। चतुर्थे हविषं स्पृष्ट्वा त्यक्त्वा वस्त्रं विशुध्यति॥ ४॥
आतुरे स्नान उत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः। स्नात्वास्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुध्येत् स आतुरः॥ ५॥

श्रीविष्णु ने कहा—मरने के लिए जल में कूदने पर अथवा अग्नि में कूदने पर अथवा फाँसी लगाने पर विभिन्न कारणों से जो मरने से बचे हैं वे, सन्न्यासधर्म से विमुख होकर गृह-स्त्री-धनादि में फंसने वाले और आमरण अनशनव्रत लेने पर भी बुद्धिपरिवर्तन से फिर खान-पान करके जीने वाले लोग दो चान्द्रायण कृच्छ्र करके एक दुधार गाय और एक वृष (बैल) का दान करके शुद्ध होते हैं। बारह वर्ष से न्यून और चार वर्ष से अधिक अवस्था वाले मनुष्य को प्रायश्चित्तयोग्य पाप हो जाने पर उनके लिए माता पिता अथवा अन्य कोई बान्धव प्रायश्चित्त करे। चार वर्ष से न्यून अवस्था के मनुष्य का कोई अपराध नहींहोता है, पातक भी नहीं होता है, उसको

राजदण्ड का विधान भी नहीं है, प्रायश्चित्त का विधान भी नहीं है। रजोदर्शन होने की अवस्था में यदि स्त्री ज्वरादि रोग से आक्रान्त होती है तो चौथे दिन में वस्त्रों को छोडकर घी का स्पर्श करके शुद्ध होती है रोगग्रस्त व्यक्ति के लिए कोई स्नान का निमित्त उत्पन्न होने पर कोई स्वस्थ पुरुष स्नान करके उस आतुर को छुवे, फिर स्नान करके फिर छुवे, ऐसा दशवार करे तो वह आतुर मनुष्य शुद्ध हो जाता है॥ १—५॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-४४

श्रीविष्णुरुवाच–

स्वेच्छया तार्क्ष्य मरणं शृङ्गिदंष्ट्रिसरीसृपैः। चाण्डालाद्यात्मघातैश्च विषाद्यैस् ताडनैस् तथा॥ १॥
जलाग्निपातवातैश् च निराहारादिभिस् तथा। येषामेवं भवेन् मृत्युः प्रोक्तास् ते पापकर्मिणः॥ २॥
पाषण्ड्यनाश्रमाश् चैव महापातकिनस्तथा। स्त्रियश् च व्यभिचारिण्य आरूढपतितास् तथा॥ ३॥
न तेषां स्यान् नवश्राद्धं न संस्कारः सपिण्डनम्। श्राद्धानि षोडशोक्तानि न भवन्ति च तान्यपि॥ ४॥
वैतानं यत् क्षिपेदप्सु गृह्याग्निं च चतुष्पथे। पात्राणि निर्दहेदग्नौ साग्निके पापकर्मणि॥ ५॥

श्रीविष्णु ने कहा—हे गरुड, जिसका अपनी इच्छा से किए गए सींग वाले पशु से युद्धादिरूप के सम्पर्क, दाढ़ों वाले प्राणियों से युद्धादि सम्पर्क, सर्पादि रेंगने वाले जन्तु से खेल, चाण्डालादि से कलह, आत्महत्या, विषपानादि, ताडन, जल में कूदना, अग्नि में कूदना, ऊँचे स्थल वृक्ष इत्यादि से पतन, प्रचण्ड वायु में खतरनाक स्थल में रहना, क्रोधादिकृत निराहार इत्यादि से मरण होता है, वे पापकर्मी कहे गए हैं। जो पाखण्डी (वेदबाह्यधर्म लेने वाले), ब्रह्मचर्याश्रमादि आश्रमों में से किसी आश्रम में भी न रहने वाले, ब्रह्महत्यादि महापाप करने वाले, अपने वैध पति से भिन्न पुरुष से सहवासादि करने वाली स्त्रियाँ, ब्रह्मचर्याश्रम गृहस्थाश्रम वानप्रस्थाश्रम सन्यासाश्रम इन आश्रमों में से अगले आश्रम में जाकर फिर पहले आश्रम में लौटने वाले मनुष्य हैं, उनका नवश्राद्ध भी नहीं होगा, अग्निसंस्कार (दाहकर्म) भी नहीं होगा, सपिण्डीकरण भी नहीं होगा, जो पूर्वोक्त सोलह श्राद्ध हैं वे भी नहीं होंगे। यदि श्रौत-गृह्य-अग्नि से युक्त पुरुष उपर्युक्त पापकर्मों में से किसी पापकर्म का करने वाला होता है तो उसकी वैतानाग्नियों (श्रौताग्नियों) को जल में फेंक दे, गृह्याग्नि को चौराहे पर फेंक दे और उसके काठ के स्रुक्-स्रुवादि यज्ञपात्रों को अग्नि में जला दे॥ १—५॥

पूर्णे संवत्सरे तेषामित्थं कार्यं दयालुभिः। एकादशीं समासाद्य शुक्लपक्षे च काश्यप॥ ६॥
विष्णुं यमं च सम्पूज्य गन्धपुष्पाक्षतादिभिः। दश पिण्डान् घृताक्तांश्च दर्भेषु मधुसंयुतान्॥ ७॥
यज्ञोपवीती सतिलान् ध्यायन् विष्णुं यमं तथा। दक्षिणाभिमुखस् तूष्णीमेकैकं निर्वपेत् तु तान्॥ ८॥
उद्धृत्य मिश्रितान् पश्चात् तीर्थेऽम्भःसु विनिःक्षिपेत्। क्षिपन् सङ्कीर्तयेन् नाम गोत्रं च मृतकस्य च॥ ९॥
पुनरप्यर्चयेद् विष्णुं यमं कुसुमचन्दनैः। धूपदीपैः सनैवेद्यैर् भक्ष्यभोज्यसमन्वितैः॥ १०॥

उक्त प्रकार के पातकियों के प्रति दया करने वाले बन्धुओं को उनके मरण के एक वर्षके बाद उनका इस प्रकार और्ध्वदेहिक कृत्य करना चाहिए—हे गरुड, शुक्लपक्ष की एकादशी को पकडकर उस तिथि में विष्णु की और यम की चन्दन, फूल, अक्षत इत्यादि से पूजा करके घी से मले हुए और मधु से युक्त तिल से सहित दश पिण्डों को निष्पन्न करके यज्ञोपवीती होकर दक्षिण दिशा की ओर मुख करके विष्णु का और यम का ध्यान करते हुए मौन धारण करके उन पिण्डों को एक-एक करके कुशों में दे। पीछे उनको उठाकर एकत्र करके तीर्थ में डाल दे। पिण्डों को जल में डालते हुए मृतक के नाम और गोत्र का कीर्तन करे। फिर नैवेद्य से युक्त तथा भक्ष्यों और

भोज्यों से समन्वित फूल, चदन, धूप और दीप से विष्णु की और यम की पूजा करे॥ ६—१०॥

तस्मिन्नुपवसेदह्नि विप्रांश् चैव निमन्त्रयेत्। कुलविद्यातपोयुक्तान् साधुशीलसन्वितान्॥ ११॥
नव सप्ताथवा पञ्च स्वसामर्थ्यानुसारतः। अपरेऽहनि मध्याह्ने यमं विष्णुं तथार्चयेत्॥ १२॥
उदङ्मुखांस् तथा विप्रांस् तान् सम्यगुपवेशयेत्। आवाहनार्घदानादौ विष्णुं यमसमन्वितम्॥ १३॥
यज्ञोपवीती कुर्वीत प्रेतनाम प्रकीर्तयेत्। प्रेतं यमं च विष्णुं च स्मरन् श्राद्धं समापयेत्॥ १४॥
अन्येभ्यश् चापि सर्वेभ्यः पिण्डदानार्थमुद्धरेत्। पृथग् वा दश पिण्डांश् च पञ्च दद्यात् क्रमेण तु॥ १५॥

उन पिण्डों के प्रदान के दिन में उपवास करे और कुल, विद्या और तपस्या से युक्त तथा प्रशंसनीय शीलों से सहित नौ अथवा सात अथवा पाँच ब्राह्मणों को अपनी शक्ति के अनुसार निमन्त्रित करे। दूसरे दिन मध्याह्न समय में यम की और विष्णु की पूर्वोक्त प्रकार से पूजा करे। उक्त निमन्त्रित ब्राह्मणों को उत्तर की ओर मुख करके आसनों में अच्छी तरह बैठाए। आवाहन, अर्घदान इत्यादि में यज्ञोपवीती होकर यम से युक्त विष्णु का और प्रेत के नाम का भी उच्चारण करे। प्रेत का, यम का और विष्णु का भी स्मरण करते हुए श्राद्ध समाप्त करे। अन्य सभी के लिए भी पिण्डदान के लिए अन्न उद्घृत करे और दश वा पाँच पिण्ड क्रम से पृथक दे॥ ११—१५॥

प्रथमं विष्णवे दद्याद् ब्रह्मणे च शिवाय च। सभृत्याय यमायाऽथ प्रेतायापि च पञ्चमम्॥ १६॥
नाम गोत्रं स्मरेत् तस्य विष्णुशब्दं प्रकीर्तयेत्। नमस्कारशिरस्कं तु पञ्चमं पिण्डमुद्धरेत्॥ १७॥
गोभूमिपिण्डदानाद्यैः शक्त्या प्रेतं स्मरंश् च तम्। तिलैस् तिलांस् तु विप्राणां दर्भयुक्तेषु पाणिषु॥ १८॥
दद्यादन्नं द्विजानां च ताम्बूलं दक्षिणां तथा। एवं शिष्टतमं विप्रं हिरण्येन प्रपूजयेत्॥ १९॥
नाम गोत्रं स्मरन् दद्याद् विष्णुः प्रीतोऽस्त्विति ब्रुवन्। अनुव्रज्य द्विजान् पश्चात् त्यक्ताम्भो दक्षिणामुखः॥ २०॥
कीर्तयन् नामगोत्रे तु भुवि प्रीतोऽस्त्विति क्षिपेत्। मित्रबन्धुजनैः सार्धं शेषं भुञ्जीत वाग्यतः।
प्रतिसंवत्सरादि स्यादेकोद्दिष्टविधानतः॥ २१॥

पहले विष्णु को दे, ब्रह्मा को और शिव को, तथा अनुचरों से सहित यमको भी दे, और पाँचवाँ पिण्ड प्रेत को भी दे। प्रेत के नाम और गोत्र का स्मरण करे, विष्णुशब्द का कीर्तन करे, नमस्कारपूर्वक पाँचवें पिण्ड का उद्धरण करे। अपनी शक्ति के अनुसार गोदान, भूमिदान और पिण्डदानादि से उस प्रेत का स्मरण करता हुआ तिल से सहित और कुश से युक्त ब्राह्मणों के हाथों में तिल दे। ब्राह्मणों को अन्न, पान और दक्षिणा भी दे। ब्राह्मणों में विद्या-शील-गुणों से सब से विशिष्ट ब्राह्मणको सुवर्णदान से पूजितकरे। दान देते समय नाम और गोत्र का स्मरण करता हुआ और 'विष्णु प्रसन्न हों' ऐसा बोलता हुआ दान दे। श्राद्ध में निमन्त्रित ब्राह्मणों का अनुगमन करके पीछे दक्षिण की ओर मुँह करके नाम-गोत्रका कीर्तन करता हुआ त्यागे गए जल को 'प्रसन्न हो' ऐसा बोलकरभूमि में छोड दे। वागिन्द्रिय को नियन्त्रित करके मित्र और बन्धुजनों से युक्त होकर श्राद्धशेष का भोजन करे। प्रतिसंवत्सर श्राद्धादि एकोद्दिष्टविधान से होगा॥ १६—२१॥

एवं कृते गमिष्यन्ति स्वर्लोकं पापकर्मिणः। सपिण्डीकरणादौ तु कृते चैवाऽऽप्नुवन्ति ते॥ २२॥
अथ कश्चित् प्रमादेन म्रियते ह्युदकादिभिः। संस्कारप्रमुखं तस्य सर्वं कुर्याद् यथाविधि॥ २३॥
प्रमादादिच्छया मर्त्यो न गच्छेत् सर्पसम्मुखः। पक्षयोरुभयोर् नागं पञ्चमीषु प्रपूजयेत्॥ २४॥
कुर्यात् पिष्टमयीं लेखां नागानामाकृतिं भुवि। अर्चयेत् तां सितैः पुष्पैः सुगन्धैश् चन्दनेन च॥ २५॥
प्रदद्याद् धूपदीपं तु तण्डुलांश् च सितान् क्षिपेत्। आमपिष्टं तथैवान्नं क्षीरं च विनिवेदयेत्॥ २६॥
उपस्थाय वदेदेवं मुञ्चन् मुद्रांशुकानि च। मधुरं तद्दिनेऽश्नीयाद् देवश्राद्धं समापयेत्॥ २७॥

सौवर्णं शक्तितो नागं ततो दद्याद् द्विजोत्तमे। धेनुं दत्त्वा ततो ब्रूयात् प्रीयतां नागराडिति॥ २८॥
यथाविभव्यं कुर्वीत कर्माण्यन्यानि पूर्ववत्। स्वशाखोक्तविधानेन इत्थं कुर्याद यथातथम्।
प्रेतत्वान् मोचयेत् तांस् तु स्वर्गार्गं नयेत् च॥ २९॥

ऐसा करने पर मरे हुए पापकर्मी लोग स्वर्गलोक में जाएंगे। सपिण्डीकरणादि किए जाने पर ही वे स्वर्गादि प्राप्त करते हैं। यदि कोई भूल करने से जलादि से मर जाता है तो उसका प्रमुख क्रियाधिकारी शास्त्रोक्तविधि से सभी अग्निसंस्कारादि और्ध्वदेहिक कृत्य को सम्पन्न करे। भूल करके भी मनुष्य स्वेच्छा से सर्प के सम्मुख न जाय। अपनी इच्छा से सर्प के सम्मुख जाने से सर्पदंश से किसी की मृत्यु होने पर उसकी सद्गति के लिए शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षों की पञ्चमियों में नाग की पूजा करे। भूमि में यवादि चूर्णसे नागों की आकृति की रेखा बनाए। उसकी श्वेत पुष्प, अनेक सुगन्ध द्रव्य और चन्दन से पूजा करे। धूप और दीप दे, श्वेत तण्डुल (चावल) भी छिडके। कच्चा पिसा हुआ अन्न और दूध भी निवेदित करे। उपस्थान (खडा होकर अञ्जलि बाँधकर भक्तिपूर्वक दर्शन करने का काम) करके मुद्राद्रव्य और वस्त्र समर्पित करता हुआ ('नागराट् प्रीयताम्' ऐसा) समर्पण वाक्य बोले। उस दिन में मधुर भोजन करे, इस प्रकार नागदेव की श्रद्धापूर्ण पूजन समाप्त करे। उसके बाद अपनी शक्ति के अनुसार बनाई गई नाग की सोने की प्रतिमा ब्राह्मण कोा दान में दे। उसके बाद ब्राह्मण को दुधारू गाय दान में देकर 'प्रीयतां नागराट्' ऐसा बोले। अन्य और्ध्वदेहिक कृत्य अपने विभव के अनुसार पूर्वोक्त रीति से करे। अपने वेदशाखाकल्पसूत्र में बताए गए विधान से जो जितना जैसा हो सके, वह सब जो करेगा, वह दुर्मरण से मरने वालों को प्रेतभाव से मुक्त कराएगा और स्वर्गमार्ग में भी ले जाएगा॥ २२—२९॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-४५

श्रीविष्णुरुवाच–

प्रत्यब्दं श्राद्धमेवं ते कथयामि खगेश्वर। प्रत्यब्दं पार्वणेनैव कुर्यातां क्षेत्रजौरसौ॥ १॥
विधिना चेतरैरेवमेकोद्दिष्टं न पार्वणम्। अनग्नेश्च सुतौ स्यातामनग्नी क्षेत्रजौरसौ॥ २॥
एकोद्दिष्टं न कुर्यातां प्रत्यब्दं तौ तु पार्वणम्। यदा त्वन्यतरः साग्निः पुत्रो वाऽप्यग्निवा पिता॥ ३॥
प्रत्यब्दं पार्वणं तत्र कुर्यातां क्षेत्रजौरसौ। अनग्नयः साग्नयो वा पुत्रा वा पितरोऽपि वा॥ ४॥
एकोद्दिष्टं सुतैः कार्यं क्षयाह इति केचन। दर्शकाले क्षयो यस्य प्रेतपक्षेऽथवा पुनः॥ ५॥
प्रत्यब्दं पार्वणं कार्यं तस्य सर्वैः सतैरपि। एकोद्दिष्टमपुत्राणां पुंसां स्याद् योषितामपि॥ ६॥

श्रीविष्णुने कहा—हे खगेश्वर, इसी प्रकार से प्रत्येक वर्ष में मृत्युतिथि में किए जाने वाले श्राद्ध के विषय में तुम को बताता हूँ। क्षेत्रज पुत्र और औरस पुत्र प्रतिवर्ष क्षयाहश्राद्ध पार्वणविधि से करें। इसी प्रकार अन्य पुत्रों से प्रत्येक वर्ष क्षयतिथि में एकोद्दिष्टश्राद्ध किया जाना चाहिए, पार्वण नहीं। यदि अग्निरहित पिता के अग्निरहित ही क्षेत्रज और औरस पुत्र होते हैं वे तो प्रतिवर्ष एकोद्दिष्ट ही श्राद्ध करें, पार्वणश्राद्ध न करें। जब पुत्र अथवा पिता कोई एक अग्निसहित होता है तब ही क्षेत्रज और औरस पुत्र प्रत्येक वर्ष पार्वणश्राद्ध करें। पुत्र अथवा पिता दोनों अग्निसहित अथवा अग्निरहित जैसे भी हों क्षयाह में सभी प्रकार के पुत्रों से एकोद्दिष्टश्राद्ध ही किया जाना चाहिए, ऐसा कोईकहते हैं। जिसका अमावास्या के समय में अथवा प्रेतपक्ष में (अमान्त मान में नभस्यकृष्णपक्ष में) मरण होता है, उसके सभी प्रकार के पुत्रों से प्रतिवर्ष पार्वणश्राद्ध ही किया जाना चाहिए। पुत्ररहित पुरुषों का और स्त्रियों का भी क्षयाहश्राद्ध एकोद्दिष्ट हो होगा॥ १—६॥

एकोद्दिष्टे कुशा ग्राह्याः समूला यज्ञकर्मणि। बहिर् लूनाः सकृल् लूनाः श्राद्धं वृद्धिमृते सदा॥ ७॥
कर्तव्ये पार्वणे श्राद्धे आशौचं यदि जायते। आशौचावगमे कुर्याच् छ्राद्धं हि तदनन्तरम्॥ ८॥
एकोद्दिष्टे तु सम्प्राप्ते यदि विघ्नः प्रजायते। मासेऽन्यस्मिन् तिथौ तस्यां कुर्याच् छ्राद्धं तदैव हि॥ ९॥
तूष्णीं श्राद्धं तु शूद्रस्य भार्यायास् तत्सुतस्य च। कन्यायाश् च द्विजातीनामनुपेतद्विजस्य च॥ १०॥
एककाले गतासूनां बहूनामथ वा द्वयोः। तन्त्रेण श्रपणं कुर्याच् छ्राद्धं कुर्यात् पृथक्पृथक्॥ ११॥

एकोद्दिष्टश्राद्ध में मूल से युक्त कुशों का प्रयोग करना चाहिए, यज्ञकृत्य में मूलरहित रूप में पृथिवी से बाहर निकले हुए भाग में कटे हुए कुशों का प्रयोग करना चाहिए, वृद्धिश्राद्धको छोड़कर अन्य श्राद्धोंमें काटते समय एक वार के ही दात्रक्रिया से काटे गए कुशों का ही सदाकाल प्रयोग करना चाहिए। यदि किए जाने वाले पार्वणश्राद्ध के बीच में अशौच हो जाता है तो अशौच ज्ञात होने पर अशौच के बाद श्राद्ध करे। यदि एकोद्दिष्टश्राद्ध आने पर विघ्न हो जाता है तो दूसरे मास में उसी तिथि में उसी काल में श्राद्ध करे। शूद्र का और द्विजातिकी शूद्रा भार्या का तथा वैसी भार्या के पुत्रका भी श्राद्ध मौन करके (वेदमन्त्र के प्रयोग के बिना) होता है, द्विजाति की कन्या का और उपनयनरहित द्विजाति का भी श्राद्ध मौन करके ही होता है। एक ही समय में मरे हुए बहुत से मनुष्यों का अथवा दो मनुष्यों का श्राद्ध प्राप्त होने पर श्राद्धों के लिए पाक एक ही करे, श्राद्ध पृथक् पृथक् करे॥ ७—११॥

दद्यात् पूर्वं मृतस्याऽऽदौ द्वितीयस्य ततः पुनः। तृतीयस्य ततः कुर्यात् सन्निपाते त्वयं क्रमः॥ १२॥
प्रत्यब्दमेवं यः कुर्याद् यथातथमतन्द्रितः। तारयित्वा पितॄन् सर्वान् प्राप्नोति परमां गतिम्॥ १३॥
न ज्ञायते मृताहश् चेत् प्रस्थानदिनमेव च। मासश् चेत् स्यात् परिज्ञातस् तद्दर्शे स्यान् मृताहिकम्॥ १४॥
यदा मासो न विज्ञातो विज्ञातं दिनमेव च। तदा मार्गशिरे मासि माघे वा तद्दिनं भवेत्॥ १५॥
दिनमासावविज्ञातौ मरणस्य यदा पुनः। प्रस्थानदिनमासौ तु ग्राह्यौ श्राद्धे मयोदितौ॥ १६॥
प्रस्थानस्याऽपि न ज्ञातौ दिनमासौ यदा पुनः। मृतवार्ताश्रुतौ ग्राह्यौ पूर्वप्रोक्तक्रमेण तु॥ १७॥

एक ही दिन में मरने वालों में से पहले मरने वाले का श्राद्ध पहले करे, उसके बाद दूसरे का और उसके बाद तीसरे का श्राद्ध करे, एक काल में श्राद्ध प्राप्त होने पर ऐसा क्रम होता है। आलस्यरहित जो मनुष्य प्रतिवर्ष इस प्रकार से यथार्थ रूप में श्राद्ध करता है, वह सभी पितरों का उद्धार करके उत्तम गति को प्राप्त करता है। यदि किसी के मरण का दिन नहीं जाना जाता है तो उसका अपने घर से निकलने की तिथि ही श्राद्ध के लिए ग्राह्य है, किसी के मरण का दिन ज्ञात नहीं है, किन्तु मास ज्ञात है तो उसी मास की अमावास्या में उसका क्षयाह-श्राद्ध होगा। यदि किसी के मरण की तिथि ज्ञात है किन्तु मास ज्ञात नहीं है तो उस अवस्था में मार्गशीर्ष मास में अथवा माघ मास में उस के क्षयाहश्राद्ध की तिथि होगी। यदि किसी के मरण का दिन और मास भी ज्ञात नहीं है तो उसके श्राद्ध के लिए उसके अपने घर से प्रस्थान करने की तिथि और मास ग्राह्य होने की बात मैंने बताई है। यदि किसी के अपने घर से निकलने की तिथि और मास भी ज्ञात नहीं है तो मरण की वार्ता को सुनने की तिथि और मास उसके क्षयाहश्राद्ध के लिए पूर्वोक्त क्रम से ग्राह्य होते हैं॥ १२—१७॥

प्रवासमन्तरेणाऽपि स्यातां तौ विस्मृतौ यदा। तदानीमपि तौ ग्राह्यौ पूर्ववत् तु मृताहिके॥ १८॥
गृहस्थे प्रोषिते यच् च कश्चित् तु म्रियते गृही। आशौचापगमे यत्र प्रारब्धे श्राद्धकर्मणि॥ १९॥
प्रत्यागतश् चेज् जानाति तत्र वृत्तं गृही तथा। आशौचं गृहिणस् तेषां न द्रव्यादेस्तदा भवेत्॥ २०॥
पुत्रादिना यदाऽऽरब्धं श्राद्धं तत्त्वेन वाऽखिलम्। समापनीयं तत्राऽपि श्राद्धं गृही तु दूरतः॥ २१॥
दात्रा भोक्त्रा च न ज्ञातं सूतकं मृतकं तथा। उभयोरपि तद्दोषं नाऽऽरोपयति कर्हिचित्॥ २२॥

यदा त्वन्यतरज्ञातं सूतकं मृतकं तथा। भोक्तुरेव तदा दोषो नाऽन्यो दाता प्रदुष्यति॥ २३॥
इत्युक्तेन प्रकारेण यः कुर्यान् मृतवासरम्। अविज्ञातमृताहस्य सततं तारयत्यसौ॥ २४॥
नित्यश्राद्धेऽथ गन्धाद्यैर् द्विजानभ्यर्च्य भक्तितः। सर्वान् पितृगणान् सम्यक् सहैवोद्दिश्य भोजयेत्॥ २५॥

यदि परदेशगमन के बिना भी किसी के मरण की तिथि और मास विस्मृत हो जाते हैं तो उस अवस्था में भी क्षयाहश्राद्ध के लिए पूर्ववत् तिथि और मास ग्राह्य होते हैं। किसी गृहस्थ के प्रवास में जाने पर यदि कोई अन्य गृहस्थ मरता है और उसके अशौच के अन्त में प्रवास में गए हुए गृहस्थ के घर में श्राद्धकृत्य का प्रारम्भ किए जाने पर प्रवास से वह गृहस्थ लौटता है और वह वहाँ उन वृत्तान्तों को जानता है तो उक्त प्रकार का अतिक्रान्ताशौच प्रवास से लौटने पर अशौच सुनने वाले गृहस्थ का ही होता हे, उसके घर में रहे हुए द्रव्यादि का नहीं होता है। पुत्रादि से जो श्राद्ध आरब्ध है वह श्राद्ध भी सम्पूर्ण रूप में यथार्थ रूप में सम्पन्न करना चाहिए, उस में भी वह प्रवास से आया हुआ गृहस्थ तो श्राद्ध देश से दूर ही रहे। देने वाले से और भोजन करने वाले से भी जननाशौच ओर मरणाशौच नहीं जाना गया है तो अज्ञात अशौच का दोष दोनों को कभी अभी आरोपित नहीं होता है। जब दे देने वाले और भोजन करने वाले में से किसी एक से जननाशौच अथवा मरणाशौच जाना गया है, तब वहाँजानकर खाने वाले का ही दोष होता है, अन्य देने वाला दोषी नहीं होता है। इसप्रकार से बताई गई रीति से अविज्ञातमृत तिथि वाले पित्रादि का जो मृततिथि श्राद्ध करता है, वह अपने पितरों को तारता है। नित्यश्राद्ध में तो सभी पितृगणों को साथ में ही उद्देश्य करके ब्राह्मणों को भक्ति से चन्दन फूल इत्यादि से पूजित करके भोजन कराए॥ १८—२५॥

आवाहनं स्वधाकारो पिण्डाग्नौकरणादिकम्। ब्रह्मचर्यादिनियमा विश्वेदेवास् तथैव च॥ २६॥
नित्यश्राद्धे त्यजेदेतान् भोज्यमन्नं प्रकल्पयेत्। दत्त्वा तु दक्षिणां शक्त्या नमस्कारैर् विसर्जयेत्॥ २७॥
देवानुद्दिश्य विश्वादीन् यद् दद्याद् द्विजभोजनम्। तन् नित्यश्राद्धवत् कार्यं देवश्राद्धं तदुच्यते॥ २८॥
मातृश्राद्धं तु पूर्वेण कर्मादौ पैतृकं तथा। उत्तरेऽहनि वृद्धौ स्यान् मातामहगणस्य तु॥ २९॥
श्राद्धत्रयं प्रकुर्वीत वैश्वदेवं तु तान्त्रिकम्॥ ३०॥
मातृभ्यः कल्पयेत् पूर्वं पितृभ्यस् तदनन्तरम्। मातामहेभ्यश् च तथा दद्यादित्थं क्रमेण तु॥ ३१॥
मातृश्राद्धे तु विप्राणामभावे सुकुलोद्गताः। पतिपुत्रान्विताः साध्व्यो योषितोऽष्टौ च भावयेत्॥ ३२॥
इष्टापूर्तादिके श्राद्धं कुर्यादाभ्युदयं तथा। उत्पातादिनिमित्तेषु नित्यश्राद्धवदेव तु॥ ३३॥
नित्यं दैवं च वृद्धिं च काम्यं नैमित्तिकं तथा। श्राद्धान्युक्तप्रकारेण कुर्वन् सिद्धिमवाप्नुयात्।
इति ते कथितं तार्क्ष्य किमन्यत् परिपृच्छसि॥ ३४॥

आवाहन, स्वधाशब्द-प्रयोग, पिण्डदान, अग्नौकरण, ब्रह्मचर्यादिनियम, विश्वेदेवों का श्राद्ध अन्य श्राद्धों में होने वाले इन कृत्यों का नित्य श्राद्ध में त्याग करे, भोज्य अन्न समर्पित करे और अपनी शक्ति के अनुसार दक्षिणा देकर नमस्कार करके ब्राह्मण को विसर्जित करे। विश्वादि देवों को उद्दिष्ट करके जो ब्राह्मणभोजन दिया जाता है वह नित्यश्राद्ध की तरह किया जाना चाहिए, उसको देवश्राद्ध कहा जाता है। वृद्धिश्राद्ध में मुख्य कर्म के आदि में पहले मातृश्राद्ध होगा, तब पैतृक श्राद्ध होगा और दूसरे दिन मातामहगणका श्राद्ध होगा। इस प्रकार तीन श्राद्ध करे, वैश्वदेव श्राद्ध तो तीनों श्राद्धों के लिए एक ही होता है। पहले माताओं का श्राद्ध करे, उसके बाद पिताओं के लिए श्राद्ध करे, तब मातामहियों के लिए श्राद्ध करे, इस प्रकार क्रम से श्राद्ध करे। मातृश्राद्ध में तो ब्राह्मणोंके अभाव में शुद्ध कुलों में उत्पन्न, पति से और पुत्र से युक्त, पतिव्रता आठ स्त्रियों को ब्राह्मणों के स्थान में रखे। इष्ट कर्म के (यज्ञों के) और पूर्तकर्म के (वापी-कूप-तडाग-उद्यानादि के उत्सर्ग के कर्मों के) आदि में आभ्युदयिक-श्राद्ध करे। उत्पातादि निमित्त उत्पन्न होने पर नित्यश्राद्ध की ही रीति से श्राद्ध करे। नित्यश्राद्ध, देवश्राद्ध, वृद्धिश्राद्ध,

काम्यश्राद्ध, नैमित्तिकश्राद्ध इत्यादि जो श्राद्ध हैं, उनको उक्त प्रकार से सम्पन्न करने वाला मनुष्य यथेष्ट पुरुषार्थसिद्धि प्राप्त करता है। हे गरुड, यह सब तुम को बताया गया, और क्या पूछते हो?॥ २६—३४॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-४६

तार्क्ष्य उवाच–

सुकृतस्य प्रभावेण स्वर्गो नानाविधो नृणाम्। भोगाः सौख्यानि रूपं च बलं बुद्धिः पराक्रमः॥ १॥
सत्यं पुण्यवतां देव जायतेऽत्र परत्र च। सत्यंसत्यं पुनः सत्यं वेदवाक्यं न चाऽन्यथा॥ २॥
धर्मो जयति नाऽधर्मः सत्यं जयति नाऽनृतम्। क्षमा जयति न क्रोधो विष्णुर् जयति नाऽसुरः॥ ३॥
तद्वत् सत्यं मया ज्ञातं सुकृताच् छोभनं भवेत्। यथोत्कृष्टतमं पुण्यं तथोत्कृष्टतरो नरः॥ ४॥
एवं तु श्रोतुमिच्छामि जायन्ते पापिनो यथा। येन कर्मविपाकेन यथा नियमभाग् भवेत्॥ ५॥
यायां योनिमवाप्नोति यथारूपश् च जायते। तन् मे वद सुरश्रेष्ठ समासेनाऽपि काङ्क्षितम्॥ ६॥

गरुड ने कहा—हे देव, सुकर्म के प्रभाव से पुण्ययुक्त मनुष्यों के इस लोक में और परलोक में नाना प्रकार के स्वर्ग, उपभोग सुख, रूप, बल, बुद्धि और पराक्रम होते हैं। यह बात सत्य-सत्य और फिर भी सत्य है, यह वेदवाक्य झूठ नहीं है। धर्म महान् है अधर्म महान् नहीं है, सत्य महान् है, झूठ महान नहींहै, क्षमा बडी है क्रोध बड़ा नहीं है, विष्णु महान् हैं, असुर महान् नहीं हैं। उसी प्रकार सुकर्म से कल्याण होगा, जितना उत्कृष्ट पुण्य होगा मनुष्य उतना ही उत्कृष्ट होगा, यह सत्य मैं ने जाना। इसी प्रकार से पापी लोग जैसे होते हैं, जिस कर्म के परिणाम से मनुष्य जैसे नियन्त्रण-(नरक) भोगी होता है, जैसी जैसी योनि में जन्म पाता है, जैसे रूप से युक्त होकर जन्म लेता है, यह मै सुनना चाहता हूँ। हे देवताओं में श्रेष्ठ, मेरे लिए आकाङ्क्षित उस बातको संक्षेप में भी बताइए॥ १—६॥

श्रीकृष्ण उवाच–

शुभाशुभफलैस् तार्क्ष्य भुक्तभोगा नरास् त्विह। जायन्ते लक्षणैर् यैस्तु तानि मे शृणु काश्यप॥ ७॥
गुरुरात्मवतां शास्ता राजा शास्ता दुरात्मनाम्। इह प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः॥ ८॥
प्रायश्चित्तेष्वचीर्णेषु यमलोका ह्यनेकधा। यातनाभिर् विमुक्ता ये यान्ति ते जीवसन्ततिम्॥ ९॥
गत्वा मानुषभावे तु पापचिह्ना भवन्ति ते। तान्यहं तव चिह्नानि कथयिष्ये खगोत्तम॥ १०॥

श्रीकृष्ण ने कहा—हे कश्यपपुत्र गरुड, शुभफल अथवा अशुभफल देने वाले कर्मों के कारण नरकभोग करने के बाद मनुष्य इस मर्त्यलोक में जिन लक्षणों से युक्त होकर जन्म लेते हैं, उन लक्षणों को मुझसे सुनो। जो अच्छे हृदय वाले लोग हैं, उनके लिए गुरु ही शिक्षा देने वाले होते हैं। जो दुष्ट हृदय वाले (और दृश्य रूप से पाप करने वाले) लोग हैं, उनके लिए राजा (शासक) (दण्ड से) शिक्षा देने वाले होते हैं, इस लोक में जो गुप्तरूप से पाप करने वाले (दुष्ट हृदयवाले) लोग हैं उनके लिए सूर्यपुत्र यमराज (नरकयातना से) शिक्षा देने वाले होते हैं। प्रायश्चित्त न करने पर पापियों को अनेक प्रकार के यमलोक मिलते हैं। यमलोक में यातनाओं के योगों से मुक्त जो लोग हैं, वे प्राणियों की पङ्क्ति में जन्म लेते हैं। मनुष्ययोनि में जन्म लेने पर पापचिह्नों से युक्त होते हैं। हे पक्षियों में श्रेष्ठ, मैं तुमको उन पापचिह्नों को बताउँगा॥ ७—१०॥

सोढ्वा वै यातनाः सर्वा गत्वा वैवस्वतक्षयम्। निस्तीर्णयातनास् ते तु लोकमायान्ति चिह्निताः॥ ११॥
गद्गदोऽनृतवादी स्यान् मूकश् चैव गवानृते। ब्रह्महा जायते कुष्ठी श्यावदन्तश् च मद्यपः॥ १२॥

कुनखी स्वर्णहरणाद् दुश्चर्मा गुरुतल्पगः। संयोगी हीनयोनिः स्याद् दरिद्रोऽदत्तदानतः॥ १३॥
अयाज्ययाजको याति ग्रामसूकरतां द्विजः। खरो वै बहुयाजी स्यात् काको निम्नन्त्रभोजनात्॥ १४॥
अपरीक्षितभोक्तारो व्याघ्राः स्युर् निर्जने वने। बहुतर्जको मार्जारः खद्योतः कक्षदाहकः॥ १५॥

सूर्यपुत्र यम के घर में जाकर सभी यातनाओं का भोग करके जो लोग यातनाओं को पार करते हैं, वे चिह्न से युक्त होकर इस मर्त्यलोक में आते हैं। झूठ बोलने वाला हकलाकर बोलने वाला होगा, गाय के लिए झूठ बोलने वाला गूंगा होगा, ब्रह्महत्या करने वाला कुष्ठी होगा, मद्यपान करने वाला द्विजोत्तम नीलच्छायायुक्त दाँत वाला होगा। ब्राह्मण का सोना चुराने वाला कुनखी (नखरोगयुक्त) होगा, गुरुकी पत्नी से सहवास करने वाला दुश्चर्मा (चमडे के रोग से युक्त) होगा, उक्त महापातक करने वाला नीचयोनि में जन्म लेगा, दान न देने वाला दरिद्र होगा। यज्ञ कराने में अयोग्य जन को यज्ञ कराने वाला ब्राह्मण गाँवका सूअर होगा, (योग्य-अयोग्य) बहुत से लोगों को (वृत्ति के लिए अत्यावश्यक न होने पर भी) यज्ञ कराने वाला ब्राह्मण गधा होगा, मन्त्रों के बिना (मन्त्रपूर्वक अग्रहोम किए बिना) भोजन करने वाला काक होगा। बिना परीक्षा जिस किसीका अन्न खाने वाले लोग निर्जन वन में बाघ होंगे, बहुत से लोगों की तर्जना करने वाला बिलार होगा, सूखे घास झडी इत्यादि से युक्त स्थल में आग लगाने वाला जुगुनू होगा॥ ११—१५॥

पात्रे विद्याऽप्रदाता यो बलीवर्दो भवेत् तु सः। अन्नं पर्युषितं विप्रे प्रददत् कुक्कुरो भवेत्॥ १६॥
मात्सर्यादपि जात्यन्धो जन्माधः पुस्तकं हरन्। फलान्याहरतोऽपत्यं म्रियते नाऽत्र संशयः॥ १७॥
मृतो वानरतां याति तन्मुखो गण्डवान् भवेत्। अदत्त्वा भक्ष्यमश्नाति अनपत्यो भवेत् तु सः॥ १८॥
हरन् वस्त्रं भवेद् गोधा गरदः पवनाशनः। प्रव्रज्याऽऽगमनाद् राजन् भवेन् मरुपिशाचकः॥ १९॥
चातको जलहर्ता स्याद् धान्यहर्ता च मूषिकः। अप्राप्तयौवनां सेवन् भवेत् सर्प इति श्रुतिः॥ २०॥

दूसरे की ईर्ष्या करने वाला जन्म से ही अन्धा होगा, पुस्तक चुराने वाला भी जन्म से ही अन्धा होगा। फलों को चुराने वाले का सन्तान मरता है, इसमें सन्देह नहीं है। वह मरकर वानरयोनि में जन्म लेता है, फिर मनुष्यजन्म में आने पर वह वानर के जैसे मुख वाला और गलगण्ड रोग से युक्त होगा। जो मनुष्य देवता-पितृ-मनुष्यों को दिए बिना भक्ष्य पदार्थ खाता है, वह सन्तानहीन होगा। वस्त्र चुराने वाला गोह होगा, विष देने वाला सर्प होगा। हे पक्षिराज, सन्न्यासाश्रम से पूर्व आश्रम में लौट आने से मरुस्थल में पिशाच होगा। पानी चुराने वाला पपीहा होगा, धान्य चुराने वाला चूहा होगा। जवानी अवस्था में अप्राप्त नाबालिक कन्या से समागम करने वाला सर्प होगा, ऐसी श्रुति है॥ १६—२०॥

गुरुदाराभिलाषी च कृकलासो भवेद् ध्रुवम्। जलप्रस्रवणं यस्तु भिन्द्यान् मत्स्यो भवेन् नरः॥ २१॥
अविक्रेयविक्रयाद् वै बको गृध्रो भवेन् नरः। अयोनिगो वृको हि स्यादुलूकः क्रयवञ्चनात्॥ २२॥
मृतस्यैकादशाहे तु भुञ्जानः श्वाऽभिजायते। प्रतिश्रुत्य द्विजेभ्योऽर्थमददज् जम्बुको भवेत्॥ २३॥
राज्ञीं गत्वा भवेद् दंष्ट्री तस्करी विड्वराहकः। शारिवा फलविक्रेता वृषश्च वृषलीपतिः॥ २४॥
मार्जारोऽग्निं पदा स्पृष्ट्वा रोगवान् परमांसभुक्। उदक्यागमनात् षण्डो दुर्गन्धश् च सुगन्धहृत॥ २५॥

गुरुपत्नी से समागम करने की इच्छा करने वाला निश्चित रूप में गिरगिट होगा, जो मनुष्य जलप्रपात के स्रोत को तोड़ेगा, वह मत्स्य होगा। विक्रय करने में अयोग्य पदार्थ का विक्रय करने वाला बगुला और गिद्ध होगा। योनिभिन्न स्थल में वीर्य छोडने वाला भेड़िया होगा। क्रय-विक्रय में ठगी करने वाला उल्लू होगा। मरण के ग्यारहवें दिन में (किए जाने वाले श्राद्ध में) भोजन करने वाला ब्राह्मण कुत्ता होगा, देने का वचन देकर ब्राह्मणों को देय द्रव्य न देने वाला सियार होगा। राजपत्नी से समागम करके वन्यसूकर होगा, डकैती करने वाला ग्राम्य सूकर होगा।

फल काविक्रय करने वाला शारिवाशब्दवाच्य लता होगा, वृषली (शूद्रा) को ही पत्नी के रूप में रखने वाला द्विजाति बैल होगा। अग्नि को पैर से छूके बिलार होगा, दूसरे के स्वत्व के मांस को खाने वाला रोगी होगा, रजस्वला स्त्री से समागम करने वाला नपुसंक होगा, सुगन्धिद्रव्य की चोरी करने वाला दुर्गन्धियुक्त होगा॥ २१—२५॥

यद् वा तद् वाऽपि पारक्यं स्वल्पं वा हरते बहु। हृत्वा वै योनिमाप्नोति तिरश्चां नात्र संशयः॥ २६॥
एवमादीनि चिह्नानि अन्यान्यपि खगेश्वर। स्वकर्मवितितान्येव दृश्यन्ते यानि मानवैः॥ २७॥
एवं दुष्कृतकर्मा हि भुक्त्वा च नरकान् क्रमात्। जायते कर्मशेषेण उक्तास्वेतासु योनिषु॥ २८॥
ततो जन्मशतं मर्त्ये सर्वजन्तुषु काश्यप। जायते नात्र समीभूते शुभाशुभे॥ २९॥
स्त्रीपुंसयोः प्रसङ्गेन निरुद्धे शुक्रशोणिते। समुपेतः पञ्चभूतैर् जायते पाञ्चभौतिकः॥ ३०॥

थोडा अथवा बहुत जो कुछ भी परकीय द्रव्य चुराता है, चोरी करके पशु-पक्षी इत्यादि की योनि में जन्म पाता है, इसमें सन्देह नहींहै। हे पक्षियों के मालिक, ऐसे प्रकार के और भी अपने ही कर्म से फैलाए गए चिह्न होते हैं, जो मनुष्य से देखे ही जाते हैं। पापकर्म करने वाला मनुष्य इस प्रकार क्रम से नरकों को भोगकर अवशिष्ट कर्म से उक्त प्रकार की इन योनियों में जन्म लेता है। हे कश्यपपुत्र, तब सभी जन्तुओं में सैकड़ों जन्म लेता है, पाप और पुण्य समान मात्रा में आ जाने पर मनुष्ययोनि में जन्म लेता है, इसमें सन्देह नहीं है। स्त्री का और पुरुषका समागम होने पर शुक्र (वीर्य) का और शोणित (स्त्रीबीज अथवा डिम्ब) कापिण्डीकरण हो जाने से पाँचों महाभूतों से युक्त तथा पाञ्चभौतिकशरीरयुक्त प्राणी जन्म लेता है॥ २६—३०॥

इन्द्रियाणि मनः प्राणा ज्ञानमायुः सुखं धृतिः। धारणा प्रेरणं दुःखं मिथ्याहङ्कार एव च॥ ३१॥
प्रयत्नाकृतिवर्णस् तु रागद्वेषौ भवाभवौ। तस्येदमात्मनः सर्वमनादेरादिमिच्छतः॥ ३२॥
स्वकर्मबद्धस्य तदा गर्भवृद्धिर् भवेदिति। पुरा यथा मया प्रोक्तं तव जन्तोर् हि लक्षणम्॥ ३३॥
एवं प्रवर्तितं चक्रं भूतग्रामे चतुर्विधे। समुत्पत्तिर् विनाशश् च जायते तार्क्ष्य देहिनाम्॥ ३४॥
स्वधर्मेणैवोर्ध्वगतिरधर्मेणाप्यधोगतिः। जायते सर्ववर्णानां स्वधर्मचलनात् खग॥ ३५॥
देवत्वे मानुषत्वे च दानभोगादिकाः क्रियाः। या दृश्यन्ते वैनतेय तत् सर्वं कर्मजं फलम्॥ ३६॥
अकर्मविहिते घोरे कामकोधार्जितेऽशुभे। पतेद् वै नरके भूयो तस्योत्तारो न विद्यते॥ ३७॥

उसमें इन्द्रिय, मन, प्राण, ज्ञान, आयु, सुख, धैर्य, स्मृति, क्रिया, दुःख,मिथ्या अहङ्कार, प्रयत्न, आकृति, वर्ण, राग-द्वेष, समृद्धि-असमृद्धि यह सब आदि (जन्म) चाहने वाले अनादि आत्मा के गुण होते हैं। इस प्रकार से शुक्रशोणित पिण्ड बनने पर अपने कर्मों से बद्ध प्राणी की गर्भ में वृद्धि होगी, जैसे मुझसे तुमको पहले ही प्राणी का लक्षण बताया गया था। चार प्रकार के प्राणियों के समूह में इस प्रकार से चक्र चलाया गया है। हेगरुड, प्राणियों का जन्म और मरण होता रहता है। अपने धर्म के आचरण से सभी वर्णों की ऊर्ध्वगति होती है, स्वधर्म से विचलन होने पर अधर्म से अधोगति भी होती है। हे विनता के पुत्र, देवभाव में और मानवभाव में रहने पर जो दान-भोग इत्यादि क्रियाएँ देखी जाती हैं, वह सब कर्म से उत्पन्न फल ही है। मनुष्य होकर भी अकर्म से उत्पादित और काम-क्रोधादि दुर्गुणों से अर्जित भयङ्कर अशुभ नरक में फिर गिर जाएगा तो उसका उद्धार नहीं है। (फिर चिरकाल तक दूसरी योनियों में घूमने से पुण्यपापमात्रा तुल्य होने पर मनुष्यजन्म होने से पुण्य करने पर ही उसका उद्धार हो सकेगा)॥ ३१—३७॥

× × ×

गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-४७

गरुड उवाच–

भगवन् देवदेवेश कृपाया परया वद। दानं दानस्य माहात्म्यं वैतरण्याः प्रमाणकम्॥ १॥

गरुड ने कहा—हे देवों के भी देव, ईश्वर, भगवन्, परम कृपा करके दान, दान का माहात्म्य और वैतरणी का परिमाण भी बताइए॥ १॥

श्रीकृष्ण उवाच–

या सा वैतरणी नाम यममार्गे महसरित्। अगाधा दुस्तरा पापैर् दृष्टमात्रा भयावहा॥ २॥
पूयशोणिततोयाढ्या मांसकर्दमसङ्कुला। पापिनश् चाऽऽगतान् दृष्ट्वा नानाभयसमावृता॥ ३॥
क्वाथ्यते सत्वरं तोयं पात्रमध्ये घृतं यथा। क्रिमिभिः सङ्कुलं पूयं वज्रतुण्डैः समावृतम्॥ ४॥
शिशुमारैश् च मकरैर् वज्रकर्तरिकायुतैः। अन्यैश् च जलजीवैश् च हिंसकैर् मांसभेदिभिः॥ ५॥
उद्यन्ति द्वादशादित्याः प्रलयान्ते तथा हि ते। तपन्ति तत्र वै मर्त्याः क्रन्दमानास्तु पापिनः॥ ६॥

श्रीकृष्ण ने कहा—यमपुरी के मार्ग में जो वैतरणी नाम की बडी नदी है वह, अगाध (गभीर), पापियों के लिए दुस्तर (कष्ट से तरणीय), देखने से ही भय देने वाली, पीब और लहू के रूप में जल से पूर्ण, मांसरूप के कीचड से भरित है, पापियों को आते हुए देखकर नाना प्रकार के भयङ्कर तत्त्वों से युक्त होती है। बर्तन में घी की तरह उस नदी का जल खौलने लगता है। उस में कीड़ों से भरित, हीरे की तरह कठोर मुख वाले जन्तुओं से, शिशुमारों से, हीरे की तरह कठोर और काटने वाले दाँतों से युक्त ग्राहों से, हिंस्रक मांस काटने वाले जलजन्तुओं से युक्त पीब रहता है। प्रलय के अन्त में जैसे बारह सूर्य उदित होते हैं, वैसे ही वहाँ उदित होते हैं। वहाँ पापी मनुष्य चिल्लाते हुए सन्तप्त होते हैं॥ २—६॥

हा भ्रातः पुत्र तातेति प्रलपन्ति मुहुर्मुहुः। विचरन्ति निमज्जन्ति ग्लानिं गच्छन्ति जन्तवः॥ ७॥
चतुर्विधैः प्राणिगणैर् दृष्टा व्याप्ता महानदी। तरन्ति गोप्रदानेन त्वन्यथा च पतन्ति ते॥ ८॥
मां नरा येऽवमन्यन्ते चाऽऽचार्यं गुरुमेव च। वृद्धानन्यांश् चाऽपि मूढास् तेषां वासस् तु तत्र वै॥ ९॥
पतिव्रतां साधुशीलामूढां धर्मेषु निश्चलाम्। परित्यजन्ति ये मूढास्तेषां वासस्तु सन्ततम्॥ १०॥

वे बार-बार हे भाई, हे पुत्र, हे पिता ऐसा प्रलाप करते रहते हैं। प्राणी वहाँ घूमते हैं, डूबते हैं, ग्लानि में पहुँचते हैं। वह बडी नदी चार प्रकार के प्राणियों के समूहों से व्याप्त देखी गई होती है। वहाँ पहुँचने वाले प्राणी किए गए गोदान के पुण्य से उस नदी को पार करते हैं, गोदान न करने से वहाँ गिर जाते हैं। जो मूर्ख मनुष्य मेरा (विष्णु का), आचार्य का, गुरुका और अन्य वृद्धों का भी अपमान करते हैं, उनका उस वैतरणी नदी में निवास होता है। जो मूढ़ मनुष्य, पति का जो व्रत है, उसीका पालन करने वाली उत्तम शील वाली विवाहिता और अपने धर्मों में दृढ पत्नी का त्याग करते हैं, उनका वैतरणी में निरन्तर निवास होता है॥ ७—१०॥

विश्वासप्रतिपन्नानां स्वामिमित्रतपस्विनाम्। स्त्रीबालविकलादीनां वधं कृत्वा पतन्ति हि।
पच्यन्ते तत्र मध्ये तु क्रन्दमानास्तु पापिनः॥ ११॥
शान्तं बुभुक्षितं विप्रं यो विघ्नायोपसर्पति। क्रिमिभिर् भक्ष्यते तत्र यावदाभूतसम्प्लवम्॥ १२॥
ब्राह्मणाय प्रतिश्रुत्य यथार्थं न ददाति तम्। आहूय नास्ति यो ब्रूयात् तस्य वासस्तु तत्र वै॥ १३॥
अग्निदो गरदश् चैव कूटसाक्षी च मद्यपः। यज्ञविध्वंसकश् चैव राज्ञीगामी च पैशुनः॥ १४॥
कथाभङ्गकरश् चैव स्वयंदत्तापहारकः। क्षेत्रसेतुविभेदी च परदारप्रधर्षकः॥ १५॥

ब्राह्मणो रसविक्रेता तथा यो वृषलीपतिः। गोधनस्य तृषार्तस्य वाप्या भेदं करोति यः॥ १६॥
कन्याविदूषकश् चैव दानं दत्त्वाऽनुतापकः। शूद्रस् तु कपिलापायी ब्राह्मणो मांसभोजनः॥ १७॥
एते वसन्ति सततं मा विचारं कृथाः क्वचित्। कृपणो नास्तिकः क्षुद्रः स तस्यां निवसेत् खग॥ १८॥

विश्वास में पड़े हुए स्वामी का, मित्रका, तपस्वी का, स्त्री का, बालक का और विकलादि जनों का वध करके मनुष्य वैतरणी में पड़ जाते हैं। वैतरणी नदी में मध्यभाग में चिल्लाते हुए वे पापी लोग पकाए जाते हैं। शान्तिशील भूखे ब्राह्मण के भोजन में विघ्न करने के लिए जो मनुष्य समीप में जाता है वह उस वैतरणी नदी में प्रलयकाल न आने तक कीड़ों से खाया जाता है। ब्राह्मण को जो वस्तु देने की प्रतिज्ञा करके उस वस्तुको नहीं देता है, ब्राह्मण को दान देने के लिए बुलाकर पीछे जो नहीं देता है, उसका वैतरणी में निवास होता है। आग लगाने वाला, विष देने वाला, झूठी गवाही देने वाला, मद्यपान करने वाला, यज्ञका विध्वंस करने वाला, राजपत्नी से सहवास करने वाला, चुगलखोरी करने वाला, कथा में विघ्न करने वाला, अपने से ही दिए गए वस्तु का अपहरण करने वाला, खेत के सेतु को तोडने वाला, दूसरे की पत्नी का धर्षण करने वाला, ब्राह्मण होकर लवणादि रस का विक्रय करने वाला, ब्राह्मण होकर जो वृषली (शूद्रा) का पति होता है वह, जो प्यास से आर्त गायों के लिए बनाई गई बावली को तोडता है वह, कन्या को मैथुनादि से दूषित करने वाला, दान देकर पश्चात्ताप करने वाला, कपिला गाय का दूध पीने वाला शूद्र, (वृथा) मांस खाने वाला ब्राह्मण ये सब वैतरणी नदी में निरन्तर वास करते हैं, इसमें कहीं भी सन्देह से विचारणा नहीं करो। हे पक्षिन्, जो अपने को, आश्रितों को और धर्म को भी पीड़ित करके धनसञ्चयन करने वाला है वह, जो वेद में और वेदोक्तकर्मफल में विश्वास न करने वाला है वह और क्षुद्र मनुष्य उस वैतरणी नदी में निवास करेगा।॥ ११—१८॥

सदाऽमर्षी सदा क्रोधी निजवाक्यप्रमाणकृत्। परोक्त्युच्छेदको नित्यं वैतरण्यां वसेच् चिरम्॥ १९॥
यस्त्वहङ्कारवान् पापी स्वविकत्थनकारकः। कृतघ्नो गर्भसन्तापी वैतरण्यां स मज्जति॥ २०॥
कदापि भाग्ययोगेन तरणेच्छा भवेद् यदि। साऽनुकूला भवेद् येन तदाकर्णय काश्यप॥ २१॥
अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनोदये। चन्द्रसूर्योपरागे वा सङ्क्रान्तौ दर्शवासरे॥ २२॥
अन्येषु पुण्यकालेषु दीयते दानमुत्तमम्। यदा तदा भवेद् वाऽपि श्रद्धा दानं प्रति ध्रुवम्॥ २३॥
तदैव दानकालः स्याद् यतः सम्पत्तिरस्थिरा। अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः॥ २४॥
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसङ्ग्रहः। कृष्णां वा पाटलां वाऽपि कुर्याद् वै तरणीं शुभाम्॥ २५॥
स्वर्णशृङ्गी रौप्यखुरां कांस्यपात्रोपदोहनीम्। कृष्णवस्त्रयुगाच्छन्नां सप्तधान्यसमन्विताम्॥ २६॥

सदा अमर्ष करने वाला, सदा क्रोधशील, अपने ही वचन को प्रमाण करने वाला, दूसरे की उक्ति का उच्छेद करने वाला भी चिरकाल तक वैतरणी नदी में निवास करेगा। जो अहङ्कारयुक्त, अपनी ही झूठी प्रशंसा करने वाला है वह, जो उपकार करने पर उपकार करने वाले को ही कष्ट पहुँचाने वाला है वह, गर्भ को जो पीडित करने वाला है, वह वैतरणी नदी में डूब जाता है। हे कश्यपपुत्र, यदि भाग्यसंयोग से कभी वैतरणी नदी को पार करने की इच्छा होती है तो जिस कार्य से वह नदी अनुकूल होती है उस कार्य को सुनो। उत्तरायण के और दक्षिणायन के प्रारम्भ के काल में, रात और दिन तुल्यप्रमाण के होने के काल में, पुण्य व्यतिपात योग के दिन के उदय में, चन्द्रग्रहण में, सूर्यग्रहण में, सूर्य का संक्रमण होने के समय में, अमावास्या के दिन में और अन्य पुण्यकालों में भी उत्तम दान दिया जाता है। जब कभी भी दान देने में श्रद्धा उत्पन्न होगी निश्चय ही वही दानकाल होगा, क्योंकि सम्पत्ति तो अस्थिर है, शरीर अनित्य है, सम्पत्ति शाश्वत नहीं होती है, मृत्यु सदाकाल समीप में ही रहता है, अतः

धर्म का सञ्चय करना चाहिए। काली अथवा श्वेतरक्त वर्ण की शुभलक्षणयुक्त वैतरणी गाय को सोनायुक्त सींग वाली, चाँदीयुक्त खुरवाली, कांस्यपात्ररूप दोहनपात्र वाली करे, दो काले वस्त्रों से आच्छादित और सप्तधान्य (जौ, धान, तिल, कँगनी, मूँग, चना, साँवा) से युक्त भी करे॥ १९—२६॥

कार्पासद्रोण-शिखरे आसीनं ताम्र-भाजने। यमं हैमं प्रकुर्वीत लोहदण्ड-समन्वितम्।
इक्षुदण्डमयं बद्ध्वा प्लवं सुदृढबन्धनैः॥ २७॥
उडुपोपरि तां धेनुं सूर्यदेहसमुद्भवाम्। कृत्वा प्रकल्पयेद् विप्रं छत्रोपानहसंयुतम्॥ २८॥
अङ्गुलीयकवासांसि ब्राह्मणाय निवेदयेत्। इममुच्चारयेन् मन्त्रं सङ्गृह्य सजलान् कुशान्॥ २९॥
यमद्वारे महाघोरे श्रुत्वा वैतरणीं नदीम्। तर्तुकामो ददाम्येनां तुभ्यं वैतरणीं नमः॥ ३०॥

द्रोणपरिमाण कार्पास (रुई) के शिखर में तांबे के बर्तन में लोहे के दण्ड से युक्त यमराज की सोने की प्रतिमा को आसीन करे। ईख के दण्ड से बनी हुई नौका को सुदृढ़ बन्धनों से बाँधकर उस नौका के ऊपर सूर्य के देह से उत्पन्न उस वैतरणी धेनु को रखकर दान लेने वाले ब्राह्मण को छाता और जूता से युक्त करे। अँगूठी और वस्त्र भी ब्राह्मण को समर्पित करे। तब जल से युक्त कुशों को लेकर **'यमद्वारे महाघोरे'** इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करे। **'यमद्वारे महाघोरे'** इत्यादि मन्त्र का अर्थ है—अत्यन्त भयङ्कर यमराज के द्वार में रही हुई वैतरणी नदी की बात को सुनकर उस नदी को पार करने की इच्छा करता हुआ मैं इस वैतरणी गाय को आप को दे रहा हूँ, नमस्कार॥ २७—३०॥

गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पार्श्वतः। गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥ ३१॥
विष्णुरूप द्विजश्रेष्ठ मामुद्धर महीसुर। सदक्षिणा मया दत्ता तुभ्यं वैतरणी नमः॥ ३२॥
धर्मराजं च सर्वेशं वैतरण्याख्यधेनुकाम्। सर्वं प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥ ३३॥
पुच्छं सङ्गृह्य धेन्वाश् च अग्रे कृत्वा तु वैद्विजम्। धेनुके त्वं प्रतीक्षस्व यमद्वारे महाभये॥ ३४॥
उत्तारणाय देवेशि वैतरण्ये नमोऽस्तु ते। अनुव्रजेत् तु गच्छन्तं सर्वं तस्य गृहं नयेत्॥ ३५॥

मेरे आगे गौएँ रहें, मेरे बगल में गौएँ रहें, मेरे हृदय में गौएँ रहें, मैं गायों के बीच में रहता हूँ। हे विष्णुरूप ब्राह्मणवर, हे भूलोक के देवता, मेरा उद्धार कीजिए। दक्षिणा से युक्त यह वैतरणी गाय आप को दी गई है, नमस्कार। उस के बाद प्रदक्षिणा करके सभी लोगों के स्वमी धर्मराज का, वैतरणी नाम की गाय का और सभी देय द्रव्य का भी ब्राह्मण को समर्पण करे। गाय के पूँछ को हाथ में लेकर ब्राह्मण को आगे कर **'धेनुके त्वं प्रतीक्षस्व'** इत्यादि पढे। **'धेनुके त्वं प्रतीक्षस्व'** इत्यादिका अर्थ—हे गौ, वैतरणी नदी से पार कराने के लिए आप अत्यन्त भयङ्कर यमद्वार में मेरी प्रतीक्षा करें, हे देवों की स्वामिनी, आप को मेरा नमस्कार हो। ऐसा कहकर जाते हुए ब्राह्मण का अनुगमन करे, और गाय को तथा अन्य सब दत्त द्रव्य को भी उन ब्राह्मण के घर में पहुँचाए॥ ३१—३५॥

एवं कृते वैनतेय सा सरित् सुतरा भवेत्। सर्वान् कामानवाप्नोति यो दद्याद् भुवि मानवः॥ ३६॥
सुकृतस्य प्रभावेण सुखं चेह परत्र च। स्वस्थे सहस्त्रगुणितमातुरे शतसम्मितम्॥ ३७॥
मृतस्यैव तु यद् दानं परोक्षे तत् समं स्मृतम्। स्वहस्तेन ततो देयं मृते कः कस्य दास्यति॥ ३८॥
दानधर्मविहीनानां कृपणं जीवितं क्षितौ। अस्थिरेण शरीरेण स्थिरं कर्म समाचरेत्॥ ३९॥
अवश्यमेव यास्यन्ति प्राणाः प्राघुणिका इव॥ ४०॥

इतीदमुक्तं तव पक्षिराज विडम्बनं जन्तुगणस्य सर्वम्।
प्रेतस्य मोक्षाय तदौर्ध्वदैहिकं हिताय लोकस्य चरेच् छुभाय तु॥ ४१॥

हे विनिता के पुत्र, ऐसा करने पर वह वैतरणी नदी सुख से ही पार की जाने वाली होगी। जो मनुष्य इस लोक में वैतरणीदान देगा वह सभी कामनाओं के विषयों को प्राप्त करता है। सुकर्म के प्रभाव से इस लोक में और परलोक में भी सुख होता है। स्वस्थ अवस्था में जो दान दिया जाता है उसका हजार गुना फल होता है, अस्वस्थ अवस्था में जो दान दिया जाता है उसका सौ गुना फल होता है, मरे हुए मनुष्य के लिए उसके परोक्ष में जो दान दिया जाता है उसका फल तुल्य (जितना दिया गया है उतना ही) होता है, इस लिए दान अपने ही हाथ से देना चाहिए, मरने पर कौन किसके लिए देगा। दानधर्म से रहित मनुष्यों का भूलोक में जीवन दयनीय होता है। अस्थिर शरीर से स्थिर कर्म करे। प्राण तो अतिथि की तरह अवश्य ही चल जाएंगे। हे पक्षिराज, इस प्रकार यह सब प्राणिसमुदाय का क्लेश तुम को बता दिया गया। इसलिए प्रेत के प्रेतभाव से मोक्ष के लिए और हित के लिए तथा जीवित लोक के कल्याण के लिए भी और्ध्वदेहिक कृत्य करे।॥ ३६—४१ ॥

सूत उवाच–

एवं विप्राः समादिष्टो विष्णुना प्रभविष्णुना। गरुडः प्रेतचरितं श्रुत्वा सन्तुष्टिमागतः॥ ४२॥
व्रततीर्थादिकं सर्वं पुनः पप्रच्छ केशवम्। ध्यात्वा मनसि सर्वेशं सर्वकारणकारणम्॥ ४३॥
ऋषयः सर्वमेवैतज् जन्तूनां प्रभवादिकम्। मरणं जन्म च तथा प्रेतत्वं चौर्ध्वदैहिकम्॥ ४४॥
मया प्रोक्तं हि वै मुक्त्यै प्रेतस्य चौर्ध्वदैहिकम्। निदानं वच्मि लोकानां हिताय परमौषधम्॥
लाभस् तेषां जयस् तेषं कुतस् तेषां पराजयः। येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः॥ ४५॥

सूत ने कहा—हे ब्राह्मणगण, शक्तिसम्पन्न विष्णु से इस प्रकार कहे गए गरुडजी प्रेत के चरित्र को सुनकर सन्तुष्ट हुए। सबके कारण के भी कारण सर्वेश्वर का मन में ध्यान करके गरुडजी ने व्रत-तीर्थ इत्यादि के विषय में विष्णु को फिर पूछा। हे ऋषिगण, यह प्राणियों का उत्पत्तिस्थानादि सब मरण, जन्म, प्रेतभाव और और्ध्वदैहिक कृत्य तथा प्रेतयोनि में प्राप्त प्रेत के मुक्ति के लिए विशेष और्ध्वदैहिक कृत्य भी मुझसे बताया गया। लोक के हित का परम औषध के रूप में रहे मूल कारण को मैं बताता हूँ। जिन लोगों के हृदय में नीलकमल की तरह श्यामवर्ण वाले जनार्दन (कृष्ण) रहते हैं, उनका लाभ ही होगा, विजय ही होगा, उनका पराजय किससे हो सकता है।॥ ४२—४५ ॥

धर्मो जयति नाऽधर्मः सत्यं जयति नानृतम्। क्षमा जयति न क्रोधो विष्णुर् जयति नाऽसुराः॥ ४६॥
विष्णुर् माता पिता विष्णुर् विष्णुःस्वजनबान्धवाः। येषामेव स्थिरा बुद्धिर् न तेषां दुर्गतिर् भवेत्॥ ४७॥
मङ्गलं भगवान् विष्णुर् मङ्गलं गरुडध्वजः। मङ्गलं पुण्डरीकाक्षो मङ्गलायतनं हरिः॥ ४८॥
हरिर् भागीरथी विप्रा विप्रा भागीरथी हरिः। भागीरथी हरिर् विप्राः सारमेतज् जगत्त्रये॥ ४९॥
इति सूतमुखोद्‌गीर्णां सर्वशास्त्रार्थमण्डिताम्। वैष्णवीं वाक्सुधां पीत्वा ऋषयस्तुष्टिमाययुः॥ ५०॥
प्रशशंसुस् तथाऽन्योऽन्यं सूतं सर्वार्थदर्शिनम्। प्रहर्षमतुलं प्रापुर् मुनयः शौनकादयः॥ ५१॥
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा। यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥ ५२॥

[गरुडपुराण, प्रेतखण्ड, धर्मकाण्ड]

धर्म बड़ा है, अधर्म बड़ा नहीं, **सत्य बडा है,** असत्य बड़ा नहीं है, क्षमा बड़ी है, क्रोध बड़ा नहीं, **विष्णु बड़े हैं, असुर बड़े नहीं हैं, विष्णु माता हैं, विष्णु पिता हैं, विष्णु ही स्वजन और बन्धुव भी हैं,** ऐसी बुद्धि जिस की स्थिर है उनकी दुर्गति नहीं होगी। भगवान् विष्णु मङ्गलकारी हैं, गरुडध्वज विष्णु मङ्गलकारी हैं, पुण्डरीकाक्ष विष्णु मङ्गलकारी हैं, हरि मङ्गल के घर हैं। हरि ही भागीरथी (गङ्गा) और ब्राह्मण भी हैं, ब्राह्मणगण

ही भागीरथी और हरि भी हैं, भागीरथी ही हरि और ब्राह्मणगण भी हैं, यह हरि, ब्राह्मण और भागीरथी का समुदाय तीनों लोकों में सारभूत तत्त्व है। इस प्रकार की सूत के मुख से निकली हुई और सभी शास्त्रों के अर्थों से मण्डित विष्णु की वाणीरूपी सुधा (अमृत) को पीकर ऋषि लोग सन्तुष्ट हो गए। ऋषियों ने एक दूसरे की और सभी अर्थों को दिखाने वाले सूतजी की भी प्रशंसा की। शौनकादि मुनि लोगों ने अतुलनीय हर्ष पाया। मनुष्य अपवित्र हो अथवा पवित्र हो, अथवा जिस किसी भी अवस्था में रहा हो तो भी यदि वह पुण्डरीकाक्ष परमात्मा का स्मरण करता है तो बाहर और भीतर भी शुद्ध हो जाता है॥ ४६—५२॥

× × ×

सन्दर्भ—गरुडपुराण, प्रेतखण्ड, धर्मकाण्ड।

[गरुडपुराण, प्रेतकल्प, अध्याय-१० से अध्याय-४७ तक]

पुराण खण्ड में दिये गये पौराणिक कथाओं का पाठ करना परम कल्याणकारी है। गरुडपुराण को छोड़कर शेष सभी कथाओं का नित्य पाठ करने से भगवान् चित्रगुप्त प्रसन्न होते हैं, फलस्वरूप पाठकर्ता मनुष्य भगवान् चित्रगुप्त की कृपा से संसार में निरोग रहते हुए सुख भोगकर परमगति को प्राप्त करता है।

चित्रगुप्त-कथा

[भगवान् चित्रगुप्त द्वारा भीष्म को इच्छा मृत्यु का वरदान]

श्रीभीष्म उवाच—

कायस्था इति यल्लोके ख्याता चैव महामुने। कस्य वंशे समुद्भूताः कस्मिन् वर्णे च कथ्यते॥ १॥
तमहं श्रोतुमिच्छामि कथ्यतां भो महामुने। एतन्मे संशयं ब्रह्मन्! छेत्तुमर्हस्यशेषतः॥ २॥

श्रीभीष्म बोले—हे महामुने! इस संसार में **कायस्थ** नाम से जो विख्यात हैं, वे किस वंश में उत्पन्न हुए और किस वर्ण में कहे जाते हैं? हे महामुने! यह कथा सुनने की मेरी इच्छा है। मेरे इस संदेह को दूर करने में आप समर्थ हैं। इसलिए आप कृपा कर इस पवित्र कथा को कहिए॥ १-२॥

पुलस्त्य उवाच—

इति पृष्टो मुनिः प्राह गाङ्गेयं शुचिविग्रहम्। शृणु गाङ्गेय! वक्ष्यामि कायस्थोत्पत्तिकारणम्॥ ३॥
न श्रुतं यत्त्वया पूर्वं तन्मे निगदतः शृणु। येनेदं सकलं विश्वं स्थावरं जङ्गमादिकम्॥ ४॥
उत्पाद्य पाल्यते भूयो निधनाय प्रकल्प्यते। अव्यक्तः पुरुषः शान्तो ब्रह्मा लोकपितामहः॥ ५॥
यथासृजत्पुरा विश्वं कथयामि च तं प्रभो!। मुखतो ब्राह्मणा जाता बाहुभ्यां क्षत्रियास्तथा॥ ६॥
ऊरुभ्यां च तथा वैश्याः पद्भ्यां शूद्रासमुद्भवाः। द्विचतुःषट्पदादींश्च सर्वजीवान् सरीसृपान्॥ ७॥
एककालेऽसृजद् ब्रह्मा चन्द्रसूर्यग्रहास्तथा। एवं बहुविधं तत्र विश्वमुत्पाद्य भारत!॥ ८॥
सुतं ज्येष्ठं समाहूय सूर्यप्रमिततेजसम्। प्रतिपालय यत्नेन जगत्सर्वञ्च सुव्रत॥ ९॥

पुलस्त्य बोले—इस प्रकार पूछने पर मुनि प्रसन्न होकर गंगा के पुत्र भीष्म से बोले, हे गांगेय! मैं कायस्थोत्पत्ति का कारण आप से कहता हूँ। जिसको आपने आजतक नहीं सुना, जिसने इस संसार की रचना की, पालन किया, वही नाश करते हैं, ऐसे ब्रह्मा की सृष्टि को कहता हूँ। मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य, पैर से शूद्र, दो, पाँच, चार, छः, पैर वाले पशुओं से लेकर समस्त सर्पादि जीवों का एक ही समय में चन्द्रमा-सूर्यादि ग्रहों को और बहुत-से जीवों को उत्पन्न किया। हे भारत! ब्रह्मा ने सूर्य के समान तेजस्वी ज्येष्ठ पुत्र को बुलाकर कहा कि हे सुव्रत! तुम यत्नपूर्वक इस जगत् की रक्षा करो॥ ३—९॥

इत्याज्ञाप्य सुतं ज्येष्ठं सृष्टिपालन-हेतुकम्। ततस्तु ब्रह्मणा तेन यत्कृतं तन्निशामय॥ १०॥
दशवर्ष-सहस्राणि दशवर्ष-शतानि च। समाधिमगमद् ब्रह्मा ततो विश्रान्तमानसः॥ ११॥
ततः समाहितं यावद् अद्भुतं तद्वदामि ते। तच्छरीरान्महाबाहुः श्यामः कमललोचनः॥ १२॥
कम्बुग्रीवो व्यूढशीर्षः पूर्णचन्द्रनिभाननः। लेखनीकठिनीहस्तो मसीभाजन-संयुतः॥ १३॥
तेजस्वी पुरुषो धीमान् ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः। उत्पन्नस्तु विचित्राङ्गध्यातस्तिमितलोचनः॥ १४॥

सृष्टि का पालन करने के लिए ज्येष्ठ पुत्र को आज्ञा देकर ब्रह्मा ने जो किया उसे आप सुनिये, एकाग्रचित्त होकर ब्रह्मा ने दस हजार दस सौ (११,०००) वर्ष की समाधि लगाई, अन्त में विश्रान्तचित्त हुए। उस समय जो आश्चर्य जनक कार्य हुआ वह आप से कहता हूँ आप सुने! **उस ब्रह्मा के शरीर से बड़े भुजाओं वाले, श्यामवर्ण वाले, कमल के समान नेत्र, शंख के समान गर्दन, विशाल सिर वाले पूर्णचन्द्रमा के समान मुख, तेजस्वी, हाथ में कलम, दावात और पट्टिका लिये, अति बुद्धिमान्, अति सुन्दर, विचित्रांग, स्थिर नेत्रों वाले, एक पुरुष अव्यक्त रूप में (मानस पुत्र) ध्यानमग्न ब्रह्मा के शरीर से उत्पन्न हुए॥** १०—१४॥

त्यक्त्वा समाधिं गाङ्गेय! तं ददर्श पितामहः। अधोर्ध्वञ्च निरीक्ष्येमं पुरुषं चाऽग्रतः स्थितम्॥ १५॥
पप्रच्छ को भवानग्रे ! स्थितो वै पुरुषोत्तमम्। इति पृष्टोऽब्रवीद्वाक्यं ब्रह्माणं कमलोद्भवम्॥ १६॥

हे भीष्म! समाधि से विरत होकर स्थित पुरुष को नीचे से ऊपर तक देखकर ब्रह्मा ने पूछा—हे पुरुषोत्तम! हमारे सामने स्थित आप कौन हैं? ब्रह्मा का यह वचन सुन वह पुरुष बोला—॥ १५-१६॥

उत्पन्नोऽहं विधे नाथ! त्वच्छरीरान्न संशयः। नामधेयं च मे तात! कर्तुमर्हस्यशेषतः॥ १७॥
यथोचितं भवत्कार्यं तत्त्वं मामनुशासय। इत्याकर्ण्य ततो ब्रह्मा पुरुषं तं शरीरजम्॥ १८॥
प्रहस्य प्रत्युवाचैमानन्दित-मनसस्ततः।

हे विधे! मैं आप ही के शरीर से उत्पन्न हुआ हूँ, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। हे पिता! अब आप मेरा नामकरण करने योग्य हैं, अतः नाम दीजिए और मेरे योग्य कार्य भी कहिये। यह वाक्य सुनकर ब्रह्माजी अपने शरीर से उत्पन्न उस पुरुष से हँस कर प्रसन्न मन से बोले—॥ १७—१९॥

ब्रह्मोवाच—

मच्छरीरात्समुद्भूतस्तस्मात्कायस्थसंज्ञकः ॥ १९॥
चित्रगुप्तेति नाम्ना तु ख्यातो भुवि भविष्यति। धर्माऽधर्म-विवेकार्थं धर्मराजपुरे शुभे॥ २०॥
भविष्यति हि भो वत्स! निवासः सुविनिश्चितम्। निजवर्णोत्तमं धर्मं पालनीयं यथाविधि॥ २१॥
प्रजाः सृजस्व भो पुत्र! इति भारसमन्वितम्। तस्मै दत्त्वा वरं ब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत॥ २२॥

ब्रह्मा बोले—मेरी काया से तुम उत्पन्न हुए हो इसलिये तुम 'कायस्थ' कहलाओगे और पृथ्वी पर 'चित्रगुप्त' नाम से विख्यात होगे। हे वत्स! धर्माऽधर्म विचार के लिए धर्मराज की यमपुरी में तुम्हारा निवास निश्चित होगा। **हे पुत्र! अपने उत्तम वर्ण (ब्राह्मण) का जो धर्म है, वही विधिपूर्वक पालन करो तथा सन्तान उत्पन्न करो।** इस प्रकार ब्रह्माजी भारयुक्त वर को देकर अन्तर्धान हो गये॥ १९-२३॥

पुलस्त्य उवाच—

चित्रगुप्तात्प्रजा जाता शृणु तां कथयामि ते। शृणु तेषां च नामानि कुरुवंशविवर्धन॥ २३॥
नैगमाः माथुराश्चैव भटनागराः सेनकाः। अहिस्थानाः श्रीवास्तव्याः कुलश्रेष्ठाः सूर्यध्वजाः॥ २४॥
गौडाः कर्णाः वाल्मीकाश्च चित्रगुप्तान्महामतेः। कुशलाः सर्वशास्त्रेषु ह्यम्बष्टाश्चैवसत्तमाः॥ २५॥

पुलस्त्य ने कहा—हे कुरुवंश की वृद्धि करने वाले भीष्म! चित्रगुप्त से जो प्रजा उत्पन्न हुई है, उसके नाम का वर्णन करता हूँ, उसे सुनो! **महामति चित्रगुप्त से उत्पन्न—निगम, माथुर, भटनागर, सुखसेन, अस्थाना, श्रीवास्तव, कुलश्रेष्ठ, सूर्यध्वज, गौड, कर्ण, वाल्मीक और अम्बष्ट आदि पुत्र, सभी शास्त्रों में निपुण हुए॥** २४—२६॥

☞ पुलस्त्य ऋषि ने द्वापरयुग में ही भीष्म को बताया था कि भगवान् चित्रगुप्त के वंशज ब्रह्मकायस्थ सभी शास्त्रों में निपुण हैं।

पुत्रान्प्रस्थापयामास चित्रगुप्तो महीतले। धर्माऽधर्मविचारज्ञश्चित्रगुप्तो महामतिः॥ २६॥
भूयस्तान् शिक्षयामास धर्मसाधनमुत्तमम्। पूजनं देवतानां च पितृणां यज्ञसाधनम्॥ २७॥
भरणं ब्राह्मणानां च सर्वदाऽतिथिसेवनम्। कर्तव्यं हि प्रयत्नेन लोकत्रयहितायवै॥ २८॥

तब चित्रगुप्त ने स्वर्ग से पुत्रों को पृथ्वी पर भेजा और धर्माऽधर्म को जानने वाले महामति चित्रगुप्त ने अपने पुत्रों को उत्तम धर्म-साधन की शिक्षा देकर कहा कि 'तुम लोग देवताओं का पूजन, पितरों का श्राद्ध एवं यज्ञ इत्यादि कराना तथा **ब्राह्मणों का पालन,** अतिथियों की सेवा तथा तीनों लोकों के हित के लिए यत्न सदैव करना॥ २७—२९॥

हे पुत्राः! स्वर्गकामाय पूज्या महिषमर्दिनी। या च माया प्रकृतिश्च चण्ड-मुण्डविनाशिनी॥ २९॥
तस्यास्तु पूजनं कार्यं सर्वसिद्धि-प्रदायकम्। तस्याः प्रभावतो देवा सिद्धिं प्राप्य दिवङ्गताः॥ ३०॥
स्वर्गाधिकारमासाद्य जाता यज्ञभुजः सदा। भवद्भिः सा सुपूज्या तु मिष्ठान्नैः सुमनोहरैः॥ ३१॥
भवतां सिद्धिदा यस्मात् देवतानां च चण्डिका। वैष्णवं धर्ममाश्रित्य मद्वाक्यं प्रतिपालय॥ ३२॥
अनुशास्य सुतानेव चित्रगुप्तो दिवं ययौ। धर्मराजाधिकारे च चित्रगुप्तः सदाऽवसत्॥ ३३॥
एवं भीष्म! समुत्पन्नाः कायस्था ये प्रकीर्तिताः। ये सृष्टास्ते समाख्याताः संवादं शृणु यत्परम्॥ ३४॥
अहं ते कथयिष्यामि विचित्रमितिहासकम्। प्रभावं चित्रगुप्तस्य समुद्भूतं यथा पुनः॥ ३५॥

हे पुत्रों! धर्म की कामना करके **महिषमर्दिनी देवी (दुर्गा) का पूजन अवश्य करना। जो माया प्रकृति रूपा और चण्ड-मुण्ड का नाश करनेवाली (काली) हैं तथा समस्त सिद्धियों को देनेवाली हैं, उनका पूजन करना।** जिनके प्रभाव से देवता लोग भी सिद्धियों को पाकर स्वर्ग को गये और स्वर्ग के अधिकार को पाकर सदैव यज्ञ में भाग लेने वाले हुए। उस देवी के लिए तुम सब उत्तम मिष्ठान्नादि समर्पण करना, जिससे वह चण्डिका देवताओं की भाँति तुम्हें भी सिद्धि देनेवाली होवें। **"तुम वैष्णव-धर्म का अवलम्बन कर मेरे वाक्य का प्रतिपालन करना"।** इस प्रकार पुत्रों को आज्ञा देकर चित्रगुप्त स्वर्ग को चले गये। **स्वर्ग में जाकर चित्रगुप्त धर्मराज के अधिकरण में स्थित हुए।** हे भीष्म! इस प्रकार चित्रगुप्त की उत्पत्ति मैंने आपसे कही। अब मैं उन लोगों का विचित्र इतिहास, और चित्रगुप्त का जैसा प्रभाव उत्पन्न हुआ वह भी कहता हूँ, सुनिये॥ २९-३५॥

☞ भगवान् चित्रगुप्त ने अपने पुत्रों को "दुर्गा एवं काली" की नित्यपूजा का आदेश दिया था जो कि चित्रगुप्तवंशीय ब्रह्मकायस्थों के लिये अनिवार्य है।

पुलस्त्य उवाच-

सौदासो नाम राजाऽभूत्समस्ते क्षितिमण्डले। सदा पापरतः सोऽपि धर्माधर्मौ न विन्दति॥ ३६॥
स यथा स्वर्गमासाद्य लब्धं पुण्यफलं शृणु। स हि पापो दुराचारो धर्मकार्यविवर्जितः॥ ३७॥
राजनीतिगतं धर्मं न जानाति कथञ्चन। स्वदेशे वादयामास पटहं स नराधिपः॥ ३८॥
न दातव्यं न कर्तव्यं दैवं पैत्र्य कथञ्चन। आतिथ्यं जपकर्माणि तपः-साधनमुत्तमम्॥ ३९॥
न कर्त्तव्यं नरैः क्वापि मत्पालितमहीतले। वसन्ति ये तस्य चक्रे देव्यादिपुरतो द्विजाः॥ ४०॥
परित्यज्य स्वकं देशं नाना देशान्तरं गताः। ये केचिन्न्यवसन् चक्रे चाऽन्यं वा ब्राह्मणादयः॥ ४१॥
नैव यज्ञं प्रकुर्युस्ते दैवं पैत्र्यं कदाचन। ततः प्रभृति गाङ्गेय! न यज्ञो हवनं क्वचित॥ ४२॥

पुलस्त्य बोले—धर्माऽधर्म को न जानता हुआ नित्य पापकर्म में रत पृथ्वी पर सौदास नामक राजा हुआ। उस पापी दुराचारी तथा धर्म-कर्म से रहित प्राणी ने जिस प्रकार पुण्य के फल का भोग किया वह कथा सुनिये। धर्म की राजनीति नहीं जानते हुए भी राजा ने अपने राज्य में ढिंढोरा पिटवा दिया कि दान, धर्म, हवन, तर्पण, अतिथियों का सत्कार, जप, नियम तथा तपस्या का साधन मेरे राज्य में कोई मनुष्य न करे। देवी आदि की भक्ति

में तत्पर वहाँ के निवासी ब्राह्मण लोग उसके राज्य को छोड़ वहाँ से नाना देशों में चले गये। जो रह गये वे यज्ञ, हवन, श्राद्ध तथा तर्पण कभी नहीं करते थे॥ ३६—४१॥

न कोऽपि कुरुते भीष्म!पुण्यं तस्य बहिर्गतम्। ते द्विजाश्चान्यवर्णाश्च चक्रिरे धर्मविप्लवम्॥ ४३॥
अहो भूमिभृतस्तस्य शृणु कर्मविपाकजम्। चित्रमासे शुक्लपक्षे पूर्णिमायां शुभे तिथौ॥ ४४॥
शुचिर्भूत्वा तु कायस्थाः चित्रगुप्तस्य पूजनम्। चक्रिरे भक्तिभावेन धूप-दीपादिकैः शुभैः॥ ४५॥
दैवात्पप्रच्छ कस्येदं पूजनं क्रियते शुभम्। तेऽप्यूचुश्चित्रगुप्तस्य पूजां कुर्मः शुभां नृप॥ ४६॥

हे भीष्म! तब से उसके राज्य में कोई यज्ञ, हवनादि पुण्य कर्म कोई नहीं करने पाता था। हे भीष्म! उस समय उस देश से पुण्य बाहर हो गया। ब्राह्मण तथा अन्य वर्ण के लोग धर्म का नाश करने लगे। अब आप उस दुष्ट राजा का कर्म-फल सुनें। **चित्रमास (चैत्रमास) शुक्लपक्ष की पूर्णिमा को** कायस्थ लोग पवित्रता से, चित्रगुप्त का पूजन, भक्तिभाव से परिपूर्ण होकर सुन्दर धूप, दीपादि से कर रहे थे। उसी समय दैवयोग से राजा भी इधर-उधर घूमता हुआ वहाँ आ पहुँचा। उसने पूछा-आप यह किसका पूजन कर रहे हैं? वे लोग बोले कि हे राजन्! हम लोग चित्रगुप्त की यह शुभ पूजा कर रहे हैं॥ ४५—४८॥

राजोवाच-

अहमप्याचरिष्यामि चित्रगुप्तस्य पूजनम्। ततश्च विधिवत्स्नानं कृत्वा चैव नराधिप!॥ ४७॥
श्रद्धायुक्तेन मनसा कृतवान् पूजनं ततः। करणात्पूजनं तस्य चित्रगुप्तस्य भक्तितः॥ ४८॥
गतपापोऽभवत्सद्यः सौदासः स महीपतिः। चित्रगुप्तप्रसादेन सुरलोकं गतो नृपः॥ ४९॥
इदं विचित्रमाख्यानं चित्रगुप्त-प्रभावजम्। कथितं ते नृपश्रेष्ठ किमन्यत्श्रोतुमिच्छसि?॥ ५०॥
इत्याकर्ण्य ततो भीष्म प्रत्युवाच महामुनिम्।

राजा ने कहा—मैं भी चित्रगुप्त की पूजा करूँगा। यह कह राजा ने स्नान कर श्रद्धाभक्तियुक्त मन से चित्रगुप्त की पूजा की, उस भक्तियुक्त पूजन करने से पाप रहित होकर राजा सौदास चित्रगुप्त की कृपा से स्वर्गलोक को प्राप्त किया। यह चित्रगुप्त का प्रभावशाली इतिहास आपसे मैंने कहा। अब हे नृपश्रेष्ठ, क्या सुनने की तुम्हारी इच्छा है? यह सुनकर भीष्मजी महर्षि पुलस्त्यजी से बोले— ॥ ४७—५०१/२ ॥

भीष्म उवाच-

विधिना केन विप्रेन्द्र! पूजां तत्र चकार सः॥ ५१॥
को मन्त्रः को विधिस्तत्र तत्सर्वं कथय प्रभो!। यमासाद्य मुनिश्रेष्ठ! सौदासः स्वर्गमाप्तवान्॥ ५२॥

भीष्म बोले—हे विप्रेन्द्र! किस विधि से वहाँ उसने पूजन किया। हे प्रभो, उसने कौन-सी विधि की थी जिसके प्रभाव से हे मुनिश्रेष्ठ, राजा सौदास स्वर्ग को गया?॥ ५१—५२॥

पुलस्त्य उवाच-

चित्रगुप्तस्य पूजायाः विधानं कथयामि ते। नैवेद्यैर्घृतपक्वैश्च तथा कालोद्भवैः फलैः॥ ५३॥
गन्धपुष्पोपहारैश्च धूपदीपैस्तथोत्तमैः। नानाप्रकार-नैवेद्यैः पट्टवस्त्रैः सुशोभनैः॥ ५४॥
भेरीशंखमृदङ्गैश्च नाना वाद्यैर्डिमड्मिभैः। चित्रगुप्तस्य पूजां तु कुर्याद्भक्तिसमन्वितः॥ ५५॥
कलशं नवमानीय वारिणा परिपूरितम्। शर्करापूरितं विद्वन्! पात्रं तस्योपरि स्थितम्॥ ५६॥

पुलस्त्य बोले—हे भीष्म, चित्रगुप्त के पूजन की विधि आपसे कहता हूँ। घृत से बने नैवेद्य, ऋतुफल, फूल, चन्दन, धूप, दीप अनेक प्रकार के नैवेद्य, सुन्दर रेशमी वस्त्र से पूजन कर, भेरी, शंख, मृदंग, डिमडिम अनेक

बाजे बजाकर श्रीचित्रगुप्त का श्रद्धापूर्वक पूजन करें। नवीन कलश लाकर जल से परिपूर्ण करें। उसके ऊपर शर्करा से पूर्ण एक कोसा रखें॥ ५३—५६ ॥

तत्रमन्त्रः-

मषीभाजनसंयुक्तश्चरसि त्वं महीतले। लेखनी-कठिनीहस्त चित्रगुप्त नमोऽस्तु ते॥ ५७॥
चित्रगुप्त! नमस्तुभ्यं निगमाक्षरदायक। कायस्थजातिमासाद्य चित्रगुप्त नमोऽस्तु ते॥ ५८॥
येषां त्वया लेखनस्य जीविका येन निर्मिता। तेषां च पालको यस्मात्ततः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ ५९॥

पूजन का मन्त्रार्थ यह है—हाथ में दावात, कलम और पट्टिका लेकर भूमि पर भ्रमण करने वाले हे चित्रगुप्त, आपको नमस्कार है। हे चित्रगुप्त, आपको नमस्कार है, आप वेद को अक्षर देने वाले हैं, कायस्थ जाति को प्राप्त करने वाले चित्रगुप्त आपको नमस्कार है। जिसको आपने लिखने की जीविका दी है, आप उनका पालन करते हैं उन्हीं के समान मुझे भी शान्ति दीजिए॥ ५७—५९ ॥

एभिर्मन्त्रैस्तु राजेन्द्र! चित्रगुप्तस्य पूजनम्। संकल्पपूर्वकं कुर्यात्कुरुवंशविवर्द्धन!॥ ६०॥
एवं सम्पूज्य विधिवत्सौदासो भक्तिभावतः। अचिरेणैच कालेन राज्यं कृत्वा मृतो नृपः॥ ६१॥
नीतोऽसौ यमदूतैस्तु यमलोकं भयानकम्। चित्रगुप्तं तदाऽपृच्छद्यमराजश्च भारत॥ ६२॥

हे राजेन्द्र, हे कुरुवंश के बढ़ानेवाले भीष्म, इन मन्त्रों से संकल्प पूर्वक चित्रगुप्त का पूजन करना चाहिए। इस प्रकार सौदास राजा भक्तिभाव से पूजन कर अपने राज्य का शासन करता हुआ कुछ ही समय में मृत्यु को प्राप्त हुआ। हे भारत, यमदूत राजा को उसी क्षण भयानक यमलोक में ले गये। चित्रगुप्त से यमराज ने पूछा— ॥ ६०-६२ ॥

धर्मराजोवाच-

सौदासोऽयं दुराचारः पापकर्मरतः सदा। अनेन स्वप्रजाभ्यश्च पापं कारितवांस्तथा॥ ६३॥
पृष्टोऽसौ धर्मराजेन धर्माऽधर्म-विशारदः। धर्मराजं तदा प्राह चित्रगुप्तो महामतिः॥ ६४॥
विपाकं कर्मजं ज्ञात्वा तं प्रहस्य शुभं वचः। पापकर्ममयं राजा ख्याता यद्यपि भूतले॥ ६५॥
भवान् जानात्विदं देव राजा पापोऽस्ति मे मतिः। पूजां चकार राजाऽसौ भक्तिभावेन मामकीम्॥ ६६॥
अतस्तुष्टोऽस्मि हे देव! यातु विष्णुपदं नृपः। यमेनाऽज्ञापितो राजा वैष्णवं पदमाविशत्॥ ६७॥

धर्मराज बोले—यह दुराचारी पापकर्म में रत राजा सौदास है। इसने अपनी प्रजा से अनेक पापकर्म करवाया है। इस प्रकार धर्मराज के पूछने पर धर्माऽधर्म को जानने वाले महामति चित्रगुप्तजी उस राजा के कर्म से उत्पन्न फल को जान कर हँसते हुए शुभ वचन बोले! यद्यपि यह राजा पापकर्म हेतु पृथ्वी पर प्रसिद्ध है। **हे देव! हम दोनों भली-भाँति जानते हैं कि यह राजा पापी है, परन्तु इसने भक्तिभाव से मेरी पूजा की है। मैं इस पर प्रसन्न हूँ, इसलिये हे देव! यह राजा विष्णुलोक (वैकुण्ठ) को प्राप्त करे। यम (धर्माधिकारी चित्रगुप्त) की आज्ञा से राजा विष्णुलोक (वैकुण्ठ) को चला गया**॥ ६३-६७॥

पुलस्त्य उवाच-

ये चान्ये पूजयिष्यन्ति चित्रगुप्तं महीतले। कायस्थाः वाऽघनिर्मुक्ताः यास्यन्ति परमां गतिम्॥ ६८॥
तस्मात्त्वमपि गाङ्गेय! पूजां कुरु विधानतः। राजेन्द्र दुर्लभं लोकं कृत्वा पूजामवाप्स्यसि॥ ६९॥
मुनेर्वचनमाकर्ण्य भीष्मः प्रहृत-मानसः। चकार पूजनं तत्र चित्रगुप्तस्य भक्तितः॥ ७०॥

पुलस्त्य बोले—जो भी व्यक्ति धरती पर भगवान् चित्रगुप्त की पूजा करेंगे, कायस्थ हों या अन्य पाप मुक्त होकर परमधाम (वैकुण्ठलोक) को प्राप्त करेंगे। हे गांगेय, तुम भी सर्वविधि से पूजा करो, हे राजेन्द्र! इस पूजा

को करने से तुम दुर्लभ लोक को प्राप्त करोगे। पुलस्त्य के वचन सुनकर भीष्म ने भक्तियुक्त मन से चित्रगुप्तजी की पूजा की। ॥ ६८—७० ॥

पूजामन्त्रः—

शान्तिदः प्रलयं चैव भोगाभोगकृताकृतम्। लेखकानां सदा श्रीदश्चित्रगुप्त नमोऽस्तु ते॥ ७१॥
श्रिया सह समुत्पन्नः समुद्रमथने कृते। चित्रगुप्त! महाबाहो ममायुर्वरदो भव॥ ७२॥

पूजन मन्त्रार्थ यह है—शान्ति-प्रलय, भोग-अभोग और **कृत-अकृत** को देने वाले, लेखकों को सदा लक्ष्मी प्रदान करने वाले चित्रगुप्त आपको नमस्कार है। लक्ष्मी के साथ समुद्र-मंथन के समय उत्पन्न होने वाले, हे चित्रगुप्त! महाबाहो मेरी आयु को बढ़ाने वाला वरदान दें॥ ७१-७२॥

☞ भगवान् चित्रगुप्त ही शान्ति-प्रलय, भोग-अभोग, कृत-अकृत अर्थात् जन्म, पालन तथा संहार करने वाले शास्वत देव हैं।

चित्रगुप्तस्तु सन्तुष्टो भीष्माय प्रददे वरम्। मत्प्रसादान्महाबाहो! मृत्युस्ते न भविष्यति॥ ७३॥
स्मरिष्यसि यदा मृत्युस्तदा मृत्युम्भविष्यति। इति तस्मै वरं दत्वा चित्रगुप्तो दिवं ययौ॥ ७४॥
अनेन विधिना यस्तु चित्रगुप्तस्य पूजनम्। करिष्यति महाप्राज्ञस्तस्य पूजाफलं शृणु॥ ७५॥
इहैव विपुलान् भोगान् भुक्त्वा चैव मनोहरान्। अव्ययं वैष्णवं लोकं नरो याति न संशयः॥ ७६॥

इस प्रकार पूजन करने से प्रसन्न होकर **चित्रगुप्त ने भीष्म को वर दिया—मेरी कृपा से तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी। जिस समय तुम मृत्यु का स्मरण करोगे उसी समय तुम्हारी मृत्यु होगी।** यह वर देकर चित्रगुप्त स्वर्ग को चले गये। जो बुद्धिमान् पुरुष इस विधि से चित्रगुप्त की पूजा करेंगे उनका फल सुनो। वे इस लोक में अनेक प्रकार के बड़े-बड़े सुख भोगकर अविनाशी विष्णुलोक को जायेंगे इसमें कोई संशय नहीं है॥ ७३—७५॥

चित्रगुप्तकथां दिव्यां कायस्थोत्पत्तिकारणम्। भक्तियुक्तेन मनसा ये शृण्वन्ति नरोत्तमाः॥ ७७॥
दीर्घायुषो भविष्यन्ति सर्वव्याधि-विवर्जिताः। मृते विष्णुपदं यान्ति यत्र यान्ति तपोधनाः॥ ७८॥

चित्रगुप्त-कथा, दिव्य कायस्थों की उत्पत्ति का कारण, जो श्रेष्ठ मनुष्य भक्तियुक्त मन लगाकर सुनेंगे। वे समस्त व्याधियों से छूटकर दीर्घायु होंगे और मृत्योपरान्त जहाँ तपस्वी लोग जाते हैं, ऐसे विष्णुलोक को जायेंगे॥ ७७-७८॥

× × ×

संदर्भ—पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, चित्रगुप्त-कथा।

सन् १९४० के लगभग ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी से रामदास गौड द्वारा लिखित **'हिन्दुत्व'** नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ था। इसके पृष्ठ संख्या २०८ पर लिखा है कि बाजार में मिलने वाली **चित्रगुप्त-कथा** एवं **कायस्थउत्पत्ति** जो कि छोटी-छोटी पोथी के रूप मिलती है, वह पद्मपुराण का अंश है, जिसे बाद में मुद्रित करने वाले प्रेस ने पद्मपुराण से हटा दिया है। ये सत्य है क्योंकि **पद्मपुराण का सृष्टिखण्ड पुलस्त्य-भीष्म संवाद है।** इसमें पुलस्त्य ऋषि ने भीष्म को विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र, चित्रगुप्त तथा ऋषि एवं उनसे उत्पन्न ऋषि, देव एवं दानवों के उद्भव को बताया गया था। पद्मपुराण से **चित्रगुप्त-कथा** को हटा कर **यम-द्वितीया व्रतकथा** में झूठा अंश डाल कर यमराज का मुन्शी प्रस्तुत किया और **कायस्थउत्पत्ति** को हटा कर झूठा अंश डाल कर **ब्राह्मणउत्पत्तिमार्तण्ड** में अब्राह्मण कहा। इसका प्रमाण द्वितीय खण्ड में दिया गया है।

भीष्म के इच्छामृत्यु पर कुछ जिज्ञासायें

☞ **मार्कण्डेय ऋषि अल्पायु थे, उन्होंने ब्रह्माजी की कृपा से पूर्णायु को प्राप्त किया।**

☞ **सत्यवान् मृत्यु को प्राप्त हो चुके थे, इन्हें जीवित करके यमराज ने पूर्णायु प्रदान किया।**

☞ **भीष्म ने भगवान् चित्रगुप्त की उपासना करके इच्छा मृत्यु का वरदान प्राप्त किया।**

☞ उपर्युक्त तीनों वरदानों में सबसे बड़ा वरदान '**भगवान् चित्रगुप्त**' द्वारा ही दिया गया है।

☞ कुछ ग्रन्थों में शान्तनु द्वारा भीष्म को इच्छामृत्यु का वरदान देने का वर्णन दिया गया है। इन ग्रन्थों में शान्तनु के दिवंगत होने का वर्णन भी विद्यमान है। **यहाँ विचारणीय विषय यह है कि जो स्वयं अजर-अमर न हो, क्या वह किसी को इच्छामृत्यु का वरदान देने में सक्षम हो सकता है?** पुराणों के अनुसार **विष्णु, ब्रह्मा, शिव, चित्रगुप्त तथा यमराज** को आयु देने का अधिकार प्राप्त है।

आइये **दान, वरदान तथा आशीर्वाद** का भावार्थ समझें—

दान—जो आपके पास उपलब्ध हो, उसमें से अपनी इच्छा से जो कुछ दूसरों को दिया जाय, **वह दान कहलाता है।**

जैसे—आपके पास भौतिक वस्तु अथवा दैविक शक्ति विद्यमान हो, उसमें से आपने अपनी इच्छा से **अपने पास उपलब्ध** भौतिक वस्तु अथवा दैविक शक्ति दूसरों को दिया जाय **यह दान हुआ।**

वरदान—जो आपके पास उपलब्ध हो, उसमें से दूसरे की इच्छा से दिया जाय **वह वरदान कहलाता है।**

जैसे—आपके पास भौतिक वस्तु अथवा दैविक शक्ति हो, किसी ने आपको प्रसन्न करके भौतिक वस्तु अथवा दैविक शक्ति मांगा और आपने **अपने पास उपलब्ध** भौतिक वस्तु अथवा दैविक शक्ति दे दिया। **यह वरदान हुआ।** यह दान सर्वोत्तम दान है।

आशीर्वाद—जो आपके पास उपलब्ध न भी हो, उसे प्राप्त करने की शुभकामना देना, **आशीर्वाद कहलाता है।**

जैसे—आपके पास कुछ भी नहीं है, फिर भी आपने किसी पर प्रसन्न होकर कहा कि तुम १०० वर्ष तक जीयो और करोड़ों की सम्पत्ति अर्जित करो। **यह आशीर्वाद हुआ।**

अगर आप **दान अथवा वरदान** देना चाहते हैं तो वह **भौतिक वस्तु अथवा दैविक शक्ति** आपके पास होना आवश्यक है। **इसके अभाव में आप दान-वरदान कुछ भी नहीं दे सकते हैं।**

भगवान् चित्रगुप्त अजर-अमर देवता हैं तथा यह यमलोक में रहकर प्रत्येक जीवों की 'जीवन मृत्यु' का निर्धारित करते हैं। इनका भीष्म को इच्छामृत्यु का वरदान देना तो सत्य लगता है क्योंकि आयु का वरदान देना इनके अधिकार क्षेत्र में है। इसका वर्णन आप इस ग्रन्थ के पिछले अध्यायों में पढ़ चुके हैं।

शान्तनु स्वर्गलोक के देवता नहीं थे। **वह मनुष्य थे तथा मृत्यु को प्राप्त हुये।** उनका भीष्म को इच्छामृत्यु का वरदान देना सत्य नहीं लगता है क्योंकि वह न तो आयुदाता देवता थे और न तो आयु का वरदान देना इनके अधिकार क्षेत्र में था। **जो मृत्यु को प्राप्त हुआ है, वह दीर्घायु होने का आशीर्वाद तो दे सकता है। परन्तु इच्छामृत्यु का वरदान नहीं दे सकता है।**

सत्यता क्या है यह परम् पूज्य देवता ही जानें। मुझे भगवान् चित्रगुप्त से सम्बन्धित व्याख्यान जहाँ-जहाँ से मिल सका है। मैने उसे संकलित करके आपके समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

पाठक बन्धु इस गूढ़ रहस्य के व्याख्यान पर आप अपने विवेक से निर्णय लें कि सत्यता क्या हो सकती है?

× × ×

यम द्वितीया का पूजन कलम-दावात का पूजन नहीं है

पद्मपुराण के चित्रगुप्त कथा में कुछ अंश जोड़कर चित्रगुप्त यम द्वितीया व्रत-कथा बना दिया गया है ताकि लोग दिग्भ्रमित होकर महाकाल चित्रगुप्त को यमराज का मुँशी समझें। यमराज ने अपनी बहन यमुना के घर भोजन किया, इससे ब्रह्मकायस्थों को क्या लेना-देना है। जो भगवान् चित्रगुप्त के उद्भव का दिन है वही चित्रगुप्त पूजा अर्थात् कलम-दावात के पूजन का दिन है। यह दिवस चित्रगुप्त एवं कलम-दावात के पूजन का दिन नहीं है—

कार्तिके शुक्लपक्षस्य द्वितीयायां च भारत। यमुनाया गृहं यस्मात् यमेन भोजनं कृतम्॥ ७७॥
अतो यमद्वितीयेति लोके संज्ञा जगाम ह। वरं दत्तं भगिन्या तु भ्रात्रे चाऽऽयुर्विवर्द्धनम्॥ ७८॥
अतो भगिनीहस्तेन तिथावस्यां च भोजनम्। धनं यशश्चैवायुष्यं वर्द्धते काम-साधनम्॥ ७९॥

(चित्रगुप्त यम-द्वितीया व्रतकथा)

कार्तिक शुक्लपक्ष द्वितीया को अपने बहिन यमुना के घर यमराज ने भोजन किया था। इस कारण लोक में इसका 'यम-द्वितीया' (भैयादूज) नाम हुआ और यमुनादेवी ने यमराज को आयुष्य बढ़ानेवाला वर दिया। इस कारण इस तिथि में बहिन के हाथ का भोजन करने से धन, यश, आयुष्य आदि बढ़ते हैं॥ ७८—७९॥

☞ वास्तव में 'यम-द्वितीया' यमराज की आराधना का दिन है।

× × ×

चित्रमास (चैत्रमास) तथा चित्रनक्षत्र (चित्रानक्षत्र) भगवान् चित्रगुप्त के नाम पर ही है

हिन्दी वर्ष का प्रारम्भ चित्रमास (चैत्रमास) से होता है यह मास भगवान् चित्रगुप्त के नाम पर रखा गया है, इसी चित्रमास में पूर्णिमा के दिन, चित्रनक्षत्र (चित्रानक्षत्र) में उज्जैन नगरी के पंचकोशी क्षेत्र में भगवान् चित्रगुप्त की उत्पत्ति ब्रह्मा के काया से हुई थी। इसी कारण यह मास भगवान् चित्रगुप्त के नाम पर चित्रमास कहलाता है। ब्रह्मा ने चित्रगुप्त को उत्पन्न करके यमलोक का धर्माधिकारी बना दिया, साथ ही यह आदेश दिया कि आप यमलोक में रहकर प्रत्येक प्राणियों के धर्म तथा अधर्म का अवलोकन कर उसी अनुसार दण्डकी व्यवस्था करें, **यह मेरा कार्य है।** ब्रह्मा के आज्ञा से भगवान् चित्रगुप्त यमलोक में रहकर प्रत्येक प्राणियों के धर्म तथा अधर्म को देखकर न्याय करते आ रहे हैं। **मृत्युलोक के नियन्ता भगवान् चित्रगुप्त ही हैं इसीलिए इस चित्रमास को हिन्दी वर्ष के १२ मासों (चित्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्र, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ तथा फाल्गुन) में प्रथम स्थान प्राप्त है।**

इसी प्रकार २७ नक्षत्रों में से १४ वाँ नक्षत्र चित्रनक्षत्र (Chitra Nakshatra) भी भगवान् चित्रगुप्त के नाम पर ही रखा गया है। इस नक्षत्र को तुला राशि में समाहित किया गया है, क्योंकि भगवान् चित्रगुप्त के ही तरह तुला राशि भी न्याय एवं संतुलित विचारधारा का प्रतीक है।

प्रत्येक वर्ष चित्रमास की पूर्णिमा को चित्रनक्षत्र अवश्य ही आता है। यह भगवान् चित्रगुप्त के जन्म लेने का पौराणिक प्रमाण है। वास्तव में चित्रमास की पूर्णिमा 'चित्रगुप्त पूर्णिमा' है।

दक्षिण भारत में, काञ्चीपुरम् नगरी में, आदिशंकराचार्य के मठ के निकट भगवान् चित्रगुप्त का ९ वीं शताब्दी का मन्दिर स्थापित है। **यहाँ चित्रमास में पूर्णिमा के दिन जब चित्रनक्षत्र आता है तो भगवान् चित्रगुप्त का जन्मदिन बड़े ही धूमधाम से मनाया जाता है। यह त्यौहार तमिलनाडु के प्रमुख त्यौहारों में से एक है, इस दिन से लेकर एक मास (वैशाख पूर्णिमा) तक यह त्यौहार मनाया जाता है। इसे तमिलनाडु में 'चितरई' मास कहा जाता है।**

× × ×

चित्रगुप्त वंशीय ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मण–माता काली के प्रतिरूप हैं

चित्रगुप्त–कथा के श्लोक सं० ३०–३३ में भगवान् चित्रगुप्त ने अपने पुत्रों को निर्देश दिया कि तुम सभी **महिष–मर्दिनी** एवं **चण्ड–मुण्ड का वध करने वाली दुर्गा तथा काली** की पूजा अवश्य करना। **भगवान् चित्रगुप्त के आदेश के कारण चित्रगुप्तवंशीय ब्रह्मकायस्थों को दुर्गा एवं काली की पूजा अवश्य करनी चाहिये। चित्रगुप्तवंशीय ब्रह्मकायस्थ 'काली' के पर्याय हैं।**

काली के 'सहस्त्रनामावली' में लिखा है कि—

ॐ क्रीं काल्यै नमः।

अर्थात—हे काली आपको नमस्कार है।

ॐ कपालमाल्यधारिण्यै नमः।

अर्थात—हे नरमुण्ड की माला धारण करने वाली आपको नमस्कार है।

ॐ कालिकायै नमः।

अर्थात—हे कालिके आपको नमस्कार है।

ॐ कालकालिकायै नमः।

अर्थात—हे काल रूपी कालिके आपको नमस्कार है।

ॐ कौलमार्गगायै नमः।

अर्थात—हे कौलमार्ग वाली आपको नमस्कार है।

उपर्युक्त कालीजी के मंत्रों के साथ ही चित्रगुप्तवंशीय कायस्थों के नाम भी दिये गये हैं। यथा—

ॐ कायस्थायै नमः। अर्थात—हे कायस्थ आपको नमस्कार है।

ॐ कुलश्रेष्ठायै नमः। अर्थात—हे कुलश्रेष्ठ आपको नमस्कार है।

ॐ कुलअस्थानायै नमः। अर्थात हे कुलअस्थाना आपको नमस्कार है।

इस लोक में चित्रगुप्तवंशीय कायस्थ कालीजी के प्रतिरूप माने गये हैं। पूर्वकाल से ही सभी कायस्थ **शैव** हैं। वे सभी धार्मिक तथा **देवी–देवता** के उपासक थे। जैसे—

वेद के उपासक होने के कारण भगवान् चित्रगुप्त के एक पुत्र **'नैगम' (निगम)** कहलाये।

श्रीविद्या (षोडषी) के उपासक होने के कारण भगवान् चित्रगुप्त के एक पुत्र **'श्रीवास्तव'** कहलाये।

माता अम्बा के उपासक होने के कारण भगवान् चित्रगुप्त के एक पुत्र **'अम्बष्ट'** कहलाये।

काली के उपासक होने के कारण भगवान् चित्रगुप्त के एक पुत्र **'कुलश्रेष्ठ'** कहलाये।

काली के उपासक होने के कारण भगवान् चित्रगुप्त के एक पुत्र **'अस्थाना'** कहलाये।

सूर्य के उपासक होने के कारण भगवान् चित्रगुप्त के एक पुत्र **'सूर्यध्वज'** कहलाये।

सन्त शिरोमणि 'स्वामी विवेकानन्द' भी 'माता काली' के ही उपासक थे।

कायस्थों को किसी भी देव एवं देवी की उपासना का फल शीघ्र मिलता है। इसलिये प्रत्येक कायस्थ

को देवी की उपासना अवश्य करना चाहिये। **कायस्थ माता काली का मंत्र एवं सहस्त्रनामावली इस ग्रन्थ में प्रकाशित की जा रही है।** कायस्थ बन्धु **माता काली के** सहस्त्रनामावली को पढ़कर आप अपना जीवन सुखमय बना सकते हैं

काली के पूजन का विस्तृत विधान **'मंत्रमहोदधि'** तथा **'मंत्रमहार्णव'** में देखें।

काली एवं दुर्गा के उपासकों को काली के प्रतिरूप कायस्थों का सम्मान सदैव करना चाहिये। ऐसा करने से देवी की साधना स्वतः सरल हो जायेगी।

यहाँ पर **ककरादिकालीसहस्त्रनामावली** दी जा रही है—

ककरादिकालीसहस्त्रनामावली

साधक आचमन एवं प्राणायाम करके अपने दाहिने हाथ में जल, अक्षत, पुष्प और द्रव्य लेकर निम्न संकल्प करे—

संकल्प—देशकालौ सङ्कीर्त्य-अमुकगोत्रः अमुकशर्माऽहं (वर्माऽहं, गुप्तोऽहं, दासोऽहं) सकुटुम्बस्य सकल-पापक्षय-निवृत्तिपूर्वक-दीर्घायुः पुत्र-पौत्राद्यनवच्छिन्न-सन्ततिवृद्धि-स्थिरलक्ष्म्यैहिका-ऽऽमुष्मिक-समस्तकामनासिद्धिद्वारा धर्माऽर्थ-काम-मोक्ष-चतुर्विध-पुरुषार्थफलावाप्तये श्रीदक्षिणकालीदेवताप्रीत्यर्थं तद्दिव्य-सहस्रनामावलीभिः पुष्पादिसमर्पणं करिष्ये।

विनियोगः-ॐ अस्य श्रीदक्षिणकालिकामन्त्रस्य महाकाल ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीदक्षिणमाकाली देवता, ह्रीं बीजं, हूं शक्तिः, क्रीं कीलकम्, श्रीदक्षिणकालिकादेवताप्रसादसिद्ध्यर्थं चतुर्वर्गफलप्राप्तये वा तद्दिव्यसहस्रनामभिः पुष्पादिद्रव्यसमर्पणे विनियोगः।

करन्यासः-ॐ क्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ क्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ क्रूं मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ क्रैं अनामिकाभ्यां हुम्। ॐ क्रौं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्। ॐ क्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।

अङ्गन्यासः-ॐ क्रां हृदयाय नमः। ॐ क्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ क्रूं शिखायै वषट्। ॐ क्रौं नेत्रत्राय वौषट्। ॐ क्रः अस्त्राय फट्।

ध्यानम्-

शवारूढां महाभीमां घोरदंष्ट्रां हसन्मुखीम्। चतुर्भुजां खड्ग-मुण्डवराभयकरां शिवाम्॥ १॥
मुण्डमालाधरा देवीं ललज्जिह्वां दिगम्बराम्। एवं संचिन्तयेत् कालीं श्मशानालयवासिनीम्॥ २॥

क्रमशः ....

१. ॐ क्रीं काल्यै नमः
२. ॐ क्रूं कराल्यै नमः
३. ॐ कल्याण्यै नमः
४. ॐ कमलायै नमः
५. ॐ कलायै नमः
६. ॐ कलावत्यै नमः
७. ॐ कलाढ्यायै नमः
८. ॐ कलापूज्यायै नमः
९. ॐ कलात्मिकायै नमः
१०. ॐ कलाहृष्टायै नमः
११. ॐ कलापुष्टायै नमः
१२. ॐ कलामस्तायै नमः
१३. ॐ कलाकरायै नमः
१४. ॐ कलाकोटिसमाभासायै नमः
१५. ॐ कलाकोटिप्रपूजितायै नमः
१६. ॐ कलाकर्मकलाधारायै नमः
१७. ॐ कलापारायै नमः
१८. ॐ कलागमायै नमः
१९. ॐ कलाधारायै नमः
२०. ॐ कमलिन्यै नमः
२१. ॐ ककरायै नमः
२२. ॐ करुणायै नमः
२३. ॐ काव्यै नमः
२४. ॐ ककारवर्णसर्वाङ्ग्यै नमः
२५. ॐ ककारकोटिप्रभूषितायै नमः
२६. ॐ ककारकोटिगुणितायै नमः
२७. ॐ ककारकोटिभूषणायै नमः
२८. ॐ ककारवर्णहृदयायै नमः
२९. ॐ ककारमनुमण्डितायै नमः
३०. ॐ ककारवर्णनलयायै नमः
३१. ॐ काकशब्दपरायणायै नमः
३२. ॐ ककारवर्णमुकुटायै नमः
३३. ॐ ककारवर्णभूषणायै नमः
३४. ॐ ककारवर्णरूपायै नमः
३५. ॐ ककशब्दपरायणायै नमः
३६. ॐ ककवीरास्फालरतायै नमः
३७. ॐ कमलाकरपूजितायै नमः
३८. ॐ कमलाकरनाथायै नमः
३९. ॐ कमलाकररूपधृषे नमः
४०. ॐ कमलाकरसिद्धिस्थायै नमः
४१. ॐ कमलाकरपारदायै नमः
४२. ॐ कमलाकरमध्यस्थायै नमः
४३. ॐ कमलाकरतोषितायै नमः
४४. ॐ कथङ्कारपरालापायै नमः
४५. ॐ कथङ्कारपरायणायै नमः
४६. ॐ कथङ्कारपदान्तस्थायै नमः
४७. ॐ कथङ्कारपदार्थभुवे नमः
४८. ॐ कमलाक्ष्यै नमः
४९. ॐ कमलजायै नमः
५०. ॐ कमलाक्षप्रपूजितायै नमः
५१. ॐ कमलाक्षवरोद्युक्तायै नमः
५२. ॐ ककरायै नमः
५३. ॐ कर्बुराक्षरायै नमः
५४. ॐ करतारायै नमः
५५. ॐ करच्छिन्नायै नमः
५६. ॐ करश्यामायै नमः
५७. ॐ करार्णवायै नमः
५८. ॐ करपूज्यायै नमः
५९. ॐ कररतायै नमः
६०. ॐ करपूदायै नमः
६१. ॐ करजितायै नमः
६२. ॐ करतोयायै नमः
६३. ॐ करामर्षायै नमः
६४. ॐ कर्मनाशायै नमः
६५. ॐ करप्रियायै नमः
६६. ॐ करप्राणायै नमः
६७. ॐ करकजायै नमः
६८. ॐ करकायै नमः
६९. ॐ करकान्तरायै नमः
७०. ॐ करकाचलरूपायै नमः
७१. ॐ करकाचलशोभिन्यै नमः
७२. ॐ करकाचलपुत्र्यै नमः
७३. ॐ करकाचलतोषितायै नमः
७४. ॐ करकाचलगेहस्थायै नमः
७५. ॐ करकाचलरक्षिण्यै नमः
७६. ॐ करकाचलसम्मान्यायै नमः
७७. ॐ करकाचलकारिण्यै नमः
७८. ॐ करकाचलवर्षाढ्यायै नमः
७९. ॐ करकाचलरञ्जितायै नमः
८०. ॐ करकाचलकान्तारायै नमः
८१. ॐ करकाचलमालिन्यै नमः
८२. ॐ करकाचलभोज्यायै नमः
८३. ॐ करकाचलरूपिण्यै नमः
८४. ॐ करामलकसंस्थायै नमः
८५. ॐ करामलकसिद्धिदायै नमः
८६. ॐ करामलकसम्पूज्यायै नमः
८७. ॐ करामलकतारिण्यै नमः
८८. ॐ करामलककाल्यै नमः
८९. ॐ करामलकरोचिन्यै नमः
९०. ॐ करामलकमात्रे नमः
९१. ॐ करामलकसेविन्यै नमः
९२. ॐ करामलकवद्ध्येयायै नमः
९३. ॐ करामलकदायिन्यै नमः
९४. ॐ कञ्जनेत्रायै नमः
९५. ॐ कञ्जगत्यै नमः
९६. ॐ कञ्जस्थायै नमः
९७. ॐ कञ्जधारिण्यै नमः
९८. ॐ कञ्जमालाप्रियकर्यै नमः
९९. ॐ कञ्जरूपायै नमः
१००. ॐ कञ्जजायै नमः
१०१. ॐ कञ्जजात्यै नमः
१०२. ॐ कञ्जगत्यै नमः
१०३. ॐ कञ्जहोमपरायणायै नमः
१०४. ॐ कञ्जमण्डलमध्यस्थायै नमः
१०५. ॐ कञ्जाभरणभूषितायै नमः
१०६. ॐ कञ्जसम्माननिरतायै नमः
१०७. ॐ कञ्जोत्पत्तिपरायणायै नमः
१०८. ॐ कञ्जराशिसमाकारायै नमः
१०९. ॐ कञ्जारण्यनिवासिन्यै नमः
११०. ॐ करञ्जवृक्षमध्यस्थायै नमः
१११. ॐ करञ्जवृक्षवासिन्यै नमः
११२. ॐ करञ्जफलभूषाढ्यायै नमः
११३. ॐ करञ्जारण्यवासिन्यै नमः
११४. ॐ करञ्जमालाभरणायै नमः

११५. ॐ करवालपरायणायै नमः
११६. ॐ करवालप्रहृष्टात्मने नमः
११७. ॐ करवालप्रियागत्यै नमः
११८. ॐ करवालप्रियाकन्थायै नमः
११९. ॐ करवालविहारिण्यै नमः
१२०. ॐ करवालमर्य्यै नमः
१२१. ॐ कर्मायै नमः
१२२. ॐ करवालप्रियङ्कर्यै नमः
१२३. ॐ कबन्धमालाभरणायै नमः
१२४. ॐ कबन्धराशिमध्यगायै नमः
१२५. ॐ कबन्धकूटसंस्थानायै नमः
१२६. ॐ कबन्धानन्तभूषणायै नमः
१२७. ॐ कबन्धनादसन्तुष्टायै नमः
१२८. ॐ कबन्धासनधारिण्यै नमः
१२९. ॐ कबन्धगृहमध्यस्थायै नमः
१३०. ॐ कबन्धवनवासिन्यै नमः
१३१. ॐ कबन्धकाञ्च्यै नमः
१३२. ॐ करण्यै नमः
१३३. ॐ कबन्धराशिभूषणायै नमः
१३४. ॐ कबन्धमालाजयदायै नमः
१३५. ॐ कबन्धदेहवासिन्यै नमः
१३६. ॐ कबन्धासनमान्यायै नमः
१३७. ॐ कपालमाल्यधारिण्यै नमः
१३८. ॐ कपालमालामध्यस्थायै नमः
१३९. ॐ कपालव्रततोषितायै नमः
१४०. ॐ कपालदीपसन्तुष्टायै नमः
१४१. ॐ कपालदीपरूपिण्यै नमः
१४२. ॐ कपालदीपवरदायै नमः
१४३. ॐ कपालकज्जलस्थितायै नमः
१४४. ॐ कपालमालाजयदायै नमः
१४५. ॐ कपालजलतोषिण्यै नमः
१४६. ॐ कपालसिद्धिसंहृष्टायै नमः
१४७. ॐ कपालभोजनोद्यतायै नमः
१४८. ॐ कपालव्रतसंस्थानायै नमः
१४९. ॐ कपालकमलालयायै नमः
१५०. ॐ कवित्वामृतसारायै नमः
१५१. ॐ कवित्वामृतसागरायै नमः
१५२. ॐ कवित्वसिद्धिसंहृष्टायै नमः
१५३. ॐ कवित्वादानकारिण्यै नमः
१५४. ॐ कविपूज्यायै नमः
१५५. ॐ कविगत्यै नमः
१५६. ॐ कविरूपायै नमः
१५७. ॐ कविप्रियायै नमः
१५८. ॐ कविब्रह्मानन्दरूपायै नमः
१५९. ॐ कवित्वव्रततोषितायै नमः
१६०. ॐ कवित्वमानससंस्थायै नमः
१६१. ॐ कविवाञ्छाप्रपूरिण्यै नमः
१६२. ॐ कविकण्ठस्थितायै नमः
१६३. ॐ कंह्रींकंकंकविपूर्तिदायै नमः
१६४. ॐ कज्जलायै नमः
१६५. ॐ कज्जलादानमानसायै नमः
१६६. ॐ कज्जलप्रियायै नमः
१६७. ॐ कपालकज्जलसमायै नमः
१६८. ॐ कज्जलेशप्रपूजितायै नमः
१६९. ॐ कज्जलार्णवमध्यस्थायै नमः
१७०. ॐ कज्जलानन्दरूपिण्यै नमः
१७१. ॐ कज्जलप्रियसन्तुष्टायै नमः
१७२. ॐ कज्जलप्रियतोषिण्यै नमः
१७३. ॐ कपालमालाभरणायै नमः
१७४. ॐ कपालकरभूषणायै नमः
१७५. ॐ कपालकरभूषाढ्यायै नमः
१७६. ॐ कपालचक्रमण्डितायै नमः
१७७. ॐ कपालकोटिनिलययै नमः
१७८. ॐ कपालदुर्गकारिण्यै नमः
१७९. ॐ कपालगिरिसंस्थानायै नमः
१८०. ॐ कपालचक्रवासिन्यै नमः
१८१. ॐ कपालपात्रसन्तुष्टायै नमः
१८२. ॐ कपालार्घ्यपरायणायै नमः
१८३. ॐ कपालार्घ्यप्रियप्राणायै नमः
१८४. ॐ कपालार्घ्यवरप्रदायै नमः
१८५. ॐ कपालचक्ररूपायै नमः
१८६. ॐ कपालरूपमात्रगायै नमः
१८७. ॐ कदल्यै नमः
१८८. ॐ कदलीरूपायै नमः
१८९. ॐ कदलीवनवासिन्यै नमः
१९०. ॐ कदलीपुष्पसंप्रीतायै नमः
१९१. ॐ कदलीफलमानसायै नमः
१९२. ॐ कदलीहोमसन्तुष्टायै नमः
१९३. ॐ कदलीदर्शनोद्यतायै नमः
१९४. ॐ कदलीगर्भमध्यस्थायै नमः
१९५. ॐ कदलीवनसुन्दर्य्यै नमः
१९६. ॐ कदम्बपुष्पनिलयायै नमः
१९७. ॐ कदम्बवनमध्यगायै नमः
१९८. ॐ कदम्बकुसुमामोदायै नमः
१९९. ॐ कदम्बवनतोषिण्यै नमः
२००. ॐ कदम्बपुष्पसम्पूज्यायै नमः
२०१. ॐ कदम्बपुष्पहोमदायै नमः
२०२. ॐ कदम्बपुष्पमध्यस्थायै नमः
२०३. ॐ कदम्बफलभोजिन्यै नमः
२०४. ॐ कदम्बकाननान्तस्थायै नमः
२०५. ॐ कदम्बाचलवासिन्यै नमः
२०६. ॐ कक्षपायै नमः
२०७. ॐ कक्षपाराध्यायै नमः
२०८. ॐ कच्छपासन संस्थितायै नमः
२०९. ॐ कर्णपूरायै नमः
२१०. ॐ कर्णनासायै नमः
२११. ॐ कर्णाढ्यायै नमः
२१२. ॐ कालभैरव्यै नमः
२१३. ॐ कलहप्रीतायै नमः
२१४. ॐ कलहदायै नमः
२१५. ॐ कलहायै नमः
२१६. ॐ कलहातुरायै नमः
२१७. ॐ कर्णयक्ष्यै नमः
२१८. ॐ कर्णवार्त्तायै नमः
२१९. ॐ कथिन्यै नमः
२२०. ॐ कर्णसुन्दर्यै नमः
२२१. ॐ कर्णपिशाचिन्यै नमः
२२२. ॐ कर्णमञ्जर्यै नमः
२२३. ॐ कपिकक्षदायै नमः
२२४. ॐ कविकक्षविरूपाढ्यायै नमः
२२५. ॐ कविकक्षस्वरूपिण्यै नमः
२२६. ॐ कस्तूरीमृगसंस्थानायै नमः
२२७. ॐ कस्तूरीमृगरूपिण्यै नमः
२२८. ॐ कस्तूरीमृगसन्तोषायै नमः

२२९. ॐ कस्तूरीमृगमध्यगायै नमः
२३०. ॐ कस्तूरीरसनीलाङ्ग्यै नमः
२३१. ॐ कस्तूरीगन्धतोषितायै नमः
२३२. ॐ कस्तूरीपूजकप्राणायै नमः
२३३. ॐ कस्तूरीपूजकप्रियायै नमः
२३४. ॐ कस्तूरीप्रेमसन्तुष्टायै नमः
२३५. ॐ कस्तूरीप्राणधारिण्यै नमः
२३६. ॐ कस्तूरीपूजकानन्दायै नमः
२३७. ॐ कस्तूरीगन्धरूपिण्यै नमः
२३८. ॐ कस्तूरीमालिकारूपायै नमः
२३९. ॐ कस्तूरीभोजनप्रियायै नमः
२४०. ॐ कस्तूरीतिलकानन्दायै नमः
२४१. ॐ कस्तूरीतिलकप्रियायै नमः
२४२. ॐ कस्तूरीहोमसन्तुष्टायै नमः
२४३. ॐ कस्तूरीतर्पणोद्यतायै नमः
२४४. ॐ कस्तूरीमार्जनोद्युक्तायै नमः
२४५. ॐ कस्तूरीचक्रपूजितायै नमः
२४६. ॐ कस्तूरीपुष्पसम्पूज्यायै नमः
२४७. ॐ कस्तूरीचर्वणोद्यतायै नमः
२४८. ॐ कस्तूरीगर्भमध्यस्थायै नमः
२४९. ॐ कस्तूरीवस्त्रधारिण्यै नमः
२५०. ॐ कस्तूरिकामोदरतायै नमः
२५१. ॐ कस्तूरीवनवासिन्यै नमः
२५२. ॐ कस्तूरीवनसंरक्षायै नमः
२५३. ॐ कस्तूरीप्रेमधारिण्यै नमः
२५४. ॐ कस्तूरीशक्तिनिलयायै नमः
२५५. ॐ कस्तूरीशक्तिकुण्डगायै नमः
२५६. ॐ कस्तूरीकुण्डसंस्नातायै नमः
२५७. ॐ कस्तूरीकुण्डमज्जनायै नमः
२५८. ॐ कस्तूरीजीवसन्तुष्टायै नमः
२५९. ॐ कस्तूरीजीवधारिण्यै नमः
२६०. ॐ कस्तूरीपरमामोदायै नमः
२६१. ॐ कस्तूरीजीवनक्षमायै नमः
२६२. ॐ कस्तूरीजातिभावस्थायै नमः
२६३. ॐ कस्तूरीगन्धचुम्बनायै नमः
२६४. ॐ कस्तूरीगन्धसंशोभाविराजित-
कपालभुवे नमः
२६५. ॐ कस्तूरीमदनान्तस्थायै नमः
२६६. ॐ कस्तूरीमदहर्षदायै नमः
२६७. ॐ कस्तूर्यै नमः
२६८. ॐ कवितानाढ्यायै नमः
२६९. ॐ कस्तूरीगृहमध्यगायै नमः
२७०. ॐ कस्तूरीस्पर्शकप्राणायै नमः
२७१. ॐ कस्तूरीविन्दकान्तकायै नमः
२७२. ॐ कस्तूर्यामोदरसिकायै नमः
२७३. ॐ कस्तूरीक्रीडनोद्यतायै नमः
२७४. ॐ कस्तूरीदाननिरतायै नमः
२७५. ॐ कस्तूरीवरदायिन्यै नमः
२७६. ॐ कस्तूरीस्थापनासक्तायै नमः
२७७. ॐ कस्तूरीस्थानरञ्जिन्यै नमः
२७८. ॐ कस्तूरीकुशलप्रश्नायै नमः
२७९. ॐ कस्तूरीस्तुतिवन्दितायै नमः
२८०. ॐ कस्तूरीवन्दकाराध्यायै नमः
२८१. ॐ कस्तूरीस्थानवासिन्यै नमः
२८२. ॐ कहरूपायै नमः
२८३. ॐ कहाढ्यायै नमः
२८४. ॐ कहानन्दायै नमः
२८५. ॐ कहात्मभुवे नमः
२८६. ॐ कहपूज्यायै नमः
२८७. ॐ कहाख्यायै नमः
२८८. ॐ कहहेयायै नमः
२८९. ॐ कहात्मिकायै नमः
२९०. ॐ कहमालायै नमः
२९१. ॐ कण्ठभूषायै नमः
२९२. ॐ कहमन्त्रजपोद्यतायै नमः
२९३. ॐ कहनामस्मृतिपरायै नमः
२९४. ॐ कहनामपरायणायै नमः
२९५. ॐ कहपरायणरतायै नमः
२९६. ॐ कहदेव्यै नमः
२९७. ॐ कहेश्वर्यै नमः
२९८. ॐ कहहेत्वै नमः
२९९. ॐ कहानन्दायै नमः
३००. ॐ कहनादपरायणायै नमः
३०१. ॐ कहमात्रे नमः
३०२. ॐ कहानतस्थायै नमः
३०३. ॐ कहमन्त्रायै नमः
३०४. ॐ कहेश्वरायै नमः
३०५. ॐ कहगेयायै नमः
३०६. ॐ कहाराध्यायै नमः
३०७. ॐ कहध्यानपरायणायै नमः
३०८. ॐ कहतन्त्रायै नमः
३०९. ॐ कहकहायै नमः
३१०. ॐ कहचर्यापरायणायै नमः
३११. ॐ कहचारायै नमः
३१२. ॐ कहगत्यै नमः
३१३. ॐ कहताण्डवकारिण्यै नमः
३१४. ॐ कहारण्यायै नमः
३१५. ॐ कहगत्यै नमः
३१६. ॐ कहशक्तिपरायणायै नमः
३१७. ॐ कहराज्यनतायै नमः
३१८. ॐ कर्मसाक्षिण्यै नमः
३१९. ॐ कर्मसुन्दर्यै नमः
३२०. ॐ कर्मविद्यायै नमः
३२१. ॐ कर्मगत्यै नमः
३२२. ॐ कर्मतन्त्रपरायणायै नमः
३२३. ॐ कर्ममात्रायै नमः
३२४. ॐ कर्मगात्रायै नमः
३२५. ॐ कर्मधर्मपरायणायै नमः
३२६. ॐ कर्मरेखानाशकर्त्र्यै नमः
३२७. ॐ कर्मरेखाविनोदिन्यै नमः
३२८. ॐ कर्मरेखामोहकर्यै नमः
३२९. ॐ कर्मकीर्तिपरायणायै नमः
३३०. ॐ कर्मविद्यायै नमः
३३१. ॐ कर्मसारायै नमः
३३२. ॐ कर्मधारायै नमः
३३३. ॐ कर्मभुवे नमः
३३४. ॐ कर्मकार्य्यै नमः
३३५. ॐ कर्महार्य्यै नमः
३३६. ॐ कर्मकौतुकसुन्दर्य्यै नमः
३३७. ॐ कर्मकाल्यै नमः
३३८. ॐ कर्मतारायै नमः
३३९. ॐ कर्मदिन्नायै नमः
३४०. ॐ कर्मदायै नमः
३४१. ॐ कर्मचाण्डालिन्यै नमः

३४२. ॐ कर्मवेदमात्रे नमः
३४३. ॐ कर्मभुवे नमः
३४४. ॐ कर्मकाण्डरतानन्तायै नमः
३४५. ॐ कर्मकाण्डानुमानितायै नमः
३४६. ॐ कर्मकाण्डपरीणाहायै नमः
३४७. ॐ कमठ्यै नमः
३४८. ॐ कमठाकृत्यै नमः
३४९. ॐ कमठाराध्यहृदयायै नमः
३५०. ॐ कमठायै नमः
३५१. ॐ कण्ठसुन्दर्य्यै नमः
३५२. ॐ कमठासनसंसेव्यायै नमः
३५३. ॐ कमठ्यै नमः
३५४. ॐ कर्मतत्परायै नमः
३५५. ॐ करुणाकरकान्तायै नमः
३५६. ॐ करुणाकरवन्दितायै नमः
३५७. ॐ कठोरायै नमः
३५८. ॐ करमालायै नमः
३५९. ॐ कठोरकुचधारिण्यै नमः
३६०. ॐ कपर्दिन्यै नमः
३६१. ॐ कपटिनयै नमः
३६२. ॐ कठिन्यै नमः
३६३. ॐ कङ्कभूषणायै नमः
३६४. ॐ करभोर्वे नमः
३६५. ॐ कठिनदायै नमः
३६६. ॐ करभायै नमः
३६७. ॐ करमालयायै नमः
३६८. ॐ कलभाषामय्यै नमः
३६९. ॐ कल्पायै नमः
३७०. ॐ कल्पनायै नमः
३७१. ॐ कल्पदायिन्यै नमः
३७२. ॐ कल्पदायिन्यै नमः
३७३. ॐ कमलस्थायै नमः
३७४. ॐ कलामालायै नमः
३७५. ॐ कमलास्यायै नमः
३७६. ॐ क्वणत्प्रभायै नमः
३७७. ॐ ककुद्मन्यै नमः
३७८. ॐ कष्टवत्यै नमः
३७९. ॐ करणीयकथार्चितायै नमः
३८०. ॐ कचार्चितायै नमः
३८१. ॐ कचतन्वै नमः
३८२. ॐ कठोरकुचसंलग्नायै नमः
३८३. ॐ कटिसूत्रविराजितायै नमः
३८४. ॐ कर्णभक्षप्रियायै नमः
३८५. ॐ कन्दायै नमः
३८६. ॐ कथायै नमः
३८७. ॐ कन्दगत्यै नमः
३८८. ॐ कल्यै नमः
३८९. ॐ कलिघ्न्यै नमः
३९०. ॐ कलिदूत्यै नमः
३९१. ॐ कविनायकपूजितायै नमः
३९२. ॐ कणकक्षानियन्त्र्यै नमः
३९३. ॐ कश्चित्कविवरार्चितायै नमः
३९४. ॐ कर्त्र्यै नमः
३९५. ॐ कर्तृकाभूषायै नमः
३९६. ॐ करिण्यै नमः
३९७. ॐ कर्णशत्रुपायै नमः
३९८. ॐ करणेश्यै नमः
३९९. ॐ कर्णपायै नमः
४००. ॐ कलवाचायै नमः
४०१. ॐ कलानिध्यै नमः
४०२. ॐ कलनायै नमः
४०३. ॐ कलनाधारायै नमः
४०४. ॐ कारिकायै नमः
४०५. ॐ करकायै नमः
४०६. ॐ करायै नमः
४०७. ॐ कलगेयायै नमः
४०८. ॐ कर्कराश्यै नमः
४०९. ॐ कर्कराशिप्रपूजितायै नमः
४१०. ॐ कन्याराश्यै नमः
४११. ॐ कन्कायै नमः
४१२. ॐ कनयकाप्रियभाषिण्यै नमः
४१३. ॐ कन्यकादानसन्तुष्टायै नमः
४१४. ॐ कन्यकादानतोषिण्यै नमः
४१५. ॐ कन्यादानकरानन्दायै नमः
४१६. ॐ कन्यादानग्रहेष्टदायै नमः
४१७. ॐ कर्षणायै नमः
४१८. ॐ कक्षदहनायै नमः
४१९. ॐ कामितायै नमः
४२०. ॐ कमलासनायै नमः
४२१. ॐ करमालान्दकर्त्र्यै नमः
४२२. ॐ करमालाप्रतोषितायै नमः
४२३. ॐ करमालाशयानन्दायै नमः
४२४. ॐ करमालासमागमायै नमः
४२५. ॐ करमालासिद्धिदात्र्यै नमः
४२६. ॐ करमालायै नमः
४२७. ॐ करप्रियायै नमः
४२८. ॐ करग्रियाकररतायै नमः
४२९. ॐ करदानपरायणायै नमः
४३०. ॐ कलानन्दायै नमः
४३१. ॐ कलिगत्यै नमः
४३२. ॐ कलिपूज्यायै नमः
४३३. ॐ कलिग्रस्वै नमः
४३४. ॐ कलनादनिनादस्थायै नमः
४३५. ॐ कलनादवरप्रदायै नमः
४३६. ॐ कलनादसमाजस्थायै नमः
४३७. ॐ कहोलायै नमः
४३८. ॐ कहोलदायै नमः
४३९. ॐ कहोलगेहमध्यस्थायै नमः
४४०. ॐ कहोलवरदायिन्यै नमः
४४१. ॐ कहोलकविताधारायै नमः
४४२. ॐ कहोलऋषिमानितायै नमः
४४३. ॐ कहोलमानसाराध्यायै नमः
४४४. ॐ कहोलवाक्यकारिण्यै नमः
४४५. ॐ कर्तृरूपायै नमः
४४६. ॐ कर्तृमय्यै नमः
४४७. ॐ कर्तृमात्रे नमः
४४८. ॐ कर्त्तर्यै नमः
४४९. ॐ कनीयायै नमः
४५०. ॐ कनकाराध्यायै नमः
४५१. ॐ कनीनकमय्यै नमः
४५२. ॐ कनीयानन्दनिलयायै नमः
४५३. ॐ कनकानन्दतोषितायै नमः
४५४. ॐ कनीयककरायै नमः
४५५. ॐ काष्ठायै नमः

४५६. ॐ कथार्णवकर्य्यै नमः
४५७. ॐ कर्य्यै नमः
४५८. ॐ करिगम्यायै नमः
४५९. ॐ करिगत्यै नमः
४६०. ॐ करिध्वजपरायणायै नमः
४६१. ॐ करिनाथप्रियायै नमः
४६२. ॐ कण्ठायै नमः
४६३. ॐ कथानकप्रतोषितायै नमः
४६४. ॐ कमनीयायै नमः
४६५. ॐ कमनकायै नमः
४६६. ॐ कमनीयविभूषणायै नमः
४६७. ॐ कमनीयसमाजस्थायै नमः
४६८. ॐ कमनीयव्रतप्रियायै नमः
४६९. ॐ कमनीयगुणाराध्यायै नमः
४७०. ॐ कपिलायै नमः
४७१. ॐ कपिलेश्वर्य्यै नमः
४७२. ॐ कपिलेश्वर्य्यै नमः
४७३. ॐ कपिलाराध्यहृदयायै नमः
४७४. ॐ कपिलाप्रियवादिन्यै नमः
४७५. ॐ कहचक्रमन्त्रवर्णायै नमः
४७६. ॐ कहचक्रप्रसूनकायै नमः
४७७. ॐ कएईलह्रींस्वरूपायै नमः
४७८. ॐ कएईलह्रींवरप्रदायै नमः
४७९. ॐ कएईलह्रींसिद्धिदात्र्यै नमः
४८०. ॐ कएईलह्रींस्वरूपिण्यै नमः
४८१. ॐ कएईलह्रींमनत्रवर्णायै नमः
४८२. ॐ कएईलह्रींप्रसूकलायै नमः
४८३. ॐ कवर्गायै नमः
४८४. ॐ कपाटस्थायै नमः
४८५. ॐ कपाओद्घाटनक्षमायै नमः
४८६. ॐ कङ्काल्यै नमः
४८७. ॐ कपाल्यै नमः
४८८. ॐ कङ्कालप्रियभाषिण्यै नमः
४८९. ॐ कङ्कालभैरवाराध्यायै नमः
४९०. ॐ कङ्कालमानसस्थितायै नमः
४९१. ॐ कङ्कालमोहनिरतायै नमः
४९२. ॐ कङ्कालमोहनिरतायै नमः
४९३. ॐ कलुषघ्न्यै नमः
४९४. ॐ कलुषहायै नमः
४९५. ॐ कलुषार्त्तिविनाशिन्यै नमः
४९६. ॐ कलिपुष्पायै नमः
४९७. ॐ कलादानायै नमः
४९८. ॐ कशिप्वै नमः
४९९. ॐ कश्यपार्चितायै नमः
५००. ॐ कश्यपायै नमः
५०१. ॐ कश्यपाराध्यायै नमः
५०२. ॐ कलिपूर्णकलेवरायै नमः
५०३. ॐ कलेवरकर्य्यै नमः
५०४. ॐ कांच्यै नमः
५०५. ॐ कवर्गायै नमः
५०६. ॐ करालकायै नमः
५०७. ॐ करालभैरवाराध्यायै नमः
५०८. ॐ करालभैरवेश्वय्यै नमः
५०९. ॐ करालायै नमः
५१०. ॐ कलनाधारायै नमः
५११. ॐ कपर्दीशवरप्रदायै नमः
५१२. ॐ कपर्दीशप्रेमलतायै नमः
५१३. ॐ कपर्दिमालिकायुतायै नमः
५१४. ॐ कपर्दिजषमालाढ्यायै नमः
५१५. ॐ करवीरप्रसूनदायै नमः
५१६. ॐ करवीरप्रियप्राणायै नमः
५१७. ॐ करवीरप्रपूजितायै नमः
५१८. ॐ कर्णिकारसमाकारायै नमः
५१९. ॐ कर्णिकारप्रपूजितायै नमः
५२०. ॐ करीषाग्निस्थितायै नमः
५२१. ॐ कर्षायै नमः
५२२. ॐ कर्षमात्रसुवर्णदायै नमः
५२३. ॐ कलशायै नमः
५२४. ॐ कलशाराध्यायै नमः
५२५. ॐ कषायायै नमः
५२६. ॐ करिगानदायै नमः
५२७. ॐ कपिलायै नमः
५२८. ॐ कलकण्ठ्यै नमः
५२९. ॐ कलिकल्पलतायै नमः
५३०. ॐ कल्पलतायै नमः
५३१. ॐ कल्पमात्रे नमः
५३२. ॐ कल्पकार्यै नमः
५३३. ॐ कल्पभुवे नमः
५३४. ॐ कर्पूरामोदरुचिरायै नमः
५३५. ॐ कर्पूरामोदधारिण्यै नमः
५३६. ॐ कर्पूरमालाभरणायै नमः
५३७. ॐ कर्पूरवासपूर्त्तिदायै नमः
५३८. ॐ कर्पूरवासपूर्त्तिदायै नमः
५३९. ॐ कर्पूरार्णवमध्यगायै नमः
५४०. ॐ कर्पूरतर्पणरतायै नमः
५४१. ॐ कटकाम्बरधारिण्यै नमः
५४२. ॐ कपटेश्वरसम्पूज्यायै नमः
५४३. ॐ कपटेश्वररूपिण्यै नमः
५४४. ॐ कट्वै नमः
५४५. ॐ कपिध्वजाराध्यायै नमः
५४६. ॐ कलापपुष्पधारिण्यै नमः
५४७. ॐ कलापपुष्परुचिरायै नमः
५४८. ॐ कलापपुष्पपूजितायै नमः
५४९. ॐ क्रकचायै नमः
५५०. ॐ क्रकचाराध्यायै नमः
५५१. ॐ कथब्रूमायै नमः
५५२. ॐ करलतायै नमः
५५३. ॐ कथङ्कारविनिर्मुक्तायै नमः
५५४. ॐ काल्यै नमः
५५५. ॐ कालक्रियायै नमः
५५६. ॐ क्रत्वै नमः
५५७. ॐ कामिन्यै नमः
५५८. ॐ कामिनीपूज्यायै नमः
५५९. ॐ कामिनीपुष्पधारिण्यै नमः
५६०. ॐ कामिनीपुष्पनिलयायै नमः
५६१. ॐ कामिनीपुष्पपूर्णिमायै नमः
५६२. ॐ कामिनीपुष्पपूजार्हायै नमः
५६३. ॐ कामिनीपुष्पभूषणायै नमः
५६४. ॐ कामिनीपुष्पतिलकायै नमः
५६५. ॐ कामिनीकुण्डचुम्बनायै नमः
५६६. ॐ कामिनीयोगसंतुष्टायै नमः
५६७. ॐ कामिनीयोगभोगदायै नमः
५६८. ॐ कामिनीकुण्डसम्भग्नायै नमः
५६९. ॐ कामिनीकुण्डमध्यगायै नमः

५७०. ॐ कामिनीमानसाराध्यायै नमः
५७१. ॐ कामिनीमानतोषितायै नमः
५७२. ॐ कामिनीमानसञ्चारायै नमः
५७३. ॐ कालिकायै नमः
५७४. ॐ कालकालिकायै नमः
५७५. ॐ कामायै नमः
५७६. ॐ कामदेव्यै नमः
५७७. ॐ कामेश्यै नमः
५७८. ॐ कामसम्भवायै नमः
५७९. ॐ कामभावायै नमः
५८०. ॐ कामरतायै नमः
५८१. ॐ कामार्त्तायै नमः
५८२. ॐ काममञ्जर्य्यै नमः
५८३. ॐ काममञ्जीररणितायै नमः
५८४. ॐ कामदेवप्रियान्तरायै नमः
५८५. ॐ कामकाल्यै नमः
५८६. ॐ कामकलायै नमः
५८७. ॐ कालिकायै नमः
५८८. ॐ कमलार्चितायै नमः
५८९. ॐ कादिकायै नमः
५९०. ॐ कमलायै नमः
५९१. ॐ काल्यै नमः
५९२. ॐ कालानलसमप्रभायै नमः
५९३. ॐ कल्पान्तदहनायै नमः
५९४. ॐ कान्तायै नमः
५९५. ॐ कान्तारप्रियवासिन्यै नमः
५९६. ॐ कालपूज्यायै नमः
५९७. ॐ कालरतायै नमः
५९८. ॐ कालमात्रे नमः
५९९. ॐ कालिन्यै नमः
६००. ॐ कालवीरायै नमः
६०१. ॐ कालघोरायै नमः
६०२. ॐ कालसिद्धायै नमः
६०३. ॐ कालदायै नमः
६०४. ॐ कालाञ्जनसमाकारायै नमः
६०५. ॐ कालञ्जरनिवासिन्यै नमः
६०६. ॐ कालऋद्ध्यै नमः
६०७. ॐ कालवृद्ध्यै नमः
६०८. ॐ कारागृहविमोचिन्यै नमः
६०९. ॐ कादिविद्यायै नमः
६१०. ॐ कादिमात्रे नमः
६११. ॐ कादिस्थायै नमः
६१२. ॐ कादिसुन्दर्य्यै नमः
६१३. ॐ काश्यै नमः
६१४. ॐ काञ्च्यै नमः
६१५. ॐ काञ्चीशायै नमः
६१६. ॐ काशीशवरदायिन्यै नमः
६१७. ॐ क्रींबीजायै नमः
६१८. ॐ क्रांबीजाहृदयायै नमः
६१९. ॐ काम्यायै नमः
६२०. ॐ काम्यगत्यै नमः
६२१. ॐ काम्यसिद्धिदात्र्यै नमः
६२२. ॐ काम्यभुवे नमः
६२३. ॐ कामाख्यायै नमः
६२४. ॐ कामरूपायै नमः
६२५. ॐ कामचापविमोचिन्यै नमः
६२६. ॐ कामदेवकलारामायै नमः
६२७. ॐ कामदेवकलालयायै नमः
६२८. ॐ कामरात्र्यै नमः
६२९. ॐ कामदात्र्यै नमः
६३०. ॐ कानताराचलवासिन्यै नमः
६३१. ॐ कालरूपायै नमः
६३२. ॐ कालगत्यै नमः
६३३. ॐ कामयोगपरायणायै नमः
६३४. ॐ कामसम्मर्दनरतायै नमः
६३५. ॐ कामगेहविकाशिन्यै नमः
६३६. ॐ कालभैरवभार्यायै नमः
६३७. ॐ कालभैरवकामिन्यै नमः
६३८. ॐ कालभैरवयोगस्थायै नमः
६३९. ॐ कालभैरवभोगदायै नमः
६४०. ॐ कामधेन्वै नमः
६४१. ॐ कामदोग्ध्र्यै नमः
६४२. ॐ काममात्रे नमः
६४३. ॐ कान्तिदायै नमः
६४४. ॐ कामुकायै नमः
६४५. ॐ कामुकाराध्यै नमः
६४६. ॐ कामुकानन्दवर्द्धिन्यै नमः
६४७. ॐ कार्त्तवीर्यायै नमः
६४८. ॐ कार्तिकेयायै नमः
६४९. ॐ कार्त्तिकेयप्रपूजितायै नमः
६५०. ॐ कार्यायै नमः
६५१. ॐ कारणदायै नमः
६५२. ॐ कार्यकारिण्यै नमः
६५३. ॐ कारणान्तरायै नमः
६५४. ॐ कानितगम्यायै नमः
६५५. ॐ कान्तिमय्यै नमः
६५६. ॐ कात्यायै नमः
६५७. ॐ कात्यायन्यै नमः
६५८. ॐ कायै नमः
६५९. ॐ कामसारायै नमः
६६०. ॐ काश्मीरायै नमः
६६१. ॐ काश्मीराचारतत्परायै नमः
६६२. ॐ कामरूपाचाररतायै नमः
६६३. ॐ कामरूपग्रियवदायै नमः
६६४. ॐ कामरूपाचारसिद्ध्यै नमः
६६५. ॐ कामरूपमनोमय्यै नमः
६६६. ॐ कात्तिक्यै नमः
६६७. ॐ कार्त्तिकाराध्यायै नमः
६६८. ॐ काञ्चनारग्रसूनाभायै नमः
६६९. ॐ काञ्चनारग्रपूजितायै नमः
६७०. ॐ काञ्चरूपायै नमः
६७१. ॐ काञ्चभूम्यै नमः
६७२. ॐ कांस्यपात्रप्रभोजिन्यै नमः
६७३. ॐ कांस्यध्वनिमय्यै नमः
६७४. ॐ कामसुन्दर्य्यै नमः
६७५. ॐ कामचुम्बनायै नमः
६७६. ॐ काशपुष्पप्रतीकाशायै नमः
६७७. ॐ कामदुमसमागमायै नमः
६७८. ॐ कामपुष्पायै नमः
६७९. ॐ कामभूम्यै नमः
६८०. ॐ कामदायै नमः
६८१. ॐ कामदेहायै नमः
६८२. ॐ कामगेहायै नमः
६८३. ॐ कामबीजपरायणायै नमः

६८४. ॐ कामध्वजसमारूढायै नमः
६८५. ॐ कामध्वजसमास्थितायै नमः
६८६. ॐ काश्यप्यै नमः
६८७. ॐ काश्यपाराध्यायै नमः
६८८. ॐ काश्यपानन्ददायिन्यै नमः
६८९. ॐ कालिन्दीजलसंकाशायै नमः
६९०. ॐ कालिन्दीजलपूजितायै नमः
६९१. ॐ कामदेवपूजानिरतायै नमः
६९२. ॐ कामदेवपरमार्थदायै नमः
६९३. ॐ कार्मणायै नमः
६९४. ॐ कार्मणाकारायै नमः
६९५. ॐ कामकार्मणकारिण्यै नमः
६९६. ॐ कार्मणत्रोटनकर्य्यै नमः
६९७. ॐ काकिन्यै नमः
६९८. ॐ कारणाह्वयायै नमः
६९९. ॐ काव्यामृतायै नमः
७००. ॐ कालिङ्गायै नमः
७०१. ॐ कालिङ्गमर्दनोद्यतायै नमः
७०२. ॐ कालागुरुविभूषाढ्यायै नमः
७०३. ॐ कालागुरुविभूतिदायै नमः
७०४. ॐ कालागुरुसुगन्धायै नमः
७०५. ॐ कालागुरुप्रतर्पणायै नमः
७०६. ॐ कावेरीनीरसम्प्रीतायै नमः
७०७. ॐ कावेरीतीरवासिन्यै नमः
७०८. ॐ कालचक्रभ्रमाकारायै नमः
७०९. ॐ कालचक्रनिवासिन्यै नमः
७१०. ॐ काननायै नमः
७११. ॐ काननाधारायै नमः
७१२. ॐ कारवे नमः
७१३. ॐ कारुणिकामय्यै नमः
७१४. ॐ काम्पिल्यवासिन्यै नमः
७१५. ॐ काष्ठायै नमः
७१६. ॐ कामपत्न्यै नमः
७१७. ॐ कामभुवे नमः
७१८. ॐ कादम्बरीपानरतायै नमः
७१९. ॐ कादम्बर्य्यै नमः
७२०. ॐ कलायै नमः
७२१. ॐ कामवन्द्यायै नमः

७२२. ॐ कामेश्यै नमः
७२३. ॐ कामराजप्रपूजितायै नमः
७२४. ॐ कामराजेश्वरीविद्यायै नमः
७२५. ॐ कामकौतुकसुन्दर्य्यै नमः
७२६. ॐ काम्बोजजायै नमः
७२७. ॐ काञ्चिनदायै नमः
७२८. ॐ कांस्यकाञ्चनकारिण्यै नमः
७२९. ॐ काञ्चनाद्रिसमाकारायै नमः
७३०. ॐ काञ्चनाद्रिप्रदानदायै नमः
७३१. ॐ कामकीर्त्यै नमः
७३२. ॐ कामकेश्यै नमः
७३३. ॐ कारिकायै नमः
७३४. ॐ कान्ताराश्रयायै नमः
७३५. ॐ कामभेद्यै नमः
७३६. ॐ कामार्त्तिनाशिन्यै नमः
७३७. ॐ कामभूमिकायै नमः
७३८. ॐ कालनिर्णाशिनयै नमः
७३९. ॐ काव्यवनितायै नमः
७४०. ॐ कामरूपिण्यै नमः
७४१. ॐ **कायस्थायै नमः**
७४२. ॐ कामसन्दीप्त्यै नमः
७४३. ॐ काव्यदायै नमः
७४४. ॐ कालसुन्दर्य्यै नमः
७४५. ॐ कामेश्यै नमः
७४६. ॐ कारणवरायै नमः
७४७. ॐ कामेशीपूजनोद्यतायै नमः
७४८. ॐ काञ्चीनूपुरभूषाढ्यायै नमः
७४९. ॐ कुङ्कमाभरणान्वितायै नमः
७५०. ॐ कालचक्रायै नमः
७५१. ॐ कालगत्यै नमः
७५२. ॐ कालचक्रमनोभवायै नमः
७५३. ॐ कुन्दमध्यायै नमः
७५४. ॐ कुन्दपुष्पायै नमः
७५५. ॐ कुन्दपुष्पप्रियायै नमः
७५६. ॐ कुजायै नमः
७५७. ॐ कुजमात्रे नमः
७५८. ॐ कुजाराध्यायै नमः
७५९. ॐ कुठारवरधारिण्यै नमः

७६०. ॐ कुञ्जरस्थायै नमः
७६१. ॐ कुशरतायै नमः
७६२. ॐ कुशेशयविलोचनायै नमः
७६३. ॐ कुनठ्यै नमः
७६४. ॐ कुरर्य्यै नमः
७६५. ॐ कुद्रायै नमः
७६६. ॐ कुरुङ्ग्यै नमः
७६७. ॐ कुटजाश्रयायै नमः
७६८. ॐ कुम्भीनसविभूषायै नमः
७६९. ॐ कुम्भीनसवधोद्यतायै नमः
७७०. ॐ कुम्भकर्णमनोल्लासायै नमः
७७१. ॐ कुलचूडामण्यै नमः
७७२. ॐ कुलायै नमः
७७३. ॐ कुलालगृहकन्यायै नमः
७७४. ॐ कुलचूडामणिप्रियायै नमः
७७५. ॐ कुलपूज्यायै नमः
७७६. ॐ कुलाराध्यायै नमः
७७७. ॐ कुलपूजापरायणायै नमः
७७८. ॐ कुलभूषायै नमः
७७९. ॐ कुक्ष्यै नमः
७८०. ॐ कुररीगणसेवितायै नमः
७८१. ॐ कुलपुष्पायै नमः
७८२. ॐ कुलरतायै नमः
७८३. ॐ कुलपुष्पपरायणायै नमः
७८४. ॐ कुलवस्त्रायै नमः
७८५. ॐ कुलाराध्यायै नमः
७८६. ॐ कुलकुण्डसमप्रभायै नमः
७८७. ॐ कुलकुण्डसमोल्लासायै नमः
७८८. ॐ कुण्डपुष्पपरारणायै नमः
७८९. ॐ कुण्डपुष्पप्रसन्नास्यायै नमः
७९०. ॐ कुण्डगोलोद्भवात्मिकायै नमः
७९१. ॐ कुण्डगोलोद्भवाधारायै नमः
७९२. ॐ कुण्डगोलमय्यै नमः
७९३. ॐ कुह्वै नमः
७९४. ॐ कुण्डगोलप्रियप्राणायै नमः
७९५. ॐ कुण्डगोलप्रपूजितायै नमः
७९६. ॐ कुण्डगोलमनोल्लासायै नमः
७९७. ॐ कुण्डगोललप्रदायै नमः
७९८. ॐ कुण्डदेवरतायै नमः

७९९. ॐ क्रुद्धायै नमः
८००. ॐ कुलसिद्धिकरापरायै नमः
८०१. ॐ कुलकुण्डसमाकारायै नमः
८०२. ॐ कुलकुण्डसमानभुवे नमः
८०३. ॐ कुण्डसिद्ध्यै नमः
८०४. ॐ कुण्डऋद्ध्यै नमः
८०५. ॐ कुमारीपूजनोद्यतायै नमः
८०६. ॐ कुमारीपूजकप्राणायै नमः
८०७. ॐ कुमारीपूजकालयायै नमः
८०८. ॐ कुमार्य्यै नमः
८०९. ॐ कामसन्तुष्टायै नमः
८१०. ॐ कुमारीपूजनोत्सुकायै नमः
८११. ॐ कुमारीव्रतसनतुष्टायै नमः
८१२. ॐ कुमारीरूपधारिण्यै नमः
८१३. ॐ कुमारीभोजनप्रीतायै नमः
८१४. ॐ कुमार्यै नमः
८१५. ॐ कुमारदायै नमः
८१६. ॐ कुमारमात्रे नमः
८१७. ॐ कुलदायै नमः
८१८. ॐ कुलयोन्यै नमः
८१९. ॐ कुलेश्वर्यै नमः
८२०. ॐ कुललिङ्गायै नमः
८२१. ॐ कुलानन्दायै नमः
८२२. ॐ कुलरम्यायै नमः
८२३. ॐ कुतर्कधृषे नमः
८२४. ॐ कुन्त्यै नमः
८२५. ॐ कुलकान्तायै नमः
८२६. ॐ कुलमार्गपरायणायै नमः
८२७. ॐ कुल्लायै नमः
८२८. ॐ कुरुकुल्ल्यायै नमः
८२९. ॐ कुल्लुकायै नमः
८३०. ॐ कुलकामदायै नमः
८३१. ॐ कुलिशाङ्ग्यै नमः
८३२. ॐ कुब्जिरकायै नमः
८३३. ॐ कुब्जिकानन्दवर्द्धिन्यै नमः
८३४. ॐ कुलीनायै नमः
८३५. ॐ कुञ्जरगत्यै नमः
८३६. ॐ कुञ्जरेश्वरगामिन्यै नमः
८३७. ॐ कुलपाल्यै नमः
८३८. ॐ कुलवत्यै नमः
८३९. ॐ कुलदीपिकायै नमः
८४०. ॐ कुलयोगेश्वर्य्यै नमः
८४१. ॐ कुण्डायै नमः
८४२. ॐ कुङ्कुमारुणविग्रहायै नमः
८४३. ॐ कुङ्कुमानंदसनतोषायै नमः
८४४. ॐ कुङ्कुमार्णववासिनयै नमः
८४५. ॐ कुसुमायै नमः
८४६. ॐ कुसुमप्रीतायै नमः
८४७. ॐ कुलभुवे नमः
८४८. ॐ कुलसुन्दर्यै नमः
८४९. ॐ कुमुद्वत्यै नमः
८५०. ॐ कुमुदिन्यै नमः
८५१. ॐ कुशलायै नमः
८५२. ॐ कुलटालयायै नमः
८५३. ॐ कुलटालयमध्यस्थायै नमः
८५४. ॐ कुलटासङ्गतोषितायै नमः
८५५. ॐ कुलटाभवनोद्युक्तायै नमः
८५६. ॐ कुशावर्त्तायै नमः
८५७. ॐ कुलार्णवायै नमः
८५८. ॐ कुलार्णवाचाररतायै नमः
८५९. ॐ कुण्डल्यै नमः
८६०. ॐ कुण्डलाकृत्यै नमः
८६१. ॐ कुमत्यै नमः
८६२. ॐ **कुलश्रेष्ठायै नमः**
८६३. ॐ कुलचक्रपरायणायै नमः
८६४. ॐ कूटस्थायै नमः
८६५. ॐ कूटदृष्ट्यै नमः
८६६. ॐ कुन्तलायै नमः
८६७. ॐ कुन्तलाकृत्यै नमः
८६८. ॐ कुशलाकृतिरूपायै नमः
८६९. ॐ कूर्चबीजधरायै नमः
८७०. ॐ क्वै नमः
८७१. ॐ कुंकुंकुंकुंशब्दरतायै नमः
८७२. ॐ क्रूंक्रूंक्रूंक्रूंपरायणायै नमः
८७३. ॐ कुंकुंकुंशब्दनिलयायै नमः
८७४. ॐ कुक्कुरालयवासिन्यै नमः
८७५. ॐ कुक्कुरासङ्गसंयुक्तायै नमः
८७६. ॐ कुक्कुरानन्तविग्रहायै नमः
८७७. ॐ कूर्चारम्भायै नमः
८७८. ॐ कूर्चबीजायै नमः
८७९. ॐ कूर्चजापपरायणायै नमः
८८०. ॐ कुलिन्यै नमः
८८१. ॐ **कुलस्थानायै नमः**
८८२. ॐ कूर्चकण्ठपरागत्यै नमः
८८३. ॐ कूर्चवीणाभालदेशायै नमः
८८४. ॐ कूर्चमस्तकभूषितायै नमः
८८५. ॐ कुलवृक्षगतायै नमः
८८६. ॐ कूर्मायै नमः
८८७. ॐ कूर्माचलनिवासिन्यै नमः
८८८. ॐ कुलबिन्द्वै नमः
८८९. ॐ कुलशिवायै नमः
८९०. ॐ कुलशक्तिपरायणायै नमः
८९१. ॐ कुलबिन्दुमणिप्रख्यायै नमः
८९२. ॐ कुङ्कुमद्रुमवासिन्यै नमः
८९३. ॐ कुचमर्दनसन्तुष्टायै नमः
८९४. ॐ कुचजापपरायणायै नमः
८९५. ॐ कुचस्पर्शनसन्तुष्टायै नमः
८९६. ॐ कुचालिङ्गनहर्षदायै नमः
८९७. ॐ कुमतिघ्न्यै नमः
८९८. ॐ कुबेरार्चायै नमः
८९९. ॐ कुचभुवे नमः
९००. ॐ कुलनायिकायै नमः
९०१. ॐ कुगायनायै नमः
९०२. ॐ कुचधरायै नमः
९०३. ॐ कुमात्रे नमः
९०४. ॐ कुन्ददन्तिन्यै नमः
९०५. ॐ कुगेयायै नमः
९०६. ॐ कुह्नराभाषायै नमः
९०७. ॐ कुगेयाकुघ्नदारिकायै नमः
९०८. ॐ कीर्त्यै नमः
९०९. ॐ किरातिन्यै नमः
९१०. ॐ क्लिन्नायै नमः
९११. ॐ किन्नरायै नमः
९१२. ॐ किन्नर्य्यै नमः
९१३. ॐ क्रियायै नमः
९१४. ॐ क्रीङ्करायै नमः

९१५. ॐ क्रींजपासक्तायै नमः
९१६. ॐ क्रींहूंस्त्रींमन्त्ररूपिण्यै नमः
९१७. ॐ किर्मीरितदृशापाङ्ग्यै नमः
९१८. ॐ किशोर्यै नमः
९१९. ॐ किरीटिन्यै नमः
९२०. ॐ कीटभाषायै नमः
९२१. ॐ कीटयोन्यै नमः
९२२. ॐ कीटमात्रे नमः
९२३. ॐ कीटदायै नमः
९२४. ॐ किंशुकायै नमः
९२५. ॐ कीरभाषायै नमः
९२६. ॐ क्रियासारायै नमः
९२७. ॐ क्रियावत्यै नमः
९२८. ॐ कींकींशब्दपरायै नमः
९२९. ॐ क्लांक्लींक्लूंक्लैंक्लींमन्त्ररूपिण्यै नमः
९३०. ॐ कांकींकूंकैंस्वरूपायै नमः
९३१. ॐ कः फट्मन्त्रस्वरूपिण्यै नमः
९३२. ॐ केतकीभूषणानन्दायै नमः
९३३. ॐ केतकीभरणान्वितायै नमः
९३४. ॐ कैकदायै नमः
९३५. ॐ केशिन्यै नमः
९३६. ॐ केश्यै नमः
९३७. ॐ केशीसूदनतत्परायै नमः
९३८. ॐ केशरूपायै नमः
९३९. ॐ केशमुक्तायै नमः
९४०. ॐ कैकेय्यै नमः
९४१. ॐ कौशिक्यै नमः
९४२. ॐ कैरवायै नमः
९४३. ॐ कैरवाह्लादायै नमः
९४४. ॐ केशरायै नमः
९४५. ॐ केतुरूपिण्यै नमः
९४६. ॐ केशवाराध्यहृदयायै नमः
९४७. ॐ केशवासक्तमानसायै नमः
९४८. ॐ क्लैव्यविनाशिन्यै नमः
९४९. ॐ क्लैं च क्लैंबीजजपतोषितायै नमः
९५०. ॐ कौशल्यायै नमः
९५१. ॐ कोशलाक्ष्यै नमः
९५२. ॐ कोशायै नमः
९५३. ॐ कोमलायै नमः
९५४. ॐ कोलापुरनिवासायै नमः
९५५. ॐ कोलासुरविनाशिन्यै नमः
९५६. ॐ कोटिरूपायै नमः
९५७. ॐ कोटिरतायै नमः
९५८. ॐ क्रोधिन्यै नमः
९५९. ॐ क्रोधरूपिण्यै नमः
९६०. ॐ केकायै नमः
९६१. ॐ कोकिलायै नमः
९६२. ॐ कोट्यै नमः
९६३. ॐ कोटिमन्त्रपरायणायै नमः
९६४. ॐ कोट्यनन्तमन्त्रयुतायै नमः
९६५. ॐ केरूपायै नमः
९६६. ॐ केरलाश्रयायै नमः
९६७. ॐ केरलाचारनिपुणायै नमः
९६८. ॐ केरलेन्द्रगृहस्थितायै नमः
९६९. ॐ केदाराश्रमसंस्थायै नमः
९७०. ॐ केदारेश्वरपूजितायै नमः
९७१. ॐ क्रोधरूपायै नमः
९७२. ॐ क्रोधपदायै नमः
९७३. ॐ क्रोधमात्रे नमः
९७४. ॐ कोशिक्यै नमः
९७५. ॐ कोदण्डधारिण्यै नमः
९७६. ॐ क्रौञ्चायै नमः
९७७. ॐ कौशिल्यायै नमः
९७८. ॐ कौलमार्गगायै नमः
९७९. ॐ कौलिन्यै नमः
९८०. ॐ कौलिकाराध्यायै नमः
९८१. ॐ कौलिकागारवासिन्यै नमः
९८२. ॐ कौतुक्यै नमः
९८३. ॐ कौमुद्यै नमः
९८४. ॐ कौलायै नमः
९८५. ॐ कौमार्यै नमः
९८६. ॐ कौरवार्चितायै नमः
९८७. ॐ कौण्डिन्यायै नमः
९८८. ॐ कौशिक्यै नमः
९८९. ॐ क्रोधज्वालाभासुररूपिण्यै नमः
९९०. ॐ कोटिकालानलज्वालायै नमः
९९१. ॐ कोटिमार्तण्डविग्रहायै नमः
९९२. ॐ कृत्तिकायै नमः
९९३. ॐ कृष्णवर्णायै नमः
९९४. ॐ कृष्णायै नमः
९९५. ॐ कृत्यायै नमः
९९६. ॐ क्रियातुरायै नमः
९९७. ॐ कृशाङ्ग्यै नमः
९९८. ॐ कृतकृत्यायै नमः
९९९. ॐ क्रः फट्स्वाहारूपिण्यै नमः
१०००. ॐ क्रौंक्रौंहूंफट्मन्त्रवर्णायै नमः
१००१. ॐ क्रींह्रींहूंफट् नमः स्वधायै नमः
१००२. ॐ क्रींक्रीं-ह्रींह्रीं तथा हूंहूं फट् स्वाहा-मन्त्ररूपिण्यै नमः

× × ×

सन्दर्भ—ककारादिकालीसहस्त्रनामावली।

मृत्युलोक में कायस्थ पुरुष महाकाल एवं कायस्थ कन्या महाकाली के प्रतिरूप हैं।

माता काली के सहस्त्रनाम में कायस्थों का नाम होने से स्पष्ट है कि चित्रगुप्त वंशीय ब्रह्मकायस्थ माता काली के प्रतिरूप हैं तथा ब्रह्मकायस्थों की पुत्रियाँ साक्षात 'काली' के रूप में विद्यमान् हैं।

वासन्तिक एवं शारदीय नवरात्र में नवमी के दिन कुमारी कन्याओं को भोजन कराने का जो विधान है। वह काली स्वरूपा ब्रह्मकायस्थों की कुमारी कन्याओं को भोजन कराने का है।

× × ×

महाकाली-दावातपूजन

शीशे से निर्मित दावात में स्याही को भरकर मौली के द्वारा उसका बन्धन करके उस पर रोली से स्वस्तिक का निर्माण कर भगवती काली के सम्मुख रख '**ॐ महाकाल्यै नमः**' इस नाममंत्र द्वारा पंचोपचार या षोडशोपचार से पूजा करके निम्न श्लोकों द्वारा उनका ध्यान कर प्रणाम करे—

ॐ मषि त्वं लेखनीयुक्ता चित्रगुप्ताशयस्थिता। सदक्षराणां पत्रे च लेख्यं कुरु सदा मम।
या माया प्रकृतिः शक्तिश्चचण्डमुण्डविमर्दिनी। सा पूज्या सर्वदेवैश्च ह्यस्माकं वरदा भव॥
॥ ॐ महाकाल्यै नमः॥

लेखनीपूजन—लेखनी अर्थात् कलम पर मौली का बन्धन कर उसे सामने रख लें और निम्न श्लोक का उच्चारण करे—

लेखनी निर्मिता पूर्वं ब्रह्मणा परमेष्ठिना। लोकानां च हितार्थाय तस्मात्तां पूजयाम्यहम्॥

'ॐ लेखिन्यै नमः' इस नाममन्त्र का उच्चारण करते हुए पंचोपचार से पूजा करके निम्न प्रार्थना करे—

ॐ कृष्णानने द्विजिह्वे च चित्रगुप्त करस्थिते। सदक्षराणां पत्रे च लेख्यं कुरु सदा मम॥

अथवा

शास्त्राणां व्यवहाराणां विद्यानामाप्नुयाद्यतः। अतस्त्वां पूजयिष्यामि मम हस्ते स्थिरा भव॥

× × ×

‘काल सर्प योग’ एवं ‘केतु ग्रह’ का पूजन चित्रगुप्त मंदिर में होता है

काल सर्प योग युक्त कुण्डली
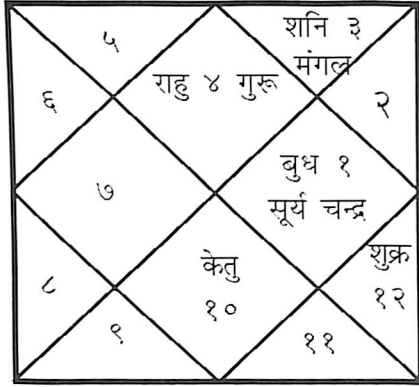
ज्योतिष शास्त्रानुसार राहु तथा केतु के एक तरफ जब सभी ग्रह आ जाते हैं तो ‘काल सर्प योग’ का निर्माण होता है। शास्त्रानुसार यह योग जिसकी कुण्डली में विद्यमान होता है। उसे अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। ऐसे व्यक्तियों को अत्यन्त कठिनाइयों एवं संघर्ष से अपना जीवन व्यतीत करना पड़ता है।

शास्त्रों में राहु को सर्प का मुख तथा केतु को सर्प का पूँछ कहा गया है। राहु के अधिदेवता ‘काल’ (काल भैरव) तथा केतु के अधिदेवता ‘चित्रगुप्त’ बताए गये हैं—

भास्करस्येश्वरं विद्यादुमा च शशिनस्तथा। स्कन्दमङ्गारकस्यापि बुधस्य च तथा हरिम्॥ १३॥
ब्रह्माणं च गुरोर्विद्याच्छूक्रस्यापि शचीपतिम्। शनैश्चरस्य तु यमं राहोः कालं, तथैव च॥ १४॥
केतोर्वै चित्रगुप्त च सर्वेषामधिदेवता।

(मत्स्य पुराण अध्याय १३)

सूर्य का अधिदेवता शिव को जानना चाहिए। इसी प्रकार चन्द्रमा के अधिदेवता पार्वती, मंगल के स्कन्द, बुध के भगवान् विष्णु, गुरु बृहस्पति के ब्रह्मा, शुक्र के इन्द्र, शनैश्चर के यमराज, राहु के ‘काल’ (काल भैरव) और केतु के ‘चित्रगुप्त’ इन नव ग्रहों के अधिदेवता हैं॥ १३-१४$^{१}/_{२}$ ॥

इसी कारण राहु एवं केतु से लगे इस योग को ‘काल सर्प योग’ कहते हैं। इसलिए काल सर्प का पूजन ‘काल’ (काल भैरव) तथा ‘चित्रगुप्त’ के मंदिर में ही होना चाहिए। कालों के काल ‘महाकाल’ उज्जैन में स्थित हैं। इसलिए काल सर्प योग का पूजन ‘उज्जैन’ के पंचकोशी क्षेत्र में स्थित ‘काल’ (काल भैरव) या ‘चित्रगुप्त’ मंदिर में कराने पर काल सर्प का दोष पूर्णतया समाप्त हो जाता है। भगवान् चित्रगुप्त का मंदिर ‘श्री धर्मराज चित्रगुप्त मंदिर’ के नाम से उज्जैन में रामघाट पर क्षिप्रा नदी के तट पर विद्यमान है।

केतु ग्रह के अधिदेवता भगवान् चित्रगुप्त ही हैं। इसलिए **जिन व्यक्तियों के कुण्डली में केतु ग्रह की बाधा हो उन्हें भी चित्रगुप्त मंदिर में केतु ग्रह की शांति कराने से केतु ग्रह की बाधा शान्त हो जाती है।**

× × ×

सनातन धर्म के प्रत्येक पूजन, संस्कार एवं श्राद्ध में भगवान् चित्रगुप्त का पूजन अनिवार्य है

सनातन धर्म में **गर्भाधन से लेकर अन्त्येष्टि** तक १६ संस्कार बताये गये हैं। इन्हीं संस्कारों का पालन करके हम सनातनी कहलाते हैं। **इन सभी १६ संस्कारों में भगवान् चित्रगुप्त का पूजन अनिवार्य है। यह सोलह संस्कार निम्नवत हैं—**

१. गर्भाधान संस्कार २. पुंसवन संस्कार ३. सीमन्तोन्नसनम् संस्कार ४. जातकर्म संस्कार ५. नामकरण संस्कार ६. निष्क्रमण संस्कार ७. अन्नप्राशन संस्कार ८. चूड़ाकर्म संस्कार ९. कर्णवेध संस्कार १०. उपनयन संस्कार ११. विद्यारम्भ संस्कार १२. समावर्तन संस्कार १३. विवाह संस्कार १४. आवस्थ्याधान संस्कार १५. श्रौताधन संस्कार

उपर्युक्त १५ संस्कारों में सर्व प्रथम '**गणेश**' का पूजन किया जाता है। इसके बाद नवग्रह मण्डल का निर्माण किया जाता है, इसी नवग्रह मण्डल पर नवग्रहों एवं उनके अधिदेवता की स्थापना की जाती है।

नवग्रह-मण्डल-पूजन विधि

ग्रहोंकी स्थापना के लिये ईशानकोणमें चार खड़ी पाइयोंका चौकोर मण्डल बनायें। इस प्रकार नौ कोष्ठक बन जायँगे। बीचवाले कोष्ठक में **सूर्य**, अग्निकोण में **चन्द्र**, दक्षिण में **मङ्गल**, ईशानकोण में **बुध**, उत्तर में **बृहस्पति**, पूर्व में **शुक्र**, पश्चिम में **शनि**, नैर्ऋत्यकोण में राहु और वायव्यकोण में **केतु** का निर्माण करें।
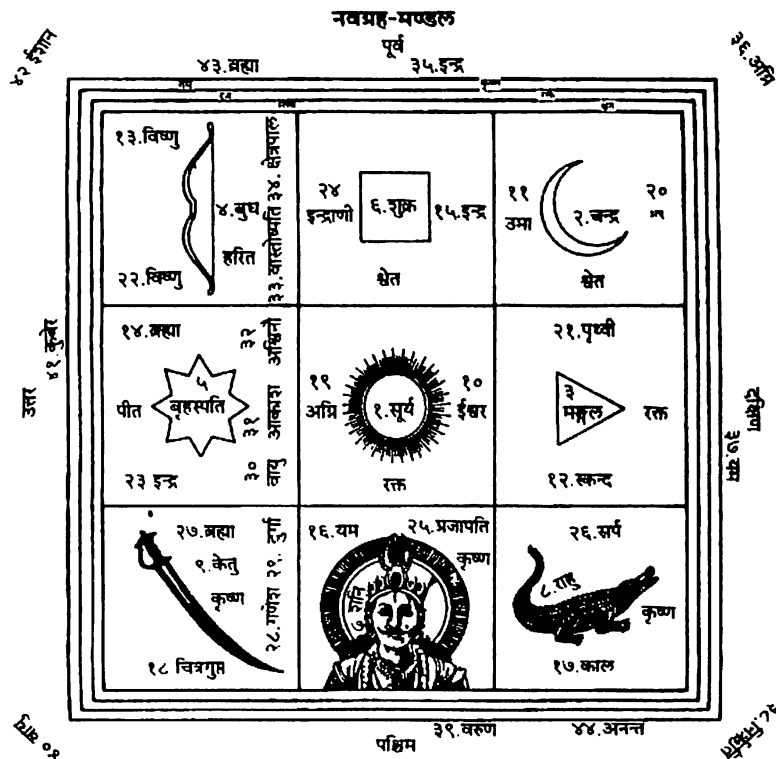
इसके पश्चात् इस नवग्रह-मण्डल पर इन नवग्रहों—**सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, गुरू, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु** की स्थापना करें।

तदन्तर इन नवग्रहों के अधिदेवता के रूप में क्रमशः—**शिव, पार्वती, स्कन्द (कार्तिकेय), विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, यम, काल तथा चित्रगुप्त** की स्थापना होती है।

इनमें **नवग्रहों** की स्थापना निम्न प्रकार से की जाती है—

सूर्य–

ईश्वर (सूर्यके दायें भागमें) आवाहन-स्थापन—

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥

एह्येहि विश्वेश्वर नस्त्रिशूलकपालखट्वाङ्गधरेण सार्धम्।
लोकेश यक्षेश्वर यज्ञसिद्ध्यै गृहाण पूजां भगवन् नमस्ते॥

ॐ भूर्भुवः स्वः ईश्वराय नमः, ईश्वरमावाहयामि, स्थापयामि।

चन्द्रमा–

उमा (चन्द्रमाके दायें भागमें) आवाहन-स्थापन—

ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं मे इषाण।

हेमाद्रितनयां देवीं वरदां शङ्करप्रियाम्। लम्बोदरस्य जननीमुमामावाहयाम्यहम्॥

ॐ भूर्भुवः स्वः उमायै नमः, उमामावाहयामि, स्थापयामि।

मङ्गल–

स्कन्द (मङ्गलके दायें भागमें) आवाहन-स्थापन—

ॐ यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यान्त्समुद्रादुत वा पुरीषात्। श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन्॥

रुद्रतेजः समुत्पन्नं देवसेनाग्रगं विभुम्। षण्मुखं कृत्तिकासूनुं स्कन्दमावाहयाम्यहम्॥

ॐ भूर्भुवः स्वः स्कन्दाय नमः, स्कन्दमावाहयामि, स्थापयामि।

बुध–

विष्णु (बुधके दायें भागमें) आवाहन-स्थापन—

ॐ विष्णो रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि। वैष्णवमसि विष्णवे त्वा॥

देवदेवं जगन्नाथं भक्तानुग्रहकारकम्। चतुर्भुजं रमानाथं विष्णुमावाहयाम्यहम्॥

ॐ भूर्भुवः स्वः विष्णवे नमः, विष्णुमावाहयामि, स्थापयामि।

बृहस्पति–

ब्रह्मा (बृहस्पतिके दायें भागमें) आवाहन-स्थापन—

ॐ आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्॥

कृष्णाजिनाम्बरधरं पद्मसंस्थं चतुर्मुखम्। वेदाधारं निरालम्बं विधिमावाहयाम्यहम्॥

ॐ भूर्भुवः स्वः ब्रह्मणे नमः, ब्रह्माणमावाहयामि, स्थापयामि।

शुक्र–

इन्द्र (शुक्रके दायें भागमें) आवाहन-स्थापन—

ॐ सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान्। जहि शत्रूँ२रप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः।

देवराजं गजारूढं शुनासीरं शतक्रतुम्। वज्रहस्तं महाबाहुमिन्द्रमावाहयाम्यहम्॥

ॐ भूर्भुवः स्वः इन्द्राय नमः, इन्द्रमावाहयामि, स्थापयामि।

शनि–

यम (शनिके दायें भागमें) आवाहन-स्थापन—

ॐ यमाय त्वाऽङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा। स्वाहा धर्माय स्वाहा धर्मः पित्रे॥
धर्मराजं महावीर्यं दक्षिणादिक्पतिं प्रभुम्। रक्तेक्षणं महाबाहुं यममावाहयाम्यहम्॥

ॐ भूर्भुवः स्वः यमाय नमः, यममावाहयामि, स्थापयामि।

राहु–

काल (राहुके दायें भागमें) आवाहन-स्थापन—

ॐ कार्षिरसि समुद्रस्य त्वा क्षित्या उन्नयामि। समापो अद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः॥
अनाकारमनन्ताख्यं वर्तमानं दिने दिने। कलाकाष्ठादिरूपेण कालमावाहयाम्यहम्॥

ॐ भूर्भुवः स्वः कालाय नमः, कालमावाहयामि, स्थापयामि।

केतु–

चित्रगुप्त (केतुके दायें भागमें) आवाहन-स्थापन—

ॐ चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय। धर्मराजसभासंस्थं कृताकृतविवेकिनम्॥
आवाहये चित्रगुप्तं लेखनीपत्रहस्तम्॥

ॐ भूर्भुवः स्वः चित्रगुप्ताय नमः, चित्रगुप्तमावाहयामि, स्थापयामि।

(नित्यकर्म-पूजापकाश, नवग्रह मण्डल पूजन, अधिदेवता स्थापन)

१६. अन्त्येष्टि संस्कार—इस संस्कार में शव को चिता पर रखने के पूर्व संकल्प करते समय भगवान् चित्रगुप्त का ही ध्यान किया जाता है।

संकल्प—अद्यामुकगोत्रः साधकनामप्रेतः एषः चित्रगुप्तदैवतः चितापिण्डस्ते मयादीयते तवोपतिष्ठताम्।

श्राद्ध के दिनों में विशेषकर भगवान् चित्रगुप्त एवं यमराज का विधिवत् पूजन किया जाता है। इस संस्कार में १४ यमों का तर्पण अनिवार्य है। यम तर्पण का मंत्र नीचे दिया जा रहा है—

यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च। वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च॥१२॥
औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने। वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः॥१३॥

(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय-१२२)

इन १४ यमों का तर्पण दशगात्र के दिन इस प्रकार किया जाता है—

चतुर्दश यम तर्पण—

ॐ यमाय नमः। ॐ धर्मराजाय नमः। ॐ मृत्युवे नमः। ॐ अन्तकाय नमः। ॐ औदुम्बराय नमः। ॐ दध्नाय नमः। ॐ नीलाय नमः। ॐ परमेष्ठिने नमः। ॐ वृकोदराय नमः। ॐ चित्राय नमः। ॐ चित्रगुप्ताय नमः।

[पौरोहित्य कर्म प्रशिक्षक, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ]

भगवान् चित्रगुप्त की आराधना किये बिना किसी भी सनातनी मनुष्य चाहे वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्ण का हो उसे मुक्ति नहीं मिल सकती है।

यम १४ प्रकार के हैं, उनमें से १ **चित्रगुप्त** भी हैं। इन १४ यमों में **धर्मराज 'राजा' हैं,** इसी प्रकार इन १४ यमों में **चित्रगुप्त 'धर्माधिकारी' हैं।** भगवान् **चित्रगुप्त** यमलोक के सबसे सशक्त देवता हैं। **'धर्माधिकारी' चित्रगुप्त का ही शासन सृष्टि पर चलता है।** इसका विस्तार से वर्णन आप पिछले अध्यायों में पढ़ चुके हैं।

अन्त्येष्टि संस्कार में **गरूड़पुराण के प्रेतकल्प** का पाठ किया जाता है। इस पुराण में **भगवान् चित्रगुप्त एवं यमराज** के शक्ति एवं स्वरूपों का वर्णन दिया गया है। इसमें बताया गया है कि **भगवान् चित्रगुप्त** के निर्णयों से ही प्रत्येक **ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र दण्ड** तथा **मोक्ष** प्राप्त करता है। **भगवान् चित्रगुप्त** ही दण्ड स्वरूप प्रत्येक मनुष्य को कर्मानुसार **मनुष्य, पशु, पक्षी, प्रेत** इत्यादि बनाकर मृत्युलोक में भेज देते हैं। इसका प्रमाण आप **पद्मपुराण एवं गरूड़पुराण** के अध्याय में देख चुके हैं।

उपर्युक्त वर्णित सनातन धर्म के प्रत्येक संस्कार एवं पूजन में ९ देवताओं की स्थापना अनिवार्य है। यह ९ देवता **शिव, पार्वती, स्कन्द (कार्तिकेय), विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, यम, काल** तथा **चित्रगुप्त** सनातन धर्म के स्तम्भ हैं। **इन ९ देवताओं को सनातन धर्म में 'सर्वोच्च' स्थान प्राप्त है।** इसीलिये इन्हें ९ ग्रहों का आधिपत्य प्राप्त है।

सनातन धर्मी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र लोग यदि यह सोचते हैं कि **भगवान् चित्रगुप्त** केवल कायस्थों के ही देवता हैं तो वह भ्रम में जी कर अपना जीवन नष्ट कर रहे हैं क्योंकि **भगवान् चित्रगुप्त का पूजन किये बिना उनका कोई भी संस्कार एवं पूजन फलित नहीं होता है और न तो उन्हें 'मुक्ति' ही मिल सकती है।**

यही सनातनी सत्य है!

पुराणानुसार सातों दिन में किन-किन देवताओं की उपासना करनी चाहिए उसका विवरण नीचे दिया जा रहा है।

रविवार	—	**भगवान् शिव**
सोमवार	—	**माता पार्वती (देवी)**
मंगलवार	—	**कार्तिकेय**
बुधवार	—	**भगवान् विष्णु**
बृहस्पतिवार	—	**भगवान् ब्रह्मा**
शुक्रवार	—	**भगवान् इन्द्र**
शनिवार	—	**भगवान् यमराज, काल तथा चित्रगुप्त**

(संदर्भित ग्रन्थ मत्स्य पुराण, अध्याय ९३, श्लोक संख्या १३-१४$^{१}/_{२}$)

अध्याय बिन्दु—

☞ इस अध्याय के अनुसार कायस्थों के पूर्वज पितामह (दादा) **भगवान् ब्रह्मा** एवं पिता **भगवान् चित्रगुप्त** का पूजन किये बिना किसी भी सनातनी **ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य** तथा **शूद्र** का कोई भी संस्कार एवं कामनापूरक यज्ञ इत्यादि कर्म नहीं हो सकता है। **पितृ की मुक्ति** के लिये किया जाने वाला **श्राद्ध** विशेषकर **भगवान् चित्रगुप्त** को प्रसन्न करने के लिये ही किया जाता है क्योंकि **भगवान् चित्रगुप्त** ही पितरों के मुक्तिदाता हैं।

× × ×

दुर्गासप्तशती में वर्णित 'राजा सुरथ' ब्रह्मकायस्थ थे

दुर्गासप्तशती सनातन धर्मका एक अत्यन्त पवित्र ग्रन्थ है। इस पवित्र ग्रन्थका पाठ सनातन धर्मको मानने वाले चारो वर्ण के लोग किया करते हैं। वासन्तिक एवं शारदीय नवरात्रि के दिनों में इसका विधिवत् पाठ किया जाता है। यह १३ अध्यायों में विभक्त है। इस ग्रन्थ में राजा सुरथ की कथा दी गई है। राजा सुरथ ऐसे राजा थे जिनका समस्त भूमण्डल पर अधिकार था। राजा सुरथ के शत्रुओं ने राजा को पराजित कर दिया। पराजित राजा सुरथ मेधा ऋषि के आश्रम पहुँचे। ऋषि ने सुरथ को देवीके स्वरूप एवं शक्ति का ज्ञान दिया। तत्पश्चात् राजा ने देवी की उपासना करके प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त किया तथा माता चण्डिका देवी के आशिर्वाद से पुनः शत्रुओं का नाश करके निष्कण्टक राज्य प्राप्त किया। राजा सुरथ चित्रगुप्त वंशीय (चैत्रवंशीय) कायस्थ थे। यथा—

स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्भवः।
सुरथो नाम राजाभूतसमस्ते क्षितिमण्डले॥ ४॥

(दुर्गासप्तशती, अध्याय-१, श्लोक ४)

पूर्वकालकी बात है, स्वारोचिष मन्वन्तरमें सुरथ नाम के एक राजा थे, जो चैत्रवंश (चित्रगुप्त वंश) में उत्पन्न हुए थे। उनका समस्त भूमण्डल पर अधिकार था॥ ४॥

परितुष्टा जगद्धात्री प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका॥ १३॥

(दुर्गासप्तशती, अध्याय-१३, श्लोक १३)

इस पर प्रसन्न होकर जगत्माता चण्डिका देवी ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा॥ १३॥

देव्युवाच–

स्वल्पैरहोभिर्नृपते स्वं राज्यं प्राप्यते भवान्॥ २०॥
हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति॥ २१॥

(दुर्गासप्तशती, अध्याय-१३, श्लोक २०-२१)

देवी ने कहा—राजन! तुम थोड़े ही दिनों में शत्रुओं को मारकर अपना राज्य प्राप्त कर लोगे अब वहाँ तुम्हारा राज्य स्थिर रहेगा।

एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः॥ २८॥
सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः॥ २९॥

(दुर्गा सप्तशती, अध्याय-१३, श्लोक २८-२९))

इस प्रकार देवी से वरदान पाकर **सुरथ, क्षत्रियों में श्रेष्ठ सूर्यवंश** में जन्म लेकर सावर्णि नाम के मनु होगें।

☞ **चैत्रवंश, चित्रांश** एवं **कायस्थ** भगवान् चित्रगुप्त के वंश को ही कहते हैं।

भगवान् चित्रगुप्त का ही नाम **चित्र, चैत्र** तथा **चित्रक** है। जैसा कि आप जानते हैं, **राजा सुरथ चैत्रवंश के थे। चैत्रवंश नाम का कोई भी क्षत्रिय कुल नहीं है।**

कुछ टीकाकारों ने राजा सुरथ को क्षत्रिय समझकर व्याख्या कर दिया है। **दुर्गासप्तशती के १३ वें अध्याय के २८ वें श्लोक में टीकाकारों ने 'क्षत्रियों में श्रेष्ठ' शब्द को सुरथ के पहले लगा दिया है, जिसके कारण अर्थ बदल गया है।** क्षत्रियों में श्रेष्ठ **सूर्यवंश** को कहा जाता है। इस श्लोक में यही बताया गया है कि **राजा सुरथ, क्षत्रियों में उत्तमकुल सूर्यवंश में जन्म लेकर सावर्णि नामके मनु के रूप में अवतरित होगें।**

दुर्गासप्तशती के १३ वें अध्याय के श्लोक संख्या २८-२९ का शाब्दिक अर्थ नीचे दिया जा रहा है—

एवं **(इस प्रकार)** देव्या **(देवी से)** वरं **(वर को)** लब्ध्वा **(प्राप्तकर)** सुरथः **(सुरथ)** क्षत्रियर्षभः **(क्षत्रियों में श्रेष्ठ)** सूर्याज्जन्म **(सूर्य से जन्म)** समासाद्य **(प्राप्त करके)** सावर्णिर्भवितामनुः **(सावर्णि नाम के होगें मनु)॥**

इसका शाब्दिक अर्थ इस प्रकार हुआ—

इस प्रकार देवी से वर को प्राप्तकर सुरथ, क्षत्रियों में श्रेष्ठ सूर्य से जन्म प्राप्त करके, सावर्णि नाम के होगें मनु।

× × ×

अथ चित्रगुप्तमन्त्र प्रयोगः

मन्त्रमहार्णव में ३८ अक्षर का मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ नमो विचित्राय धर्मलेखकाय यमवाहिकाधिकारिणे म्ल्व्यूं जन्म-सम्पत्-प्रलयं कथय-कथय स्वाहा।

अर्थ—धर्म को लिखने (स्थापित करने) वाले यम के अधिकार को चलाने वाले, **जन्म, पालन** एवं **प्रलय** को कहने (देने) वाले भगवान् विचित्र (चित्रगुप्त) को नमस्कार है।

☞ भगवान् चित्रगुप्त का ही एक नाम (विचित्र) है। यही **जन्म, पालन** एवं **प्रलय** को देने वाले देव हैं।

॥ अस्य विधानम्॥

करन्यास–

ॐ नमो विचित्राय अंगुष्ठाभ्यां नमः ॥ १ ॥ धर्मलेखकाय तर्जनीभ्यां नमः ॥ २ ॥ यमवाहिकाधिकारिणे मध्यमाभ्यां नमः ॥ ३ ॥ म्ल्व्यूं जन्मसम्पत्प्रलयं अनामिकाभ्यां नमः ॥ ४ ॥ कथय कथय कनिष्ठिकाभ्यां नमः ॥ ५ ॥ स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ॥ ५ ॥ इति करन्यासः।

हृदयादिषडङ्गन्यास–

ॐ नमो विचित्राय हृदयाय नमः ॥ १ ॥ धर्मलेखकाय शिरसे स्वाहा ॥ २ ॥ यमवाहिकाधिकारिणे शिखायै वषट् ॥ ३ ॥ म्ल्व्यूं जन्मसम्पत्प्रलयं कवचाय हुम् ॥ ४ ॥ कथयकथय नेत्रत्रयाय वौषट् ॥ ५ ॥ स्वाहा अस्त्राय फट् ॥ ५ ॥ इति हृदयादिषडङ्गन्यास।

इस प्रकार न्यास करके ध्यान करें।

अथ ध्यानम्–

किरीटोज्ज्वलं वस्त्रभूषाभिरामं विचित्रासनासीनमिन्दुप्रभास्यम्। नृणां पापपुण्यानि पत्रे लिखन्तं भजे चित्रगुप्तं सखाय यमस्य॥ १ ॥ इति ध्यानम्।

मुकुट, कान्तियुक्त श्वेतवस्त्र एवं आभूषणों से सुशोभित विचित्र आसन पर विराजमान, चाँदनी जैसे (श्याम आभा वाले) उज्ज्वल मुख वाले, मनुष्यों के पाप-पुण्य को पत्र पर लिखने वाले, जिनके सहयोगी यमराज हैं उस भगवान् चित्रगुप्त का मैं भजन करता हूँ।

इति ध्यात्वा मन्त्रं जपेत्। तथा च। मन्त्रोयं चित्रगुप्तस्य सर्वदुखौघनाशनः। सिद्धोमनुरयं पुसां जपतां चित्रगुप्तकः। प्रसन्नो गणयेत्पुण्यं नैव पापं कदाचन्॥ १ ॥

(मन्त्रमहार्णव)

इससे ध्यान करके मन्त्र का जप करें। **यह मन्त्र सिद्ध है।** भगवान् चित्रगुप्त का इस मन्त्र के जप से दुःखों एवं पापों का नाश हो जाता है। इस मंत्र का जप करने से भगवान् चित्रगुप्त प्रसन्न हो कर मनुष्यों के पुण्यों को ही देखते हैं, पापों को नहीं।

॥ इति चित्रगुप्त मन्त्र प्रयोगः॥

× × ×

चित्रगुप्त मन्त्र प्रयोग

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि चित्रगुप्तमनुं परम्। तारो नमो विचित्राय ङेन्तः स्याद्यमलेखकः॥
यमेत्युक्त्वा च वहिकाधिकारिणे वदेत्ततः॥ १॥
ततः षडक्षरं कूटं यमलकरपास्तथा। उकारस्वरसंयुक्तास्सचन्द्राः कूटमुच्यते॥ २॥
जन्मसम्पत्प्रलयं च द्विधा कथय ठद्वयम्। अष्टत्रिंशदक्षरोयं चित्रगुप्तमनुर्मतः॥
सप्तषण्मनुवस्वङ्गनेत्रार्णैरङ्गकल्पनम् ॥ ३॥
किरीटिनं श्वेतवस्त्रं विचित्रासनसंस्थितम्। लेखकं पापपुण्यानां चित्रगुप्तमहम्भजे॥ ४॥
जपेत्वर्णसहस्त्रं च ततः सिद्धो भवेन्मनुः। राजद्वारे विवादे च संग्रामे जयदायकः॥ ५॥
भजन्ति लेखका ये तु मन्त्रमेतं नृपाङ्गणे। मान्यां कीर्त्ति च वंशं च संस्थाप्य स्वर्गगामिनः॥ ६॥

(मेरुतन्त्र, प्रकाश २४, चित्रगुप्त मन्त्र)

अब चित्रगुप्त जी के **परम् पवित्र मन्त्र** को कहता हूँ।

उपर्युक्त प्रयोग के लिये मंत्रमहार्णव में दिये गये **भगवान् चित्रगुप्त** के मंत्र का प्रयोग करें। मंत्र इस प्रकार है—

'ॐ नमो विचित्राय धर्मलेखकाय यम वाहिकाधिकारिणे म्ल्व्यूं जन्म-सम्पत्-प्रलयं कथय-कथय स्वाहा।'

इत्यष्टत्रिंशऽक्षरो मन्त्रः। ३८ अक्षर वाला चित्रगुप्त का मन्त्र।

अर्थ—हे विचित्र! (चित्रगुप्त) आप **धर्म को लिखने** वाले हैं, **यम के अधिकार** को चलाने वाले हैं, आप ही के कहने पर **जन्म, पालन** और **संहार** होता है, मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

☞ भगवान् चित्रगुप्त का ही एक नाम (विचित्र) है। यही **जन्म, पालन** एवं **प्रलय** को देने वाले देव हैं।

यह तारा नाम के पहले मन्त्र है **'ॐ नमो विचित्राय धर्म लेखकः'** यम ऐसा कहकर पुनः वाहिकाधिकारिण बोले उसके बाद छः कूट को **'यूँ मूँ लूँ कूँ रूँ'** इसे कुट कहते हैं जन्म सम्पत्प्रलय कथय, कथय स्वाहा **३८ अक्षर वाला यह चित्रगुप्त का मन्त्र है।** ७, ६, ९, ८, ६ एव २ वर्णों के पड्ङ्गन्यास करें। किरीट, श्वेतवस्त्र, विचित्र आसन पर स्थित, पाप एवं पुण्य के लिखने वाले चित्रगुप्त की हम पूजा करते हैं॥ १-४॥

यह मन्त्र ३८ हजार बार जपने पर सिद्ध हो जाता है। राजद्वार में विवाद पर और युद्ध में विजय के लिए तथा जो लेखक (भगवान् चित्रगुप्त) के इस मन्त्र को राजा के आँगन (राजा के परिसर में) भजता है।

उसे सम्मान, यश, वंश की वृद्धि एवं स्वर्ग प्राप्त होता है॥ ५-६॥

× × ×

धर्मराज मन्त्र प्रयोग

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि यममन्त्रमघापहम्। ॐ क्रों ह्रीं आं च तद्बीजं ङेन्तं वैवस्वतं वदेत्॥ १॥
धर्म्मराजाय भक्तानुग्रहकृते नमो वदेत्। चतुर्विंशतिवर्णोयं यममन्त्रोखिलेष्टदः॥ २॥
त्रिद्वीष्विष्वगयुग्मार्णैः षडङ्गानि स्मरेद्यमम्। मेघश्यामं प्रसन्नास्यं नानालङ्कारसंयुतम्॥ ३॥
महिषस्थं दण्डधरं संस्तुतं पितृभिर्वृतम्। नानारूपधरैर्दूतैः श्वेतवस्त्रं भजेद्यमम्॥ ४॥
पूजयेत्षड्दलेङ्गानि वसुपत्रे ग्रहाष्टकम्। दिगीशांश्च यमस्थाने चित्रगुप्तं प्रपूजयेत्॥ ५॥
वज्रादींश्चापि तद्बाह्ये यमपूजा प्रकीर्त्तिता। वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं हुनेदाज्यान्वितैस्तिलैः॥ ६॥
एवं सिद्धमनुर्मन्त्री निग्रहानुग्रहक्षमः। तस्य संस्मरणादेव सकलापन्निवारणम्॥ ७॥

(मेरुतन्त्र, प्रकाश २४, यम मन्त्र)

अब मैं पाप नाशक **यम** के मन्त्र को कहता हूँ।

उपर्युक्त प्रयोग के लिये, मंत्रमहार्णव में दिये गये **धर्मराज** के मंत्र का प्रयोग करें। मंत्र इस प्रकार है—

'ॐ क्रों ह्रीं आं वै वैवस्वताय धर्मराजाय भक्तानुग्रहकृते नमः।' इति चतुर्विंशत्यक्षरो मन्त्रः।

यह २४ अक्षरी धर्मराज का मंत्र है।

'ॐ क्रों ह्रीं आं' उसका बीज है तथा अन्त में वैवस्वत ऐसा कहें।

भक्तों पर कृपा करने वाले धर्मराज को नमस्कार है। २४ वर्ण वाला **यमका मन्त्र समस्त अभीष्ट को देने वाला है।** ३, २, ५, ५, ७ एवं २ वर्णों का यम का छः अंगों का स्मरण करें। मेघ के समान श्याम वर्ण वाले, प्रसन्न मुख वाले, अनेक अलंकार से परिपूर्ण, महिष (भैसा) पर सवार, दण्डधारी पितरों से घिरे हुए, अनेकरूप के धारण करने वाले दूतों से युक्त श्वेत वस्त्रधारी यमराज का भजन करता हूँ। छ दल पर उनके अंग की पूजा करें। आठ पत्ते पर आठ ग्रहों की पूजा करें।

दिक्पालों और यम के स्थान (दक्षिण दिशा) में 'भगवान् चित्रगुप्त' की पूजा करें।

बाहर यम की पूजा करें ऐसा कहा गया है। २४ लाख यम के मन्त्र की पूजा करके घी मिश्रित तिल से हवन करें।

इस प्रकार यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है जो पकड़ने (आकर्षण) एवं कृपा करने में समर्थ है। यमराज के स्मरण मात्र से सम्पूर्ण पापों का निवारण हो जाता है।

☞ **यमराज के स्वामी-भगवान् चित्रगुप्त की स्तुति किये बिना यमराज का पूजन निष्फल कहा गया है।**

× × ×

श्रीचित्रगुप्तअष्टोत्तरशतनामस्तोत्र

विचित्रः पण्डितः लेखकः ब्रह्मपुत्रः ब्राह्मणः। लोकशासकः विप्रेन्द्रः महाकालः किरीटिनः॥ १ ॥
अक्षरः अक्षरदाता कायस्थः धर्माधिकारी। महाबाहुः कमललोचनः लेखनीधारकः॥ २ ॥
श्यामः पट्टिकाधारकः मषीभाजनसंयुतः। ब्रह्मप्रियः पुरुषः भद्रः धौरेयनिवासिनः॥ ३ ॥
उज्जयिनीवासी तपोधनः क्षिप्रातटस्थितः। ब्रह्मसमुद्भवः सुगुप्तांगः द्वादशपुत्रवान्॥ ४ ॥
शुभः शान्तिदः शुभाचारः सुव्रतः शुभाननः। काकपक्षधरः महात्मा सर्वदैवलेखकः॥ ५ ॥
निराकारः मोक्षदायकः भक्तानुग्रहकृतः। धर्मलेखकः आर्यः नरकार्तिप्रशान्तकरः॥ ६ ॥
चन्द्रहासधरः नृशंसः विचित्रासनस्थितः। श्वेतवस्त्राभूषितः धीमान् पापपुण्यलेखकः॥ ७ ॥
धर्मराजसभासंस्थः धर्मवाक्यप्रबोधकः। कृताकृतविवेकीः धर्मज्ञः केत्वधिदेवता॥ ८ ॥
कम्बुग्रीवः व्यूढशीर्षः पूर्णचन्द्रनिभाननः। द्विभुजः सौम्यदर्शनः सर्वलोकार्थचिन्तकः॥ ९ ॥
महामतिः महाप्रभुः सर्वयोनिनिर्धारकः। अव्यक्तजन्मनः पावकः आत्मासर्वदेहगः॥ १०॥
पुरुषोत्तमः सिद्धिदायकः तिमितलोचनः। दशाष्टदोषरहितः धर्माधर्मविशारदः॥ ११॥
शतसहस्त्रभृत्यवान् कितवस्वर्गदातारः। विप्रवरदायकः श्रीदः यमदूतहन्तारः॥ १२॥
धर्माधर्मविचारज्ञः यमदण्डनिवारकः। विष्णुपददातारः चित्रः पितृदोषहन्तारः॥ १३॥
दक्षिणद्वारमाश्रितः वंशवृद्धिकरः यमः। स्वर्गदायकः परमेष्ठीः कलहाउद्धारकः॥ १४॥
भीषणः महायशः राजद्वारेजयदायकः। विवादेजयदायकः संग्रामेजयदायकः॥ १५॥
प्रलयः पूर्णकामः कायस्थजातिमासादनः। कायस्थपालकः कामदः लेखकस्यपालकः॥ १६॥
तपस्वीपुत्रः तेजस्वी त्रिकालज्ञः यमसखा। यमवाहिकाधिकारीः जन्मसम्पत्संहारकः॥ १७॥
कीर्तिदः ज्ञानदः सरस्वतीपुत्रः नमोनमः। चित्रगुप्त! महाबाहो ममायुर्वरदो भव॥ १८॥
अष्टोत्तर शतनामानि चित्रस्य सनातनः। भक्तियुक्तेन मनसा ये पठन्ति नरोत्तमाः॥ १९॥
दीर्घायुषो भविष्यन्ति सर्वव्याधि विवर्जिता। मृते विष्णुपदं यान्ति यत्र यान्ति तपोधनाः॥ २०॥
पुनर्गर्भनिवारणाय पितृणाम् तारणाय। संकलिता शैलेशेन श्रीवास्तव्यः गौड द्विजः॥ २१॥
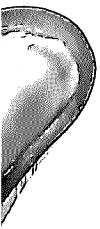
भगवान् चित्रगुप्त के अन्य मन्त्र

पौराणिक मन्त्र–

ॐ चित्रगुप्ताय नमः।

महर्षि मुद्गल द्वारा उपासित पौराणिक मन्त्र–

चित्रगुप्त नमस्तुभ्यं विचित्राय नमो नमः। नरकार्ति प्रशांत्यर्थम् कामान्यच्छ ममेप्सितान्॥

मंत्रमहार्णव, मंत्रमहोदधि एवं मेरुतंत्र में मन्त्र–

ॐ नमो विचित्राय धर्म लेखकाय यम वाहिकाधिकारिणे म्ल्व्यूं जन्म-सम्पत्-प्रलयं कथय-कथय स्वाहा।

राजा सौदास द्वारा उपासित पौराणिक मन्त्र–

मषीभाजनसंयुक्तश्चरसि त्वं महीतले। लेखनी-कठिनीहस्त चित्रगुप्त नमोऽस्तु ते॥
चित्रगुप्त! नमस्तुभ्यं निगमाक्षरदायक। कायस्थजातिमासाद्य चित्रगुप्त नमोऽस्तु ते॥
येषां त्वया लेखनस्य जीविका येन निर्मिता। तेषां च पालको यस्मात्ततः शान्तिं प्रयच्छ मे॥

भीष्म द्वारा उपासित पौराणिक मन्त्र–

शान्तिदः प्रलयं चैव भोगाभोगकृताऽकृतम्। लेखकानां सदा श्रीदश्चित्रगुप्त नमोऽस्तु ते॥
श्रिया सह समुत्पन्नः समुद्रमथने कृते। चित्रगुप्त! महाबाहो ममायुर्वरदो भव॥

× × ×

श्रीचित्रगुप्त-चालीसा

दोहा–

ब्रह्मपुत्र चित्रगुप्त की जो पाठ करै सतबार।
ज्ञान, दान-फल, धन मिलै मिलै मुक्ति संसार॥
प्रभु की महिमा गाई के ध्यावै घर संसार।
चित्रगुप्त के हाथ में जीवन की पतवार॥

चौपाई–

जय जय चित्रगुप्त प्रभु देवा। सुमिरत तुमही करत जो सेवा॥ १ ॥
जय चित्रगुप्त मोक्ष अधिकारी। सुमिरत है प्रभु सब नर-नारी॥ २ ॥
अपनी कृपा भक्त पर कीजै। कष्ट कलेस मिटा प्रभु दीजै॥ ३ ॥
इच्छामृत्यु भीष्म हैं पाये। बिष्णुलोक सौदास पठाये॥ ४ ॥
दुःख दारिद्र मिटै कर सेवा। केतु गरह के तुम अधिदेवा॥ ५ ॥
चर-अचर जग-जन यश गाते। सृष्टि पे शासन तुमही चलाते॥ ६ ॥
द्वारपाल धर्मध्वज सहयोगी। मुक्ति मिले पूजै जो भोगी॥ ७ ॥
भद्रशील पर कृपा जो कीन्हा। उनको भी बैकुण्ठ है दीन्हा॥ ८ ॥
एक जुआरी को इन्द्र बनाया। वो महादानी नृप बलि कहलाया॥ ९ ॥
जय जय ब्रह्मपुत्र ब्रह्मज्ञानी। जय जय चित्रगुप्त बरदानी॥ १० ॥
तुम ही हो सब दुःख के हंता। पूजै गुनै सुनै सब सन्ता॥ ११ ॥
तुमही पिता तुमही हो माता। हम सबके तुम भाग्य बिधाता॥ १२ ॥
चित्रमास प्रभु जनम जा लीन्हा। नया धान धन सब कुछ दीन्हा॥ १३ ॥
प्रथम मास प्रभु के ही नामा। पूजै घर-घर दुर्गा बामा॥ १४ ॥
चित्रपूर्णिमा कलश बिठावैं। बिधिपूर्वक मिलि पाठ करावैं॥ १५ ॥
जो नर पूजै अन्न-धन पावें। ता घर कबहुँ दारिद्र न आवें॥ १६ ॥
मृत्युलोक पर जब हम आये। मातु कालिका का यश गाये॥ १७ ॥
प्रभु संग दुर्गा पाठ जो गावैं। वह मानुस सब सिद्धि पावैं॥ १८ ॥
सिद्धिदात्री है मातु चण्डिका। करहु कृपा हे मातु अम्बिका॥ १९ ॥
कुलदेबी की पाठ जो करता। मन घट में अमृत वो भरता॥ २० ॥
हे कुल देबी हे कुल ज्ञानी। कृपा करहु हम पर सुखदानी॥ २१ ॥

जो जन प्रभु की महिमा गावैं। वो सीधे बैकुण्ठ ही पावैं॥ २२॥
चित्रगुप्त को जो निज ध्यावैं। ता पर ना कोई संकट आवैं॥ २३॥
प्रभु का मंत्र जपै जो सन्ता। वो नर ज्ञान दान धनवन्ता॥ २४॥
प्रभु ने किया स्वयं ही मंडित। सृष्टि के प्रथम बने तुम पंडित॥ २५॥
ब्रह्मपुत्र चित्रगुप्त सहाये। कर बिनती हम सब सुख पाये॥ २६॥
ब्रह्मा पूज्य बनाकर रखिये। स्वयं में प्रभु को रोज निरखिये॥ २७॥
भुजा विशाल चन्द्र मुख आगा। सुखद रूप देखि भाग्य है जागा॥ २८॥
हे कुल सानी हे कुल ज्ञानी। हम सब हैं बस तुम्हरे ध्यानी॥ २९॥
यज्ञोपवित विधिवत करवायैं। चित्रगुप्त को मन से ध्यावैं॥ ३०॥
जो जन करे जनेऊ धारण। ता पर मंत्र चले ना मारण॥ ३१॥
कलम तलवार जनेऊ धारो। हे पंडित तुम संकट टारो॥॥ ३२॥
नियम धरम सब तुमही रक्षत। ब्याधि काल को तुमही भक्षत॥ ३३॥
जो नर कलम को सिद्ध बनावैं। उससे फिर कोई पार ना पावैं॥ ३४॥
जिसको मिले कलम की सिद्धि। यश सम्मान हो धन की बृद्धि॥ ३५॥
चौरासी लाख जग जोनी। कृपा करहु प्रभु तुम्हरे होनी॥ ३६॥
चौदह यम में धर्मअधिकारी। समय काल सब तुमहि सुचारी॥ ३७॥
देहु दरस हम होय सुखारी। प्रभु तुम्हरे सब बनहि पुजारी॥ ३८॥
धुरिया ग्राम कुशिनारा वासी। जग चालीसा का अभिलासी॥ ३९॥
कवि मुकेश की ये अभिलासा। स्वयं लिखाये हृदय कर वासा॥ ४०॥

दोहा–

शंख-गर्दनी कमल-नयन कलम-पट्टिका हाथ।
पूरन चालीसा भयो सब सन्तन के साथ॥

[रचयिता—आचार्य मुकेश]

× × ×

॥ भगवान् चित्रगुप्त की आरती ॥

आरती चित्रगुप्त जी की, करूँ मैं तन-मन से हारी।
आरती चित्रगुप्त जी की, करूँ मैं तन-मन से हारी।

मोक्ष के मात्र तुम्हीं देवा, तुम्हें पूजे सब नर नारी॥
इष्ट हो राम-कृष्ण के तुम, केतु ग्रह के हो अधिदेवा॥
दान के देवा, यमों के स्वामी, आरती धर्मअधिकारी की।

करूँ मैं तन मन से हारी.......

मृत्यु पर अंकुश है तेरा, काल पर प्रभु तुम हो भारी।
तुम्हारी शरण जो आ जाये, वही इच्छित फल पा जाय॥
ज्ञान के देवा, धनों के स्वामी, आरती जन हितकारी की।

करूँ मैं तन मन से हारी.......

जै जै चित्रगुप्त यमेश, आरती करते कवि मुकेश।
मिटाये तन-मन-कष्ट कलेश, सृष्टि पर बस तुम ही सर्वेश॥
आयु के देवा, कलम के स्वामी, आरती सर्व उपकारी की।

करूँ मैं तन मन से हारी.......

[रचयिता—आचार्य मुकेश]

× × ×

परब्रह्मस्वरूप देवों के मंत्र

गणेश– १—ॐ गं गणपतये नमः।, २—ॐ हस्तिपिशाचिलिखे स्वाहा।, ३—ॐ वक्रतुण्डाय हुम्।

विष्णु– १—ॐ नमो नारायणय।, २—ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

लक्ष्मी– १—ॐ श्रीं क्लीं श्रीं नमः।, २—ॐ ऐं श्रीं ह्रीं क्लीं।,
३—ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं श्रीं सिद्ध-लक्ष्म्यै नमः।

ब्रह्मा– १—ॐ ब्रह्मणे नमः।, २—ॐ नमः ब्रह्माय।

सरस्वती– १—ॐ ऐं सरस्वत्यै नमः।, २—ॐ वदवद वाग्वादिनि स्वाहा।,
३—ॐ ह्रीं ऐं ह्रीं ॐ सरस्वत्यै नमः।, ४—ॐ ऐं वाचस्पतेऽमृते प्लवः प्लवः।

शिव– १—ॐ नमः शिवाय।, २—ॐ ह्रीं नमः शिवाय ह्रीं।, ३—ॐ नमो भगवते रुद्राय।

पार्वती– १—ॐ उमायै नमः।,

काली– १—ॐ क्रीं कालिके स्वाहा।, २—ॐ दक्षिणे कालिके स्वाहा।

दुर्गा– १—ॐ ह्रीं दुं दुर्गाय नमः।, २—ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चै।

× × ×

पाठक बन्धु! उपर्युक्त परब्रह्मस्वरूप की आराधना ही लोक-परलोक में फलदायी है। परब्रह्मस्वरूप की आराधना—भगवान् चित्रगुप्त की पूजा के बिना अधूरी है। आप परब्रह्मस्वरूपों की प्रसन्नता के लिये जो पूजा करते हैं, **उसका फल आपको लोकशासकमहाकालचित्रगुप्त से ही पाना है।** इसलिये इन मंत्रों के साथ भगवान् चित्रगुप्त के मंत्रों का नित्य जप, अवश्य करें।

ऐसा करने से आपके सत्कर्म का पूर्ण फल भगवान् चित्रगुप्त द्वारा प्राप्त होगा। परब्रह्मस्वरूप इन देवों की आराधना लोक में भोगदायक तथा परलोक में मुक्तिदायक है।

लोकशासकमहाकालचित्रगुप्त का उपहास करना सर्वनाश का कारण है। **इससे बचें!**

इस ग्रन्थ के पूर्व खण्ड में भगवान् चित्रगुप्त के विषय में जो आपने पढ़ा है। यही वेदोक्त तथा पुराणोक्त सत्यता है। चित्रगुप्त वंशीय ब्रह्मकायस्थों की विलक्षण प्रतिभा से ईर्ष्या के कारण कुछ मूढ़ लोगों ने बिना अग्रिम परिणाम पर विचार किये, ब्रह्मकायस्थों के पूर्वज भगवान् ब्रह्मा जिन्होंने ऋषि, देव तथा दानवों सहित सभी प्राणियों का निर्माण किया, उनको अपूज्य तथा भगवान् चित्रगुप्त जो कि लोकशासक तथा सभी ऋषि, देव तथा दानवों के स्वामी और ऋषि, देव तथा दानवों से १० गुने अधिक शक्ति के हैं, उन्हें यमराज जैसे ऋषिकुल में उत्पन्न छोटे देव का मुंशी कहकर दुष्प्रचार किया और इन महाशक्तिशाली परब्रह्मस्वरूप भगवान् ब्रह्मा तथा भगवान् चित्रगुप्त का अपहास किया। इसे आज भी आप सनातनी समाज में चर्चा करके देख सकते हैं।

भगवान् ब्रह्मा से ब्रह्मास्त्र बिना भगवान् ब्रह्मा की आराधना के सम्भव नहीं था। इसी प्रकार भगवान् चित्रगुप्त के आदेश से ही मृत्युलोक अथवा परलोक में ब्राह्मण सहित सभी मनुष्यों को प्रत्येक क्षण सुख-दुख को भोगना है। **भगवान् ब्रह्मा एवं भगवान् चित्रगुप्त के दुष्प्रचार के कारण ही सनातनधर्म निरन्तर ज्ञानविहीन होकर नष्ट होता जा रहा है।** भगवान् ब्रह्मा एवं भगवान् चित्रगुप्त को अपूज्य एवं उपहास करके विष्णु तथा भगवान् शंकर की कृपा सम्भव ही नहीं है, क्योंकि जहाँ **भगवान् ब्रह्मा-विष्णु के पुत्र हैं** वहीं **भगवान् ब्रह्मा भगवान् शंकर के पिता हैं।** इनकी उत्पत्ति आप पढ़ चुके हैं।

भगवान् विष्णु, भगवान् ब्रह्मा, भगवान् शंकर और भगवान् चित्रगुप्त एक शक्ति के, एक ही परिवार के, तथा परब्रह्म के स्वरूप हैं। इनमें से किसी की निन्दा या उपहास करके अन्य की कृपा सम्भव ही नहीं है। **इसी दुष्प्रचार के कारण जो लोग पूजा-पाठ में लीन हैं, उनके घरों में भी भगवान् चित्रगुप्त के भेजे यमदूत अकालमृत्यु, रोग, व्याधि बनकर विद्यमान हैं। जिससे लोगों का विश्वास धर्म और पूजा-पाठ से नष्ट होता जा रहा है।** अभी भी समय है, भगवान् ब्रह्मा को अपूज्य न कहें और भगवान् चित्रगुप्त का उपहास न करें, बल्कि इनकी नित्य उपासना करें।

सत्यता से अवगत होकर अपने जीवन को पूर्णतया सुखद तथा सफल बनायें। **ये हमारी शुभकामना है।**

यही धर्म है, यही सत्य है, यही सनातन है।

× × ×

भगवान् ब्रह्मा के पुत्र भगवान् चित्रगुप्त की भाँति इनके वंशज भी सनातनधर्म में परमपवित्र हैं, ये **द्वादशगौडब्राह्मण** हैं। इनके विरुद्ध भी दुष्प्रचार करके कहीं उन्हें क्षत्रिय, कहीं वैश्य, कहीं शूद्र, तो कहीं संकर जाति का, अब्राह्मण कहकर भ्रमित किया गया, जबकि सनातनधर्म में **चित्रगुप्तवंशीय ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मणों** से श्रेष्ठ कोई कुल नहीं है।

ब्राह्मण वर्ण में २ कुल से उत्पन्न ब्राह्मण हैं। **१-देवकुलीनब्राह्मण, २-ऋषिकुलीनब्राह्मण।**

ब्रह्मकायस्थों के विरुद्ध दुष्प्रचार करने के कारण ब्राह्मण समाज कमजोर हो गया। दुष्प्रचार के कारण उच्चक्षमता के ब्रह्मकायस्थ **धर्मपीठ** पर कम हैं। जिसके कारण सनातन धर्म का विस्तार नहीं हो पा रहा है। जिन धार्मिक संस्थाओं का नेतृत्व ब्रह्मकायस्थों ने किया वह विश्वस्तरीय है। जैसे—स्वामी विवेकानन्द, महर्षि महेश योगी, अरबिन्दो घोष आदि।

आइये ब्रह्मकायस्थों के परमपवित्र उद्भव को जानें—

॥ कायस्थ खण्डः ॥

ब्रह्म
कायस्थ
गौड
ब्राह्मणाः

ब्राह्मणों की संक्षिप्त उत्पत्ति

सृष्ट्यारंभे ब्राह्मणस्य जातिरेका प्रकीर्तिता।

सृष्टि के प्रारम्भ में ब्राह्मणों की केवल एक ही जाति थी।

एवं पूर्वं जातिरेका देशभेदाद्द्विधाऽभवत्।

इसके पश्चात् स्थान भेद के कारण यह जाति दो भाग में विभक्त हो गई।

गौडद्राविडभेदेन तयोर्भेदा दश स्मृताः।

यह ब्राह्मण विन्ध्य पर्वत से दो भाग में विभक्त हो गये।

विन्ध्य पर्वत के उत्तर रहने वाले ब्राह्मण 'गौड' हुए। ये पाँच प्रकार के हैं, इन्हें 'पंचगौड' कहा जाता है। इसी प्रकार विन्ध्य पर्वत के दक्षिण रहने वाले ब्राह्मण 'द्रविड' हुए। ये भी पाँच प्रकार के हैं, इन्हें 'पंचद्रविड' कहा जाता है।

प्राचीन काल से उत्तर भारत को गौडदेश कहा जाता था। उत्तर भारत में विद्यमान ब्राह्मण 'गौड' कहलाते हैं। पंचगौड ब्राह्मण इन्हीं ब्राह्मण के परिवर्तित रूप हैं। इनका वर्णन आगे दिया जा रहा है—

गौडा सारस्वता कान्य-कुब्जा उत्कलमैथिला। पंचगौडा इति ख्याता विंध्यस्योत्तरवासिनः।

गौड, सारस्वत, कान्यकुब्ज, उत्कल तथा मैथिल 'पंचगौड' कहलाते हैं। ये विन्ध्य पर्वत के उत्तरक्षेत्र में निवास करते हैं।

गौड—सृष्टि के प्रारम्भ में ही चित्रगुप्त वंशीय १२ ब्रह्मकायस्थों की उत्पत्ति हुई। जिन्हें भगवान् ब्रह्मा एवं सावित्री ने स्वयं आकर संस्कार हेतु १२ ऋषियों [मांडव्य, गौतम, श्रीहर्ष, हारित, वाल्मीकि, वसिष्ठ, सौभरि, दालभ्य, हंस, भट्ट, सौरभ तथा माथुर] को सौंपा।

उनसे शिक्षित होकर भगवान् चित्रगुप्त के १२ वंशज '**द्वादशगौडब्राह्मण**' हुये।

सारस्वत—जो ब्राह्मण सरस्वती नदी के तटपर निवास करने लगे, वे सरस्वती नदी के तटपर निवास करने के कारण 'सारस्वत ब्राह्मण' हो गये।

कान्य-कुब्ज—यह दो प्रकार के हैं। रावण के वध के पश्चात् पुरूषोत्तम राम ने ब्राह्मण हत्या के प्रायश्चित स्वरूप एक यज्ञ किया। इस यज्ञ में 'कान्य' एवं 'कुब्ज' नाम के ब्राह्मणों को आमंत्रित किया। यज्ञ के पश्चात् कान्य कन्नौजदेश में जाकर बस गये। कान्य के वंशज 'कान्यकुब्ज ब्राह्मण' कहलाये। कुब्ज यज्ञ के पश्चात् सरयू नदी के पूरब आकर बस गये। इस कारण यह 'सरयूपारीण ब्राह्मण' कहलाये।

उत्कल—जो ब्राह्मण उत्कलदेश [उड़ीसा] में जाकर बस गये, वे उत्कलदेश [उड़ीसा] में बसने के कारण 'उत्कल ब्राह्मण' कहलाये।

मैथिल—जो ब्राह्मण मिथिला में बस गये, वे मिथिला [बिहार] में बसने के कारण 'मैथिल ब्राह्मण' कहलाये।

उपर्युक्त पाँचो गौड ब्राह्मणों के परिवर्तित रूप हैं। इसीलिये इन पाँचो ब्राह्मणों को 'पंचगौड' ब्राह्मण कहा जाता है।

इन पंचगौड ब्राह्मणों में १२ ब्रह्मकायस्थ 'देवकुल' से तथा शेष सभी ब्राह्मण 'ऋषिकुल' से हैं।

× × ×

कायस्थानांसमुत्पत्ति

[द्वादशगौडब्राह्मणों की उत्पत्ति]

पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय-१, श्लोक-४९ में लिखा है—

ब्रह्मोत्पत्तिस्तु वै यत्र तं प्रदेशं वदाम्यहम्। कायस्थानांसमुत्पत्तिं गयाव्याख्यानमेव च॥ ४९॥

[पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय-१]

"**कायस्थानांसमुत्पत्ति**" मूल एवं हिन्दी अनुवाद के साथ आगे दिया जा रहा है—

सूत उवाच-

एकदा ब्रह्मलोके तु यमः प्रोवाच कं प्रति। चतुरशीतिलक्षाणां शासनेऽहं नियोजितः॥ १ ॥
असहायः कथं स्थातुं शक्नोमि पुरुषर्षभ।

सूत बोले—एक बार यमराज ब्रह्मलोक में जाकर ब्रह्माजी से बोले! आपने मुझे चौरासी लाख योनियों पर शासन करने के लिए नियुक्त किया है। हे पुरुषर्षभ! मैं असहाय [असमर्थ] हूँ, इस कार्य को कैसे करूँ॥ १-१$^{1}/_{2}$॥

ब्रह्मोवाच-

प्राप्स्यते पुरुषः शीघ्रमित्युक्त्वा विससर्ज तम्॥ २ ॥
धर्मराजे गते ब्रह्मा समाधिस्थो बभूव ह। तत् शरीरात् महाबाहुः श्यामः कमललोचनः॥ ३ ॥
लेखनीपट्टिकाहस्तो मषीभाजनसंयुतः। स निर्गतोऽग्रतस्तस्थौ नाम देहीति चाब्रवीत्॥ ४ ॥

भगवान् ब्रह्मा बोले—हे यमराज तुमको अतिशीघ्र कोई पुरुष मिल जायेगा ये कह कर ब्रह्माजी ने यमराज को वहाँ से विदा कर दिया। **यमराज के चले जाने के बाद भगवान् ब्रह्मा समाधि में लीन हो गये। उनके शरीर से एक व्यक्ति निकले, जिसकी बाँह घुटने तक लम्बी, श्यामवर्ण वाले, कमल के समान आँखों वाले, हाथ में कलम, पट्टिका और दावात लिए हुए थे।** उन्होंने ब्रह्मा से पूछा कि मेरा नाम क्या है?॥ २-४॥

ब्रह्मोवाच-

गच्छ पुरुष भद्रं ते तप आचरतामिति। इत्याज्ञप्तः स पुरुषो ययौ धौरेयदेशकान्॥ ५ ॥
उज्जयिन्याः समीपे तु क्षिप्रायाश्च तटे शुभे। पंचक्रोशात्मके क्षेत्रे तपस्तप्तुं महत्तरम्॥ ६ ॥
ततः कतिपये काले ब्रह्मा लोकपितामहः। उज्जयिन्यां ततः श्रीमानाजगाम मुदान्वितः॥ ७ ॥
यजनार्थाय यज्ञैश्च नानासंभारसंयुतः। चित्रगुप्तोऽपि धर्मात्मा कन्याः प्राप सुलक्षणाः॥ ८ ॥
वैवस्वतमनोः कन्याश्चतस्त्रः शुभलक्षणाः। अष्टौ सुरूपा नागीया पितृभक्तिपरायणाः॥ ९ ॥
तासां समभवन्पुत्रा द्वादशैव जगत्प्रियाः। ब्रह्मा वर्षसहस्त्रं तु यज्ञैरिष्ट्वा सुदक्षिणैः॥ १०॥
चित्रगुप्तमुवाचेदं वाक्यं धर्मार्थमेव च।

भगवान् ब्रह्मा बोले—हे भद्र पुरुष तुम तप का आचरण करो, ऐसी आज्ञा प्राप्त करके वह पुरुष [चित्रगुप्त] धौरेय देश को चल दिये। **उज्जयनी नगरी के समीप क्षिप्रा नदी के सुन्दर तट पर पाँच कोश के इस पुण्य क्षेत्र में घोर तप करने लगे।** उस पुरुष के तपस्या करने के कुछ दिन बाद प्रसन्न मुद्रा में पितामह ब्रह्मा उज्जयनी नगरी में पहुँचे। उन्होंने अनेक सामग्रियों से युक्त एक महान यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। तत्पश्चात् धर्मात्मा चित्रगुप्त को विवाह हेतु सुन्दर लक्षणों वाली कन्याएं प्राप्त हुई। **सुन्दर लक्षणों वाली चार कन्यायें वैवस्वतमनु से और पिता की सेवा करने में तत्पर आठ कन्यायें नागों [नागर ब्राह्मणों] से प्राप्त हुईं।** इस प्रकार बारह स्त्रियों से संसार

को प्रिय लगने वाले तदनुरूप **बारह पुत्र उत्पन्न हुए** और ब्रह्मा हजार वर्ष तक दक्षिणा देने वाले इस यज्ञ को पूर्ण किये। चित्रगुप्त से अत्यन्त प्रिय धर्म एवं अर्थ से युक्त वाणी से भगवान् ब्रह्मा बोले- ॥ ५—१०१/२ ॥

ब्रह्मोवाच-

चित्रगुप्त महाबाहो मत्प्रियोऽस्मत्समुद्भवः॥ ११ ॥
चित्रगुप्त सुगुप्तांग तस्मात् नाम्ना सुविश्रुतः। मम कायात् समुद्भूतः सर्वांगंप्राप्य सत्वरम्॥ १२ ॥
तस्मात् कायस्थविख्याता लोके त्वं तु भविष्यसि। एते वै तव पुत्राश्च काक पक्षधराः शुभाः॥ १३ ॥
सर्वे षोडशवर्षीयाः शुभाचाराः शुभाननाः। धर्मराजगृहं गच्छ कार्यं मे कुरु सुव्रत॥ १४॥
सत् असत् सर्वजन्तूनां लेखकः सर्वदैव हि।

भगवान् ब्रह्मा बोले—हे महाबाहो चित्रगुप्त तुम मुझसे उत्पन्न हुए हो, इसलिए तुम मेरे अत्यन्त प्रिय हो। तुम्हारा अंग गुप्त है इसलिए तुम **चित्रगुप्त** के नाम से संसार में प्रसिद्ध होगे। तुम मुझसे उत्पन्न हुए हो इसलिए शीघ्र सभी अंगों को प्राप्त करोगे और सुन्दर शरीर वाले होगे। मेरी काया से उत्पन्न होने के कारण तुम संसार में **'कायस्थ'** नाम से विख्यात होगे, और तुम्हारे सोलह वर्ष के सभी पुत्र, काक पक्ष [कौए का पंख] धारण करने वाले, सदाचारी, सुन्दर मुख एवं उत्तम आचरण करने वाले होंगे। **हे सुव्रत [धर्मनिष्ठ] धर्मराज के गृह [यमलोक] में जाकर मेरा कार्य करो और सत्-असत् [कीटाणु से लेकर इन्द्र आदि देव तक] सर्वजन्तु [सभी प्राणियों] के सर्वदैव [सबके भाग्य] को लिखो** ॥ ११—१४१/२ ॥

एतान् दास्यामि सर्वान्वै ऋषिभक्तिपरांस्तव॥ १५ ॥
एवमुक्त्वा तु विप्रेभ्यो ददौ लोकपितामहः।

भगवान् ब्रह्मा ऋषियों से बोले कि, चित्रगुप्त के सभी पुत्रों को जो कि ऋषि-भक्ति परायण हैं, मैं तुम्हें देता हूँ। ऐसा कहकर लोक पितामह भगवान् ब्रह्मा ने चित्रगुप्त के पुत्रों को एक-एक करके ऋषियों को दे दिया॥ १५—१५१/२ ॥

'निगम' कायस्थगौडब्राह्मणों की उत्पत्ति

मांडव्याय ददौ पुत्रं सुरूपमृषिवल्लभम्॥ १६ ॥
मंडपाचलसान्निध्ये मंडपेश्वरसन्निधौ। मंडपेश्वरीयादेवी वर्तते जगदंबिका॥ १७ ॥
गृहीत्वा गतवान् सोऽपि ऋषिर्मांडव्यसंज्ञकः। नाम्नाश्रीनैगमः सोऽपि कायस्थो देवनिर्मितः॥ १८ ॥
मांडव्यास्तत्र श्रीगौडागुरवः शंसितव्रताः। नैगमास्तेऽपि बहवः ऋषिभक्तिपरायणाः॥ १९ ॥
जाता वै नैगमास्तत्रशतशोऽथ सहस्रशः। गौडास्तेऽपि च मांडव्य शिष्यास्ते गुरवःस्मृताः॥ २० ॥
शिष्याणां चैव लक्षैकं प्रसंगात्समुदीरितम्। तस्मादर्धं गतास्ते वै लंभितं वासयन्पुरम्॥ २१ ॥

भगवान् ब्रह्मा ने **प्रथम पुत्र** ऋषियों में श्रेष्ठ माण्डव्य ऋषि को दिया, जो मंडप पर्वत के पास रहते थे। जहाँ पर **मंडपेश्वरदेव** और जगत की माता **मण्डपेश्वरीदेवी** विद्यमान हैं। उनके पास चित्रगुप्त के पुत्र को लेकर माण्डव्य ऋषि चले गये। **कायस्थदेव [चित्रगुप्त देव]** द्वारा निर्मित **श्रीनैगमगौड** नाम से प्रसिद्ध हुए, और **श्रीगौड [माण्डव्य] गोत्रीय कायस्थ, गुरु के रूप में प्रसिद्ध हुए।** नैगम गौड जो ऋषि भक्ति परायण हैं उनसे सौ हजार नैगमों की उत्पत्ति हुई, **गौड व माण्डव्य गोत्रीय शिष्य गुरु [गुरुकुल के गुरु] के रूप में प्रसिद्ध हुये।** इन शिष्यों की संख्या एक लाख थी जो प्रसंगानुसार कहा जायेगा। इनमें से ५० (पचास) हजार लम्भित नगर बनाकर निवास करने लगे॥ १६—२१ ॥

☞ भगवान् ब्रह्मा की आज्ञा से माण्डव्य ऋषि ने भगवान् चित्रगुप्त के पुत्र को शिक्षित किया जो निगम नाम से जाने जाते हैं। इनका वास मालवा क्षेत्र में है। **'निगम' वेद को कहते हैं।** पूर्व काल में निगमगौड वेदों के महापण्डित थे, इसीलिए **यह वेदों के नाम से ही निगम कहे जाते हैं। ये गुरू होकर मांडव्यगोत्र का विस्तार किये।**

× × ×

'गौड' कायस्थगौडब्राह्मणों की उत्पत्ति

द्वितीयं तु सुतं तस्य गौतमाय ददौ ततः। गौडेश्वरी तु या देवी वर्तते जगदंबिका॥ २२॥ श्रीगौडः सोऽपि कायस्थो बहुधा विश्रुतःशुचिः। गौतमो दत्तावांस्तेषां गुर्वर्थं तानृषीन् विभुः॥ २३॥ श्रीगौडास्तत्र शिष्यावै गुरुवस्ते तपस्विनः।

भगवान् ब्रह्मा ने **द्वितीय पुत्र** गौतम ऋषि को दिया। इनकी देवी **जगदीश्वरीगौडेश्वरी** हैं। **श्रीगौड नाम के कायस्थ** पवित्र मन वाले संसार में विख्यात हुए। ब्रह्मा ने उन ऋषियों को कल्याण के लिए गौतम को दे दिया। **श्रीगौड (गौतम) गोत्रीय कायस्थ तपोनिष्ठ गुरु [गुरुकुल के गुरु] के रूप में प्रसिद्ध हुये**॥ २२—२३१/२॥

☞ भगवान् ब्रह्मा की आज्ञा से गौतम ऋषि ने भगवान् चित्रगुप्त के पुत्र को शिक्षित किया जो गौड नाम से जाने जाते हैं। **ये गुरू होकर गौतम गोत्र का विस्तार किये।**

× × ×

'श्रीवास्तव' कायस्थगौडब्राह्मणों की उत्पत्ति

तृतीयं तु सुतं तस्य श्रीहर्षं दत्तवांस्ततः॥ २४॥ श्रीहर्षेश्वरसान्निध्ये गतवानृषिसत्तमः। सरोरुहे शुभे देशे शुभे च सरयूतटे॥ २५॥ सरोरुहेश्वरी यत्र वर्तते जगदंबिका। श्रीगौडास्तस्य वै शिष्या गुर्वर्थं संप्रकल्पिताः॥ २६॥ श्रीवास्तव्याश्च कायस्था नानारूपा ह्यनेकशः। श्रीगौडानां च लक्षैकं शिष्याणां संप्रकीर्तितम्॥ २७॥ तस्मादर्धं गतास्तेऽपि ह्यवसन् जाह्नवीतटे।

भगवान् ब्रह्मा ने **तृतीय पुत्र** श्रीहर्ष ऋषि को दिया। चित्रगुप्त के पुत्र को लेकर श्रीहर्ष ऋषि सरोरुह नाम के सुन्दर स्थान एवं सरयू नदी के पावन तट पर चले गये जहाँ पर **श्रीहर्षेश्वरदेव** एवं **सरोरुहेश्वरीदेवी** रहती हैं। **श्रीगौड [श्रीहर्ष] गोत्रीय शिष्य गुरु [गुरुकुल के गुरु] के रूप में प्रसिद्ध हुए। श्रीवास्तव कायस्थ ही गौडब्राह्मण के नानारूप में हुए।** श्रीगौड के एक लाख शिष्य बताये गये जिनमें से ५० हजार जाह्नवीतट [गंगा के तट] पर जाकर निवास करने लगे॥ २४—२७१/२॥

☞ भगवान् ब्रह्मा की आज्ञा से श्रीहर्ष ऋषि ने भगवान् चित्रगुप्त के पुत्र को शिक्षित किया जो श्रीवास्तव नाम से जाने जाते हैं। **ये गुरू होकर श्रीहर्ष गोत्र का विस्तार किये।** भगवान् चित्रगुप्त के यह पुत्र **श्रीविद्या** अर्थात **देवी त्रिपुरसुन्दरी/षोडषी** के उपासक थे, इसलिये यह **'श्रीवास्तव'** कहलाये।

× × ×

'श्रेणीपति' कायस्थगौडब्राह्मणों की उत्पत्ति

चतुर्थं तु सुतं तस्य हारीताय ददौ ततः॥ २८॥ गृहीत्वा गतवान् सोऽपि देशे हर्याणके शुभे। हारीतेश्वरसान्निध्ये हारितस्याश्रमे शुभे॥ २९॥ हर्याणेशी यत्र देवी वर्तते जगदंबिका। कायस्थाः श्रेणिपतयः विवृताश्च सहस्रशः॥ ३०॥ हर्याणाश्चैव श्रीगौड़ा गुरुत्व संप्रणोदिताः।

भगवान् ब्रह्मा ने **चतुर्थ पुत्र** हारीत ऋषि को दिया। हारीत ऋषि उस पुत्र को लेकर हर्याणक [हरियाणा] नामके सुन्दर देश में चले गये जहाँ पर **हारीतेश्वरदेव** एवं **हर्याणेशीदेवी** हैं और वहीं हारीतऋषिका आश्रम है। **चित्रगुप्तके वंश में उत्पन्न होने वाले कायस्थ श्रेणीपति गौड ब्राह्मण हुए। श्रीगौड [हारित] गोत्रीय कायस्थ तपोनिष्ठ गुरु [गुरुकुल के गुरु] के रूप में निर्देश देने वाले हुये,** जो हजारों की संख्या में है॥ २८—३०१/२ ॥

☞ भगवान् ब्रह्मा की आज्ञा से हारित ऋषि ने भगवान् चित्रगुप्त के पुत्र को शिक्षित किया जो श्रेणीपति (हर्याणा) गौड नाम से जाने जाते हैं। हारित गौड ही कुलश्रेष्ठ कहलाये। **ये गुरू होकर हारित गोत्र का विस्तार किये।**

☞ भगवान् चित्रगुप्त के यह पुत्र माताकाली के सशक्त साधक थे, **'कुलश्रेष्ठ'** माताकाली का ही एक नाम है। इसलिये इन्हें माताकाली के नाम से ही **'कुलश्रेष्ठ'** कहा जाता है। यथा—

ॐ कुलश्रेष्ठायै नमः। (ककारादिकालीसहस्त्रनाम/सहस्त्रनामावली)

× × ×

'वाल्मीकि' कायस्थगौडब्राह्मणों की उत्पत्ति

पंचम तु सुतं तस्य वाल्मीकाय ददौ ततः॥ ३१॥
गृहीत्वा गतवान् सोऽह्यर्बुदारण्यके शुभे। देशेऽर्बुदे महारण्ये वल्मीकाश्रम संज्ञके॥ ३२॥
वाल्मीकेश्वरसान्निध्ये कायस्थो देवनिर्मितः। वाल्मीकेश्वरिका यत्र वर्तते जगदंबिका॥ ३३॥
वाल्मीकाश्चैव कायस्था वर्द्धितास्तदनंतरम्। वाल्मीकाश्चैव गुरवो मुनिना संप्रकल्पिताः॥ ३४॥
रक्तशृङ्गाश्च इत्येते पार्श्वे पश्चिमतः शुभे। योजनद्वयमाने तु दूरे तिष्ठंति चाश्रमे॥ ३५॥
कियत्काले च संप्राप्ते यज्ञकर्म समाचरन्।

भगवान् ब्रह्मा ने **पञ्चम पुत्र** वाल्मीकि ऋषि को दिया। वाल्मीकि जी कायस्थ देव [चित्रगुप्त देव] द्वारा निर्मित उस बालक को लेकर अर्वुद नामक जंगल में जहाँ उनका सुन्दर आश्रम है, वहाँ चले गये। कायस्थदेव के द्वारा निर्मित स्थान पर **वाल्मीकेश्वरदेव** एवं **वाल्मीकेश्वरीदेवी** विराजमान हैं। वहीं से कायस्थ वंशीय वाल्मीकि गौड ब्राह्मण की वृद्धि हुई। **वाल्मीकि ऋषि के गोत्र में जो उत्पन्न हुए उनको मुनियों ने गुरु [गुरुकुल के गुरु] की संज्ञा दी।** उसके समीप पश्चिम भाग में दो योजन [आठ कोस] लम्बा रक्तशृङ्ग नाम का आश्रम है। **समयानुसार जहाँ यज्ञ का कार्य हुआ है**॥ ३१—३५१/२ ॥

☞ भगवान् ब्रह्मा की आज्ञा से वाल्मीकि ऋषि ने भगवान् चित्रगुप्त के पुत्र को शिक्षित किया जो वाल्मीकि नाम से जाने जाते हैं। **ये गुरू होकर वाल्मीकि गोत्र का विस्तार किये।**

☞ **वाल्मीकि ऋषि ने भगवान् चित्रगुप्त के पुत्रों से यज्ञ करवाया था।**

× × ×

'वसिष्ठ' कायस्थगौडब्राह्मणों की उत्पत्ति

षष्ठं तस्य सुतं ब्रह्मा वसिष्ठाय ददौ पुनः॥ ३६॥
गृहीत्वा गतवान् सोऽपि वसिष्ठो मुनिसत्तमः। अयोध्यामंडले देशे वसिष्ठेश्वरसन्निधौ॥ ३७॥
सरयूतटमासाद्य वर्तते जगदंबिका। वासिष्ठाश्चैव कायस्था गुरवोऽपि शुचिस्मृताः॥ ३८॥
वासिष्ठा ऋषिशिष्याश्च वसिष्ठस्य महात्मनः।

भगवान् ब्रह्मा ने **षष्ठम पुत्र** वसिष्ठ मुनि को दिया। वसिष्ठ **वसिष्ठेश्वरदेव** और **वसिष्ठादेवी** के पास सरयू नदी के तटपर अयोध्या नामक देश में ले गये। **वसिष्ठ गोत्रीय कायस्थ गुरू [गुरुकुल के गुरु] के नाम से**

प्रसिद्ध हुये। महात्मा वसिष्ठ ऋषि के शिष्य वसिष्ठ गौड के नाम से प्रसिद्ध हुए॥ ३६—३८½ ॥

☞ भगवान् ब्रह्मा की आज्ञा से वसिष्ठ ऋषि ने भगवान् चित्रगुप्त के पुत्र को शिक्षित किया जो वसिष्ठ गौड नाम से जाने जाते हैं। वसिष्ठ गौड ही अस्थाना कहलाये। **ये गुरू होकर वसिष्ठ गोत्र का विस्तार किये।**

अस्थाना कायस्थ गौड ब्राह्मण काली के अनन्य भक्त थे। इसलिये यह काली के ही नाम अस्थाना से पहचाने जाते हैं। **ॐ कुल स्थानायै नमः।** माता काली का ही एक नाम अस्थाना है।

× × ×

'सौरभ' कायस्थगौडब्राह्मणों की उत्पत्ति

सप्तमं तु सुतं तस्य ददौ सौभरये ततः॥ ३९॥
गृहीत्वा गतवान सोऽपि ब्रह्मर्षिः स्वाश्रम शुभम्। सौरभेय शुभे देशे सौरभेश्वरसन्निधौ॥ ४०॥
सौरभी देवता तत्र वर्तते जगदंबिका। सौरभाश्चैव कायस्थाः सौरभा गुरवः स्मृताः॥ ४१॥

भगवान् ब्रह्मा ने **सप्तम पुत्र** सौभर ऋषि को दिया। सौभर ऋषि उस पुत्र को लेकर अपने सुन्दर आश्रम सौरभ देश में गये जहाँ पर **सौरभेश्वरदेव** एवं **सौरभीदेवी** विद्यमान हैं। **सौभर गोत्रीय कायस्थ सौरभ गौड गुरु [गुरुकुल के गुरु] के रूप में प्रसिद्ध हुये**॥ ३९—४१½ ॥

☞ भगवान् ब्रह्मा की आज्ञा से सौभरि ऋषि ने भगवान् चित्रगुप्त के पुत्र को शिक्षित किया जो सौरभ गौड नाम से जाने जाते हैं। सौरभ गौड ही अम्बष्ट कहलाये। **ये गुरू होकर सौरभ गोत्र का विस्तार किये।**

☞ भगवान् चित्रगुप्त के यह पुत्र **'माता अम्बादेवी' के अनन्य भक्त थे।** यह **'माता अम्बादेवी'** को अपना इष्ट मानते थे। इसलिये यह माता अम्बा के नाम से ही **'अम्बष्ट'** कहे जाते हैं। आज भी इन अम्बष्टों के यहाँ अम्बादेवी की पूजा अर्चना सहज देखी जा सकती है।

× × ×

'दालभ्य' कायस्थगौडब्राह्मणों की उत्पत्ति

अष्टमं तु सुतं तस्य दालभ्याय ददौ ततः। गृहीत्वा गतवान् सोऽपि स्वाश्रमं मुनिसंयुतम्॥ ४२॥
देशो दुर्ललको यत्र दालभ्या च सरिद्वरा। दालभ्येश्वरसान्निध्ये दालभ्यश्चित्रगुप्तजः॥ ४३॥
दालभ्या इति या देवी वर्तते जगदंबिका। तच्छिष्याश्चैव दालभ्या गुरुत्वे ते प्रकीर्तिताः॥ ४४॥
तदुत्पन्ना द्विजाः सूत शतशोऽथ सहस्रशः। एकदाहिस्थलीं प्राप्ताः केचित्कुंडलिनीं गताः॥ ४५॥
याजयंति स्म दालभ्यान् कायस्थांश्चित्रगुप्तजान्।

भगवान् ब्रह्मा ने **अष्टम पुत्र** दालभ्य ऋषि को दिया। दालभ्यऋषि उस बालक को लेकर दुर्ललक देश में नदियों में श्रेष्ठ दालभ्य नदी के तटपर बने अपने आश्रम में ले गये। जहाँ **दालेभ्येश्वरदेव** और **दालभ्यादेवी** विराजमान हैं। **दालभ्य गोत्रीय [कायस्थ] गुरू [गुरुकुल के गुरु] के रूप में प्रसिद्ध हुये।** दालभ्य ऋषि के गौड ब्राह्मण सैकडों एवं हजारों की संख्या में हुए। इनके वंशजों में कुछ लोग अहि स्थली कुछ लोग कुंडलिनीपुर में गये। दालभ्य ऋषि ने चित्रगुप्त के पुत्रों [कायस्थों] से यज्ञ करवाये॥ ४२—४५½ ॥

☞ भगवान् ब्रह्मा की आज्ञा से दालभ्य ऋषि ने भगवान् चित्रगुप्त के पुत्र को शिक्षित किया जो दालभ्य गौड नाम से जाने जाते हैं। दालभ्य गौड ही कर्ण कहलाये। **ये गुरू होकर दालभ्य गोत्र का विस्तार किये।**

☞ **दालभ्य ऋषि ने भगवान् चित्रगुप्त के पुत्रों से यज्ञ करवाया था।**

कर्ण ब्रह्मकायस्थ मूल रूप से विन्ध्यपर्वत के दक्षिण **'कर्णाटक'** के आस-पास के निवासी हैं। इसलिये यह कर्ण

ब्रह्मकायस्थ विन्ध्यपर्वत के दक्षिण **आसाम, बंगाल, पूर्वीबिहार, उड़ीसा, आन्ध्रप्रदेश, कर्णाटक, तमिलनाडु** तथा **केरल** तक बहुतायत पाये जाते हैं। इन्हें दक्षिण भारत में **कर्णम्** तथा कहीं इन्हें **नियोगी ब्राह्मण** भी कहा जाता है। मूलतः यह **दालभ्य गौडब्राह्मण** हैं।

× × ×

'सुखसेन' कायस्थगौडब्राह्मणों की उत्पत्ति

नवमं तु सुतं तस्य हंस तमृषिसत्तमम्॥ ४६॥
गृहीत्वा प्रययौ हंसं हंसदुर्गस्य सन्निधौ। सुखसेनो महादेशो विद्यते गुणवत्तरः॥ ४७॥
हंसेश्वरस्यसान्निध्य ऋषीणां प्रवरः सुधीः। हंसेश्वरी यत्र देवी वर्तते जगदंबिका॥ ४८॥
तदुत्पन्नाश्च कायस्थाः सुखसेना ह्यनेकशः। ततस्तेभ्यो ददौ हंसान् शिष्यांश्च याजनानि वा॥ ४९॥
विप्रास्तु सुखदाश्चैव सुखसेना महौजसः। याजयंति सदाचाराः सुदेशेषु व्यवस्थिताः॥ ५०॥

भगवान् ब्रह्मा ने **नवम पुत्र** ऋषियों में उत्तम हंस ऋषि को दिया। जो उनको लेकर हंस नामक दुर्ग के समीप अपने आश्रम में गये। यह आश्रम सुखसेन देश में है जहाँपर **हंसेश्वरदेव** जो ऋषियों में श्रेष्ठ और विद्वान हैं तथा **हंसेश्वरीदेवी** रहती है। **हंस गोत्रीय कायस्थ सुखसेन गौड ब्राह्मण हुए। हंस ऋषि ने उनको [शिष्योंको] यज्ञ करने के लिये दिया।** सुखसेन गौड ब्राह्मण सुख देने वाले एवं महान तेजस्वी हुये। उनको यज्ञ कराने के लिए उस उत्तम देश में व्यवस्थित किया॥ ४६—५०॥

☞ भगवान् ब्रह्मा की आज्ञा से सुखसेन ऋषि ने भगवान् चित्रगुप्त के पुत्र को शिक्षित किया जो सुखसेन गौड नाम से जाने जाते हैं। सुखसेन गौड ही सक्सेना कहलाये। **ये गुरू होकर हंस गोत्र का विस्तार किये।**

☞ **हंस ऋषि ने चित्रगुप्त के पुत्रों से यज्ञ करवाया था।**

× × ×

'भट्टनागर' कायस्थगौडब्राह्मणों की उत्पत्ति

दशमं तस्य पुत्रं तु भट्टाख्यमुनये ददौ। गृहीत्वा गतवान् सोऽपि भट्टकेश्वरसन्निधौ॥ ५१॥
भट्टेश्वरी यत्र देवी वर्तते जगदंबिका। भट्टेश्वरो महादेवो यत्र शूली महेश्वरः॥ ५२॥
भट्टकेशाश्च कायस्थास्तदुत्पन्ना ह्यनेशकः। तान् गुरुत्वेन संपाद्य भट्टनागरसंज्ञकाः॥ ५३॥

भगवान् ब्रह्मा ने **दशम पुत्र** भट्ट ऋषि को दिया। भट्टमुनि उस बालक को लेकर उस स्थान पर गये जहाँ **भट्टेश्वरदेव** एवं **भट्टेश्वरीदेवी** का निवास है। भट्टेश्वर महादेव त्रिशूलधारी महेश्वर के नाम से जाने जाते हैं। उनके गोत्र में भट्टकेश नाम के अनेकों कायस्थ उत्पन्न हुए। **उनको भट्टनागर की संज्ञा दी गयी जो गुरु [गुरुकुल के गुरु] के रूप में प्रसिद्ध हुये**॥ ५१—५४॥

☞ भगवान् ब्रह्मा की आज्ञा से भट्ट ऋषि ने भगवान् चित्रगुप्त के पुत्र को शिक्षित किया जो भट्टनागर गौड नाम से जाने जाते हैं। **ये गुरू होकर भट्ट गोत्र का विस्तार किये।**

× × ×

'सूर्यध्वज' कायस्थगौडब्राह्मणों की उत्पत्ति

एकादशं तु पुत्रं तु सौरभाय ददौ ततः। सूर्यमंडलदेशे तु सौरभेश्वरसन्निधौ॥ ५४॥
यत्र सौरेश्वरी देवी वर्तते जगदंबिका। सूर्यध्वजाश्च बहवो जातास्तेऽपि सहस्त्रशः॥ ५५॥
कायस्थास्तत्र विख्याता स्वधर्मनिरताः सदा। सूर्यध्वजाश्च तच्छिष्या गुरुत्वे ते प्रकल्पिताः॥ ५६॥

भगवान् ब्रह्मा ने **एकादश पुत्र** सौरभ ऋषि को दिया। सौरभ ऋषि उन्हें लेकर सूर्य मण्डल देश में गये, जहाँ पर **सौरभेश्वरदेव** एवं **सौरेश्वरीदेवी** निवास करती हैं। वहाँ सूर्यध्वज कायस्थ हजारों की संख्या में उत्पन्न हुये। कायस्थ **सूर्यध्वज गौड ब्राह्मण** अपने धर्म में परायण रहने वाले प्रसिद्ध हुए। **सूर्यध्वज गोत्रीय शिष्य (कायस्थ) गुरु [गुरुकुल के गुरु] के रूप में प्रसिद्ध हुये** ॥ ५२—५६ ॥

☞ भगवान् ब्रह्मा की आज्ञा से सौरभ ऋषि ने भगवान् चित्रगुप्त के पुत्र को शिक्षित किया जो सूर्यध्वज गौड नाम से जाने जाते हैं। इन्हें '**सूर्यध्वज गौड़ ब्राह्मण**' भी कहा जाता है। **ये गुरू होकर सूर्यध्वज गोत्र का विस्तार किये।**

भगवान् चित्रगुप्त के यह पुत्र **सूर्य के सशक्त साधक थे,** इसलिये यह '**सूर्यध्वज**' कहलाये।

× × ×

'माथुर' कायस्थगौडब्राह्मणों की उत्पत्ति

द्वादशं तु सुतं तस्य माथुराय ददौ ततः। माथुरेश्वरसान्निध्ये माथुरा विस्तृताः पुनः ॥ ५७ ॥
माथुरेशी महादेवी वर्तते जगदंबिका। माथुरीयाश्च गुरवो वर्तते बहवः स्मृताः ॥ ५८ ॥

भगवान् ब्रह्मा ने **द्वादश पुत्र** माथुर ऋषि को दिया। माथुर ऋषि वंश का विस्तार करने के लिए माथुर देश चले गये जहाँ पर **माथुरेश्वरादेव** एवं **माथुरेश्वरीमहादेवी** विराजमान है। **माथुर गोत्रीय बहुत से [कायस्थ] गुरू [गुरुकुल के गुरु] के रूप में प्रसिद्ध हुये** ॥ ५७—५८ ॥

☞ भगवान् ब्रह्मा की आज्ञा से माथुर ऋषि ने भगवान् चित्रगुप्त के पुत्र को शिक्षित किया जो माथुर गौड नाम से जाने जाते हैं। **ये गुरू होकर माथुर गोत्र का विस्तार किये।**

× × ×

एवं दत्त्वा तु तान् पुत्रान् ब्रह्मा लोक पितामहः। उवाच वचनं श्लक्ष्णं ब्रह्मा मधुरया गिरा ॥ ५९ ॥
पुत्रत्वे पालनीयाश्च लेखकाः सर्वदैव हि। शिखासूत्रधरा ह्येते पटवः साधु संमता ॥ ६० ॥

इस प्रकार **ब्रह्मा ने** चित्रगुप्त के सभी पुत्रों को देकर, मधुर एवं सुन्दर वाणी से ऋषियों से कहा कि—**चित्रगुप्त के इन पुत्रों को अपने पुत्र के समान पालन करना, ये सभी सर्वदैव [सबके भाग्य] को लिखने वाले हैं, अत्यन्त निपुण हैं, सज्जन हैं, ये कायस्थ अत्यन्त बुद्धिमान् एवं सिर पर शिखा [चोटी] एवं सूत्र [यज्ञोपवीत] धारण करने वाले साधु के समान होंगे** ॥ ५९—६० ॥

☞ श्लोक संख्या १५ में भगवान् ब्रह्मा ने चित्रगुप्तजी को सभी प्राणियों के सर्वदैव [सबके भाग्य] लिखने का आदेश दिया था। इसी प्रकार भगवान् ब्रह्मा ने चित्रगुप्तजी के पुत्रों को भी दैव [भाग्य] लिखने का आदेश दिया था। **इस लोक में वेद-पुराणों को भाग्य विधाता कहा गया है, धर्म के उत्तम कृत्य ही भाग्य को बदलते हैं। भगवान् ब्रह्मा ने वेद-पुराणों और न्यायिक कार्यों को लिखने का आदेश चित्रगुप्तवंशीय ब्रह्मकायस्थों को ही दिया था।**

द्वादश कायस्थगौडब्राह्मणों का संस्कार

सूत उवाच–

एवमुक्त्वा विधायादौ यज्ञं ब्रह्मा ययौ स्वकम्। सावित्र्या सहितः श्रीमानथ ये चित्रगुप्तकाः ॥ ६१ ॥

सूत ने कहा—इस प्रकार चित्रगुप्त के विषय में बताकर एवं यज्ञ को पूर्ण करके **सावित्री (सरस्वती)** के साथ **श्रीमान् ब्रह्मा अपने ब्रह्मलोक को चले गये** ॥ ६१ ॥

द्विजातीनां यथादानं यजनाध्ययने तथा। कर्तव्यानीति कायस्थैः सदा तु निगमान् लिखेत्॥ ६२॥
पुराणपाठकाः सर्वे सर्वे तत्स्मृतिशंसकाः। आतिथ्यं श्राद्धकर्तृत्वं सर्वेषां धर्मसाधनम्॥ ६३॥
[कायस्थानांसमुत्पत्ति, पाद्मे, उत्तरखण्डे]

द्विजों के समान **कायस्थ गौडों के लिये पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञकरना-यज्ञकराना, दानदेना-दानलेना तथा वेद-पुराणों को लिखना,** पुराणों का पाठ, स्मृतियों का पालन करना, आतिथ्य सेवा, श्राद्ध, तथा सभी प्रकार के धार्मिक कर्म को करना निश्चित किया गया है॥ ६२—६३॥

॥ इति कायस्थानांसमुत्पत्ति, पाद्मे, उत्तरखण्डे॥

चित्रगुप्तवंशीय १२ ब्रह्मकायस्थ इस लोक के परमपवित्र प्राणी हैं। भगवान् ब्रह्मा के प्रतिरूप, परमज्ञानी, यमलोक के धर्माधिकारी एवं लोकशासक चित्रगुप्त के १२ पुत्रों को, स्वयं भगवान् ब्रह्मा एवं माता सावित्री, इस लोक में ज्ञान के विस्तार के लिये लेकर आये और ऋषियों को पुत्र समान पालन करने का आदेश देकर ब्रह्मलोक को चले गये।

भगवान् ब्रह्मा एवं माता सावित्री का चित्रगुप्तवंशीय १२ ब्रह्मकायस्थों को स्वर्ग से इस लोक में लाना पुराण की अद्भुत घटना है। सनातनधर्म में चित्रगुप्तवंशीय १२ ब्रह्मकायस्थगौडब्राह्मण कुलोत्तम हैं।

पाठक बन्धु आप ध्यान दें!

ऋषि के पुत्रियों के वंशज—चित्रगुप्तवंशीय ब्रह्मकायस्थ द्वादशगौडब्राह्मण हैं जबकि **ऋषि के पुत्रों के वंशज**—सरयूपारीण, कान्यकुब्ज, सनाढ्य, उत्कल, शाकद्विपीय, सारस्वत, द्रविड, गुर्जर, तैलङ्ग, मैथिल इत्यादि ब्राह्मण हैं। **यही सनातन सत्य है।**

ब्रह्मकायस्थों की उत्पत्ति पौराणिक है। ब्रह्मकायस्थों की उत्पत्ति पर किसी प्रकार का कुतर्क करना भगवान् विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र (शंकर) तथा लोकशासक महाकालचित्रगुप्त को अपमानित करना है क्योंकि भगवान् विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र (शंकर) तथा लोकशासक महाकालचित्रगुप्त—ब्रह्मकायस्थों के पूर्वज हैं।

ब्रह्मकायस्थों को अपमानित करने के लिये की गई टीका-टिप्पणी **ऋषियों को भी अपमानित करती है क्योंकि ब्रह्मकायस्थ—ऋषि पुत्रियों के ही पुत्र हैं,** जिसका पौराणिक वर्णन इस अध्याय में आपने पढ़ा है।

उपर्युक्त ६३ श्लोक खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन बम्बई द्वारा प्रकाशित **ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्ड** एवं **जातिभास्कर** में भी **द्वादशगौडब्राह्मणोत्पत्ति** नाम से विद्यमान है। इन पुस्तकों में लेखक ने किसी द्वेष के कारण द्वादशगौडब्राह्मणोत्पत्ति में कुछ अंश अपनी ओर से जोड़कर ब्रह्मकायस्थब्राह्मणों को अब्राह्मण कहते हुए ब्राह्मण समाज को खण्डित किया। **इसका विस्तार से वर्णन इस ग्रन्थ के अन्त में दिया गया है।**

द्वादश ब्रह्मकायस्थ ही द्वादश गौड ब्राह्मण हैं। यथा–

गौडाश्च द्वादश प्रोक्ताः कायस्थास्तावदेवहि। (ब्राह्मणउत्पत्तिमार्तण्ड)

अर्थात् गौडाः (गौडब्राह्मण), द्वादश (१२ प्रकार के), प्रोक्ताः (कहे जाते हैं), कायस्थाः (कायस्थ), तावत् (कालान्तर में, बाद में), एव हि (ही)।

भावार्थः—बारह प्रकार के गौडब्राह्मण ही कालान्तर में [अपने पिता कायस्थ (चित्रगुप्त) के नाम से] कायस्थ कहे जाते हैं।

चित्रगुप्तवंशीय **'द्वादशब्रह्मकायस्थ'** ही **'द्वादशगौडब्राह्मण'** हैं। ब्रह्माजी अपने द्वादश पौत्रों को न्यायिक धर्म की स्थापना हेतु इस लोक में लाये। १२ ऋषियों से शिक्षित होकर ब्रह्माजी के द्वादश पौत्र द्वादशगौडब्राह्मण के नाम से जाने गये।

☞ **मांडव्य, गौतम, श्रीहर्ष, हारित, वाल्मीकि, वसिष्ठ, सौभरि, दालभ्य, हंस, भट्ट, सौरभ** तथा **माथुर** ऋषि तो ब्राह्मण के रूप में पहले से ही इस लोक में विद्यमान् थे। इन ऋषियों के पुत्र भी ब्रह्मकायस्थों के साथ शिक्षित होकर नये अस्तित्व में आये और **मालव्य/मालवीय, गौड, गंगापुत्र, हर्याणा, वाल्मीकि, वसिष्ठ, सौरभ, दालभ्य, सुखसेन, भट्ट, सूर्यध्वज** तथा **माथुर चौबे गौडब्राह्मण** के नाम से जाने गये।

परब्रह्म के स्वरूप लोकशासक महाकालचित्रगुप्त के वंशज होने के कारण १२ ब्रह्मकायस्थ श्रेष्ट हैं। इस कलियुग के प्रभाव में रहने के बाद भी ब्रह्मकायस्थ गौडब्राह्मण सत्य के मार्ग पर चलते हैं। ये अपराधिक और अनैतिक कार्यों को नहीं करते हैं। ब्रह्मकायस्थ कुल से हजारों अन्तर्राष्ट्रीय महाविभूतियाँ हुईं। जिनके विद्वता का सम्मान सम्पूर्ण विश्व करता है।

आज विज्ञान का सबसे बड़ा प्रोजेक्ट "हिग्सबोसोन" जो "नासा" द्वारा किया जा रहा है। सत्येन्द्र नाथ बोस के नाम से ही है जो कि ब्रह्मकायस्थ थे। चाहे सनातन धर्म का विस्तार/प्रचार हो, स्वतंत्रता आन्दोलन हो, विज्ञान-गणित आदि ज्ञान पूरक विद्या हो, चाहे जाति-पाति भेद-भाव से रहित उत्तम राजनीति हो, इन उत्तम कार्यों में ब्रह्मकायस्थ शीर्ष पर मिलेंगे। ये इनकी श्रेष्ठता का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

☞ १६ वीं शताब्दी से ब्रह्मकायस्थों को अब्राह्मण कहने का दुष्प्रचार किया गया इसका प्रामाणिक वर्णन आगे दिया गया है।

× × ×

ब्रह्मकायस्थों के गुरु 'ईश्वर (शिव) तथा ईश्वरी' (शक्ति) हैं

१२ ब्रह्मकायस्थों का संस्कार ईश्वर तथा ईश्वरी (शिव-शक्ति) के सानिध्य में हुआ—

'कायस्थानांमुत्पत्ति' में दिया है कि १२ ब्रह्मकायस्थों की शिक्षा **ईश्वर (शिव) तथा ईश्वरी (शक्ति)** के सानिध्य में हुई। ब्रह्मकायस्थों के **गुरू-शिव-शक्ति** ही हैं। इन्हें ही गुरू मानें, सदैव कल्याण होगा।

☛ **शिव रात्रि, श्रावण मास तथा अमृतसिद्धि** इत्यादि शुभ योगों में स्वायंभुव शिव लिंग पर जाकर उचित पूजन करके गुरू बना लें तथा **पंचाक्षरी मंत्र-ॐ नमः शिवाय,** को गुरुमंत्र के रूप में ग्रहण करके नित्य पूजन करें।

× × ×

शिव की सेवा तथा उनका दान ब्रह्मकायस्थों को देने पर शिव को अधिक प्रसन्नता होगी

शिव की सेवा तथा शिव से निमित्त दान ब्रह्मकायस्थों को देने पर शिव को अपार प्रसन्नता होगी क्योंकि ब्रह्मकायस्थ उन्हीं (महाकाल) के ही कुल के हैं।

ब्रह्मकायस्थ त्रिदेव (विष्णु, ब्रह्मा, शिव) के कुल के होने के कारण ही इन्हें **महाकाली/महाकाली** का स्थान प्राप्त है। जिसको आपने **'ककरादिकालीसहस्त्रनामावली'** में पढ़ा।

ब्रह्मकायस्थ महाकाल के कुल के हैं, **ये शाश्वत सत्य है।**

ब्रह्मकायस्थ महापंडित हैं

सृष्टि के प्रारम्भ में स्वायंभुवमनु ने ब्राह्मणों के लिये ६ कर्म पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञकरना-यज्ञकराना तथा दानदेना-दानलेना निर्धारित किया था। ये सभी कर्म श्रुति-स्मृति पर आधारित थे। यथा—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा। दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥ ८८॥

(मनुस्मृति, अध्याय-१, श्लोक-८८)

ब्राह्मणों के लिये पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञकरना-यज्ञकराना तथा दानदेना-दानलेना ये ६ कर्म निश्चित किये गये हैं॥ ८८॥ इसी कर्म का पालन करके ऋषिपुत्र मनुष्य ब्राह्मण कहलाये।

जब ब्रह्माजी अपने १२ ब्रह्मकायस्थ पौत्रों को भूलोक में १२ ऋषियों को पुत्र समान संस्कार हेतु दिये तब **ब्रह्माजी ने ब्रह्मकायस्थों के ७ कर्म बताये।** यथा—

द्विजातीनां यथादानं यजनाध्ययने तथा। कर्तव्यानीति कायस्थैः सदा तु निगमान् लिखेत्॥ ६२॥
पुराणपाठकाः सर्वे सर्वे तत्स्मृतिशंसकाः। आतिथ्यं श्राद्धकर्तृत्वं सर्वेषां धर्मसाधनम्॥ ६३॥

(कायस्थानांसमुत्पत्ति, पाद्मे, उत्तरखण्डे)

द्विजों के समान कायस्थ गौडों के लिये पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञकरना-यज्ञकराना, दानदेना-दानलेना तथा वेद-पुराणों को लिखना, पुराणों का पाठ, स्मृतियों की प्रशंसा, उनका पाठ, आतिथ्य सेवा, श्राद्ध, तथा सभी प्रकार के धार्मिक कर्म को करना निश्चित किया गया है॥ ६२—६३॥

ब्रह्माजी के आदेश से ब्रह्मकायस्थ पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञकरना-यज्ञकराना, दानदेना-दानलेना तथा वेद-पुराणों को लिखने के अधिकारी हुये। ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मण ६ कर्म के साथ-साथ वेद-पुराणों को लिखने का दुष्कर कार्य भी किया करते थे क्योंकि उस काल में प्रिन्टिंग प्रेस का आविष्कार नहीं हुआ था। ब्रह्मकायस्थ जीता-जागता प्रिन्टिंग प्रेस थे। **इन विलक्षण गुणों के कारण ये महापंडित कहे जाते थे।**

☞ भारत सरकार के पुरातत्व विभाग द्वारा प्रकाशित EPIGRAPHIA INDICA Vol. II के पृष्ठ सं० २३१ पर हरिब्रह्मदेव के काल संवत् १४७० विक्रमी (सन् १४१३) के शिलालेख में लिखा है कि इस शिलालेख को श्रीवास्तव ब्रह्मकायस्थ रामदास जी पंडिताधीश्वर (महापंडित) ने संस्कृत भाषा में लिखा है।

दादित्यपुत्रा स्फुरति वियति तारामंडलाऽखंडलेन। तरणिरमरसद्मच्छद्मना तावदेषा जयतु जयतु मोचोदेवपालस्य कीर्त्तिः॥ १२॥
श्रीवास्तव्यान्येनैषा प्रशस्तिरमलाक्षरा। लिखिता रामदासेन **पंडिताधीश्वरेण** च॥ १३॥

जब संस्कृत भाषा मानदायक, ज्ञानदायक तथा अर्थदायक थी उस काल में भी चित्रगुप्त वंशीय ब्रह्मकायस्थ परमज्ञानी थे।

× × ×

ब्रह्मकायस्थ कलम-दावात का पूजन क्यों करते हैं?

वेदों को ब्रह्मविद्या कहा जाता है, इनमें विभिन्न देवों के हजारों परमपूज्य मंत्र दिये गये हैं। ब्रह्मकायस्थ वेदों को लिखने के पूर्व **वेदों को अक्षर देने वाले भगवान् चित्रगुप्त** का पूजन कलम, दावात एवं पत्र (भोजपत्र) के साथ किया करते थे ताकि भगवान् चित्रगुप्त की कृपा से वेदों को लिखने में कोई त्रुटि न हो। भगवान् चित्रगुप्त, कलम, दावात एवं पत्र (भोजपत्र) के पूजन की यह परम्परा ब्रह्मकायस्थों के घरों में आज तक विद्यमान् है।

× × ×

'कायस्थानांसमुत्पत्ति' के श्लोक संख्या ६० के अनुसार ब्रह्मा के आदेश द्वारा १२ ऋषियों ने भगवान् चित्रगुप्त के १२ पुत्रों को अपने पुत्रों के साथ तथा पुत्रों के समान ही (ब्राह्मण संस्कार की) शिक्षा दी थी। इनका विवरण नीचे दिया जा रहा है—

शिक्षा देने वाले ऋषि	शिक्षा पाने वाले भगवान् चित्रगुप्त के देवपुत्र	शिक्षा पाने वाले ऋषियों के ऋषिपुत्र
१. मांडव्य ऋषि	१. नैगम मांडव्यगौडब्राह्मण	१. मालव्य/मालवीय मांडव्यगौड ब्राह्मण
२. गौतम ऋषि	२. गौड़ गौतमगौडब्राह्मण	२. गौड गौतमगौडब्राह्मण
३. श्रीहर्ष ऋषि	३. श्रीवास्तव श्रीहर्षगौडब्राह्मण	३. गंगा पुत्र श्रीहर्षगौडब्राह्मण
४. हारीत ऋषि	४. श्रेणीपति/कुलश्रेष्ठ हारीतगौडब्राह्मण	४. हर्याणा हारीतगौडब्राह्मण
५. वाल्मीकि ऋषि	५. वाल्मीकि वाल्मीकिगौडब्राह्मण	५. वाल्मीकिगौडब्राह्मण
६. वसिष्ठ ऋषि	६. अस्थाना वसिष्ठगौडब्राह्मण	६. वसिष्ठगौडब्राह्मण
७. सौभरि ऋषि	७. सौरभ/अम्बष्ट सौभरिगौडब्राह्मण	७. सौरभ सौभरिगौडब्राह्मण
८. दालभ्य ऋषि	८. कर्ण/कर्णम् दालभ्यगौडब्राह्मण	८. दालभ्यगौडब्राह्मण
९. हंस ऋषि	९. सुखसेन हंसगौडब्राह्मण	९. सुखसेन हंसगौडब्राह्मण
१०. भट्ट ऋषि	१०. भट्टनागर भट्टगौडब्राह्मण	१०. भट्ट भट्टगौडब्राह्मण
११. सौरभ ऋषि	११. सूर्यध्वज सौरभगौडब्राह्मण	११. सूर्यध्वज सौरभगौडब्राह्मण
१२. माथुर ऋषि	१२. माथुर माथुरगौडब्राह्मण	१२. माथुर चौबे माथुरगौडब्राह्मण

चित्रगुप्तवंशीय द्वादश कायस्थ गौड़ब्राह्मणों के गोत्र का विवरण

क्र०सं०	चित्रगुप्तवंशीय कायस्थ	गोत्र	आस्पद
१.	'नैगम' कायस्थ	मांडव्य गोत्र	मांडव्यगौड ब्राह्मण कहलाते हैं।
२.	'गौड' कायस्थ	गौतम गोत्र	गौतमगौड ब्राह्मण कहलाते हैं।
३.	'श्रीवास्तव' कायस्थ	श्रीहर्ष गोत्र	श्रीहर्षगौड ब्राह्मण कहलाते हैं।
४.	'कुलश्रेष्ठ' कायस्थ	हारीत गोत्र	हारीतगौड ब्राह्मण कहलाते हैं।
५.	'वाल्मीकि' कायस्थ	वाल्मीकि गोत्र	वाल्मीकिगौड ब्राह्मण कहलाते हैं।
६.	'अस्थाना' कायस्थ	वसिष्ठ गोत्र	वसिष्ठगौड ब्राह्मण कहलाते हैं।
७.	'अम्बष्ट' कायस्थ	सौभरि गोत्र	सौभरिगौड ब्राह्मण कहलाते हैं।
८.	'कर्ण' कायस्थ	दालभ्य गोत्र	दालभ्यगौड ब्राह्मण कहलाते हैं।
९.	'सुखसेन' कायस्थ	हंस गोत्र	हंसगौड ब्राह्मण कहलाते हैं।
१०.	'भटनागर' कायस्थ	भट्ट गोत्र	भट्टगौड ब्राह्मण कहलाते हैं।
११.	'सूर्यध्वज' कायस्थ	सौरभ गोत्र	सूर्यध्वजगौड ब्राह्मण कहलाते हैं।
१२.	'माथुर' कायस्थ	माथुर गोत्र	माथुरगौड ब्राह्मण कहलाते हैं।

☞ इन गौड ब्राह्मणों तथा कायस्थ गौड ब्राह्मणों के उपनाम पर ध्यान दें। ऋषिपुत्रों एवं चित्रगुप्त के पुत्रों के उपनाम आज भी एक ही हैं। जैसे—गौड (ऋषिपुत्र) ब्राह्मण एवं गौड (कायस्थ) ब्राह्मण, वाल्मीकि (ऋषिपुत्र) गौड ब्राह्मण एवं वाल्मीकि (कायस्थ) गौड ब्राह्मण, भट्ट (ऋषिपुत्र) गौड ब्राह्मण एवं भट्टनागर (कायस्थ) गौड ब्राह्मण, सूर्यध्वज (ऋषिपुत्र) गौड ब्राह्मण एवं सूर्यध्वज (कायस्थ) गौड ब्राह्मण, माथुर (ऋषिपुत्र) गौड ब्राह्मण एवं माथुर (कायस्थ) गौड ब्राह्मण इत्यादि। यह उपनाम इस पौराणिक सत्यता का साक्ष्य है।

☞ प्रायः देखा जा रहा है कि ब्रह्मकायस्थ अपने पूजा-पाठ में कश्यप गोत्र का संकल्प करते हैं। यह अधर्म है क्योंकि ब्रह्मकायस्थों को कश्यप ऋषि ने शिक्षित नहीं किया है और न तो ब्रह्मकायस्थ कश्यप ऋषि के वंशज ही हैं। जो लोग कश्यप ऋषि के वंशज हैं उन्हें! एवं जो जातियाँ शूद्र, संकर हैं, उन्हें ही कश्यप गोत्र का संकल्प करने का विधान है।

ब्रह्मकायस्थ बन्धु आप अपने सही गोत्र का संकल्प करके अपने पूजन को सफल बनायें।

द्वादश कायस्थों के वेद, शाखा एवं सूत्र की सारिणी

कायस्थ	देवता-देवी	वेद	शाखा	सूत्र
१. नैगम कायस्थ	शिव-शक्ति	यजुर्वेद	माध्यन्दिनी	कात्यायन
२. गौड़ कायस्थ	शिव-शक्ति	यजुर्वेद	माध्यन्दिनी	कात्यायन
३. श्रीवास्तव कायस्थ	शिव-शक्ति	यजुर्वेद	माध्यन्दिनी	कात्यायन
४. कुलश्रेष्ठ कायस्थ	शिव-शक्ति	यजुर्वेद	माध्यन्दिनी	कात्यायन
५. वाल्मीकि कायस्थ	शिव-शक्ति	यजुर्वेद	माध्यन्दिनी	कात्यायन
६. अस्थाना कायस्थ	शिव-शक्ति	यजुर्वेद	माध्यन्दिनी	कात्यायन
७. अम्बष्ट कायस्थ	शिव-शक्ति	यजुर्वेद	माध्यन्दिनी	कात्यायन
८. कर्ण कायस्थ	शिव-शक्ति	यजुर्वेद	माध्यन्दिनी	कात्यायन
९. सुखसेन कायस्थ	शिव-शक्ति	यजुर्वेद	माध्यन्दिनी	कात्यायन
१०. भट्टनागर कायस्थ	शिव-शक्ति	यजुर्वेद	माध्यन्दिनी	कात्यायन
११. सूर्यध्वज कायस्थ	शिव-शक्ति	यजुर्वेद	माध्यन्दिनी	कात्यायन
१२. माथुर कायस्थ	शिव-शक्ति	यजुर्वेद	माध्यन्दिनी	कात्यायन

द्वादश देवकुलीन ब्रह्मकायस्थ गौडब्राह्मणों एवं द्वादश ऋषिकुलीन गौडब्राह्मणों का संस्कार, देवता, वेद, शाखा, सूत्र इत्यादि एक ही हैं। ये दोनों ब्राह्मण एक ही हैं, इनमें केवल 'कुल' का भेद है। ब्रह्मकायस्थ 'देवकुल से' तथा शेष ब्राह्मण 'ऋषिकुल से' उत्पन्न हुये हैं।

द्वादशगौडब्राह्मण शैव मार्ग के हैं। पूर्वकाल से ही ब्रह्मकायस्थ शिव एवं शक्ति [दुर्गा एवं काली] के उपासक रहे हैं। भगवान् शिव का एक रूप 'अघोर' भी है। 'घोर' शब्द का अर्थ 'अंधकार' होता है। 'अ' 'घोर' का अर्थ है जो अंधकार रहित हो। इस मार्ग में मांस तथा मदिरा का सेवन वर्जित नहीं है। यह मार्ग अत्यन्त सशक्त एवं सिद्धिप्रद माना गया है।

बंगाल के सन्त पूजा-पाठ में मांस तथा मदिरा का बहुतायत प्रयोग करते हैं। इन सन्तों में ब्रह्मकायस्थ कुल से अनेक अर्न्तराष्ट्रीय सन्त हुए हैं। जिसका वर्णन आगे के अध्यायों में दिया गया है।

सम्भवतः शिव-शक्ति के उपासक होने के कारण ही सम्पूर्ण भारत में पाये जाने वाले 'ब्रह्मकायस्थ' मांसाहारी हैं। ब्रह्मकायस्थों को इस प्रकृति का त्याग नहीं करना चाहिये क्योंकि ये महाकाल का धर्म है। अपने पिता महाकालचित्रगुप्त के समान क्रूर दण्डाधिकारी होकर प्रजा में न्याय देना ही ब्रह्मकायस्थों का धर्म है।

× × ×

द्वादश कायस्थों के वर्तमान एवं पूर्वकाल के उपनाम

कायस्थ	वर्तमान उपनाम	पूर्वगत उपनाम
१. नैगम कायस्थ	निगम	उपाध्याय
२. गौड़ कायस्थ	गौड	उपाध्याय
३. श्रीवास्तव कायस्थ	श्रीवास्तव	उपाध्याय
४. कुलश्रेष्ठ कायस्थ	कुलश्रेष्ठ	उपाध्याय
५. वाल्मीकि कायस्थ	वाल्मीकि	उपाध्याय
६. अस्थाना कायस्थ	अस्थाना	उपाध्याय
७. अम्बष्ट कायस्थ	अम्बष्ट	उपाध्याय, पाण्डेय, शर्मा
८. कर्ण कायस्थ	कर्ण	उपाध्याय, पाण्डेय, शर्मा
९. सुखसेन कायस्थ	सक्सेना	उपाध्याय, पाण्डेय, शर्मा
१०. भट्टनागर कायस्थ	भट्टनागर	उपाध्याय, पाण्डेय, शर्मा
११. सूर्यध्वज कायस्थ	सूर्यध्वज	उपाध्याय, पाण्डेय, शर्मा
१२. माथुर कायस्थ	माथुर	चतुर्वेदी, मिश्र, पाठक

सृष्टि के प्रारम्भ में जब भगवान् ब्रह्मा के आदेश से चित्रगुप्त वंशीय १२ ब्रह्मकायस्थ १२ ऋषियों के यहाँ शिक्षित हुए, उसके बाद ब्रह्मकायस्थों की पहचान परिवर्तित होकर द्वादश गौडब्राह्मण के रूप में हो गई। तभी से समाज में १२ ऋषि एवं चित्रगुप्त के पुत्र एक ही नाम से मांडव्यगौड, गौतमगौड, श्रीहर्षगौड, हारितगौड, वसिष्ठगौड, दालभ्यगौड, वाल्मीकिगौड, हंसगौड, सौरभगौड, सौभरिगौड, भट्टगौड तथा माथुरगौड, कहलाये।

केवल विवाह में ही इनका वंशोद्भव देखा जाता था तथा समाज में यह एक ही नाम से जाने जाते थे।

इस काल के बाद जितने भी ऋषि उत्पन्न हुए चाहे कायस्थवंशीय या ऋषिवंशीय रहे हों 'गुरुकुल' के नाम से ही जाने जाते थे। इस कारण ऋषियों को चिन्हित करना कि वह कायस्थवंशीय थे या ऋषिवंशीय यह असम्भव कार्य है क्योंकि अब यह सब अतीत हो चुका है।

☛ फिर भी ब्रह्मकायस्थों के पूर्वजों की श्रेष्ठता तथा वर्तमान की तीव्र बौद्धिक स्थिति को देखकर कहा जा सकता है कि अधिकांश ऋषि कायस्थवंशीय ही रहे होगें।

× × ×

ब्रह्मकायस्थों का संस्कार

चित्रगुप्तवंशीय 12 ब्रह्मकायस्थ निगम, गौड, श्रीवास्तव, कुलश्रेष्ठ, वाल्मीकि, अस्थाना, अम्बष्ट, कर्ण, सुखसेन, भट्टनागर, सूर्यध्वज और माथुर के लिये १६ संस्कार निर्धारित किये गये हैं—

१-गर्भाधान संस्कार २-पुंसवन संस्कार ३-सीमन्तोन्नसनम् संस्कार ४-जातकर्म संस्कार ५-नामकरण संस्कार ६-निष्क्रमण संस्कार ७-अन्नप्राशन संस्कार ८-चूड़ाकर्म संस्कार ९-कर्णवेध संस्कार १०-उपनयन संस्कार ११-विद्यारम्भ संस्कार १२-समावर्तन संस्कार १३-विवाह संस्कार १४-अवसथ्याधान संस्कार १५-श्रौताधन संस्कार तथा १६-अन्त्येष्टि संस्कार।

ब्रह्मकायस्थों के लिये उपर्युक्त १६ संस्कार के नियम बताये गये हैं। कलि के कथित आधुनिकता के कारण विलुप्त होते संस्कार में नामकरण, अन्नप्राशन, उपनयन, विद्यारम्भ, विवाह तथा अन्त्येष्टि संस्कार अभी भी किये जा रहे हैं।

इनमें **विवाह** एवं **अन्त्येष्टि** संस्कार अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इनमें विवाह संस्कार द्वारा अगली पीढ़ी का निर्माण तथा पिता के अन्त्येष्टि द्वारा पितृऋण से मुक्त होकर पितृ के आशीष से उत्तम कुल का निर्माण होता है।

विवाह—ब्रह्मकायस्थों को सजातीय विवाह उत्तम माना गया है। अर्न्तजातीय विवाह वर्जित है।

अन्त्येष्टि—पद्मपुराण में लिखा है कि ब्राह्मणों को जननाशौच एवं मरणाशौच **१० दिन** का, क्षत्रिय को **१२ दिन** का, वैश्य को **१५ दिन** का तथा शूद्र को **१ मास** का होता है। यथा—

मृतेपुत्रैर्यथाकार्यमाशौचंचपितुर्यदि । दशाहंशावमाशौचंब्राह्मणस्यविधीयते ॥
क्षत्रियेषुदशद्वे च पक्षंवैश्येषुचैवहि । शूद्रेषुमासमाशौचंसपिंडेषुविधीयते ॥

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय १०, एकोदिष्ट श्राद्धविधि)

आप प्रथम खण्ड में पढ़ चुके है कि सभी मनुष्यों को जीवन-मरण, यश-अपयश तथा हानि-लाभ को भगवान् चित्रगुप्त ही देते हैं इसीलिये प्रेत के मुक्ति के लिये प्रत्येक सनातनी के श्राद्ध में भगवान् चित्रगुप्त का पूजन अनिवार्य होता है। ब्रह्मकायस्थों को सनातन विधि से ही श्राद्ध करना चाहिये क्योंकि सनातन श्राद्ध में ही भगवान् चित्रगुप्त का पूजन होता है।

☞ जो लोग सनातनी होकर अपने पिता का श्राद्ध सनातनी विधि से नहीं करते हैं, इस लोक में उनसे बड़ा पापी कोई दूसरा नहीं है।

× × ×

'कायस्थगौडब्राह्मण' सत्युग के प्रारम्भ से ही विद्यमान हैं

'कायस्थानांसमुत्पत्ति' नामक अध्याय अत्यन्त गहनता एवं ध्यान से पढ़ने योग्य है क्योंकि इस प्रकरण के अनुसार 'द्वादशगौडब्राह्मणों' की उत्पत्ति भगवान् चित्रगुप्त एवं उनके कायस्थपुत्रों की ही है।

इन्हीं १२ 'कायस्थ गौडब्राह्मण' नैगम, गौड़, श्रीवास्तव, श्रेणीपति (कुलश्रेष्ठ), वाल्मीक, वशिष्ठ (अस्थाना), सौरभ (अम्बष्ट), दालभ्य (कर्ण/कर्णम्), सुखसेन (सक्सेना), भट्टनागर, सूर्यध्वज तथा माथुर के उत्पत्ति के कारण ही १२ 'ऋषिपुत्र गौडब्राह्मण' मालव्य (मालवीय), गौड़, श्रीहर्ष (गंगापुत्र), हर्याणा, वाल्मीक, वशिष्ठ, सौरभ, दालभ्य, सुखसेन, भट्ट, सूर्यध्वज तथा माथुर अस्तित्व में आये हैं।

इन दोनों ब्राह्मणों 'कायस्थगौड' एवं 'ऋषिपुत्रगौड' में केवल कुल का भेद संस्कार का नहीं, क्योंकि इन दोनों ब्राह्मणों का ब्राह्मण संस्कार एक साथ हुआ था। इनमें । एक 'देवकुल' से तथा दूसरे 'ऋषिकुल' से हैं।

'कायस्थगौडब्राह्मण' वैवस्वतमनु के पुत्रियों के पुत्र होने के कारण वैवस्वतमनु के काल अर्थात सत्युग के प्रारम्भ से ही विद्यमान हैं क्योंकि यह मनवन्तर वैवस्वत मनु का ही है।

× × ×

भगवान चित्रगुप्त के १२ पुत्रों का विवरण

१. नैगम/निगम ब्रह्मकायस्थ—'कायस्थानांसमुत्पत्ति' के अनुसार ब्रह्मा ने चित्रगुप्तके प्रथम पुत्र को सर्वप्रथम माण्डव्यऋषि को शिक्षा देने के लिए सौंपा था। शिक्षा के उपरान्त माण्डव्य ऋषि के शिष्य एवं चित्रगुप्त के पुत्र 'नैगम' ब्रह्मकायस्थ गौडब्राह्मण कहलाये। यह नैगम कायस्थ मुगलकाल के पूर्व महापण्डित के नाम से विख्यात थे। नैगम कायस्थ काशी में जाकर वेदों का अध्ययन किया करते थे। इसीलिए इनका नाम वेदों के नाम पर पड़ा है, वेदों को ही 'निगम' कहा जाता है। वेदों के मर्मज्ञ होने के कारण यह नैगम नाम से जाने जाते थे।

पूर्व काल में मालवा क्षेत्र में नैगम कायस्थों का वास हुआ करता था। इसी स्थान पर माण्डव्य ऋषि के पुत्र जो मालवीय गौड ब्राह्मण कहलाते हैं, वे भी यहाँ निवास करते थे।

२. गौड ब्रह्मकायस्थ—ब्रह्मा ने चित्रगुप्तके द्वितीय पुत्र गौतमऋषि को शिक्षा देने के लिए सौंपा था। शिक्षा के उपरान्त गौतम ऋषि के शिष्य एवं चित्रगुप्त के पुत्र 'गौड' ब्रह्मकायस्थ गौडब्राह्मण कहलाये। ये आजमगढ़, वाराणसी तथा प्रयाग क्षेत्र में बहुतायत पाये जाते हैं।

३. श्रीवास्तव ब्रह्मकायस्थ—ब्रह्मा ने चित्रगुप्तके तृतीय पुत्र श्रीहर्षऋषि को शिक्षा देने के लिए सौंपा था। शिक्षा के उपरान्त श्रीहर्ष ऋषि के शिष्य एवं चित्रगुप्तके पुत्र 'श्रीवास्तव' ब्रह्मकायस्थ गौडब्राह्मण कहलाये। यह पूर्वी उत्तर प्रदेश से लेकर पश्चिमी बिहार के क्षेत्र में (लखनऊ से पटना तक) बहुतायत पाये जाते हैं। श्रीवास्तव कायस्थों ने अनेक महापुरुषों को दिया है।

४. श्रेणीपति/कुलश्रेष्ठ ब्रह्मकायस्थ—ब्रह्मा ने चित्रगुप्त के चतुर्थ पुत्र हारीतऋषि को शिक्षा देने के लिए सौंपा था। शिक्षा के उपरान्त हारीत ऋषि के शिष्य एवं चित्रगुप्त के पुत्र 'श्रेणीपति/कुलश्रेष्ठ' ब्रह्मकायस्थ गौडब्राह्मण कहलाये। यह हरियाणा से लेकर सिन्ध तक बहुतायत पाये जाते हैं। यह सिन्ध में **कामिल, फाजिल, आमिल एवं आडवानी कहे जाते हैं।**

५. वाल्मीकि ब्रह्मकायस्थ—ब्रह्मा ने चित्रगुप्त के पंचम पुत्र वाल्मीकि ऋषि को शिक्षा देने के लिए सौंपा था। शिक्षा के उपरान्त वाल्मीकि ऋषि के शिष्य एवं चित्रगुप्त के पुत्र 'वाल्मीकि' ब्रह्मकायस्थ गौडब्राह्मण कहलाये।

पूर्व काल में ऋषियों ने इन कायस्थों को गुरु की संज्ञा दी थी। वाल्मीकि ऋषि ने एक यज्ञ का आयोजन किया था जिसमें उन्होंने चित्रगुप्त के पुत्रों से यज्ञ करवाया। यह कायस्थ राजस्थान के पश्चिमी क्षेत्र में पाये जाते हैं।

६. वशिष्ठ/अस्थाना ब्रह्मकायस्थ—ब्रह्मा ने चित्रगुप्त के षष्ठम् पुत्र वसिष्ठऋषि को शिक्षा देने के लिए सौंपा था। शिक्षा के उपरान्त वसिष्ठ ऋषि के शिष्य एवं चित्रगुप्त के पुत्र 'अस्थाना' ब्रह्मकायस्थ गौडब्राह्मण कहलाये। यह उत्तर-प्रदेश में अयोध्या क्षेत्र के आस-पास बहुतायत पाये जाते हैं।

७. सौरभ/अम्बष्ट ब्रह्मकायस्थ—ब्रह्मा ने चित्रगुप्त के सप्तम् पुत्र सौभरिऋषि को शिक्षा देने के लिए सौंपा था। शिक्षा के उपरान्त सौभरि ऋषि के शिष्य एवं चित्रगुप्तके पुत्र 'अम्बष्ट' ब्रह्मकायस्थ गौडब्राह्मण कहलाये। यह बिहार में गया क्षेत्र के आस-पास बहुतायत पाये जाते हैं।

८. दालभ्य/कर्णम् ब्रह्मकायस्थ—ब्रह्मा ने चित्रगुप्त के अष्टम पुत्र को दालभ्यऋषि को शिक्षा के लिए सौंपा था। शिक्षा के उपरान्त दालभ्यऋषि के शिष्य एवं चित्रगुप्तके पुत्र 'दालभ्य' ब्रह्मकायस्थ गौडब्राह्मण कहलाये। पूर्वकाल में इनका निवास कर्णाटक में हुआ करता था। इसलिये इन्हें कर्ण/कर्णम् कायस्थ के नाम से जाना जाता है। दालभ्यऋषि ने चित्रगुप्त के पुत्रों से यज्ञ करवाया था। आसाम, बंगाल, उड़ीसा, पूर्वी बिहार, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु तथा केरल में पाये जाने वाले कायस्थ, कर्ण कायस्थ ही हैं। इन कर्ण कायस्थों को भारत के कई राज्यों में कर्णम्, नियोगी एवं अरूवेलम नियोगी ब्राह्मण भी कहा जाता है।

यह भारत में कायस्थ जाति में सबसे अधिक संख्या में विद्यमान हैं तथा इनकी स्थिति अत्यन्त सबल है। आसाम, बंगाल, पूर्वी बिहार, उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु एवं केरल में पाये जाने वाले कायस्थ कर्ण/कर्णम्' ही हैं। उड़ीसा में स्थित कर्णम् कायस्थ ब्राह्मण के लिए बताये गये ६ कर्म पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञकरना-यज्ञकराना तथा दानलेना-दानदेना इत्यादि किया करते हैं। यह उड़ीसा में यज्ञ तथा श्राद्ध इत्यादि कर्मों को भी कराते हैं। इनके उपनाम—पाणिग्रही, महापात्र, मुनी, नायक इत्यादि हैं।

आसाम राज्य में—इन कर्ण/कर्णम् कायस्थों का उपनाम बरूआ, चक्रवर्ती, पुरूकायस्थ, वेद्य एवं चौधरी है।

बंगाल राज्य में—इन कर्ण/कर्णम् कायस्थों का उपनाम घोष, बोस (बसु), मित्र, रे (रॉय), सेन, डे, नन्दी, सिन्हा, बर्मन, गुहा, चौधरी, गुप्त, भद्र, नाग, सरकार, दत्त इत्यादि हैं।

बिहार राज्य में—इन कर्ण/कर्णम् कायस्थों का उपनाम दास, कर्ण, दत्त, मल्लिक, चौधरी, कंठ, वर्मा, सिन्हा, लाल इत्यादि।

उड़ीसा राज्य में—इन कर्ण/कर्णम् कायस्थों का उपनाम पटनायक, पाटस्कर, मोहन्ती, कानूनगो, चौधरी, मर्दराज, वाहियार, महापात्र, दास, दत्त, नन्दा, पाणिग्रही, त्रिपाठी, मिश्रा, मुनी, नायक इत्यादि है।

आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक एवं तमिलनाडु राज्य में—आन्ध्र प्रदेश में कर्णम् कायस्थों को नियोगी एवं अरूवेलम नियोगी ब्राह्मण भी कहा जाता है। यह आन्ध्र प्रदेश में गैर पुजारी ब्राह्मण के नाम से पहचाने जाते हैं। मूलतः यह कर्ण कायस्थ हैं। इन कर्ण/कर्णम् कायस्थों का उपनाम नायडू, नायर, मुदलियार, राज, मेमन, राव, करनाम, लाल, काणिक, रेड्डी एवं प्रसाद है।

केरल प्रदेश में— इन कर्ण/कर्णम् कायस्थों का उपनाम पिल्लै अथवा पिल्लई है।

९. सुखसेन/सक्सेना ब्रह्मकायस्थ—ब्रह्मा ने चित्रगुप्त के नवम् पुत्र को सुखसेन ऋषि को शिक्षा देने के लिए सौंपा था। शिक्षा के उपरान्त सुखसेन ऋषि के शिष्य एवं चित्रगुप्त के पुत्र 'सुखसेन/सक्सेना' ब्रह्मकायस्थ

गौडब्राह्मण कहलाये। सुखसेन ऋषि ने चित्रगुप्त के पुत्रों से यज्ञ भी करवाया था। यह पश्चिमी उत्तर प्रदेश में बरेली के आस-पास बहुतायत पाये जाते हैं।

१०. भटनागर ब्रह्मकायस्थ—ब्रह्मा ने चित्रगुप्त के दशम् पुत्र भट्टऋषि को शिक्षा देने के लिए सौंपा था। शिक्षा के उपरान्त भट्ट ऋषि के शिष्य एवं चित्रगुप्त के पुत्र 'भटनागर' ब्रह्मकायस्थ गौडब्राह्मण कहलाये। यह हरियाणा एवं राजस्थान के क्षेत्र में बहुतायत पाये जाते हैं।

११. सूर्यध्वज ब्रह्मकायस्थ—ब्रह्मा ने चित्रगुप्त के एकादश पुत्र सौरभऋषि को शिक्षा देने के लिए सौंपा था। शिक्षा के उपरान्त सौरभ ऋषि के शिष्य एवं चित्रगुप्त के पुत्र 'सूर्यध्वज' ब्रह्मकायस्थ गौडब्राह्मण कहलाये। यह राजस्थान में बहुतायत पाये जाते हैं।

१२. माथुर ब्रह्मकायस्थ—ब्रह्मा ने चित्रगुप्त के द्वादश पुत्र को माथुरऋषि को शिक्षा के लिए सौंपा था। शिक्षा के उपरान्त माथुर ऋषि के शिष्य एवं चित्रगुप्त के पुत्र 'माथुर' ब्रह्मकायस्थ गौडब्राह्मण कहलाये। यह कायस्थ उत्तर-प्रदेश में मथुरा से लेकर सम्पूर्ण राजस्थान में पाये जाते हैं। यह अत्यन्त सशक्त स्थिति में हैं।

× × ×

यह १२ ब्रह्मकायस्थ भगवान् चित्रगुप्त के वंशज हैं तथा १ चन्द्रसेनीय कायस्थ हैं। जिसे परशुराम ने कायस्थ बनाया था। यह १३ कायस्थ ही सनातन हैं।

जो व्यक्ति इन १३ कायस्थों में से नहीं हैं और स्वयं को कायस्थ कहते हैं। उनकी उत्पत्ति शत-प्रतिशत संदेहास्पद है।

× × ×

ब्रह्मकायस्थ ध्यान दें !

भगवान् चित्रगुप्त के यह १२ पुत्र एक समान हैं। कुछ ब्रह्मकायस्थ कुल से महापुरुष अधिक हुए हैं। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि वह ब्रह्मकायस्थ उत्तम तथा शेष सभी निम्नतम हैं। भगवान् चित्रगुप्त के पुत्र होने के कारण सभी १२ ब्रह्मकायस्थ एक समान हैं।

ब्रह्मकायस्थ कुल में सबसे अधिक महापुरुष 'कर्ण' ब्रह्मकायस्थों ने दिये हैं और वर्तमान् में भी देते जा रहे हैं। इसके पश्चात् 'श्रीवास्तव' ब्रह्मकायस्थों ने महापुरुष दिये हैं।

आसाम, त्रिपुरा, मेघालय, मणिपुर, बंगाल, उड़ीसा, पूर्वी बिहार, आन्ध्रप्रदेश, कर्णाटक, तमिलनाडु तथा केरल में पाये जाने वाले कायस्थ 'कर्ण/कर्णम्' ब्रह्मकायस्थ हैं। इन्होंने अपने कुल से हजारों महापुरुषों को दिया है।

कायस्थकुल से असंख्य महापुरुष हुए हैं, यदि उन सबका विवरण दिया जाय तो एक वृहद् ग्रन्थ तैयार हो जायेगा।

भारत के विभिन्न प्रान्तों में ब्रह्मकायस्थों के उपनाम

उत्तर भारत	–	निगम, गौड, श्रीवास्तव, कुलश्रेष्ट, वाल्मीकि, अस्थाना, अम्बष्ट, कर्ण, सक्सेना, भटनागर, सूर्यध्वज, माथुर आदि।
आसाम	–	बरूवा, चक्रवर्ती, पुरूकायस्थ, वेद्य, मोहन्तो, चौधरी आदि।
बंगाल	–	सेन, कार, पालित, चंद्र, साहा, भद्रधर, नंदी, घोष, बोस, मल्लिक, मुंशी, डे, पाल, रे (राय), गुहा, वैद्य, नाग, सोम, सिन्हा, रक्षित, अकुर, नंदन, नाथ, विश्वास, सरकार, चौधरी, बर्मन, भावा, गुप्त, मृत्युंजय, दत्ता, कुन्डु, मित्र, धर, शर्भन, भद्र, भौमिक आदि।
उड़ीसा	–	कर्ण, कर्णम, पटनायक, पाटस्कर, कानूनगो, मल्लिक, मोहन्ती (महन्त), चौधरी, मर्दराज, सेनापति, वाहियार, महापात्र, दास, नन्दा, पाणिग्रही, त्रिपाठी, मिश्रा, मुनी, दत्ता, नायक आदि।
बिहार	–	कर्ण, दत्ता, दास, मल्लिक, चौधरी, कंठ, वर्मा, सिन्हा, लाल आदि।
दक्षिण भारत	–	मुदलियार, नायडू, पिल्ले, नायर, राज, मेमन, रमन, राव, करनाम, लाल, काणिक, रेड्डी, प्रसाद। ये सभी कायस्थ कर्ण कायस्थ हैं आदि।
राजस्थान	–	गुप्त नन्द, शर्भन, फुत्तू, भावेकदानवास, माथुर, नाग आदि।
महाराष्ट्र	–	पठारे, चंद्रसेनी, प्रभु, चित्रे, मथरे, ठाकरे, देशपांडे, करोड़े, दोदे, तम्हणे, सुले, राजे, शागले, मोहिते, तुगारे, फड़से, आप्टे, रणदिये, गड़करी, कुलकर्णी, श्राफ, वेद्य, जयवत, समर्थ, दलवी, देशमुख, मौकासी, चिटणवीस, कोटनिस, कारखनो, फरणीस, दिघे, थारकर, प्रधान आदि।
गुजरात	–	चंद्रसेनी, प्रभु, मेहता, बल्लभी, वाल्मीकि, सूर्यध्वज आदि।
सिन्ध	–	आलिभ, फाजिल, आमिल, आडवानी आदि।
पंजाब	–	राय, बक्शी, दत्त, सिन्हा, बोस आदि।
नेपाल	–	श्रेष्ठ, वैद्य, चक्रवर्ती, सिन्हा आदि।

☞ आसाम, बंगाल, पूर्वी बिहार, उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु तथा केरल में विद्यमान सभी कायस्थ, कर्ण कायस्थ हैं। कहीं इन्हें कर्णम एवं कहीं इन्हें नियोगी ब्राह्मण के रूप में भी जाना जाता है। मूलतः यह चित्रगुप्त वंशीय 'कर्ण' कायस्थ ब्राह्मण हैं।

☞ नेपाल में विद्यमान कायस्थ भी कर्ण कायस्थ ब्राह्मण हैं।

☞ सिंध में विद्यमान कायस्थ जो कि सिन्धी कायस्थ कहलाते हैं। मूलतः यह चित्रगुप्त वंशीय कुलश्रेष्ठ कायस्थ ब्राह्मण हैं।

☞ महाराष्ट्र में विद्यमान कायस्थ, चन्द्रसेनीय कायस्थ ब्राह्मण हैं।

× × ×

भगवान् चित्रगुप्त

एवं

उज्जैन

भगवान् चित्रगुप्त की तपोभूमि
एवं
ब्रह्मकायस्थों की उद्भवस्थली
'कायथा'
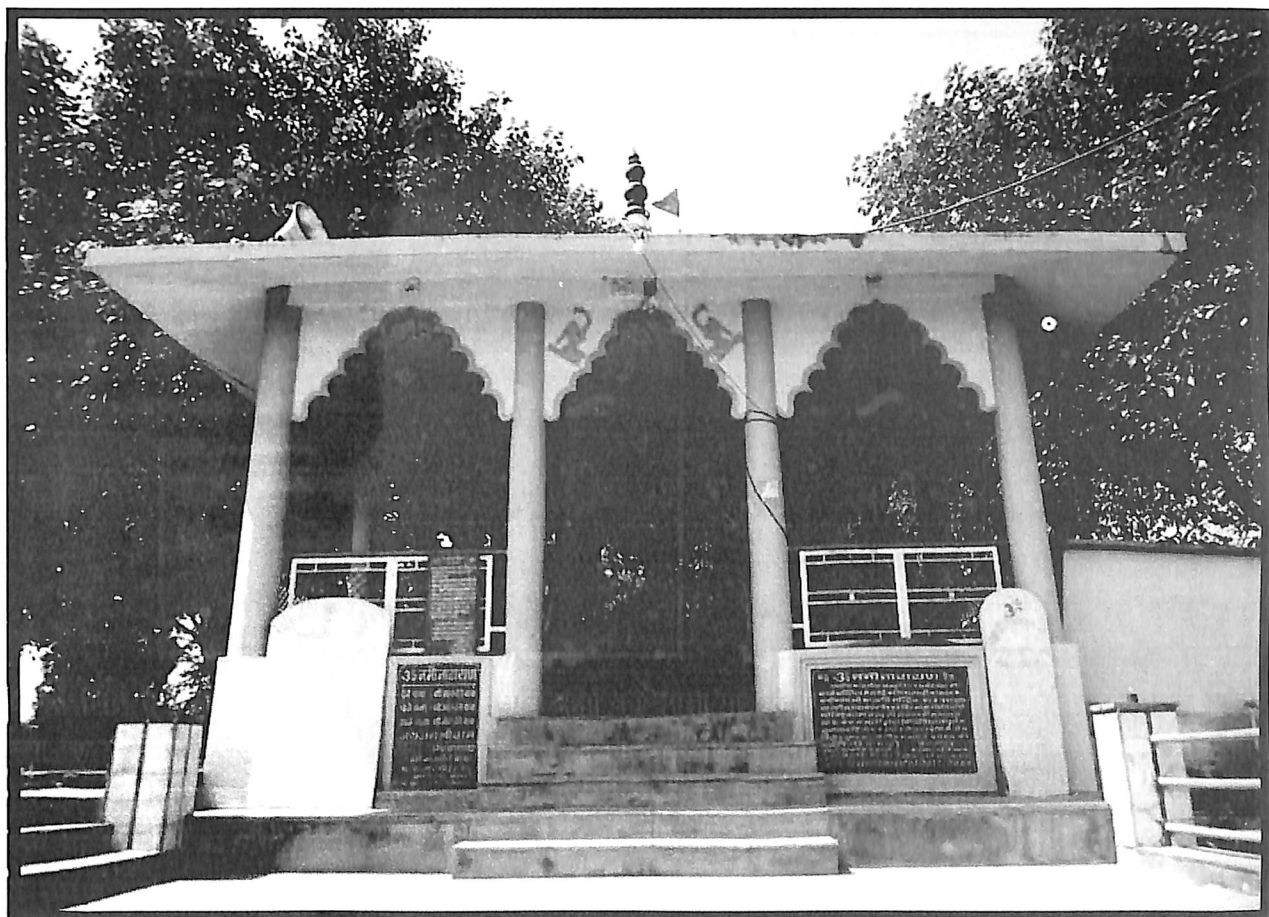
ब्रह्मकायस्थों की उत्पत्ति स्थली-कायथा
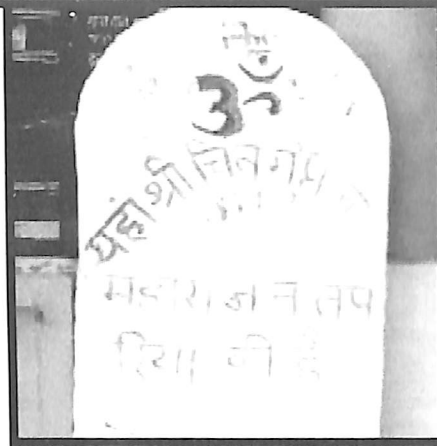
यह चित्र उज्जैन से २६ किलो मीटर दूर कायथा में स्थित गुफा का है। यहीं पर भगवान् चित्रगुप्त ने सृष्टि के प्रारम्भ में अपने पिता ब्रह्मा के कहने पर तपस्या की थी।

कायथा के **राजपुरोहित पं० मनोज शर्मा** एवं वहाँ के निवासी **श्री अनिल पांचाल** द्वारा कायथा का साक्ष्य सनातनधर्म ट्रस्ट को उपलब्ध कराया गया।

'कायस्थानांसमुत्पत्ति' के श्लोक संख्या ५ से १५½ तक में बताया गया है कि अपने पिता भगवान् ब्रह्मा के आज्ञा से भगवान् चित्रगुप्त ने उज्जैन के समीप क्षिप्रा नदी के तटपर तपस्या की थी। इस तपस्या के फलस्वरूप भगवान् चित्रगुप्त को १२ देव कन्यायें विवाह हेतु प्राप्त हुईं। इनसे १२ पुत्र उत्पन्न हुये।

भगवान् चित्रगुप्त का यह पौराणिक स्थल आज भी उज्जैन से २६ कि० मी० की दूरी पर विद्यमान है। इस स्थल को 'कायथा' कहते हैं।

अवन्तिकातीर्थ में उज्जैन स्थित 'अति प्राचीन धर्मराज चित्रगुप्त मंदिर' के राजपुरोहित पं० राकेश जोशी द्वारा कायथा का इतिहास सनातनधर्म ट्रस्ट, गोरखपुर को भेजा गया है। जो इस प्रकार है—

कायथा निवासी **पं० मनोज शर्मा पुत्र पं० श्री सुरेश शर्मा पौत्र स्व० पं० वासुदेव शर्मा** से मुझे कायथा का प्रमाणित इतिहास प्राप्त हुआ है। पण्डित जी के पूर्वजों ने अपने अथक प्रयास से इसे संकलित किया है। **इस संकलन को मैं पं० राकेश जोशी राजपुरोहित 'श्रीमहाकाल' एवं 'अति प्राचीन धर्मराज चित्रगुप्त मंदिर' उज्जैन मध्यप्रदेश से सनातन धर्म ट्रस्ट, गोरखपुर को ज्ञानार्थ भेज रहा हूँ।** पण्डित जी से प्राप्त कायथा का इतिहास इस प्रकार है—

कपित्थनगर (कायथा) की ऐतिहासिक गाथा–

भारत के हृदयस्थल मध्यप्रदेश के अवन्तिका क्षेत्र में महाकाल वन की त्रिज्या पर उज्जैन से छब्बीस किलोमीटर उज्जैन–मक्सी मार्ग से लगभग एक किलोमीटर उत्तर में टीलों पर छोटी कालीसिंध नदी के दक्षिण पश्चिम तट पर स्थित ग्राम कायथा अपनी पुरातात्त्विक महिमा एवं प्राचीन सभ्यता, संस्कृति एवं पौराणिक धरोहर को संजोये हुए है।

ऐतिहासिक एवं पौराणिक पृष्ठभूमि–

वर्तमान कायथा की ऐतिहासिक एवं पौराणिक पृष्ठभूमि की ओर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि पुराण कथित इस ग्राम को विश्वविख्यात गणितज्ञ एवं ज्योतिषाचार्य विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक श्री 'वराहमिहिर' की जन्मस्थली होने का गौरव प्राप्त है। इसी स्थान पर आचार्य वराहमिहिर ने सूर्य की उपासना की तथा वराह संहिता, वृहत् जातक विज्ञान और चिकित्सा आदि ग्रन्थों की रचना की।

आदित्यदास तनय स्त्रद प्राप्त बोध, कापित्य के सवित व्यब्ध वर प्रसाद।
आवन्तिको मुनि मताना महोम्य सम्वग्, होरा वराहमिहिर सविश वकाराः॥

ईस्वी सन् १९६७-६८ में विक्रम विश्वविद्यालय के पुरातत्ववेत्ता पदम्श्री विभूषित डॉ० व्ही० श्री वाकणकर साहब ने ग्राम कायथा में खुदाई का कार्य प्रारम्भ किया था। उनका मत है कि इस गाँव की बसाहट उज्जैन नगर से भी प्राचीन है। (हमारे पूर्व वंशियों एवं इस ग्राम के निवासियों का भी ऐसा ही मत था) खुदाई में डॉ० वाकणकर सा० की एक मिट्टी का पात्र प्राप्त हुआ था, जिसमें गेहूँ भरे हुए थे। वे गेहूँ काले पड़ गये थे। गेहूँ को डॉ० सा० अमेरिका ले गये। अमेरिका के पुरातत्व विभाग के विशेषज्ञों ने गेहूँ को पाँच हजार वर्ष पुराना बतलाया। इसके अलावा खुदाई में घास काटने का एक पाषाण का हँसिया तथा ताँबे की एक कुल्हाड़ी प्राप्त हुई। उस पर डॉ० सा० ने प्रमाणित किया कि यह गाँव पाषाण युग एवं ताम्र युग में भी अपना अस्तित्व रखता था।

इसके अलावा खुदाई में गले का एक हार सुन्दर पत्थरों से बनी मोती की एक माला, कुछ मिट्टी के खिलौने, सिक्के, मुहरें, चुड़ियाँ, मोती तथा दोनों ओर भिन्न-भिन्न रंग से रंगे हुए पत्र आदि प्राप्त हुए है। चीनी मिट्टी के पात्र प्राप्त होने से ऐसा आभास होता है कि लगभग चार हजार वर्ष पूर्व यहाँ का चीन से व्यापारिक सम्बन्ध रहा होगा। एक मिश्र धातु की छड़ भी प्राप्त हुई, जो अन्य किसी स्थान से प्राप्त होने का उल्लेख नहीं मिलता है।

खुदाई के दौरान लगभग ४० फीट नीचे एक भवन जिसमें गटरें बनी हुई तथा चौका चूल्हा आदि भी दिखाई दिया। भवन निर्माण कला भी उच्चकोटि की रही होगी। भवन का निर्माण पक्की ईटों के द्वारा होता था। ईटें डेढ़ फीट लम्बी तथा एक फीट चौड़ी थी, भवन में स्नानागार तथा अलग-अलग कमरों और नालियों की भी व्यवस्था उत्तम थी। इस आधार पर डॉ० सा० ने इस गाँव की सभ्यता की हड़प्पा और मोहनजोदड़ों की सभ्यता के समकालीन माना है, उनका मत है कि कायथा सभ्यता पूरे मालवा अचल से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी के तट तक फैली हुई थी। पंडित सुप्रसिद्ध ज्योतिर्विद आदरणीय सूर्यनारायणजी व्यास ने भी इस गाँव की वराहमिहिर की जन्मस्थली (कायस्थ को) माना है। खुदाई में इस गाँव की काली मिट्टी व अन्य रंग नीली, लाल, पीली रंगों की मिट्टी की सात परतें (तहें) भी दिखाई दी है। इस पर डॉ० सा० का मत है कि यह गाँव कई बार आबाद और विरान हुआ है। हमें यह बतलाया है कि यह गाँव अनादिकाल से बसा हुआ है।

सृष्टि के प्रारम्भ में यहाँ गढ़ नामक स्थान पर भगवान् चित्रगुप्त ने तपस्या की थी। उनकी गुहा (गुफा) गढ़ नामक स्थान पर थी। एक आदमी उस गुहा (गुफा) को देखने अन्दर गया, वह आदमी उस गुहा (गुफा) से बाहर ही नहीं निकल पाया। इस कारण उस गुहा (गुफा) पर एक चबूतरा बना दिया। **उस चबूतरे के पास एक शिलालेख है जिस पर लिखा हुआ है कि भगवान् चित्रगुप्त ने यहाँ पर तपस्या की है।** उसमें सन् लगाने आदि की प्राथमिकता नहीं है। सन् १९२२ में इस गाँव में कायस्थों की एक महासभा हुई थी, जिसमें अयोध्या, भोपाल, इन्दौर, उज्जैन, अजमेर आदि स्थानों से कायस्थ बन्धु एकत्र हुए थे।

अयोध्या से आये हुए कायस्थ समाज के लोग एक खुदा हुआ शिलालेख को अपने साथ ले आये थे। उस

महासभा में काशी के विद्वानों से विचार विमर्श करने के बाद उस शिलालेख को कायथा में गढ़ नामक स्थान पर लगा दिया। इस सम्बन्ध में हमारे पूर्ववंशियों को तहसीलदार तराना द्वारा नोटिस देकर बयान देने हेतु दिनांक १२-०९-१९२२ ई० को तहसील में उपस्थित होने का आदेश दिया था। उनके बयान होने के बाद शासन ने यह शिलालेख उस स्थान से नहीं हटाया। हमारे पास उनके बयान और शासन के आदेश की कोई प्रतिलिपि उपलब्ध नहीं है, जिसके कारण शासन ने यह स्थान नहीं बदला। इसकी पूरी फाईल रियासत के समय की होने से पुनर्गठन पर रिकार्ड चैरिटेबिल फण्ड रिसायत मोती तबेला इन्दौर में जमा है।

ऐसी मान्यता है कि सृष्टि के आदिकाल में भगवान् चित्रगुप्त की उत्पत्ति हुई थी, चित्रगुप्त जी ने यहाँ तपस्या की, इससे सिद्ध होता है कि सृष्टि के आदिकाल में भी यह गाँव बसा हुआ था। कालान्तर के बाद अवन्तिका नरेश महाराज विक्रमादित्य के समय यह गाँव-कपित्थ नगरी के नाम से जाना जाता था। हमारे पूर्वजों और उज्जैन के प्रसिद्ध ज्योतिषी श्री सूर्यनारायण व्यास की भी यही मान्यता है।

मालवा में युगान्तर नामक प्रसिद्ध इतिहास में इस गाँव के विषय में लिखा है कि इस गाँव में कबिट जिसे संस्कृत में कपित्थ कहते हैं, बहुत पाये जाते हैं, आज भी कबिट वृक्षों की भरमार इस गाँव में है। इस पर से गाँव का नाम कपित्थ नगरी प्रसिद्ध हुआ। बाद में अपभ्रंश में कायथा हो गया, **यह गाँव कायस्थों का था, इस कारण गाँव का नाम कायथा प्रसिद्ध हुआ है।**

ग्राम कायथा आदि युग से भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाता है यथा कपित्थनगर, कत्थकपुर नगर आदि। सुदूर प्रदेशों से कायस्थ समाज के लोग अपनी पावन तीर्थस्थली मानकर दर्शनार्थ यहाँ आते रहते हैं। **भगवान् चित्रगुप्त ने यहाँ तपस्या तथा यज्ञ किया था, यज्ञ के फलस्वरूप विवाह हेतु जिसमें से देवकन्यायें प्राप्त हुईं थीं। जिससे चित्रगुप्त ने शादी की, उन देवकन्याओं से चार पुत्र हुए तथा नागकन्या नामक पत्नियों से आठ पुत्र जन्मे, इस प्रकार कायस्थ समाज के १२ वर्ग निगम, सक्सेना, भटनागर, श्रीवास्तव आदि का प्रादुर्भाव इसी स्थान से हुआ।**

ग्राम कटिया जिला पीलीभीत में एक कायस्थ परिवार में अभयसिंह नामक बालक का जन्म हुआ, पिता १२ वर्ष की उम्र में ही कालकवलित हो गये, इनकी माता ने फारसी पढ़ने के लिए हाफिज सत्यार हुसैन के यहाँ भेजा। हिन्दी और फारसी की पढ़ाई पूर्ण कर अभयसिंहजी उज्जैन आये। उज्जैन में फौज के रसद विभाग में इनको नौकरी मिल गयी।

इसके कुछ समय बाद गाँव कायथा को लुटेरों ने घेर लिया और लूटपाट करने लगे। लुटेरों का उत्पात शान्त कर उन्हें इस इलाके से दूर भगाने के लिए फौज के साथ अभयसिंह जी को कायथा भेजा गया। फौज और लुटेरों का आपस में घमासान युद्ध हुआ। इस युद्ध में अभयसिंहजी ने लुटेरों के सैकड़ों हाथियों, घुड़सवारों और पैदल सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया। लुटेरों और हाथियों के खून से रातल्या नामक तलाई लबालब भर गई। इस तलाई में अब खेती होती है। जहाँ युद्ध हुआ था वह स्थान हत्यापान की बावड़ी के नाम से प्रसिद्ध है। वर्तमान में यह बावड़ी गुलजार शाह फकीर के वंशजों के अधिकार में है।

लुटेरों का उत्पात शान्त हो जाने के बाद गाँव की रक्षा करने के लिए फौजियों के साथ अभयसिंहजी को भी कायथा में रहना पड़ा। इन्होंने अपनी सूझबूझ से इस गाँव को पुनः आबाद किया और गाँव के निवासियों का पुत्रवत पालन किया। कायस्थों का ऐसा प्रभाव देखकर इस इलाके के इस गाँव को कायस्थों का गाँव 'कायथा' नाम से पुकारने लगे और तभी से यह गाँव कायथा कहलाने लगा। आज भी अभयसिंहजी के वंशज इस गाँव में

रहते हैं और ये लोग कानूनगो जागीरदार के नाम से प्रसिद्ध है। इनके पास जागीर में प्राप्त ३०३ बीघे जमीन है, जिसके ये स्वामी हैं।

मुगल शासनकाल में दिल्ली सम्राट आलमशाह के समय इस गाँव को कायस्थों से छुड़ाकर इस गाँव का शासन प्रबन्ध करने हेतु फतेहपुर सिकरी से काजियों को इस गाँव में भेजा गया, वर्तमान में इनके पास ९७५ बीघा जमीन है, जो इन लोगों को शाही जमाने में ईनाम में दी गई थी। इसके बाद उदयपुर के सिसौदियाँ वंशी क्षत्रिय लोगों ने लगभग विक्रम संवत् ११०० के आसपास इस इलाके में लूटपाट करना शुरू कर दिया। इनके उत्पातों से त्रस्त होकर होलकरों ने उपड़ी नाम का एक गाँव और कायथा में २९०० बीघे जमीन गाँव करेड़ी की मालगुजारी दी। देवास रियासत के पवारों ने तथा ग्वालियर के सिंधिया राज्य वंशों ने इन लोगों को दागी-टाँका और राज्य सम्मान देकर इन लोगों को संतुष्ट किया और उसी समय से ये लोग इस गाँव में बस गये। आज भी बड़ा रावला और छोटा रावला के नाम से इस गाँव में प्रसिद्ध है। आज भी इन लोगों के पास एक छोटी तोप है, जो यह दर्शाती है कि ये लोग किसी जमाने में बहादुरी के साथ जीवन व्यतीत करते थे।

इसका उदाहरण है सन् १२३५ ई० में दिल्ली के सुल्तान इल्तुतमीश ने प्रथम बार मालवा पर आक्रमण कर उज्जयिनी में लूटपाट किया एवं वहाँ स्थित विक्रमादित्य की पीतल की मूर्ति को साथ में ले जाकर जब कायथा से गुजरा उस समय यहाँ के नागरिकों से डटकर मुकाबला हुआ, इसमें कायथा के नागरिकों की हार हुई और सुल्तान वह मूर्ति लेकर दिल्ली चला गया, वहाँ उसने उस मूर्ति को तोड़ डाला।

अब अन्त में इस गाँव के स्वतंत्रता सेनानी वीर श्री चौथमल जी जैन पिता श्री केशरीमल भण्डारी बड़ा बाजार कायथा, जिनकी मृत्यु सन् १९४२ ई० में इन्दौर की सेन्ट्रल जेल में शाम को कबड्डी का खेल खेलते समय पाँव में ठोकर लग जाने के कारण हुई थी परन्तु इस गाँव में उनके नाम पर कोई स्मारक नहीं बना है। वर्तमान में यह गाँव दो भागों में विभाजित है। पुराना कायथा और सड़क पर आदर्शनगर कायथा के नाम से जाना जाता है। दोनों को मिलाकर इस गाँव की जनसंख्या सात हजार के लगभग है। इस गाँव में श्री वराहमिहिर उच्च मा० विद्यालय तथा कन्या माध्यमिक विद्यालय तथा प्रा० पाठशालाएँ ग्राम पंचायत, एक आयुर्वेद औषधालय तथा ब्रांच पोस्ट आफिस, बैंक और पुलिस स्टेशन कार्यरत है। यह एक कस्बानुमा गाँव है, वि० सं० १९७५ में इस गाँव की तहसील को तोड़कर तराना तहसील में मिला देने से तथा सन् १९५२ में कायथा ठिकाने का निरवंश होने से शासन ने ठिकाने को राजसात कर दिया। तभी से यह गाँव अपना पुराना वैभव खोकर श्री विहीन होकर अपनी दुर्दशा पर करूणा के चार आँसू बहा रहा है और यहाँ के निवासियों से मौन भाषा में कह रहा है कि हे मेरे सपूतों उठो और सिंहनाद कर मेरा नाम दुनिया में रोशन करो।

'प्राप्तकर्ता'

पं० राकेश जोशी

'पुरोहित'

धर्मराज चित्रगुप्त मंदिर,

उज्जैन, मध्यप्रदेश।

× × ×

उज्जैन स्थित भगवान चित्रगुप्त के उत्पत्ति का स्थल रामघाट

क्षिप्रा नदी के तट पर विद्यमान चित्रगुप्त मन्दिर यहीं भगवान् ब्रह्मा ने तपस्या करके चित्रगुप्त जी को उत्पन्न किया था। यहाँ पितृ की मुक्ति के लिए श्राद्ध एवं पिण्डदान सदैव किया जाता है।
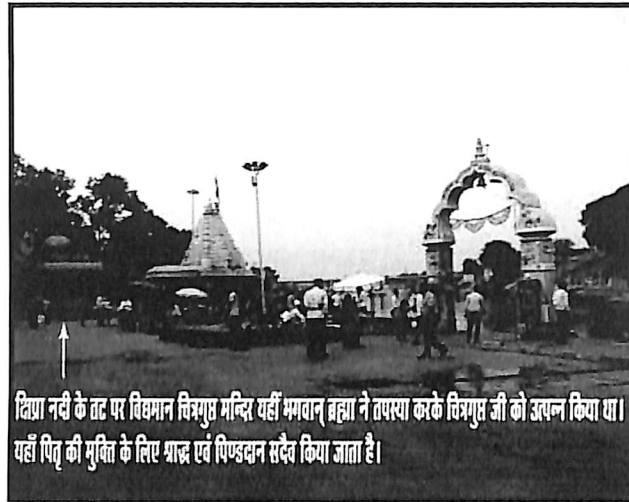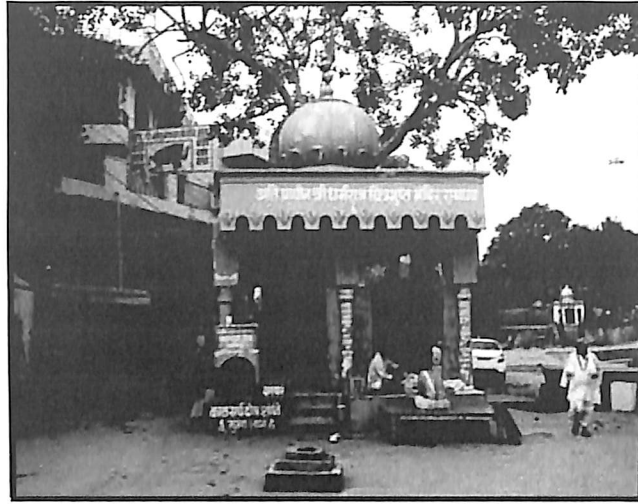
पिछले 'कायस्थानांसमुत्पत्ति' के श्लोक संख्या ६ में बताया गया है कि भगवान् चित्रगुप्त उज्जैन नगरी के क्षिप्रा नदी के तट पर पंचकोशी क्षेत्र में ब्रह्माजी के काया से उत्पन्न हुए थे। इस प्रकरण को पढ़ने के पश्चात् मैंने इसे खोजने का प्रयास किया। मैंने सोचा कि यदि यह पौराणिक घटना सत्य है तो भगवान् चित्रगुप्त का मन्दिर उज्जैन में क्षिप्रा नदी के तट पर अवश्य ही होगा। **सनातन धर्म ट्रस्ट के उपाध्यक्ष संजय श्रीवास्तव निवासी-शाहपुर, जिला-गोरखपुर ने इस अति प्राचीन चित्रगुप्त मन्दिर को खोज निकाला।** यह मन्दिर पद्मपुराण के 'कायास्थानांसमुत्पत्ति' में दिये गये वर्णन के अनुसार उसी रूप आज भी है। यह मन्दिर उज्जैन नगरी में क्षिप्रा नदी के तट पर 'अति प्राचीन श्री धर्मराज चित्रगुप्त मन्दिर रामघाट' के नाम से युगों-युगों से लेकर आज तक विद्यमान है। यह भगवान् चित्रगुप्त की उत्पत्ति का प्रमाण है।
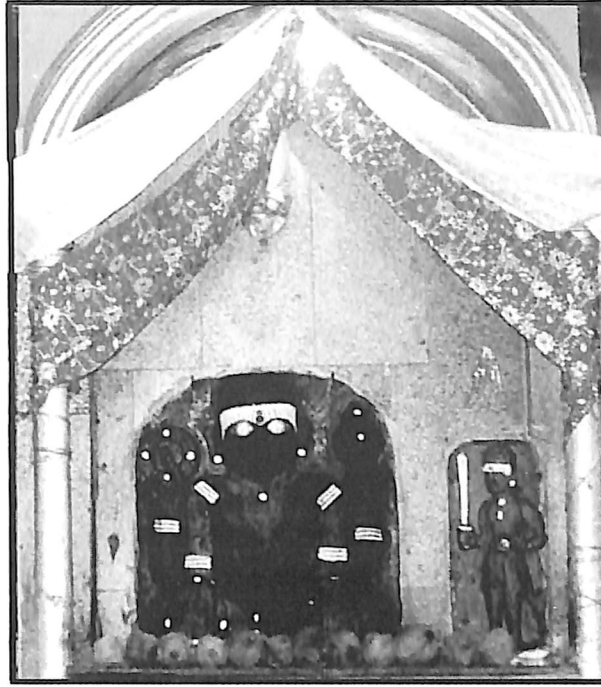
उज्जैन में स्थित 'अति प्राचीन श्री धर्मराज चित्रगुप्त मन्दिर रामघाट' नामक मन्दिर में धर्मराज तथा चित्रगुप्त की स्थापित प्रतिमा का चित्र ऊपर दिया गया है। भगवान् चित्रगुप्त के बायें हाथ में वेद तथा दाहिने हाथ में दण्ड देने के लिये तलवार विद्यमान है। **इस मंदिर की सेवा वहाँ के पुरोहित पं० राकेश जोशी जी के द्वारा की जा रही है। इनके पूर्वज इस मन्दिर का देखभाल लगभग ४०० वर्षों से करते आ रहे हैं।**
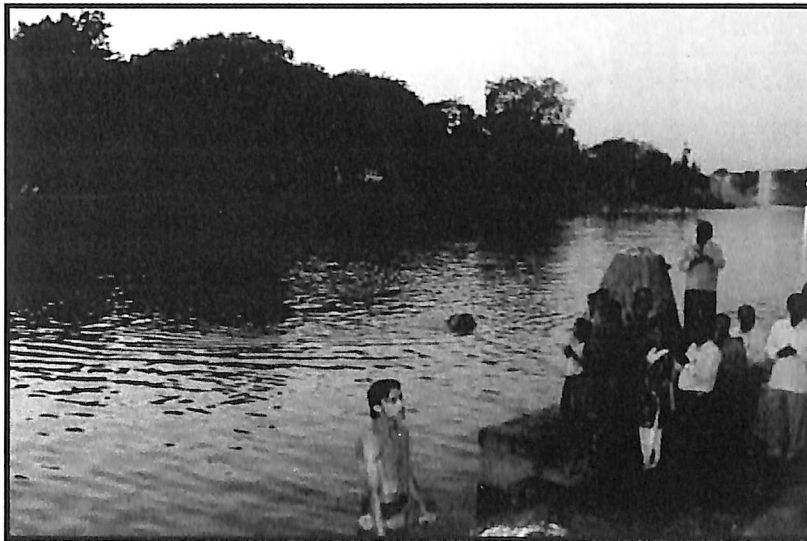
उज्जैन में स्थित भगवान् चित्रगुप्त मन्दिर के सामने क्षिप्रा नदी के तट पर होने वाली आरती का मनोहारी दृश्य।
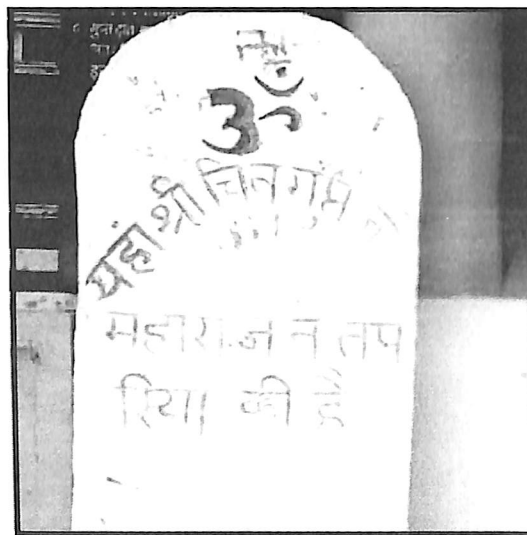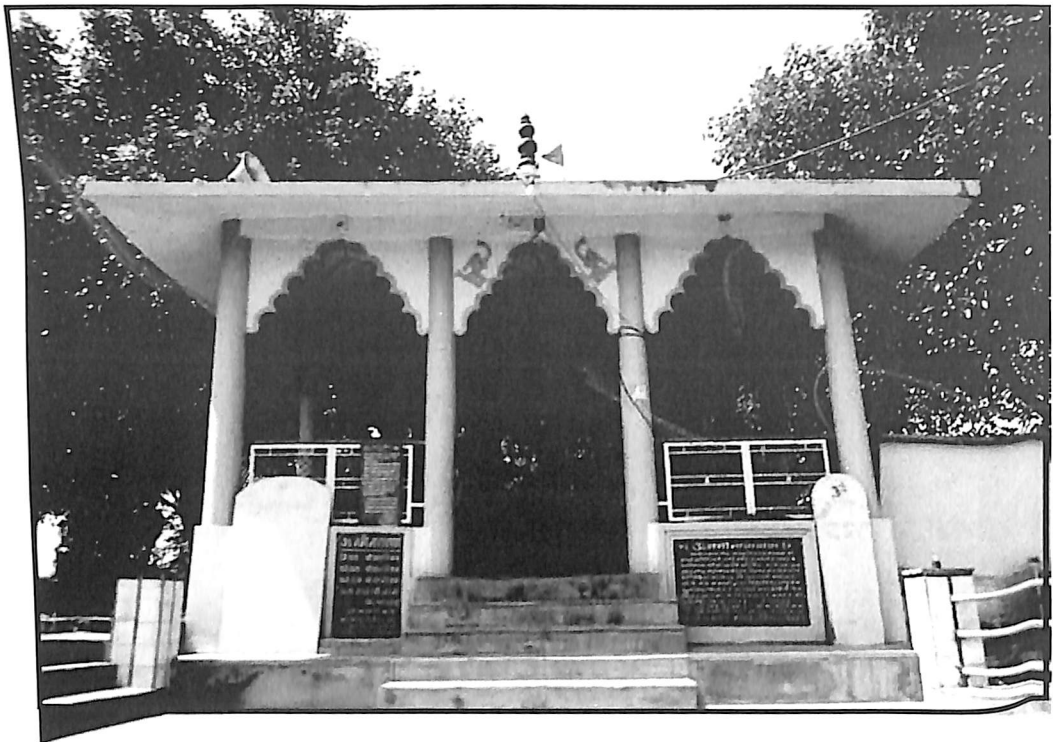
उज्जैन से २६ कि० मि० दूर कायथा नामक स्थान है। भगवान् ब्रह्मा की आज्ञा पाकर भगवान् चित्रगुप्त ने यहीं तपस्या की थी। तपस्या के पश्चात् भगवान् चित्रगुप्त को विवाह हेतु महर्षि वैवस्वतमनु की ४ कन्याऐं तथा नागों (नागर ब्राह्मणों) की ८ कन्याऐं प्राप्त हुईं। इन्हीं १२ स्त्रियों से १२ पुत्र उत्पन्न हुए, जिन्हें ब्रह्मकायस्थ कहते हैं। यह स्थान ब्रह्मकायस्थों के उत्पत्ति का स्थान है।

इस स्थान की खोज गिरिजेश शंकर श्रीवास्तव निवासी-गोरखनाथ, जिला-गोरखपुर ने की है।

श्राद्ध एवं पिण्डदान का उत्तम तीर्थ उज्जैन, पुष्कर तथा ब्रह्मकपाली है

विष्णु, ब्रह्मा, शिव तथा चित्रगुप्त परब्रह्म के चार स्वरूप हैं ये समान शक्ति के हैं। इनकी आराधना मनुष्यों को लोक-परलोक में सिद्धि दायक है। सनातन धर्म के १६ संस्कारों में अन्तिम १६ वाँ संस्कार अन्त्येष्टि होता है। जिस पितृ के मुक्ति के लिये हम श्राद्ध करते हैं वह मुक्त होकर हमें सुख देते हैं। पितृ की मुक्ति के लिये श्राद्ध एवं पिण्डदान करने का उत्तम तीर्थ ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा चित्रगुप्त के तीर्थ को कहा गया है।

श्राद्ध एवं पिण्डदान के लिये गया, उज्जैन, बद्रीनाथ तथा पुष्कर का विशेष महत्व है।

गया विष्णु पीठ है, उज्जैन ब्रह्मा, शिव तथा चित्रगुप्त का पीठ है, बद्रीनाथ ब्रह्म पीठ है तथा पुष्कर सर्वदेव पीठ है।

इन विशेष तीर्थों में पुष्कर एवं उज्जैन का विशेष माहात्म्य है—

उज्जैन तीर्थ-सर्वविदित है कि उज्जैन महाकाल शिव की निवास स्थली है। परन्तु इससे भी बड़ी बात ये है कि उज्जैन ब्रह्माजी की तपोभूमि है, सृष्टि का संचालन करने में जब यमराज असहाय हुये तो ब्रह्माजी उज्जैन आकर क्षिप्रा नदी के तट पर तपस्या किये, इस तपस्या के फलस्वरूप उनके काया से एक मानसपुत्र उत्पन्न हुये जिन्हें कायस्थ एवं चित्रगुप्त कहते हैं, उन्हें ब्रह्माजी ने यमलोक का धर्माधिकारी नियुक्त किया। ब्रह्माजी की आज्ञा से उनके

मानसपुत्र चित्रगुप्तजी ने उज्जैन के पंचकोशी क्षेत्र कायथा में तपस्या की, जिसके फलस्वरूप चित्रगुप्तजी को विवाह हेतु सूर्यपुत्र-वैवस्वतमनु की ४ कन्यायें तथा नागों (नागर ब्रह्मणों) की ८ कन्याओं की प्राप्ति हुई थी। इसका प्रमाण आज भी उज्जैन के पंचकोशी क्षेत्र कायथा में विद्यमान् है।

उज्जैन में ब्रह्माजी तथा इनके समान शक्ति के दोनों पुत्र महाकाल रुद्र (शंकर) तथा महाकाल चित्रगुप्त सदैव विद्यमान् हैं। इनके अतिरिक्त महाकाली एवं कालभैरव की उपस्थिति पूज्यनीय है।

☞ इन महाकालों की नगरी उज्जैन परम्पूज्यनीय तीर्थ है। उज्जैन में पितृ के निमित्त किया गया श्राद्ध एवं पिण्डदान निश्चित ही मोक्ष दायी है।

☞ इस ब्रह्म तीर्थ पर पिण्डदान करने के बाद कहीं भी पिण्डदान करने की आवश्यकता नहीं है।

☞ उज्जैन के विद्वानों को इस धार्मिक रहस्य को प्रचारित करना चाहिये जिससे कि सनातन कर्म और सनातन धर्म को मजबूत बनाया जा सके।

पुष्कर तीर्थ–एक बार लोक के कल्याण हेतु ब्रह्माजी ने पुष्कर में यज्ञ किया। उस यज्ञ में विष्णु-लक्ष्मी, शिव-पार्वती, इन्द्र-शचि सहित सभी देवी-देवता तथा नारद, मरीचि, वसिष्ठ, अत्रि सहित सभी ऋषि विद्यमान् थे। पुष्कर तीर्थ में सभी देवता साक्षात् विद्यमान् हैं। पुष्कर तीर्थ में किया गया श्राद्ध एवं पिण्डदान सर्वोच्च तथा मोक्षदायी है।

☞ इस ब्रह्म तीर्थ पर पिण्डदान करने के बाद कहीं भी पिण्डदान करने की आवश्यकता नहीं है।

बद्रीनाथ तीर्थ–बद्रीनाथ का ब्रह्मकपाली नामक स्थान पर भी श्राद्ध एवं पिण्डदान मोक्षदायी है।

☞ इस ब्रह्म तीर्थ पर पिण्डदान करने के बाद कहीं भी पिण्डदान करने की आवश्यकता नहीं है।

× × ×

भगवान् ब्रह्मा एवं भगवान् चित्रगुप्त का विशाल मंदिर उज्जैन के क्षिप्रातट एवं कायथा में बनाना चाहिये

उज्जैन स्थित क्षिप्रा नदी का तट, जो कभी ब्रह्म-चित्रगुप्त घाट रहा होगा, जिसे वर्तमान् में रामघाट के नाम से जाना जाता है। सृष्टि के प्रारम्भ में क्षिप्रा नदी के तटपर भगवान् ब्रह्मा ने तपस्या करके चित्रगुप्तजी को उत्पन्न किया था। क्षिप्रानदी का तट "ब्रह्माजी की तपोभूमि" तथा कायथा "लोकशासक महाकाल चित्रगुप्तजी की तपोभूमि" है। रामघाट स्थित क्षिप्रानदी के तट पर वर्तमान में एक चित्रगुप्तजी का मंदिर भी स्थित है। इस चित्रगुप्त मंदिर पर आदिकाल से आज तक श्राद्ध एवं पिण्डदान का कार्य किया जाता है।

☞ उज्जैन वासियों द्वारा रामघाट एवं कायथा में भगवान् ब्रह्मा एवं चित्रगुप्तजी के विशाल मंदिर का निर्माण करके उसमें विशाल मूर्ति स्थापित किया जाना चाहिये तथा इस घाट का नाम ब्रह्म-चित्रगुप्त घाट कर देना चाहिये, जिससे कि जनता इस परमपवित्र स्थल की महत्ता से अवगत हो सके।

☞ इन दोनों परमपवित्र स्थल को पर्यटक स्थल के रूप में विकसित करना चाहिये। जिससे कि सभी सनातनी उज्जैन जाकर इन तीर्थों का दर्शन करके अपना जीवन सफल बना सकें।

× × ×

उज्जैन स्थित इस रामघाट पर भगवान् ब्रह्मा एवं भगवान् चित्रगुप्त जी का विशाल मंदिर होना चाहिए

लगभग ५०० ईसा वर्ष पूर्व पाटलिपुत्र स्थित भगवान चित्रगुप्त का मन्दिर

भगवान् चित्रगुप्त की यह मूर्ति पटना साहिब में स्थित है यह प्रतिमा चन्द्रगुप्त मौर्य के महामात्य राक्षस द्वारा स्थापित बताया गया है। इस मूर्ति की स्थापना ४०० ईसा पूर्व की है। इस मन्दिर का जीर्णोद्धार १५७३ ई० में राजा टोडरमल द्वारा कराया गया है।

इस मूर्ति का विवरण सुजीत कुमार श्रीवास्तव, निवासी-राजेन्द्रनगर, जिला-गोपालगंज द्वारा उपलब्ध कराया गया है।

श्री चित्रगुप्त आदि मंदिर प्रबंधक समिति
दीवान मुहल्ला, नौजर घाट, पटना - 800 008 (बिहार)
चन्द्रगुप्त के महामात्य मुद्रा राक्षस द्वारा अढ़ाई हजार वर्ष पूर्व स्थापित एवं राजा टोडरमल द्वारा 1573 ई0 में जीर्णोद्धारकृत काले कसौटी पत्थर की भगवान चित्रगुप्त की दुर्लभ प्रतिमा।

यह प्रतिमा कांचीपुरम के चित्रगुप्त मंदिर में स्थापित है।

चेन्नई के पास कांचीपुरम नगरी में स्थित भगवान् चित्रगुप्त के प्राचीन मन्दिर का दृश्य। इस मंदिर की स्थापना ९ वीं शताब्दी में की गयी थी। यह मन्दिर आदि शंकराचार्य मठ के पास ही है। कांचीपुरम नगरी में भगवान् चित्रगुप्त का जन्म दिन हिन्दी वर्ष के चित्रमास के शुक्लपक्ष में जब चित्रनक्षत्र आता है उस समय मनाया जाता है। यह त्यौहार तमिलनाडु के मुख्य त्यौहारों में से एक है। इस राज्य में इस त्यौहार को चितरई मास नाम से मनाया जाता है।

खजुराहो में स्थित भगवान् चित्रगुप्त का प्राचीन मंदिर। इस मंदिर की स्थापना ११ वीं शताब्दी में की गयी थी।
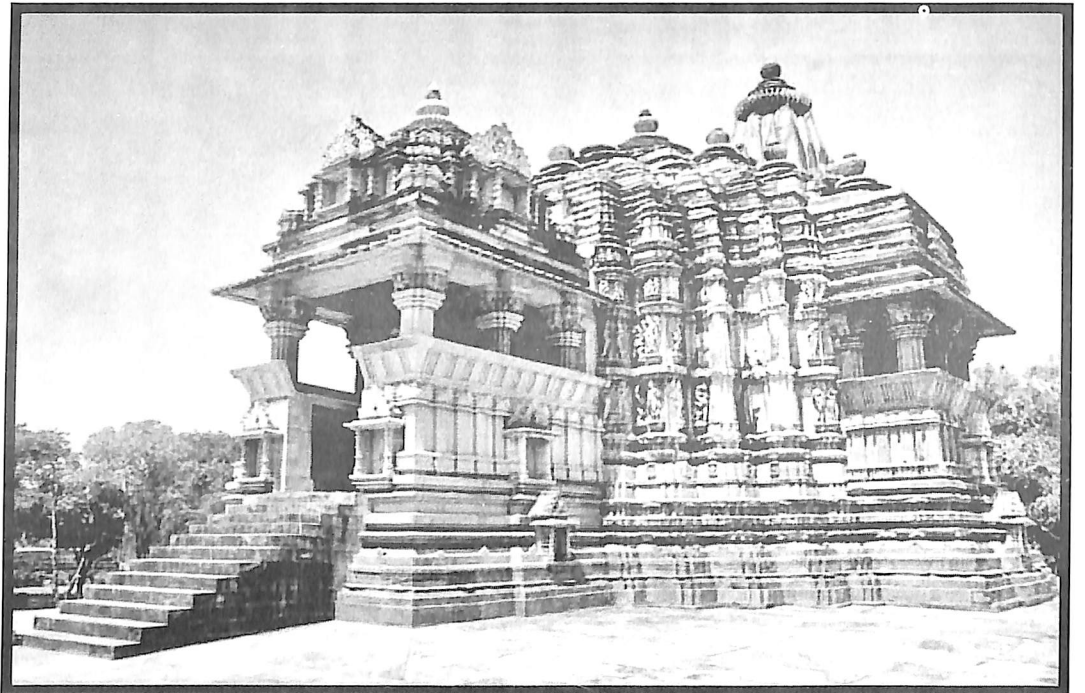
पुराणों एवं इतिहास में कायस्थ राजा

पुराणों एवं इतिहासों में विद्यमान कायस्थ कुल के महान् राजाओं का वर्णन आगे दिया जा रहा है—

१. राजा सुरथ–'मार्कण्डेयपुराण' में सर्वोच्च देवी उपासक, चित्रगुप्त वंशीय 'राजा सुरथ' का वर्णन दिया गया है। इस पुराण में इनका वर्णन अध्याय ७८ से ९० तक, १३ अध्यायों में दिया गया है। राजा सुरथ ऐसे राजा थे जिनका साम्राज्य सम्पूर्ण भूमण्डल (पृथ्वी) पर था। इन्होंने देवी की उपासना से प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त करते हुये अपना खोया साम्राज्य प्राप्त किया था। राजा सुरथ ही प्रलय के पश्चात् अगले मनुऽन्तर में सावर्णि नाम के मनु होंगे। इन्हीं १३ अध्यायों को संकलित करके 'दुर्गासप्तशती' नामक पवित्र ग्रन्थ की रचना की गयी है। आज सम्पूर्ण भारत के लोग देवी की कृपा प्राप्त करने के लिये 'दुर्गासप्तशती' में विद्यमान् राजा सुरथ की कथा को पढ़ते हैं। राजा सुरथ अत्यन्त न्यायप्रिय थे। ये प्रजा का पालन अपने पुत्रों के समान करते थे—

स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्भवः। सुरथो नाम राजाभूत्समस्ते क्षितिमण्डले॥ ३॥ तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाः पुत्रानिवौरसान्।

(मार्कण्डेय पुराण, अध्याय-७८, श्लोक ३-३१/२)

पूर्वकाल की बात है, स्वारोचिष मन्वन्तर में सुरथ नामके एक राजा थे, जो चैत्रवंश में उत्पन्न हए थे। उनका समस्त भूमण्डल पर अधिकार था॥ ३॥ वे प्रजा का अपने औरस पुत्रों (अपने पुत्रों) की भाँति धर्म पूर्वक पालन करते थे॥ ३१/२॥

☞ सृष्टि के नियन्ता चित्रगुप्तजी के नाम से ही हिन्दी वर्ष का प्रथममास चित्रमास कहलाता है, जो अपभ्रंश होकर चैत्रमास हो गया है, दक्षिण भारत में इसे यथावत् चित्रमास ही कहते हैं। चैत्रवंश भगवान् चित्रगुप्त के वंश को ही कहते हैं।

परितुष्टा जगद्धात्री प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका॥ ९॥

(मार्कण्डेय पुराण, अध्याय-९०, श्लोक-९)

इस पर प्रसन्न होकर जगत् को धारण करने वाली चण्डिका देवी ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा॥ ९॥

[देवी ने इन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया था।]

देव्युवाच–

यत्प्रार्थ्यते त्वया भूप त्वया च कुलनन्दन। मत्तस्तत्प्राप्यतां सर्वं परितुष्टा ददामि तत्॥ १०॥

(मार्कण्डेय पुराण, अध्याय-९०, श्लोक-१०)

देवी बोली—राजन्! तथा अपने कुल को आनन्दित करने वाले वैश्य! तुम लोग जिस वस्तु की अभिलाषा रखते हो, वह मुझसे माँगो। मैं संतुष्ट हूँ, अतः तुम्हें वह सब कुछ दूँगी॥ १०॥

मार्कण्डेय उवाच–

ततो वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि। अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात्॥ ११॥

(मार्कण्डेय पुराण, अध्याय-९०, श्लोक-११)

मार्कण्डेय बोले—तब राजा ने दूसरे जन्म में नष्ट न होने वाला राज्य माँगा तथा इस जन्म में भी शत्रुओं की सेना को बलपूर्वक नष्ट करके पुनः अपना राज्य प्राप्त कर लेने का वरदान माँगा॥ ११॥

एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः। सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः॥ १७॥

(मार्कण्डेय पुराण, अध्याय-९०, श्लोक-१७)

इस प्रकार देवी से वरदान पाकर सुरथ, क्षत्रियों में श्रेष्ठ सूर्य वंश में जन्म ले सावर्णि नामक मनु होंगे॥ १७॥

२. मान्धाता–इनका वर्णन भविष्यपुराण, प्रतिसर्गपर्व, अध्याय-२२ के श्लोक संख्या ४० में दिया गया है। इन्होंने ही भाषा में भागवत पुराण को लिखा था। इसके पहले भागवत पुराण का पाठ श्रुति-स्मृति द्वारा किया जाता था—

मान्धाता भूपतिर्नाम कायस्थः स बभूव ह। मध्वाचार्यो भागवतं चक्रे भाषामयं शुभम्॥

(भविष्यपुराण, प्रतिसर्गपर्व, अध्याय-२२, श्लोक-४०)

मान्धाता कायस्थ कुल में जन्म लेकर राजा हुये। इन्होंने मध्वाचार्य द्वारा निर्मित शुभ भागवत की भाषा में रचना की।

(उपरोक्त प्रकरण में जिस राजा मान्धाता का वर्णन दिया गया है वह सूर्यवंश में उत्पन्न वैवस्वतमनु के वंशज नहीं हैं।)

३. राजा चन्द्रापीड–कश्मीर की वर्तमान् राजधानी श्रीवास्तव कायस्थों के नाम पर श्रीनगर कहलाती है। कश्मीर की भूमि पर श्रीवास्तव कायस्थों का शासन २,०५५ वर्षों तक रहा है। इसका वर्णन आईने अकबरी में नाग के नाम से विद्यमान् है। इतिहास में इनका शासन 'कार्कोटक नागवंश' के रूप में जाना जाता है। इन कायस्थ राजाओं में न्यायप्रियता अपने पिता भगवान् चित्रगुप्त के समान ही विद्यमान् थी। इन न्यायप्रिय राजाओं में से एक 'चन्द्रापीड' थे। इनका प्रजा के प्रति प्रेम एवं न्यायप्रियता का वर्णन आगे दिया जा रहा है—

अथ विगलिता गोनंदोर्वीभुजोभिजनाच्छुचेरतिशुचिनि भूःकार्कोटाहिः कुले व्यधित स्थितिम्।
चिरपरिचितात्स्वर्गाभोगाध्वनः पतनं श्रिता त्रिभुवनगुरोः शंभोर्मौलाविवामरनिम्नगा॥

(राजतरंगिणी, तृतीयस्तरङ्ग, श्लोक-५३०)

जिस तरह गङ्गाजीने स्वर्गमार्गका परित्याग करके त्रिलोकाधिपति भगवान् शंकरके जटाजूटको अपना आश्रय बनाया था। उसी प्रकार उस समय कश्मीरकी भूमिने पुनीत गोनन्दवंशको छोड़कर परम् पवित्र 'कार्कोटक नागवंश' को अपना आश्रय बनाया॥ ५३०॥

दोषांस्त्यक्त्वाऽन्यभूपेषु ये शुद्धा श्रीरशिश्रियत्। मार्गाद्रिष्वोघकालुष्यं क्षिप्त्वा सिन्धुरिवार्णवम्॥ ४९॥
कार्यज्ञो यो न तच्चक्रे यत्फलेऽभूद्रिविलग्रधीः। परं समाचरन्स्तुत्यं स्तूयमानस्त्रपां दधे॥ ५०॥
व्यनीयत न योऽमात्यैर्विनयं तान्स्वशिक्षयत्। वज्रं न भिद्यते कैश्चिद्भिनत्त्यन्यान्मणींस्तु तत्॥ ५१॥
यस्याधर्मभयादासीत्संत्याज्यो धर्मसंशये। निजोऽपि पक्षः कुलिशत्रासादिव गरुत्मतः॥ ५२॥

जैसे नदियाँ अपना कूड़ा-कचरा मार्गके पर्वतों पर छोड़ती हुई निर्मलरूपमें समुद्रसे जा मिलती हैं, उसी प्रकार लक्ष्मीने भी अपने सारे दोष अन्य राजाओंको सौंपकर विशुद्धरूपसे राजा चन्द्रापीड का आश्रय ग्रहण किया॥ ४९॥ कार्य करने के ढंग उसे यद्यपि भलीभाँति मालूम थे, फिर भी वह कोई ऐसा काम नहीं करता था कि जिससे भविष्यमें पछताना पड़े। वह अपने किये कर्मोंसे प्रशंसित होनेपर लज्जाका अनुभव करने लगता था॥ ५०॥ जैसे वज्र (हीरा) सब रत्नोंका भेदन कर सकता है, किन्तु हीरेको अन्य रत्न नहीं बींध सकते। उसी प्रकार वह राजा

अपने सभी मंत्रियों को राजनीति सिखा सकता था, किन्तु कोई मंत्री उसको नैतिक शिक्षा देने का सामर्थ्य नहीं रखता था॥ ५१॥ जिस प्रकार वज्रके भयसे गरुड़ने अपना पक्ष त्याग दिया था, उसी प्रकार धर्मसंशयके अवसरपर वह राजा भी अपना पक्ष त्याग देता था॥ ५२॥

न्यार्य्य दर्शयता वर्त्म तेन राज्ञा प्रवर्तिताः। स्थितयो वीतसन्देहा भास्वतेव दिनक्रियाः॥ ५३॥
नियन्त्रिता यद्भणितिस्तद्गुणोदीरणादियम्। अतिप्रसंगभंगात्तन्नेयत्तावाप्तितः पुनः॥ ५४॥
तस्य त्रिभुवनस्वामिप्रासादारम्भकर्मणि। चर्मकृत्कोऽपि न प्रादात्कुटीं क्षेत्रोपयोगिनीम्॥ ५५॥
शश्वत्प्रतिश्रुतार्थानां नवकर्माधिकारिणाम्। नैसर्गिकाग्रहग्रस्तः सूत्रापातं न चक्षमे॥ ५६॥

उदयकालमें जैसे सूर्यनारायण मन्देह नामके राक्षसोंका विनाश करते हैं, उसी प्रकार वह राजा भी न्यायपथपर चलकर दैनिक कार्योंमें आ पड़नेवाले सन्देहोंका विनाश करता था॥ ५३॥ कथाक्रम विच्छिन्न हो जानेके भयसे उस राजाके गुणोंका इतना ही वर्णन करके अब मैं आगेका वृत्तान्त बताता हूँ। किन्तु इससे पाठकोंको यह न समझ लेना चाहिये कि राजा चन्द्रापीडमें इतने ही गुण थे॥ ५४॥ एक समय वे भगवान् त्रिभुवनस्वामीका मन्दिर बना रहे थे। उस मन्दिरकी ही हदमें एक चर्मकार की झोपड़ी पड़ रही थी। उस सीमाके भीतर पड़ने के कारण झोपड़ी लेना अत्यन्त आवश्यक था। किन्तु चर्मकार अपनी कुटिया नहीं छोड़ता था॥ ५५॥ मन्दिर निर्माणके कामपर नियुक्त अधिकारी उसे बार-बार समझाते थे और उस कुटियाका दाम भी चुकानेको तैयार थे, किन्तु चर्मकार किसी तरह राजी नहीं हो रहा था॥ ५६॥

विज्ञापितोऽथ तैरेत्य तमर्थं पृथिवीपतिः। तानेव सासो मैने चर्मकारं न तं पुनः॥ ५७॥
सोऽभ्यधात्तान्धिगेतेषामप्रेक्षापूर्वकारिताम्। प्रागेव यैरपृष्ट्वा तं प्रविष्टं नवकर्मणि॥ ५८॥
नियम्यतां विनिर्माणं यद्वाऽन्यत्र विधीयताम्। परभूम्यपहारेण सुकृतं कः कलङ्कयेत्॥ ५९॥
ये द्रष्टारः सदसतां ते धर्मविगुणाः क्रियाः। वयमेव विदध्मश्चेद्यातु न्यय्ययेन कोऽध्वना॥ ६०॥

अन्तमें उन अधिकारियोंने यह बात राजा चन्द्रापीडको बतायी। उसे सुनकर राजाने उन अधिकारियोंको ही दोषी ठहराया, चर्मकार को नहीं। उन्होंने कहा—'उस चर्मकारकी अनुमति लिये बिना तुम लोगोंने काम ही क्यों लगाया? तुम सब लोग विचारशून्य हो, तुम्हें धिक्कार है। अब या तो मन्दिर निर्माणका काम बन्द कर दो अथवा किसी दूसरी जगह वह काम करो, परायी जमीन छीनकर अपने यशको कौन कलंकित करेगा। धर्म तथा अधर्मकी विवेचना करनेवाले हमीं लोग अधर्म करने लगेंगे तो न्यायके पथपर कौन चलेगा'॥ ५७—६०॥

इत्युक्तवति भूपाले प्रेषितो मन्त्रिपर्षदा। पार्श्वात्पादूकृतस्तस्य दूतः प्राप्तो व्यजिज्ञपत्॥ ६१॥
इच्छति स्वामिनं द्रष्टुं स च ब्रूते न चेन्मम। युक्तः प्रवेश आस्थाने बाह्याल्यवसरेऽस्तु तत्॥ ६२॥
अन्येद्युरथ भूषेन स बहिर्दत्तदर्शनः। पुण्यकर्मणि नो विघ्नः किं त्वमेवेत्यपृच्छयत्॥ ६३॥
प्रतिभाति गृहं तच्चेद्रम्यं तत्र ततोऽधिकम्। तदर्थ्यतां धनं वापि भूर्येवं चाभ्यधीयत॥ ६४॥

राजा चन्द्रापीडके यह कहनेपर मंत्रिपरिषदने उस पादुकाकारके पास दूत भेजा और दूतने वहाँसे लौटकर कहा कि 'वह चर्मकार महाराजसे मिलना चाहता है। उसका यह भी कहना है कि यदि मैं दरबारमें आनेके अयोग्य समझा जाऊँ तो कहीं बाहर मिलनेकी व्यवस्था कर दी जाय'। अगले दिन महाराजने दरबारके बाहर उस चर्मकारको दर्शन देकर पूछा—'तुम मेरे धर्मकार्यमें क्यों बाधा डाल रहे हो? यदि तुम्हें वही घर पसन्द हो तो मैं उससे और भी अच्छा घर बनवा दूँगा'॥ ६१—६४॥

तूष्णीं स्थितं ततो भूपं चर्मकारो व्यजिज्ञपत्। दन्तांशुसूत्रैस्तत्सत्त्वमानं ज्ञातुमिवोद्यतः॥ ६५॥
राजन्विज्ञाप्यते किंचिद्यदस्माभिर्यथाशम्। न स्थेयमवलिप्तेन तत्र द्रष्ट्रा सता त्वया॥ ६६॥
नाहमूनः शुनो नास्ति काकुत्स्थात्पार्थिवः पृथुः। क्षुभ्यन्तीवाद्य त्वत्सभ्याः संलापेस्मिन्किमावयोः॥ ६७॥
आप्तस्य जन्तोः संसारे भङ्गुरः कायकञ्चुकः। अहंताममताख्याभ्यां शङ्कुभ्यामेव बध्यते॥ ६८॥

इतना कहकर जब महाराज चुप हो गये, तब जैसे अपने दन्तद्युतिरूपी सूत्रसे राजाके सत्त्वको नापता हुआ वह चर्मकार बोला— 'राजन्! मैं आपको अपने मनकी बात बता रहा हूँ। प्रसंगवश इसमें यदि कोई सत्य किन्तु कड़ुई बात आ जाय तो आपको कुपित नहीं होना चाहिए। महाराज! मैं कुत्तेसे न्यून नहीं हूँ और आप राजा काकुत्स्थसे बड़े नहीं हैं। ऐसी स्थितिमें आपके ये सभासद हम दोनोंके संभापणसे क्रुद्ध क्यों हो रहे हैं? संसारमें उत्पन्न प्रत्येक प्राणीका नाशवान् शरीररूपी वस्त्र अहंता और ममतारूपी दो खुटियोंके सहारे टिका हुआ है॥ ६५—६८॥

कङ्कणांगदहारादिशोभिनां भवतां यथा। निष्किंचनानामस्माकं स्वदेहेऽहंक्रिया तथा॥ ६९॥
देवस्य राजजान्येषा यादृशी सौधहासिनी। कुटी घटमुखानद्धतमोऽरिस्तादृशी मम॥ ७०॥
आ जन्मनः साक्षिणीयं मातेव सुखदुःखयोः। मटिकाः लोड्यमानाऽद्य नेक्षितुं क्षम्यते मया॥ ७१॥
नृणां यद्वेश्महरणे दुःखमाख्यातुमीश्वरः। तद्विमानच्युतोऽमर्त्यो राज्यभ्रष्टोऽथ पार्थिवः॥ ७२॥

कंकण-बिजायठ आदि आभूषणों से आभूपित आप जैसे राजाओंको जिस तरह का स्वाभिमान है, उसी प्रकार मुझ जैसे दरिद्रको भी दैहिक स्वाभिमान रखनेका अधिकार है। जैसे आपको अट्टालिकाओंसे परिपूर्ण अपनी राजधानी प्यारी है, उसी प्रकार फूटे घड़ेके समान अगणित छिद्रोंसे युक्त मेरी कुटिया मुझको प्यारी है। जन्मसे लेकर आजतक माताके समान मेरे सुख-दुःख की साक्षिणी उस झोपड़ी का विनाश मैं नहीं देख सकता। जिस मनुष्यका घर छिन जाता है, उसको जो कष्ट होता है, उसका अनुभव दो ही व्यक्ति कर सकते हैं, एक तो राजच्यूत राजा और दूसरा विमान से गिरा हुआ देवता॥ ६९—७२॥

एवमप्येत्य मद्वेश्म सा चेद्देवेन याच्यते। सदाचारानुरोधेन दातुं तदुचितं मम॥ ७३॥
इति तेनोत्तरे दत्ते भूभृद्गत्वा तदास्पदम्। कुटीं जग्राह वित्तेन नाभिमानः शुभार्थिनाम्॥ ७४॥
अवोचच्चर्मकारस्तं तत्र स व्यञ्जिताञ्जलिः। राजन्धर्मानुरोधेन परवत्ता तवोचिता॥ ७५॥

हाँ, यदि आप मेरे यहाँ आकर याचना करें तो शिष्टाचारके कारण मैं आपको अपनी झोंपड़ी दे दूँ'। ऐसा उत्तर सुनकर राजा चन्द्रापीड उस चर्मकार के पास गया और धन देकर उसकी झोपड़ी खरीद ली। क्योंकि कल्याणेच्छुक पुरुषोंका व्यर्थ अभिमान नहीं होता। तदनन्तर हाथ जोड़कर उस चर्मकारने कहा—'राजन्! आपकी धर्म परतंत्रता उचित ही है॥ ७३—७५॥

श्वविग्रहेण धर्मेण पाण्डुसूनोः पुरा यथा। धार्मिकत्वं तथा तेद्य मयाऽस्पृश्येन वीक्षितम्॥ ७६॥
स्वस्ति तुभ्यं चिरं स्थेया धर्म्या वृत्तान्तपद्धतीः। दर्शयन्नीदृशीः शुद्धाः श्रद्धेया धर्मचारिणाम्॥ ७७॥
एवं निष्कल्मषाचारः स चक्रे पावनीं भुवम्। राजा त्रिभुवनस्वामिकेशवस्य प्रतिष्ठया॥ ७८॥

(राजतरंगिणी, चतुर्थस्तरङ्ग, श्लोक ४९-७८)

जिस प्रकार पूर्वकालमें धर्मराजने कुत्तेका रूप धारण करके धर्मराज युधिष्ठिरके धार्मिकताकी परीक्षा ली थी, उसी प्रकार इस अछूतने भी आपकी परीक्षा ली है। हे राजन्! आपका कल्याण हो और आप इसी तरह धार्मिक

आचार-विचारवाले लोगोंको आचार पद्धतिका प्रदर्शन करते हुए बहुत समयतक राज्य करें'। इस तरह पुनीत आचरण वाले 'राजा चन्द्रापीड' ने त्रिभुवनस्वामी नामक विष्णु भगवान्‌को स्थापित करके पृथ्वीको पवित्र किया॥ ७९—७८॥

× × ×

☞ इन राजाओं के अतिरिक्त भी 'कायस्थब्राह्मण' कुल से अनेक राजा हुये हैं। उपर्युक्त प्रकरण केवल उदाहरण स्वरूप दिया गया है। इन राजाओं ने सदैव ज्ञान के साथ शासन किया है।

कायस्थों के तरह ही 'ऋषिपुत्रब्राह्मण' कुल से भी राजा हुये हैं।

जैसे—विभीषण, प्रह्लाद, रावण, अहिरावण, मेघनाद, हिरण्याक्ष, हिरण्यकश्यप इत्यादि।

राजा का अभिप्राय 'क्षत्रिय' होना कदापि नहीं है।

बंगाल पर २०३८ वर्षों तक ब्रह्मकायस्थ 'गौडब्राह्मणों' का शासन था
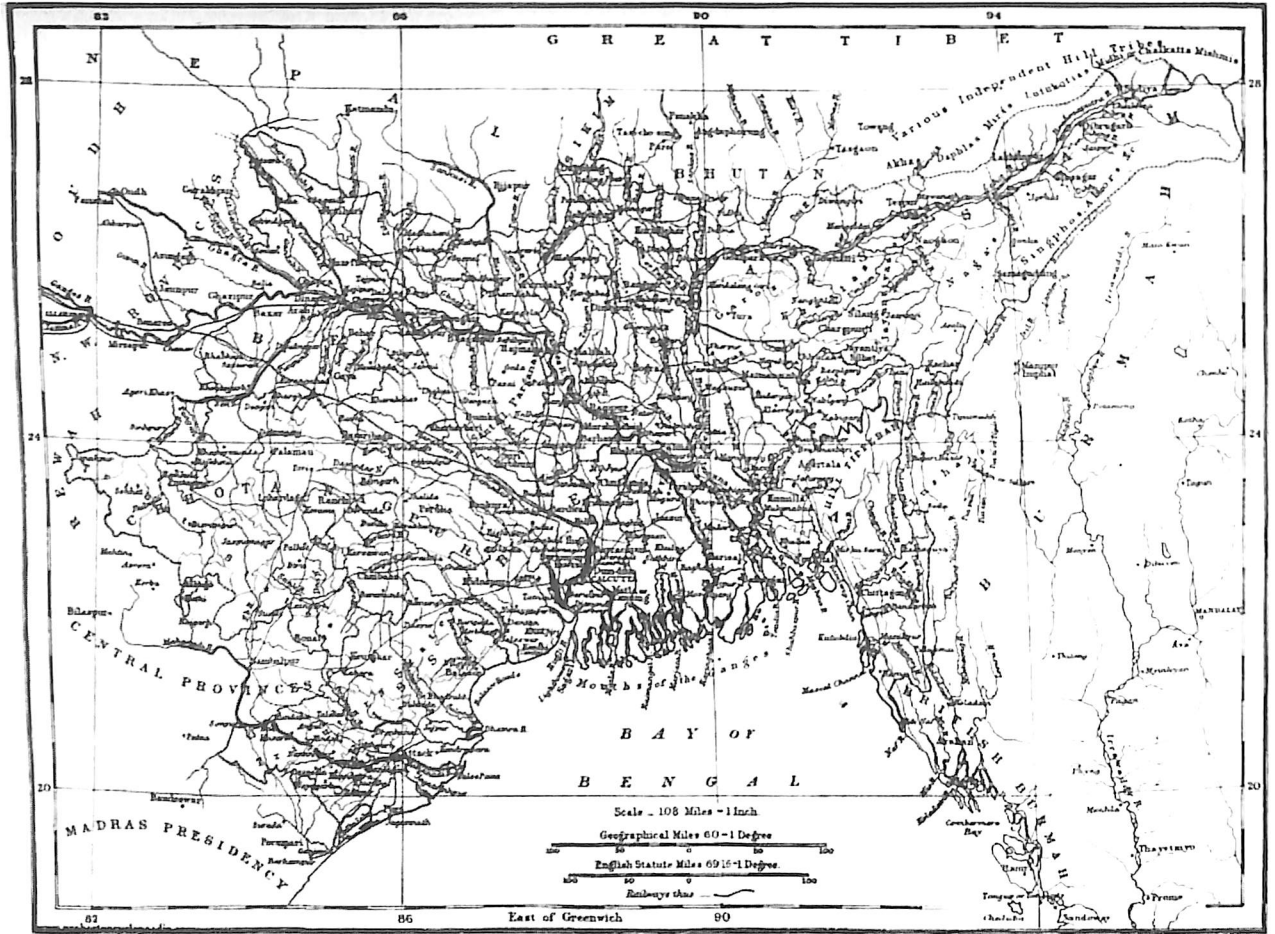
बंगदेश (बंगाल) पर ईसा पूर्व ४८४ वर्ष से लेकर सन् १५५४ तक अर्थात २०३८ वर्ष तक कायस्थ गौडब्राह्मण का ही शासन था। इन्हें (Sovereignty) अर्थात 'सम्प्रभु' कहा जाता था। सम्पूर्ण भारत पर इन्हीं का बनाया हुआ कानून चलता था। पूर्वकाल में पूर्वीभारत (मणिपुर, मेघालय, आसाम इत्यादि) बांग्लादेश, बिहार तथा उड़ीसा मिलकर बंगदेश कहलाता था। बंगदेश में आदिकाल से चित्रगुप्त वंशीय कर्ण कायस्थों का शासन रहा है। यह कर्ण कायस्थ 'दालभ्यगौडब्राह्मण' हैं। इनका गोत्र 'दालभ्य' है। इनके दीर्घकालीन शासन के कारण 'बंगदेश' को इन्हीं के गौड नाम पर 'गौडदेश' भी कहा जाता है। इनके वंशज आज भी बंगाल, आसाम, उड़ीसा, बिहार, आन्ध्रप्रदेश, कर्णाटक, तमिलनाडु तथा केरल में पाये जाते हैं।

बंगाल, आसाम, उड़ीसा एवं बिहार के कर्ण कायस्थों के बहुत से उपनाम आज भी एक ही हैं। जैसे— दत्त, चौधरी, मल्लिक एवं दास इत्यादि।

बंगाल में शासित कायस्थों का वर्णन विस्तार से अकबर के 'राजपत्र' आईने अकबरी में दिया गया

है। आईने अकबरी में दिये गये कायस्थ राजाओं का वर्णन इस प्रकार है—

९ कायस्थ राजाओं द्वारा शासित ईसा पूर्व ४८४ से सन् ३६ ई० तक (५२० वर्ष)

१—राजा भोजगौरीय, २—राजा लालसेन, ३—राजा मधु, ४—राजा सामन्तभोज, ५—राजा जयन्त, ६—राजा पृथुराज, ७—राजा गर्रर, ८—राजा लक्ष्मण, ९—राजा नन्दभोज

११ कायस्थ राजाओं द्वारा शासित सन् ३६ ई० से सन् ७५० ई तक (७१४ वर्ष)

१—राजा आदिसुर, २—राजा जमनीभन, ३—राजा अनिरूद्ध, ४—राजा प्रताप रुद्र, ५—राजा भाव दत्त, ६—राजा सुखदेव, ७—राजा गिरधर, ८—राजा पृथिधर, ९—राजा शिष्टधर, १०—राजा प्रभाकर, ११—राजा जयधर

१० कायस्थ राजाओं द्वारा शासित सन् ७५० ई० से सन् १४४८ ई० तक (६९८ वर्ष)

१—राजा गोपाल, २—राजा धर्मपाल, ३—राजा देवपाल, ४—राजा भूपतिपाल, ५—राजा धनपतिपाल, ६—राजा बिज्जनपाल, ७—राजा जयपाल, ८—राजा राजपाल, ९—राजा भोगपाल, १०—राजा जगपाल
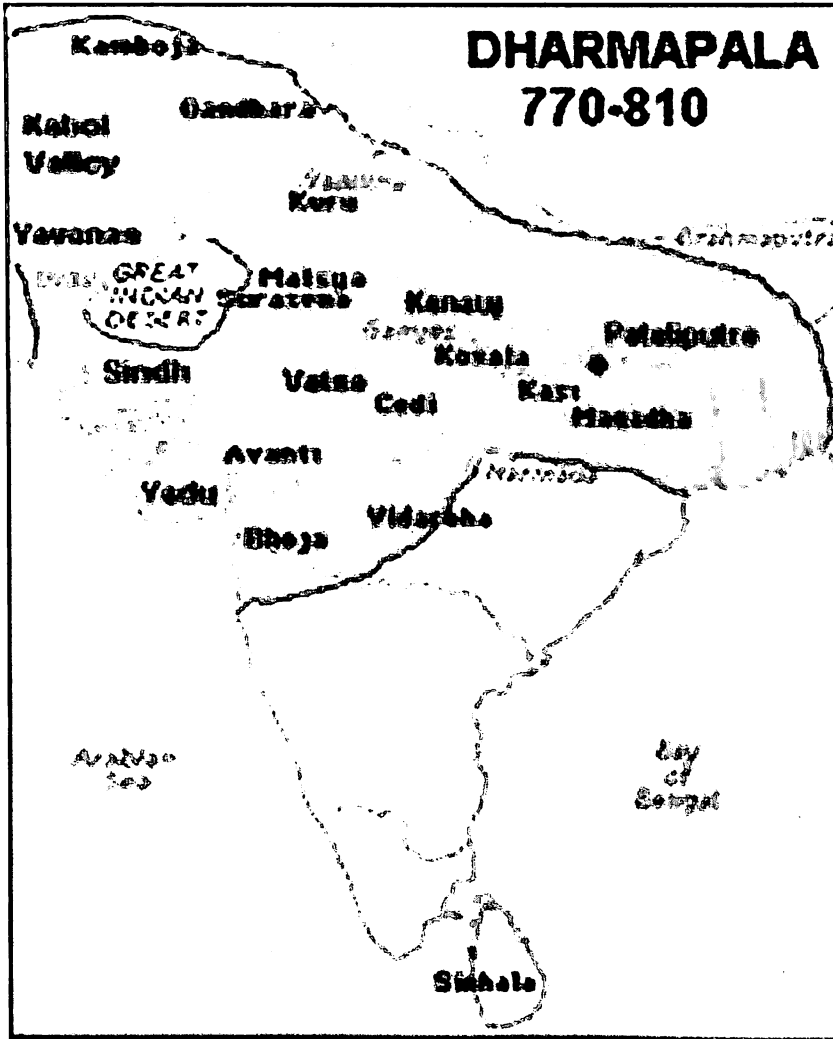
इस मानचित्र पर ध्यान दें! राजा धर्मपाल ने सन् ७७० से सन् ८१० ई० के बीच सनातनधर्म को नष्ट करके बौद्धधर्म को स्थापित करना प्रारम्भ कर दिया था।
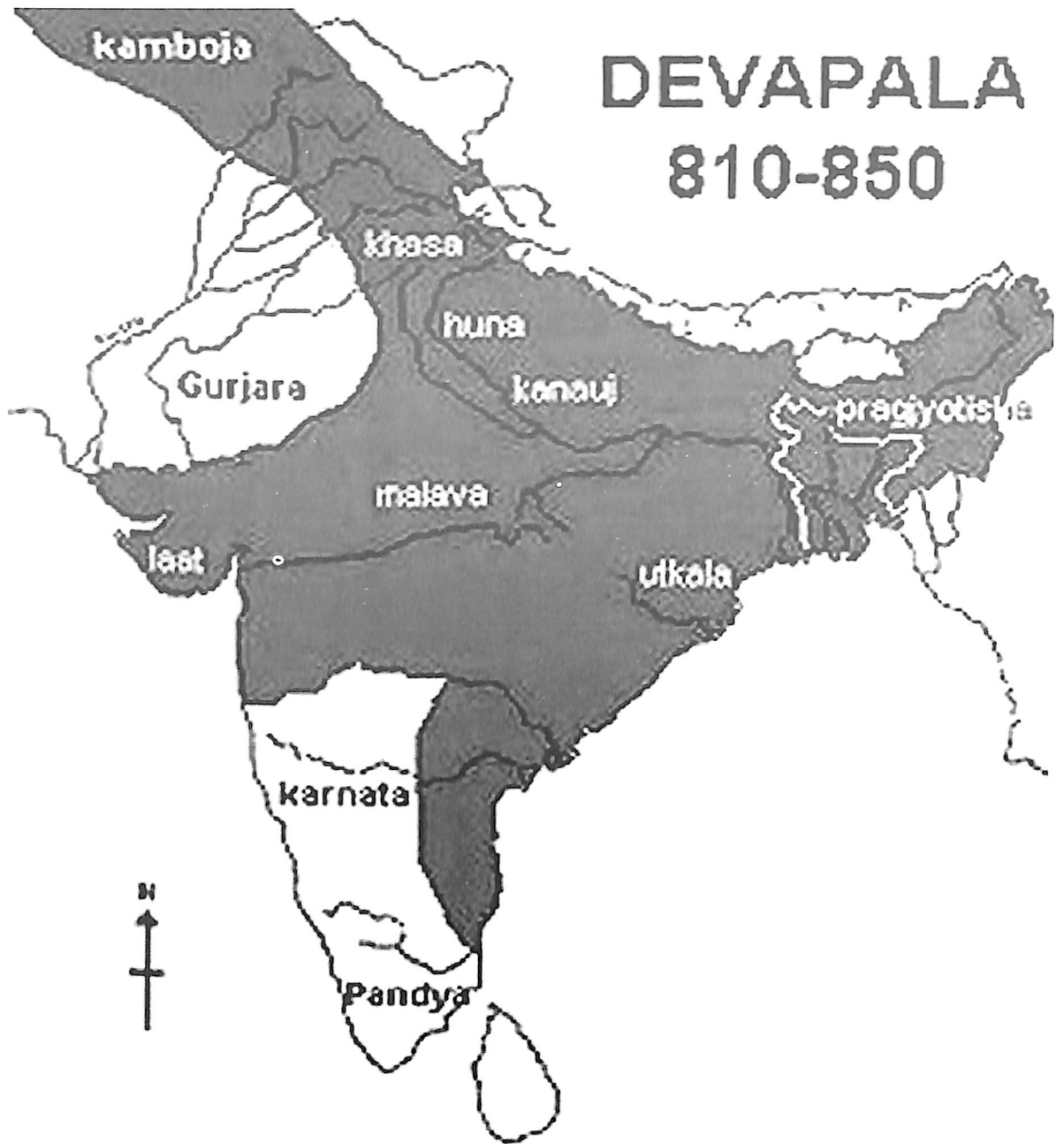
उपर्युक्त मानचित्र पर ध्यान दें! राजा देवपाल ने सन् ८१० से सन् ८५० ई० के बीच सनातनधर्म को नष्ट करके बौद्धधर्म को स्थापित कर दिया था।

इनके शासन को नष्ट करके सेन कायस्थों ने बंगदेश पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। सेन कायस्थ अत्यन्त कट्टर सनातनी थे। उन्होंने बौद्धधर्म को नष्ट करके पुनः परम्पवित्र सनातन धर्म को स्थापित किया।

७ कायस्थ राजाओं द्वारा शासित सन् १४४८ ई० से सन् १५५४ ई० तक (१०६ वर्ष)

१—राजा सुखसेन, २—राजा बल्लालसेन, ३—राजा लक्ष्मणसेन, ४—राजा मधुसेन, ५—राजा केशुसेन, ६—राजा शूरसेन, ७—राजा नारायणसेन

संदर्भ—

प्रमाणिक, मौलिक एवं मूल प्रति—

THE

AÍN I AKBARI

BY

ABUL FAZL ẠLLÁMI,

TRANSLATED FROM THE ORIGINAL PERSIAN.

BY

COLONEL H. S. JARRETT,

SECRETARY AND MEMBER, BOARD OF EXAMINERS, CALCUTTA.

PUBLISHED BY THE ASIATIC SOCIETY OF BENGAL.

VOL. II.

CALCUTTA:

PRINTED AT THE BAPTIST MISSION PRESS.

1891.

प्रमाणिक, मौलिक एवं मूल प्रति— 145

		Years.			Years.
Birmáth,	reigned	... 83	Kálúdand,	reigned	... 85
Rukhdeva,	„	... 81	Kámdeva,	„	... 90
Rákhbind, (Rukhnand)	„	... 79	Bijai Karn,	„	... 71
Jagjíwan,	„	... 107	Sat Singh,	„	... 89

Nine princes of the *Káyeth* caste ruled in succession 520 years after which the sovereignty passed to another *Káyeth* house.

		Years.			Years.
Rájá Bhójgauriya	reigned	... 75	Pirthu Rájá,	reigned	... 52
Lálsén,	„	... 70	Rájá Garrar,	„	... 45
Rájá Madhú,	„	... 67	„ Lachhman,	„	... 50
Samantbhój,	„	... 48	„ Nandbhój,	„	... 53
Rájá Jaint,	„	... 60			

Eleven princes reigned in succession 714 years, after which another *Káyeth* family bore rule.

		Years.			Years.
Rájá Udsúr, (Adisúr,)	reigned	... 75	Rájá Gridhar,	reigned	... 80
„ Jámanibhán,	„	... 73	„ Pirthidhar,	„	... 68
„ Unrúd,	„	.. 78	„ Shishtdhar,	„	... 58
„ Partáb Rudr,	„	... 65	„ Prabhákar,	„	... 63
„ Bhawádat,	„	... 69	„ Jaidhar,	„	... 23
„ Rukdeva,	„	... 62			

Ten princes reigned 698[1] years, after which the sway of another *Káyeth* family was established.

		Years.			Years.
Rájá Bhopál,	reigned	... 55	Rájá Bigan (Bíjjan) pál,	reigned	... 75
„ Dhripál,	„	... 95	„ Jaipál,	„	... 98
„ Devapál,	„	... 83	Rajpál,	„	... 98
„ Bhupatipál,	„	... 70	Bhogpál, his brother,	„	... 5
„ Dhanpatipál,	„	... 45	Jagpál, his son,	„	... 74

[1] According to the Useful Tables (Pt II, p. 117), this is too much: the succession of names differs also somewhat from those of the inscriptions.

Monghír Plate.
Gopála.
Dhermapála.
Devapála.
Budal Plate.
Rájápála.
Súrapála.
Náráyanpála.

Sarnáth inscription.
Máhipála.
Sthripála.
Vasantpála.
1017. Kumarapála. (Fer.)

Dinájpur Copper-plate.
Locapála.
Dhermapála.
Jayapála

प्रमाणिक, मौलिक एवं मूल प्रति— 146

Seven princes governed in succession during 106 years.

		Years.			Years.
Súkh Sén,	reigned ...	3	Mádhú Sén,	reigned ...	10
Balál Sen, who built the fort of Gaur,	" ...	50	Késú Sén,	" ...	16
Lakhan (Lachhman) Sén,	" ...	7	Sada (Sura) Sén,	" ...	18
			Rájá Náujah, (Náráyan),	" ...	3

Sixty-one princes thus reigned for the space of 4,544 years when Bengal became subject to the Kings of Delhi.

From the time of Sultán Ḳuṭb u' ddín Aibak to Sultán Muḥammad Tughlaḳ Sháh 17[1] governors ruled during a period of 156 years.

These were followed by—

A. H.	A. D.			Years.	Months.
741	1340	Malik Fakhr'uddín Siláḥdár,	reigned	2	some
743	1342	Sultán Aláu'ddín ...	... ...	1	"

Narayanpála? (Two names illegible).
Rájápála.
Vigrahapála.
Mahipála, at Benares.
Nayapála.
1027. Vighrapála.

The Monghir plate, dated 23 or 123 *Samvat* refers to the Bhupála dynasty and not to the Vikramáditya era as was supposed by Wilkins. The Vaidya Rajas of Bengal are thus given.

1063. Sukh Sen.
1066. Belál Sen who built the town of Gaur.
1166. Lakshman Sen.
1123. Máhava Sen.
1133. Kesava Sen.
1151. Sura Sen.
1154. Náráyana. Noujeb, last Rájá of Abul Fazl's list. Laxmana.
1200 Laxmaniya.

[1] These were :

A. H.	A. D.	
600	1203	Md. Bakhtiyar Khiliji, governor of Berár under Kuṭb.
602	1205	Md. Sherán Izẓu'ddin.
605	1208	Ali Merdán Alaúddin.
609	1212	Husámu'ddín, Ghiyásúd-dín.
624	1226-27	Nasru'ddín-b-Shamsu'd-dín.
627	1229	Maḥmúd-b-Shamsu'ddín became Emperor of Hindustan.
634	1237	Toghan Khan, governor under Sultana Rizia.
641	1243	Tiji or Táji.
642	1244	Timúr Khán Kerán.
644	1246	Saifu'ddín.
651	1253	Ikhtiyáru'ddín Malik Usbeg.
656	1257	Jelálu'ddín Kháni.
657	1258	Táju'ddín Arslán.
659	1260	Md. Tatár Khán.
676	1277	Muizzu'ddín Tughral.
681	1282	Naṣru'ddín Baghra considered by some 1st Sovereign of Bengal.
725	1325	Kádir Khán, viceroy of Md. Sháh.

Fakhr'uddín Sikandar followed and assumed independance in 1340, but this does not tally with the period of years given by Abul Fazl. I add the dates to Abul Fazl's list from the U. T. II, p. 148.

कश्मीर पर २०५५ वर्षों तक ब्रह्मकायस्थगौडब्राह्मणों का शासन था

बंगदेश की भाँति कश्मीर पर भी कायस्थों का शासन ११८२ B.C. से ८७३ A.D. तक अर्थात २०५५ वर्ष तक था। पूर्वकाल में कायस्थों का विवरण नाग, नागवंश तथा कार्कोटक नागवंश के नाम से जाना जाता था। आज भी इस कुल के कायस्थ लोग अपना उपनाम नाग लिखते हैं। इसका कुछ वर्णन राजतरंगिणी में भी दिया गया है। कश्मीर में शासित नागवंशीय ब्रह्मकायस्थ राजाओं का नाम नीचे दिया जा रहा है—

१. राजा गणान्द, २. भीखन, ३. इन्द्रजीत, ४. रावण, ४. भीखन (द्वितीय), ५. नारा, ६. सिधा, ७. उत्पल, ८. हिरण्य, ९. हिरण्यकाल, १०. हिरान्कल, ११. अबासकहा, १२. मिहिरकाल, १३. बाँका, १४. खटानन्द, १५. वासुन्दा, १६. नारा, १७. अजा, १८. गोपादित्य, १९. कर्ण, २०. नरेन्द्रादित्य, २१. युधिष्ठिर, २२. प्रतापादित्य, २३. जलोका, २४. तंजीर, २५. विजयी, २६. जयेन्द्र, २७. आर्यराज, २८. मेघवाहन, २९. श्रृष्ठसेन, ३०. हिरन, ३१. मैत्रीगुप्त ब्राह्मण, ३२. प्रवरासेन, ३३. जुधिष्ठिर, ३४. लक्ष्मण, ३५. राणादित्य, ३६. विक्रमादित्य, ३७. बालादित्य, ३८. दुर्लभवर्धन, ३९. प्रतापादित्य, ४०. चन्द्रापीड, ४१. तारापीड, ४२. ललितादित्य, ४३. कवलय पीड, ४४. वज्रादित्य, ४५. पृथ्वीयपीड, ४६. सांग्रापीड, ४७. जयापीड, ४८. जज, ४९. ललितापीड, ५०. संग्रामपीड, ५१. बृहस्पति, ५२. अजीतापीड या अजयपीड, ५३. अनंगपीड, ५४. उत्पलपीड।

संदर्भित ग्रन्थ—आईने अकबरी

ब्रह्मकायस्थों के कारण ही आज सभी सनातनियों की श्रेष्ठता विद्यमान् है

आईने अकबरी के अनुसार सन् ७५० ई० से सन् १४४८ ई० तक बंगाल पर पाल कायस्थों का शासन था। यह दालभ्य (कर्ण) कायस्थ गौडब्राह्मण थे। यह कायस्थ बौद्धधर्म से प्रभावित होकर बौद्धधर्म का प्रचार करने लगे थे। इन्होंने अपने शासन काल में बौद्धधर्म को शिखर पर पहुँचा दिया था।

इसके पश्चात् सन् १४४८ ई० से सन् १५५४ ई० तक बंगाल पर सेन कायस्थब्राह्मणों का शासन स्थापित हो गया। यह सेन भी दालभ्य (कर्ण) कायस्थ गौडब्राह्मण ही थे। ये कायस्थब्राह्मण अत्यन्त कट्टर सनातनी थे। इन परम्पूज्य कायस्थब्राह्मणों ने बौद्धधर्म को नष्ट करके पुनः सनातन धर्म को स्थापित किया। हम सभी सनातनी इस कायस्थब्राह्मण कुल के आजन्म ऋणी रहेंगे क्योंकि 'आज सनातनधर्म का जो स्वरूप बचा हुआ है, यह इन्हीं कायस्थब्राह्मणों की देन है।' यदि यह कायस्थब्राह्मण नहीं होते तो जिस सनातन धर्म को आप देख रहे हैं। वह अस्तित्व में नहीं दिखायी देता।

इतिहासकारों के अनुसार पाल कायस्थों का शासनकाल सन् ७५० ई० से सन् ११७४ ई० तक था। आईने अकबरी के अनुसार पाल कायस्थों का शासनकाल सन् ७५० ई० से सन् १४४८ ई० तक था। शासन काल की स्थिति कुछ भी हो परन्तु घटना यही है।

'इन कायस्थ ब्राह्मणों ने ही अपने साहस से बौद्धधर्म को नष्ट करके सनातनधर्म को पुनः स्थापित किया।'

राजा होने के कारण कायस्थों को लोग क्षत्रिय समझ लेते हैं। सत्यता यह नहीं है।

राजा किसी भी वर्ण का व्यक्ति हो सकता है।

× × ×

ब्रह्मकायस्थों का भारत पर २०३८ वर्ष तक निष्कण्टक शासन करने का कारण

सम्पूर्ण भारत पर ब्रह्मकायस्थ गौडब्राह्मणों का निष्कण्टक शासन २०३८ वर्ष तक रहा है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मण—ऋषिपुत्र ब्राह्मणों से बहुत कम संख्या में हैं फिर भी ब्रह्मकायस्थ गौडब्राह्मणों ने ही राजा बनकर राज्य सम्भाला, ऐसा क्यों हुआ? इसके पीछे एक अत्यन्त पवित्र सनातन रहस्य छुपा हुआ है।

राजतंत्र में राज्य सनातन धर्म के नियमानुसार चला करते थे। शासन का आधार वेद, पुराण, उपनिषद तथा स्मृतियाँ हुआ करती थीं। उस काल में ब्रह्मकायस्थ सहित सभी ब्राह्मण धर्म के मार्ग पर सत्यनिष्ठा से चलते थे तथा सभी ब्राह्मण वेद-पुराणों को सत्यनिष्ठा से अध्ययन करते थे। वह पद्मपुराण में दिये गये भगवान् चित्रगुप्त, सूर्य, वैवस्वतमनु, यम-यमुना एवं भागवतपुराण में दिये गये मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और नारद के उत्पत्ति तथा उनके वंशजों की उत्पत्ति से अवगत थे।

आज के ब्राह्मण १८ पुराणों का अध्ययन नहीं कर रहे हैं तथा समाज में अधिकांश भागवतपुराण का ही पाठ किया जा रहा है। भागवतपुराण में ब्रह्माजी से उत्पन्न उपर्युक्त १० ऋषियों एवं उनके वंशजों का संक्षिप्त वर्णन दिया गया है। इस पुराण में भगवान् चित्रगुप्त, सूर्य, वैवस्वतमनु तथा यम-यमुना के उत्पत्ति का वर्णन नहीं दिया गया है, जिसके कारण सनातनी समाज को पता ही नहीं है कि भगवान् चित्रगुप्त एवं यमराज की उत्पत्ति क्या है? उन दोनों में कौन शक्तिशाली देव हैं? इस सृष्टि का नियन्ता कौन है?

उस काल में ऋषिपुत्र ब्राह्मण जानते थे कि ब्रह्मकायस्थ गौडब्राह्मण भगवान् ब्रह्मा के वंशज तथा सृष्टि के नियन्ता चित्रगुप्त एवं ऋषिपुत्रियों के पुत्र हैं, ऋषिपुत्र ब्राह्मण यह भी जानते थे कि चित्रगुप्त वंशीय ब्रह्मकायस्थ गौडब्राह्मण उनके 'फुफेरे भाई' हैं तथा ब्राह्मणवर्ण में, कुलानुसार श्रेष्ठ हैं। इसलिये ऋषिपुत्र ब्राह्मणों ने राज्य चलाने का दायित्व ब्रह्मकायस्थों को दिया। सनातन धर्म के अनुसार राजा सदैव बड़ा पुत्र ही होता है। उस काल में ब्रह्मकायस्थ तथा ऋषिपुत्र ब्राह्मणों में कोई भेद नहीं था यह सभी ब्राह्मण संयुक्त रूप से ब्राह्मणोचित कर्म को करके सनातन धर्म को संचालित किया करते थे। यदि उस काल में ब्रह्मकायस्थ तथा ऋषिपुत्र ब्राह्मणों में मतभेद होता तो ब्रह्मकायस्थों का २०३८ वर्ष तक निष्कण्टक शासन करना सम्भव नहीं था।

इस प्रकार ईसापूर्व ४८४ से सन् १५५४ तक का शासन-ब्राह्मणशासन था।

इस काल में राज्य के स्तम्भ न्यायपालिका तथा कार्यपालिका दोनों ही ब्राह्मणों के हाथ में थी। एक ओर कार्यपालिका का संचालन ब्रह्मकायस्थ गौडब्राह्मण कर रहे थे तो दूसरी ओर न्यायपालिका का संचालन भी ब्राह्मण ही कर रहे थे। इसलिये इसकाल में ज्ञान वर्धक ब्राह्मणकार्य हुए जैसे—

'विक्रमशिला विश्वविद्यालय' की स्थापना, 'तक्षशिला' एवं 'नालंदा विश्वविद्यालय' का विकास।

'गौडीय रीति' नामक साहित्य की रचना।

'दान सागर' नामक साहित्य की रचना।

'अद्भुत सागर' नामक साहित्य की रचना।

'गीत-गोविन्द' महाकाव्य की रचना।

'पवनदूत' नामक साहित्य की रचना।

'ब्राह्मण सर्वस्व' नामक ग्रन्थ की रचना।

'गीत गोविन्द' के लेखक जयदेव, 'पवनदूत' के लेखक धोयी तथा 'ब्राह्मणसर्वस्व' के लेखक हलायुद्ध गौडदेश के राजा लक्ष्मण सेन के दरबारी थे।

सेन राजाओं के काल में ही देवपाड़ा नामक स्थान पर प्रद्युम्नेश्वर महादेव (शिव के विशाल मंदिर) का निर्माण किया गया।

हिन्दू कानून मिताक्षरा तथा दायभाग पर आधारित है। इनमें दायभाग बंगाल में कायस्थ शासन में ही लिखा गया है।

सदैव से ब्रह्मकायस्थ गौडब्राह्मणों का शासन धर्महित तथा राष्ट्रहित में होता रहा है। इनके शासनकाल में धर्मविरुद्ध तथा राष्ट्रविरुद्ध कार्य नहीं होते थे। प्रजा सुख तथा शांति में अपना जीवन व्यतीत करती थी। इनके काल में ब्राह्मणकर्म (ज्ञान तथा धर्म) उत्कर्ष पर था।

× × ×

मालदा (पश्चिमी बंगाल) स्थित गौड किला का अवशेष जहाँ ब्रह्मकायस्थ गौडब्राह्मणों ने २०३८ वर्ष तक निष्कण्टक शासन किया था।
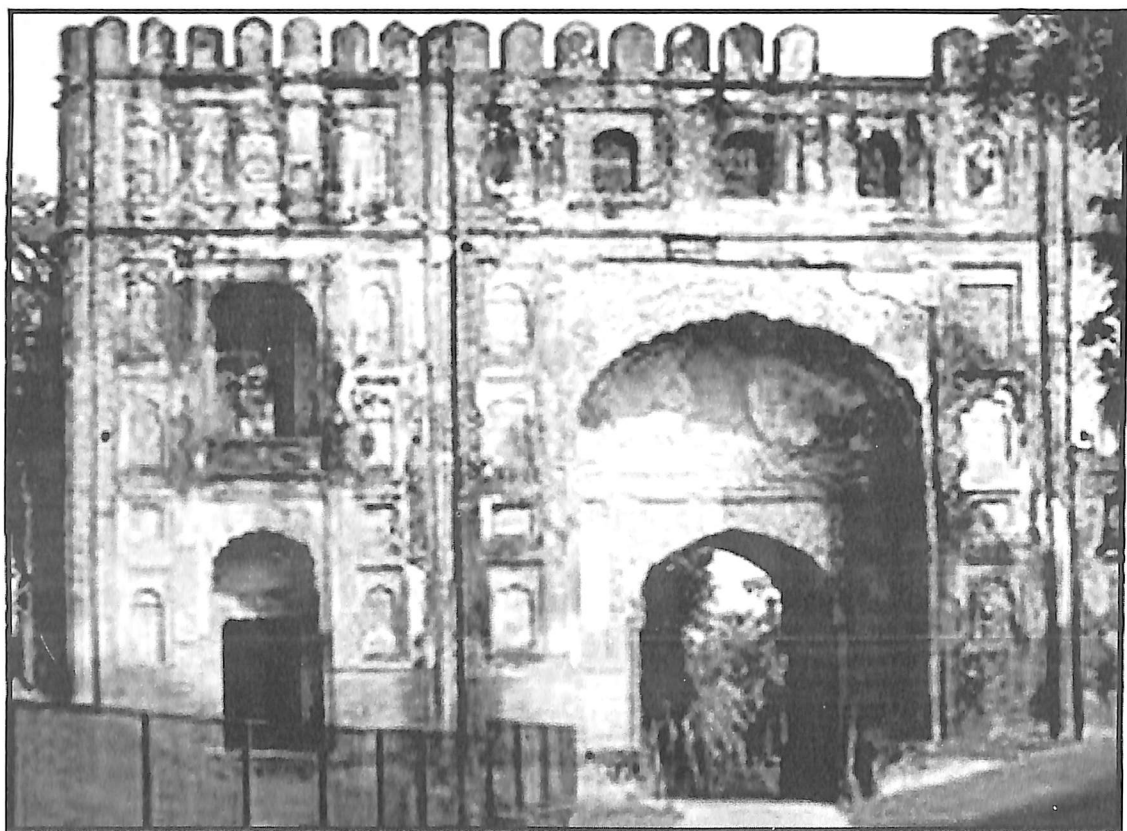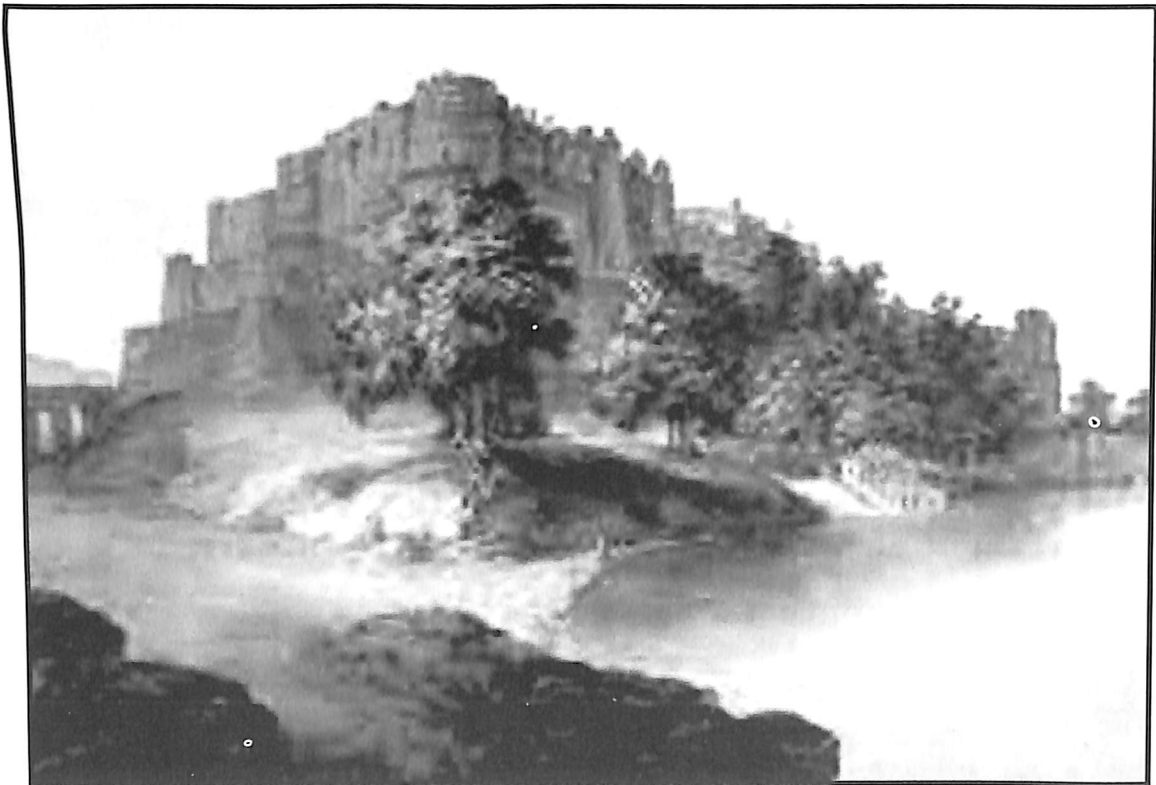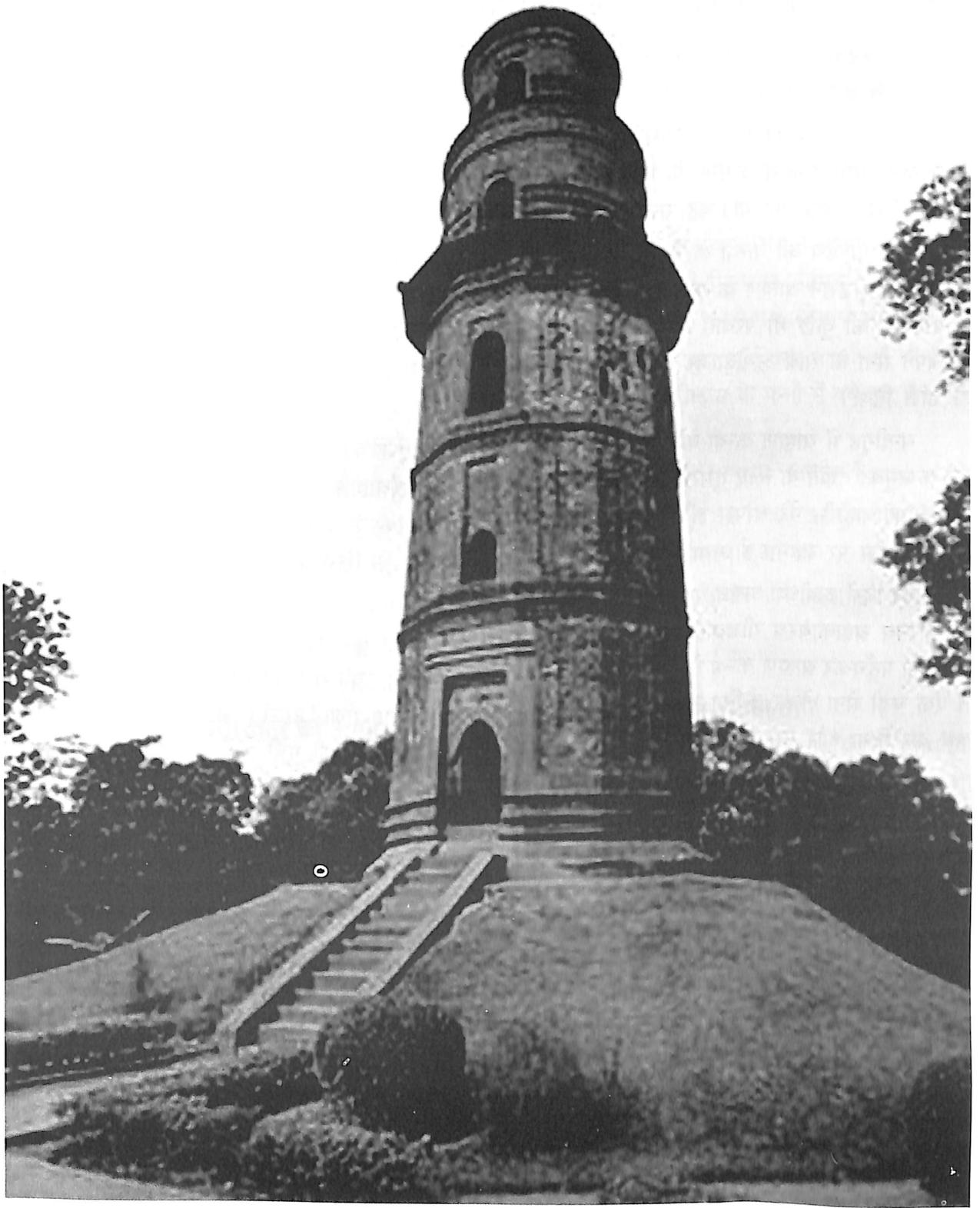
१३७६ ई० में अयोध्या के कायस्थ राजा, राय जगत सिंह ने डोमिनगढ़ के डोम राजा से तपस्वी ब्राह्मण 'रतन पाण्डेय' की पुत्री 'वेला पाण्डेय' की आबरू बचाई

सन् १३७६ में उत्तर प्रदेश के, बस्ती जिले के, 'अमोढ़ा' नामक ग्राम में, पाण्डेय उपजाति के एक बड़े ही तपोनिष्ठ ब्राह्मण रहते थे। उनका नाम **'रतन पाण्डेय'** था।

उनकी एक कन्या थीं, जो अत्यन्त रूपवती थीं और उनके सौन्दर्य की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। उन्हीं दिनों अमोढ़ा के कुछ मील के फासले पर 'डोमिन दुर्ग' (डोमिनगढ़) नामक एक स्थान था। जिसका राजा 'उग्रसेन' डोम जाति का था। वह राजनीति के ज्ञान से विमुख था।

रतन पाण्डेय की कन्या के अनिंद्य रूप-सौन्दर्य की चर्चा जब डोम राजा ने सुनी तब कुल की गरिमा को न जानते हुए उसने ब्राह्मण के पास सन्देश भेजा कि वह अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर दे। उस ब्राह्मण ने परिणाम की कुछ भी परवाह किये बिना डोम राजा के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। इस पर डोम राजा 'उग्रसेन' ने अपने सेना के साथ अमोढ़ा पर चढ़ाई कर दी और उस तपोनिष्ठ ब्राह्मण के पूरे परिवार को पकड़कर बन्दीगृह में डाल दिया।

बन्दीगृह में ब्राह्मण कन्या को एक युक्ति सूझी, उन्होंने डोम राजा को प्रस्ताव भेजा कि मैं अपने माता-पिता को कष्टमुक्त देखने के लिए तुमसे विवाह करने को तैयार हूँ, मगर विवाह के पूर्व मैं अयोध्या की तीर्थ यात्रा करने की आज्ञा चाहूँगी। मेरे वापस लौटने तक मेरे माता-पिता को बन्धक के रूप में बन्दी बनाए रखो। डोम राजा 'उग्रसेन' इस पर सहमत हो गया और ब्राह्मण कन्या को तीर्थ यात्रा के लिए अयोध्या भेज दिया।

उन दिनों अयोध्या अवध प्रान्त की राजधानी थी। जिसके राजा राय जगतसिंह थे, जो ब्रह्मा के कुल में उत्पन्न 'श्रीवास्तव ब्रह्मकायस्थ गौडब्राह्मण' थे। यह बड़े ही धर्मात्मा, नीति कुशल, न्याय परायण और पराक्रमी थे। अयोध्या पहुँचकर ब्राह्मण कन्या ने राय जगतसिंह के समक्ष अपने परिवार की सम्पूर्ण विपदा सुनायी। राय जगतसिंह ने एक बड़ी सेना लेकर डोमिन दुर्ग (डोमिनगढ़) पर चढ़ाई करके डोम राजा 'उग्रसेन' को सम्पूर्ण परिवार सहित वध कर दिया और उस तपोनिष्ठ ब्राह्मण को कारागार से मुक्त करके उनकी पुत्री उन्हें सौंप दिया।

कारागार से मुक्त होने पर ब्राह्मण ने यज्ञोपवीत उतार कर राय जगतसिंह के कंधे पर डाल दिया और प्रसन्नता पूर्वक अपनी कन्या का विवाह राय जगतसिंह के साथ कर दिया। राय जगतसिंह के वंशज ही 'अमोढ़ा के पाण्डेय' कहे जाते हैं।

☞ डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, हरिवंश राय 'बच्चन, अमिताभ 'बच्चन, तथा इस ग्रन्थ के लेखक पं० मनोज कुमार श्रीवास्तव राय जगतसिंह के ही वंशज हैं।

☞ राय जगतसिंह ने असहाय तपोनिष्ठ ब्राह्मण के गरिमा को नष्ट नहीं होने दिया। उस परिक्षेत्र में राय जगतसिंह ही इकलौते महापुरूष थे, जो ब्राह्मण पुत्री की रक्षा करने में सक्षम थे। इन्होंने अत्याचारी डोम राजा 'उग्रसेन' को मार कर न्याय को स्थापित किया।

युगों पूर्व परमपूज्य परशुराम ने अपने पिता के हत्यारे सहस्त्रार्जुन का वध करके धर्म को स्थापित किया था। उसी तरह ब्राह्मण-पुत्री पर कुदृष्टि डालने वाले डोम राजा 'उग्रसेन' का वध करके ब्रह्मकायस्थ राय जगतसिंह ने धर्म को स्थापित किया था।

राय जगतसिंह भगवान् ब्रह्मा के पुत्र चित्रगुप्त के कुल में जन्मे 'श्रीहर्ष ब्रह्मकायस्थ गौडब्राह्मण' थे, जो 'श्रीवास्तव ब्रह्मकायस्थ' कहलाते हैं।

आज भी अमोढ़ा के कुछ कायस्थ अपना उपनाम 'पाण्डेय' लिखते हैं।

☞ अमोढ़ा नामक ग्राम वर्तमान् में राष्ट्रीय राजमार्ग से लखनऊ जाते समय बस्ती जिले के हरैया से आगे व विक्रमजोत के पूर्व स्थित है।

☞ डोमिनगढ़ वर्तमान में गोरखपुर से लखनऊ जाते समय पहला रेलवे स्टेशन पड़ता है। यहाँ 'डोम राजा उग्रसेन' के 'डोमिन दुर्ग' का अवशेष आज भी विद्यमान है।

☞ **तपोनिष्ठ ब्राह्मण 'रतन पाण्डेय' की कन्या का नाम 'बेला' था।** जगतसिंह ने ब्राह्मण कन्या बेला को डोम राजा 'उग्रसेन' से बचाया था। इसीलिए 'जगत एवं बेला' के नाम को मिलाकर डोमिन दुर्ग के आस-पास के क्षेत्र को 'जगतबेला' कहा जाता है। **इसी स्थान पर 'जगतबेला' नाम का रेलवे स्टेशन भी स्थित है।**

☞ इस सत्य घटना का वर्णन हरिवंशराय बच्चन ने अपनी आत्मकथा 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' में किया है। पाठक बन्धु! ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मणों के ऐसे हजारों गौरवपूर्ण सत्य प्रकरण इतिहास के पन्नों में दबे हुए हैं। जिसे 'सनातन धर्म ट्रस्ट' ढूँढ कर प्रकाशित करने का प्रयास कर रहा है।

☞ डा० राजेन्द्र प्रसाद ने भी अपने आत्मकथा में स्वयं को 'अमोढ़ा का कायस्थ' बताया है।

☞ यमलोक में विद्यमान् ब्रह्माजी के पुत्र विप्रेन्द्र तथा लोकशासक चित्रगुप्त का विवाह ऋषि मरीचि के कुल में उत्पन्न वैवस्वतमनु की ४ कन्याओं तथा नागर ब्राह्मणों की ८ कन्याओं के साथ हुआ था।

ऐसा ही पवित्र इतिहास १३७६ ई० में चित्रगुप्तवंशीय ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मण अयोध्या के राजा राय जगत सिंह और ऋषिपुत्री ब्राह्मणी बेला पाण्डेय के साथ विवाह करके दोहराया गया।

× × ×

गोरखपुर को अयोध्या के कायस्थ राजा राय जगत सिंह ने बसाया था

गोण्डा नेशनल इन्फार्मेशन सेन्टर की जानकारी के अनुसार अयोध्या के राजा राय जगतसिंह ने डोमिनगढ़ में डोमराजा उग्रसेन का वध करने के पश्चात् गोरखपुर को बसाया। सन् १३७६ में गोरखपुर जंगली इलाका था। इस इलाके के जैन, थारू, डोम, भर तथा पासी मूल निवासी थे।

गोरखपुर के अधिकांश भागपर जंगली लोगों का आधिपत्य था। राजा राय जगतसिंह ने यहाँ के लोगों को शिक्षित बनाने के लिये रामपुर से कायस्थों को लाकर राप्ती के तट पर बसाया। माधोपुर में बसे ब्रह्मकायस्थ सम्भवत: वही हैं।

मझौली राज के राजा सहजसिंह अत्यन्त शक्तिशाली राजा थे। इनकी मदद से राय जगतसिंह ने गोरखपुर के पिछड़े लोगों को कृषि सहित अन्य सामयिक शिक्षा देकर शिक्षित करने का कार्य किया।

(मझौली राज वर्तमान् में देवरिया जिले का एक हिस्सा है)

भारत को सदैव से ब्रह्मकायस्थों ने ज्ञान देने के साथ ही सामाजिक उत्थान पर बल दिया है।

उपरोक्त 'डोमिन दुर्ग' के अवशेषों का वास्तविक चित्रण सनातन धर्म, ट्रस्ट के पं० मनोज कुमार श्रीवास्तव, श्री संजय श्रीवास्तव एवं श्री दिलीप कुमार श्रीवास्तव के व्यक्तिगत शोध एवं निरीक्षण का परिणाम है।

गोण्डा नेशनल इन्फार्मेशन सेन्टर (http://gonda.nic.in/History.htm) पर १३७६ ई० का जो विवरण दिया गया था उसका चित्र अगले पेज पर दिया गया है। ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मण रायजगत सिंह का उत्कृष्ट न्याय पूर्वक शासन का वर्णन अब किसी ने हटा दिया है—

**Welcome To National Informatics Centre Gonda UP India **

HOME ADMINISTRATION HISTORY CONTACTS MAP GALLERY NIC MAIL GEOGRAPHY ABOUT US

Help line Toll Free Numbers: 1800-180-1950 •••••• •••••• ••• ••• •••• ••••: 1800-180-1950 ••••• ••••••••• •••• •••••••• !

History

The territory covered by the present district of Gonda formed part of the ancient kingdom of Kosala . After the death of Rama he celebrated sovereign of the Solar line , who ruled Kosala the kingdom was divided into two portion the northern and southern the Ghaghara forming the boundary between the two .

The district was the part of Awadh province in reign of Mughals. At came in jurisdiction of Behraich Sarkar when Akbar divided Awadh and make two separate administrative centre Bahraich and Gorakhpur in Northern part of Ghaghra . The District was controlled by the ruler of Awadh till the annexation in feb .1856 Awadh was annexed by the British government and Gonda was separated from Bahraich. In British rule a commissionary was constituted for the administration of this area.Its head quarter was in Gonda & military command was in Sakraura Colonelganj. At the time of independence there were three Tehsil Gonda Sadar , Tarabganj and Uttraulla in the district . On1st July 1953 the Tehsil Uttraulla was bifurcated in two Tehsil namely Balrampur and Uttraulla . three new Tehsil were constituted in 1987 as Tulsipur, Mankapur and Colonelganj. Later on in 1997 district bifurcated in two part and Balrampur district was created including three Tehsil of north part , Gonda remains four Tehsil Gonda , Colonelganj , Tarabganj and Mankapur .

On the border district of Gonda and Shravasti lies a vast area of ruins known at the present day as Sahet Mahet or Set Mahet represents the ancient site of Shravasti which covered the region comprising of both the districts. The ancient history of both these districts therefore,is the history of Shravasti and region around it.It was the capital of Uttar Kosala. About 16 km. from Balrampur,83km. north of Ayodhya and 1,152km.from Rajgir.The town was founded by Sravasta.A king of Solar race Sahet.The first member of the twin name.Is applied to the site of the walled city of Shravasti.

The Vayu Purana and Uttra khand of the Ramayana speak of the two Kosala., and mention Shravasti as capital of north Kosala and Kusavati as that of the south Kosala. The two Kosalas are said to have been once under the suzerainty of one and the same king . The epic hero Rama,who had installed his son Kusa in south Kosala with its capital Kusavati at the foot of the Vindhyas and his son Lava in north Kosala with Shravasti as its capital.

Shravasti is the Savatthi or Savatthipura of the Buddhists and Chandrapura or chandrikapuri of the Jainas. Savatthi is the pali and archamagadhi form of the Sanskrit name Sravasti.

MEDIEVAL PERIOD

The first Muslim in invasion of the region north of Ghaghra took place in second quarter of 11th century under Sayed Salar Masud ,son of salar sahu, the general of mahmud of Ghazni. The rulers of Gonda and adjoining parts were much perturbed to find a foreigner in their country but soon they formed a confederacy, and decided to offer united resistance to Masud.In the meantime, Suhil Deo of Sahet Mahet,who was known for his valour. Joined them at this critical hour, which proved fruitful .He is said to have forewarned Masud,that if he wished to save his life ,he had better leave that country and go elsewhere,as the land belonged to there ancestors, and they were determined to drive him from it.Masud, thereupon sent a brief and simple reply the country is God's and the property of him on whom. He bestows it.Who gave it to your father's and ancestors.The council of war decided Masud to remain on the defensive,but the Hindus drove of his cattle and forced an attack.Many trucks suffered death from fireworks & the insidious spikes.The loss was great on both sidesand on third of Muslim army perished.During the month of June 1033 continuous fighting went on. Two-thirds of what remained of the Muslims were slain and among them Saifud-din the Kotwal of the Army.In spite of many vicissitudes Masud did not loss courage and while making a bid to mount his horse to repel the attack ,his body-guard was attacked by Shil Deo and his men.An arrow pierced the main artery in Masud's arm resulting in his death and the remnant of his body-guard was cut to pieces by Suhel Deo on June 14 ,1033.Thus ended this singular invasion and Islam was in abeyance in Avadh until the conquest of Shihab-ud-din Ghuri in 1193.

It seems probable that Sultan Iltutmish effected the subjugatitin of lands as far as Avadh & Bahraich & the districts north of Ghaghra including Gonda. From this time onwards Gonda & Bahraich seem to have always been held singly owing to its isolated position due to river Ghaghra.Sultam Iltutmish appointed his eldest son Malik Nasir-ud-din Mahmud,as governor of Avadh in 1226.According to Minhaj-uj-Siraj, the author of Tabaqat-i-Nasiri,this prince overthrew and reduced to submission the Bhars under whose sword more than one hundred and twenty thousand Muslims had perished.These Bhars who resisted the prince were presumably none else than the local people of districts of Gonda & Bahraich.

The Districts is historically and geographically linked with Bahraich from time immemorial. In the second half of the 13th century Gonda was included in the government of Bahraich by the early Muslim rulers and hence has no Independent history of its own.The government of Bahraich was separate from that of its Avadh for Imam-ud-din Rihan, the disgraced vazir of Sultan Nasir-ud-din Mahmood was relegated to his fief of Bahraich in 1254,while at the same time Avadh was held by Qutlaugh Khan.Imam-ud-din Rihan was succeeded in his fief by Malik Taj-ud-din Sanjar about 1255.

There is no specific reference about the district till the reign of the Tughlaqs probably on account of its inclusion in the government of Bahraich. Nevertheless the district of Gonda provided a free passage to Sultans of Delhi who usually marched through these districts on way to the eastern parts of their empire.The road from Bahraich to Ayodhya lay through Gonda and Khurasa and was frequently traversed by the Sultans and their Army.Gonda & Khurasa did not find mention in historical records till the reign of Ghiyas-ud-din Tughuq,who is said,to have received the submission of the local chieftains on his march to the eastern parts(1323).In 1353.Feroz Shah Tughluq took the same route and it is said that the raja of Khurasa

accompanied him to Lakhnauti.In 1394,the district appears to have come under the sway of Khwaja Jahan Malik Sarwar,the founder of the Sharqi dynasty of Jaunpur, who held the change of eastern parts including Bahraich and most probably Gonda.The Sharqis held sway over Bahraich and presumably Gonda till 1478 when Bahlul Lodi appointed Kala Pahar Firmly at Bahraich.

In order to assert his authority Kala Pahar led attacks on the adjoining districts probably Gonda & succeeded in obtaining permanent hold over the country during the reign of Sikandar Lodi too,he probably held the charge of Bahraich till 1486,the year when the deserted his sovereign and became an ally of Babank Shah of Jaunpur.

From earliest days of Muslim domination down to the advent of Akbar,the history of the district is primarily the history of local clans, while some of them migrated into this district during this period .During the early phase of his period the whole of Gonda was ruled by law caste aborigines-Doms, Tharus,Bhars,Pasis and the like. Tradition States that the Jain dynasty of Sahet-Mahet gave place to the Doms of Domangarh on the bank of Rapti in Gorakhpur, and that of this race came Ugrasen a notable Raja who built Domariadih once a town situated on the road from Gonda to Faizabad.The Ugrasen brought misfortune for himself by demanding in marriage the daughter of Brahmana.This insult was avenged by a valiant Kayastha named Rai Jagat Singh,who came from Sultanpur with a large force and overthrew the Dom. The year of this incident is traditionally given as 1376.

This story is old as a prelude to the early Rajput domination of the south of the District.The first clans of whom mention is made are the Bandhalgoties, Kalhans and Bais. Of the later nothing is known and they are presumed to be of indigenous origin. The Bandhalgotis settled in pargana Nawabganj and thence spread in north into Mahadeva and Mankapur where they established an independent principality,which flourished for many generations. The pargana was given in reward to one Nawal Shah of Amethi in district Sultanpur who had accompanied Rai Jagat Singh and had distinguished himself in the capture of Ramanpur.Another story relates that the same Rai Jagat singh gave Mahadeva to one Sahaj Singh of Gujrat the founder of the Kalhans plan in this district. He is said to have joined the rebellion of Bana-ud-din of Malwa against Mohammad-bin-Tuglaq and on its suppression fled for refuge to his friend Ain-ud-din of Karra.

The descendants of Sahaj Singh established a powerful kingdom with headquarter at Khurasa which extended over the whole of the south of the district.Under their protection various other Rajput colonies sprang up, such as the Bisens of Qila Rampur in Digsir and Gauraha Bisen of Mahadeva both of whom claim connection with the famous Bisen house of Majhauli Deoria.Gunwarich was apparently absorbed by the great Raikwar house of Boundi and Ramnagar,while in the north the Janwar's of Ikauna where beginning to make their influence felt in the lands south of the Rapti.And her house was that of Sarwaria Brahamans,who appear to have settled in the southern paragans from very remote times.The Kalhans appear to have mentioned their hegemony between Ghaghra & Kuana for several centuries,the family pedigrees differing in showing seven and thirteen generation between Sahaj Singh & the last Raja of Khurasa.

The last Kalhans ruler of Khurasa was Achal Narain Singh.He is said to have been a great warrior and came to Avadh with the army of Dariao Khan,the founder of Daryabad in Bara Banki.He enlarged his property greatly and spread his victorious arms beyond he Ghaghra. His end was due to his unbridled authority and oppression ,which culminated in the adduction of a Brahmana girl ,the daughter of one Ratan pande.The latter pleaded in vain for reparation ,and died after sitting at the door of the raja's place for twenty-one days. It is said that with his dying breath he cursed the raja and his threat of vengeance was fulfilled by the Utter destruction of the raja his place and the town of Khurasain and inundation of the river saryu. A more prosaic version of the strove attributes the downfall of the raja to his arrears of revenue due to Mubariz Khan Adili in 1554, for which Ratan Pandey had stood security.

With the fall of kalhans came general redistribution of territory. Bhring Sah ,the son Achal Narayan Singh. fled eastward and founded the estate of Babhanipur and Rasulpur Ghaus of Basti; Maharaj his other son went to Dehras in Gunwarich and there laid the foundation of the great property held by the kalhans of the chhedwara.The Bandhalgotis strengthened their position in Mankapur and refused to acknowledge a suzerain.The Fuaraha Bisens in Mahadeva became practically independen;and other bisens in Digsir rose from their low estate to a position which soon overshadowed that of the other clans. As a result the wide tract of country held by Achal Narayan Singh passed almost at once into the hands of Digsir Bisens. Later Pratap Singh, of Gauhani, who was chaudhari of pargana Khurasa near Gonda and his brother Sarabjit Singh chief officer of the raja's army took advantage of the opportunity offered and became the rulers of the estate. It was at this period that the town of Gonda came into existence and foundation was laid of the Bisen's raj that is so closely connected with the history of the district till the advent of the British rule.

The district formed an integral part of Akbar;s empire (1556-1605) and was divided between the sirkars of Avadh,Bahraich and Gorakhpur in the subah of Avadh .The Bahraich sirkar contained eleven mahals but most of these lay undoubtedly within the limits of the present district of that name . It seems probable that Hisampur extended into Gonda and included most of pargana Paharapur and part of Gunwarich.The eastern boundary of mahal Bahrah also probably extended into Balrampur.But one mahal going by the name of kharonsa which is almost certainly a corruption of khurasa. undoubtedly lay within the gonda district and apparently comprised all the land between the Tehri and Kuwano rivers stretching as far as the Utraula boundary.The Single Mahal of Ganwarich of Gawarchak as it is written in the Ain-i-Akbari for some reason and other belonged to the sirkar of Avadh. Possibly because this Mahal was the grazing ground for the Subahdar's cattle from which the name is said to have been derived.This Mahal included the present Gunwarich & most of Digsir possibly too Paharapur.All these Mahals fetched substantial revenue of the district.

Man singh, the reputed founder of Gonda and successor of Achal Narayan Singh,the kalhan raja mentioned before, is presumed as the contemporary of Jahangir (1605-1627).The story goes that in 1618 he presented to the emperor a fine elephant at Ajmer and in reward obtained the title of raja. This imperial favour is attributed to the prosperity of Bisen's who flourished unhindered in their estate for considerably a long period .Man Singh was followed by a number of successors whose reigns were for the most part uneventful and were chiefly distinguished by a peaceful extension of cultivation by the various colonies of the clan .In 1965,Raja Ram Singh,a Bisen in the same line came to the throne and his reign marked a period of prosperity for the clan.He promptly carried a war with Janwars and destroyed their fort at Bhatpuri around 1665 and succeeded in ejecting them from that trace.He then turned his attention to the west and drove out the Raikwars from the lowlands ,annexing 74 villages which were formed into a new pargana of Paharapur. Raja Ram Singh died in 1693 and was succeeded by his elder son .Raja Dutt Singh who rose to be the most powerful of the chief tains north of the Ghaghara. His first expedition is said to have been against the Pathans of Bahraich in revenue for an outrage of a Brahmana women.He then turned his arms south wards and with the help of the Pathans of Utraula he conquered and annexed Paraspur and Ata and thus the boundary of the Bisen was fixed to the south of the town of Paraspur. The extent of his dominions was the whole of the Paraspur Gonda.Digsir Mahadeva and part of Gunwarich.

It was not long after however,that the Bisen were threatened in an unlooked for direction Saadat Khan's policy in Avadh seems to have been to cherish the peasantry ,and to keep in check the encroachments of the larger landholders; and he was probably the first to make the power of the Central Government felt through out the province.With the intention of reducing to submission the most powerful of the local chieftains Saadat Khan appointed Alawal Khan an Afghan of Bahraich ,as in charge of the country beyond the Ghaghara Alawal Khan on his first visit to gonda insulted the raja,who was of small stature by lifting him off his feet while embracing him. Datt Singh reciprocated by presenting in place of his brother; one

चित्रगुप्तवंशीय ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मण अयोध्या के राजा राय जगत सिंह और ऋषिपुत्री ब्राह्मणी बेला पाण्डेय से उत्पन्न महाविभूतियाँ जिन्होंने देश और धर्म के लिये विशेष योगदान किया—

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद	हरिवंश राय बच्चन	अमिताभ बच्चन	पं० मनोज कु० श्रीवास्तव
(भारत के प्रथम राष्ट्रपति)	(कवि)	(सिनेजगत के महानायक Big B)	(इस ग्रन्थ के लेखक)

सदियों पूर्व सम्भवत: कोई अकाल पड़ा था। इसलिये राय जगत सिंह के वंशज रोजगार के लिये बिखर गये।

हरिवंश राय के पूर्वज **प्रतापगढ़** चले गये।

जबकि कुछ लोग **बलिया (उ० प्र०)** में जा कर बस गये।

वहीं से डा० राजेन्द्र प्रसाद के पूर्वज बलिया से **जीरादेई** में जाकर बस गये।

पं० मनोज कुमार श्रीवास्तव के पूर्वज देवी भक्त थे, इस कारण वे बलिया से **थावे (देवी स्थान, बिहार)** में जाकर बस गये।

परम्पूज्य राय जगत सिंह जी के वंशज डा० राजेन्द्र प्रसाद तथा हरिवंश राय ने सम्पूर्ण विश्व में भारत का मान बढ़ाया।

इसी प्रकार सनातनधर्म के उत्तथान हेतु लोकशासक, विप्रेन्द्र तथा यमलोक के धर्माधिकारी भगवान् चित्रगुप्त की परमकल्याणकारी सत्यता से सनातनियों को अवगत कराने के उद्देश्य से, इस परमपवित्र ग्रन्थ **लोकशासकमहाकालचित्रगुप्तः तथा च ब्रह्मकायस्थगौडब्राह्मणाः** का लेखन भी राय जगत सिंह जी के वंशज पं० मनोज कुमार श्रीवास्तव द्वारा सम्भव हो सका है।

× × ×

भारत सरकार के पुरातत्व विभाग द्वारा प्रकाशित **EPIGRAPHIA INDICA** में अनेक प्राचीन शिलालेखों एवं ताम्रपत्रों का वर्णन दिया गया है। इनमें कायस्थों का वर्णन दान प्राप्त करने वाले ब्राह्मणों, राजाओं, सामन्तों एवं राजकर्मचारियों के रूप में विद्यमान है—

EPIGRAPHIA INDICA Volume II (1894)
(Page 230)

☛ इस शिलालेख में रामदास श्रीवास्तव को "**पंडिताधीश्वर**" कहा गया है।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

सकलदुरितहर्त्ताऽभीष्टसिद्धिप्रकर्त्ता निगमसमुपगीतः शेषयज्ञोपवीतः।
ललितमधुकरालोसे-विता गंडपालीतटभुवि गणराजः पातु वो विघ्नराजः॥ १॥
वेदानाराध्य वेधाः पठति भगवतीं यामनायस्तचित्तः श्रीकंठस्यापि नादैरपहरति मनः पार्व्वती किन्नरीभिः।
हारा नारायणस्योरसि रहसि रणत्कांकणा यद्भुजाः स्युः
सद्यः सत्काव्यसिद्ध्यै स्फुरतु कविमुखांभोरुहे भारती सा॥ २॥
व्र(ब्र)ह्माद-यो द(द)विषदः श्रुतिवाक्यदृष्ट्या ध्यायंति यं पुरुषमात्मविदीप्यमूर्त्त।
पापानि यत्कारणती विलयं प्रयांति नारायणाः स्फुरतु चेतसि सर्व्वदा वः॥ ३॥
अहिहः यनृपवंशे शंभुभक्तोऽवतीर्णः कलचुतिरिति शाखां ग्राम्य तीव्वु(व)प्रतापः।
निजभुजगुरुदर्पाद्योऽरिंदुर्गाण्यजैषोद्रणभुवि दश चाष्टौ सिंहणक्षोणिपालः॥ ४॥
अभवदवनिपालस्तत्सुती रामदेवः समरशिरसि धीरी येन भीणिंगदेवः।
मणिरिव फणिवंशस्याऽहतः कोपदृष्ट्या तरुणतरणितेजःपंजराजत्प्रतापः॥ ५॥
तत्पुत्रः शत्रुहंता जगति विजयते चंद्रचूडस्य भक्ताः श्यामः कामाभिरामो मनसि मृगदृशामुङ्भटानां कृतांतः।
सर्व्वेषां याचकानां स्फुरदमरतरुर्व्वाक्पतिः पंडिता-नां
गोतज्ञानां हितीयो भरत इव नृपः चीहरिव(ब्र)ह्मदेवः॥ ६॥
तद्राजधानी नगरी गरिष्ठा खुख्वाटिका राजति वाटिकाभिः।
सुरालया यत्र हिमालयायाभा विभांति शृंगेरतिशुभ्रतुंगैः॥ ७॥
भूदेवा यत्र वेदाध्ययनमनु रताः स्वस्तिमंतो वसंति श्रीमंतः श्रीविलासैरमरपरिदृढं राजराजं हसंतः।
कामिन्यः कामदेवं त्रिपुरहर-दृशा दग्धसुव्वीवयंत्यः।
प्रीद्याद्दोर्मूलकांव्या स्मितमधुरगिरा भ्रूलताडंव(ब) रेण॥ ८॥
मोची तत्रेंदुरीचीरुचिरतरयशाः कर्म्मनिर्म्माणदक्षः सौजन्या दग्रजन्माऽनुचर इव जसीनामधेयस्य पौत्रः।
नानाधर्म्माभिलाषी गुणनिधिशिवदासाऽभिधानस्य पुत्रः श्रीमन्नारायणस्य स्मरणविमलधी राजते देवपालः॥ ९॥
नारायणस्यायतनं स्वशक्त्या भक्त्या महत्या सह मंडपेन।
निर्म्मापितं तेन परत्र चात्र तस्मै हरिर्यच्छतु वांचिछ(छि)तीर्थ॥ १०॥
हरिचारणसरोजध्यान-पीयूषसिंधुग्रसरदलधुवेलास्फालकेलोरसेन।
सरसकविजनानां निर्म्मतेयं प्रशस्तिर्म्मनसि रसविधात्री मित्रदामोदरेण॥ ११॥
व्रहति जगति गंगा यावदादित्यपुत्रा स्फुरति वियति तारामंडलाऽखंडलेन।

तरणिरमरघ्नच्छघ्ननना तावदेषा जयतु जयतु मोचिदेवपालस्य कीर्त्ति॥ १२॥

श्रीवास्तव्यान्वयेनैषा प्रशस्तिरमलाक्षरा। लिखिता रामदासेन पंडिताधीश्वरेण च॥ १३॥

स्वस्ति श्रीसंवत् १४७० वर्षे साके १३३४ षष्ट्याव्दयोर्म्मध्ये प्लवनामसंवत्सरे माघसुदि शनिवासरे रोहिणीनक्षत्रे शुभमस्तु सर्व्वजगतः॥ सूत्रधाररत्नदेवेन॥

☞ पण्डितों में श्रेष्ठ श्रीवास्तव वंश में उत्पन्न जिनकी प्रशस्ति [ख्याति] निर्मल अक्षरों में रामदास के द्वारा लिखा गया है॥ १३॥

× × ×

EPIGRAPHIA INDICA Volume I (1892) (Page-233)

इस शिलालेख में कायस्थकुलोत्पन्न जाजुक को दुगौड़ा ग्राम दान देने का उल्लेख है, साथ ही कहा गया है कि कायस्थ वंशीय लागों के वेदपाठ और निवास से छब्बीस नगर पवित्र हो चुके थे। जिनमें टकारिका प्रमुख था। इस शिलालेख में जाजुक श्रीवास्तव की वंशावली प्राप्त होती है—

1-ठाकुर जाजुक [यजुक-यज्ञकर्ता], 2-महेश्वर, 3-गहाधर, 4-आल्हू, 5-शोभन, 6-विदान, 7-वाशे, 8-आनन्द, 9-रुचिर, १०-गोपति, 10-महिपाल, 11-कीर्त्तिपाल।

॥ श्री नमः केदाराय॥

गङ्गातरङ्गतरलीकृतसर्प्पराजवे (ष्टा) य चारुशसि (य)खण्डविभूषणाय।

कन्दर्प्पदर्प्पशमनाय सुरार्चिताय केदाररूपवि (ष्ट) ताय नमः शिवाय॥ १॥

षट्विंशतिः करणकर्न्मूनिवासपूता आसन्पुरः परमसौख्यगुणातिरिक्ताः।

तन्मध्यगा विवु(बु) धलोकमता वरिष्ठा टकारिका समजनि स्पृहणीयकत्या॥ २॥

सव्वो(प) कारकारणैकनिधेः स्वकीयवंशस्य पात्रवृभगस्व हिजात्रयस्य।

कल्यावसानसमयविस्थताये पु(रीं) यां वास्तुः स्वयं समधिगम्य समाससाद॥ ३॥

तस्यां श्रुतेर्च्चिनदसङ्गनिनादितायां वास्तव्यवंशमविगहरणास्त आसन्।

आशाः समस्तभुवनानि यदीयकीर्च्या पूर्ण्णानि हंसध्वलानि विशेषयन्त्वा॥ ४॥

वद्याचतुर्दश कलाः सकलाः समीयुप्रश्नाभिरा-ममिष वशममायताच्यः।

यं गर्म्भसंख्यमविशम्बितमहितीयं दुःखं वियोगजमसंवृतमुदूहन्त्यः॥ ५॥

तद्वंशतः स उदपादि नरेश्वरेण गण्डाबूयेन युधि दुर्व्ययतां गतेन।

जाजूवासंभ इति ठकुर(थ) मीयुक्तः सर्व्वाधिकारकरणेषु सदा नियुक्तः॥ ६॥

आराध्य तं नृपतिमण्डस्मण्डमेकं देवं गदावरमिवाच्युतवासमाद्यम्।

कायस्थवंशनस्मिनीगणतादिनेशो ग्रामं दुगीडमपि ताम्रकमामु(शु) लेगे॥ ७॥

तत्क्षन्तती सकलवाङ्मयपारद (दृ)श्वा भूभूषणं निशिपतेरिव कान्तिभत्तौ।

मीहान्धकारकुक्षरेषु निपातहर्त्ता **महोश्वरः** समभवत्सुक्रतामिसत्तौ॥ ८॥

यः पोतसै(शै) लविषयेषु महीपतीनां चूडामणिं समशु(से)व्य अमार्ज्जयच।

वीकीर्त्तिवर्मानृपतिं वि-शिषाभिवानं कालञ्जरस्य पिपलाहिकया क्षमेतम्॥ ९॥
तस्मिन्मुक्ते महति सज्जनलोकजुष्टे **गङ्गावरः** समुद्रभूत्मचि(वो)भिरामः।
नूनं विचार्य परमर्हिनरेश्वरेण युक्तः स (कच्चुकि)तया परया तु धीरः॥ १०॥
जीणाधरस्तदनुजः सहवार्न्मचारी सदा रतः समरकार्न्ममणि मोक्षकारी।
ती वीरमार्ग्गमनुसृत्य गिरी गरिष्ठे कालञ्जरे युयुधतुर्व्विशिखा(कु)लेन॥ ११॥
तथैव मालाधरनामधेयस्तस्य द्वितीयोऽजनि वीरमुख्यः।
मुरैः सदा कल्पतरुप्रशू (सू)नैरभ्यर्च्चितो यः समरेषु रेमे॥ १२॥
क्रमेण तन्मिन्प्रबभूव धीर **आल्हू** प्रतीलीरुचिराधिकारः' [।]
येनावरुते कालुषे वृषेण सदैव रेमे रभसेन दुर्ग्गे॥ १३॥
तस्यात्मजयापि व (ब)भूव रम्यः **सु(शु)भान्वितः जे(शो)(भ)न-नामधेयः।**
चित्रैश्चरित्रै ककुभां मुखानि **यश्चित्रयामास** मु(शु)चिर्गु(णौ)घै॥ १४॥
विद्यानिधानं तनयय तस्य विद्याधरैस्तुल्प (स्य)तनुर्बभूव।
यस्मिबृपो **वीदननामधेयौ** विन्यस्य राज्यं सुमना सदैव॥ १५॥
वशं पुराभ्येति जनस्य चि(त्तं) त्रैलोक्यवर्न्माक्षितिपस्य(चा)त्र।
इतीव **वाशेरचिताभिधानो** बभूव पुत्रोऽस्य गुणैरुदारः॥ १६॥
कार्यक्षमन्तं विगणज्य(रूय) राज्या(जा) दुर्ग्गे जयाक्षे(ख्ये) विशिष्वाधिकारे।
नियोज्य तस्मै व्यतरव्यसिवं ग्रामं सदा व(र्ब्भ) वरीति नाम्ना॥ १७॥
तस्मिन्मनीरममयं सुरसद्म वार्पी **वास्तव्यवंशतिलकः** सुजलां च रम्याम्।
विद्माय देहमचिरं चिरतां सिष्टक्षुः प्राचीकरत्तदनुया(पा)धिकलेवरेण॥ १८॥
तत्रायं परिपन्थिपार्थिवचमूकक्षेषु दावानली हेराज्यं जन-यत्त(न्त)मप्रतिहतं कृत्वा क्कतान्तातिथिम्।
भोजूवां युधि युवदुर्न्मदनिधिं **वासे (शे) कनामा** सुधी-र्भूयो येन महोशवंशतिलकस्लेलोवयवर्न्मागतः॥ १९॥
स्फीतं राज्यमकंटकं गुणिगणाक्रान्तातिसर्व्वास्प्रदं दानेनोज्व(ज्ज्व)लवहिधाय विधिवत्सीमाः समस्ता अपि।
तेनालन्भि महीधरै जयपुरे कैलासवासीपमे वासो वासववास-दर्प्पदलनी रम्यप्रतीलीकृते॥ २०॥
अस्यानुजः पुण्ययशा उदार आनन्दनामा प्रथितः पृथिव्याम्।
सदैव लोकं मदयन्तमाराद्यं सत्प(त्य) नामानमुदाहरन्ति॥ २१॥
भियामभूमिं विगणज्य(रूय) चैनं दुर्गाधिकारे नृपतिः प्रचक्रे।
आज्ञाकरान्य (शि) निवासिनीयं चकार भिक्षान्मवरान्मुलिन्दान्॥ २२॥
तस्यात्मजीभवद-(सो)रुचिराभिधानी विद्यासु तासु सकलासु सु(शु)चिःकलासु।
यो लीलयैव विहरन्मसमराङ्गणेषु तीव्रानरातिनिवहान्कुणितामनैषीत्॥ २३॥
दुर्ग्गे जयाख्ये प्रवलामुरीच्चर्व्विध्वंसनी स्तीत्रपरंपराभि।
दुर्ग्गा स्तुवन्वेश सदैव भक्त्या कृतांजलि पुण्यतमासु(सु) पास्ते॥ २४॥
गणैरुदारः सुकृतैकचारः पा-पापहारःसृजनैकसारः।
(शा) स्वास्तविद्यानिपुणः प्रवीणः कलासु रेजे स सदा यशस्वी॥ २५॥
तस्यात्मजो गोपतिनामधेयो विद्यावदातो नृपतिप्रपूज्यः।

त्वियां गिरां चाप्यविरोधवासी वंद्यः सतां साधुजनेकसेव्या॥ २६॥
तस्यानुजन्मा महिपालनामा सौंदर्यसौ (शी) र्यप्रवरी रराज।
यं वीच्य लज्जावस(न)ती मनीभूः सदैव चित्तेषु तिरीव(ब)भूव॥ २७॥
जयति तदनुजन्मा श्रीविलाशै(सै)कसौधः सुक्लतिजनवरिष्ठौ वाङ्मि(स्म)नामग्रणीय।
नृपतिसमतिदक्षः प्लाचनीयस्वभावःसुभट इति च नाम्रा कीर्त्तनीयस्वरूपः॥ २८॥
परीपकारप्रतिव(ब)ह(कां)च प्रारब्धकार्याधिगतार्थसिहिः।
त्रीभोजवन्र्माक्षितिपस्य सोभूत्वीसा (शा) धिकारादि(चि)पतिः सदैव॥ २९॥
सर्व्वाभारधुरंधरोपि शुभटो विश्वासविद्यास्थितिःन्वीमहोजमहीमहेश्वरसचिवः प्रक्षा(ख्या)तकीर्त्तिर्गुणैः।
निर्मार्यादपरोपकारनिरतः सौजन्यमुद्रानिधिर्भाण्डागारपतिथिरं विजयते धर्न्मैकवु(बु)द्दिर्भृशम्॥ ३०॥
लोकः शोक-(दुःखत्रयो?) मंदिरं
दोला(न्दो)लनचंचलं धनमिदं स्वल्पायि(यु)षो मानुषाः।
धर्न्मः केवल एव देहविरहे देहान्त(रं) गच्छति गनता (त्या) गविधेरसंभवतया देवालय(:)क्रीयताम्॥ ३१॥
ततो जाता **महाप्राज्ञा महिपालसुतास्तयः। कीर्त्तिपालो** वृ(बृ)त्कीर्त्तिःकुमारी मारसन्निभः॥ ३२॥

× × ×

EPIGRAPHIA INDICA Volume I (1892)
(Page-140)

☞ खजुराहो से प्राप्त शिलालेख में, **गौडब्राह्मण कायस्थ राजा जयवर्मन देव** का वर्णन ६४ वें श्लोक में विद्यमान है। यथा—

॥ श्री नमः शिवाय॥

विष्टपविकटवटानामजायमानाय वीजभूताय। रुद्राय नमः पालनविलयक्षते निःक्रियायापि॥ १॥
तूर्णं घूर्णति यत्र गोत्रसि (शि) खरिव्यूहः समूहः पत-
त्यत्यावर्त्तितमूर्त्तिरार्त्तरुतं कुर्व्वन्ककुप्कुशनान्।
सप्तांभोध्यवधिप्रधूतवसुधाव (व)न्धः कव(ब)[न्धी]क्कत-
स्व-[र्गा]दिः क्षयकांडतांडवविधिः शैवः शिवायास्तु वः॥ २॥
कस्त्वं हारि दिगंव(ब)रः क्षपणकः कस्मादकस्मादही
वा(बा)ले शूलधरी धिगायुधविधिं व(ब)र्हास्वदर्हा ननु।
मां जानीहि महेश्वर स्फुटमिदं वस्त्रेप्यभावादिति
प्रेयस्या परिहासती विहसितं शंभोः शुभायास्तु वः॥ ३॥
पशुपतिवदनच्छद्मनि लतवसतिः पद्मसद्मनि सदा या।
जयति विलक्षणरूपा सु(शु)क्लाभा भारती भ्रामरो॥ ४॥
गिरिशशिरसि यच्छन्हस्तमिन्दीः कलायां मुहुरमलमुणालीग्रासगृधुः शिसु(शु)त्वे।
जयति विधुतमूर्घोबाललीलांबु(बु)जेन स्थितकुपितमृडानीताडितो नागवन्तः॥ ५॥
निजीपद्मप्रज्ञाप्रसरपरिविस्फारुकुरे पदार्थानां सार्थः प्रतिफलति येषामवितयः।
गिरां ग्रामी येषामधरमधिशेते स्वयमयं नमसतेभ्यः सङ्गास्तिलकितजगहरः किमपरम्॥ ६॥

कल्पादौ किल केवलं खमखिलं ध्यांतावनडं ध्रुवं शून्यं वीक्ष्य सिसृक्षती जगदभून्न[द्रा] दमुद्रीनिलः।
तत्राभूदनलीनलाब्जलमभूहीजादमीघाव्वले ज्वालामालि हिरद्म(स्म) महदभूदंडं विभीव्रं(ब्रं)ब्रह्मणः॥७॥
तदंडभांडखंडाभ्यां द्यां भुवं विदधे धिया।
व्र(ब्र)ह्म व्र(ब्र)ह्मनिधीन् पुत्रान् मरीर्च्या[त्र] मुखान्मुनीन्॥८॥
मध्ये तेषां प्रहततमसां मानसानां मुनीनां श्रीमानत्रिः प्रथितमहिमा नेत्रपात्रे प्रसूतम्।
यस्य ज्योतिःपटलजटिलं मंडलं वन्द्यमिनेयंद्रात्रेयः समजनि मुनिस्तस्य पुत्रः पवित्रः॥९॥
दूरापास्तसमस्तसंशयविपर्यासप्रकामीज्व(ज्ज्व)लज्ञानालीकविलो-किताखिलजगत्सम्मर्गापवर्गस्थितेः।
सर्व्वज्ञप्रतिमस्य त[स्य] क्वतिनः कारुण्यपुण्यात्मनः।
पारं गंतुमनन्तदीपमहसः की वा महिनां क्षमः॥ १०॥
नीरंध्र निर्[घी] निसर्म्मासरलः सारी[त] राभ्यन्तरी निग्ग्रंथिः पृथुलाअभागसुभगः पर्व्वस्वक्षर्व्वस्थितिः।
आमलं फलितीप्यसेवितविपत्क्रूरारिदावाग्निना न ग्लानिं गमितस्ततः समभवहंशीयम-त्वहुतः॥११॥
आचंद्रं चंद्रात्रेयवंस(श)जाः क्षितिभुजः क्षितिमु(भोक्ष्यन्त्वक्षतदीर्हडचंडिमानीवितेजसा॥१२॥
ये पूर्व्वेत पवित्रितक्षितितलाः सत्कर्न्मस(र्ग] प्रियाः।
ग्राणप्रार्थनयाम्यखिन्नमनसः पर्याप्तसत्यव्रताः।
निःसिंटूरितटुर्व्विनीतव(ब)लवन्सा(त्सा)मन्तसीमान्तिनी-सीमान्ताः पृथिवोभुजो विजयिनस्तेभ्योखिलेभ्यो नमः॥१३॥
कालेनेह महावंशे प्रशंसा(सा)प्रांशुरंशुमान्। मुक्तामणिरिव श्रीमाव्नवुकीभून्महीपतिः॥१४॥
तेन विक्रमधनेन धन्विना कामता युधि वधाय विहिषाम्।
धुन्वता धनुरधिज्यमर्ज्जुनं स्मारिता दिवि विमानगामिनः॥१५॥
तस्मादुदारकीर्त्तेरजनि जनानंदसुंदरः श्रीमान्।
तनयो विनयनिधानं वाक्यपतिरिव वाक्पतिः क्षितिपः॥१६॥
विद्यावदा-तन्ह्रदयेन हृदि प्रजानामातंकाशंकुमकलंकितविक्रमेण।
तेनापनीय नयनिर्न्मललोचनेन शं(सं)कोचिताः पृथुककुस्य(त्स्थ)कथावकंथाः॥१७॥
तस्य ख्यातिलकस्य लोकतिलकः पृथ्वीपतेर्भूपतिः
स श्रीमान्विजयी जयाय जगतां जन्मे क्वतज्ञः सुतः।
यस्योदात्तमतेः प्रसूतिसमये धाम्नां महिन्मां निधेः
सानंदं सुरसुंदरीभिरवनौ क्षिप्ताः सलाजाः य(स्र)जः॥१८॥
किन्नरीभिरधिकंधरं सखीराकलय्य भुजयास्य भूभुजः।
काकलीकलमगीयत स्फुरत्प्रीथमृत्युलकमुव्व(ज्ज्व)लं यशः॥१९॥
विनयनतसुमित्रापत्यसंवाहितांन्डिः प्रवरहरिचमूभिः क्रान्तपर्यन्तभूमिः।
सुहृदुपक्कति-
दक्षी दक्षिणाशां जिगीषुः पुनरधित पयोधेर्व(र्व)न्धवेधुयमर्यः॥२०॥
तस्मावृपतिसमुद्रादुदपादि नरेंद्रचंद्रमाः सूनुः।
स श्रीरान्हिलनामा विहततमा वंदिता[भ्यु]दयः॥२१॥
प्रसन्ने तत्र भूपाले प्रसरच्चित्रभानवः। ना[थ]वन्तोर्थिनां वा[सा] सरोषे द्विषदालयाः॥२२॥

कोशपानमसिधा(वा)रयोषि-तां नाभिभूतजनरत्रसंपदा।
पक्षपातमिषुदुष्टभूभृतः प्रापुरस्य न सुहृत्सभासदः॥ २३॥
तस्मात्तीव्रप्रतापञ्चलनकवलितोत्तालभूपालतूला-
[न्मृ]लाच्छीलद्रुमाणामनणगुणगणलंकृतेः कीर्त्तिभर्त्तुः।
स श्रीहर्षोरिहर्षज्वरहरणमणिः क्षीणनिःशेषदोषः
सन्तोषाय प्रजानामज-ननिजभुजाश्रान्तविश्रान्तकीर्त्तिः॥ २४॥
यं दृष्टैव कृपाणपाणिमकृतव्यापारभार[रं]युधि
क्रोधाक्रान्तविलोचनौ(नो)त्पलदलभृभंगभीमाननम्।
उत्साही हृदयाउनुः करतल[ड्भ]वो मुखात्कीर्त्तयो
दिग्भ्यः साध्वसवेपमानवपुषां नष्टाः परेषां क्रमात्॥ २५॥
तेनाच्युतेन भीमेन व(ब)लेन कृतवर्न्म-ण। समुद्रपरिखा पृथ्वी पुरी सू(शू)रेण रक्षिता॥ २६॥
अपक्षधात्रीधररक्षक्षमः सदैव दोषाकरसंगभंगुरः।
वहिःकृतक्रूरभुजंगसंगमस्तिरस्करोति स्म स तूर्णमर्ण्णवम्॥ २७॥
दूरा[पा]स्तप्रवरतुरगैर्दूरमुक्तातत्रैर्दूरायातैः सपदि शिरसा [शा]सनं धारयद्भिः।
तस्य द्वारि द्विरदमदनिःस्यदपंकां-कितायां सेधा(वा)हेतोः प्रणतिपरमैराशि(सि)तं भूमिपालैः॥ २८॥
वृत्तीज्व(ज्ज्व)ला गुणाधारा महार्वा हृदयंगमा। हारावलीव तस्यासीत्कंकुकेति प्रियोत्तमा॥ २९॥
वर्ण्णं स्वर्ण्णरुचिर्विलोचनयुगं नीलं सचंद्रीपलं पाणिःशी(ण) मणिद्युतिः सचरणी दन्तच्छदी विद्रुमः।
सद्यःसु(शु)क्तिविमुक्तमौक्तकतल-स्वच्छ[न्च(च्च)चे]तो यतः
स्त्रीरत्नं भुवनैकभूषणमभूत्तेनेयमेका सती॥ ३०॥
तस्यास्तस्य स्मरणविहिताघविध्वंसनायाः सत्तीर्थायास्त्रिदशसरितः शान्तनीः पुण्यकीर्त्तेः।
धर्न्माधारः पितरि सुतरां साधुरिहप्रभावो भीष्मो प(य) द्वत्समजनि सुतः **श्रीयशोवर्न्मदेवः**॥ ३१॥
तस्य विप्रचरणप्रणमजं शैशवे शिरसिजन्वितं रजः।अप्यकालपलिताकृतिं दधत्संदधावधिककामनीयकं॥ ३२॥
एकस्मे याचमानाय हिजाय पलदः शिविः यावदर्थिजनं प्रादाव्कोटिं कोटिमसौ नृपः॥ ३३॥
नंतुं भूमिलितालिकेन सदसि व्यस्तासवे(ने)नासितुं
गंतुं पत्रपुरःसरेणः स्यातुं च नोचैयि-रम्।
वक्तु जीव जयादिशेति नियमं कर्त्तुं विनीतात्मना
तस्मिनाजति(नि) राजकेन जयिनि त्रासादिदं सि(शि)क्षितं॥ ३४॥
नित्यी(त्यो)दितेंदुभुजगाधिपधाम नित्यमानंदि कुंदकुसुमं गगनांगणं च।
तेनाड्भुतं हयमिदं यशा(सा) व्यधायि धा[वी] तलं शि(सि)तसुधाधवलत्वचित्रम्॥ ३५॥
संभवति भुवि मनुष्यः सप्ताकूपारपारदृश्वापि। न पुनरिह तस्य नृपतेर्गुणसागरपारगःकचित्॥ ३६॥
गांधारीं भजता प्रहृष्टशकुनिस्वानप्रियां प्रेयसीं
भीष्मद्रोणवचांस्यकर्ण्णसुखदान्याकरर्ण्णस्य संमूर्च्छता।
[नी] धर्न्मप्रभवं विरोधितवता प्राप्यापि वंशक्षयं
[सं]प्राप्ता धृतराष्ट्रता[सु]सुहृ-दा विहेषिणेत्यड्भुतम्॥ ३७॥

कष्टात्वष्टिसइससूनु भ्रिसूनुत्सृज्य खातः ऊत-
स्तत्पीत्रप्रमुखैः पुनस्तिभिरसावंभीभिरापूरितः।
वृत्तान्तं सगरस्य सागरविधावाकरर्ण्णं तूर्ण्णं सुधीः
स्पर्हावानधिकं व्यधत्त जलधेर्वै(र्बे)द्वस्वं तडागार्ण्णवम्॥ ३८॥
स्वेटं सा(शा)रदेन्दुथुति[ख]रसि(शि)खरक्षुव(ण्ण)नक्ष[व]चक्रा
च[क्रं रक्ष]वसु-ष्मादपथ(न)यति रथं सारथिः सप्तसप्तेः।
यल्शुंभः सा(शा)तकुभस्तुहिनगिरिसि(शि)रयुम्बि(म्बि)वि(वि)म्वा(म्वा)कतक
कुर्व्ववास्ते समस्तस्तुतमसुररिपीव्वेस्म(श्म) वैकुण्ठमूर्तेः॥ ३९॥
महावंस(श)समुत्पन्ना प्रसन्ना [धारि]तावनी। नर्मदेवाभवद्देवी पुण्या तस्य महीपतेः॥ ४०॥
सदानसूया विहितागसेप्यसावरुंधती जीवितमम्युपासिता।
व(ब)भी मदान्धान्दमयन्त्यनिन्दिता मदालसाभून्न पुनः कथंचन॥ ४१॥
सा देवी नरदेवाहेवाधिपतेः स(श)चीव सच्चरित्रं(तं)।
तस्मादसूत पूतं जयंतमिव [धं]गमंगभुवम्॥ ४२॥
यशोदानन्द[भाक्क]क्रे पूतनामा रणक्रियां। जातोवृष्णिकुले कं स रिपोः च्छेता नरोत्तमः॥ ४३॥
तस्मा[त्स-सुत्थि] तक्रोधावृसिंहावखलाविनः। हिरण्यकशिपुप्राणत्राणं चक्रे न केनचित्॥ ४४॥
देवालोकय कोशलेखरमितस्तूर्ण्णं समाकरर्ण्णयता-

मादेशःक्रथनाथ सिंहलपते नत्वा व(ब)हिः स्थीयताम्।
त्वं वि[ज्ञा]पय कुंतलेन्द वदने दततीत्तरीयांचलम्।
तस्यास्थानगतस्य वेत्रिभिरिति व्यक्तं समुक्तं वचः॥ ४५॥
का त्वं कांचीनृपतिवनिता का त्वमंध्राधिपस्त्री का त्वं राढापरिवृढवधूः का त्वमंगेंद्रपत्नी
इत्यालापाः समरजयिनो यस्य वैरिप्रियाणां कारागारे सजलनयनेंदोवरणां व(ब)भूवुः॥ ४६॥
का त्वं कस्य किमर्थमत्र भवती प्राप्ता शशांकोज्व(ज्ज्च)ला
सिडाः कीर्त्तिरहं वु(बु)धैकसुहृदः श्रीधंगपृथ्वीपतेः।
भ्रांत्वा विस्व(श्व) मशेषमागतवती स्फारीभवत्कौतुका
लोकालोकमहामहीध्रसि(शि) खरश्रेणिश्रियं वीक्षितुं॥ ४७॥
मरकतमयं तुंगं लिंगं यदर्च्चितमैश्वरं त्रिदशपतिना तस्माल्लध्वं(ब्धं)प्रसाद्य किरीटिना।
तदवनितलं तेनानीतं युधिष्ठिरपूजितं जयति जगति श्रीधंगेन प्रणम्य निवेसि(शि)तं॥ ४८॥
वेस्म(श्म)न्थस्म(श्म)मयस्तेन भूपालेन प्रतिष्ठितः। द्वितीयो द्योतते देवः क्लेशपास(श)हरी हरः॥ ४९॥
तेनायं स(श)रदभ्रसु(शु)भ्रसि(शि)खरःश्रीधंगपृथ्वीभुजा
प्राशा(सा)दस्त्रिदशप्रभोभ्रगवतःमं(शं)भोःसमुत्तंभितः।
यस्याभ्रंकषकालधौतकलसप्रान्तस्खलत्स्प्रं(त्स्यं)दनो
मेरोःसृं(शृं)-गमतुंगमेव मनुते चित्रीयमाणीरुणः॥ ५०॥
भक्त्या भवस्य नूनं शिल्पिस(श)रोरेषु कृतसमावेशः।
स्वयमेव विश्वकर्म्मा तोरणरचनामिमां चक्रे॥ ५१॥
जयति विकटो[व] टीयं हाटककोटोरनेन तुलयित्वा।

अतुलेन तुलापुरुषाः स(श) तसो(शो) श्रिाणितास्तेन॥५२॥
षट्कर्न्मा[भि'' रता रताः परहिते संसु(शु)हवंस(श)हया-
प्रारब्धा(ब्धा)ध्वरधूमधूम्वपुषोप्येकान्ततो निर्न्मलाः।
तेनैते धनधान्यधेनुवसुधादानेन संमानिताः
सौधेव स्फटिकाद्रिकूटविकटेष्वारोपिता व्रा(ब्रा)ह्मणाः॥५३॥
व्र(ब्र)ह्मस व्र(ब्र)ह्मकल्पेषु येष्वेकत्र निवासिषु। दक्षिणेन तुषाराद्रिं कल्पग्रामोपरोभवत्॥५४॥
रक्षित्वा क्षितिमंवु(बु)रासि (शि)नामेतामनन्यायतिं
जीवित्वा स(श)रदां स(श)तं समधिकं श्रीधंगपृथ्वीपतिः।
रुद्रं मुद्रितलोचनः स हृदये ध्यायन्ज(ञ्ज)पन् जाह्नवी-
कालिंद्योः सलिले कलेवरपरित्यागादगा न्निर्वृतिं॥५५॥
धर्न्माधिकारमनुसा(शा)सति सा(शा)स्वतोत्र मित्रे सतां स्फुरितधामनि धर्म्मावु(बु)[डौ]
श्रीमद्यशोधपुरीधसि वेधसोव सिहिं जगाम जगतीपतिकीर्त्तिरेषा॥ ५६॥
तार्क्कारिकःप्र-
वरसाववंस(श)जन्मा श्रीनंदनः कविरभूत्कविचक्रवर्त्ती।
तस्यात्मजः समजनि श्रुतपारदृश्वा श्रीमांस्तपीधिकव(ब)लो व(ब)लभद्रनामा॥५७॥
सूनुः सूनृतगीर्गिरींद्रमहिमा भ[द्रस्य] तस्याभवद्भूपालैर्भुवि पूजितांङ्घिरनघः साहित्यरत्नाकरः।
श्रीरामी रमणीयशू(सू)क्तिरचनाचातुर्यधुर्यः कृती तेनेयं विहिता प्रशस्तिर[चना] भ(क्तय)लये शलिनः॥५८॥
न संकीर्ण्ण वर्ण्णः क्वचिदिह न सापत्थकलुषाः स्थिताः **कायस्थेन** प्रथितकुलशीलोज्च(ज्ज्व)लधिया।
यशःपालेनायं विदितपदविद्येन लिखितः प्रशस्तेर्विन्याश(स): कृतयुगसमाचारश(स)दृशः॥५९॥
विज्ञानविश्वकर्त्रा धर्न्माधरिण सूत्रधरिण।
च्छि(क्लि)च्छा[भि]धेन विदधे प्राशा(सा)दः प्रमथनास्य॥६०॥
यावत्पृथ्वी स-पृथ्वीधरनगरनगा दत्तमुद्रा समुद्रै-र्यावङ्गाजिष्णुरुष्णद्युतिरयममृतस्यंदनः शीतरस्मि(श्मि):।
यावद्(ब्र)ह्मांडभांडस्थितिरियमथवा स्थास्नुतां स्थाणवीयः
प्राशा(सा) दस्तावदेष व्रजतु नरपतेर्द्दत्तकैलासहासः॥६१॥
लिपि[ज्ञा]नवि[ध]ज्ञेन प्राज्ञेन गुणसा(शा)लिना।
सिंहेनेयं समुत्कीर्ण्णा सहर्ण्णा रूपपसा(शा)लि[नो]॥६२॥
रवा[ह]के राजश्री[धं] गदेवराज्ये देवश्रीमरकतेश्वरस्य प्रस(श)स्तिः सिहा॥
उत्खातोच्चमहीभृती मसृणिता मत्तद्विपतां पदै-र्ध्यौताः संगरसंगभं[गु]ररिपुत्रस्यत्प्रियाश्रूत्करैः।
दिग्भित्तीर्ज्जयवर्न्मदेवनृपतिः कीर्त्त्यक्षरैर्योलिखत्तेनालेखि पुनः प्रशस्तिरमलैरेषाक्षरैः क्ष्माभुजा॥ ६३॥
विद्वद्भिर्ज्जयपालसी(शी)-तकिरणीमून्यादराइंदितो
गौडः प्रोज्झिखदक्षराणि कुमुदाकाराणि सर्प्पत्करः।
कायस्थो जयवर्न्मदेवनृपतेरीशस्य वि(बि) [भ्र]त्कलाः
साहिल्यांवु(बु)धिवं (बं)धुरुडततमी रुन्धवनिंद्यद्युतिः॥६४॥
संवत् ११७३ वैसा(शा)ख शुदि ३ शुक्रे॥

× × ×

''गौड वंश संदीपिका'' ने कायस्थानांसमुत्पत्ति को ही प्रामाणिक माना है

☞ जयपुर राजस्थान से गौडब्राह्मणों द्वारा ''गौडवंश संदीपिका'' नामक पुस्तक प्रकाशित की गई है। जिसमें गौडब्राह्मणों ने ब्रह्मकायस्थों की उत्पत्ति ''कायस्थानांसमुत्पत्ति'' के ही अंश को ही काट-काट कर अपनी उत्पत्ति को प्रामाणिक सिद्ध किया है। पुस्तक के मुख्य पृष्ठ का चित्र—

गौड़ वंश संदीपिका
संकलनकर्ता :
वैद्य सीताराम सिन्डोलिया
मु.-किशनपुरा, पोस्ट-झाग, तह.-दूदू (जयपुर-राज.)

☞ गौड वंश संदीपिका के लेखक पं० सीताराम सिन्डोलिया जी ने ब्रह्मकायस्थों की उत्पत्ति "कायस्थानांसमुत्पत्ति" के ही अंश से सिद्ध किया है कि गौडब्राह्मणों की उत्पत्ति पौराणिक है। नीचे लिखे श्लोकों को आप स्वयं मिला कर देख लें! पुस्तक के पृष्ठ-संख्या २० का चित्र—

4.	भार्गवगौड़ ब्रा.	आंगि ऋषि	जोशी	मध्यान्दिनी	कात्यायन
5.	मध्य श्रेणी बंगाली ब्रा.	आंगि ऋषि	जोशी	मध्यान्दिनी	कात्यायन
6.	गरुलियागौड़ ब्रा.	आंगि ऋषि	जोशी	मध्यान्दिनी	कात्यायन
7.	पछोंदे गौड़ ब्रा.	आंगि ऋषि	जोशी	मध्यान्दिनी	कात्यायन
8.	हरियाणा गौड़ ब्रा.	आंगि ऋषि	जोशी	मध्यान्दिनी	कात्यायन
9.	चोरसिया गौड़ ब्रा.	आंगि ऋषि	जोशी	मध्यान्दिनी	कात्यायन
10.	पुष्कर्णी गौड़ ब्रा.	आंगि ऋषि	जोशी	मध्यान्दिनी	कात्यायन
11.	ठकुरायन गौड़ ब्रा.	आंगि ऋषि	जोशी	मध्यान्दिनी	कात्यायन
12.	भोजक गौड़ ब्रा.	आंगि ऋषि	जोशी	मध्यान्दिनी	कात्यायन
13.	ककड़िया गौड़ ब्रा.	आंगि ऋषि	जोशी	मध्यान्दिनी	कात्यायन

14. दशावार गौड़ ब्राह्मण

'6 गोत्री मालवीय मालवा के'

1. गुर्जर गौड़ ब्राह्मण
2. पारिख गौड़ ब्राह्मण
3. सिखावाल गौड़ ब्राह्मण
4. दायमा गौड़ ब्राह्मण
5. खण्डेलवाल गौड़ ब्राह्मण
6. ओझा गौड़ ब्राह्मण

15. दशेगौड़ ब्राह्मण
अवटंक - मिश्र, जोशी, वत्स, व्यास, ओझा, त्रिपाठी, दुबे आदि।

'गौड़ ब्राह्मण के बारह प्रकार या भेद' उत्पत्ति

श्लोक - **मण्डपांचल सान्निध्ये मण्डपेश्वर सान्निध्यौ ।
गौड़ास्तेऽपि च मांडव्य शिष्यास्ते गुरुवः स्मृताः ।।
मांडव्यास्तत्र श्रीगौड़ा मुखः शंसित वृताः ।
गौतमो दत्त वास्तेषां गुर्वर्थे तान्नृषिन विभुः ।।
श्रीगौड़ास्तत्र शिष्यान्वै गुरवस्ते तपिस्वनः ।
श्री हरिषेश्वर सानिध्ये गतवानृषि सत्तमः ।।
श्री गौड़ास्तसय वै शिष्या गुवर्थे संप्रकल्पिताः ।
चतुर्थ तु सुतं तस्य हारीताय ददौ पुनः ।
गृहीत्वा गतवान सोऽपि देशे हरियाणा के शुभे ।।
हरियाणाश्चैव श्रीगौड़ा गरुत्वे संप्रणोदिताः ।
देशे ऽर्वुदे महरण्ये बाल्मीकाश्रम संज्ञके ।।
बाल्मीकाश्चैव गुरुवो मुनिनां संप्रकल्पिताः ।
वशिष्ठा ऋषि शिष्याश्च वशिष्ठस्य महात्मनः ।।**

☞ गौड वंश संदीपिका में उन्हीं १२ ऋषियों का वर्णन विद्यमान है जिन्होंने ब्रह्मकायस्थों को शिक्षा दी थी। १२ ऋषियों के पुत्रों का जो आस्पद (उपनाम) है। वही आस्पद (उपनाम) ब्रह्मकायस्थों का भी है। पुस्तक के पृष्ठ-संख्या २१ का चित्र—

सोरभेय शुभे देशे सौरभा गुरुवः स्मृताः ।
अष्टम तु सुतं तस्य दालभ्याय ददौ त्तः ।।
तच्छिष्याश्चैव दालभ्या गुरु त्वे ते प्रकीर्तिताः ।
ततस्तेभ्यो ददौ हंसान शिष्याश्च याजनानि वा ।।
विप्रास्तु सुखदाश्चैव सुखसेना महौजस ।
दशम् तस्य पुत्रम तु भट्टाख्य मुनये ददौ ।।
तान गुरुत्वेन संपाद्य भट्ट नागर संज्ञकाः ।
एकादशं तु पुत्रं तु सोभराय ददौ त्तः ।
सूर्यध्वजाश्च तच्छिष्या गुरुत्वे ते प्रकल्पिताः ।
द्वादशं तु सुतं तस्य माथुराय ददौ त्त ।
माथुरीयाश्च गुरुवो वर्तन्ते बहबः स्मृताः ।।

नोट : इस प्रकार बारह भेद गौड़ ब्राह्मणों के हुए । पूर्ण विवरण आगे प्रस्तुत है जिसमें ऋषि गोत्र व स्थान सभी वर्णित किये हैं ।

"गौड़ ब्राह्मण 12 प्रकार के" 3 शाखा सहित सारिणी

क्रम संख्या	ब्राह्मणों के नाम	ऋषि नाम	आस्पद
1.	आदि गौड़ ब्राह्मण	बाल्मीक	उपाध्याय
2.	श्री गौड़ ब्राह्मण	गौतम	उपाध्याय
3.	मेंड़तवाल गौड़ ब्राह्मण	माण्डव्य	उपाध्याय
4.	गंगापुत्र गौड़ ब्राह्मण	हर्ष	उपाध्याय
5.	हरियाणा गौड़ ब्राह्मण	हारीत	उपाध्याय
6.	वशिष्ठ गौड़ ब्राह्मण	वशिष्ठ	उपाध्याय
7.	सोभर गौड़ ब्राह्मण	सोभरि	पांडेय, पांडे, शर्मा, उपाध्याय आदि
8.	दालिभ्य गौड़ ब्राह्मण	दालभ्य	"
9.	सुखसेन गौड़ ब्राह्मण	हंस	"
10.	भटनागर गौड़ ब्राह्मण	भट्ट	"
11.	सूर्यध्वज गौड़ ब्राह्मण	सौरभ (सौराष्ट्र)	"
12.	माथुर गौड़ ब्राह्मण	माथुर	चतुर्वेदी, मिश्र, पाठक

आगे की सारिणी बारह प्रकार के गौड़ ब्राह्मण व तीन शाखाओं सहित पूर्ण सारिणी प्रस्तुत है, देखिये ।

21

ब्राह्मण वर्ण के अन्तर्गत आने वाली जातियाँ

सृष्ट्यारंभे ब्राह्मणस्य जातिरेका प्रकीर्तिता।

सृष्टि के प्रारम्भ में ब्राह्मणों की एक ही जाति बतायी गयी है।

एवं पूर्वे जातिरेका देशभेदा द्विधाऽभवत्। गौड द्राविड भेदेन तयोर्भेदा दश स्मृताः।

पूर्व की यह जाति देश के भेद से दो भाग में विभक्त हो गयी। गौड एवं द्रविड के भेद से यह १० प्रकार के बताये गये हैं।

अथ दश विधा ब्राह्मणाः —

अब दस प्रकार के ब्राह्मणों का वर्णन इस प्रकार है—

गौड़ा सारस्वताः कान्य-कुब्जा उत्कल मैथिलाः। पंचगौडा इति ख्याता विंध्यस्योत्तर वासिनः।

१. गौड ब्राह्मण २. सारस्वत ब्राह्मण ३. कान्य-कुब्ज ब्राह्मण ४. उत्कल ब्राह्मण
५. मैथिल ब्राह्मण।

ऊपर दिये गये पाँच ब्राह्मण पंचगौड ब्राह्मण कहे जाते हैं जो विंध्याचल के उत्तर में रहते हैं।

द्राविडाश्च तैलंगा कर्णाटका महाराष्ट्रकाः। गुर्जराश्चेति पंचैवद्राविडा विंध्यदक्षिणे॥

१. द्रविड ब्राह्मण २. तैलंग ब्राह्मण ३. कर्णाटक ब्राह्मण ४. महाराष्ट्र ब्राह्मण ५. गुर्जर ब्राह्मण।

ऊपर दिये गये पाँच ब्राह्मण पंचद्रविड ब्राह्मण कहे जाते हैं जो विंध्याचल के दक्षिण में रहते हैं।

ऊपर दिये गये उत्तर भारत में स्थित पंचगौड ब्राह्मणों में से एक गौड ब्राह्मण हैं। गौड ब्राह्मणों का वर्णन आगे दिया जा रहा है।

☞ पंचगौड ब्राह्मण में दिये गये 'गौड ब्राह्मण', भगवान् चित्रगुप्त के १२ पुत्र तथा ऋषियों के १२ पुत्र मिलकर 'गौड ब्राह्मण' कहलाते हैं। इन्हीं गौड ब्राह्मणों के उत्पत्ति का वर्णन विस्तार से पिछले 'कायस्थानांसमुत्पत्ति' के अध्याय में दिया गया है। यह गौड ब्राह्मण भारत के १० उच्च ब्राह्मणों में से एक हैं।

अन्य ब्राह्मण जातियाँ

इनके अलावा सारस्वत, कान्यकुब्ज, उत्कल, मैथिल, द्रविड़, कर्णाटक, तैलंग, महाराष्ट्र, गुर्जर, आदि गौड अहिवासी ब्राह्मण, अनाविल ब्राह्मण, अष्टाश्रम अय्यर ब्राह्मण, अर्वतोकालु ब्राह्मण, अउदिच्य ब्राह्मण, बबुरक्कम स्मार्त ब्राह्मण, बदग्नाडु स्मार्त ब्राह्मण, बारेन्द्र ब्राह्मण (बंगाली), बसोत्रा ब्राह्मण, बेयाल ब्राह्मण, भार्गव ब्राह्मण, भूमिहार ब्राह्मण, बाल ब्राह्मण, बृहत्चरनम अय्यर ब्राह्मण, ब्रह्मभट्ट ब्राह्मण, दैवज्ञ ब्राह्मण, देशस्थ ब्राह्मण, देवरूखे ब्राह्मण (कोंकण), धीमा ब्राह्मण, द्रविण ब्राह्मण, इम्ब्रांथिरौ ब्राह्मण (केरल), गौड सारस्वत ब्राह्मण, गुरूक्कल या शिवाचार्या ब्राह्मण, हव्यका ब्राह्मण, हेब्बर अयंगर ब्राह्मण, होयसाला कर्णाटक ब्राह्मण, जिजहोतिया ब्राह्मण, कन्डावरा ब्राह्मण, कारहदा या कराणे ब्राह्मण (महाराष्ट्र), कश्मीरी सारस्वत या कश्मीरी पंडित ब्राह्मण, केरला अय्यर ब्राह्मण, खजूरिया या डोगरा ब्राह्मण (जम्मू), खन्डेलवाल ब्राह्मण खेडवाल ब्राह्मण, कोंकणस्थ या चित्तपावन ब्राह्मण, कोंकणी सारस्वत ब्राह्मण, कोटा ब्राह्मण, कोटेश्वरा ब्राह्मण, कुडलेश्वर ब्राह्मण, मद्रास अयंगर ब्राह्मण, माधवा ब्राह्मण, मान्डव्यम अयंगर ब्राह्मण, मोध ब्राह्मण, मोहयल ब्राह्मण, मुलुकनाडु ब्राह्मण, नागर (नाग) ब्राह्मण,

नम्बूदिरी ब्राह्मण, नन्दीमुख या नन्दवाना ब्राह्मण, नर्मदेव या नर्मदिया ब्राह्मण, नेपाली ब्राह्मण, नियोगी ब्राह्मण, पाडिया ब्राह्मण, पालीवाल ब्राह्मण, पंगोत्रा ब्राह्मण, पोट्टी ब्राह्मण (केरल), पंजाबी सारस्वत ब्राह्मण, पुष्करण ब्राह्मण, राजापुर सारस्वत ब्राह्मण, राहरी ब्राह्मण (बंगाल), ऋग्वेदी देशस्थ ब्राह्मण, सदोत्रा ब्राह्मण (जम्मू), शाकलद्विपीयब्राह्मण, सकलपुरी ब्राह्मण, सनाढ्य ब्राह्मण, सांकेती ब्राह्मण, सरवरिया ब्राह्मण, सरयूपारीण ब्राह्मण, सिरिनाडू स्मार्त ब्राह्मण, श्रीमाली ब्राह्मण, शिवाल्ली ब्राह्मण, स्मार्त ब्राह्मण, श्री गौड ब्राह्मण, स्थानिक ब्राह्मण, सूर्यध्वज ब्राह्मण (कोटा), तेनकलाई अयंगर ब्राह्मण, तुलुवा ब्राह्मण, त्यागी ब्राह्मण, उप्पल ब्राह्मण, उत्कल ब्राह्मण, उलुचकम्मे ब्राह्मण, वदगलाई अयंगर ब्राह्मण, वदमा अय्यर ब्राह्मण, वैदिक या वैदिकी ब्राह्मण, वैष्णव ब्राह्मण, वथिमा अय्यर ब्राह्मण, यजुर्वेदीय देशस्थ ब्राह्मण इत्यादि भारत में ब्राह्मण जातियाँ विख्यात हैं।

'अम्बष्ट' एवं 'कर्ण' ब्रह्मकायस्थों को संकर जाति का कहकर सनातनी समाज को भ्रमित किया गया है

चित्रगुप्तवंशीय ब्रह्मकायस्थों को संकर जाति का सिद्ध करने के लिये खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन बम्बई द्वारा प्रकाशित जातिभास्कर में अम्बष्ट एवं कर्ण ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मणों की त्रुटिपूर्ण व्याख्या करके इनको संकर जाति का कहा है। आइये इसकी सत्यता समझें—

जातिभास्कर के पृष्ठ संख्या ३७१ पर लिखा है कि कायस्थों में अम्बष्ठ एवं करण दो जातियाँ स्पष्ट रूप से संकर हैं।

इस पुस्तक में लिखा है कि ब्राह्मण पिता एवं वैश्य माता से उत्पन्न अम्बष्ठ तथा वैश्य पिता एवं शूद्र माता से करण नामक कायस्थ उत्पन्न हुए।

☛ भगवान् चित्रगुप्त का विवाह ४ महर्षि वैवस्वत मनु तथा ८ नागों (नागर ब्राह्मणों) की कन्याओं के साथ हुआ था।

महर्षि वैवस्वत मनु की ४ पुत्रियों से श्रीवास्तव, सूर्यध्वज, निगम तथा कुलश्रेष्ठ उत्पन्न हुए थे।

नागर ब्राह्मणों की ८ पुत्रियों से माथुर, कर्ण, सक्सेना, गौड, अस्थाना, अम्बष्ट, भटनागर तथा वाल्मीक उत्पन्न हुए।

भगवान् ब्रह्मा को 'प्रथम ब्राह्मण' एवं इनके पुत्र भगवान् चित्रगुप्त को 'द्वितीय ब्राह्मण' कहा गया है। इनकी १२ पत्नियाँ ४ महर्षि वैवस्वत मनु तथा ८ नागों (नागर ब्राह्मणों) की कन्याएं जो कि ऋषि पुत्रियाँ हैं।

प्रश्न यह उठता है कि ब्रह्मा के पुत्र चित्रगुप्त (द्वितीय ब्राह्मण) एवं ऋषि पुत्री कन्याओं से उत्पन्न सन्तान संकर जाति के कैसे होंगे?

ब्राह्मण पिता तथा ब्राह्मणी माता से उत्पन्न संतान संकर होगा यह जातिभास्कर के लेखक ज्वाला प्रसाद मिश्र द्वारा बताया गया है।

☛ जातिभास्कर के लेखक ज्वाला प्रसाद मिश्र को यह ज्ञात ही नहीं है कि भगवान् चित्रगुप्त के १२ पुत्रों में से अम्बष्ठ एवं करण नाम का कोई कायस्थ है ही नहीं।

भगवान् चित्रगुप्त के एक पुत्र को सौभर ऋषि ने ब्राह्मण संस्कार से शिक्षित किया था। इन्हें सौरभ गौडब्राह्मण कहा जाता है। पूर्व काल में यह अम्बादेवी के उपासक थे, इसलिये यह अपना उपनाम 'अम्बष्ट' लिखते हैं। मूलतः यह सौरभ गौडब्राह्मण हैं। अम्बा जिसकी इष्ट हैं—अम्बष्ट

अम्बष्ट एवं अम्बष्ठ में 'ट' तथा 'ठ' शब्द का अन्तर है।

अम्बष्ट—भगवान् चित्रगुप्त के देवपुत्र अम्बादेवी के उपासक तथा सौरभ गौडब्राह्मण हैं। जबकि—

अम्बष्ठ—ब्राह्मण पिता एवं वैश्य माता से उत्पन्न एक जाति है।

इसी प्रकार—

☛ भगवान् चित्रगुप्त के एक पुत्र को दालभ्य ऋषि ने ब्राह्मण संस्कार से शिक्षित किया था। इन्हें दालभ्य गौडब्राह्मण कहा जाता है। पूर्व काल में यह कर्णाटक में निवास करते थे, इसलिये यह अपना उपनाम 'कर्ण' लिखते हैं। मूलतः यह दालभ्य गौडब्राह्मण हैं।

यह बिन्ध्यपर्वत के दक्षिण में पाये जाते हैं। मेघालय, त्रिपुरा, आसाम, बंगाल, उड़ीसा, पूर्वीबिहार,

आन्ध्रप्रदेश, कर्णाटक, तमिलनाडु तथा केरल में पाये जाने वाले ब्रह्मकायस्थ कर्ण ही हैं। इन्हें दक्षिण भारत में कर्णम् एवं नियोगी ब्राह्मण भी कहा जाता है।

कर्ण एवं करण में 'र्ण' तथा 'रण' शब्द का अन्तर है।

कर्ण—भगवान् चित्रगुप्त के देवपुत्र तथा दालभ्य गौडब्राह्मण हैं।

जबकि करण—वैश्य पिता एवं शूद्र माता से उत्पन्न एक जाति है।

भारत में कर्ण/कर्णम् ब्रह्मकायस्थ ज्ञान के क्षेत्र में सर्वोच्च हैं। श्रीमन्त शंकरदेव, स्वामी विवेकानन्द, श्रीअरबिन्दो घोष (ICS), परमहंस योगानन्द, भक्तिसिद्धान्त सरस्वती, स्वामी प्रभुपाद, प्रभात रंजन सरकार, सुभाष चन्द्र बोस (ICS), खुदीराम बोस, डॉ० राधाकृष्णन्, वी० वी० गिरि, पी० वी० नरसिम्हाराव, चन्द्रबाबू नायडू, वैन्कैया नायडू, डॉ० सत्येन्द्र नाथ बोस, डॉ० जगदीश चन्द्र बोस, अमर्त्य सेन (नोबल पुरस्कार) जैसी बहुतायत अद्वितीय महाविभूतियाँ हैं जिनका विवरण दे पाना अत्यन्त दुष्कर कार्य है।

'कर्ण ब्रह्मकायस्थ' ऐसी जाति है जिसने भारत का सम्पूर्ण विश्व में मान बढ़ाया है। ऐसी परम्पवित्र 'कर्ण' जाति को 'करण' नामक नीच जाति कहना महाअधर्म एवं कुत्सित मानसिकता का परिचायक है। जाति भास्कर के लेखक सस्ती लोकप्रियता के लिए मनगढ़न्त बात लिखकर अपना ही नुकसान किये जिसे विषय में पूर्ण ज्ञान न हो और उस विषय को समाज में प्रचारित करने के उद्देश्य से लिखा जाय उससे सम्मान ही नहीं अपितु अपमान ही मिलता है। समाज ऐसे लोगों का उपहास ही करता है।

यदि कोई महामूर्ख—परम्पूज्य भगवान् 'शंकर' को 'संकर' कहकर अधार्मिक व्याख्या करे तो ऐसा महामूर्ख किस गति को प्राप्त करेगा आप स्वयं विचार करें।

× × ×

ब्राह्मण-सेवा एवं ब्रह्म-हत्या का अभिप्राय ब्रह्मकायस्थ सहित सभी ब्राह्मणों से है

ब्राह्मण सेवा एवं ब्रह्महत्या का अभिप्राय ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मणों सहित ऋषिपुत्र ब्राह्मणों से है। यह पढ़कर आप आश्चर्य चकित हो गये होंगे परन्तु यह पूर्णतया सत्य है।

आइये इस सत्यता को समझें–

☞ शास्त्रों में वर्णित है कि ब्राह्मणों के अनादर से भगवान् क्रोधित होकर पापियों को दण्ड देते हैं तथा ब्राह्मणों का आदर करने वाले पर प्रसन्न होकर भगवान् उसे सुख देते हैं।

प्रश्न यह उठता है कि सुख एवं दुख देने वाले भगवान् हैं कौन?

ब्राह्मणों के आदर से खुश होने वाले तथा अनादर से क्रोधित होने वाले भगवान् और कोई नहीं बल्कि सृष्टि के नियन्ता स्वयं 'भगवान् चित्रगुप्त' ही हैं।

इस ग्रन्थ में दिये गये पिछले उद्धरण को पढ़कर आप समझ चुके हैं कि भगवान् ब्रह्मा के वंशज तथा चित्रगुप्त के पुत्र ब्रह्मकायस्थ गौडब्राह्मण हैं। ब्राह्मण वर्ण में ब्रह्मकायस्थ गौडब्राह्मण देवकुल से तथा शेष ब्राह्मण ऋषिकुल से हैं। आप यह भी जान चुके हैं कि इस सृष्टि के नियन्ता भगवान् चित्रगुप्त ही हैं। प्रत्येक मनुष्य चाहे वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्ण का हो भगवान् चित्रगुप्त के न्यायिक निर्णयों द्वारा ही अपने पाप तथा पुण्यों का फल प्राप्त करेगा।

ब्रह्महत्या का अर्थ ब्राह्मण की हत्या से है। ब्राह्मण दो कुल से हैं—

१- चित्रगुप्त वंशीय देवपुत्र ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मण   २- ऋषिपुत्र ब्राह्मण

☞ 'भगवान् चित्रगुप्त' ही पाप कर्मों का दण्ड मनुष्यों को देते हैं।

यदि कोई पापी मनुष्य ऋषिपुत्र ब्राह्मणों की हत्या करता है तो वह इस कृत्य के कारण भगवान् चित्रगुप्त के द्वारा दण्डित होगा। ऋषियों के द्वारा दण्डित नहीं होगा क्योंकि ऋषियों को यह शक्ति प्राप्त नहीं है।

इसका सीधा अर्थ यह है कि यदि ऋषिपुत्र ब्राह्मणों का हत्यारा पापी होगा तो चित्रगुप्त वंशीय ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मणों का हत्यारा महापापी होगा।

ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मणों की हत्या करने वाला मनुष्य भगवान् चित्रगुप्त के दण्ड से अपने कई पीढ़ियों का नाश करता है। ब्रह्महत्या का अभिप्राय ब्रह्मकायस्थ सहित ऋषिपुत्र ब्राह्मणों से है।

☞ इसी प्रकार ब्राह्मण सेवा का अभिप्राय ब्रह्मकायस्थों एवं ऋषि कुलीन ब्राह्मण के साथ संयुक्त है। इस सत्य को जानें। ब्राह्मण सेवा करके अपना जीवन सफल बनायें।

× × ×

अदूरदर्शी धर्माचार्यों के कारण सनातन धर्म का निरन्तर क्षय हो रहा है

आज हमारा सनातन धर्म कमजोर होकर टूटता जा रहा है। इसका कारण योग्य ब्रह्मकायस्थों की उपेक्षा, कम योग्यता के लोगों का सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक प्रतिनिधित्व है। सबसे पहले सनातन धर्म को तोड़ने का कार्य बौद्ध धर्म ने किया। इस धर्म ने चार वर्ण की व्यवस्था को नकारा, साथ ही सभी जीवों पर दया करो का नारा दिया क्योंकि उस काल में सभी सनातनी वैदिक पूजन में पशुबली देते थे, वे कहते थे कि 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' बौद्धों ने इसका घोर विरोध किया। जिसके फलस्वरूप सनातनी धर्माचार्यों ने वैदिक नियमों में परिवर्तन करके पशुबलि को हटा दिया। इसके स्थान पर वनस्पति बलि को जोड़ दिया। यही परिवर्तन हमारे धर्म का काल बन गया। आज हमारा सनातन धर्म वास्तविक सनातन धर्म नहीं है, बल्कि बौद्ध धर्म से प्रभावित-परिवर्तित धर्म है। आज के सनातनी धर्म को आप बौद्ध-सनातनी धर्म भी कह सकते हैं।

☞ बौद्ध धर्म का विस्तार चीन, कोरिया तथा जापान इत्यादि देशों में हुआ। इन लोगों ने बुद्ध के जीव हिंसा के सिद्धान्त को नहीं माना। वह हर धार्मिक कार्य में पशुओं का आहार ग्रहण करते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर जीव हिंसा से चूकते नहीं हैं। परिणाम! आज वह विश्व के तीसरे स्थान पर रह कर सशक्त हैं।

☞ वहीं शुद्ध जीव-अहिंसा वादी जैनधर्म कितने विस्तार में हैं? इस पर ध्यान दें—जबकि यह धर्म बौद्धों से भी पुराना है।

सनातन धर्म के निरन्तर क्षय होने का कारण जानें!

हमारा सनातन धर्म सबसे उत्कृष्ट था इसके विधानों में परिवर्तन करने से धर्म का दर्शन भी परिवर्तित हो गया। सनातन धर्म का दर्शन, ज्ञान एवं शक्ति पर आधारित था, जो परिवर्तित होकर केवल ज्ञान तक ही सीमित रह गया है। धर्म का अभिप्राय धारण करना है। इसे परिवर्तन करने का अधिकार किसी को नहीं है क्योंकि सनातन धर्म को स्थापित करने वाले देव/ऋषि विकार रहित थे। जिसने इसे बनाया था, हम उनके समान नहीं हैं। हम कलियुग से ग्रस्त होकर विकार युक्त हैं।

पौराणिक काल में ब्रह्मकायस्थ 'गौडब्राह्मण' कहे जाते थे। ईसापूर्व ४८४ से १५५४ ईस्वी तक ब्रह्मकायस्थों का शासन बंगाल पर था। ब्रह्मकायस्थ राजा, राजगुरू एवं गुरुकुल के गुरु के रूप में सभी ब्राह्मण कर्म को करते थे। उस काल में देश की राजधानी बंगदेश हुआ करती थी। आसाम, त्रिपुरा, बंगाल, उड़ीसा एवं बिहार इत्यादि मिल कर बंगदेश कहलाता था। बंगदेश का किला गौडकिला कहलाता था। आज भी गौड नाम का रेलवे स्टेशन वहाँ विद्यमान है।

इसका विस्तार से वर्णन अकबर के राजपत्र 'आईने अकबरी के भाग २ में बंगाल सूबा' नामक अध्याय में दिया गया है। सम्पूर्ण भारत पर बंगदेश का ही कानून चलता था। ब्रह्मकायस्थों के २०३८ वर्ष के निष्कंटक शासन में प्रजा बहुत खुशहाल थी।

सन् ७५० से ८५० के बीच धर्मपाल एवं देवपाल नामक शासकों ने बौद्ध धर्म से प्रभावित होकर बौद्ध धर्म का प्रचार किया। परिणाम स्वरूप सम्पूर्ण भारत से सनातनी लोग धर्म परिवर्तन करके बौद्ध हो गये। बौद्ध धर्म का विस्तार अफगानिस्तान एवं कम्बोज तक किया गया।

सन् ८५० के बाद बल्लाल सेन एवं लक्ष्मण सेन नामक शासकों ने फिर से बौद्ध भारतीयों को सनातन धर्म में परिवर्तित किया। सन् ७५० के पूर्व सभी सनातनी वासन्तिक नवरात्र एवं शारदीय नवरात्र में देवी की पूजा में

पशु बलि किया करते थे। जिसके कारण सभी सनातनी सशस्त्र थे। सन् ८५० के बाद जब बौद्ध भारतीयों को सनातन धर्म में परिवर्तित किया गया तब ब्राह्मण तथा वैश्यों ने पशुबली का त्याग करके बलि के रूप में उड़द, जायफल इत्यादि का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया, तभी से सनातन धर्म कमजोर होकर नाश की ओर बढ़ने लगा।

सन् ९०० के आस-पास से तुर्कों तथा मुगलों का आक्रमण हुआ। सन् १५२६ में मुगल पूरी तरह से भारत में स्थापित हो गये। शस्त्रहीन परिवर्तित सनातनी धर्म पर शस्त्रधारी मुसलमान भारी पड़े। मुसलमानों ने सनातनियों को बहुत प्रताड़ित किया। तब परमज्ञानी ब्रह्मकायस्थों ने विचार किया कि शस्त्रहीन परिवर्तित सनातनी धर्म में रहकर शस्त्रधारी मुसलमानों से अपने को बचाने का उपाय खोजा जाय तब ब्रह्मकायस्थों ने विदेशी भाषा अरबी, फारसी तथा उर्दू को पढ़कर सनातन धर्म में रहते हुए अपनी रक्षा की।

वहीं अन्य सनातनी भाइयों ने विदेशी भाषा अरबी, फारसी तथा उर्दू पढ़ने के कारण ब्रह्मकायस्थों को संकर-शूद्र इत्यादि कहकर भ्रमित किया, जिसके कारण हमारा सनातन धर्म उच्च क्षमता के ब्रह्मकायस्थों के प्रतिनिधित्व से वंचित हो गया।

आज सभी सनातनी विदेशी भाषा को पढ़ने-लिखने का कार्य कर रहे हैं।

वर्तमान् में सनातनी धर्माचार्य 'शाकाहारी' बनो और 'गाय को बचाओ' का नारा दे रहे हैं। सनातनी मनुष्य (हिन्दू मनुष्य) को बचाओ पर किसी धर्माचार्य का ध्यान नहीं है।

हमारे देश में अनेक धर्म को मानने वाले लोग हैं। उनमें से एक धर्म का उद्देश्य बल पूर्वक सनातनियों पर अत्याचार करके धर्म परिवर्तन कराना है। इनके द्वारा जो सनातनी मारे जा रहे हैं उनके विषय में कम शक्ति के धर्माचार्य नहीं सोच रहे हैं।

हमारे सनातन धर्म से कुछ सनातनी विदेशी धर्म को अपना कर धर्म परिवर्तन कर लिये। परिवर्तित धर्म में प्रत्येक वर्ष धार्मिक रूप से बकरे को मार कर धर्म का पालन किया जाता है। इस 'धार्मिक प्रशिक्षण' के कारण सनातन धर्म से परिवर्तन किये, ये लोग क्रूर हो गये हैं। आज यही लोग हमारे लिये मुसीबत बन गये हैं।

हमारे सनातन धर्म के यज्ञ, काली, दुर्गा, भैरव इत्यादि की पूजा में पशुबलि का विधान है।

सनातन धर्मी वासन्तिक नवरात्र एवं शारदीय नवरात्र मनाते हैं। इसमें पशुबलि द्वारा पूजा करने का विधान है। इस तरह सनातनियों को भी वर्ष में दो बार पशुबलि करा कर 'धार्मिक प्रशिक्षण' कराने का विधान है। इस शक्ति के पूजन में भी इन धर्माचार्यों ने भोली-भाली जनता को गलत शिक्षा देकर पशुबली करने से मनाकर दिया है। पूजा पद्धति को परिवर्तित करने के कारण करोड़ों लोग शस्त्र विहीन हो गये हैं तथा उनमें आत्मरक्षार्थ भी लड़ने का दम नहीं है, **ये कायर हो गये हैं।**

☞ इस पूजा पद्धति में न होने के कारण भारत सरकार ने भी सनातनियों को तलवार-कटार जैसे शस्त्र रखने पर पाबन्दी लगा दी है।

वहीं विदेशी आतताईयों से परेशान होकर गुरू गोविन्द सिंह ने सनातन धर्म में ही कुछ परिवर्तन करके सिक्ख धर्म की शिक्षा दी। केश, कड़ा, कंघी, कच्छ, कृपाण देकर सशस्त्र धर्म बना दिया। आज सिक्खों से लड़ने का सामर्थ्य किसी में नहीं है। ये सशस्त्र होते हुए भी सदाचारी, वीर तथा शान्ति प्रिय हैं। ये व्यर्थ नहीं लड़ते परन्तु अत्याचार सहन भी नहीं करते हैं।

☞ भारत सरकार ने सिक्खों को तलवार-कटार जैसे शस्त्र रखने पर पाबन्दी नहीं लगायी है क्योंकि तलवार-कटार रखना सिक्खों का धर्म है। सिक्खों का ये परिवर्तन केवल धार्मिक प्रशिक्षण के कारण है।

☞ एक साधारण व्यक्ति प्रशिक्षण पाकर कमान्डो हो जाता है। क्रूरता का जवाब शान्ति से नहीं दिया जा सकता है।

सबसे मजबूत और शक्तिशाली धर्म, सनातन धर्म है, परन्तु कुछ धर्माचार्यों के कारण सनातन धर्म आज नष्ट होता जा रहा है। हमारी शान्ति प्रियता कायरता कहला रही है, इसके जिम्मेदार केवल धर्माचार्य हैं। ये धर्माचार्य सनातन धर्म के विस्तार एवं सशक्त बनाने का कोई कार्य नहीं कर रहे हैं। खुखरी से भैंसे तक की बलि देने वाले गोरखा (सनातन धर्मी) लोगों की बहादुरी के सम्बन्ध में जनरल मानेकशा ने कहा था कि यदि कोई सैनिक यह कहता है कि वह मरने से नहीं डरता, तो वह या तो झूठ बोल रहा है, या वह गोरखा है।

पुराणों में देखें राक्षस कभी नहीं बदले उनका दमन ही करना पड़ा है। हमारे धर्माचार्य गलत शिक्षा देकर सनातनियों को कमजोर बना रहे हैं। इन धर्माचार्यों का कहना है कि दुष्टों की बुद्धि को भगवान् बदल देंगे। **जब भस्मासुर की बुद्धि महादेव नहीं बदल सके, महिषासुर की बुद्धि दुर्गा नहीं बदल सकीं, चण्ड-मुण्ड की बुद्धि काली नहीं बदल सकीं, रावण एवं कंस की बुद्धि देवता नहीं बदल सके तो आज राक्षस रूपी मनुष्यों की प्रवृति कौन भगवान् बदल देंगे?**

ब्रह्मकायस्थों से कम क्षमता के मनुष्य धर्माचार्य बनकर सनातन धर्म को बर्बाद कर रहे हैं।

☞ आज सनातन धर्म को वैदिक पद्धति में ले जाकर 'सशस्त्र धर्म' बनाने की आवश्यकता है। यदि ऐसा नहीं किया गया तो वह दिन दूर नहीं है जब हम विदेशी धर्म के आतताईयों द्वारा निर्दोष मारे जायेंगे। जैसा कि ऐतिहासिक काल में हो चुका है।

बौद्ध धर्म के "**सभी जीवों पर दया करो**" के सिद्धान्त को धर्माचार्यों ने सनातन धर्मियों पर थोप दिया है। सच्चाई ये है कि यदि हम सभी जीवों पर दया करें तो हम जीवित रह ही नहीं सकते। हमारे ऋषि-महर्षि इसे पहले से ही जानते थे। इसलिये उन्होंने कहा कि "**जीवस्य जीव: आहार:**" अर्थात् जीव ही जीव का आहार है।

आईये वेद, पुराण तथा स्मृतियों की सत्यता देखें—

महर्षि मनु ने सृष्टि के प्रारम्भ में ही कहा था कि शाकाहार और मांसाहार प्राण के ही आहार हैं। यथा—

प्राणस्यान्नमिदं सर्वं प्रजापतिरकल्पयत्। स्थावरं जङ्गमं चैव सर्वं प्राणस्य भोजनम्॥ २८॥

(मनुस्मृति, अध्याय-५, श्लोक-२८)

ब्रह्माजी ने सभी प्राणियों के लिये अन्न कल्पित किया है। स्थावर (अन्न, फल, वनस्पति जैसे **अचर प्राणी**) जङ्गम (पशु, पक्षी जैसे **चर प्राणी**) सब प्राण के ही भोजन हैं।

☞ भगवान् ब्रह्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में ही मनु को बता दिया था कि चर और अचर रूप में प्राणी विद्यमान हैं, अर्थात् **फल-मूल, अन्न, दाल इत्यादि एवं पशु-पक्षी इत्यादि सभी प्राणी हैं**। शाकाहार एवं मांसाहार में भिन्नता करके **शाकाहार को अहिंसा कहना मूढ़ता है।**

हमारे ऋषि-महर्षि परम् ज्ञानी थे, धर्म की स्थापना में यज्ञ इत्यादि में पशुबली को घृणा के भाव से नहीं देखते

थे। इसीलिये पुराणों के भक्ष्य एवं अभक्ष्य के अध्याय में ब्राह्मणो के लिये मछली, छाग इत्यादि को भोजन में ग्रहण करने के लिये कहा गया है। आगे कुछ अंश इस प्रकार हैं—

यज्ञार्थ पशवः सृष्टाः स्वमेव स्वयंभुवा। यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः॥ ३९॥
ओषध्यः पशवो वृक्षास्तिर्यञ्चः पक्षिणस्तथा। यज्ञार्थं निधनं प्राप्ताः प्राप्नुवन्त्युत्सृतीः पुनः॥ ४०॥

(मनुस्मृति, अध्याय ५, श्लोक ३९-४०)

स्वयं ब्रह्मा ने यज्ञ के लिये और सब यज्ञों की समृद्धि के लिये पशुओं का निर्माण किया है इसलिये यज्ञ में पशुओं का वध (अहिंसा) है। चावल, यव इत्यादि, पशु, वृक्ष, कछुए आदि और पक्षी ये सब यज्ञ के निमित्त मारे जाने पर फिर उत्तम योनि में जन्म ग्रहण करते हैं॥ ३९-४०॥

एष्वर्थेषु पशून्हिंसन्वेदतत्त्वार्थविद् द्विजः। आत्मानं च पशुं चैव गमयत्युत्तमां गतिम्॥ ४२॥

(मनुस्मृति, अध्याय ५, श्लोक ४२)

पूर्वोक्त कर्मों में पशु की हिंसा करने वाला वेदज्ञ ब्राह्मण अपने को और उस पशु को उत्तम गति प्राप्त कराता है।

या वेदविहिता हिंसा नियतास्मिंश्चराचरे। अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाधर्मो हि निर्बभौ॥ ४४॥

(मनुस्मृति, अध्याय ५, श्लोक ४४)

जो हिंसा वेदविहित है और इस चराचर जगत् में नियत है, वह अहिंसा ही है, क्योंकि धर्म वेद से ही निकला है।

शाकाहारी हो या मांसाहारी सभी प्राणियों को ही खाते हैं। चराचर (चर और अचर) जगत प्राणियों से ही भरा है। शाकाहारी या मांसाहारी प्राणी ऐसा कुछ भी नहीं खाता जो जीवाश्म न हो।

जैसे शाकाहारी-**गेहूँ** को मार कर **आटा** बनाता है, **धान** को मार कर **चावल** बनाता है, **अरहर** एवं **चने** को मार कर **दाल** बनाता है और उसका **जीवाश्म खाता है।** शाकाहारी प्राणी सूखी लकड़ी, ईटा, पत्थर इत्यादि प्राणहीन वस्तु को नहीं खाता है।

इसी प्रकार मांसाहारी प्राणी **बकरा, कुक्कुट** (मुर्गा) तथा **मत्स्य** (मछली) को मार कर उसके **जीवाश्म** (मांस) को खाता है।

यदि हम भोजन के लिये शाकाहारी तथा मांसाहारी के जीव हिंसा को जोड़ें तो शाकाहारी मांसाहारी से अधिक हिंसा करता है। **१ गेहूँ में १ प्राण, १ चावल में १ प्राण, १ अरहर में १ प्राण, १ चना में १ प्राण,** परवल, भिण्डी, टमाटर इत्यादि के **१ बीज में १ प्राण** विद्यमान है। इसी प्रकार **१ बकरे में १ प्राण, १ मुर्गे में १ प्राण** तथा **१ मछली में १ प्राण** विद्यमान है।

वनस्पति इत्यादि मारे जाने पर भी पशुओं की भाँति विलाप करते हैं, उन्हें भी पशुओं की भाँति मारे जाने पर कष्ट होता है। **इस सत्यता को विश्व विख्यात वैज्ञानिक प्रोफेसर जगदीशचन्द्र बसु ने प्रमाणित किया था।**

सनातन धर्म के सभी पूजा पाठ यजुर्वेद पर आधारित है। यजुर्वेद में छाग-अश्व इत्यादि के बलि का अनेक विधान दिया गया है। यथा—

शुक्लयजुर्वेदसंहिता–

न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ २॥ इदेषि पथिभिः सुगेभेः। यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः

सविता दधातु॥ १६॥ (यजुर्वेद, अध्याय-२३, ऋचा-१६)

हे अश्व! यह जो तुम हमारे द्वारा काटे जा रहे हो, वह तुम मरोगे नहीं और न तो नष्ट ही होगे। अब तो तुम सुगम देवयान मार्गों से देवों को प्राप्त होगे। जहाँ पर पुण्यवान् निवास करते हैं और जहाँ वे गये हैं, वहाँ तुम्हें सविता देव धारित करें।

☞ उपर्युक्त प्रसंग में यज्ञ के निमित्त अश्व की बलि दी गयी है। यजुर्वेद में यज्ञ के निमित्त पशुबली का विधान बहुतायत दिया गया है। जिसमें से एक उदाहरण आपके समक्ष प्रस्तुत किया गया है।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण–

वाल्मीकिय रामायण के अयोध्याकाण्ड सर्ग ५६ में रामद्वारा पशुबलि का विधान किया गया है—

त तु पर्वतमासाद्य नानापक्षिगणायुतम्। बहुमूलफलं रम्यं संपन्नं सरसोदकम्॥ १३॥
मनोज्ञोऽयं गिरिः सौम्य नानाद्रुमलतायुतः। बहुमूलाफलो रम्यः स्वाजीवः प्रतिभाति मे॥ १४॥
मुनयश्च महात्मानो वसन्त्यस्मिञ्शिलोच्चये। अयं वासे भवेत्तादत्र सौम्य रमेमहि॥ १५॥
इति सीता च रामश्च लक्ष्मणश्च कृताञ्जलिः। अभिगमयाश्रमं सर्वे वाल्मीकिमभिवादयन्॥ १६॥

विविध पक्षियों से अलंकृत, पर्याप्त फल-मूल सम्पन्न और मीठे जलसे युक्त चित्रकूट पर पहुँच कर राम ने कहा—हे सौम्य लक्ष्मण! यह पर्वत बड़ा ही रमणीक है। इस पर विधि वृक्ष और लतायें हैं। फल-मूल की भी अधिकता है। इससे मुझे कुछ ऐसा आभास होता है कि यहाँ हमें भरपूर आहार मिलेगा। इस पर्वत पर बड़े-बड़े मुनि और महात्मा रहते हैं, हम भी यहाँ ही रहेंगे। हे सौम्य! आओ, यहीं डेरा डाला जाय। इस प्रकार विचार करते हुए राम-लक्ष्मण-सीता तीनों ने हाथ जोड़े हुए आश्रम के भीतर जाकर महर्षि वाल्मीकि को प्रणाम किया॥ १३—१६॥

तान् महर्षिः प्रमुदितः पूजयामास धर्मवित्। आस्यतामिति चोवाच स्वागतं तु निवेद्य च॥ १७॥
ततोऽब्रवीन्महाबाहुर्लक्ष्मणं लक्ष्मणाग्रजः। संनिवेद्य यथान्यायमात्मानमृषये प्रभुः॥ १८॥
लक्ष्मणानय दारूणि दृढानि च वराणि च। कुरुष्वावसथं सौम्य वासे मेऽभिरतं मनः॥ १९॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सौमित्रिर्विविधान् द्रुमान्। आजहार ततश्चक्रे पर्णशालामरिंदमः॥ २०॥

धर्मज्ञ महर्षि वाल्मीकि ने बड़ी प्रसन्नता के साथ इन लोगों का स्वागत किया और पूजा की। तत्पश्चात् वाल्मीकि ने कहा—'बिराजिए, हम आपका स्वागत करते हैं'। तब लक्ष्मण ने विधिवत् अपना परिचय दिया। इसके बाद राम ने लक्ष्मण से कहा—लक्ष्मण! तुम शीघ्र बढ़िया और मजबूत लकड़ियाँ लाकर कुटिया बनाओ। यह स्थान मुझे बहुत अच्छा लगता है। तदनुसार लक्ष्मण कई वृक्ष काट लाये और उन्होंने पर्णशाला तैयार कर दी॥ १७—२०॥

तां धिष्ठितां बद्धकटां दृष्ट्वा रामः सुदर्शनाम्। शुश्रूषाणमेकाग्रमिदं वचनमब्रवीत्॥ २१॥
ऐणेयं मांसमाहृत्य शालां यक्ष्यामहे वयम्। कर्तव्यं वास्तुशमनं सौमित्रे चिरजीविभिः॥ २२॥
मृगं हत्वानय क्षिप्रं लक्ष्मणेह शुभेक्षण। कर्तव्यं शास्त्रदृष्टो हि विधिर्धर्ममनुस्मर॥ २३॥
भ्रातुर्वचनमाज्ञाय लक्ष्मणः परवीरहा। चकार स यथोक्तं च तं रामः पुनरब्रवीत्॥ २४॥
ऐणेयं श्रपयस्वैतच्छालां यक्ष्यामहे वयम्। त्वर सौम्य मूहूर्तोऽयं ध्रुवश्च दिवसोऽप्ययम्॥ २५॥

परिपुष्ट काष्ठों से निर्मित वह सुन्दर पर्णशाला देखकर अपने अनन्य सेवक लक्ष्मण से राम ने कहा—अब मृगमांस लाकर इस पर्णशाला में वास्तु शान्ति करनी होगी। तुम शीघ्र एक मृग मार लाओ। हमें धर्म का ध्यान रखते

हुए शास्त्राज्ञा का पालन करना चाहिए। शत्रु नाशक लक्ष्मण ने तत्काल भ्राता की आज्ञा का पालन किया। तब राम ने कहा—लक्ष्मण! यह मृगमांस पकाओ। इससे हम वास्तुदेव का पूजन करेंगे। जाओ, जल्दी करो। आज सौम्य मुहूर्त और ध्रुवसंज्ञक दिन है॥ २१-२५॥

स लक्ष्मणः कृष्णमृगं हत्वा मेध्यं प्रतापवान्। अथ चिक्षेप सौमित्रिः समिद्धे जातवेदसि॥ २६॥
तं तु पक्वं समाज्ञाय निष्टप्तं छिन्नशोणितम्। लक्ष्मणो पुरुषव्याघ्रमथ राघवमब्रवीत्॥ २७॥
अयं सर्वः समस्ताङ्गः शृतः कृष्णमृगो मया। देवता देवसंकाश यजस्व कुशलो ह्यसि॥ २८॥
रामः स्नात्वा तु नियतो गुणवाञ्जपकोविदः। संग्रहेणाकरोत्सर्वान् मन्त्रान् सत्रावसानिकान्॥ २९॥

तद्नुसार लक्ष्मण काला मृग मार कर ले आये और उसे धधकती आग में डाल दिया। जब लक्ष्मण ने समझ लिया कि वह सर्वाङ्ग पक गया है और उसमें से रुधिर (खून) नहीं निकलता, तब उन्होंने पुरुषपुंगव राम से कहा—हे देवोपम राम! यह मृग अपने अंग-उपांगों समेत पक गया है। आप इससे वास्तुदेव की पूजा करें। आप इस कार्य में पूर्ण निपुण हैं। तब गुणी और मंत्रों का मर्म जानने वाले राम ने स्नान किया और वास्तु शान्ति में प्रयुक्त होने वाले मंत्र का संक्षिप्त जप करते हुए पूजा सम्बन्धी सब कार्य सम्पन्न किया॥ २६—२९॥

दृष्ट्वा देवगणान् सर्वान् विवेश सदनं शुचि। बभूव च मनोह्लादो रामस्यामिततेजसः॥ ३०॥
वैश्वदेवबलिं कृत्वा रौद्रं वैष्णवमेव च। वास्तुसंशमनीयानि मङ्गलानि प्रवर्तयन्॥ ३१॥
जपं च न्यायतः कृत्वा स्नात्वा नद्यां यथाविधि। पापसंशमनं रामश्चकार बलिमुत्तमम्॥ ३२॥
वेदिस्थलविधानानि चैत्यान्यायतनानि च। आश्रमस्यानुरूपाणि स्थापयामास राघवः॥ ३३॥

इस प्रकार वास्तु देवता की पूजा करके असाधारण तेजस्वी राम ने पर्णशाला में प्रवेश किया। उस समय उनका हृदय बहुत प्रसन्न था। भीतर जाकर उन्होंने बलि वैश्वदेव किया। रुद्र और विष्णुदेव को बलि अर्पण किया और नये घर के दोषों को दूर करने वाला मांगलिक कृत्य उन्होंने पूर्ण किया। तदनन्तर राम ने विधिवत् मंत्रजप करके नदी में स्नान किया और दोष दूर करने वाली उत्तम बलि दी। उस आश्रम में उन्होंने उचित स्थानों पर वेदी (बलिस्थान), चैत्य (गणपतिस्थान) और आयतन अर्थात् विष्णुपूजन का स्थान नियत किया॥ ३०—३३॥

वन्यैर्माल्यैः फलैर्मूलैः पक्वैर्मांसैर्यथाविधि। अद्भिर्जपैश्च वेदोक्तैर्दर्भैश्च ससमित्कुशैः॥ ३४॥
तौ तर्पयित्वा भूतानि राघवौ सह सीतया। तदा विविशतुः शालां सुशुभां शुभलक्षणौ॥ ३५॥
तां वृक्षपर्णच्छदनां मनोज्ञां यथाप्रदेशं सुकृतां निवाताम्।
वासाय सर्वे विविशुः समेताः सभां यथा देवगणाः सुधर्माम्॥ ३६॥

(वाल्मीकिय रामायण, अयोध्याकाण्ड, सर्ग ५६)

वन्य माला, फल-मूल, पके मांस, जल, वेदोक्त मंत्रों, कुशाओं और समिधाओं द्वारा सभी देवताओं का सीता के साथ राम ने पूजन करके सबको तृप्त किया। उसके बाद उस शुभ पर्णशाला में प्रविष्ट हुए। वृक्षों की पत्तियों से छायी हुई वह कुटिया बड़ी सुन्दर लग रही थी। उसमें सभी कार्यों के लिए उचित स्थान नियत कर दिये गये थे। हवा-पानी से बचाव का भी अच्छा प्रबन्ध किया गया था। उस सुन्दर पर्णशाला में सब लोग एक साथ उसी तरह प्रविष्ट हुए, जैसे देवसभा सुधर्मा में सब देवता जाते हैं॥ ३४—३६॥

☞ आप स्वयं विचार करें कि जो सनातनी मनुष्य उपर्युक्त विधि (पशुबलि) से पूजा करके धार्मिक प्रशिक्षण लेगा तो क्या उससे लड़ना आसान होगा? **यदि सम्पूर्ण सनातनी इसी पूजा पद्धति में हो जायें तो क्या विदेशी धर्म के आतताई सनातनियों का दमन कर सकेंगे?** पूजा पद्धति को परिवर्तित करने का अधिकार

किसी को नहीं है। जो धर्म के पीठ पर बैठ कर यह कार्य कर रहे हैं, वह अधार्मिक कृत्य कर रहे हैं।

☞ धर्माचार्यों की अदूर्दर्शिता के कारण धर्म ही नहीं बल्कि हमारा सनातन समाज आर्थिक रूप में भी कमजोर हुआ है, इसे भी जानें—

हमारे सनातन धर्म में बधिक एवं चर्मकार नाम की जाति थी, इनमें बधिक का कार्य पशुओं का वध तथा चर्मकार का कार्य चमड़े को सही करके चमड़े की वस्तुओं का निर्माण करना था। आज चर्म का उद्योग विश्व के बड़े उद्योग में है। अब चमड़े की शिक्षा डिप्लोमा एवं इन्जीनियरिंग करा कर दी जा रही है, जबकि **चर्मकार लोग जन्मजात चमड़े के इन्जीनियर थे, ये चमड़े के सभी कार्य के निपुण थे।** धर्माचार्य की अदूर्दर्शिता के कारण बधिक एवं चर्मकार भाईयों का रोजगार भी नष्ट हो गया।

इनके रोजगार को विदेशी धर्म के लोगों ने अपना लिया। आज चर्म उद्योग पूरी तरह से उनके अधीन है, वे खरबपति हैं और निरन्तर आर्थिक रूप से मजबूत होते जा रहे हैं।

अगर हमारे धर्माचार्य पशुवध एवं चर्मकार्य को घृणित नहीं कहते और हिंसा का असत्य प्रचार नहीं करते, तो विदेशी धर्म के लोगों की जगह बधिक एवं चर्मकार भाई खरबपति होते, इस तरह हमारे धर्म के लोग आर्थिक रूप से मजबूत होते। साथ ही शाकाहारी और मांसाहारी मनुष्यों में घृणा का भाव विकसित नहीं होता, इससे हमारा समाज बँधकर मजबूत होता।

पुराणों में लिखा है कि निर्विकार मनुष्य ही परब्रह्म को प्राप्त करके मोक्ष प्राप्त करता है। आप ध्यान दे कि **शाकाहारी मनुष्य मांसाहारी मनुष्य से सदैव घृणा का भाव रखता है।** ऐसी स्थिति में घृणा भाव रखने वाले शाकाहारी मनुष्य को मोक्ष प्राप्त होगा? दूसरी बात जब शाकाहारी मनुष्यों और मांसाहारी मनुष्यों में घृणा का भाव होगा तो क्या हमारा सनातन समाज एक होगा?

इस प्रकार की मनगढ़न्त शाकाहारी श्रेष्ठता न तो आध्यात्मिक उन्नति ही दे रही है और न तो सामाजिक उन्नति। शेर और हिरन को ब्रह्माजी ने बनाया है, शाकाहारी हिरन उत्तम है और मांसाहारी शेर घृणित है, ये कहने का अधिकार किसी मनुष्य को नहीं है क्योंकि मनुष्य इन जीवों का निर्माता नहीं है।

मनुष्य के लिये मांस अभक्ष्य नहीं है। जो आहार आपके शरीर में पचकर (मिलकर) आपको शक्ति देता है, वह अभक्ष्य नहीं होता है। मनुष्य के लिये लोहा, ईटा, पत्थर, मिट्टी इत्यादि अभक्ष्य है, इसे खाने से हमारा पोषण नहीं हो सकता है।

हमारे धर्म के धर्माचार्य ही हमें मनगढ़न्त गलत शिक्षा देकर हमें कमजोर बना रहे हैं। ये धर्माचार्य सनातन धर्म के मर्म को समझ ही नहीं सकते हैं क्योंकि ये ब्रह्मकायस्थों की तरह बुद्धिमान नहीं हैं।

ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मण-शाकाहार-मांसाहार से परे होकर सनातन धर्म को बढ़ाने में लगे रहे हैं। इसका सबसे बड़ा उदाहरण **स्वामी विवेकानन्द** हैं। जो विदेशों में जाकर सनातन धर्म का प्रचार किये। आज सनातन धर्म को विदेशों में **स्वामी विवेकानन्द** के नाम से ही जाना जाता है। इसके अलावा **श्रीअरबिन्दो घोष, महर्षि महेश योगी, स्वामी प्रभुपाद** जैसे अनेक अन्तर्राष्ट्रीय धर्म प्रचारक हुये, जबकि अन्य कुल से भी हजारों धर्माचार्य हुये परन्तु कोई भी विदेश में प्रचार-प्रसार करके सनातन धर्म का मान नहीं बढ़ाया।

☞ **आज सनातन धर्म को ब्रह्मकायस्थ धर्माचार्यों की ही आवश्यकता है।**

× × ×

सनातन धर्म को ब्रह्मकायस्थ धर्माचार्य एवं राजनीतिज्ञों की आवश्यकता है

धर्मनीति ही राजनीति है। जिस देश में जिस धर्म के लोग अधिक होते हैं, वहाँ उसी धर्म की राजनीति होती है। वहाँ का कानून उस देश के बहुसंख्यक लोगों के ज्ञानियों के अनुसार बनाया जाता है। यूरोप के-ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस इत्यादि देशों में ईसाई धर्म के लोगों के अनुसार कानून बनाया गया है, जबकि उन देशों में प्रजातन्त्र है।

उसी प्रकार अरब देशों में मुस्लिम धर्म के लोग हैं इसलिये वहाँ मुस्लिम धर्म के अनुसार कानून बनाया गया है। यूरोप में ईसाई राजनीति तथा अरब देशों में मुस्लिम राजनीति है।

इसी प्रकार भारत बहुसंख्यक सनातनी हिन्दुओं का देश है। यहाँ हिन्दुओं के उत्थान एवं उनके लिये राजनीति होनी चाहिए। लेकिन यहाँ विधायक एवं सांसदों की धार्मिक शिक्षा न होने के कारण बहुसंख्यक एवं योग्य सनातियों का उत्थान नहीं हो पा रहा है। **विधायक एवं सांसद सदैव धर्म के मर्मज्ञों को ही होना चाहिये।**

राजनीति के क्षेत्र में ब्रह्मकायस्थ ईसापूर्व ४८४ से ही अनुभवी रहे हैं। इन्हें २०३८ वर्ष तक शासन का अनुभव रहा है। इनके शासन में प्रजा सदैव सुखी रही है। ब्रह्मकायस्थों के काल में धर्म एवं ज्ञान के उत्थान का कार्य हुआ। विक्रमशिला विश्वविद्यालय की स्थापना, तक्षशिला एवं नालन्दा विश्वविद्यालय के विकास का कार्य किया गया।

चाहे मुगलकाल रहा हो अथवा अंग्रेजी काल हो ब्रह्मकायस्थों ने सत्ता सम्भाली तथा शासकीय कार्य किया। मुगलकाल में ब्रह्मकायस्थों ने प्रजा को मुगलों द्वारा वध से बचाया।

हमारे भारत में अन्य धर्म के लोग भी रहते हैं जो धार्मिक रूप से शस्त्रधारी हैं तथा वह अपने धर्म के विस्तार हेतु हम पर निरन्तर हमला कर रहे हैं। वह चाहते हैं कि हम भी परिवर्तित होकर उनके धर्म के हो जायें। वह यह भी जानते है कि यह सनातनी शस्त्र विहीन धर्म के हैं तथा शस्त्रधारी न होने के कारण इन सनातनियों पर विजय प्राप्त करना आसान है।

हम सनातनी, प्रशासन के भरोसे कितने दिन तक अपनी सुरक्षा कर सकेंगे? आज प्रशासन में आपके धर्म के लोग हैं इसलिये आपके प्राणों की सुरक्षा हो जा रही है। जिस समय उनके धर्म के लोग प्रशासन में होंगे तो आपका सम्मान से जीना सम्भव नहीं हो सकेगा। आप अपने ही देश में बेमौत मारे जायेंगे।

स्वामी विवेकानन्द जब सन्यास ले रहे थे तब ऋषिपुत्रों ने उनका विरोध किया तथा कहा कि कायस्थों को सन्यास लेने का अधिकार नहीं है क्योंकि कायस्थ शूद्र हैं। उन्हीं स्वामी विवेकानन्द ने सनातन धर्म को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्रदान किया। ब्रह्मकायस्थों के विरूद्ध दुष्प्रचार के कारण, योग्य एवं दूरदर्शी ब्रह्मकायस्थ धार्मिक प्रतिनिधित्व नहीं कर रहे हैं। जो सनातनी धर्म के मठ हैं उन पर ब्रह्मकायस्थों का न होना ही हमारे धर्म के क्षति का कारण है। धार्मिक मठों पर उच्च मानसिक क्षमता के लोगों को होना चाहिए ताकि धर्म का नेतृत्व एवं उत्थान ठीक तरह से हो सके। इस तरह के हर कार्य के लिये ब्रह्मकायस्थों से श्रेष्ठ कोई कुल नहीं है।

जिन धार्मिक संस्थाओं का प्रतिनिधित्व ब्रह्मकायस्थों ने किया वह अन्तर्राष्ट्रीय रूप ले चुका है जैसे—स्वामी विवेकानन्द, श्रीअरबिन्दो घोष, महर्षि महेश योगी इत्यादि। जहाँ कायस्थों का प्रतिनिधित्व नहीं है वह अपने ही देश में उच्च स्थान नहीं बना पा रहे हैं।

यदि यही गति रही तो सनातन धर्म का पूर्णपतन दूर नहीं है।

एक बात सदैव याद रखें कि यदि धर्म नहीं बचा तो आप भी नहीं बचेंगे। जो सशस्त्र धर्म के लोग हैं, वह आपको नष्ट कर देगें। प्रमाण के तौर पर आप पिछले ११९२ से १८५७ ई० तक का अपमान जनक इतिहास पढ़कर देख सकते हैं कि शस्त्रधारी धर्म के लोग किस तरह अशक्त सनातनियों की सुन्दर स्त्रियों को लूटकर अपने देश ले गये। क्या आप वही दिन देखना चाहते हैं ?

आप शान्तिप्रिय हैं तथा सर्व-धर्म में समभाव देखते हैं इसका अभिप्राय यह नहीं है कि सभी धर्मों के लोग आपकी तरह ही शान्तिप्रिय तथा सर्व-धर्म में समभाव देखने वाले हैं। आज शस्त्रधारी धर्म के लोग कम संख्या में हैं इसलिए इनका आक्रमण हम पर कम हो रहा है जब इनकी संख्या हमारे समकक्ष हो जायेगी और हम इसी तरह शस्त्रहीन पूजा पद्धति में रहे तो आने वाली पीढ़ियाँ अपने अस्मत एवं अस्तित्व को बचा नहीं पायेंगी।

सनातन धर्म को यदि आप बचाना चाहते हैं तो आपको शस्त्रधारी पूजा-पद्धति वैदिक धर्म का पूर्णतया पालन करना चाहिए। शाकाहार-मांसाहार के विकार से विमुख होकर तथा व्यक्तिगत स्वार्थ से हटकर धार्मिक मठों एवं राजनीति का प्रतिनिधित्व ब्रह्मकायस्थों को देना चाहिए तभी हम सनातन धर्म को सशक्त बना सकेंगे।

☛ **आज देश को ब्रह्मकायस्थ राजनीतिज्ञों की आवश्यकता है।**

× × ×

ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मण 'लेखक' हैं

सनातन धर्म में ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य को द्विज कहा गया है। ब्राह्मणों का कर्म मनु द्वारा पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञकरना-यज्ञकराना तथा दानदेना-दानलेना निर्धारित किया गया है। क्षत्रियों का कर्म मनु द्वारा रक्षा, दान, यज्ञ करना, पढ़ना निर्धारित किया गया है। वैश्यों का कर्म मनु द्वारा रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, पढ़ना, व्यापार एवं कृषि करना निर्धारित किया गया है। यह सभी कर्म 'श्रुति-स्मृति' पर आधारित थे। जिस प्रकार शूद्रों को वेदाध्ययन वर्जित था, उसी प्रकार इन द्विजों को 'लेखन कार्य' करना वर्जित था। गुरुकुल में द्विजों को पठन-पाठन 'श्रुति-स्मृति' से कण्ठस्थ कराया जाता था। वैदिक परम्परा के गुरुकुल में इसे आप आज भी आप देख सकते हैं।

इसी प्रकार ब्रह्मकायस्थों का कर्म ब्रह्मा द्वारा पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञकरना-यज्ञकराना, दानदेना-दानलेना तथा वेद-पुराण इत्यादि ग्रन्थों का लेखन करना निर्धारित किया गया है। जिसका वर्णन कायस्थानांसमुत्पत्ति में विद्यमान है।

आप जानते हैं कि देवताओं में केवल भगवान् चित्रगुप्त ही लेखनी धारण करते हैं। इन्हीं के आशीष से चित्रगुप्तवंशीय ब्रह्मकायस्थों में लेखनी की प्रधानता युगों-युगों से लेकर अब तक विद्यमान् है। ब्रह्मकायस्थ ही एक ऐसा कुल है जो आज तक लेखनी की पूजा करता आ रहा है।

पूर्व काल में ये सभी ब्रह्मकायस्थ पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञकरना-यज्ञकराना तथा दानदेना-दानलेना के अलावा वेद-पुराणों के लेखन का कार्य भी किया करते थे। उस काल में प्रिन्टिगं प्रेस नहीं थे इसलिये वेद-पुराणों का लेखन अत्यन्त ही दुष्कर कार्य था। जिसे सदैव कायस्थों ने किया। वेद तथा पुराण ईश्वरीय वाणी होने के कारण इसे लिखने के पूर्व ब्रह्मकायस्थ लेखनी की पूजा करने के पश्चात् वेद तथा पुराणों का लेखन किया करते थे।

ब्रह्मकायस्थ लेखनी में भगवान् चित्रगुप्त का वास देखते हैं। शेष सभी कुल के लोग लेखनी को महज लिखने का यंत्र समझते हैं। जहाँ कुलीन ब्रह्मकायस्थ 'लेखनी में भगवान् चित्रगुप्त का वास' देखते हैं। वहीं कुलीन क्षत्रिय 'अस्त्र-शस्त्र में शत्रु संघारिणी देवी दुर्गा का वास' तथा कुलीन वैश्य अपने 'दुकान में गणेश-लक्ष्मी' का वास देखते हैं। इसी कारण आज भी इन लोगों पर इनके इष्टदेवों की कृपा युगों-युगों से अबतक विद्यमान् है।

लेखनी अत्यन्त पवित्र है क्योंकि इससे लिखा गया संदेश सम्पूर्ण समाज को दिशा देता है। चाहे वह धार्मिक, सामाजिक अथवा आर्थिक परिवर्तन एवं स्थापन हो यह सभी लेखनी ही करती है। लेखनी में भगवान् चित्रगुप्त का वास होता है इसलिये इसका प्रयोग सदैव न्याय तथा शुभ उद्देश्यों के लिये करना चाहिये।

ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मण पठन-पाठन का कार्य किया करते थे। पूर्वकाल में यह गुरुकुल स्थापित करके सनातनी समाज को शिक्षित करने का कार्य करते थे। इन्हें उपाध्याय (शिक्षक) कहा जाता था। यह यजमानी का कार्य नहीं करते थे। ये ब्राह्मण 'सत्यनारायणव्रतकथा' से लेकर 'पुराण' तथा 'वेदों' के लेखन का कार्य किया करते थे। इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि 'मुंशी' (मिडिल कक्षा के शिक्षक) 'ब्राह्मण' नहीं है।

कुछ ब्राह्मण यजन-याजन तथा दान-प्रतिग्रह का कार्य किया करते थे। यह यजमान को भगवान् का पूजन कराके दान ग्रहण करते थे। ब्राह्मण का कार्य सत्यनारायणव्रतकथा से लेकर यज्ञ कराने तक था।

सत्यनारायण व्रत कथा एवं यज्ञ कर्म को कराने वाले ब्राह्मण तथा इनको लिखने वाले ब्रह्मकायस्थों को अब्राह्मण कहना मूढ़ता है।

× × ×

स्वतंत्र भारत के इतिहासकार कर्तव्यहीन हैं

स्वतंत्र भारत के इतिहासकार पूर्णतया कर्तव्यहीन हैं। यह इतिहासकार कक्ष में बैठकर दूसरे की लिखी पुस्तकों से नकल करके इतिहास लिख रहे हैं। इसलिये इनका लिखा इतिहास सत्यता से परे है। प्राचीन इतिहास के इतिहासकारों ने प्राचीनकाल में विद्यमान बहुत से राजाओं का वर्णन दिया है। इनमें अधिकांश ऐसे राजा हैं जिनका शासन अल्पकाल (कुछ वर्षों) तक था।

वहीं बंगाल में विद्यमान कायस्थब्राह्मण राजाओं का वर्णन बहुत संक्षेप में दिया गया है। आपने पिछले अध्याय में पढ़ा होगा कि कायस्थब्राह्मणों का शासन ईसापूर्व ४८४ से सन् १५५४ वर्ष अर्थात २०३८ वर्ष तक बिना खण्डित हुये क्रमबद्ध था। यह एक साधारण बात नहीं है और न तो साधारण काल है। कायस्थब्राह्मणों का ही २०३८ वर्ष तक निष्कण्टक शासन करना एक 'युग' है। इन कायस्थब्राह्मणों के काल में विक्रमशिला विश्वविद्यालय को स्थापित किया गया था। इन्होंने गौडीयरीति नामक साहित्य का निर्माण किया। दानसागर, अद्भुतसागर, गीतगोविन्द, पवनदूत तथा ब्राह्मणसर्वस्व इन्हीं कायस्थब्राह्मणों के काल में लिखे गये। इन कायस्थों के शासनकाल में बहुत से उत्कृष्ट सामाजिक कार्य भी हुये।

इतिहासकारों के कर्तव्यहीनता पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि वे कायस्थब्राह्मणों के इस उत्कृष्ट काल की उपलब्धियों को समाज के सामने विस्तार से नहीं लाये और न तो समाज को यह बताया गया कि इस स्वर्णिम काल में शासन करने वाले पालवंशी तथा सेनवंशी कायस्थ गौडब्राह्मण थे। पालवंशी तथा सेनवंशी कायस्थ गौडब्राह्मण आज भी बंगाल में विद्यमान हैं एवं वे जानते हैं कि वह गौड तथा दालभ्य गोत्र के हैं। इतिहास लिखने वाले लोगों ने बंगाल में जाकर पता ही नहीं किया कि पालवंशी तथा सेनवंशी किस जाति के हैं। इन लोगों ने अपने पुस्तकों में लिखा है कि पालवंश के जाति का पता नहीं चल पा रहा है। जबकि आईने अकबरी में स्पष्ट दिया गया है कि ''पालवंशी तथा सेनवंशी'' ''कायस्थ'' हैं। इस बात से स्पष्ट होता है कि वर्तमान के इतिहासकार अपने दायित्व की किस तरह निभा रहे हैं।

इसका साक्ष्य आईने अकबरी में दिया गया है। यह कोई साधारण ग्रन्थ नहीं है। आईने अकबरी ''राजा अकबर'' का ''राजपत्र'' है। यह पूर्णतया प्रामाणिक है। इसमें सम्पूर्ण भारत में विद्यमान राजाओं का वर्णन विस्तार से दिया गया है। इतिहास में पालवंश तथा सेनवंश का कायस्थ जाति के रूप में वर्णन न होने से स्पष्ट हो रहा है कि इन इतिहासकारों ने आईने अकबरी को पढ़ा ही नहीं है। ब्रह्मकायस्थों का २०३८ वर्ष तक का क्रमबद्ध निष्कण्टक शासन एक स्वर्णिम युग है। इस स्वर्णिम युग का विस्तार से वर्णन न होना समाज, इतिहास एवं भारत सरकार के लिये अत्यन्त दुःखद है।

☞ **सम्पूर्ण भारत में जिन राजघरानों की उत्पत्ति का वर्णन 'गौड' के रूप में है, वह सभी राजघराने कायस्थों के ही हैं।** गौडब्राह्मणों की उत्पत्ति ज्ञात न होने के कारण इतिहासकारों ने 'गौड' उत्पत्ति के राजघरानों को गोंड नामक निम्नजाति से जोड़कर व्याख्या कर दिया है। साथ ही मध्य भारत (खजुराहो तथा मालवा क्षेत्र) की कई सशक्त जातियाँ स्वयं को क्षत्रिय समझ रही हैं।

सनातन धर्म ट्रस्ट को ज्ञात हुआ है कि बंगदेश के अलावा अवध, काशी, उज्जैन तथा दक्षिण भारत पर ईसापूर्व ४८४ से सन् १६०८ ई० तक कायस्थों का ही शासन था। इसके साक्ष्य एकत्र किये जा रहे हैं।

सनातन धर्म ट्रस्ट इन सभी सत्यताओं को आपके समक्ष लाने के लिये संकल्पित है।

× × ×

ब्रह्मकायस्थों के विरुद्ध अब्राह्मण का दुष्प्रचार १६ वीं शताब्दी से किया गया

भगवान् चित्रगुप्त के कुल में उत्पन्न 12 ब्रह्मकायस्थ निगम, गौड, श्रीवास्तव, कुलश्रेष्ठ, वाल्मीकि, अस्थाना, अम्बष्ट, कर्ण, सुखसेन, भट्टनागर, सूर्यध्वज, माथुर देवपुत्र ''द्वादशगौडब्राह्मण'' हैं।

पौराणिक काल में जब वेदों के आधार पर हमारा राज्य चलता था, तब यह द्वादश गौडब्राह्मण (भगवान् चित्रगुप्त के द्वादश पुत्र एवं द्वादश ऋषियों के पुत्र) एक साथ मिलकर वेदों की शिक्षा समाज को देकर वैदिक धर्म को स्थापित करते थे। इनके उपनाम भी एक ही थे। इनमें केवल कुल का ही भेद था। ब्राह्मण उस समय दो प्रकार के थे। १-गैरपुजारी ब्राह्मण, २-पुजारी ब्राह्मण।

७५० ई० से ८५० ई० के बीच बौद्ध धर्म का प्रचार करने के कारण सनातन धर्म लगभग समाप्त सा हो गया था। इसके पूर्व सभी सनातनी नवरात्र में पशुबली देकर देवी का पूजन करते थे। यह विधान आज भी देवी के अनेक ग्रन्थों मे विद्यमान् है। इस कारण सभी सनातनी युद्धक थे, इनके घरों में शस्त्र सदैव विद्यमान् थे। ८५० ई० के बाद बल्लालसेन तथा लक्ष्मणसेन नामक राजाओं ने बौद्धौं को नष्ट करके पुनः सनातन धर्म को जीवित किया। उस समय ब्राह्मण तथा वैश्यों ने पशुबली का त्याग कर दिया। ब्राह्मणों ने तो पूजा विधान में भी तोड़-मरोड़ कर पशुबली की जगह नारियल तथा जायफल इत्यादि की बली जोड़ दी। इस कारण सनातनियों में ब्राह्मणों तथा वैश्यों ने शस्त्र को भी त्याग दिया। केवल क्षत्रियों के भरोसे पर सनातन धर्म की सुरक्षा रह गई।

१० वीं शताब्दी से ही तुर्कों तथा मुगलों का आक्रमण हुआ। १६ वीं शताब्दी तक मुगल स्थापित हो गये। ब्राह्मणों ने स्वयं तो शस्त्र का त्याग कर दिया और क्षत्रियों को मुगलों से लड़ाते रहे। मुट्ठी भर क्षत्रिय युद्ध में मुगलों से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त होते रहे।

पूर्वकाल में चित्रगुप्त वंशीय सभी ब्रह्मकायस्थ 'उपाध्याय' (गुरू) थे तथा गुरुकुल चलाकर समाज को शिक्षित करने का कार्य किया करते थे। ११ वीं शताब्दी के आस-पास गुरुकुल टूट गये।

जब वेद तथा पुराण ब्राह्मण को जीविका देने में असमर्थ हो गये तब मुगलकाल एवं अंग्रेजों के काल में इन गैरपुजारी ब्राह्मण (उपाध्याय) ब्रह्मकायस्थों ने समकालीन उपयोगी विद्या (मुगलकाल में—अरबी, फारसी, उर्दू तथा अंग्रेजों के काल में—अंग्रेजी, गणित, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान) को अपना कर अपना जीवन यापन किया। वहीं इन ब्रह्मकायस्थों के पुजारी ऋषिपुत्र भाईयों ने इन समकालीन उपयोगी विद्या को नहीं अपनाया, साथ ही कायस्थों के विरूद्ध समाज में असत्य दुष्प्रचार करके पतित, संकर तथा शूद्र कहना प्रारम्भ कर दिया। यहीं से ऋषिपुत्रों ने व्यक्तिगत द्वेष एवं अदूर्दर्शिता के कारण को ब्राह्मण समाज को कायस्थों से विमुख करके ब्राह्मण शक्ति को कमजोर बना दिया।

ब्रह्मकायस्थों को अरबी, फारसी तथा बीजगणित (मुसलमानी गणित) पढ़ने के कारण व्यक्तिगत द्वेष से इस नीच ने मुगलकाल (१६ वीं शताब्दी) में पहली बार कायस्थपद्धति लिख कर ब्रह्मकायस्थों को विदेशी लिपि लिखने एवं बीजगणित पढ़ने के कारण शूद्र से भी अधम कहा। इस कथन से उसने ये भी नहीं सोचा कि जिस चित्रगुप्त से ब्राह्मण सहित सभी सनातनी अपने पितृ को मोक्ष माँगते हैं, उनकी निन्दा करने से क्या पितृ को मुक्ति मिलेगी? इसी राक्षस के कारण सनातन समाज के लोग सृष्टि के नियन्ता भगवान् चित्रगुप्त को यमराज का मुंशी तथा देवपुत्र ब्रह्मकायस्थों को अब्राह्मण कह कर उनका उपहास करते हैं। इस महापाप के कारण भगवान् चित्रगुप्त

के भेजे यमदूत देव एवं देवपुत्र निन्दकों को तरह-तरह के कष्ट देकर मार रहे हैं।

जरा सोचिये! गणेश तथा कार्तिकेय का निन्दक क्या शिव को प्रिय होगा? इसी प्रकार चित्रगुप्त वंशीय ब्रह्मकायस्थों का निन्दक चित्रगुप्तजी को प्रिय होगा? जीवन भर भगवान् चित्रगुप्त और उनके वंशजों की निन्दा करने वाला मनुष्य जब अपने पिता की मुक्ति के लिये भगवान् चित्रगुप्त से प्रार्थना करेगा और गरुडपुराण के पाठ में भगवान् चित्रगुप्त का अनुशासन सुनेगा तो क्या वह अपने पिता को मुक्त करा सकेगा? ये एक गम्भीर विषय है। सनातन धर्म के निरन्तर क्षय का एक प्रमुख कारण ये भी है।

हस्तलिखित पद्मपुराण के उत्तरखण्ड में ''कायस्थानांसमुत्पत्ति'' के ६३ श्लोक यथावत था।

१८ वीं शताब्दी में जब पुराणों के मुद्रण का कार्य प्रारम्भ हुआ तो ऋषिपुत्र ब्राह्मणों ने गागाभट्ट के अधर्म को ही समर्थन दिया। पद्मपुराण के सृष्टि खण्ड से 'चित्रगुप्त-कथा' एवं उत्तर खण्ड से 'कायस्थानांसमुत्पत्ति' को हटा कर महापाप किया। 'चित्रगुप्त-कथा' में कुछ मनगढ़न्त अंश जोड़कर 'यमद्वितीया व्रत-कथा' बना दिया ताकि लोग चित्रगुप्तजी को यमराज का सेवक समझें।

अपराधी कितना भी चालाक हो! गलती कर ही देता है। वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई ने मुद्रित करते समय पद्मपुराण के उत्तरखण्ड से 'कायस्थानांसमुत्पत्ति' तो हटा दिया, लेकिन गलती से पद्मपुराण के उत्तरखण्ड की अनुक्रमणिका में एक श्लोक छूट गया।

अवलोकन करें—

शिव उवाच—

ब्रह्मोत्पत्तिस्तुवैयत्रतंप्रदेशंवदाम्यहम् । कायस्थानांसमुत्पत्तिर्गयाव्याख्यानमेव च॥५०॥

(कायस्थानांसमुत्पत्ति, पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय-१/५०)

शिवजी ने कहा—ब्रह्मा की उत्पत्ति एवं कायस्थों की उत्पत्ति जिस प्रदेश में हुई और गया का व्याख्यान, मैं कहता हूँ॥५०॥

वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई द्वारा मुद्रित पद्मपुराण को कॉपी राईट लेकर NAG PUBLISHERS, 11-A (U.A.) JAWAHAR NAGAR, DELHI-110007 (INDIA) द्वारा पुन: प्रकाशित किया गया है। इस श्लोक को मुद्रित पद्मपुराण में आज भी देख सकते हैं।

पद्मपुराण-उत्तरखण्ड की अनुक्रमणिका में 'कायस्थानांसमुत्पत्ति' विद्यमान है तो पद्मपुराण के उत्तरखण्ड से 'कायस्थानांसमुत्पत्ति' के ६३ श्लोक कहाँ चले गये? और पद्मपुराण से गायब होकर 'ब्राह्मणउत्पत्तिमार्तण्ड' और 'जातिभास्कर' में 'द्वादशगौडब्राह्मणोत्पत्ति' के नाम से कैसे हो गये?

सत्यता ये है कि वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई ने पद्मपुराण के उत्तरखण्ड से 'कायस्थानांसमुत्पत्ति' हटाकर उसमें कुछ मनगढ़न्त अंश जोड़ा और वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई द्वारा ही प्रकाशित 'ब्राह्मणउत्पत्तिमार्तण्ड' और 'जातिभास्कर' में 'द्वादशगौडब्राह्मणोत्पत्ति' बनाकर डाल दिया।

'ब्राह्मणउत्पत्तिमार्तण्ड' और 'जातिभास्कर' में 'द्वादशगौडब्राह्मणोत्पत्ति' बनाकर ब्रह्मकायस्थों को पतित कहा परन्तु ब्रह्मकायस्थों के साथ १२ ऋषिपुत्र गौडों की उत्पत्ति होने के कारण इसे नष्ट नहीं कर सके।

'ब्राह्मणउत्पत्तिमार्तण्ड' और 'जातिभास्कर' में ब्रह्मकायस्थों को पतित सिद्ध करने का प्रयास किया है। जब

आप! स्वयं को विद्वान समझने वाले इन विक्षिप्तों के राक्षसी कुकृत्यों को पढ़ेंगे तो उन पर क्रोधित होंगे क्योंकि इन्हीं के राक्षसी कुकृत्य के कारण ब्राह्मण समाज बिखर कर क्षीण हो गया।

इनके मनगढ़न्त व्याख्या के कारण सनातन धर्मी मनुष्य देवकुलीन परमपवित्र ब्रह्मकायस्थों को अब्राह्मण समझ रहे हैं। साथ ही विलक्षण प्रतिभाशाली ब्रह्मकायस्थों के प्रतिनिधित्व के अभाव में सनातनी समाज दिशाहीन हो गया। दुष्प्रचार के कारण धर्मपीठ पर ब्रह्मकायस्थ बहुत कम हैं, इस कारण धर्म का विस्तार भी नहीं हो सका तथा निरन्तर क्षय होता जा रहा है।

× × ×

गागाभट्ट की हस्तलिखित प्रति अगले पृष्ठ पर दी गई है। इसके कुकृत्य को देखें—

जनिता तथा [illegible] संगता सासूते यवनं पुत्रं तुरुष्कः संप्रकीर्त्तितः तस्माद्दुरिक्षश्चांडालोदयावान्सोतिनिष्ठुरः यवनः चां
डालः पुल्कसीसंगाधिणकं जनयेत्स्कृतं गागादेभ पुत्रांकुर्यात्क्रमान्निःसरणं बहिः साजीविकास्य कथिता सर्वतो लोकविश्रु
ता महार इतिप्रसिद्धः निषादवनिता सूते चांडालाडोंबसंज्ञिकं असावेत्यावसायी तिश्मशाननिलये वसेत् तत्ररक्षां
प्रकुर्वीत प्रेतानां वस्त्रजीवनः डोंब इति महाराष्ट्रभाषाप्रसिद्धः आंध्रस्य वनितासंगाच्चांडालोजनयेत्स्कृतं पुल्लसंज्ञं सहाडी
तिलोके सर्वत्रविश्रुतः अंत्योत्पत्तिगर्धभानांच मृतानां कालयोगतः कुर्यान्निर्हरणं सोपि मांसभक्षणजीवनः मेदजा युवतीसंगा
चांडालो जनयेत्स्कृतं समागम्य पचो लोके स्पृश्यः साहसकारकः जीविका तस्य कथिता आर्द्रगोचर्मरज्जुभिः एवं चांडालपर्यं
ता ब्राह्मणाद्याः प्रकीर्त्तिताः प्रातिलोम्येन चं तेत्यस्फुटाः संकरजातयः उशनः स्मृतौ तु नामांतराण्युक्तानि तत्र निषादपारसवत्
नाम मात्र कृतो भेदो न जातौ वृत्तिकृत इत्यवधेयं गोप वादिहनोक्तं मनुः रजकश्चर्मकश्चैव नटो बुरुड एव च कैवर्त्तमेदभि
लुश्च सप्तैते अंत्यजाः स्मृता इति कायस्थाचारदीपिकायां जातिविवेकनिरूपणं गागाभट्टेन विदुषा नत्वाश्रीराममादरात् जा
तिर्विविच्य संस्कारः कायस्थानां निरूप्यते तथाच पाद्मे सृष्टिखंडे सृष्ट्यादौ सदसत्कर्मज्ञप्तये प्राणिनां विधिः क्षणं ध्यायन्
स्थितस्तस्य शरीरान्निर्गतो बहिः दिव्यरूपः पुमान् हस्ते मषीपात्रं च लेखनी दधानश्चित्ररूपेण रक्षितो देवतैर्हृदि चित्र

गुप्त इति स्म्यातो धर्मराजसमीपतः ब्रह्मणा सहितैर्देवैः क्षणं ध्यात्वा नियोजितः प्राणिनां सदसत्कर्मलेखनाय स बुद्धिमान् भो
जनादौ बलिस्तस्य भागोपि परिकल्पितः ब्रह्मकायोद्भवो यस्मात्कायस्थ इति गीयते दक्षप्रजापतेः कन्यां दाक्षायण्यभिधां ततः
उपयेमे ततः पुत्रो जातस्तस्य महात्मनः विचित्रगुप्तनामासौ बुद्धिचातुर्यवीर्यवान् ततस्तेन मनोः कन्या यथाविधि विवाहिता
स्वक्षाभिधाना तस्यां धर्मगुप्तो बभूव ह धर्मगुप्ताच्च गांधार्यां रुद्रगुप्तो भवत्सुतः तस्माद प्सरसो जातं पुत्राणां तु चतुष्टयम्
माथुरो गौड संज्ञश्च नागरो नैगमस्तथा तेषां नामानि चत्वारि चतुर्णां च यथाक्रमं कायस्थश्चैव शाकश्च कौलिकश्च महेश्वरः एते
षां काश्यपं गोत्रं तेषां धर्ममथ शृणु स्नानं द्विकालमेतेषां त्रिकालं संधिवंदनं अष्टम्यां च चतुर्दश्यां चंडीवृत्तपरायणाः भौमवार
व्रताश्चैव नवरात्रव्रता स्तथा तर्पणं पंचयज्ञानां विधानं च यथाक्रमं एवं चित्रगुप्तकायस्थोत्पत्तिं तद्धर्मांश्चोक्त्वा चांद्रसेनीय काय-
स्थोत्पत्तिं भार्गव कथाप्रसंगेन उच्यते यथा स्कांदे रेणुका माहात्म्ये एवं हत्वार्जुनं रामः संधाय निशितान् शरान् अन्वधावत्स
तान् हंतुं सर्वानेवास्त्रान्नृपान् केचिद्वनमाश्रित्य केचित्पातालमाविशन् जटाकृतात्मनः केचिद्बालवेषमधारयन् परिव्राज
कवेषेण केचित्सावंडिनो नृपाः केचिद्भ्रमभयाक्रांता बभूवुर्ब्रह्मचारिणः केचित्सागर संज्ञास्तु निजधर्मपराङ्मुखाः केचित्क्षप
णकाः केचिद्योगिनो ब्रह्मवादिनः बभूवुस्तेथ संन्यासाः सर्वे रामभयान्नृपाः भस्मोद्धूलितसर्वांगा वल्कलाजिनवासिनः

बभूवुस्तापसाः केचिद्वनमाश्रित्य तद्भयात् ते वैष्णवजनाः केचिद्बभूवुर्नटनर्तकाः केचिद्वैतालिकाः शूरा राजानस्तद्भयार्दिताः
सगर्भा चंद्रसेनस्य भार्या दाल्भ्याश्रमं गता ततो रामः समायातो दाल्भ्याश्रममनुत्तमं पूजितो मुनिना रामो ह्यर्घपाद्यासनादि
भिः स्कंद उवाच अथ माध्यान्हसमये तस्मै भोजनमादरात् ततो दाल्भ्यो मुनिः प्रेष्ठो भार्गवाय महात्मने भोजनावसरे तत्र
गृहीत्वापोशनं करे रामस्तु याचयामास हृदिस्थं स्वमनोरथं तस्मै प्रादाद्दृषिः कामं भार्गवाय महात्मने याचयामास रामो हि कामं
च्च भार्गव प्रति यत्त्वया प्रार्थितं देव तत्त्वं शंसितुमर्हसि राम उवाच तवाश्रमं महाभाग सगर्भा स्त्री समागता चंद्रसेनस्य राजर्षेस्तां देहि त्वं महामुने ततो दाल्भ्यः प्रत्युवा
च ददामि तव कांक्षितं यन्मया प्रार्थितं देव तन्मे दातुं त्वमर्हसि ततः स्त्रियं समाहूय चंद्रसेनस्य वै मुनिः भीता सा चपलापांगी
कंपमाना समागता रामाय प्रददौ तत्र ततः प्रीतमना अभूत् राम उवाच यत्त्वया प्रार्थितं विप्र भोजनावसरे द्विज तन्मे शंस महा
त्रो रामो ब्रवीद्दाल्भ्यं यदार्थमिहमागतः क्षत्रियांतकरश्चाहं तत्त्वं याचितवानसि प्रार्थितं च त्वया विप्र कायस्थं गर्भमुत्तमं त
स्मात्कायस्थ इत्याख्या भविष्यति शिशोः शुभा जायमानो तदा बालः क्षात्रधर्मा भविष्यति दुष्टाद्दैक्षात्रधर्मानुचारिणं चत्वमर्हसि

ततो दाल्भ्यः प्रत्युवाच भार्गवं प्रतिहर्षितः माकुरुष्वात्र संदेहं द्विजैर्न भविष्यति एवं रामो महाबाहुर्हित्वा तं गर्भमुत्तमं नि-
जगाम आश्रमात्तस्मात्क्षत्रियान्तकरः प्रभुः स्कंद उवाच कायस्थ एषै उत्पन्नः क्षत्रिण्यां क्षत्रियात्ततः रामाज्ञया स दाल्भ्येन क्षत्रध-
र्माद्बहिष्कृतः दत्तः कायस्थधर्मोऽस्मै चित्रगुप्तस्य यः स्मृतः प्रभासकायस्थनामत्वात् लेखां हस्तिरक्तभूषणं तस्य भार्याः कृता विप्र
गुप्तकायस्थवंशजा तद्वंशजाश्च कायस्था दाल्भ्यगोत्रास्ततोऽभवन् दाल्भ्योपदेशतस्ते वै धर्मिष्ठाः सत्यवादिनः सदाचाररता
नित्यं रता हरिहरार्चने देवविप्रपितॄणां च अतिथीनां च पूजका यज्ञदानतपःशीला व्रततीर्थरताः सदा इति स्कांदोक्तचांद्रसेनी-
यकायस्थोत्पत्तिः अथ संकरकायस्थानां जातिनिरूपणं माहिष्यवनितासूनुं वैदेहाद्यं प्रसूयते स कायस्थ इति प्रोक्त तस्य कर्म
विधीयते लिपीनां देशजातानां लेखनं सममाचरेत् गणकत्वं विचित्रत्वं बीजपाठीप्रभेदतः अधर्मः शूद्रजातिभ्यः पञ्चसंस्का-
रवानसौ चातुर्वर्ण्यस्य सेवा हि लिपिलेखनसाधनं व्यवसायः शिल्पकर्म तज्जीवनमुदाहृतं शिखां यज्ञोपवीतं च वस्त्रमारक्त-
मंभसा स्पर्शनं देवतानां च कायस्थः परिवर्जयेदिति कायस्थाचारदीपिकायां भिविधकायस्थजातिनिरूपणं अथ तेषां वि-
शेषधर्माः संस्काराश्च निर्णीयंते पराशरः कपिलाक्षीरपानेन ब्राह्मणीगमनेन च वेदाक्षरविचारेण कायस्थः पतितो भवेत्
विचारस्त्रिविधः पठनं श्रवणमर्थविभावनं च तत्र वेदश्रवणनिषेधेन श्रवणे पठने च नाधिकारः सच पारिजाते अथास्यैव

गागा भट्ट द्वारा मनगढन्त कायस्थ उत्पत्ति

अथ संकरकायस्थानां जातिनिरूपणम्—

माहिष्यवनितासूनु वैदेहाद्यं प्रसूयते। स कायस्थ इति प्रोक्तस्तस्य कर्म विधीयते॥ लिपिनीनां देशजातानां लेखनं सममाचरेत्। गणकत्वं विचित्रत्वं बीजपाठीप्रभेदतः॥ अधमः शूद्रजातिभ्यः पंचसंस्कारवानसौ। चातुर्वर्ण्यस्य सेवा हि लिपिलेखनसाधनम्॥ व्यवसायः शिल्पकर्म तज्जीवनमुदाहृतम्। शिखा यज्ञोपवीतं च वस्त्रमारक्तमं भसा॥ स्पर्शनं देवतानां च कायस्थः परिवर्जयेत्। इतिसंकरजातीयकायस्थभेदश्चतुर्थः।

संकर कायस्थ जाति का निरूपण—यमराज की पत्नी से प्रथम उत्पन्न हुए उन्हें कायस्थ कहा गया। उनके कर्म को बता रहा हूँ। अपने देश में उत्पन्न लिपियों का लेखन कार्य करना गणना करना बीजगणित के पाठ के भेद से ये विचित्र है। धर्म से परे है शूद्र जाति के हैं ये लोग पाँच संस्कार के जानने वाले हैं; चारो वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र) की सेवा करने वाले हैं, लिपियों का लेखन ही इनका व्यवसाय का साधन है, निर्माण (शिल्प) कार्य ही जीवन है। शिखा रखना, यज्ञोपवित धारण करना, लाल वस्त्र धारण करना, देवताओं का स्पर्श करना ये कार्य इनके लिए वर्जित है।

यह मनगढ़न्त कायस्थ उत्पत्ति स्पष्ट कर रही है कि इसकी रचना द्वेष उत्पन्न करने के लिए ही की गयी है। क्योंकि पुराणों में कहीं भी शूद्र की सेवा करने का व्याख्यान किसी जाति विशेष के लिए नहीं आया है। दूसरी बात विदेशी लिपि को लिखना और समझना उच्च स्तरीय विद्वानों का कार्य है। यह वर्णन ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्ड एवं जातिभास्कर में भी ब्राह्मण समाज को खण्डित करने के लिए द्वेषपूर्ण उद्देश्य से लिखा गया है।

६४ 'गौडीयवैष्णव' मठों की स्थापना कायस्थ गौडब्राह्मण ने की थी

आदिशंकराचार्य ने अद्वैतमत को स्थापित करके सनातन धर्म को सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया। इन्होंने वेदों के आधार पर ४ मठों की स्थापना की।

१—वेदान्त **ज्ञानमठः** यह मठ **रामेश्वरम्** में स्थापित है तथा **यजुर्वेद** पर आधारित है।

२—वेदान्त **गोवर्धनमठः** यह मठ **पुरी** में स्थापित है तथा **ऋग्वेद** पर आधारित है।

३—वेदान्त **शारदामठः** यह मठ **द्वारिका** में स्थापित है तथा **सामवेद** पर आधारित है।

4—वेदान्त **ज्योतिर्मठः** यह मठ **बद्रीनाथ** में स्थापित है तथा **अथर्ववेद** पर आधारित है।

आदिशंकराचार्य की भाँति सनातन धर्म को सुदृढ़ बनाने के लिये चैतन्य महाप्रभु (विश्वम्भर) ने गौडीय वैष्णवपंथ को स्थापित किया। इनका जन्म १८-०२-१४८६ को पश्चिम बंगाल के नादिया (मायापुर) नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम जगन्नाथ मिश्र तथा माता का नाम शची देवी था। गौड क्षेत्र के नाम पर उनके द्वारा चलाया गया पंथ गौडीय वैष्णव पंथ कहा गया।

शिवपुराण के अनुसार सबसे पहले रुद्राक्ष की उत्पत्ति गौड क्षेत्र में ही हुई।

भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर (बिमल प्रसाद दत्त) दालभ्य गोत्री कर्ण कायस्थ गौडब्राह्मण थे। इन्होंने चैतन्य महाप्रभु द्वारा स्थापित गौडीय वैष्णवपंथ का विस्तार करने के लिये ६४ मठों को स्थापित किया। कायस्थ कुल में उत्पन्न स्वामी प्रभुपाद (अभय चरण डे) भी भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के ही शिष्य थे।

स्वामी प्रभुपाद ने ISKCON (International Society for Krishna Consciousness) की स्थापना करके गौडीय वैष्णवपंथ का विस्तार सम्पूर्ण विश्व में किया। कायस्थ गौडब्राह्मण के समर्पण से आज गौडीय वैष्णवपंथ सम्पूर्ण विश्व में विस्तार करता जा रहा है।

× × ×

पठन-पाठन एवं ज्ञान ही ब्राह्मणों का आभूषण है

पाठक बन्धु! पुराणों तथा स्मृतियों के अनुसार ज्ञान तथा पठन-पाठन ही ब्राह्मणों का आभूषण है। सम्पूर्ण भारत में कायस्थ ही एक ऐसी जाति है, जिसे ज्ञान तथा शिक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त है। भारत में सबसे अधिक शिक्षित व्यक्ति कायस्थ जाति से ही हैं। यदि संतों को देखें तो स्वामी विवेकानन्द, श्रीअरबिन्दो घोष तथा महर्षि महेश योगी जैसे विद्वान् संत दिखेगें। ये ऐसे संत हैं जिनके दर्शन को ईसाई, मुसलमान तथा बौद्धों सहित सम्पूर्ण विश्व ने स्वीकारा है।

इसी प्रकार डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, डॉ० सर्वपल्ली राधा कृष्णन्, डॉ० सम्पूर्णानन्द तथा रघुपति सहाय 'फिराक' जैसे विद्वानों को भी कायस्थ जाति ने ही दिया है। डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ऐसे विद्वान् थे जिन्हें "Examinee is better than examiner" (परीक्षार्थी शिक्षक से उत्तम है) का खिताब अंग्रेज द्वारा दिया गया था। अधिवक्ता दिवस इन्हीं के जन्म दिवस पर मनाया जाता है।

डॉ० सम्पूर्णानन्द 'संस्कृत' के उच्च स्तर के विद्वान् थे। भारत में सबसे पुराना संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी में स्थित है, जो इस महान विद्वान् के नाम से सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय कहलाता है। इसी प्रकार रघुपति सहाय 'फिराक' इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्राध्यापक थे, साथ ही यह अंग्रेजी एवं उर्दू के उच्च स्तर के विद्वान् थे। यह सम्पूर्ण विश्व जानता है।

डॉ० सर्वपल्ली राधा कृष्णन कर्ण/कर्णम कायस्थ कुल में जन्मे थे। यह उच्च स्तर के विद्वान थे। इन्हीं के जन्म दिवस ५ सितम्बर को (Teacher's Day) के रूप में मनाया जाता है।

इन महाविभूतियों के अतिरिक्त कायस्थ जाति से हर क्षेत्र में हजारों विद्वान भरे पड़े हैं। चित्रगुप्त वंशीय कायस्थों ने अपने आप को शिक्षित करके ब्राह्मण होने का दायित्व सदैव से निभाया है। ज्ञानरूपी आभूषण को कायस्थ ब्राह्मण आदिकाल से आज तक धारण किये हुए हैं।

पुराणों के अनुसार चित्रगुप्त वंशीय १२ कायस्थ ब्रह्मा एवं सरस्वती के पौत्र तथा चित्रगुप्त के पुत्र हैं। सनातन धर्म में ब्रह्मा, सरस्वती तथा चित्रगुप्त को ज्ञान का देवता कहा गया है। इन देवों के वंशज होने के कारण कायस्थों की बौद्धिक तीव्रता युगों-युगों से अब तक विद्यमान है।

× × ×

ब्राह्मण एक वर्ण (संस्कार) है

☞ **ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र एक वर्ण (संस्कार) है।**

हमारे पुराणों के अनुसार ब्रह्माजी ने ऋषियों को वंशवृद्धि हेतु स्वर्ग से मृत्युलोक में भेजा, ऋषियों ने अपने पुत्रों को संस्कार देकर ब्राह्मण बनाया। संस्कारित होने के बाद ऋषिवंशज-**ब्राह्मणों का कर्म पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञकरना-यज्ञकराना तथा दानदेना-दानलेना, का निर्धारित हुआ।**

स्वर्ग से सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि के पुत्रों को मृत्युलोक में लाकर ऋषियों द्वारा संस्कार देकर क्षत्रिय बनाया गया। यही सूर्यवंशीय, चन्द्रवंशीय तथा अग्निवंशीय क्षत्रिय कहलाये। ऋषियों से संस्कारित होने के बाद **इन क्षत्रियों का कर्म प्रजा की रक्षा, दानदेना, यज्ञकरना, वेदपढ़ना तथा गीत-नृत्य का त्याग, निर्धारित हुआ।**

स्वर्ग से विश्वकर्मा के पाँच पुत्रों को मृत्युलोक में लाकर ऋषियों द्वारा संस्कार देकर वैश्य बनाया गया। **विश्वकर्मा के वंशज-स्वर्णकार, ताम्रकार, ठठेरा, लौहकार तथा काष्ठकार कहलाये। इनका कर्म दानदेना, यज्ञकरना, पढ़ना, कृषि एवं व्यापार हुआ।**

भगवान् चित्रगुप्त की उत्पत्ति अन्त में सृष्टि के नियंत्रण के लिये हुई थी, इस कारण ब्रह्माजी एवं सावित्रीजी स्वयं भगवान् चित्रगुप्त के पुत्रों को ब्राह्मण संस्कार से संस्कारित करके अपने पुत्रों के समान ब्राह्मण बनाने के लिये आदेश दिया। १२ ऋषियों से संस्कारित होकर ये द्वादशगौडब्राह्मण कहलाये। **इनका कर्म पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञकरना-यज्ञकराना, दानदेना-दानलेना तथा वेद-पुराणों को लिखने का निर्धारित हुआ।**

ब्रह्मकायस्थ द्वादशगौडब्राह्मण, ऋषिब्राह्मण,

सूर्यवंशीय, चन्द्रवंशीय तथा अग्निवंशीय क्षत्रिय,

विश्वकर्मावंशीय स्वर्णकार, ताम्रकार, ठठेरा, लौहकार तथा काष्ठकार वैश्य,

यही पौराणिक हैं।

ब्राह्मणों को सदैव ज्ञानार्जन के लिये तत्पर रहना चाहिये,

'ब्राह्मण' का अर्थ 'ऋषिकुल' में उत्पन्न होना कदापि नहीं है। अलग-अलग उत्पत्ति होने के कारण सम्पूर्ण भारत में लगभग १०० ब्राह्मण जातियाँ विभिन्न नामों से जानी जाती हैं। यह सभी जातियाँ ब्राह्मण संस्कार का पालन करके ब्राह्मण के रूप में विख्यात हैं। यह सभी जातियाँ पूर्वकाल में एक समान थीं।

× × ×

ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मण दान नहीं लेते हैं

कुछ अज्ञानियों का कुतर्क है कि कायस्थों को दान लेने का अधिकार नहीं है। जो **मनुष्य ब्राह्मण है वह पठन-पाठन, यजन-याजन तथा दान-प्रतिग्रह का अधिकारी है। उसके लिये कोई भी ब्राह्मण कर्म वर्जित नहीं है। वह अपनी इच्छा एवं क्षमता से जो ब्राह्मण कर्म करना चाहे, कर सकता है।**

दान-प्रतिग्रह लेने को पुराणों एवं स्मृतियों में उत्तमकर्म नहीं कहा है। **इसीलिये कायस्थों ने इसको जीविका का आधार नहीं बनाया है—**

प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसङ्गं तत्र वर्जयेत्। प्रतिग्रहेण ह्यस्याशु ब्राह्मं तेजः प्रशाम्यति॥

(मनुस्मृति, अध्याय-४, श्लोक-१८६)

दान लेने में समर्थ होने पर भी उसके प्रसङ्ग का त्याग करें क्योंकि **दान लेने से ब्राह्मण का ब्रह्मतेज नष्ट होता है।**

(दान लेने में समर्थ होने पर भी दान लेने की इच्छाओं को त्याग दें क्योंकि दान लेने से ब्राह्मण का ब्रह्मतेज नष्ट होता है अर्थात ब्राह्मणत्व नष्ट होता है। **इसलिये इस कर्म से बचें।)**

प्रतिग्रहाद्याजनाद्वा तथैवाध्यापनादपि। प्रतिग्रहः प्रत्यवरः प्रेत्य विप्रस्य गर्हितः॥

(मनुस्मृति, अध्याय-१०, श्लोक-१०९)

पढ़ाना, यज्ञकराना एवं दानलेना-इन तीन कर्मों में दानलेना निकृष्ट कर्म है। **यह विप्रों (ब्राह्मणों) को मृत्योपरान्त नरक जाने का कारण होता है।**

यजनाध्यापने नित्यं क्रियेते संस्कृतात्मनाम्। प्रतिग्रहस्तु क्रियते शूद्रादप्यन्त्यजन्मनः॥

(मनुस्मृति, अध्याय-१०, श्लोक-११०)

यज्ञकराना तथा पढ़ाना-यह दोनों कर्म सदैव संस्कारयुक्त द्विजों का ही किया जाता है, **परन्तु प्रतिग्रह तो शूद्रजन्म वाले व्यक्ति से भी लिया जाता है।**

जपहोमैरपैत्येनो याजनाध्यापनैः कृतम्। प्रतिग्रहनिमित्तं तु त्यागेन तपसैव च॥

(मनुस्मृति, अध्याय-१०, श्लोक-१११)

यज्ञकराने एवं अध्यापन के निमित्त लिये गये दान से उत्पन्न पाप जप तथा हवन से नष्ट हो जाता है, किन्तु प्रतिग्रह लेने से उत्पन्न पाप दान लिये गये वस्तु का त्याग करके तपस्या द्वारा नष्ट होता है।

पूर्वकाल में कायस्थ महापंडित वेदों तथा पुराणों के मर्मज्ञ थे। इसलिये उन्होंने उच्च ब्राह्मण कर्म पठन-पाठन जो कि अत्यन्त कठिन है, को ही अपने जीविका का आधार बनाया। इन लोगों ने यजन-याजन तथा दान-प्रतिग्रह से स्वयं को विमुख रखा।

कायस्थ सदैव से बुद्धिमान तथा विद्वान रहे हैं। जब इन्होंने संस्कृत पढ़ा तो यह वेद तथा पुराणों के महापंडित हो गये। इसका उदाहरण स्वामी विवेकानन्द तथा डा० सम्पूर्णानन्द हैं। स्वामी विवेकानन्द संस्कृत के महापंडित थे, साथ ही बांग्ला तथा अंग्रेजी सहित अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। यह सनातन धर्म के सर्वोच्च सन्तों में से एक हैं।

इसी प्रकार डा० सम्पूर्णानन्द संस्कृत के उच्च स्तर के विद्वान थे। भारत का डा० सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, इन्हीं के नाम पर वाराणसी में स्थित है।

सनातन धर्म में बताये गये जितने भी कर्म हैं यदि ऋषिपुत्र ब्राह्मण इन कर्मों को करने के अधिकारी हैं तो यह देवपुत्र कायस्थ ब्राह्मण भी इन सभी कर्मों को करने के अधिकारी हैं।

पूजन कराना और दान ग्रहण करना एक सरल एवं सीमित कार्य है। पढ़ना-पढ़ाना सबसे कठिन कार्य है क्योंकि इस ज्ञान की कोई सीमा नहीं है यह अनन्त है जबकि यजन-याजन तथा दान-प्रतिग्रह का विधान सीमित एवं सरल है।

जिन्हें दान एवं प्रतिग्रह ग्रहण करना हो वह करें, परन्तु कायस्थों के विषय में यह दुष्प्रचार न करें कि कायस्थ दान लेने के अधिकारी नहीं हैं।

× × ×

ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मणों को यजन-याजन तथा दान-प्रतिग्रह का कार्य भी करना चाहिये

भगवान् ब्रह्मा द्वारा ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मणों के लिये निम्नलिखित कर्म बताया गया है—

एवमुक्त्वा विधायादौ यज्ञं ब्रह्मा ययौ स्वकम्। सावित्र्या सहितः श्रीमानथ ये चित्रगुप्तकाः॥ ६१॥

सूत ने कहा—इस प्रकार चित्रगुप्त के विषय में बताकर एवं यज्ञ को पूर्ण करके **सावित्री (सरस्वती)** के साथ **श्रीमान् ब्रह्मा** अपने **ब्रह्मलोक** को चले गये॥ ६१॥

द्विजातीनां यथादानं यजनाध्ययने तथा। कर्तव्यानीति कायस्थैः सदा तु निगमान् लिखेत्॥ ६२॥
पुराणपाठकाः सर्वे सर्वे तत्स्मृतिशंसकाः। आतिथ्यं श्राद्धकर्तृत्वं सर्वेषां धर्मसाधनम्॥ ६३॥

(कायस्थानांसमुत्पत्ति, पाद्मे, उत्तरखण्डे)

सनातन धर्म में जितने भी धार्मिक कर्म बताये गये हैं, उन सभी कर्मों को कराने का अधिकार ब्रह्मकायस्थों को है। परन्तु १२ ब्रह्मकायस्थों में से अधिकांश ब्रह्मकायस्थ पठन-पाठन का ही कार्य किया करते हैं। जबसे ब्रह्मकायस्थों ने पूजा-पाठ कराने तथा दान को ग्रहण करने का कार्य छोड़ दिया है, तब से समाज इन्हें ब्राह्मण नहीं समझ रहा है क्योंकि आज का सनातनी समाज में पूजा-पाठ कराने वाले ब्राह्मणों को ही ब्राह्मण समझ रहा है।

उड़ीसा के कर्ण ब्रह्मकायस्थ जो कि वहाँ कर्णम् ब्राह्मण कहलाते हैं, पूजा-पाठ कराते हैं तथा दान को ग्रहण करते हैं। जिसके कारण वहाँ उत्कल ब्राह्मण तथा कर्णम् ब्राह्मणों में कोई भेद नहीं है। उड़ीसा में कर्णम् ब्राह्मण अत्यन्त सबल हैं। वहाँ उनके उपनाम-कर्ण, कर्णम्, पटनायक, महापात्र, पाणिग्रही, मोहन्ती (महन्त), चौधरी, पाटस्कर, कानूनगो, मल्लिक, मर्दराज, सेनापति, वाहियार, दास, नन्दा, त्रिपाठी, मिश्रा, मुनी, दत्ता, नायक हैं।

प्रायः देखा जा रहा है कि समाज में पूजा-पाठ कराने वाले लोग कम पढ़े होते हैं। जिसके कारण सनातन समाज के लोगों में पूजा-पाठ कराने का उत्साह कम होता जा रहा है।

ब्रह्मकायस्थ बन्धु! पिछले अध्यायों में आप पढ़ चुके हैं कि आप भगवान् ब्रह्मा के समान शक्ति से उत्पन्न भगवान् चित्रगुप्त के वंशज हैं। आप जानते है कि सनातन धर्म भगवान् ब्रह्मा का स्थापित किया हुआ है अर्थात् आपके पितामह भगवान् ब्रह्मा द्वारा स्थापित सनातन धर्म को बचाने का प्रथम दायित्व आपका है।

आप कुल में सर्वोत्तम हैं, आप ज्ञानी हैं, पढ़े-लिखे हैं, आप आगे बढ़ें और पूजा-पाठ को धर्म का दायित्व समझकर कराना प्रारम्भ करें। आप जैसे योग्य लोगों के यजन-याजन करने से पुनः सनातन समाज के लोगों में पूजा-पाठ कराने का उत्साह बढ़ेगा।

☞ दान ग्रहण करने के उद्देश्य से नहीं बल्कि धर्म का दायित्व समझकर इस कार्य को करें।

× × ×

श्राद्ध कराने के अधिकारी ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मण हैं

सनातन धर्म के १६ संस्कारों एवं अन्य पूजनों में पुजारी ब्राह्मण को दान देने का विधान है। शास्त्रों में बताया गया है कि मनुष्य जो भी दान पुण्य करता है। उसके सत्कर्म से प्रसन्न होकर भगवान् उसे अनेक सुख प्रदान करते हैं। सत्कर्म कर्ता मनुष्य लोक तथा परलोक में भगवान् की कृपा से सुख को प्राप्त करता है, ऐसा शास्त्रों में वर्णित है।

आप पिछले अध्यायों में पढ़ चुके हैं कि प्राणी मात्र के नियन्ता भगवान् चित्रगुप्त हैं। भगवान् चित्रगुप्त द्वारा ही प्राणी अपने कर्मानुसार निम्नयोनि, उत्तमयोनि तथा मोक्ष को प्राप्त करता है। आप यह भी पढ़ चुके हैं कि ब्रह्मकायस्थ-भगवान् चित्रगुप्त एवं १२ ऋषिपुत्रियों के पुत्र तथा भगवान् ब्रह्मा-सावित्री के पौत्र हैं। ब्रह्मकायस्थों को भगवान् ब्रह्मा की आज्ञा से १२ ऋषियों ने शिक्षित करके 'ब्राह्मण' बनाया था।

सनातन धर्मी जो भी पाप-पुण्य को करते हैं, तो उन्हें उसका फल यमलोक के 'धर्माधिकारी' भगवान् चित्रगुप्त द्वारा ही दिया जाता है। आप जब ब्राह्मण सेवा तथा ब्राह्मणों को दान देते हैं तो भी इस पुण्य का फल भगवान् चित्रगुप्त के द्वारा ही दिया जाता है। जब आप पिता के दिवंगत होने पर पिता के मुक्ति के लिये श्राद्ध करते हैं, तो वह भी भगवान् चित्रगुप्त को प्रसन्न करने के लिये करते हैं क्योंकि भगवान् चित्रगुप्त ही प्राणियों के मुक्तिदाता हैं। इसका प्रामाणिक अंश आप इस पवित्र ग्रंथ के प्रथम खण्ड में पढ़ चुके हैं।

ब्राह्मण वर्ण में दो प्रकार के मनुष्य विद्यमान हैं—

१—भगवान् चित्रगुप्त के वंशज 'ब्रह्मकायस्थ गौडब्राह्मण'।

२—ऋषिपुत्र ब्राह्मण।

पिता के देहान्त होने पर सनातन विधि से जब श्राद्ध किया जाता है, तो श्राद्ध के दिनों में केवल भगवान् चित्रगुप्त एवं यमराज को प्रसन्न करने के लिये ही उपासना की जाती है। श्राद्ध के दिनों में गरुड़पुराण के प्रेतकल्प का पाठ किया जाता है। इस पुराण में भगवान् चित्रगुप्त तथा यमराज के शक्ति एवं स्वरूपों का वर्णन दिया गया है। प्राणियों की गति क्या होती है, इसका विस्तार से वर्णन दिया गया है।

ब्राह्मणों के श्राद्ध में एकादशा के दिन [११ वें दिन] महापात्र ब्राह्मण को खिलाने तथा ब्राह्मण को दान देने का नियम है। चित्रगुप्त वंशीय ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मणों को महापात्र का कार्य करके दान ग्रहण करना चाहिये, ये उत्तम रीति होगी। ऐसा उड़ीसा में ब्रह्मकायस्थ आज भी करते हैं, उड़ीसा में महापात्र नाम के ब्राह्मण कायस्थ ही हैं, जो स्वयं को कर्णम् 'कर्ण' ब्राह्मण कहते हैं।

× × ×

'आदि शंकराचार्य' के परमगुरु 'गौडपाद' गौडब्राह्मण थे

महर्षि पातंजलि
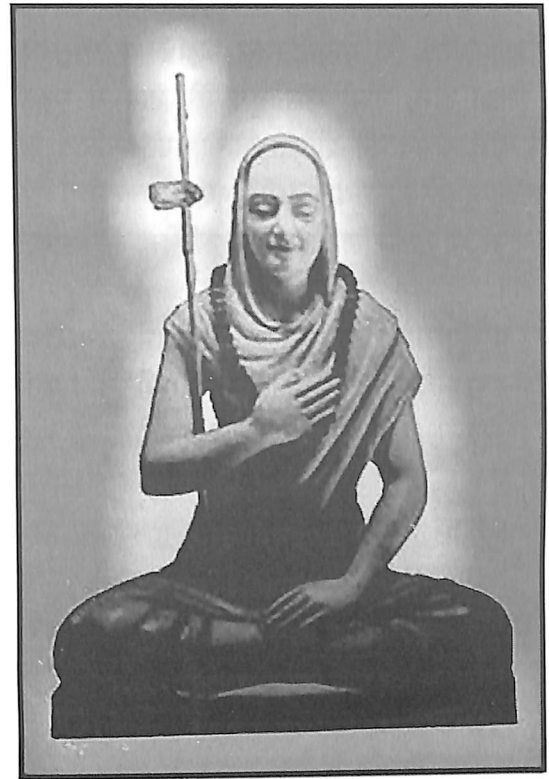
आदि शंकराचार्य के परम्गुरु 'गौडपाद'

'आदि शंकराचार्य' के गुरु 'गोविन्दपाद' थे। गोविन्दपाद के गुरु 'गौडपाद' थे अर्थात आदि शंकराचार्य के परमगुरु गौडपाद थे। आचार्य गौडपाद वेदान्त को जानने वाले 'कलियुग' में प्रथम व्यक्ति माने गये हैं। आचार्य गौडपाद 'गौडब्राह्मण' थे। इनका जन्मस्थल हस्तिनापुर के आस-पास के क्षेत्र को माना गया है। 'आचार्य गौडपाद' महर्षि पातंजलि के शिष्य थे।

लोकोक्ति है कि **गौडोत्तम 'आचार्य गौडपाद'** तथा **द्रविडोत्तम 'आदि शंकराचार्य'** हैं।

पातंजलि ऋषि शेष रूप थे इसलिये यह अपने शिष्यों को शिक्षा देते समय सामने नहीं आते थे। यह पर्दे के पीछे से अपने शिष्यों को शिक्षित करते थे। महर्षि पातंजलि ने अपने शिष्यों को आदेश दिया था कि वह कभी भी उन्हें नहीं देखेगें। एक बार उत्सुकता वश उनके शिष्यों ने छिद्र से उन्हें देख लिया। शेषरूप महर्षि पातंजलि का सहस्त्र सिर तथा सहस्त्र जिह्वा देखकर उनके शिष्य भयभीत हो गये। महर्षि पातंजलि ने भी समझ लिया कि मेरे शिष्यों ने मुझे देख लिया है तब उन्होंने अपने शिष्यों को बुलाकर इस सत्यता को पूछा शिष्यों ने स्वीकार किया कि उन्होंने चोरी से गुरूदेव को देखा है। तब महर्षि पातंजलि ने गुरूआज्ञा के उल्लघंन का दण्ड देते हुये उन शिष्यों को शाप से भस्म कर डाला।

संयोग से इस घटना के पूर्व ही महर्षि का एक शिष्य बाहर चला गया था। उसने लौटने पर अपना अपराध स्वीकार किया। उसे महर्षि पातंजलि ने गुरूआज्ञा के उल्लघंन का दण्ड देते हुये ब्रह्मराक्षस हो जाने का शाप दिया, तत्क्षण वह शिष्य ब्रह्मराक्षस हो गया। उस शिष्य ने अपने गुरू का दण्ड स्वीकार करते हुये महर्षि पातंजलि से कहा! हे गुरूदेव मैने आपका दण्ड स्वीकार किया है, कृपया मुझे इस दण्ड से मुक्त होने का उपाय भी बतायें। तब महर्षि पातंजलि ने कहा! जिस दिन तुम किसी को दीक्षित करोगे तथा वेदान्त की शिक्षा दोगे, उसी क्षण तुम मेरे शाप से मुक्त हो जाओगे। इसी ब्रह्मराक्षस ने वेदान्त की शिक्षा लेने के लिये गोविन्दपाद को दीक्षित किया। गोविन्दपाद को दीक्षित करते ही महर्षि पातंजलि द्वारा शापित उनका शिष्य शाप से मुक्त हो गया।

महर्षि पातंजलि के शापित शिष्य जो शाप से ब्रह्मराक्षस हो गया था। वही शिष्य परम्पूज्य 'गौडपाद' जी थे।

परम्पूज्य 'गौडपाद' कलियुग में वेदान्त को जानने वाले प्रथम गुरू कहे गये हैं। 'गौडपाद' ने 'गोविन्दपाद' को तथा गोविन्दपाद जी ने 'आदि शंकराचार्य' को वेदान्त की शिक्षा दी।

आदि शंकराचार्य के परम्गुरू परम्पूज्य 'गौडपाद' थे। यह 'गौडब्राह्मण' थे।

× × ×

कल्कि अवतार देवपुत्र गौडब्राह्मण कुल में होना है

भगवान् विष्णु ने राक्षसों को नष्ट करने के लिये **त्रेतायुग में राम** तथा **द्वापरयुग में कृष्ण** के रूप में अवतार लिया। इन दो अवतारों में ध्यान देने योग्य बात यह है कि यह दोनों अवतार **देवकुल** में हुये हैं। त्रेतायुग में **राम** ने **सूर्यदेव** के वंश में जन्म लेकर राक्षसों का संहार किया वहीं द्वापरयुग में **कृष्ण** ने **चन्द्रदेव** के वंश में जन्म लेकर राक्षसों का संहार किया। राक्षसों के संहार के लिये अवतरित **राम** तथा **कृष्ण** दोनों ही **क्षत्रियवर्ण के देवकुल** से थे।

राक्षसों का संहार करके सनातनधर्म को स्थापित करने के लिये भगवान् विष्णु को अन्तिम अवतार **कल्कि** के रूप में लेना है। यह अवतार **'उच्च ब्राह्मण कुल'** अर्थात **देवकुल ब्राह्मण में होना है। कल्किपुराण** में **कलयुग** का लक्षण बताया गया है तथा **इस युग में धर्म की रक्षा करने वाले ब्राह्मणों का आचरण किस प्रकार का होगा यह भी बताया गया है।** जो निम्न है—

कुतर्कवादबहुला धर्मविक्रयिणोऽधर्माः। वेदविक्रयिणो ब्रात्या रसविक्रयिणस्तथा॥ २५॥
मांसविक्रयिणः क्रूराः शिश्नोदरपरायणाः। परदाररता मत्ता वर्णसङ्करकारकाः॥ २६॥

कलियुग में ब्राह्मण कुतर्क और विवाद करनेवाले, धर्म को बेचने वाले, उचित समय पर संस्कार न होने से अधर्मी, वेद को बेचने वाले, **संस्कारहीन** और घी तैल आदि रस को बेचने वाले॥ २५॥ मांस विक्रेता, **क्रूर,** स्त्री संभोग और पेट भरने में ही मग्न, परस्त्रियों के प्रेमी, मद्यप, **वर्णसङ्कर सन्तान उत्पन्न करने वाले**॥ २६॥

ह्रस्वाकाराः पापसाराः शठा मठनिवासिनः। षोडशाब्दायुषः श्यालबान्धवा नीचसङ्गमाः॥ २७॥
विवादकलहक्षुब्धाः केशवेशविभूषणाः। कलौ कुलीना धनिनः पूज्या वादर्धुपिका द्विजाः॥ २८॥

ठिगने, पाप को बड़ी वस्तु मानने वाले, शठ, मठों को घर बनाने वाले, सोलह वर्ष की परमायु वाले, सालों को भाई मानने वाले, **नीचों का सङ्ग करने वाले**॥ २७॥ विवाह और कलह करके चित्त में मलिनता रखने वाले, केश और वेष की सजावट रखने वाले कलियुगी ब्राह्मण धनवान् होने से कुलीन जाने जाते हैं और जो ब्राह्मण ब्याज की आजीविका करते हैं, वे बड़े प्रतिष्ठित माने जाते हैं॥ २८॥

सन्यासिनो गृहासक्ता गृहास्थास्त्वविवेकिनः। गुरुनिन्दापरा धर्मध्वजिनः साधुवञ्चकाः॥ २९॥
प्रतिग्रहरताः शूद्रा परस्वहरणादराः। द्वयोः स्वीकारसमुद्वाहः शठे मैत्री वदान्यता॥ ३०॥

कलियुग में सन्यासी घर बनाकर रहनेके अनुरागी, गृहस्थ, अविचारी, गुरुजनों के निन्दक, धर्म का चिन्ह मात्र धारण करने वाले तथा साधु का स्वाँग भरकर लोगों को ठगने वाले होंगे॥ २९॥ शूद्र प्रतिग्रह लेने वाले और पराये धन को हरने के उत्साही होंगे, वर कन्या का आपस में स्वीकार कर लेना ही विवाह माना जायगा, शुद्रों के साथ मित्रता होगी॥ ३०॥

प्रतिदाने क्षमाऽशक्तौ विरक्तिकरणाक्षमे। वाचालत्वञ्च पाऽिडत्ये यशोऽर्थे धर्मसेवनम्॥ ३१॥
धनाढ्यत्वञ्च साधुत्वे दूरे नीरे च तीर्थता। सूत्रमात्रेण विप्रत्वं दण्डमात्रेण मस्करी॥ ३२॥

बदले में कोई वस्तु देना ही दानीपना होगा, **अशक्त होना क्षमा कहलायेगी**, कुछ न कर सकने वाले वैराग्यवान होंगे, बहुत वकवाद करना पण्डिताई गिनी जायेगी और प्रशंसा पानेके लिये लोग धर्मका सेवन करेंगे॥ ३१॥ धनवान् पुरुष साधु माने जायँगे दूर का जल ही तीर्थ माना जायगा, **कण्ठ में जनेऊ मात्र होने से ही ब्राह्मण कहलायेगा, और हाथ में दण्डमात्र होने से ही संन्यासी कहलायेगा**॥ ३२॥

अल्पशस्या वसुमती नदीतीरेरेऽवरोपिता। स्त्रियो वेश्यालापमुखाः स्वपुंसा त्यक्तमानसाः॥ ३३॥

परान्नलोलुपा विप्राश्चाण्डाल गृहयाजकाः। स्त्रियो वैधव्यहीनाश्च स्वच्छन्दाचरणप्रियाः॥ ३४॥
चित्रवृष्टिकरा मेघा मन्दसस्या च मेदिनी। प्रजाभक्षा नृपा लोकाः करपीड़ाप्रपीड़िताः॥ ३५॥

(कल्किपुराण, अध्याय-१)

पृथ्वी पर अन्न थोड़ा उत्पन्न होगा और बहुधा नदी के तटपर ही खेती बोई जायेगी कुलीन स्त्रियाँ वेश्याओं के समान बातचीत करने में प्रसन्न होंगी, और अपने-अपने पतिमें मन नहीं लगायेंगी॥ ३३॥ ब्राह्मण पराये अन्नके लोभी होंगे, और चाण्डालों के घर यज्ञ करायेंगे, स्त्रियाँ विधवा होकर विधवाधर्म का पालन नहीं करेंगी, किन्तु स्वेच्छाचारिणी होने में प्रसन्न रहेंगी॥ ३४॥ मेघ विचित्र वर्षा करेंगे, पृथ्वी पर अन्न थोड़ा होगा, राजा प्रजा को पीड़ा देंगे और प्रजा के पुरुष कर से अत्यन्त पीडित होंगे॥ ३५॥

तच्छ्रुत्वा पुण्डरीकाक्षो ब्रह्माणमिदगब्रवीन्।
शम्भले विष्णुयशसो गृहे प्रादुर्भवाम्यहम्। सुमत्यां मातरि विभो! कन्यायां त्वन्निदेशतः॥ ४॥
चतुर्भिर्भ्रातृभिर्देव! करिष्यामि कलिक्षयम्। भवन्तो बान्धवा देवाः स्वांशेनावतरिष्यथ॥ ५॥
इयं मम प्रिया लक्ष्मीः सिंहले सम्भविष्यति।
बृहंद्रथस्य भूषस्य कौमुद्यां कमलेक्षणा। भार्य्यायां मम भार्यैषा पद्मा नाम्नी जनिष्यति॥ ६॥

पुण्डरीकाक्ष विष्णु भगवान् ने ब्रह्माजी की इस बात को सुनकर उनसे कहा कि—हे विभो! आपके कहने से **सम्भल नामक ग्राम** में विष्णुयश ब्राह्मण के घर सुमति नामक ब्राह्मण कन्या के गर्भ से अवतार लूँगा॥ ४॥ हे ब्राह्मन्! मैं अपने चार भ्राताओं को साथ लेकर कलियुग का नाश करूँगा, हे देवताओं! तुम भी अपने-अपने अंश से उत्पन्न होकर मेरे बन्धु बनोगे॥ ५॥ **यह मेरी प्रिया कमल की समान नेत्रवाली लक्ष्मी बृहद्रथ राजा की कौमुदी नाम की रानी के गर्भ से जन्म धारण करेगी और पद्मा नाम से प्रसिद्ध होगी**॥ ६॥

तदा रामः कृपो व्यासो द्रौणिर्भिक्षुशरीरिणः। समायाता हरिं द्रष्टुं बालकत्वमुपागतम्॥ २५॥
तानायतान् समालोक्य चतुरः सूर्यसन्निभान्। हृष्टरोमा द्विजवरः पूजयाञ्चक ईश्वरान्॥ २६॥

उस समय राम, कृपाचार्य, व्यास और अश्वत्थामा यह सब ब्राह्मणों का रूप धारण करके बालाभाव को प्राप्त हुए कल्किरूप श्रीहरि का दर्शन करने को आये॥ २५॥ **ब्राह्मणों में श्रेष्ठ विष्णुयश** ने सूर्य की समान चारों श्रेष्ठ ब्राह्मणों को आया हुआ देख कर पुलकित शरीर हो प्रार्थना और पूजा की॥ २६॥

कल्केर्ज्येष्ठास्त्रयः शूराः कविप्राज्ञसुमन्त्रकाः। पितृमातृप्रियकरा गुरुविप्रप्रतिष्ठिताः॥ ३१॥

कल्कि भगवान् के पहिले उनसे बड़े तीन भ्राता और उत्पन्न हुए थे, उन तीनों के नाम कवि, प्राज्ञ और सुमन्त्र थे, तीनों परम शूर और गुरु का तथा पिता माता का प्रिय कार्य करने वाले थे, सम्पूर्ण गुरु और ब्राह्मण इनकी प्रशंसा करते थे॥ ३१॥

पितोवाच—

ब्राह्मण्यां ब्राह्मणजातो गर्भाधानादिसंस्कृतः। सन्ध्यात्रयेण सावित्रीपूजाजपपरायणः॥ ४२॥
तपस्वी सत्यवान् धीरो धर्मात्मा त्राति संसृत्तिम्। विष्णवर्चनमिदं ज्ञात्वा सदानन्दमयो द्विजः॥ ४३॥

पिताने कहा—जो ब्राह्मण से ब्राह्मणीयें उत्पन्न होकर गर्भाधान आदि संस्कारों से संस्कृत होता है तीनों सन्ध्याओं में गायत्री का जप और पूजन करता है, जो तपस्वी, सत्यवादी, धैर्यवान और धर्मात्मा होता है वह विष्णु भगवान् के पूजन की विधि को जानकर सर्वदा आनन्दमय रहता है तथा अन्य प्राणियों की संसार सागर से रक्षा करता है॥ ४२-४३॥

पुत्र उवाच-

कुत्रास्ते स द्विजो येन तारयत्यखित्वं जगत्। सन्मार्गेण हरिं प्रीणन् कामदोन्धा जगत्त्रये॥ ४४॥

यह सुनकर पुत्रने कहा—जो सन्मार्ग में स्थित होकर विष्णु भगवान् को प्रसन्न करता है जो त्रिलोकी के मनोरथों को पूर्ण करता है और जो इस सम्पूर्ण जगत् का उद्धार करता है वह ब्राह्मण कहाँ है?॥ ४४॥

पितोवाच-

कलिना बलिना धर्मघातिना द्विजपातिना। निराकृता धर्मरता गता वर्षान्तरान्तरम्॥ ४५॥
ये स्वल्पतपसो विप्राः स्थिताः कलियुगान्तरे। शिश्नोदरभृतोऽधर्मनिरता विरतक्रियाः॥ ४६॥

(कल्किपुराण, अध्याय-२)

यह सुनकर पिता ने कहा, कि **जो धर्मात्मा ब्राह्मण हैं वे इस समय ब्राह्मद्वेषी, धर्मनाशक बलवान् कलियुग से तिरस्कार पाकर भारतवर्ष से अन्यत्र चले गये हैं**॥ ४५॥ जो थोड़ी तपस्या वाले हैं वे ब्राह्मण कलियुग के अधिकार में हैं परंतु वे मैथुन और पेट भरने में तत्पर, **अधर्म करने में आसक्त,** वैदिक कर्मों से रहित, **पापात्मा, दुराचारी तेजोहीन, और शूद्रों की सेवा करने वाले हो गये हैं, वे इस कलियुग में अपनी रक्षा नहीं कर सकते॥ ४६॥**

सिंहले च प्रियां पद्मां धर्मान् संस्थाषयिष्यसि॥ ९॥
ततो दिग्विजये भूषान् धर्महीनात् कलिप्रियान्। निगृह्य बौद्धान् देवापिं मरुञ्च स्थापयिष्यसि॥ १०॥

(कल्किपुराण, अध्याय-३)

सिंहलद्वीप में प्रिया पद्मा के साथ विवाह करके सनातनधर्म की स्थापना करोगे॥ ९॥ फिर तुम दिग्विजय करते हुए धर्महीन कलियुग प्रिय राजाओं का पराजय करके और बौद्ध धर्मावलम्बी पुरुषों का नाश करके और देवापि और मरु को राज्य पर स्थापन करोगे॥ १०॥

☞ कलियुगी राक्षसों एवं बौद्धधर्म का नाश करके पुनः सनातनधर्म को स्थापित करने के लिये भगवान् विष्णु सम्भल नामक ग्राम में [सम्भल नामक ग्राम मुरादाबाद के पास स्थित है] श्रेष्ठब्राह्मण कुल में जन्मलेकर कल्कि नामक ब्राह्मण के रूप में अवतरित होंगे। इस अवतार में यह पापी ब्राह्मण अर्थात ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर शूद्रों के समान आचरण वाले व्यक्तियों का भी नाश करेंगे। अब प्रश्न यह उठता है कि श्रेष्ठब्राह्मण कुल कौन सा है।

आईये इस गम्भीर विषय पर विचार करें। क्रमशः —

सनातन धर्म के ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य वर्ण में देवपुत्र तथा ऋषिपुत्र विद्यमान् हैं–

चित्रगुप्तवंशीय ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मण (देवपुत्र) **ऋषिपुत्र ब्राह्मण**
सूर्यवंशीय क्षत्रिय (मरीचि ऋषि के वंशज) **चन्द्रवंशीय (अत्रि ऋषि के वंशज)** **अन्य क्षत्रिय**
विश्वकर्मावंशीय वैश्य **अन्य वैश्य**
शूद्र

उपर्युक्त सनातनियों की कुलगत श्रेष्ठता पौराणिक एवं शास्त्रोचित है। ब्रह्मकायस्थ सहित सभी सनातनियों की श्रेष्ठता जानें—

१० ऋषि—भगवान् ब्रह्मा के **१० अलग-अलग अङ्गों से** उत्पन्न हुये, **अतः १ ऋषि—भगवान् ब्रह्मा के दशांश हुये,** जबकि भगवान् चित्रगुप्त—**भगवान् ब्रह्मा की काया [सर्वाङ्ग शरीर] से** उत्पन्न हुये, **अतः भगवान् चित्रगुप्त—भगवान् ब्रह्मा के पूर्णांश हुये।**

सनातनधर्म में विद्यमान ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मण एवं ऋषि ब्राह्मण की श्रेष्ठता अपने पूर्वज के अनुसार है अर्थात **चित्रगुप्तवंशज—चित्रगुप्त जैसी और ऋषिवंशज—ऋषि जैसी श्रेष्ठता को प्राप्त किये हैं।**

मनुस्मृति में लिखा है कि १० वर्ष के ब्राह्मण और १०० वर्ष के क्षत्रिय को पिता-पुत्र जानें, उनमें ब्राह्मण पिता के समान हैं **अर्थात क्षत्रिय से ब्राह्मण १० गुना श्रेष्ठ है।** यथा—

ब्राह्मणं दशवर्षं तु शतवर्षं तु भूमिपम्। पितापुत्रौ विजानीयाद् ब्राह्मणस्तु तयो पिता॥ १३५॥

[मनुस्मृति, अध्याय-२, श्लोक-१३५]

शास्त्रानुसार द्विजों में वैश्य से **१० गुना श्रेष्ठ क्षत्रिय,** क्षत्रिय से **१० गुना श्रेष्ठ ऋषिकुल का ब्राह्मण,** तथा ऋषिकुल के ब्राह्मण से **१० गुना श्रेष्ठ चित्रगुप्तकुल का ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मण है। यही सनातन सत्य है।**

हमारे सनातन धर्म के अनुसार समाज को चार भाग में कुल और ज्ञान के आधार पर विभक्त किया गया है। इन चार वर्णों में से ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य वर्ण में देवपुत्र तथा ऋषिपुत्र के रूप में दो प्रकार के मनुष्य विद्यमान हैं।

विष्णु का अंशावतार राम तथा कृष्ण के रूप में क्षत्रियवर्ण के सूर्यवंशीय तथा चन्द्रवंशीय **देवकुल** में ही हुआ है। इस बार का कल्कि अवतार 'ब्रह्मकायस्थ गौडब्राह्मणों' के **देवकुल** से ही होना है। इस अवतार द्वारा कलियुग से अधर्म नष्ट करना है।

कलियुग में भी कायस्थ विकार मुक्त होकर धर्म, सत्य एवं ज्ञान के मार्ग पर चल रहे हैं। इन कायस्थों ने स्वयं को आज भी ज्ञान दायक पठन-पाठन तक ही केन्द्रित कर रखा है। व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये यह शूद्रों के सेवा में लिप्त नहीं हैं। इन्होंने 'निम्नस्तरीय (नीच कर्म), अधर्म एवं अपराध कर्म' से स्वयं को विमुख किया हुआ है, इसलिये यही कायस्थ धर्म की रक्षा करने में सक्षम हैं।

इसका प्रमाण धर्म एवं ज्ञान सहित बंगाल पर २०३८ वर्ष तक तथा कश्मीर पर २०५५ वर्ष तक निष्कण्टक शासन है।

पुराणों में भगवान् के १० प्रमुख अवतारों का उल्लेख मिलता है। जिनमें **प्रथम ४ मत्स्य, कूर्म, वाराह तथा नृसिंह** मनुष्येत्तर योनियों में हुए हैं। शेष मनुष्य योनि में है, यह सभी अवतार **देवकुल** से हुए हैं—

वामनावतार—वामन अवतार में भगवान् ने देवताओं की माता अदिति के पुत्र के रूप में जन्म लिया।

परशुरामावतार—इनके पितामह (दादा) ऋषि ऋचिक थे। ऋषि ऋचिक का विवाह सत्यवती नाम की स्त्री से हुआ। इनसे ऋषि जमदग्नि उत्पन्न हुये। ऋषि जमदग्नि का विवाह रेणुका नाम की स्त्री से हुआ। इनसे पाँच पुत्र रमण्यवान्, सुषेण, वसु, विश्वासु तथा परशुराम उत्पन्न हुये।

परशुराम की मातामही (दादी) **सत्यवती चन्द्रवंशीय** तथा माता **रेणुका सूर्यवंशीय** क्षत्रिय थीं। इस प्रकार परशुराम के निर्माण में आधा **'देवअंश'** ही था। यथा—

☞ परशुराम की मातामही (दादी)-**सत्यवती "चन्द्रवंशीयक्षत्रिय"** थीं। यथा—

तस्य सत्यवतीं कन्यामृचीकोऽयचत द्विजः। वरं विसदृशं मत्वा गाधिर्भार्गवमब्रवीत्॥ ५॥
एकतः श्यामकर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसाम्। सहस्रं दीयतां शुल्कं कन्यायाः कुशिका वयम्॥ ६॥
इत्युक्तस्तन्मतं ज्ञात्वा गतः स वरुणान्तिकम्। आनीय दत्त्वा तानश्वानुपयेमे वराननाम्॥ ७॥

(श्रीमद्भागवतमहापुराण, द्वितीयखण्ड, अध्याय-५, श्लोक ५-७)

गाधि की कन्या का नाम सत्यवती था।

☞ परशुराम की माता-**रेणुका "सूर्यवंशीयक्षत्रिय"** थीं। यथा—

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रेणुर्नाम नराधिपः। तस्य कन्या महाभागा कामली नाम रेणुका॥ ३८॥
रेणुकायां तु कामल्यां तपोविद्यासमन्वितः। आर्चीको तनयामास जामदग्न्यं सुदारुणम्॥ ३९॥
सर्वविद्यानुगमं श्रेष्ठं धनुर्वेदस्य पारगम्। रामं क्षत्रियहन्तारं प्रदीप्तमिव पावकम्॥ ४०॥

(श्रीहरिवंशपुराण, अध्याय-२७, श्लोक ३८-४०)

इक्ष्वाकुवंश में रेणु नाम के एक राजा थे।

रामावतार—दशरथनन्दन **राम-सूर्यवंशीय क्षत्रिय** थे। यह भी **देवकुल** था।

कृष्णावतार—देवकीनन्दन **कृष्ण-चन्द्रवंशीय क्षत्रिय** थे। यह भी **देवकुल** था।

बुद्धावतार—यह शाक्यवंश के थे। विष्णुपुराण में इस कुल को सूर्य का वंश कहा गया है। यह भी **देवकुल** था।

बिना **देवअंश** के अवतार सम्भव नहीं है।

कल्कि अवतार—यह अवतार **देवकुल वाले ब्राह्मण** के घर होना है। **ब्राह्मणों में, देवकुल "ब्रह्मकायस्थ गौडब्राह्मणों" का है।** अतः इस कलियुग का कल्कि अवतार ब्रह्मकायस्थ गौडब्राह्मणों के कुल से ही होना है।

कल्किपुराण में लिखा है कि कल्कि की अवतार **ब्राह्मण कुल** में होगा। ब्रह्मकायस्थ कुल-ब्राह्मण कुलों में देवकुल है, इसका वर्णन आप पीछे पढ़ चुके हैं। कल्किपुराण के निम्न श्लोक पर ध्यान दें—

तच्छ्रुत्वा पुण्डरीकाक्षो ब्रह्माणमिदगब्रवीन्।
शम्भले विष्णुयशसो गृहे प्रादुर्भवाम्यहम्। सुमत्यां मातरि विभो! कन्यायां त्वन्निदेशतः॥४॥

पुण्डरीकाक्ष विष्णु भगवान् ने ब्रह्माजी की इस बात को सुनकर उनसे कहा कि—हे विभो! आप के कहने से **सम्भल नामक ग्राम** में **विष्णुयश "ब्राह्मण" के घर सुमति नामक "ब्राह्मणी कन्या" के गर्भ से अवतार लूँगा**॥४॥

☞ कल्कि पुराण के अनुसार इस बार का कल्कि अवतार **उत्तम ब्राह्मण कुल अर्थात ब्रह्मकायस्थगौड ब्राह्मणों** के यहाँ होना सुनिश्चित है।

भगवान् शिव तथा भगवान् चित्रगुप्त के देवपुत्र
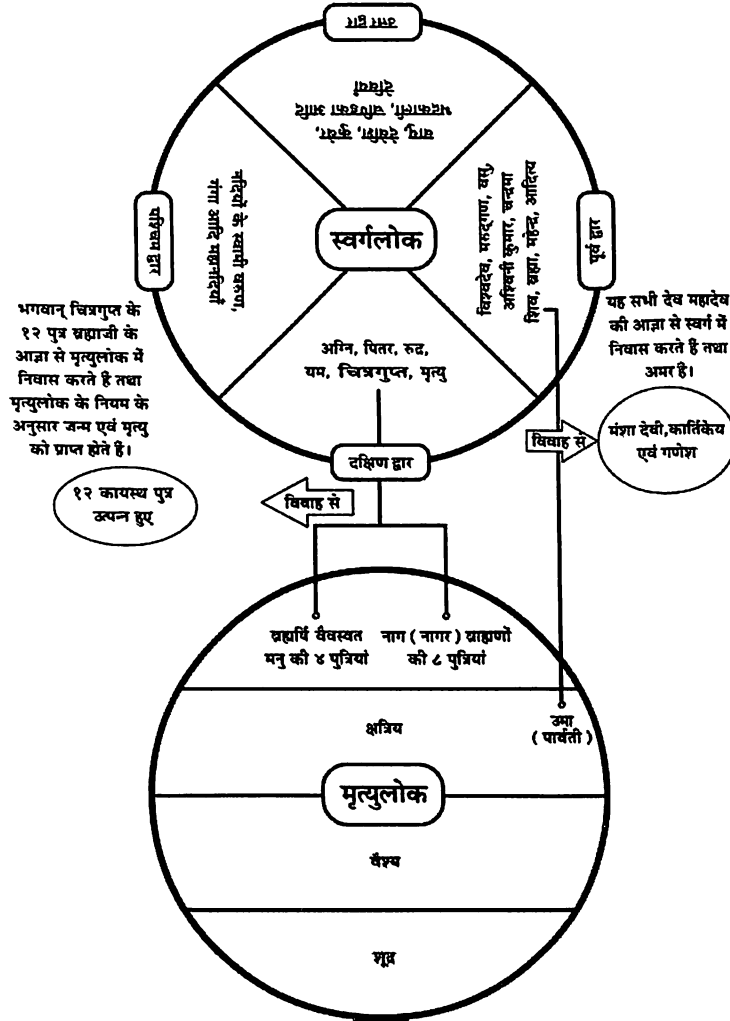
संदर्भ:—शिवमहापुराण, कोटिरुद्रसंहिता, अध्याय-८ एवं **पद्मपुराण**, उत्तरखण्ड, कायस्थानांसमुत्पत्ति।

भगवान् शिव-स्वर्ग के पूर्व द्वार पर निवास करते हैं। भगवान् शिव का विवाह मृत्युलोक में जन्मी राजा हिमालय की पुत्री पार्वतीजी से हुआ था। इनसे कार्तिकेय एवं गणेश का जन्म हुआ भगवान् शिव के यह संतान देवपुत्र कहलाते हैं तथा महादेव की आज्ञा से स्वर्ग में निवास करते हैं।

भगवान् चित्रगुप्त-स्वर्ग के दक्षिण द्वार पर निवास करते हैं और यमलोक के धर्माधिकारी के रूप में स्थापित हैं। इनका विवाह भी मृत्युलोक में जन्मी १२ ब्राह्मणी स्त्रियों से हुआ था। इनसे उत्पन्न १२ पुत्र भी देवपुत्र कहलाते हैं। भगवान् ब्रह्मा की आज्ञा से यह मृत्युलोक में निवास करते हैं।

भगवान् शिव के सन्तान तथा भगवान् चित्रगुप्त के सन्तान 'देवपुत्र' कहलाते हैं।

शिव तथा चित्रगुप्त के देवपुत्रों की उत्पत्ति एक समान है।

× × ×

भगवान् शिव तथा भगवान् चित्रगुप्त के पुत्रों की उत्पत्ति एक समान है

भगवान् शिव के पुत्रों की उत्पत्ति और भगवान् चित्रगुप्त के पुत्रों की उत्पत्ति दोनों ही एक समान है। शिव एवं चित्रगुप्त स्वर्ग के देवता हैं इन दोनों देवों का विवाह मृत्युलोक में जन्मी कन्याओं के साथ हुआ था। शिव का विवाह मृत्युलोक में जन्मी राजा हिमालय की पुत्री पार्वती से हुआ था। यह आज भी शिव के साथ स्वर्ग में विद्यमान हैं। इनसे भगवान् कार्तिकेय एवं भगवान् गणेश का जन्म हुआ था।

इसी प्रकार चित्रगुप्त का विवाह मृत्युलोक में जन्मी ब्रह्मर्षि वैवस्वत मनु तथा नाग (नागर) ब्राह्मणों की पुत्रियों से हुआ था। ये आज भी चित्रगुप्त के साथ यमलोक में स्थित अपने महल में विद्यमान हैं। इनसे १२ कायस्थों का जन्म हुआ था। १२ ब्रह्मकायस्थों को स्वयं भगवान् ब्रह्मा एवं देवी सावित्री ने मृत्युलोक में ऋषियों को संस्कार हेतु दिया। इसका वर्णन आप पीछे पढ़ चुके हैं। यह आश्चर्यजनक किन्तु सत्य है इसी प्रकार कुछ अन्य चमत्कारिक सत्य है। जैसे—

१. स्वर्ग के देव शिव का विवाह मृत्युलोक में जन्मी पार्वती स्त्री के साथ होना।
२. स्वर्ग के देव चित्रगुप्त का विवाह मृत्युलोक में जन्मी ऋषिकुलीन स्त्रियों के साथ होना।
३. कामधेनु गाय का होना।
४. ब्रह्मास्त्र का होना।
५. मेघनाद का देवराज इन्द्र पर विजय प्राप्त करना।
६. युधिष्ठिर का सशरीर यमलोक जाना।
७. भीष्म का इच्छा मृत्यु को प्राप्त होना।
८. देवताओं के द्वारा पाण्डु के पाँच पुत्रों (पाण्डवों) का उत्पन्न होना।

यह सब पौराणिक घटनाएँ पूर्णतया सत्य है। इन पर प्रश्नचिन्ह लगा कर कुतर्क करने वाला मनुष्य पूर्णतया अधर्मी है। बिना वेदों, पुराणों तथा उपनिषदों को पढ़े ही उन पर किसी भी प्रकार का कुतर्क करना अत्यन्त ही अधर्म का कार्य है। ऐसा अधर्मी मनुष्य ईश्वरीय दण्डों को अवश्य ही भोगता है।

× × ×

वर्ण व्यवस्था कायस्थों के ननिहाल की देन है

वर्ण व्यवस्था कायस्थों के ननिहाल की देन है। **इस मनवतंर में वर्ण व्यवस्था के जन्मदाता वैवस्वतमनु हैं। वैवस्वत मनु ने अपने चार पुत्रियों का विवाह भगवान् चित्रगुप्त से किया था।** इसका वर्णन पिछले अध्याय 'कायस्थानांसमुत्पत्ति' के श्लोक संख्या ९ में दिया गया है।

पाठक गण! आप यह जान लें कि कोई भी ब्राह्मण जब भी पूजा करता है या कराता है तो संकल्प में कायस्थों के मातामह (नाना) वैवस्वतमनु का नाम लिये बिना नहीं कराता है—

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णु: श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य ब्रह्मणोऽह्नि द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमनुऽन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भारतवर्षे आर्यावर्तैकदेशे गोरखपुर नगरे शाहपुर क्षेत्रे (अविमुक्तवाराणसीक्षेत्रे आनन्दवने महाश्मशाने गौरीमुखे त्रिकण्टकविराजिते) २०७३ वैक्रमाब्दे विश्वासुसंवत्सरे चित्रमासे शुक्लपक्षे पूर्णिमा तिथौ गुरूवासरे सायंकाले श्रीहर्ष नामक गोत्रे मनोज कुमार श्रीवास्तव शर्माहं ममोपात्तदुरितक्षयद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं श्रीचित्रगुप्तदेवस्य पूजनं करिष्ये।

वैवस्वतमनु के चार पुत्रियों के पुत्र **श्रीवास्तव, सूर्यध्वज, निगम** एवं **कुलश्रेष्ठ** कायस्थ गौडब्राह्मण नाम से विख्यात हैं।

× × ×

भारतीय संविधान के निर्माता ब्राह्मण

स्वतंत्र भारत के संविधान के निर्माता ब्राह्मण ही रहे हैं। दिनांक ०९-१२-१९४६ से भारतीय संविधान के निर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ। इस कार्य का प्रारम्भ श्री जे० बी० कृपलानी ने किया। **दिनांक ०९-१२-१९४६ को ही संविधान सभा का अस्थाई सभापति एक कायस्थ ब्राह्मण डा० सच्चिदानन्द सिन्हा को बनाया गया।**

दिनांक १०-१२-१९४६ को संविधान सभा के स्थाई सभापति के लिये प्रस्ताव लाया गया।

दिनांक ११-१२-१९४६ को **संविधान सभा का स्थाई सभापति सर्वसम्मति से एक कायस्थ ब्राह्मण डा० राजेन्द्र प्रसाद को चुना गया। इन्हीं की अध्यक्षता में हमारा संविधान तैयार किया गया था।**

दिनांक २५-०१-१९४७ को संविधान सभा का उपसभापति सर्वसम्मति से एक बंग ब्राह्मण डा० एच० सी मुखर्जी को चुना गया।

संविधान के निर्माण के लिये कुल १६ प्रमुख समितियाँ बनाई गई थीं तथा उन समितियों का दायित्व उनके अध्यक्षों को दिया गया था। इसका वर्णन नीचे दिया जा रहा है—

समिति	अध्यक्ष
०१—**नियम एवं प्रक्रिया निर्मात्री समिति**	- **डा० राजेन्द्र प्रसाद★**
०२—**संचालन समिति**	- **डा० राजेन्द्र प्रसाद★**
०३—**वित्त एवं कार्मिक समिति**	- **डा० राजेन्द्र प्रसाद★**
०४—**राष्ट्रीय झन्डे की तदर्थ समिति**	- **डा० राजेन्द्र प्रसाद★**
०५—राज्य समिति	- जवाहरलाल नेहरू★
०६—संघ शक्ति समिति	- जवाहरलाल नेहरू★
०७—संघ संविधान समिति	- जवाहरलाल नेहरू★
०८—परिचय पत्र समिति	- कृष्णास्वामी अय्यर★
०९—आवास समिति	- बी पद्भि सीतारामैय्या★
१०—**कार्य व्यवहार समिति**	- **के० यम० मुंशी★**
११—संविधान सभा के कार्यों की समिति	- जी० वी० मावलंकर
१२—मूल अधिकार, अल्पसंख्यक, जनजाति एवं वंचित क्षेत्र समिति	- सरदार बल्लभभाई पटेल
१३—**मूल अधिकार, अल्पसंख्यक, समिति**	- जे० बी० कृपलानी
१४—पूर्वोत्तर सीमावर्ती जनजातीय क्षेत्र एवं आसाम निष्क्रमित एवं आंशिक निष्क्रमित क्षेत्र समिति	- **गोपी नाथ वारदोलाई★**
१५—आसाम के अतिरिक्त निष्क्रमित क्षेत्र समिति	- ए० बी० ठक्कर★
१६—प्रारूप समिति	- डा० भीमराव अम्बेडकर

जिन अध्यक्षों के नाम के आगे ★ लगा हुआ है वह ब्राह्मण कुल के हैं। इन १६ समितियों में से १२ अध्यक्ष ७५% ब्राह्मण कुल के थे तथा इन १२ में से ६ अध्यक्ष ३७% जिनका नाम मोटे अक्षरों में है वह देवपुत्रब्राह्मण थे शेष ऋषिपुत्र ब्राह्मण थे। महत्वपूर्ण कार्यों का दायित्व इन ब्राह्मणों को ही दिया गया था।

उपर्युक्त महापुरूषों के कठिन परिश्रम से हमारा संविधान २ वर्ष ११ महीना १८ दिन में बनकर तैयार हो गया। जिसे पूर्णतया २६ जनवरी १९५० में लागू कर दिया गया। इन महापुरूषों सहित हमारे संविधान को तैयार करने में कुल २९९ लोगों ने अपना योगदान किया था। जिसकी सारिणी नीचे दी जा रही है—

–मद्रास–

१. ओ० वी० अलगेसन
२. श्रीमती अम्मु स्वामी नाथन
३. एम० अनन्तशैयनम अयंगर
४. मोतुरी सत्यनारायण
५. श्रीमती दक्षायणी वेलायुदन
६. श्रीमती दुर्गा बाई
७. **काला वेंकट राव**
८. एन० गोपाल स्वामी अय्यंगर
९. **डी० गोविन्द दास**
१०. रेवेरेन्ट जेरोम् डिसूजा
११. पी० कक्कन
१२. के० कामराज
१३. **वी० सी० केशवराव**
१४. टी० टी० कृष्णमाचार्य
१५. अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर
१६. एल० कृष्ण स्वामी भारती
१७. पी० कुन्हीरामन
१८. **एम० तिरामुला राव**
१९. **वी० आई० मुनीस्वामी पिल्लई**
२०. एम० ए० मुथिआह चेट्टीयार
२१. **वी० नाडीमुथु पिल्लई**
२२. एस० नागप्पा
२३. पी० एल० नरसिम्हा राजू
२४. बी० पट्टाभी सीतारमैय्या
२५. सी० पेरुमलस्वामी रेड्डी
२६. टी० प्रकाशन
२७. एस० एच० प्रेटर
२८. महाराज बोबिली
२९. आर० के० शन्मुखम चेट्टी
३०. टी० ए० रामलिंगम चेट्टियार
३१. रामनाथ गोयनका
३२. ओ० पी० रामस्वामी रेड्डीयार
३३. एन० जी० रंगा
३४. नीलम संजीव रेड्डी
३५. के० सन्थानम
३६. बी० शिवा राव
३७. कल्लूर सुब्बा राव
३८. यू० श्रीनिवासा मल्लैय्या
३९. पी० सुब्रयम
४०. सी० सुब्रमण्यम
४१. वी० सुब्रमण्यम
४२. एम० सी० वीरबाहु
४३. पी० एम० वाल्यूद पाणी
४४. ए० के० मेनन
४५. टी० जे० एम० विल्सन
४६. मोहम्मद इस्माइल साहिब
४७. के० टी० एम० अहमद इब्राहिम
४८. महमूद अली बेग साहिब बहादुर
४९. बी० पॉकर साहिब बहादुर

–बाम्बे–

१. बालचन्द्र महेश्वर गुप्त
२. मिसेज हंसा मेहता
३. हरी विनायक पाटेसकर
४. भीमराव अम्बेडकर
५. जोसफ आल्बन डी० सौजा
६. कन्हैयालाल नानाभाई देसाई
७. केशवराव मारुति राव जेध
८. खन्दूभाई कसनजी देसाई
९. बाल गंगाधर खेर
१०. एम० आर० मसानी
११. **के० एम० मुंशी**
१२. नरहर विष्णु गाड्गिल
१३. एस० नीजलिंगप्पा
१४. एस० के० पाटील
१५. रामचन्द्र मनोहर नलवदे
१६. आर० आर० दिवाकर
१७. शंकरराव देव
१८. जी० वी० मावलंकर
१९. बल्लभ भाई जे० पटेल
२०. अब्दुल कादर मोहम्मद शेख
२१. ए० ए० खान

–पश्चिमी बंगाल–

१. **मनमोहन दास**
२. **अरुण चन्द्र गुहा**
३. **लक्ष्मीकांत मित्रा**
४. मिहिर लाल चटोपाध्याय
५. **सतीशचन्द्र सामंत**
६. **सुरेश चन्द्र मजूमदार**
७. **उपेन्द्र नाथ बर्मन**
८. प्रभुदयाल हिमत्सिंगका
९. **बसंत कुमार दास**
१०. **मिसेज रेणुका राय**
११. एच० सी० मुखर्जी
१२. **सुरेन्द्र मोहन घोष**
१३. श्याम प्रसाद मुखर्जी

१४. अरी बहादुर गुरुंग
१५. आर० ई० प्लेटेल
१६. **के० सी० नियोगी**
१७. रगहिब एहसान
१८. जैसमुद्दीन अहमद
१९. नजीरुद्दीन अहमद
२०. अब्दुल हमीद
२१. अब्दुल हलीम गुजनवी

–यूनाईटेड प्रोविन्स–

१. अजीत प्रसाद जैन
२. अलगू राय शास्त्री
३. बालकृष्ण शर्मा
४. वंशीधर मिश्रा
५. भगवान् दीन
६. दामोदरस्वरूप सेठ
७. दयाल दास भगत
८. धर्म प्रकाश
९. ए धर्मदास
१०. आर० वी० धुलेकर
११. फिरोज गाँधी
१२. गोपाल नारायण
१३. कृष्णचन्द्र शर्मा
१४. गोविन्द बल्लभ पंत
१५. गोविन्द मालवीय
१६. हरगोविन्द पंत
१७. हरिहरनाथ शास्त्री
१८. हृदयनारायण कुंजरू
१९. जसपत राय कपूर
२०. जगन्नाथ बक्श सिंह
२१. जवाहर लाल नेहरू
२२. जोगेन्द्र सिंह
२३. जुगल किशोर
२४. **ज्वाला प्रसाद श्रीवास्तव**
२५. बी०वी० केशकर
२६. श्रीमती कमला चौधरी
२७. कमलापति तिवारी
२८. जे०बी० कृपलानी
२९. महावीर त्यागी
३०. खुर्शीद लाल
३१. मसूर्या दीन
३२. **मोहनलाल सक्सेना**
३३. पद्मपत सिंहानिया
३४. फूल सिंह
३५. परागीलाल
३६. श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी
३७. पुरुषोत्तम दास टंडन
३८. हीरावल्लभ त्रिपाठी
३९. रामचन्द्र गुप्ता
४०. **सिब्बललाल सक्सेना**
४१. सतीशचन्द्र
४२. जॉन मैथ्यी
४३. श्रीमती सुचिता कृपलानी
४४. सुंदर लाल
४५. वेंकटेश नारायण तिवारी
४६. मोहनलाल गौतम
४७. विश्वम्भर दयाल त्रिपाठी
४८. बेगम एजा रसूल
४९. हैदर हुसैन
५०. हजरत मोहनी
५१. अब्दुल कलाम आजाद
५२. मोहम्मद इस्लाम खान
५३. रफी अहमद किदवई
५४. मोहम्मद हिफजूर्र रहमान

–पूर्वी पंजाब–

१. बक्शी तेकचंद
२. जयराम दास दौलतराम
३. ठाकुरदास भार्गव
४. बिक्रमलाल सोंधी
५. यशवंत राय
६. रणवीर सिंह
७. अचिन्तराम
८. नंदलाल
९. सरदार वलदेव सिंह
१०. ज्ञानी गुरुमुख सिंह
११. सरदार हुकुम सिंह
१२. सरदार भोपिन्दर सिंह मान

–विहार–

१. **अमीय कुमार घोष**
२. अनुग्रह नारायण सिन्हा
३. बनारसी प्रसाद झुनझुनवाला
४. भागवत प्रसाद
५. बोनीफेस लाकड़ा
६. ब्रिजेश्वर प्रसाद
७. चन्द्रिमा राम
८. केटी शाह
९. देवेन्द्र नाथ सावंत
१०. दीप नारायण सिन्हा
११. गुप्तानाथ सिंह
१२. **यदुवंश सहाय**
१३. **जगत नारायण लाल**
१४. जगजीवन राम
१५. जयपाल सिंह
१६. कामेश्वर सिंह (दरभंगा)
१७. कामेश्वरी प्रसाद यादव
१८. महेश प्रसाद सिंन्हा
१९. **कृष्ण बल्लभ सहाय**
२०. रघुनन्दन प्रसाद
२१. **डॉ० राजेन्द्र प्रसाद**
२२. रामेश्वर प्रसाद सिन्हा

२३. रामनारायण सिंह
२४. सच्चिदानन्द सिन्हा
२५. सारंग धर सिन्हा
२६. सत्यनारायण सिन्हा
२७. विनोदानन्द झा
२८. **पी०के० सेन**
२९. श्रीकृष्ण सिन्हा
३०. श्री नारायण मेहता
३१. **श्यामनंदन सहाय**
३२. हुसैन इमान
३३. सैयद जफर इमाम
३४. लतीफुर्र रहमान
३५. मोहम्मद ताहीर
३६. तजामुल हुसैन

–सैण्ट्रल प्रोविन्स एण्ड बियर्र–

१. रघु वीरा
२. राजकुमारी अमृत कौर
३. बी० ए० मण्डलोई
४. बृजलाल नंदलाल बियानी
५. ठाकुर चिड़ीलाल
६. सेठ गोविन्द दास
७. **हरि सिंह गौड**
८. हरि विष्णु कामथ
९. हेमचन्द्र जगोबाजी खण्डेकर
१०. घनश्याम सिंह गुप्ता
११. लक्ष्मण श्रवण भटकर
१२. **पंजाब राव शमराव देशमुख**
१३. रविशंकर शुक्ला
१४. आर० के० सिधवा
१५. **शंकर त्र्यम्बक धर्माधिकारी**
१६. फ्रेंक एन्थोनी
१७. काजी सैयद करीमुद्दीन

–आसाम–

१. निबरन चंद लस्कर
२. **धरणीधर बासु**
३. **गोपीनाथ बारदोलोई**
४. जे० जे० एम० निकल्स राव
५. **कुलधर चालिहा**
६. **रोहिणी कुमार चौधरी**
७. अब्दुल रउफ

–उड़ीसा–

१. **बी० दास**
२. **विश्वनाथ दास**
३. कृष्ण चंद गजपति नारायण देव
४. हरेकृष्णा महताब
५. लक्ष्मीनारायण साहु
६. लोकनाथ मिश्रा
७. **नंदकिशोर दास**
८. **राजकृष्णा बोस**
९. **शान्तनु कुमार दास**

–देलही–

१. देशबन्धु गुप्ता

—अजमेर मरवाड़—

१. मुकुट बिहारी लाल भार्गव

–कुर्ग–

१. सी० एम० पूनचा

–मैसूर–

१. के० चेंगलार्या रेड्डी
२. टी० सिद्दालिंगैय्या
३. एच० आर० गुरुव रेड्डी
४. एच० वी० कृष्णामूर्ती राव
५. के० हनुमन्तैय्या
६. एच० सिद्दा विरप्पा
७. टी० चान्नियेय्या

–जम्मू कश्मीर–

१. शेख मुहम्मद अब्दुल्लाह
२. मोतीराम बैग्रा
३. मीरजा मोहम्मद अफजल बेग
४. मौलाना मोहम्मद सइद मसूदी

–त्रवण कोच्चिन–

१. **ए० थानु पिल्लई**
२. आर० शंकर
३. **पी० एस० नटराज पिल्लई**
४. मिसेज अन्नी मसकारेन
५. के० एन० मुहम्मद
६. पी० टी० कक्कू
७. **पी० गोविन्द मेमन**

–मध्य भारत–

१. वी० एस० सारस्वत
२. **बृजराज नारायन**
३. गोपाल कृष्ण विजय वरगैया
४. **राम सहाय**
५. कुसुम कान्त जैन
६. राधावल्लभ विजय वरगैया
७. सीताराम एस० जाजू

–सौराष्ट्र–

१. **बलवन्त राव गोपालजी मेहता**
२. जयसुखलाल हाथी
३. अमृतलाल विट्ठलदास ठक्कर
४. चिम्मनलाल चाकुभाई शाह
५. समलदास लक्ष्मीदास गांधी

–राजस्थान–

१. वी० टी० कृष्णामाचार्यी
२. हरीलाल शास्त्री
३. सरदार सिंहजी
४. जसवन्त सिंह जी

५. राजबहादुर
६. मणिक्यलाल वर्मा
७. गोकुल लाल आसव
८. रामचन्द्र उपाध्याय
९. **बलवन्त सिंह मेहता**
१०. दलेल सिंह
११. जयनारायण वैश्य

—पटियाला और पूर्वी पंजाब राज्यसंघ—

१. रंजीत सिंह
२. सुचीत सिंह
३. भगवंत राव

—बम्बई राज्य—

१. विनायकराव बालशंकर वैद्य
२. बी० एन० मुन्नावली
३. गोकुलभाई दौलत राम भट्ट
४. **जीवराज नारायण मेहता**
५. गोपालदास ए० देसाई
६. **पारनलाल ठाकुर लाल मुंशी**
७. बी० एच० खारडेकर
८. रतनप्पा भरमपप्पा कुम्भार

—ओड़िसा राज्य—

१. लाल मोहन पति
२. एन० माधव राव
३. राजकुमार
४. **शारंगधर दास**
५. युधिष्ठिर मिश्रा

—सेण्ट्रल प्रोविन्स राज्य—

१. आर० एल० मालवीय
२. किशोरीमोहन त्रिपाठी
३. रामप्रसाद पोटई

—यूनाईटेड स्टेट प्रोविन्स स्टेट—

१. बी० एच० जैदी
२. कृष्ण सिंह

—मद्रास स्टेट—

१. वी० रमैय्या

—विन्ध्य प्रदेश—

१. अवध प्रताप सिंह
२. शम्भुदास शुक्ल
३. रामसहाय तिवारी
४. मन्नुलालजी द्विवेदी

—कूच बिहार—

१. हेमन्त सिंह के० माहेश्वरी

—त्रिपुरा और मणिपुर—

१. **गिरजा शंकर गुहा**

—भोपाल—

१. लाल सिंह

—कुच्छ—

१. भवानी अर्जुन खिमजी

—हिमाचल प्रदेश—

१. वाई० एस० परमार

संदर्भ—http://parliamentofindia.nic.in/ls/debates/facts.htm

लेखक का निवेदन

भगवान् चित्रगुप्त के १२ देवपुत्रों—मांडव्य (निगम), गौड, श्रीहर्ष (श्रीवास्तव), श्रेणीपति (कुलश्रेष्ठ), वाल्मीकि, वसिष्ठ (अस्थाना), सौरभ (अम्बष्ट), दालभ्य (कर्ण/कर्णम), सुखसेन (सक्सेना), भट्ट (भटनागर), सूर्यध्वज तथा माथुर। आप पिछले 'उत्तरखण्ड' में दिये गये, अपनी पौराणिक उत्पत्ति की सत्यता एवं अन्य व्याख्यान को पढ़कर जान चुके होंगे कि आप पितामह ब्रह्मा के पौत्र तथा भगवान चित्रगुप्त के पुत्र हैं। सर्वोच्च देव भगवान ब्रह्मा के कुल से उत्पन्न होने के कारण पुराणों ने आपको भारत के १० श्रेष्ठ ब्राह्मणों में स्थान दिया है। समाज में आपने इस श्रेष्ठता को अपने ज्ञान से सिद्ध किया है, और आज भी करते आ रहे हैं।

आप उत्तर भारत के १० श्रेष्ठ ब्राह्मणों— उत्तर भारत के (पंचगौड) गौड, सारस्वत, कान्यकुब्ज, उत्कल, मैथिल तथा दक्षिण भारत के (पंचद्रविड) द्रविड, तैलंग, कर्णाटक, महाराष्ट्र, गुर्जर ब्राह्मणों में से एक 'ब्रह्मकायस्थ गौडब्राह्मण' हैं।

अतः समाज में आप अपना परिचय 'ब्रह्मकायस्थ गौडब्राह्मण' या 'ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मण' के रूप में दें तथा अपने जातिगत पत्रावली में भी यही लिखें।

कायस्थ बन्धु! आप निगम, गौड, श्रीवास्तव, कुलश्रेष्ठ, वाल्मीकि, अस्थाना, अम्बष्ठ, कर्ण, सक्सेना, भटनागर, सूर्यध्वज तथा माथुर इत्यादि जिस कुल से हों वही उपनाम लिखें जिससे कि आपकी संख्या समाज में दृष्टिगत हो—

जैसे—यदि आप निगम हों तो निगम, गौड हों तो गौड, श्रीवास्तव हों तो श्रीवास्तव, कुलश्रेष्ठ हों तो कुलश्रेष्ठ, वाल्मीकि हों तो वाल्मीकि, अस्थाना हों तो अस्थाना, अम्बष्ट हों तो अम्बष्ट, कर्ण हों तो कर्ण, सक्सेना हों तो सक्सेना, भटनागर हों तो भटनागर, सूर्यध्वज हों तो सूर्यध्वज तथा माथुर हों तो माथुर ही लिखें।

अन्य उपनाम कदापि न लिखें क्योंकि अन्य उपनाम लिखने पर भ्रम की स्थिति उत्पन्न होकर आपकी मूल पहचान विलुप्त होती जा रही है तथा आपकी संख्या कितनी है, यह दृष्टिगत नहीं हो पा रही है।

चांद्रसेनीयकायस्थोत्पत्ति

चान्द्रसेनीय कायस्थ राजा चन्द्रसेन के वंशज हैं। परशुराम की आज्ञा से दालभ्य ऋषि ने इन्हें क्षत्रिय से कायस्थ ब्राह्मण बनाया था। इन कायस्थों की उत्पत्ति त्रेतायुग की है। यह प्रकरण इस बात का प्रमाण है कि चित्रगुप्तवंशीय ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मण सत्युग से ही विद्यमान हैं। चित्रगुप्तवंशीय ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मण सत्युग से ही विद्यमान थे तभी तो परशुराम ने चन्द्रसेन के पुत्र को क्षत्रिय से कायस्थ ब्राह्मण बनाया था। इसका वर्णन विस्तार से आगे दिया जा रहा है—

स्कन्द उवाच–

एवं हत्वार्जुनं रामः संधाय निशिताञ्छरान्। अन्वधावत्स तान्हंतुं सर्वानेवासुरान्नृपान्॥ १ ॥
तदा रामभयात्सर्वे नानावेषधरानृपाः। स्वस्वस्थानं परित्यज्य यत्र कुत्र गताः किल॥ २ ॥
सगर्भा चंद्रसेनस्य भार्या दाल्भ्याश्नमं गता। ततो रामः समायातो दाल्भ्याश्रममनुत्तमम्॥ ३ ॥
पूजितो मुनिना रामो भोजनार्थं समुद्यतः। भोजनावसरे तत्र गृहीत्वापोशन करे॥ ४ ॥
रामस्तु याचयामास हृदिस्थं स्वमनोरथम्। तस्मै प्राददृधिः कामं भार्गवाय महात्मने॥ ५ ॥
याचयामास रामाद्वै कामं दाल्भ्यो महामुनिः। ततो द्वौ परमप्रीतौ भोजनं चक्रतुर्मुदा॥ ६ ॥
भोजनांते महाभागावासने चोपविश्य। तांबूलानंतरं दाल्भ्यः पप्रच्छ भार्गवं प्रति॥ ७ ॥
यत्त्वया प्रार्थित देव तत्त्व शंसितुमर्हसि।

स्कन्द ने कहा—इस प्रकार परशुराम तीक्ष्ण बाणों से सहस्त्रार्जुन का वध करके असुर राजाओं को मारने के लिए दौड़े तब वे राजा परशुराम के भय से अनेक वेश धारण करके अपने-अपने स्थान को छोड़कर इधर-उधर चले गये। उस समय राजा चन्द्रसेन की गर्भवती पत्नी दालभ्यमुनि के आश्रम पर गयी हुई थी। संयोग से परशुराम भी दालभ्यमुनि के आश्रम पर आ पहुँचे। दालभ्यमुनि द्वारा पूजा किये जाने के बाद परशुराम भोजन के लिए प्रस्थान किए। भोजन के समय हाथ में जल एवं भोजन लेकर दालभ्यमुनि ने परशुराम से अपने लिए मनोकामना माँगी। दालभ्यमुनि के याचना को परशुराम ने स्वीकार किया और इस प्रकार दोनों ने प्रसन्नता पूर्वक भोजन किया। भोजन के पश्चात् ताम्बूल आदि को सेवन करने के बाद दालभ्यमुनि ने परशुराम से कहा-हे देव आपने जो कुछ कहा है उसका मैं पालन करूँगा।। १-७।।

राम उवाच–

तवाश्रमे महाभाग सगर्भा स्त्री समागता॥ ८ ॥
चंद्रसेनस्य राजर्षेस्तां देहि त्वं महामुने। ततो दाल्भ्यः प्रत्युवाच ददामि तव वांछितम्॥ ९ ॥
यन्मया प्रार्थितं देव तन्मे दातुं त्वमर्हसि। ततः स्त्रियं समाहूय चंद्रसेनस्य वै मुनिः॥१०॥
भीता सा चपलापांगी कंपमाना समागता। रामाय प्रददौ तत्र ततः प्रीतमना अभूत्॥११॥

परशुराम ने कहा—हे मुनि! आप के आश्रम में कोई गर्भवती स्त्री आयी हुई है, वह राजा चन्द्रसेन की पत्नी है, उसे मुझको सौंप दें। इसपर दालभ्यमुनि ने कहा-हे भगवन् मैं आप के इच्छानुसार इसे सौंप दूँगा। किन्तु मैंने पहले जो आपसे माँगा है, वह वर मुझे दीजिए। इसके बाद दाल्भ्य मुनि ने चन्द्रसेन की पत्नी को बुलाया वह चञ्चल नेत्रवाली काँपती हुई परशुराम के पास आयी और उसे सौंपने पर परशुराम अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ ८—११ ॥

राम उवाच–

यत्त्वया प्रार्थितं विप्र भोजनावसरे पुरा। तन्मे शंस महाभाग ददामि तव वांछितम्॥१२॥

परशुराम ने कहा—हे मुनि! भोजन के समय में मुझसे जो आपने माँगा था, मैं उसको स्वीकार करता हूँ तथा आप के इच्छानुसार उसे देता हूँ॥ १२॥

दाल्भ्य उवाच–

प्रार्थितं यन्मया पूर्वे राम देव जगद्गुरो। स्त्रीगर्भस्थममुं बालं तन्मे दातुं त्वमर्हसि॥ १३॥
ततो रामोऽब्रवीद्दाल्भ्य यदर्थमिह चागतः। क्षत्रियांतकरश्चाहं तत्त्व याचितवानिस॥ १४॥
प्रार्थितं च त्वया विप्र कायस्थं गर्भमुत्तमम्। तस्मात्कायस्थ इत्याख्या भविष्यति शिशोः शुभा॥ १५॥
जायमानस्तदा बालः क्षात्रधर्मा भविष्यति। दुष्टाद्वै क्षात्रधर्मात्तु त्वं वारयितुमर्हसि॥ १६॥
ततो दाल्भ्यः प्रत्युवाच भार्गवं प्रति हर्षितः। मा कुरुष्वात्र संदेहं दुर्बुद्धिर्न भविष्यति॥ १७॥
एवं रामा महाबाहुर्हित्वा तं गर्भमुत्तमम्। निर्जगामाश्रमात्तस्मात्क्षत्रियांतकरः प्रभुः॥ १८॥

दालभ्य ने कहा—हे जगद्गुरू परशुराम! मैंने जो पहले आपसे मनोकामना माँगी थी, उसे देते हुए इस स्त्री के गर्भ में स्थित बालक को मुझे देने की कृपा कीजिए। इस पर परशुराम ने कहा कि मेरा नाम क्षत्रियान्तक है। क्षत्रियों को समाप्त करने के लिए ही मैं आया हूँ, आप ने मुझसे यही माँग लिया। हे ब्राह्मण इस स्त्री के गर्भ (काया) में स्थित होने के कारण यह बालक जन्म लेने के पश्चात् कायस्थ नाम से विख्यात होगा। यद्यपि यह बालक जन्म से क्षत्रिय कुल का होगा, परन्तु आप इसे दुष्ट क्षत्रिय धर्म से रोक दीजिएगा। इस पर दालभ्यमुनि ने प्रसन्न होकर कहा-हे परशुराम! आप आश्वस्त रहें, यह बालक दुष्ट बुद्धिका नहीं होगा। इस प्रकार क्षत्रियों का नाश करने वाले परशुराम उस गर्भस्थ शिशुको छोड़कर अपने आश्रम चले गये।। १३—१८।।

स्कंद उवाच–

कायस्थ एष उत्पन्नः क्षत्रिण्यां शत्रियात्ततः। रामाज्ञया स दाल्भ्येन क्षत्रधर्माद्बहिष्कृतः॥ १९॥
दत्तः कायस्थधर्मोऽस्म चित्रगुप्तस्य यः स्मृतः। तदंशजाश्च कायस्था दाल्भ्यगोत्रास्ततोऽभवन्॥ २०॥
दालभ्योपदेशतस्ते वै धर्मिष्ठाः सत्यवादिनः। सदाचाररता नित्यं रता हरिहरार्चने॥ २१॥
देवविप्रपितृणां वै ह्यतिथीनां च पूजकाः। यज्ञदानतपः शीला व्रततीर्थरताः सदा॥ २२॥

(चांद्रसेनीयकायस्थोत्पत्तिमाहस्कांदेरेणुकामाहात्म्य)

स्कन्द ने कहा—दालभ्यमुनि ने क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होते हुए भी परशुराम की आज्ञानुसार चन्द्रसेन के पुत्र को क्षत्रिय धर्म से बहिष्कृत कर दिया। राजा चन्द्रसेन के पुत्र को दालभ्य मुनि ने **'चित्रगुप्त के कायस्थ धर्म'** (पठन-पाठन, यजन-याजन, दान-प्रतिग्रह तथा वेद-पुराणों के लेखन) का उपदेश दिया, जो बाद में 'चन्द्रसेनी कायस्थ' नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसी समय से चन्द्रसेन के वंशज दालभ्य गोत्र के हो गये। दालभ्यमुनि के उपदेश से वे सत्यवादी, धार्मिक, सदाचारी और निरन्तर विष्णु और शिव के उपासना में तत्पर हो गये। देवता, ब्राह्मण, पितरों एवं अतिथियों की पूजा करने वाले तथा यज्ञ, दान तथा तपस्या में तत्पर रहने वाले तथा निरंतर व्रत एवं तीर्थों का भ्रमण करते हुए समय यापन करने लगे॥ १९-२२॥

☞ उपर्युक्त चन्द्रसेनी कायस्थ पूर्वकाल में क्षत्रिय वंश के थे जिसे परशुराम की आज्ञा से दालभ्य ऋषि ने क्षत्रिय धर्म से चित्रगुप्त के कायस्थ ब्राह्मण के धर्म में परिवर्तित कर दिया था, तभी से यह चन्द्रसेनी कायस्थ के नाम से जाने जाते हैं। यद्यपि यह चित्रगुप्त वंशीय कायस्थ नहीं हैं तथापि इनका कार्य भी कायस्थों की भाँति पठन-पाठन, यजन-याजन, दान-प्रतिग्रह एवं वेद-पुराणों के लेखन के कार्य से सम्बन्धित है। यह मध्यप्रदेश के दक्षिणी

हिस्से से लेकर महाराष्ट्र क्षेत्र के आस-पास बहुतायत पाये जाते हैं तथा इनकी स्थिति अत्यन्त सबल है।

यह घटना परशुराम के काल की तथा त्रेतायुग के प्रारम्भ की है उस काल में भी चित्रगुप्तवंशीय कायस्थ विद्यमान थे, तभी तो परमपूज्य महाबली, महाज्ञानी परशुराम ने चन्द्रसेन के पुत्र को चित्रगुप्तवंशीय 'कायस्थ' के धर्म का पालन करने का आदेश दालभ्य ऋषि को दिया था।

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि परशुराम यह जानते थे कि राजा चन्द्रसेन देवपुत्र हैं। राजा चन्द्रसेन चन्द्रवंशीय क्षत्रिय हैं इसीलिये इनके पुत्र को भी देवकुल ब्रह्मकायस्थ ब्राह्मण में समाहित करने की आज्ञा दालभ्य ऋषि को दी थी। परशुराम ने धर्म का ध्यान रखते हुये चन्द्रसेन के 'देवपुत्र' को ब्रह्मकायस्थ देवपुत्रों के साथ जोड़ा था। इस प्रकार चाहे वह चित्रगुप्तवंशीय अथवा चन्द्रसेनीय कायस्थ हों दोनों ही 'देवपुत्र' हैं।

चन्द्रसेनीय कायस्थों के उपनाम—ठाकरे, पठारे, चंद्रसेनी, प्रभु, चित्रे, मथरे, देशपांडे, करोड़े, दोदे, तम्हणे, सुले, राजे, शागले, मोहिते, तुगारे, फड़से, आप्टे, रणदिये, गड़करी, कुलकर्णी, श्राफ, वैद्य, जयवंत, समर्थ, दलवी, देशमुख, मौकासी, चिटणवीस, कोटनिस, कारखनो, फरणीस, दिघे, धारकर, प्रधान इत्यादि।

यह महाराष्ट्र के आस-पास के क्षेत्र में अत्यन्त ही शक्तिशाली स्थिति में हैं।

× × ×

'ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्ड' एवं 'जातिभास्कर' में कायस्थों को अब्राह्मण सिद्ध करने के लिये दिये गये झूठे व्याख्यान का खण्डन

पद्मपुराण के 'कायस्थानांसमुत्पत्ति' में दिये गये कायस्थों के गौरवमूर्ण व्याख्यान को खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई द्वारा प्रकाशित 'ब्राह्मणउत्पत्तिमार्तण्ड' में पं० हरिकृष्ण शास्त्री एवं 'जातिभास्कर' में पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र ने अपनी ओर से झूठा एवं मनगढ़न्त अंश जोड़कर देवपुत्र कायस्थों को नीच सिद्ध करना चाहा है। इन ग्रन्थों में झूठे एवं बेबुनियाद अंश जोड़कर ब्रह्मकायस्थों को नीच कहा गया है।

ब्राह्मण रूप को कलंकित करने वाले हरिकृष्ण शास्त्री ज्वाला प्रसाद मिश्र द्वारा किया गया राक्षसी कुकृत्य आपके समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है। इस राक्षसी कुकृत्य को आपके समक्ष उजागर करने के लिये मैंने जिन ग्रन्थों से उदाहरण दिया है, आप उस सत्यता को उस ग्रन्थ में प्रमाण स्वरूप आज भी देख सकते हैं। 'ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्ड' नाम का एक ग्रन्थ है जो 'खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन बम्बई' द्वारा प्रकाशित है। इस ग्रन्थ में ब्राह्मणों की उत्पत्ति विस्तार से दी गयी है। हस्तलिखित पद्मपुराण के 'कायस्थानांसमुत्पत्ति' अध्याय में विद्यमान यह ६३ श्लोक 'ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्ड' नामक ग्रन्थ में भी विद्यमान हैं। इस ग्रन्थ में यह प्रकरण 'द्वादशगौडब्राह्मणोत्पत्ति' नाम के अध्याय में दिया गया है। इस ग्रन्थ में भी कायस्थों का वर्णन गौड ब्राह्मण के रूप में विद्यमान है।

इस ग्रन्थ के संकलनकर्ता पं० हरिकृष्ण शास्त्री ने मुगल काल में अरबी, फारसी, उर्दू एवं अंग्रेजों के काल में अंग्रेजी (विदेशी भाषा) एवं बीज गणित जैसे अर्न्तराष्ट्रीय विद्या पढ़ने के कारण, ब्राह्मणों को कायस्थों से विमुख करने के लिये, व्यक्तिगत द्वेष से कुछ झूठा प्रकरण जोड़कर समाज को भ्रमित किया है। इस लेखक ने कायस्थों को नीच एवं शूद्र से भी अधम सिद्ध करने के लिए जो झूठा आधार बनाया है उसका विवरण इस प्रकार है—

१. कायस्थ पंचम वर्ण है।

२. चित्रगुप्त वंशीय कायस्थ माण्डव्य ऋषि के शाप से कलियुग में पतित हैं।

३. विदेशी भाषा (अरबी, फारसी, उर्दू तथा अंग्रेजी) एवं बीजगणित (Algebra) पढ़ने के कारण ये कायस्थ संकर, शूद्र एवं पतित हैं।

४. चंक नामक कायस्थ।

इस प्रकरण को गम्भीरता से लेते हुए **सनातन धर्म ट्रस्ट** ने सत्यता को पुराणों एवं स्मृतियों में तलाश कर आपके सम्मुख प्रस्तुत किया है ताकि आप इस सत्यता से अवगत होकर भ्रामक प्रकरण को समझ सकें। साथ ही आप यह भी जान सकें कि ऐसे ही अज्ञानियों द्वारा ब्राह्मण समाज को ब्रह्मकायस्थों से विमुख करने का कुचक्र रचा है। जिसके फलस्वरूप आज कायस्थों से विमुख होकर ब्राह्मण समाज कमजोर हो चुका है।

इस झूठे प्रकरण का खण्डन आगे दिया जा रहा है—

सर्व प्रथम आप यह जान लें कि सम्पूर्ण भारत में १३ प्रकार के ही कायस्थ पाये जाते हैं। १२ तो चित्रगुप्त वंशीय कायस्थ हैं तथा १ चन्द्रसेनीय कायस्थ हैं, जिन्हें परशुराम की आज्ञा से दालभ्य ऋषि ने क्षत्रिय से कायस्थ बनाया था। इसके अतिरिक्त किसी भी ग्रन्थ में अन्य कायस्थों का वर्णन दिया गया हो तो वह असत्य है, क्योंकि भारत में १३ प्रकार के ही कायस्थ ही विद्यमान हैं। यह १३ कायस्थ भारत के सम्पूर्ण प्रदेशों में अपना अलग-अलग उपनाम लिखते हैं, परन्तु सम्पूर्ण भारत में पाये जाने वाले कायस्थ इन्हीं १३ कायस्थों की शाखायें हैं। पुराणों में इन्हीं १३ कायस्थों का वर्णन मिलता है।

१. कायस्थ पंचम वर्ण है–

परिप्राप्तसदाचारः कायस्थः पंचमो मतः॥१४॥

(ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्ड, द्वादशगौड ब्राह्मण उत्पत्ति)

इस ग्रन्थ में संकलनकर्ता ने ब्राह्मण समाज से कायस्थों को अलग करने के लिए पंचम वर्ण का कहा है। यह पूर्णतया असत्य है क्योंकि मनु ने चार वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र बनाया था। जो जातियाँ जिस वर्ण के कर्म को करती थीं, वह उसी वर्ण की कहलाती थीं। कायस्थों ने सदैव ब्राह्मण वर्ण के उच्च कर्म पठन-पाठन का कार्य किया है, फिर भी इन्हें पंचम वर्ण कह कर ब्राह्मण समाज से अलग करने का प्रयास किया गया है।

वर्ण व्यवस्था के स्थापक मनु ने मनुस्मृति में स्पष्ट लिखा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के अतिरिक्त कोई पाँचवाँ वर्ण नहीं है—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः। चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पञ्चमः॥२॥

(मनुस्मृति, दशम अध्याय, श्लोक ४)

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन्हीं वर्णों को द्विज कहते हैं। चौथा एक वर्ण शूद्र है, **पाँचवाँ कोई वर्ण नहीं है।**

☞ जब पंचम वर्ण मनु ने बनाया ही नहीं है तो कायस्थ पंचम वर्ण के कैसे हो गये। यह 'ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्ड' के लेखक हरिकृष्ण शास्त्री की अपनी उपज एवं झूठा वक्तव्य है। यह धर्मसम्मत एवं शास्त्रसम्मत नहीं है।

ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्ड के ही पृष्ठ ५ पर कहा गया है कि गौड ब्राह्मण १२ प्रकार के हैं जो कायस्थ हैं—

गौड़ाश्च द्वादश प्रोक्ताः कायस्थास्तावदेवहि। (ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्ड)

बारह प्रकार के गौडब्राह्मण ही कालान्तर में [अपने पिता कायस्थ (चित्रगुप्त) के नाम से] कायस्थ कहे जाते हैं।

उपर्युक्त श्लोक में लेखक ने स्वयं कहा है कि १२ प्रकार के गौड ब्राह्मण कायस्थ हैं। फिर कायस्थ पंचम वर्ण के कैसे हो गये। इस विवरण से स्पष्ट हो रहा है कि व्यक्तिगत द्वेष एवं संकीर्ण मानसिकता की भावना से संकलनकर्ता ने पंचम वर्ण कह कर कायस्थों को समाज में अलग करने का प्रयास किया है।

इसी प्रकार आप 'कायस्थानांसमुत्पत्ति' अध्याय के श्लोक संख्या ५९ तथा ६० पर ध्यान दें—

एवं दत्त्वा तु तान् पुत्रान् ब्रह्मा लोक पितामहः। उवाच वचनं श्लक्ष्णं ब्रह्मा मधुरया गिरा॥५९॥
पुत्रत्वे पालनीयाश्च लेखकाः सर्वदेव हि। शिखासूत्रधरा ह्येते पटवः साधु संमता॥६०॥

इस प्रकार चित्रगुप्त के सभी पुत्रों को देकर, मधुर एवं सुन्दर वाणी से ब्रह्मा ने कहा, **ऋषि इन पुत्रों को अपने पुत्र के समान पालन करना,** ये लिखने में दक्ष हैं, ये अत्यन्त निपुण हैं, सज्जन हैं, यह कायस्थ सिर पर शिखा (चोटी) एवं सूत्र (यज्ञोपवीत) धारण करने वाले साधु के समान होंगे॥५९—६०॥

उपर्युक्त श्लोक में ब्रह्मा ने ऋषियों को आदेश दिया कि चित्रगुप्त के पुत्रों को अपने पुत्र के समान पालन करना। ब्रह्मा की आज्ञा से ऋषियों ने अपने पुत्रों एवं चित्रगुप्त के पुत्रों को 'ब्राह्मण' के रूप में शिक्षित किया था, तब भी इन कायस्थों को पंचम वर्ण का कहना असत्य एवं अनर्गल टिप्पणी है। कहीं भी कायस्थों के पंचम वर्ण होने का उल्लेख विद्यमान नहीं है।

× × ×

२. चित्रगुप्त वंशीय कायस्थ माण्डव्य ऋषि के शाप से कलियुग में पतित हैं–

'ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्ड' ग्रन्थ के संकलनकर्ता ने चित्रगुप्त वंशीय कायस्थों को नीच एवं शापित सिद्ध करने के लिये अपने विद्वता का दुरुपयोग करते हुए झूठे प्रकरण को तोड़-मरोड़ कर जोड़ दिया है।

इच्छया पुनरुद्धाहमितरः परिवर्जयेत्। शूलारोहनिमित्तेन कायस्थानृषिसत्तमान्॥ ६८॥
मांडव्यस्तान् शशापेदं कोपसंरक्तलोचनः। अल्पोऽपराधो मे जातस्त्वया बहुतरीकृतः॥ ६९॥
वध्यस्तावं धर्मतः शीघ्र पापीयान् भव लेखक। श्रुत्वा शापं चित्रगुप्त ऋषिसेवां चकार ह॥ ७०॥

ऋषिरुवाच–

मम शापस्तु विफलो न कदाचिद्भविष्यति। तथाप्यनुग्रहो मे वै त्वज्जातीनां भविष्यति॥ ७१॥
एवमुक्तोऽपि सेवां वे चित्रगुप्तश्चकारह। कलौ शापौ मया दत्तः सर्वेषां स भविष्यति॥ ७२॥
तेषु सूर्यध्वजा ये वै तेषां धर्मः प्रणश्यति। वैश्यादुच्चतरा वृत्तिर्ब्राह्मणक्षत्रियादधः॥ ७३॥
ब्रह्मशापाभि भूतानां पातित्यं च कलौ ध्रुवम्। वाल्मीकानां कियान् धर्मःस्थास्यत्येवं मुनिश्चयम्॥ ७४॥

(ब्राह्मणउत्पत्तिमार्तण्ड, द्वादशगौडब्राह्मणउत्पत्ति)

इस ग्रन्थ के श्लोक संख्या ६८ से ७४ में कहा गया है कि इतर जो यह पंचम चित्रगुप्त कायस्थ हैं इन्होंने पुनर्विवाह वर्जित करना अब गौडोंकूं और कायस्थोंकूं कलिमें जो शाप भया है सो कहते हैं एक दिन चोरों के सह वर्तमान मांडव्य ऋषिकूं कोई राजाने शूली के ऊपर चढायकर उनका प्रताप देखकर ऋषिकूं तो नीचे उतार दिया॥ ६८॥ तब माण्डव्य ऋषि चित्रगुप्तके पास जायकर कहा कि बाल्य अवस्थामें जो थोड़ा मैने अपराध किया उसका दंड तूने बहुत दिया इस वास्ते॥ ६९॥ हे लेखक! तू पापी हो जा और तू धर्मसे वध योग्य है चित्रगुप्त ऋषिका शाप सुनते त्रास पाकर ऋषिकी सेवा करने लगे॥ ७०॥ तब मांडव्य कहते भए हे चित्रगुप्त! तू सेवा करता है परंतु मेरा शाप विफल कदापि नहीं होनेका तथापि मेरे अनुग्रहसे तेरे ज्ञाति लोकोंकूं शाप फलेगा तेरेकूं नहीं॥ ७१॥ ऐसा कहा तथापि चित्रगुप्त ऋषिकी सेवा करने लगा तब ऋषिने कहा कि तीन युगमें पुण्यात्मा रहेंगे और कलियुगमें सब पापी होवेंगे॥ ७२॥ तथापि चित्रगुप्तने सेवा करी तब ऋषि कहते भए कि तेरे बारह वंश हैं उसमेंसे जो सूर्यध्वजवंश है उनका धर्मनाश पावेगा बाकी सर्वोकी वृत्ति वैश्यवर्णसे ऊँची ब्राह्मण क्षत्रियसे नीची पालन करना॥ ७३॥ ब्राह्मणके शापसे कलिमें पतितपना प्राप्त भया है वाल्मीक ब्राह्मण और कायस्थ उनका कुछ धर्म रहेगा निश्चय करके॥ ७४॥

× × ×

इस व्याख्यान को पढ़कर अत्यन्त ही कष्ट का अनुभव हो रहा है क्योंकि इस विक्षिप्त लेखक ने चित्रगुप्त वंशीय कायस्थों को पापी सिद्ध करने के लिये परमपूज्य चित्रगुप्तदेव एवं मांडव्य ऋषि को भी नहीं छोड़ा है। इसने झूठा प्रकरण जोड़ कर इनका घोर अपमान किया है।

इसके द्वारा लिखा गया उपर्युक्त व्याख्यान मनगढ़न्त एवं पूर्णतया झूठा है।

चित्रगुप्त वंशीय कायस्थों की छवि खराब करने के लिये इस झूठे प्रकरण को जोड़कर इस पतित लेखक ने अपने मानसिक विक्षिप्तता का परिचय दिया है।

☞ सर्व प्रथम ध्यान देने की बात यह है कि मांडव्य ऋषि-ब्रह्माजी के समान शक्ति के नहीं हैं। ये ऋषियों के वंशज हैं, जबकि भगवान् चित्रगुप्त-ब्रह्माजी के प्रतिरूप तथा उनके पूर्णांश से उत्पन्न देव हैं।

ऐसी स्थिति में मांडव्य ऋषि का अपने उच्चदेव तथा अपने नियन्ता को शापित करना क्या सम्भव है? मांडव्य

ऋषि का यमराज को शापित करना सम्भव है क्योंकि यमराज-ब्रह्माजी के अल्प शक्ति से उत्पन्न मरीचि के पौत्र सूर्य के पुत्र हैं। मांडव्य तथा यमराज समान शक्ति के हैं जबकि भगवान् चित्रगुप्त उन दोनों से १० गुने शक्ति के देवता तथा उनके स्वामी हैं। भगवान चित्रगुप्त को विष्णु, ब्रह्मा, शिव तथा इनके परिवार के देवों के अतिरिक्त ऋषिकुल में उत्पन्न किसी भी ऋषि, देवता तथा दानव द्वारा शापित करना सम्भव ही नहीं है।

मांडव्य ऋषि का यह प्रकरण पद्मपुराण में दिया गया है। मांडव्य ऋषि ने 'धर्मराज' (यमराज) को त्रुटिपूर्ण दण्ड देने के कारण शूद्रा की योनि से उत्पन्न होने का शाप दिया था। इसी शाप के कारण धर्मराज द्वापरयुग में शूद्रा के गर्भ से विदुर के रूप में उत्पन्न हुये।

☞ इसमें कहीं भी चित्रगुप्त एवं उनके वंशज कायस्थों के शापित होने का वर्णन नहीं दिया गया है। यह प्रकरण इस ग्रन्थ के अन्त में मूल एवं अनुवाद के साथ दिया जा रहा है। इसे पढ़कर आप स्वयं देख सकते हैं कि संकलनकर्ता ने इन श्रेष्ठ कायस्थों को ब्राह्मण समाज से विमुख करने के लिए अपने विक्षिप्तता का परिचय देते हुए किस तरह पौराणिक सत्यता को तोड़ मरोड़ कर राक्षसी कृत्य किया है।

☞ 'ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्ड' के द्वादशगौडब्राह्मणोत्पत्ति नामक अध्याय में बताया गया है कि माण्डव्य ऋषि के शाप से 'कलयुग' में कायस्थों की वृत्ति वैश्य वर्ण से श्रेष्ठ तथा ब्राह्मण क्षत्रियों से नीची होगी। यह प्रकरण पूर्णतया झूठा, बकवास, बनावटी एवं अनर्गल टिप्पणी है। कायस्थों की वृत्ति सदैव से उच्च थी और आज भी इन कायस्थों की बौद्धिक क्षमता सर्वोपरि है—

स्वामी विवेकानन्द, श्री अरबिन्दो घोष, महर्षि महेश योगी, परमहंस योगानन्द, स्वामी प्रभुपाद, सुभाष चन्द्र बोस, डा० राजेन्द्र प्रसाद, डा० सर्वपल्ली राधा कृष्णन, डा० सम्पूर्णानन्द, रघुपति सहाय 'फिराक', सत्येन्द्र नाथ बोस, डा० जगदीश चन्द्र बसु, डा० शांति स्वरुप भटनागर, डा० प्रभुदयाल भटनागर, मुन्शी प्रेमचन्द्र तथा हरिवंश राय बच्चन जैसे अर्न्तराष्ट्रीय महाविभूतियों को भी कायस्थ जाति ने ही दिया है।

महर्षि मनु के बताये गये सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण कर्म 'पठन-पाठन' को करके इन महान विभूतियों ने अपने श्रेष्ठता को सत्य सिद्ध किया है। यदि कायस्थ जाति माण्डव्य ऋषि द्वारा शापित होती तो उपर्युक्त अर्न्तराष्ट्रीय महाविभूतियाँ श्रेष्ठ कायस्थ से नहीं होतीं।

संकलनकर्ता ने 'माण्डव्य ऋषि' के नाम से झूठा प्रकरण जोड़ कर ऋषि का अपमान करते हुए इन्हें हास्यास्पद बना दिया है साथ ही सम्पूर्ण ब्राह्मण समाज को कलंकित किया है।

× × ×

३. अनेक देश की लिपि लिखने (अरबी, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी इत्यादि) एवं बीजगणित (Algebra) पढ़ने के कारण यह कायस्थ संकर जाति के तथा शूद्र से भी अधम हैं–

इस प्रकरण को लिखकर विक्षिप्त, निकृष्ट एवं अधर्मी संकलनकर्ता ने अपने तुच्छ एवं अधम मानसिकता की सभी सीमायें पार कर दी हैं। इसने मुगल काल में अरबी, फारसी, उर्दू एवं अंग्रजों के काल में अंग्रेजी (विदेशी भाषा) एवं बीज गणित जैसे अर्न्तराष्ट्रीय विद्या पढ़ने के कारण कायस्थ विद्वानों को संकर जाति का तथा शूद्र से भी अधम कह डाला है—

अथ संकरकायस्थानां जातिनिरूपणम्।

अब वर्णसंकर जाति का भेद कहते हैं।

महिष्यवनिता सूनुं वैदेहा यं प्रसयते। स कायस्थ इति प्रोक्तस्तस्य कर्म विधीयते॥ १०९॥

लिपीनां देश जातानां लेखनं ससमाचरेत्। गणकत्वं विचित्रत्वं बीजपाटीप्रभेदतः॥ ११०॥
अधमः शूद्रजातिभ्यः पंचसंस्कारवानसौ। चातुर्वण्यस्य सेवा हि लिपिलेखनसाधनम्॥ १११॥

(ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्ड, द्वादशगौडब्राह्मणोत्पत्ति, ११०-१११)

इनका (संकर कायस्थों का) कर्म अनेक देश की लिपि (विदेश की लिपि) लिखना बीजपाटी गणित (बीज गणित) जानना। शूद्रवर्ण से अधम इनकूं (इनको) पांच संस्कार का अधिकार है चार वर्णकी सेवा करना॥ ११०-१११॥

महर्षिमनु ने मनुस्मृति में ब्राह्मणों के लिये निम्न कर्म बताये हैं—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा। दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥ ८८॥

(मनुस्मृति, अध्याय प्रथम, श्लोक ८८)

ब्राह्मणों के लिये पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना-यज्ञ कराना, दान देना-दान लेना, ये छः कर्म निश्चित किये हैं।

☞ उपर्युक्त मनुस्मृति के श्लोक में बताया गया है कि ब्राह्मण वही है जो पठन-पाठन, यजन-याजन तथा दान-प्रतिग्रह के कर्म को करे। मनुस्मृति में कहीं भी विदेशी भाषाओं के विद्वानों को संकर एवं शूद्र नहीं कहा गया है।

☞ पाठक बन्धु! विदेशी भाषाओं का ज्ञान अत्यन्त ही दुष्कर कार्य है। उच्च स्तर के विद्वान ही अनेक भाषाओं के ज्ञाता हो सकते हैं। कायस्थ सदैव से अनेक भाषाओं के ज्ञाता रहे हैं। डा० राजेन्द्र प्रसाद 'अंग्रेजी', डा० सर्वपल्ली राधा कृष्णन 'अंग्रेजी', रघुपति सहाय 'फिराक' 'अंग्रेजी एवं उर्दू' तथा डा० सम्पूर्णानन्द 'संस्कृत' भाषा के उच्च स्तर के विद्वान थे। यह कायस्थ विद्वान भारत देश के 'गौरव' हैं। इनमें से हमारे देश के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद को 'देश रत्न' का सम्मान भी प्राप्त हो चुका है। इनका जन्मदिन अधिवक्ता दिवस के रूप में मनाया जाता है। हमारे देश ने द्वितीय राष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधा कृष्णन को सर्वोच्च शिक्षक माना है। इन्हीं के जन्मदिन को हमारा देश 'शिक्षक दिवस' के रूप में मनाता है।

भूतपूर्व कायस्थ प्रधानमंत्री पी० वी० नरसिम्हाराव नौ भाषाओं के ज्ञाता थे।

डा० सत्येन्द्र नाथ बोस (बसु), प्रो० जगदीश चन्द्र बोस (बसु) एवं डा० शांति स्वरूप भटनागर विश्व के उच्च स्तर के वैज्ञानिक हैं।

डा० सत्येन्द्र नाथ बोस (बसु) 'गॉड पार्टिकल' के जनक हैं। भौतिक विज्ञान में दो प्रकार के अणु माने गये हैं।

१- बोसोन २- फर्मियान। इनमें से 'बोसोन' सत्येन्द्र नाथ 'बोस' के नाम पर ही है।

डा० सत्येन्द्र नाथ बोस (बसु) ने विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइंस्टीन के साथ मिलकर स्टैटिस्टिक्स (सांख्यिकीय) नामक विषय का निर्माण किया। आज सम्पूर्ण विश्व वैज्ञानिक कार्यों में डा० सत्येन्द्र नाथ बोस (बसु) के बताये हुए मार्ग पर चल रहा है। आज विश्व की सर्वोच्च शोध संस्था नासा 'गॉड पार्टिकल' पर शोध कर रही है। इस शोध को सत्येन्द्र नाथ 'बोस' (बसु) के नाम पर 'हिग्स बोसोन' रखा गया है। यह विश्व में सभी भौतिक विज्ञान विषय के विद्यार्थियों को पढ़ना अनिवार्य है।

प्रो० जगदीश चन्द्र बोस (बसु) ने मनुष्यों एवं पशुओं की भाँति वनस्पतियों में भी सम्वेदनाएें होती हैं। इसे सिद्ध करके सम्पूर्ण विश्व को अचम्भित कर दिया था। यह विश्व में सभी जीव विज्ञान विषय के विद्यार्थीयों को पढ़ना अनिवार्य है।

डा० शांति स्वरूप भटनागर को १९५४ में पद्मविभूषण के सम्मान से सम्मानित किया जा चुका है। इन्होंने

भारत को अन्तरिक्ष कार्यक्रम (स्पेस प्रोग्राम), चुम्बकीय-रसायनिक (मैग्नेटिक कैमेस्ट्री) एवं औद्योगिक रसायन (इन्डस्ट्रीयल कैमेस्ट्री) के क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धि दिलायी है। इनके नाम से आज भी भारत सरकार के तरफ से प्रतिवर्ष वैज्ञानिकों को डा० शांति स्वरूप भटनागर पुरस्कार से पुरस्कृत किया जाता है।

सदैव से ब्रह्मा के पौत्र कायस्थों की बौद्धिक श्रेष्ठता को देख कर सम्पूर्ण विश्व आश्चर्यचकित है। हमारे राष्ट्र के गौरव इन अन्तर्राष्ट्रीय कायस्थ विद्वानों को संकर जाति का तथा शूद्र से भी अधम कहना, निकृष्ठ एवं अधम विचारधारा है।

यदि अन्तर्राष्ट्रीय विद्वानों को संकर एवं शूद्र कहा जाता है तो ब्राह्मणत्व क्या है? क्या मूढ़ एवं अज्ञानी होना ब्राह्मणत्व है? अथवा अन्तर्राष्ट्रीय विद्वान होना ब्राह्मणत्व है? इसका निर्णय आप स्वयं करें!

☞ 'ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्ड' में जिन-जिन ब्राह्मणों का वर्णन दिया है। यह सभी ब्राह्मण आज विज्ञान विषय को पढ़ते समय विदेशी भाषा अंग्रेजी तथा बीज गणित का अध्ययन कर रहे हैं। क्या यह सभी ब्राह्मण भी कायस्थों की भाँति संकर जाति का एवं शूद्र से भी अधम हो गये हैं? सत्यता यह नहीं है। सत्यता तो यह है कि यह सभी ब्राह्मण आज विज्ञान में विदेशी भाषा अंग्रेजी तथा बीज गणित पढ़कर और भी योग्य हो गये हैं। यही कार्य तो पूर्व में कायस्थों ने किया है। फिर यह कायस्थ शूद्र कैसे हो सकते हैं? इसका निर्णय भी आप स्वयं करें!

'ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्ड' ग्रन्थ के संकलनकर्ता हरिकृष्ण शास्त्री ने इन अन्तर्राष्ट्रीय कायस्थ विद्वानों को संकर एवं शूद्र कह कर स्वयं की ही उत्पत्ति पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया है, निश्चित ही ये संकर होगा क्योंकि उस समय भी करोड़ों शुद्ध ब्राह्मण थे। उनमें से किसी ने ऐसा निकृष्ट कार्य नहीं किया। जिस देवता की पूजा से पितृ को मुक्ति मिलती है उनको मांडव्य ऋषि से शापित कहना और उनके अतिप्रतिभाशाली देवपुत्र कायस्थों को संकर-शूद्र इत्यादि कहना पूर्णतया राक्षसी कृत्य है। क्योंकि शुद्ध ब्राह्मण कभी भी अधर्म का कार्य नहीं करता है। इस निकृष्ट अधर्मी ने कायस्थों को मांडव्य ऋषि द्वारा शापित सिद्ध करने के लिए मांडव्य ऋषि का झूठा प्रकरण जोड़कर मांडव्य ऋषि का भी घोर अपमान किया है।

पाठक बन्धु! यह तथ्य अपने संज्ञान में लें कि 'ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्ड' ग्रन्थ के संकलनकर्ता के अनुसार मृत्युलोक में जन्में ऋषि जो मृत्यु को प्राप्त करके भगवान् चित्रगुप्त के द्वारा मुक्त हुए हैं, उनके सन्तान चाहे वह गुणी हों या दुर्गुणी हों 'ब्राह्मण' कहलायेगें और स्वर्ग में स्थित ब्रह्मा के 'पौत्र' एवं ऋषियों के स्वामी चित्रगुप्त के 'देवपुत्र कायस्थ' जो पुराणानुसार 'गौड ब्राह्मण' हैं और अपने ज्ञान रूपी प्रकाश से सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित कर रहे हैं, संकर जाति का एवं शूद्र से भी अधम कहलायेगें। इस लेखक के अनुसार अयोग्य एवं अज्ञानी व्यक्ति ब्राह्मण और अन्तर्राष्ट्रीय विद्वान व्यक्ति संकर जाति का एवं शूद्र से भी अधम कहलायेगें।

क्या यह पुराणोक्त तथा धर्मसंगत लग रहा है? क्या ऐसा ही हमारा धर्म है? क्या महर्षि मनु ने 'मनुस्मृति' में अयोग्य एवं अज्ञानी व्यक्ति को ही ब्राह्मण कहा है?

पिछले 'कायस्थांसमुत्पत्ति' के श्लोक संख्या ९ में बताया गया है कि भगवान् चित्रगुप्त का विवाह वैवस्वत मनु की ४ तथा नागर ब्राह्मणों की ८ कन्याओं से हुआ था। वैवस्वत मनु की उत्पत्ति सत्युग के प्रारम्भ में बतायी गई है। इससे स्पष्ट है कि यह कायस्थ सत्युग से ही विद्यमान हैं।

सत्युग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग में अनेकों ऋषि हुये। ये ऋषि नागर, उत्कल, मैथिल, कायस्थगौड, सारस्वत, कान्यकुब्ज, सरयूपारीण, बारेन्द्र, इत्यादि किस जाति से थे इसका पता नहीं है। परन्तु इन कायस्थों के बुद्धिमता को देखते हुए ऐसा लगता है कि मुगलकाल के पूर्व जितने भी बुद्धिमान ऋषि-महर्षि थे हो सकता है उनमें

से अधिकतर कायस्थ ही रहे हों।

मुगलकाल के पूर्व कायस्थ 'गौडब्राह्मण' के रूप में ही जाने जाते थे इसीलिये इनकी ब्राह्मणों से अलग पहचान नहीं थी। मुगलकाल में अरबी, फारसी तथा उर्दू पढ़ने के कारण इन्हें चिन्हित करके समाज में अलग कर दिया गया, तभी से यह कायस्थ जाति अपनी अलग पहचान लेकर सम्पूर्ण विश्व में विख्यात हैं। इसीलिये मुगलकाल के पूर्व इनका वर्णन कायस्थ गौडब्राह्मण के रूप में मिलता है।

आज करोड़ों की संख्या में कायस्थ सम्पूर्ण विश्व में विद्यमान हैं। ये महज ७०० वर्षों की उपज नहीं हो सकते हैं।

मुगलकाल के पश्चात् कायस्थों के इतिहास को देख लें। अनेकों विद्वान इस जाति से मिल जायेंगे। आज कायस्थ विश्व विख्यात जाति है तथा विश्व के सर्वोच्च्च बुद्धिमान जातियों में से एक है।

कायस्थ जाति सनातन धर्म का गर्व है यदि इन कायस्थों को सनातन धर्म से हटा दिया जाय तो सनातन धर्म में अर्न्तराष्ट्रीय विद्वानों का अभाव हो जायेगा। कायस्थ जिस धर्म में होगें विश्व में उस धर्म का गौरव स्वतः बढ़ जायेगा। इस सत्यता से कोई भी सनातनी नकार नहीं सकता है। इसे अतिश्योक्ति न समझें, यह सत्य है। आप स्वयं अर्न्तराष्ट्रीय विद्वानों एवं महापुरूषों की सारिणी बना लें। उनमें सनातन धर्म के किस जाति से अधिक विद्वान एवं महापुरूष हुये हैं, इसे देख लें इससे स्वतः सब कुछ स्पष्ट हो जायेगा।

× × ×

४. चंक नाम के कायस्थ।

तेषां मध्ये तु ये चंकाः शृण्वंतु तस्य कारणम्॥ ६२॥
गौडदेशे महारण्ये गंगायाश्चोत्तरे तटे। महालक्ष्म्या कृतो यज्ञस्तत्र ये वै वृताः शुभाः॥ ६३॥
चत्वारः परमार्थज्ञा मुख्याः कर्मणि साधवः। तेषां शुश्रूषकास्तत्र लेखकाः कायजाः पुनः॥ ६४॥
ते तु लक्ष्म्याः प्रसादेन चंकाः श्रीवत्सलाः परे। कर्माणीह तु यान्येषां या गतिस्त्रिषु वर्णतः॥ ६५॥

अब जो चित्रगुप्तके वंश में चंक नामक हुये हैं उनका कारण सुनो॥ ६२॥ बड़े रमणीक गौड देश में गंगाके उत्तर तट ऊपर महालक्ष्मीने यज्ञ किया वहां जो विस्तारकूं प्राप्त भये॥ ६३॥ उसमें चार मुख्य भये और उनकी सेवा के वास्ते कायस्थ तत्पर होते भये॥ ६४॥ पीछे वे कायस्थ लक्ष्मीके अनुग्रहसे श्रीवत्सल चंक कायस्थ नामसे विख्यात भये इनका कर्म ब्राह्मणादि तीन वर्णों में जो हैं वह करना॥ ६५॥

☞ चंक नाम के कायस्थ सम्पूर्ण भारत में कहीं भी विद्यमान नहीं हैं। इसे देकर विक्षिप्त लेखक ने समाज को भ्रमित किया है। इसका वर्णन पूर्णतया झूठा है।

× × ×

यह सभी प्रकरण इस बात के प्रमाण हैं कि अपने तरफ से झूठा व्याख्यान जोड़कर इन श्रेष्ठ कायस्थों से ब्राह्मण समाज को विमुख करके ब्राह्मण समाज को कमजोर किया गया है। ऐसा करने से ब्राह्मण समाज को ही नुकसान हुआ है, कायस्थों पर इसका कोई कुप्रभाव नहीं पड़ा है। आज उपर्युक्त विश्वस्तरीय कायस्थ महाविभूतियाँ अपनी योग्यता से समाज में अलग पहचान बना चुकी हैं। सम्पूर्ण विश्व इन महाविभूतियों को कायस्थ ही जानता है, साथ ही यह भी जानता है कि यह चित्रगुप्त नामक देवता के सन्तान हैं अर्थात देवपुत्र हैं। वास्तव में सत्यता तो यह है कि चित्रगुप्त वंशीय कायस्थ 'गौड ब्राह्मण' हैं।

☞ 'ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्ड' ऐसा ग्रन्थ है जिसमें सम्पूर्ण भारत के ब्राह्मण जातियों का उद्भव विस्तार से दिया गया है। प्रश्न यह उठता है कि यदि कायस्थ ब्राह्मण नहीं हैं तो इनका वर्णन इस ग्रन्थ में देने का औचित्य क्या है?

इसी अपमान से छुब्ध होकर कायस्थों ने कलकत्ता हाईकोर्ट में स्वयं को अनुसूचित जाति में जोड़ने के लिये केस किया था, जिसे निरस्त कर दिया गया। इसी प्रकरण का उदाहरण अक्सर अज्ञानियों द्वारा सुना जाता है। इतनी उपेक्षा और अपमान होने के बाद भी इन श्रेष्ठ कायस्थों ने अपने बड़े होने का दायित्व निभाया है। ऋषिपुत्र ब्राह्मणों द्वारा घोर निन्दा, अपशब्द एवं विरोध करने के बाद भी इन्होंने कभी भी ब्राह्मणों का विरोध नहीं किया है, सदैव सम्मान किया तथा सनातनधर्म में बने रहे, **यदि ब्रह्मकायस्थ इस अपमान से अपना धैर्य खो देते तथा सनातन धर्म को छोड़कर किसी अन्य धर्म को अपना लेते तो आज सनातन धर्म किस स्थिति में होता इसकी कल्पना आप स्वयं कर लें।**

यदि इस तरह के अदूरदर्शी, तुच्छ, संकीर्ण एवं निम्नस्तरीय मानसिकता के लोग जान-बूझ कर इन श्रेष्ठ कायस्थों से ब्राह्मणों को विमुख नहीं करते तो आज ब्राह्मणों के महाविभूतियों की एक लम्बी सारिणी होती, जिस पर सम्पूर्ण ब्राह्मण समाज गर्व करता। इसके अतिरिक्त ब्राह्मणों की धार्मिक, राजनैतिक, समाजिक तथा आर्थिक स्थिति अत्यन्त सशक्त होती।

× × ×

माण्डव्य ऋषि का धर्मराज को शाप

इस अध्याय में माण्डव्य ऋषि द्वारा त्रुटिपूर्ण न्याय करने के कारण धर्मराज को शाप दिया गया है, उस शाप को सत्य करते हुये यमराज द्वापर युग में शुद्रा के गर्भ से विदुर के रूप में उत्पन्न हुये।

ब्राह्मणउत्पत्तिमार्तण्ड के विक्षिप्त लेखक हरिकृष्ण शास्त्री ने अपने कुल को कलंकित करते हुये इसी कथा को मनगढ़न्त बनाकर चित्रगुप्त जी से जोड़ दिया और चित्रगुप्त वंशीय ब्रह्मकायस्थों को नीच सिद्ध किया है। मूल एवं हिन्दी अनुवाद के साथ यह कथा प्रस्तुत है—

पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, मधुरादितीर्थमाहात्मवर्णनम्

एकस्मिन्समयेदेवि! माण्डव्यऋषिसतम्। गङ्गाद्वारे महापुण्यं तप्तवांस्तुमहत्तपः॥ १३॥

एक समय की बात है महापुण्य शाली गंगा के किनारे ऋषियों में श्रेष्ठ माण्डव्य जी घोर तपस्या कर रहे थे॥ १३॥

पत्राशी च फलाशी च वायुभक्षकरः सदा। अहोरात्रं सदा देवि विष्णुध्यानपरायणः॥ १४॥

अपने तपस्या के समय ब्रह्मऋषि कभी पत्र खाकर, कभी फल खाकर कभी केवल हवा पीकर दिन रात भगवान् विष्णु के ध्यानमें लीन रहते थे,॥ १४॥

योगाभ्यासरतो नित्यं धर्मपरायणः। तस्मिन्देशे तु वै देवि राजा वै विश्वमोहनः॥ १५॥
गजाश्वरथपत्तीनां सम्पदो बहुला भुवि। सोमचन्द्रेति विख्यातः पुत्रस्तस्य सुलक्षणः॥ १६॥

उसी देश के धर्म परायण, योगाभ्यासी **विश्वमोहन नामके राजा** थे। हाथी, घोड़ा, रथ आदि सम्पत्तियों से सम्पन्न उस राजा को **सोमचन्द्र** नाम का एक पुत्र था जो सर्वगुण सम्पन्न था॥ १५-१६॥

एकदा तु तदा देवि! गतो ह्याखटके वने। तत्र गत्वा तदा तेन कृत्वा ह्याखेटककिया॥ १७॥
स्वात्मानं रमयामास स्वलोकैः परिवारितः। क्रीडारते तदाराज्ञि रात्रिर्जाता सुरेश्वरि॥ १८॥
तस्यां रात्रौ तदा राजा ह्यवासाखेटके वने। तस्या रात्र्यां व्यतीतायां मुहूर्ते ब्रह्मसंज्ञके॥ १९॥
हृतोऽश्वोऽथ विशेषेण चौरेणाऽत्र दुरात्मना। तदा हाहेति शब्दोऽभूत्क गतः क्क गतो हरिः॥ २०॥

हे देवी! एक बार **सोमचन्द्र** जंगल में शिकार खेलने गया। उस जंगल में वह शिकार खेलने का कार्य करने लगा। अपने सेवकों के साथ शिकार खेलने में इतना व्यस्त हो गया कि उस जंगल में ही रात्रि हो गयी। उस रात्रि को राजा अपने सेवकों के साथ उस जंगल में व्यतीत किया। ब्रह्म मूहुर्त में किसी चोर ने घोड़े को चुरा लिया यह सेवकों के द्वारा देखा गया। घोड़ा कहाँ गया यह सुनकर चारों ओर हाहाकार होने लगा॥ १७-२०॥

तदा राज्ञो भयात्सर्वे गतुकामाः समुत्सुकाः। चौरेणाऽपहृतश्चाऽश्व इत्येवं सम्वदति हि॥ २१॥
निरीक्षणमाणास्ते सर्वे हरिद्वारं समागताः। ऋषिस्तत्र तु माण्डव्यस्तपस्तपति नियशः॥ २२॥

राजा के भय से सभी लोग उसको खोजने के लिए उत्सुक हुए, चोर के द्वारा घोड़ा चुरा लिया गया, ऐसा कहने लगे। घोड़ा खोजते हुए सभी लोग हरिद्वार में पहुँच गये। वहीं माण्डव्य ऋषि नित्य तपस्या कर रहे थे॥ २१-२२॥

ध्यानेन च समायक्तो दृष्टोऽसौ तैर्भटैस्तदा। अयं चौरः सदा पापी ध्यानं कृत्वा प्रतिष्ठते॥ २३॥

घोड़ा ऋषि के पास बांधा गया था, वह ध्यान में मग्न थे, ऐसा उन वीर सैनिकों ने देखा, यह पापी चोर है, घोड़ा चुराकर तपस्या का नाटक कर रहा है॥ २३॥

बद्ध्वाश्वं तु समायातोज्ञात्वा राजभटैस्तदा। एवं विचार्य ते सर्वेगृहीत्वा तं ह्यमुनिम्॥ २४॥
राज्ञे निवेदयामासुतं चौरं मुनिसत्तमम्। अश्वापहारी ह्यानीतश्चौरोऽयं नृपं सर्वदा॥ २५॥

जब राजा के सैनिकों को यह ज्ञात हुआ कि यह पापी घोड़ा चुराकर मौन व्रत होकर तपस्या कर रहा है तो उस महामुनि को सब लोग पकड़ कर, राजा से उस चोर मुनि के बारे में बताये। हे राजा! यह अश्व को चुराने वाला है इस चोर को आपके पास लाये हैं॥ २४-२५॥

आज्ञा दत्ता तदा तेन शूलिकारोपणे पुनः। तदा तैस्तुभटैः सर्वैर्मिलित्वा बन्धनं कृतम्॥ २६॥
पश्चाद्वैशूलिकाप्रोतस्तत्क्षणात्तु कृतस्तदा। न ज्ञातं तेन तत्कर्म शूलिकायाः प्रतोदनम्॥ २७॥

राजा ने यह आदेश दिया कि इसने हमारे घोड़े को चुराया है अस्तु इसे शूली पर चढ़ा दिया जाय इसके बाद सब मिलकर उस मुनि को बांध दिये तथा तत्काल उस मुनि को शूली पर चढ़ा दिये उसके शूली पर चढ़ने के कारण का ज्ञान न हो सका॥ २६-२७॥

यतो योगसमारूढोविष्णुध्यानपरायणः। शूलिकाप्रोतनं ज्ञातं कतिचित्कलयोतः॥ २८॥
माण्डव्योऽहमृषिश्रेष्ठःकेन कर्म त्विदं कृतम्। त्रिकालज्ञानी सर्वज्ञो भगवांस्तदुव्यचिन्तयत्॥ २९॥

कुछ समय के बाद योग के बल पर विष्णु के ध्यान में तत्पर वह मुनि शूली पर चढ़ने का कारण जानने लगे और भगवान् से पूछे हे भगवन् मैं माण्डव्य ऋषि हूँ किस कारण से आपने मुझे यह कर्म (दण्ड) दिया है आप सर्वज्ञ हैं भूत, भविष्य एवं वर्तमान के ज्ञाता हैं इस विषय पर विचार करें॥ २८-२९॥

धर्मस्य च इदं कर्म न चान्यस्य कदाचन। योगारूढः स धर्मात्मा गतोऽसौ धर्मसन्निधौ॥ ३०॥
तत्र गत्वा ह्यावाचेदं शृणु त्वं धर्म! साम्प्रतम्। त्वं वै धर्मइति ख्यातो लोके वेदे च सर्वदा॥ ३१॥
शूलिकाप्रोतनं कर्म कथं चैव त्वया कृतम्। तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तोदेव नसंशयः॥ ३२॥

भगवान् ने ऋषि से कहा! हे ऋषि यह कार्य धर्मराज का है, दूसरा कोई नहीं बता सकता। योग के बलपर वह धर्मात्मा धर्मराज के पास चले गये। वहाँ जाकर धर्मराज से बोले—आप इस समय धर्मराज है। आप के धर्म की ख्याति वेद एवं संसार में सर्वदा विख्यात है। मुझ तपस्वी को शूली पर आपने क्यों चढ़वा दिया इसका सम्पूर्ण वृतान्त मैं संशय रहित होकर सुनना चाहता हूँ॥ ३०-३२॥

धर्म उवाच-

शृणुष्व त्वं द्विजश्रेष्ठ पूर्वजन्मनि पातकम्। तदहं कथयिष्यामि कृपां कुरु ममोपरि॥ ३३॥
बालत्वे तु इदं कर्म पूर्वजन्मजपातकम्। तच्छृणुष्व महाप्राज्ञ भवेऽस्मिन्पातकं कृतम्॥ ३४॥
एकस्मिंन्समये विप्र त्वं गतो विजने वने। तत्र गत्वा विप्र जीवः शलभसञ्ज्ञकः॥ ३५॥

धर्मराज बोले—हे ब्राह्मण श्रेष्ठ, पूर्व जन्म में आपने एक पाप कर्म किया है उसे सुनें—मैं उसको कहूँगा आप मुझ पर कृपा करें। बालक अवस्था में पूर्व जन्म में आपने एक पाप किया था। हे महाबुद्धिमान जो पाप आपने किया उसे सुने। हे विप्र एक समय आप निर्जन जंगल में चले गये वहाँ आपने एक शलभ (टिड्डी) नामक जीव को शूली पर चढ़ाया था उस कर्म से उसको अत्यन्त दुःख पहुँचा था हे विप्र इसी कारण राजा ने आपको भी शूली पर चढ़ा दिया॥ ३३—३५॥

आरोपितः स वै शूल्यां कर्मणा तेन दुःखितः। राज्ञा शूलेऽर्पितस्त्वं वै कर्मणानेन सव्रत॥ ३६॥
सर्वथैव प्रभोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्। अल्पमात्रमिदं कर्म त्वया भुक्तं न संशयः॥ ३७॥
सुखीभवतु विप्रेन्द्र! गचछत्वं हि यथेच्छया। एतद्वाक्यं ततः श्रुत्वा माण्डव्यो द्विजसत्तमः॥ ३८॥
उवाच वचन तत्र स कोपादरुणेक्षणः॥ ३९॥

जीव को अपने शुभ एवं अशुभ कर्मों को भोगना पड़ता है। आपको अल्प अपराध का फल भोगना पड़ा इसमें संशय नहीं है। हे ब्राह्मण आप सुखी होइये और अपनी इच्छानुसार जाइये इस प्रकार धर्मराज के कहने पर वह श्रेष्ठ माण्डव्य ऋषि क्रोध से लाल आँख वाले होकर धर्मराज से इस प्रकार बोले॥ ३६—३९ ॥

माण्डव्य उवाच–

रे पापिष्ठ! दुराचार! किंकृतं बहुपातकम्। ये कृत्वा इदं कर्म शूलिकायाः प्रतोदनम्॥ ४० ॥
मम वाक्यप्रकोपेण शूद्रस्त्वं भव सर्वथा। कियता कालयोगेन वंशे वै चन्द्रसञ्ज्ञके॥ ४१ ॥
जातो विदुरनामाख्यो विष्णुभक्तिपरायणः। तीर्थयात्रामिषेणैव गतः साभ्रमतींनदीम्॥ ४२ ॥
यत्र धर्मावतीसङ्गो वर्त्तते च सुरेश्वरि। तत्र वै कृतवान्स्नानं विदुरो धर्मरूपवान्॥ ४३ ॥

माण्डव्य ऋषि बोले—हे पापी दुराचारी, आपने बहुत पाप किया मुझ तपस्वी को शूली पर चढ़ाने का जो कर्म किया है, उस अपराध के कारण आप मेरे शाप से शूद्र होइये। कुछ समय के बाद आप चन्द्रवंश में विष्णु के भक्तरूप में विदुर नाम से प्रसिद्ध होगें तथा तीर्थ-यात्रा एवं नदियों तीर्थों का भ्रमण करेगें। हे देवी! विदुर जी ने जब धर्मवती नदी के पास पहुँचकर उसमें स्नान किया उसके पश्चात् वह साक्षात धर्मराज के रूप में परिवर्तित हो गये॥ ४०—४३ ॥

त्यक्तं तत्र हि शूद्रत्वं धर्मावत्यां न संशयः। एतस्मात्कारणाद्देवियेऽत्र स्नानं प्रकुर्वते॥ ४४ ॥
ते नराः पुण्यकर्माणो गच्छन्ति परमं पदम्। अत्र श्राद्धं च दानं च ये कर्वन्ति नरा भुवि।
इह लोके परामृद्धिं प्राप्य तैर्दिवि मुद्यते॥ ४५ ॥

धर्मराज जी ने वहाँ धर्मवती नदी के सम्पर्क से अपने शूद्र योनिका त्याग किया इसमें संशय नहीं है। इस कारण हे देवी जो इस धर्मवती नदी में स्नान करता है वह व्यक्ति पुण्यशाली होकर विष्णुके परमपद को प्राप्त करता है हे देवी यहाँ पर जो श्राद्ध करता है, तथा जो दान करता है वह इस लोक में परम् समृद्धिको प्राप्त करता है और इस संसार से मुक्त हो जाता है॥ ४४-४५ ॥

× × ×

ब्राह्मणउत्पत्तिमार्तण्ड के लेखक **हरिकृष्ण शास्त्री** ने धर्मराज के इसी व्याख्यान को भगवान् चित्रगुप्त से जोड़कर कायस्थों को मांडव्य ऋषि के शाप से शापित अब्राह्मण कहा है। सत्यता यह है कि **परमपूज्य मांडव्य ऋषि ने 'निगम ब्रह्मकायस्थों' को शिक्षित किया था।** भगवान् ब्रह्मा ने स्वयं आकर अपने १२ पौत्रों में से **प्रथम पौत्र** को परमपूज्य मांडव्य ऋषि को ही दिया था। इसका वर्णन **'कायस्थानांसमुत्पत्ति'** में दिया गया है।

परमपूज्य मांडव्य ऋषि को यह ज्ञान था कि भगवान् चित्रगुप्त-भगवान् ब्रह्मा के पुत्र तथा सभी कायस्थ पौत्र हैं। इन्हें ज्ञात था कि भगवान् चित्रगुप्त उनसे अधिक शक्ति के तथा ऋषि सहित सभी प्राणियों के हन्ता हैं। इसलिये परमपूज्य माण्डव्य ऋषि द्वारा चित्रगुप्त को शापित करना सम्भव ही नहीं है। ब्राह्मणउत्पत्तिमार्तण्ड में दिया गया प्रकरण पूर्णतया झूठा है।

॥ इति द्वितीय खण्ड॥
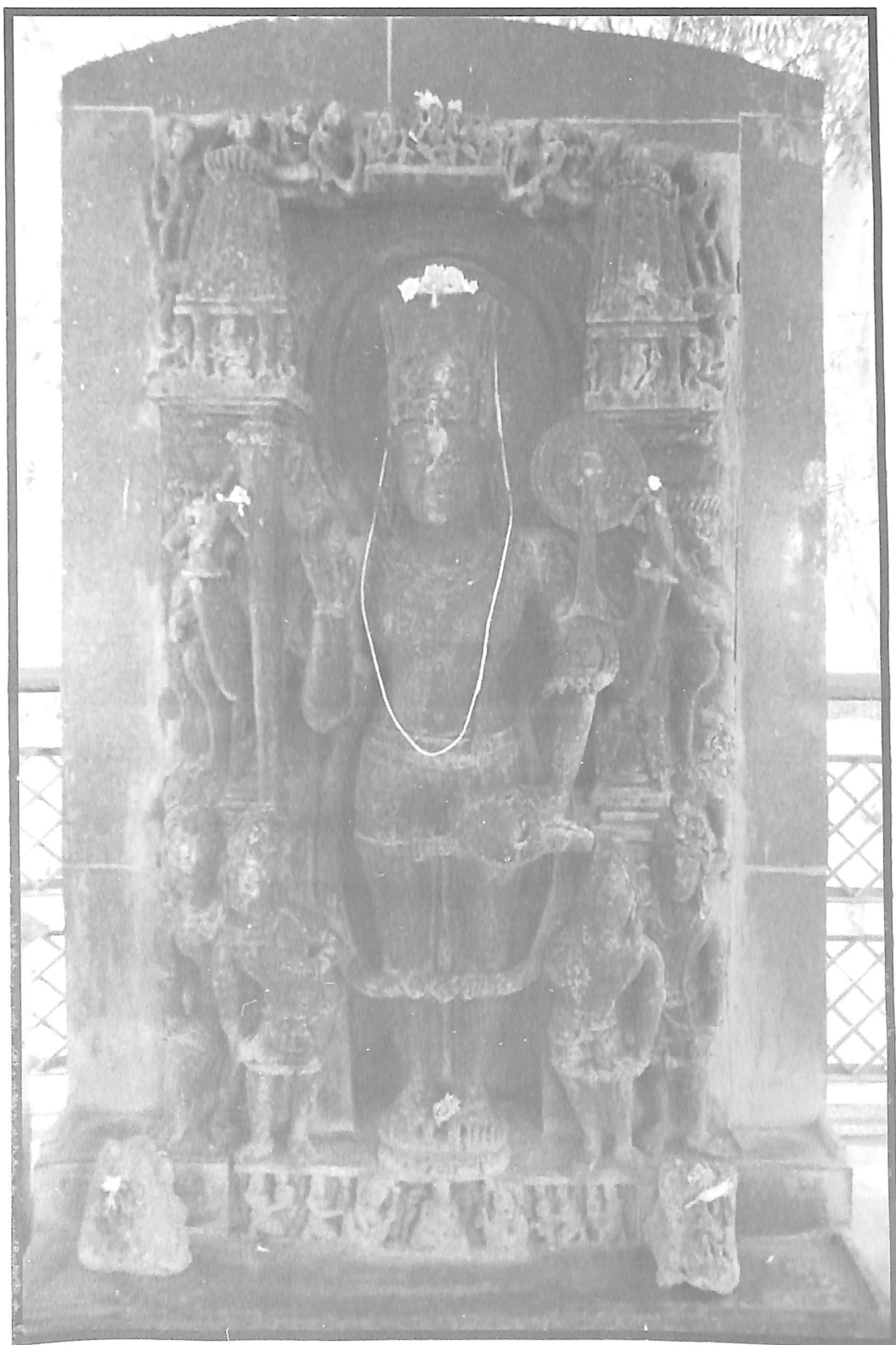
भगवान् चित्रगुप्त की तपोभूमि कायथा में खुदाई में निकली भगवान् विष्णु की मूर्ति

महाकाल की नगरी उज्जैन में स्थित महाकालेश्वर शिवलिंग
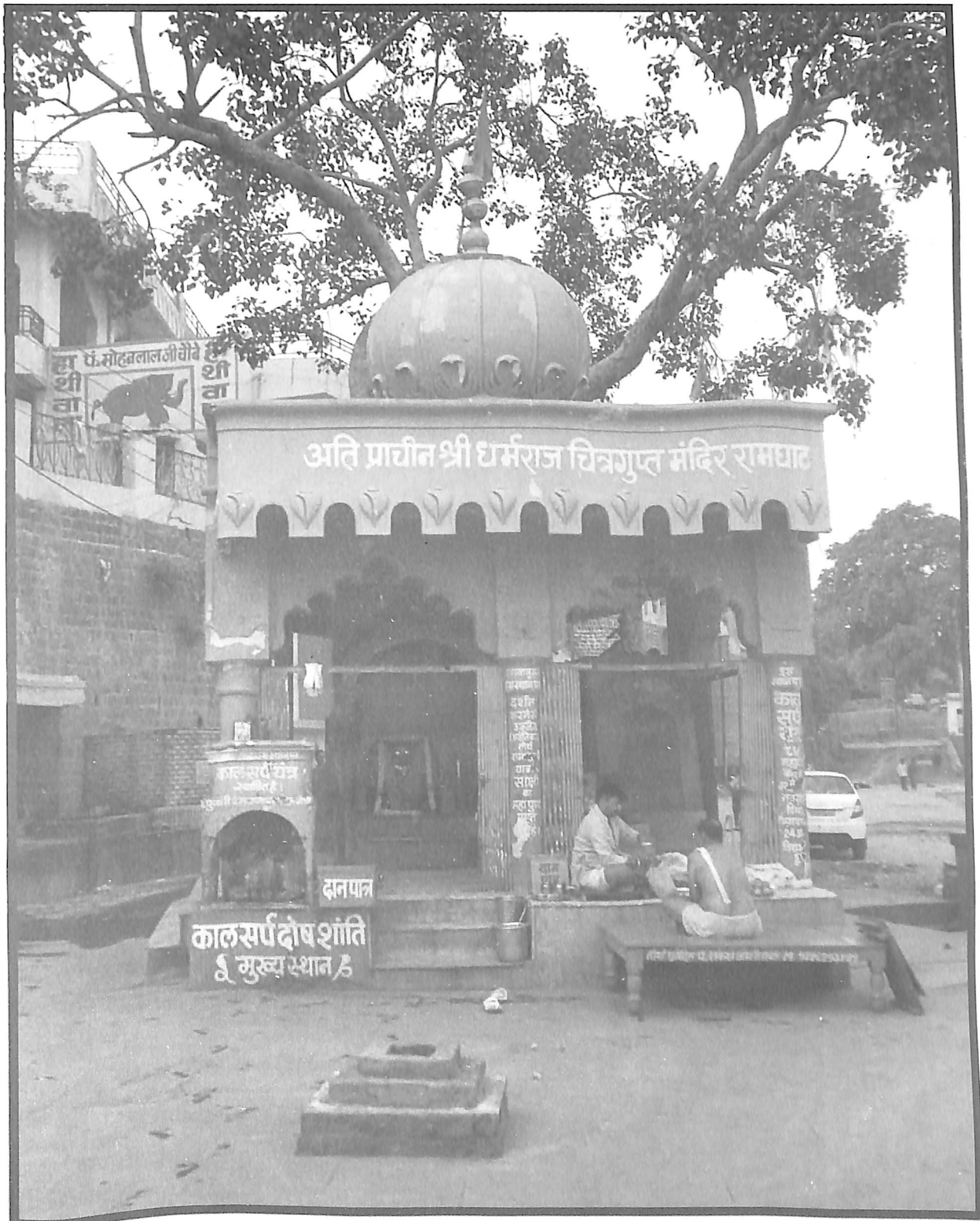
महाकाल की नगरी उज्जैन में स्थित महाकाल चित्रगुप्त का प्राचीन मंदिर

महाकाल की नगरी उज्जैन में स्थित महाकाली की मूर्ति

महाकाल की नगरी उज्जैन में स्थित काल भैरव की मूर्ति

सनातनधर्म ट्रस्ट का उद्देश्य

'सनातनधर्म ट्रस्ट' ने **'लोकशासकमहाकालचित्रगुप्तः तथा च ब्रह्मकायस्थगौडब्राह्मणाः'** नामक ग्रन्थ को प्रकाशित करके पहला सामाजिक एवं धार्मिक कार्य किया है। इस ट्रस्ट का अगला उद्देश्य **'विष्णुसंहिता, ब्रह्मसंहिता, शिवसंहिता तथा चित्रगुप्तसंहिता'** नामक ग्रन्थ को प्रकाशित करना है। ट्रस्ट द्वारा इस ग्रन्थ पर शोध का कार्य किया जा रहा है। इस **'सनातनधर्म ट्रस्ट'** द्वारा भगवान् विष्णु, भगवान् ब्रह्मा, भगवान् शिव तथा भगवान् चित्रगुप्त का १८ पुराणों तथा उपपुराणों में जहाँ भी वर्णन दिया गया है, उस वर्णन को उसी रूप में संकलित किया जा रहा है। जिससे कि कोई भी व्यक्ति एक मात्र **'विष्णुसंहिता, ब्रह्मसंहिता, शिवसंहिता तथा चित्रगुप्तसंहिता'** को पढ़कर भगवान् विष्णु, भगवान् ब्रह्मा, भगवान् शिव तथा भगवान् चित्रगुप्त के विषय में दिये गये सम्पूर्ण पौराणिक स्वरूप से अवगत हो सकें और उनके माहात्म्य को जान सकें।

पुराणों में **स्वर्गलोक** का स्वरूप भी दिया गया है। उनमें शिव, ब्रह्मा, विष्णु, यम, तथा चित्रगुप्तादि देवों का निवास बताया गया है। पुराणों में दिये गये स्वर्ग के स्वरूप के अनुसार **'स्वर्गमन्दिर'** का निर्माण **'सनातन धर्म ट्रस्ट'** कराना चाहता है।

हमारे समाज में भगवान् चित्रगुप्त एवं उनके वंशज १२ कायस्थों पर भ्रान्ति व्याप्त थी। एक तरफ जहाँ हमारा समाज भगवान् चित्रगुप्त को यमराज का मुंशी तथा उनके १२ विलक्षण ज्ञानी पुत्रों को क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र कहकर अपशब्द कह रहा था। हमने इस पहेली को सनातन धर्म के परिप्रेक्ष्य में रह कर, परमपवित्र ग्रन्थ ऋग्वेद तथा पुराणों के आधार पर सुलझा कर सामाजिक भ्रम को दूर करने का प्रयास किया है।

अब सभी सनातनी इस ग्रन्थ को पढ़कर पौराणिक प्रमाण सहित देख सकते हैं कि सभी कायस्थ, चाहे चित्रगुप्त वंशीय अथवा चन्द्रसेनीय हों, भारत के उच्च **'गौडब्राह्मण'** हैं।

धर्मानुसार हर मनुष्य को **अपनी आय का दशांश भाग धर्मार्थ दान** अवश्य करना चाहिये। यह शास्त्रों की आज्ञा है। यदि आप **'सनातनधर्म ट्रस्ट'** के इस प्रथम कार्य से सन्तुष्ट हैं तो हमारे ट्रस्ट को धर्मार्थ अपने आय का कुछ अंश अवश्य दान करें जिससे कि हम **'स्वर्गमन्दिर'** का निर्माण आपके सहयोग से करा सकें, साथ ही हम आपके सहयोग से ऐसा धार्मिक तथा सामाजिक कार्य करना चाहते हैं। जिसे देख कर आप स्वयं को गौरवान्वित महसूस करेंगे।

इस कलियुग में धर्म का निरन्तर क्षय हो रहा है। सनातनधर्मियों के पास ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं है, जिसे पढ़कर वह जान लें कि **परब्रह्म, ऋषि, देव तथा दानव कौन हैं? हमारे लिये कौन पूज्य है? कौन आदरणीय है? हमारे संस्कार क्या हैं? कुल और कर्म क्या हैं? सनातनधर्म सत्य क्यों है? सनातनधर्म का पालन करके किस तरह हम अपना जीवन उत्तम बना सकते हैं, इत्यादि?**

इस विषय पर एक ग्रन्थ प्रकाशित करने की हमारी मंशा है, जिससे कि हम मात्र एक ग्रन्थ को पढ़ कर, ढोंग प्रपञ्च से विमुख होकर, सत्य सनातनधर्म का पालन करते हुए, अपना जीवन लोक तथा परलोक में उत्तम बना सकें। **'सनातनधर्म एवं नियम'** नामक ग्रन्थ पर हमने कार्य प्रारम्भ कर दिया है।

'सनातनधर्म ट्रस्ट' की मंशा है कि, हम ऐसा सामाजिक कार्य करें जिससे कि हमारे समाज तथा सनातन धर्म का मान मातृभूमि ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में निरन्तर बढ़ता रहे। भगवान् चित्रगुप्त के सपूतों ने यह कार्य पूर्व में भी किया है। **हम भगवान् चित्रगुप्त के 'देवपुत्र' हैं। हम व्यक्तिगत लाभ के लिये लालायित**

नहीं हैं, हम सम्पूर्ण सनातनधर्म का उत्थान चाहते हैं। हम चाहते हैं कि सनातनधर्म को मानने वाले सभी लोग अपनी योग्यता से सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करें। हमारे मातृभूमि से अशिक्षा, पाखंड और अधर्म का नाश हो, ऐसी हमारी मंशा है। हम धार्मिक तथा सामाजिक कार्य करने के लिये प्रतिबद्ध हैं।

इसी के निमित्त हमने अपना पहला धार्मिक कार्य किया है। यदि आप हमारे इस परमपवित्र कार्य के सहभागी होकर आर्थिक सहयोग करना चाहते हों तो **'सनातनधर्म ट्रस्ट'** के खाते में धर्मार्थ धनराशि जमा करा सकते हैं।

बैंक एकाउन्ट का विवरण–

'सनातनधर्म ट्रस्ट',

'SANATAN DHARM TRUST'

ए-३६, आवास विकास कालोनी, शाहपुर, गोरखपुर, [उ० प्र०]
A-36, Avas Vikas Colony, Shshpur, Gorakhpur, Uttar Pradesh.

A/C : 35835290510
IFSC : SBIN0015503
MICR : 273002997
B. Code : 15503

State Bank of India

Asuran Chowk, Mangalam Vihar Colony, Jail Road, Shahpur, P. O. Gita Vatika, Gorakhpur. Uttar Pradesh. Pin Code : 273006.

कायस्थ/सनातनी बन्धु! इस ग्रन्थ को सभी सनातनियों के घर में पहुँचाने की कृपा करें। जिससे कि सभी कायस्थ/सनातनी बन्धु, भगवान् चित्रगुप्त की शक्तियों से अवगत हो सकें। जिस प्रकार सत्यनारायणव्रतकथा पाठ करने से भगवान् विष्णु को प्रसन्नता होती है। उसी प्रकार इस ग्रन्थ में दिये गये कथाओं का पाठ करने से भगवान् चित्रगुप्त प्रसन्न होकर सम्पूर्ण सुख प्रदान करते हैं। शुभ अवसरों पर भगवान् चित्रगुप्त की प्रसन्नता के लिये इस ग्रन्थ में दिये गये कथाओं का पाठ अवश्य करें।

× × ×

पाठक बन्धु! आपने इस पवित्र ग्रन्थ को पढ़ा। भगवान् चित्रगुप्त के वैदिक एवं पौराणिक स्वरूप का मनन किया तथा अपने अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर करके, ज्ञान रूपी प्रकाश को प्राप्त किया, इसके लिये भगवान् चित्रगुप्त आपको आशीर्वाद स्वरूप सुख, समृद्धि प्रदान करें, आपके परिवार को दीर्घायु बनायें तथा सपरिवार सम्पूर्ण सुख प्रदान करें, यह हमारी शुभ कामना है।

॥ सनातन धर्म ट्रस्ट, गोरखपुर ॥